बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थावली–१८

Buddhist Sanskrit Texts–No. 18.

General Editor

Dr. SITANSUSEKHAR BAGCHI,

M. A., LL. B., D. LITT.,

DIRECTOR,

MITHILA INSTITUTE

OF

Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning

Darbhanga.

Buddhist Sanskrit Texts—No. 18.

MAHĀYĀNASŪTRASAṀGRAHA

PART II

EDITED BY

Dr. P. L. VAIDYA

PUBLISHED BY

THE MITHILA INSTITUTE

बौद्धसंस्कृतग्रन्थावली—१८

महायानसूत्रसंग्रहः

द्वितीयः खण्डः

वैद्योपाह्वश्रीपरशुरामशर्मणा

परिष्कृतः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन प्रकाशितः

Copies of this Volume may be had, postage paid, from your usual Book-seller or from the Director, Mithila Institute, Darbhanga, on pre-payment either in cash, Postal Order or M. O. of Rs. 20.00 for ordinary edition and Rs. 25.00 for Library edition.

The entire cost of preparation and production of this Volume has been met out of a subvention kindly placed at the disposal of the Institute jointly by the Governments of India (Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs) and the State of Bihar

Printed by Laxmibai Narayan Chaudhari, at the Nirnaya Sagar Press, 26–28, Dr. M. B. Velkar Street, Bombay 2, and Published by Dr. S. Bagchi, Director, Mithila Institute, Darbhanga, Bihar.

अनुक्रमणिका

INTRODUCTION.

This second part of the Mahāyāna Sūtra-Saṁgraha contains only one Sūtra, viz., the Mañjuśrīmūlakalpa which was once edited by the late Mm. T. Gaṇapati Śāstrī in the Trivandrum Sanskrit series, Nos. LXX, LXXVI and LXXXIV, i. e., in three parts published in years 1920, 1922 and 1925 respectively. I have more or less reprinted this text referring to pages of this edition in the margins with the letter G. The discovery of a Buddhist Tantra Ms. in Sanskrit in the extreme South, and that too in Devanāgarī Script and written on palm leaves in ink (instead of by stilus), was hailed as of high importance, and several scholars like Mademoiselle Labour prepared studies on this work. The late Gaṇapati Śāstrī, the editor, tells us that this Ms. appears to be about 300 to 400 years old, the characters look quite clear and legible as if they were just written down. The copyist is one Pandit Ravicandra, the head of the Mūlaghoṣavihāra, who went out (to the South) from Central India: श्रीमूलघोषविहाराधिपतिना श्रीवो + + + + + मध्यदेशाद्विनिर्गतेन पण्डितरविचन्द्रेण लिखितम्. The copyist further adds: परिसमाप्तं च यथालब्धमार्यमञ्जुश्रियस्य कल्पम्, indicating the belief that the portion recovered is only a part of a bigger volume now lost. This phrase reminds us of similar phrases occurring at the end of Samādhirājasūtra (No. 2, page 304 of this series) and Gaṇḍavyūhasūtra (No. 5, page 436 of this series). The subject matter dealt with in this work belongs to Tantra, and aims at acquiring knowledge of secret mantras for the good of the Sādhaka. The language, though Sanskrit of the Buddhists, is abnormally corrupt, defects of form and structure of phrases abounding at every step. I have kept the langauge intact, but given some aid to the reader by separation of sentences into paragraphs, numbering of verses etc. Incidentally, it contains matters covering the field of astronomy, astrology, geography, geophysics, history of Buddhist Church, and prominent kings all put in a jumbled form. It will require a careful analysis which may repay the labours of scholars. The work was long out of print, and since the merger and consequent closure of the series, is not likely to be reprinted. No other Ms. of the work is known to exist, but translations in Tibetan and Chinese are available. I therefore thought that I should include this work in the present series in the hope that some younger scholar might undertake a detailed study of the work. I may, in this connection, bring to the notice of the reader that some sections of this work have correspondence with sections of Śārdūlakarṇāvdāna of the Divyāvadāna (No. 20 of this series).

P. L. VAIDYA

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ महायानसूत्रसंग्रह का दूसरा भाग है। इस में केवल मञ्जुश्रीमूलकल्प का ही समावेश है। स्व. मम. टी. गणपतिशास्त्री महोदयने त्रिवेन्द्रमसंस्कृत सिरीज में इसका संपादन करके क्रमशः १९२०, १९२२ तथा १९२५ खृष्टाब्द में प्रकाशित किया[१]। मैं ने प्रायः उसी प्रकाशित पाठका अनुसरण किया है तथा हासिया में G अक्षरसे उसका पत्राङ्कनिर्देश भी किया। तालपत्र पर स्याही और लेखनी से (लोहशलाका से नहीं) लिखी हुई संस्कृत भाषा और देवनागर अक्षर में बौद्धतन्त्रकी मातृका का भारतके दक्षिणतमं प्रान्त में आविष्कार पण्डितसमाज में बहुत समादृत हुआ और मेडामोइसेल लेबर जैसे अनेक विद्वानों ने इस के उपर समालोचनात्मक अध्ययन भी किया है। ग्रन्थ संपादक दिवङ्गत गणपतिशास्त्री ने इस मातृका के विषय में लिखा है कि यह मातृका तीन या चार सौ साल की पुरानी है। इस के अक्षर वहुत स्पष्ट तथा सुवाच्य हैं जैसे कि तुरंत लिखा गया हो। इस मातृका के प्रतिलिपिकार पण्डित रविचन्द्र मूलघोषविहार के प्रधान आचार्य थे। इन्होंने अपना विवरण देते हुए कहा है कि ये मध्यभारतसे दाक्षिणात्यमें गये थे। 'श्रीमूलघोषविहाराधिपतिना श्रीघो****मध्यदेशाद्विनिर्गतेन पण्डितरविचन्द्रेण लिखितम्।' प्रतिलिपिकार ने पुनश्च आगे कहा है– 'परिसमाप्तं च यथालब्धमार्यमञ्जुश्रियस्य कल्पम्। इस से प्रतीत होता है कि अधुना लुप्त एक बृहत्तर ग्रन्थका यह अंशविशेष है। यह उक्ति समाधिराजसूत्र के (संख्या २, पृ० ३०४, इसी सिरीजका) तथा गण्डव्यूहसूत्र के (सं० ५, पृ० ४३६, इसी सिरीजका) अनुरूप वक्तव्य का स्मरण करा देती है। इस में तान्त्रिक विषय प्रतिपादित है। और साधकों के हित के लिये गुह्य मन्त्रों का प्रतिपादन इस का उद्देश्य है।

इस की भाषा बौद्ध–संस्कृत है। इस में वर्ण तथा वाक्यविन्यास में सर्वत्र त्रुटियाँ पायी जाती है। मैंने भाषा में परिवर्तन नहीं किया परन्तु अनुच्छेद विभाजन तथा श्लोक संख्या निर्देश आदि पाठकों की सुविधाके लिये किया गया है। प्रसङ्गतः इस में फलित तथा गणित ज्योतिष, भूगोल, भूतत्त्व, बौद्धसंप्रदाय का एवं प्रसिद्ध राजाओं का इतिहास मिश्रित रूपमें पाया जाता है। इस ग्रन्थका यत्नपूर्वक विश्लेषण अपेक्षित है। इससे विद्वानों का परिश्रम सार्थक होगा।

यह ग्रन्थ दीर्घकाल से अलभ्य था। संश्लिष्ट ग्रन्थमाला का अन्यत्र सन्निवेश और फलतः समाप्ति हो जानेके कारण वहाँ से इसका पुनर्मुद्रण असंभव सा प्रतीत हुआ। इस ग्रन्थकी अन्य कोई मातृका उपलब्ध नहीं है। किन्तु इसका अनुवाद भोट भाषा में तथा चीनी भाषा में मिलता है। अतएव मैंने इस ग्रन्थको वर्तमान ग्रन्थमाला में अन्तर्भूत किया। आशा है कोई नवीन विद्वान् इसका विस्तृत समीक्षण करेंगे। यहाँ मैं एक विषय की ओर विद्वानों की दृष्टि आकृष्ट करना चाहता हूँ कि आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प का कुछ अंश दिव्यावदान के अन्तर्भूत शार्दूलकर्णावदान के अंशविशेष से सादृश्य रखता है।

प. ल. वैद्य

---

१ TSS Nos. LXX, LXXVI and TXXXIV.

॥ महायान-सूत्र-संग्रहः ॥

द्वितीयः खण्डः ।

२३ आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पः । G 1

१ संनिपातपरिवर्तः ।

नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः ।

एवं मया श्रुतम् । एकस्मिन् समये भगवां शुद्धावासोपरि गगनतलप्रतिष्ठिते अचिन्त्याश्चर्याद्भुतप्रविभक्तबोधिसत्त्वसंनिपातमण्डलमाले विहरति स्म । तत्र भगवां शुद्धावासकायिकान् देवपुत्रानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु देवपुत्रा मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य अचिन्त्याद्भुतप्रातिहार्यचर्यासमाधिशुद्धिविशेषविमोक्षमण्डलबोधिसत्त्वविकुर्वणं सर्वसत्त्वोपजीव्यमायुरारोग्यैश्वर्यमनोरथपारिपूरकाणि मन्त्रपदानि । सर्वसत्त्वानां हिताय भाषिष्ये । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्येऽहं ते ॥

अथ ते शुद्धावासकायिका देवपुत्राः साञ्जलयो भूत्वा.................. विशेषभूमिप्रतिलाभवज्रासनाक्रमणमारधर्षणधर्मचक्रप्रवर्तनसर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धनिर्याणदेवमनुष्योपपत्तिसर्वदुःखप्रशमनदरिद्रव्याधितआढ्यरोगापकर्षणतां सर्वलौकिकलोकोत्तरमन्त्रचर्यानभिभवनतां सर्वाशापरिपूरणतः सर्वतथागतानामवश्यवचनधारणम् । तद्वदतु भगवान् मैत्रचित्तो हितचित्तोऽस्माकमनुकम्पामुपादाय सर्वसत्त्वानां च ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं बुद्धचक्षुषावलोक्य विशुद्धविषयज्योतिर्विकिरणविध्वंसिनीं नाम समाधिं समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः ....संकुसुमितबोधिसत्त्वसंचोदनी नाम रश्मि ....। सितरश्म्यवभासं दृष्ट्वा ईषत्प्रहसितवदनो भूत्वा तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म—इयं भो जिनपुत्रा G 2
अस्माकं रश्मिसंचोदनी । इहायात । सज्जीभवन्तु भवन्तः ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्फुल्लनयनोऽनिमिषनयनो येनासौ रश्म्यवभासः, तेनाभिमुखस्तस्थौ । अथ सा रश्मिसंचोदनी कुसुमावतीं लोकधातुं महतावभासेनावभास्य भगवतः संकुसुमितराजेन्द्रस्य तथागतस्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मञ्जुश्रियस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य मूर्धन्यन्तर्धीयते स्म । अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूत उत्थायासनाद्भगवन्तं संकुसुमितराजेन्द्रं तथागतं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य शिरसा प्रणम्य दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य भगवन्तं संकुसुमितराजेन्द्रमेतदवोचत्—समन्वाहृताः स्म भगवता शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन । गच्छामो वयं भगवन् इतो सहां लोकधातुं भगवन्तं शाक्यमुनिं द्रष्टुं वन्दितुमुपासितुं सर्वमन्त्रचर्यासाधनौपयिकमण्डलविधानं कल्परहस्यपटविधानरूपसर्वतथागतहृदयगुह्यमुद्राभिषेकं निर्देष्टुं सर्वसत्त्वानां सर्वाशां परिपूरयितुम् ॥

एवमुक्ते भगवान् संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्–गच्छ त्वं मञ्जुश्रीः कुमार, यस्येदानीं कालं मन्यसे। अपि त्वस्मद्वचनेन भगवान् शाक्यमुनिरल्पाबाधतामल्पातङ्कतां लघूत्थानतां सन्यासविहारतां प्रष्टव्यः॥

अथ भगवान् संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्–अपि तु कुमार शतसहस्रगङ्गानदीसिकतप्रख्यैस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैस्त्वदीयं मन्त्रचर्यामण्डलकल्परहस्याभिषेकमुद्रापटलविधानहोमजपनियमसर्वाशापारिपूरकसर्वसत्त्वसंतोषणज्योतिरत्नपटलविसरातीतानागतवर्तमानज्ञानराज्यैश्वर्यव्याकरणमन्त्रावर्तनदेशनिष्ठावसानान्तर्धानकालसमयविसरपटलसमस्ताशेषलौकिकलोकोत्तरसर्वबुद्धबोधिसत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वभूम्याक्रमणतश्चर्यानिष्ठं भाषितवन्तः, भाषिष्यन्ते च। मयाप्येतर्हि अनुमोदितमेव। गच्छ त्वं
G 3
मञ्जुश्रीः कुमारभूत, यस्येदानीं कालं मन्यसे, शाक्यमुनिसमीपं संमुखम्। इमं धर्मपर्यायं श्रोष्यसि। त्वमपि भाषिष्यसे। भवति चात्र मन्त्रः–

नमः सर्वतथागतानामचिन्त्याप्रतिहतशासनानां ओं र र स्मर। अप्रतिहतशासन कुमाररूपधारिण हूम् हूम् फट् फट् स्वाहा॥

अयं स कुमार मञ्जुश्रीः मूलमन्त्रः। सर्वेषां तथागतानां हृदयः, सर्वैश्च तथागतैर्भाषितः, भाषिष्यते। स त्वमपीदानीं भाषिष्यसे। सहां लोकधातुं गत्वा विस्तरविभागशः सर्वकर्मकरम्। शाक्यमुनिना तथागतेनाभ्यनुज्ञातः परमहृदयम्। भवति चात्र–ओं वाक्ये द नमः। उपहृदयं चात्र वाक्ये हूम्॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवान् संकुसुमितराजेन तथागतेनाभ्यनुज्ञातः सर्वव्यूहालंकारो बोधिसत्त्वचर्यानिष्यन्दबोधिमण्डलसमनुप्रापणं नाम समाधिं समापद्यते समनन्तरसमापन्नस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य चतुर्दिग्व्यापन्नाग्र(?)अन्तोर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वं सर्वावन्तं दिशं बुद्धैर्भगवद्भिः संपूर्णं तं लोकधातुमभवत्। साधु साधु भो जिनपुत्र, यत् त्वमिमं समाधिविशेषं समापद्यसे। न शक्यं सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैर्बोधिसत्त्वैश्च चर्याप्रविष्टैर्दशभूमिप्रतिष्ठितैरपि संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतैश्च बुद्धैर्भगवद्भिः सार्धं संमन्त्र्य इदं मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य परमहृदयं परमगुह्यं सर्वार्थसाधनं मन्त्रं भाषते स्म। एकाक्षरं नाम परमगुह्यं सर्वसत्त्वानामर्थकरं दिव्यमन्यैरपि मन्त्रचर्याविशेषैः साधनीयम्॥

अथ भगवान् संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतो मुहूर्तं तूष्णीमभूत्। सर्वं सर्वावन्तं लोकधातुं बुद्धचक्षुषावलोक्य तांश्च बुद्धान् भगवतः समन्वाहृतं मैत्रात्मकेन चेतसा मन्त्रमुदीरयते स्म–नमः सर्वबुद्धानाम्। मन्त्रः एष मञ्जुश्रीः परमहृदयः सर्वकर्मकरः॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतस्तस्मात् समाधेर्व्युत्थाय तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः संमिञ्जितं बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा संमिञ्जयेदच्छटासंघातमात्रो निमेषोन्मेषक्षणमात्रशुद्धिवलवलजबुद्धिर्नाम नीतसमाधिविशेषविकुर्वणं नाम समापद्यत सहां लोकधातुं प्रत्यस्थात्
G 4
आगत्य चोपरि गगनतलमहामणिरत्नप्रतिष्ठिते शुद्धावासदेवनिकाये प्रत्यष्ठात्। सर्वं च तं

शुद्धावासभवनं महता रश्म्यवभासेनावभास्य ज्योतिरत्नप्रतिमण्डनोद्द्योतनीं नाम समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य अनेकरत्नप्रविभक्तकूटागाररत्नच्छत्रानेकयोजनशतसहस्रविस्तीर्णदिव्यदृश्यमहापट्टकलापोपशोभितविरचितदिव्यपुष्पध्वजपताकमालाकुलरत्नकिङ्किणीजालोपनद्धमधुरसर्वनिर्घोषवैवर्तिकत्वबोधिसत्त्वप्रतिष्ठापनदिव्यं च गन्धमाल्यविलेपनस्रक्चूर्णप्रवर्षं चाभिनिर्ममे भगवतः शाक्यमुनेः पूजाकर्मणे तमाश्चर्याद्भुतप्रातिहार्यं बोधिसत्त्वविकुर्वणं दृष्ट्वा ॥

अथ ते शुद्धावासकायिका देवपुत्राः संहृष्टरोमकूपजाता भवनं प्रकम्पमानं दृष्ट्वा उत्तप्तभिन्नहृदया आहोस्वित् किं ऋद्धेः परिहीयाम इति संत्वरमाणरूपाः उच्चैः क्रोशितुमारब्धाः । एवं चाहुः—परित्रायस्व भगवन्, परित्रायस्व शाक्यमुने ॥

अथ भगवान् सर्वावन्तं शुद्धावासपर्षदमामन्त्रयते स्म—मा भैष्टतु मार्षाः, मा भैष्टथ । एष स मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः संकुसुमिते बुद्धक्षेत्रे संकुसुमितराजस्य तथागतस्य सकाशाद् द्रष्टुं वन्दितुं पर्युपासितुं महतार्थचर्यामन्त्रपदवैपुल्याद्भुतधर्मपदं च निर्देष्टुमागतः ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवतः शाक्यमुनेस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य अनिमिषनयनो भगवन्तमवलोक्य चरणयोर्निपत्य इमेभिरक्षरपदप्रत्याहारैर्भगवन्तमभ्यष्टावीत्—

नमस्ते मुक्तायाजन्य नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ सर्वचर्यार्थसाधक ॥ १ ॥
नमस्ते पुरुषसिंह सर्वानर्थनिवारक ।
नमस्तेऽस्तु महावीर सर्वदुर्गविनाशक ॥ २ ॥
नमस्ते पुरुषपुण्डरीक पुण्यगन्धमनन्तक ।
नमस्ते पुरुषपद्म त्रिभवपङ्कविशोधक ॥ ३ ॥
नमस्ते मुक्ताय सर्वदुःखविमोचक ।
नमस्ते शान्ताय सर्वादान्तसुदान्तक ॥ ४ ॥
नमस्ते सिद्धाय सर्वमन्त्रचर्यार्थसाधक । G
नमस्ते मङ्गल्याय सर्वमङ्गलमङ्गल ॥ ५ ॥
नमस्ते बुद्धाय सर्वधर्मावबोधने ।
नमस्ते तथागताय सर्वधर्मतथागत ।
निःप्रपञ्चाकारसमनुप्रविष्ट देशिक ॥ ६ ॥

नमस्ते सर्वज्ञाय सर्वज्ञेयवस्तुसंस्कृतासंस्कृतत्रियानमार्गनिर्वाणप्रतिष्ठापनप्रतिष्ठिताय इति ॥

एभिरक्षरपदप्रत्याहारस्तोत्रपदैर्भगवन्तं संमुखम[भिष्टुत्य]······················· ················लोकधातूनतिक्रम्य पूर्वोत्तरे दिग्भागे संकुसुमितं नाम बुद्धक्षेत्रमभूत्,

तत्र कुसुमावती नाम लोकधातुः, यत्र स भगवान् संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतो विहरत्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरण·································ध्वादेशयति आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणम्। स्वर्थं सव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं संप्रकाशयति स्म॥

स एतर्हि तिष्ठति ध्रियते यापयति धर्मं च दे[शयति]····························· ········त्राणं लयनं शरणं परायणं क्षेममत्यन्तनिष्ठमत्यन्तपर्यवसानं सर्वसत्त्वानां च भाषते स्म। तेनैव भगवता कृताभ्यनुज्ञात इहागतो भगवतः समीपं पादमूलम्। स च भगवान् संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतो भगवत अल्पाबाधतां लघूत्थानलोवगास्यत्वविहारतां(?)पर्यपृच्छत्। एवं चाह–आश्चर्यम्। यत्र हि नाम एवंविधे पञ्चकषाये काले बुद्धो भगवान् शाक्यमुनिरुत्पन्नः सर्वधर्मं देशयति अनूनपदव्यञ्जनम्। तृपथापवर्गदेवमनुष्योपपत्तिप्रतिलोभनता। आश्चर्यं तस्य भगवतः शाक्यमुनेर्वीर्यम्, यत्र हि नाम अभव्ये सत्त्वनिकाये त्रिभवरसमुधातानुवर्तिते मार्गेऽत्यन्तयोगक्षेमानुगमे निर्वाणे भक्तं प्रतिष्ठापयति। अपि तु भगवान् बुद्धानां भगवतां चित्तं बुद्धा एव भगवन्तो ज्ञास्यन्ति। किं मया शक्यमचिन्त्याद्भुतैश्वर्यविकुर्वितानां
G 6 भगवतां बुद्धविकुर्वितुं ज्ञातुम्, चित्तचरितचर्यानुप्रवेशनिर्हारचेष्टितं ज्ञातुं वा, समासनिर्देशतो वा कल्पकोटीनयुतशतसहस्रैरपि वक्तुम्। योऽयं तथागतानां तथागतनिर्हारः समस्तव्यस्ताशेषमूर्त्या संस्कृतधर्मतो द्रष्टव्यः। दर्शनहेयपुराणावलम्बिनां चर्या वक्तुं गुणान् वा कथयितुं तथागत एवात्र भगवान् जानीते, न वयम्॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः स्वरिद्धिविकुर्वितनिर्मिते महारत्नपद्मे निषण्णः भगवन्तं शाक्यमुनिं निरीक्षमाणः। अथ भगवान् शाक्यमुनिर्मञ्जुश्रियं कुमारभूतं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं विविधकथानुसारे तथागतभूतान् पूर्वप्रश्नपूर्वंगमपुरःसरधर्मदेशनानुकूलबोधिसत्त्वचर्यानिर्हारार्थोपसंहितेन ब्राह्मेण स्वरेण कलविङ्करुतरवितगर्जितदुन्दुभिस्वरनिनादितनिर्घोषेण स्वरेण मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–स्वागतं ते मञ्जुश्रीः। महासत्त्वचर्यासर्वबुद्धाधिष्ठितनिर्हारसर्वबोधिसत्त्वार्थसंप्रापकसर्वमन्त्रपदसरहस्याभिषेकमुद्रामण्डलकल्पाभिषेक आयुरारोग्यैश्वर्यसर्वाशापरिपूरकसर्वसाधनौपयिकतन्त्रज्ञानज्ञेयकालान्तराधानराज्यक्षेत्र अतीतानागतवर्तमान संक्षेपतः सर्वसत्त्वानां सर्वाशापरिपूरक स्वगुणोद्बोधनमन्त्रचर्यानुवर्तितपरसत्त्वप्रीतिकरण अन्तर्धानाकाशगमनपादप्रचारिकमेधावीकरण आकर्षणपातालप्रवेशन आभिचारिक सर्वकामावाप्तिसंकुलयक्षयक्षिणीकिंकरपिशाचसर्वभूताकर्षणबालवृद्धतरुणयथास्थितिस्थापक, संक्षेपतः सर्वकर्मकरसर्वमनोरथपरिपूरक आभिचारकशान्तिकपौष्टिकेषु प्रकुर्वाण, यथा यथा प्रयुज्यमानस्तथा तथा श्राव्यमानबोधिसत्त्वपिटकावतंसकं महाकल्पराजपटलविस्तरमस्माभिरनुज्ञातः सर्वबुद्धैश्च भाषन्तं शुद्धसत्त्व········ये धर्मकोशं बहुजनहिताय बहुजनकामाय देवानां च मनुष्याणां च सर्वसत्त्वानुदिश्य॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सर्वबुद्धाधिष्ठानज्योतिरश्मिव्यूहालंकारसंचोदनीं नाम बोधिसत्त्वसमाधिं समापद्यते । समनन्तरसमापन्नस्य अनेकगङ्गानदी........यावद्.... G 7
भुवनं यावच्च अवीचिर्महानरकं ये केचित् सत्त्वाः सुदुःखिताः, सर्वे ते दुःखप्रशमनशान्तिं च जग्मुः । सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वान् बुद्धांश्च भगवन्तां संचोद्य पुनरेव सा रश्मिर्मञ्जुश्रियस्य बोधिसत्त्वस्य मूर्धन्यन्तर्धीयते स्म ॥

अत्रान्तरे पूर्वस्यां दिशि ये व्यवस्थिता बुद्धक्षेत्राः, तत्र बुद्धा भगवन्तः संचोदिताः तेन रश्मिधातुमण्डलीसमुद्द्योतितनिर्हारेण । तद्यथा—ज्योतिस्सौम्यगन्धावभासश्रीर्नाम तथागतः, भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभराजस्तथागतः, समन्तावभासश्रीर्नाम तथागतः, समुद्गतराजो नाम तथागतः, शालेन्द्रराजो नाम तथागतः, लोकेन्द्रराजो नाम तथागतः, अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजो नाम तथागतः, अनन्तावभासराजेन्द्रो नाम तथागतः, ज्योतिरश्मिराजेन्द्रो नाम तथागतः । एवंप्रमुखा बुद्धा भगवन्तो बोधिसत्त्वगणपरिवृताः अनन्तानन्तेषु च लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः सहां लोकधातुं शुद्धावासभवनस्थं च शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं मञ्जुश्रिया सार्धं कुमारभूतेन बोधिसत्त्वचर्यानिर्देशमन्त्रपदार्थपटलविसरं भाषन्तं ते बुद्धा भगवन्तः संनिपतेयुः। एवं दक्षिणस्यां पश्चिमस्यामुत्तरस्यां दिक्षु विदिक्षु । इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वावन्तं बुद्धक्षेत्रमवभास्य सर्वेषु च बुद्धक्षेत्रेषु सर्वमारभवनानि जिह्मीकृत्य सबोधिसत्त्वगणपरिवृताः सश्रावकसंघपुरस्कृताश्च तं शुद्धावासभवनं बुद्धविकुर्वणबोधिसत्त्वमाहात्म्यं च दर्शयितुकामा मन्त्रचर्यानिर्हारसमाधिविशेषपटलविसरतथागतशासनमप्रतिहतं चोद्द्योतयितुकामाः प्रत्यस्थात् । तद्यथा—सुबाहुः, सुरत्नः, सुव्रतः, सुनेत्रः, सूरतः, सुधर्मः, सर्वार्थसिद्धिः, सर्वोद्गतः, धर्मोद्गतः, रत्नोद्गतः, रत्नश्रीः, मेरुश्रीः, अचिन्त्यश्रीः, प्रभाकरश्रीः, प्रभश्रीः, ज्योतिश्रीः, सर्वार्थश्रीः, सर्वरत्नपाणिः, चूडामणिः, मेरुध्वजपाणिः, वैरोचनगर्भः, रत्नगर्भः, ज्ञानगर्भः, सचिन्त्यार्थगर्भः, अचिन्त्यार्थगर्भः, धर्मोद्गतगर्भः, ध्वजकेतुः, सुकेतुः, G 8
अनन्तकेतुः, विमलकेतुः, गगनकेतुः, रत्नकेतुः, गर्जितघोषदुन्दुभिस्वरराजः, अनन्तावभासज्ञानराजः, सर्वतमोन्धकारविधमनराजः, सर्वविकिरणबोधिविध्वंसनराजः, सर्वचर्यातिशयज्ञानराजः, लोकेन्द्रराजः, अतिशयेन्द्रराजः, विधमनराजः, निर्धूतराजः, आदित्यराजः, अभावसमुद्गतराजः, स्वभावसमुद्गतराजः, अभावस्वभावसमुद्गतराजः, अविवक्षितराजः, स्वभावपुण्याभः, लोकाभः, अमिताभः, मिताभः, अनन्ताभः, सुनेत्राभः, सुसंभवाभः, अर्थभावाभः, अधृष्यः, अस्पृष्यः, अकर्षः, अकनिष्ठः, अमलः, अनलः, द्युतिपतिः, मतिसुखः, मुखनेमिः, निमिकेतुः, ऋक्षः, दिविदेवदिव्यनाभिस्वनः, लोकशान्तिः, उपारिष्टः, दुन्दुभिसिद्धः, शिवः, आख्यदिव्यः, दुःप्रसहः, दुर्धर्षदुरालभः, दूरंगमः, दुरालभः, दूरस्थितः, ऊर्ध्वद्रव्यतमःखद्योतः, समहद्योतः, अद्योतः, ऋषभः, आभः, सुमनायः, सुमनः, महादेवः, सुनिर्मलः, मलान्तः, दान्तः, समि(?)सुचिह्नः, श्वेतध्वजः, इमि किमि कनिष्ठ निकर्ष जीव सुजात धूमकेतु ध्वजकेतु

श्वेतकेतु सुकेतु वसुकेतु वसव पितामह पितरनिष्क कुरुलोकाख्य समन्ताख्य महाख्य श्रेयसि तेजसि ज्योतिकिरण समन्तकर लोकंकर दिवंकर दीपंकर भूतान्तकर सर्वार्थंकर सिद्धंकर द्योतिंकर अवभासंकर दुन्दुभिस्वर रुतस्वर सुस्वर अनन्तस्वर केतुस्वर भूतमुनि कनकमुनि क्रकुच्छन्दः काश्यप शिखि विश्वभुक् विपश्चि शाक्यमुनिश्चेति ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्बुद्धैर्भगवद्भिस्तं शुद्धावासभवनमवभास्य पद्मासनेषु च स्थित्वा भूदेवं बोधिसत्त्वगणाश्चाजहार एवंरूपाः । तद्यथा—रत्नपाणिः, वज्रपाणिः, सुपाणिः, अनन्तपाणिः, क्षितिपाणिः, आलोकपाणिः, सुनिर्मलः, सुकूपः, प्रभूतकूटः, मणिकूटः, रत्नकूटः, रत्नहस्तिः, समन्तहस्तिः, गन्धहस्तिः, सुगतिः, विमलगतिः, लोकगतिः, चारुगतिः, अनन्तगतिः, अनन्तकीर्तिः, विमलकीर्तिः, गतिकीर्तिः, अमलकीर्तिः, कीर्तिकीर्तिः, नाथः, अनाथः, नाथभूतः, लोकनाथः, समन्तनाथः, आत्रेयः, अनन्तत्रेयः, समन्तत्रेयः, मैत्रेयः, सुनेत्रेयः, नमन्तत्रेयः, त्वद्धत्रेयः, सरूलात्रेयः, त्रिरन्तात्रेयः, त्रिशरणात्रेयः, त्रियानात्रेयः, विस्फूर्जः, सुमनोद्भवर्णवां, धर्मेश्वरः, अभावेश्वरः, संमतेश्वरः, लोकेश्वरः, अवलोकितेश्वरः, सुलोकितेश्वरः, विलोकितेश्वरः, G 9 लोकमहः, सुमयः, गर्जितेश्वरः, दुन्दुभिस्वरः, विततेश्वरः, विध्वस्तेश्वरः, सुवक्षाः, सुमूर्तिः, सुमहद्यशोवतः, आदित्यप्रभावः, प्रभविष्णुः, सोमेश्वरः, सोमः, सौम्यः, अनन्तश्रीः, लोकश्रीः, गगनः, गगनाढ्यः, गगनगञ्जः, क्षितेश्वरः, महेश्वरः, क्षितिक्षितिगर्भः, नीवरणः, सर्वावरणः, सर्वावरणविष्कम्भि, सर्वनीवरणविष्कम्भि, समन्तनिर्मथनः, समन्तभद्रः, भद्रपाणिः, सुधनः, सुसंहतः, रसुपुष्य, सुनभ, आकाश, आकाशगर्भः, सर्वार्थगर्भः, सर्वोद्भवः, अनिवर्ती, अनिवर्तितः, अपायजहः, अविवर्तितः, अवैवर्तिकसर्वधर्मोपगश्चेति । एतैश्चान्यैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः सार्धं भगवान् शाक्यमुनिः शुद्धावासभवने विहरति स्म ॥

अन्यैरपि बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः स्त्रीरूपधारिभिः अनन्तचर्यार्थलोकनिर्हारसकलसत्त्वाशयअनिवर्तनमार्गप्रतिष्ठापनतया अचिन्त्याविद्यापदमन्त्रधारणीओषधवेषरूपधारिभिर्नानाविधपक्षिगणयक्षराक्षसमणिमन्त्ररत्नराजसत्त्व-असत्त्वसंख्यातसमनुप्रवेशसत्त्वचर्यानुवर्तिभिर्यथाशयसत्त्वविनयतथानुकारिभिः तत्प्रतिविशिष्टरूपानुवर्तिभिर्विद्याराजोपदेशयथावबोधधर्मनिर्यातितथागताब्जकुलिशसर्वलौकिकलोकोत्तरसमनुप्रवेशसमयानतिक्रमणीयवचनपथप्रतिष्ठापनतृरत्नवंशानुपच्छेदकर्तृभिः । तद्यथा—उष्णीष अत्यद्भुत अत्युन्नत सितातपत्र अनन्तपत्र शतपत्र जयोष्णीष लोकोत्तर विजयोष्णीष अभ्युद्गतोष्णीष कमलरश्मि कनकरश्मि सितरश्मि व्यूढोष्णीष कनकराशि सितराशि तेजोराशि मणिराशि समनन्तराशि विख्यातराशि भूतराशि सत्यराशि अभावस्वभावराशि अवितथराशिः । एतैश्चान्यैश्चोष्णीषराजैरनन्तधर्मधातुप्रविष्टैर्यथाशयसत्त्वाभिप्रायपारिपूरकैः सर्वजिनहृदयसमन्वागतैर्न शक्यं कल्पकोटीनियुतशतसहस्रैरपि उष्णीषराज्ञां गणनापर्यन्तं वक्तुम्, अचिन्त्यबलपराक्रमाणां माहात्म्यं वा कथयितुम् । समासनिर्देशतः संक्षेपतश्च कथ्यते ॥

विद्याराज्ञीनां समागमं वक्ष्यते । तद्यथा—ऊर्णा भ्रूलोचना पक्ष्माश्रवणा ग्रीवा अभया करुणा मैत्री कृपा प्रज्ञा रश्मि चेतना प्रभा निर्मला धीवरा ॥

तथा अन्याभिश्च विद्याराज्ञीभिरनन्तापर्यन्ततथागतमूर्तनिसृष्टाभिः। तद्यथा-तथागतपात्र धर्मचक्र तथागतशयन तथागतावभास तथागतवचन तथागतोष्ठ तथागतोरु तथागतामल तथा- G 10
गतध्वज तथागतकेतु तथागतचिह्नश्चेति । एतैश्चान्यैश्च तथागतमन्त्रभाषितैर्विद्याराज्ञराज्ञीकिंकर-चेटचेटीदूतदूतीयक्षयक्षीसत्त्वासत्त्वैश्च प्रतिविशिष्टव्यूहालंकारधर्ममेघान्निःसृतैः समाधिविशेष-निष्यन्दितैरपरिमितकोटीशतसहस्रपरिवारितैः सर्वविद्यागणउपर्युपरिप्रवर्तमानैर्विद्याराजैः । तेऽपि तत्र शुद्धावासभवनमधिष्ठितवानभूवन्, अब्जकुले च विद्याराज्ञः । तद्यथा—भगवान् द्वादशभुजः षड्भुजः चतुर्भुजः हालाहलः अमोघपाशः श्वेतहयग्रीवः सुग्रीवः अनन्तग्रीवः नीलग्रीवः सुग्रीवः सुकर्णः श्वेतकर्णः नीलकण्ठः लोककण्ठः विलोकितः अवलोकितः ईश्वरसहस्ररश्मिः मनः मनसः विख्यातमनसः कमलः कमलपाणिः मनोरथः आश्वासकः प्रहसितः सुकेशकेशान्तः नक्षत्रः नक्षत्रराजः सौम्यसुगतः दमकश्चेति ॥

एतैश्चान्यैश्च विद्याराजैः अब्जोष्णीषप्रमुखैरनन्तनिर्हारधर्ममेघनिष्यन्दसमाधिभूतैरनेक-शतसहस्रकोटीनियुतविंदीपपरिवारितैरनेकैश्च विद्याराज्ञीभिर्लोकेश्वरमूर्तिसमाधिविसृतैः । तद्यथा—तारा सुतारा नटी भृकुटी अनन्तटी लोकटी भूमिप्रापटी विमलटी सिता श्वेता महा-श्वेता पाण्डरवासिनी लोकवासिनी विमलवासिनी अब्जवासिनी दशबलवासिनी यशोवती भोगवती महाभोगवती उल्लका अलोका अमलान्तकरी समन्तान्तकरी दुःखान्तकरी भूतान्त-करी श्रिया महाश्रिया भूपश्रिया अनन्तश्रिया लोकश्रिया विख्यातश्रिया लोकमाता समन्तमाता बुद्धमाता भगिनी भागीरथी सुरथी रथवती नागदन्ता दमनी भूतवती अमिता आवली भोगवली आकर्षणी अद्भुता रश्मी सुरसा सुरवती प्रमोदा द्युतिवती तटी समन्ततटी ज्योत्स्ना सोमा सोमावती मायूरी महामायूरी धनवती धनंददा सुरवती लोकवती अर्चिष्मती बृहन्नला बृहन्ता सुघोषा सुनन्दा वसुदा लक्ष्मी लक्ष्मीवती रोगान्तिका सर्वव्याधिचिकित्सनी असमादेवी ख्यातिकरी वशकरी क्षिप्रकरी क्षेमदा मङ्गला मङ्गलावहा चन्द्रा सुचन्द्रा चन्द्रावती चेति । एतैश्चान्यैश्च विद्याराज्ञीभिः पर्णासवरिजाङ्गुलिमानसीप्रमुखैरनन्तनिर्हार- G 11
धर्मधातुगगनस्वभावैः सत्त्वचर्याविकुर्विताधिष्ठानसंजनितमानसैः दूतदूती चेटचेटी किंकर-किंकरी यक्षयक्षी राक्षसराक्षसी पिशाचपिशाची अब्जकुलसमयानुप्रवेशमन्त्रविचारिभिः, येन तं शुद्धावासं देवभवनं शुद्धसत्त्वनिश्वस्तं तेन प्रत्यष्ठात् । प्रतिष्ठिताश्च भगवतः शाक्य-मुनेः पूजाकर्मणे उद्युक्तमानसा अभूवं स्थितवन्तः ॥

तस्मिन् भगवतः शाक्यमुनेः समीपं वज्रपाणिः बोधिसत्त्वः स्वकं विद्यागण-मामन्त्रयते स्म—संनिपातेह भवन्तोऽस्मद्विद्यागणपरिवृताः, सक्रोधराजः विद्याराज-राज्ञीभिर्महादूतिभिः। स्मरणमात्रेणैव सर्वा विद्यागणाः संनिपतिताः । तद्यथा—विद्योत्तमः सुविद्य सुविद्ध सुबाहु सुषेण सुरान्तक सुरद सुपूर्ण वज्रसेन वज्रकर

वज्रबाहु वज्रहस्त वज्रध्वज वज्रपताक वज्रशिखर वज्रशिख वज्रदंष्ट्र शुद्धवज्र वज्ररोम वज्रसंहत वज्रानन वज्रकवच वज्रग्रीव वज्रनाभि वज्रान्त वज्रपञ्जर वज्रप्राकार वज्रासु वज्रधनुः वज्रशरः वज्रनाराच वज्राङ्क वज्रस्फोट वज्रपाताल वज्रभैरव······नेत्र वज्रक्रोध जलान्तश्वर भूतान्तश्वर गन्धनान्तश्वर महाक्रोधान्तश्वर महेश्वरान्तश्वर सर्वविद्यान्तश्वर घोरः सुघोरः क्षेप उपक्षेपः पदनिक्षेपः विनायकान्तक्षेपः रात्रिन्यासक्षेपः उत्कृष्टक्षेप बल महाबल सुम्भ भ्रमर भृङ्गि रिटि क्रोध महाक्रोध सर्वक्रोध अजर अजगर ज्वर शोष नागान्तदण्ड नीलदण्ड अङ्गद रक्ताङ्ग वज्रदण्ड मेध्य महामेध्य काल कालकूट श्वित्ररोम सर्वभूतसंक्षय शूल महाशूल अर्ति महार्ति यम वैवस्वत युगान्तकर कृष्णपक्ष घोर घोररूपी पट्टिस तोमर गद प्रमथन ग्रसन संसार अरह युगान्तार्क प्राणहर शक्रघ्न द्वेष आमर्ष कुण्डलि सुकुण्डलि अमृतकुण्डलि अनन्तकुण्डलि रत्नकुण्डलि बाहु महाबाहु महारोग दुष्टसर्प वसर्प कुष्ठ उपद्रव भक्षक अतृप्त उच्छुष्मश्चेति। एतैश्चान्यैश्च विद्याराज्ञै- र्महाक्रोधैश्च समस्ताशेषसत्त्वदमकउच्चाटनोध्वंसनस्फोटनमारणविनाशयितारः, भक्तानां दातारः, शान्तिकपौष्टिकआभिचारिककर्मेषु प्रयोक्तारः, अनेकैश्च विद्याराजकोटीनयुत-
G 12 शतसहस्रपरिवारिताः शाक्यमुनिं भगवन्तं मञ्जुश्रियं कुमारभूतं निध्यायन्तं स्वकं विद्याराजं कुलिशपाणिं नमस्यतामाज्ञामुदीक्षमाणाश्च कुलस्थानं स्थिताः। स्वकस्वकेषु चासनेषु च निषण्णा अभूवन्॥

भगवतो वज्रपाणेर्या अपि ता महादूत्यो विद्याराज्ञीनियुतसहस्रपरिवाराश्च, ता अपि स्वकं धर्मधातुं गगनस्वभावं निःप्रपञ्चमवलम्ब्य तस्मिन् स्थाने संनिपतिताः। तद्यथा मेखला सुमेखला सिङ्कला वज्रार्णा वज्रजिह्वा वज्रभ्रू वज्रलोचना वज्रांसा वज्रभृकुटी वज्रश्रवणा वज्रलेखा वज्रसूची वज्रमुस्ती वज्राङ्कुशी वज्रशाटी वज्रासनी वज्रश्रिङ्खला सालवती साला विरटी कामिनी वज्रकामिनी कामवज्रिणी पश्यिका पश्यिनी महापश्यिनी शिखरवासिनी ग्रहिला द्वारवासिनी कामवज्रिणी मनोजवा अतिजवा शीघ्रजवा सुलोचना सुरसवती भ्रमरी भ्रामरी यात्रा सिद्धा अनिला पूरा केशिनी सुकेशा हिण्डिनी तर्जिनी दूती सुदूती मामकी वामनी रूपिणी रूपवती जया विजया अजिता अपराजिता श्रेयसी हासिनी हासवज्रिणी लोकवती यशवती कुलिशवती अदान्ता त्रैलोक्यवशंकरी दण्डा महादण्डा प्रियवादिनी सौभाग्यवती अर्थवती महानर्था तित्तिरी धवलतित्तिरी धवला सुनिर्मिता सुनिर्मला घण्टा- खड्गपट्टिसा सूची जयती अवरा निर्मिता नायिका गुह्यकी विजृम्भिका मुसला सर्वभूतवशं- करी चेति। एताश्चान्याश्च महादूत्यः अनेकदूतीगणपरिवारिता अत्रैव महापर्षन्मण्डले संनि- पतेयुः॥

अनेकाश्च धारण्यः समाधिनिष्यन्दपरिभावितमानसोद्भवा दुष्टसत्त्वनिग्रहदण्ड- मायादयिताः। तद्यथा—वज्रानलप्रमोहनी धारणी मेरुशिखरकूटागारधारिणी रत्नशिखरकूटा- गारधरणिंधरा सुकूटा बहुकूटा पुष्पकूटा दण्डधारिणी निग्रहधारिणी आकर्षणधारिणी

केयूरा केयूरवती ध्वजाग्रकेयूरा रत्नाग्रकेयूरा लोकाग्रकेयूरा पताग्रकेयूरा विपरिवर्ता लोकावर्ता सहस्रावर्ता विवस्वावर्ता सर्वभूतावर्ता केतुवती रत्नवती मणिरत्नचूडा बोद्ध्यङ्गा बलवती अनन्तकेतु समन्तकेतु रत्नकेतु विख्यातकेतु सर्वभूतकेतु अजिरवती अस्वरा सुनिर्मला G 13
षण्मुखा विमला लोकाख्या चेति । एताश्चान्याश्च अनेकधारणीशतसहस्रकोटीपरिवारिताः तत्रैव महापर्षन्मण्डले संनिपतेयुः । अनन्तबुद्धाधिष्ठानमहाबोधिसत्त्वसमाध्यधिष्ठानं च ॥

अथ बुद्धक्षेत्रविवर्जितप्रत्येकबुद्धा भगवन्तो खड्गविषाणकल्पा वनचारिणश्च सर्वसत्त्वानामर्थं कुर्वन्तस्तूष्णींभावानधिवासनधर्मनेत्रीं संप्रकाशयन्तः संसारानुवर्तिनः सदाखिन्नमानसा महाकरुणावर्जितसंतानाः केवलचित्तवासनापरिभावितबोधिचित्तपूर्वोद्भावितपरिभावितचेतनाः एकभूमि द्विभूमि त्रिभूमिर्यावदष्टमी बोधिसत्त्वभूमि निर्वर्तितमानसाः खिन्नमानसा संसारभयभीरवः, तेऽपि तं महापर्षन्मण्डलं संनिपतेयुः । तद्यथा गन्धमादनः सीमन्तायतन समन्तप्रभ चन्दन काल उपकाल नेमि उपनेमि रिष्ट उपरिष्ट उपारिष्ट पार्श्व सुपार्श्व दुन्दुभि उपदुन्दुभि लोकाख्य लोकप्रभ जयन्त अरेणु रेणु उपरेणु अंश उपांश चिह्न सुचिह्न दिनकर सुकर प्रभावन्त प्रभाकर लोककर विश्रुत सुश्रुत सुकान्त सुधान्त सुदान्त अदन्तान्त भवान्त सितकेतु जिह्मकेतु केतु उपकेतु तथ्य पद्महर पद्मसंभव स्वयंभु अद्भुत मनोज मनस महेन्दुकूटाख्य कुम्भसकलाख्य मकर उपकर शान्त शान्तमानस वर्म उपवर्म वैरोचन कुसुम सुलील श्रेयस वद्यहरान्तक दुःप्रसह कनक विमलकेतु सोम सुसोम सुषेण सुचीर्ण शुक्रक्रतु इष्ट उपेन्द्र वसुश्चेति । एतैश्चान्यैश्च प्रत्येकबुद्धकोटीनियुतशतसहस्राचिन्त्यातुल्याप्रणिहितधर्मधातुगगनस्वभावनिःप्रपञ्चसंस्कृतमध्ययानप्रविष्टनिर्दिष्टप्रतिष्ठितैः सार्धं भगवान् शाक्यमुनिः प्रतिष्ठाननयप्रतिघापगतैर्विहरति स्म ॥

महाश्रावकसंघेन च सार्धमनेकश्रावकशतसहस्रकोटीपरिवारैः । तद्यथा—महाकाश्यप नदीकाश्यप गयाकाश्यप दुरविक्षोकाश्यप भरद्वाज पिण्डोल मौद्गल्यायन महामौद्गल्यायन शारिपुत्र महाशारिपुत्र सुभूति महासुभूति गवांपति कात्यायन महाकात्यायन उपालि भद्रिक कप्फिण नन्द आनन्द सुन्दरनन्द लोकभूत अनन्तभूत वर्णक उपवर्णक नन्दिक उपनन्दिक अनिरुद्ध पूर्ण सुपूर्ण उपपूर्ण तिष्य पुनर्वसु रूह रौद्र रौरव कुरुपञ्चिक उपपञ्चिक G 14
काल सुकाल देवल राहुल हरित उपहरित ध्यायिनन्दि ध्यायिक उपायि उपयायिक श्रेयसक द्रव्यो मल्लपुत्रः उपद्रव्यः उपेतः खण्डः तिष्य महातिष्य समन्ततिष्य आह्वयन यशोद यसिक धनिक धनवर्ण उपधनिक पिलिन्दवच्छ पिप्पल किंफल उपफल अनन्तफल सफल कुमार कुमारकाश्यप महोद षोडशवर्तिकानन्द उपनन्द जिह्व जिह्म जितपाश महेष्वास वात्सीक कुरुकुल्ल उपकुरुकुल्ल कोटीकर्ण श्रमण श्रोणापरान्तक गाङ्गेयक गिरिकर्णिक कोटिकर्णिक वार्षिक जेत सुजेत श्रीगुप्त लोकगुप्त गुरुगुप्त गुरुक द्योतीरस सनक डिम्भक उपडिम्भिक बिसकोटिक अनाथद उपवर्तन विवर्तन उन्मंत्तक द्योत समन्त भद्रलि सुप्रबुद्ध स्वागत

उपागत लोहागत दुःखान्त भद्रकल्पिक महाभद्रिक अर्थचर पितामहगतिः पुष्पमाल पुष्पकाशिख उपकाशिक महौषध महोजस्क महोज अनुराध महौजस्क महोज अनुराधराधक रासिक सुब्रह्म सुशोभन सुलोक समागम मितश्चेति। एतैश्चान्यैश्च अनन्तधर्मधातुविमुक्ति रसरसज्ञैः त्रियानसमवसरणकरणीयसयानसमनुप्राप्तैः संसारपलायिभिः त्रिमोक्षध्यानध्यायिभिः चतुर्ब्राह्मविहारईर्यापथसंपन्नैः सुसमाहितैः सूपसंपन्नैः अनंयप्रविष्टनिर्वाणधातुसमवसरण-समतानिःप्रपञ्चेभिः सार्धं तन्महापर्षन्मण्डलं तं च भगवन्तं शाक्यमुनिं त्रिरन्तस्थानवस्थित। दशभूम्यानन्तरं तेऽपि तत्र निषण्णमभूवम्॥

अनेकैश्च महाश्राविकासमवसरणनिर्वाणधातुसमनुप्रविष्टाभिः असंस्कृतयावमान-यानावलम्बिभिः शुद्धाभिर्वीतरागाभिः समन्तद्योतिसमनुप्राप्ताभिः दक्षिणीयक्षेत्रगुणाधान-विशोधिभिः सत्त्वसारमण्डभूताभिः लोकाग्राधिपतीभिः पूज्यदेवमनुष्यपुण्यक्षेत्रद्विपदचतुष्पद-बहुपदअपदसर्वसत्त्वाग्राधिपतीभिः। तद्यथा–यशोधरा यशोदा महाप्रजापती प्रजापती सुजाता नन्दा स्थूलनन्दा सुनन्दा ध्यायिनी सुन्दरी अनन्ता विशाखा मनोरथा जयवती वीरा उपवीरा देवता सुदेवता आश्रिता श्रिया प्रवरा प्रमुदिता
G 15 प्रियंवदा रोहिणी धृतराष्ट्री धृता स्वामिका संपदा वपुषा शुद्धा प्रेगा जटा उपजटा समन्तजटा भवान्तिका भावती मनोजवा केशवा विष्णुला विष्णुवती सुमना बहुमता श्रेयसी दुःखान्ता कर्मदा क·······························वसुदा धर्मदा नर्मदा ताम्रा सुताम्रा कीर्तिवती मनोवती प्रहसिता त्रिभवान्ता त्रिमलान्ता दुःखशायिका निर्वीणा त्रिपर्णा पद्मवर्णा पद्मावती पद्मप्रभा पद्मा पद्मावती त्रिपर्णी सप्तवर्णी उत्पलवर्णा चेति। एताश्चान्याश्च महास्थविष्टा महाश्राविका भगवतः पादमूलं वन्दनाय उपसंक्रान्ताः। एता एव महापर्षन्मण्डलं महाबोधिसत्त्वविकुर्वणं प्रभावयितुकामाः संनिपतिताः संनिषण्णा अभूवन् धर्मश्रवणाय। मन्त्रचर्यार्थनिर्हारमुद्द्योतयितुकामा अभूवन्॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिस्तं सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य शुद्धाध्याशयः अभाव-स्वभावगगनस्वभावत्रिपर्वसमतिक्रमणं सत्त्वधातुं विदित्वा मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–समन्वाहर त्वं मञ्जुश्रीः सत्त्वार्थचर्यं प्रति यथाशयाभिनन्देनेप्सितकर्मफलश्रद्धासमन्वा-गममन्त्रचर्यार्थसंप्रापणं नाम धर्मपदकर्मपदं शान्तिपदं मोक्षपदम्। कल्पनिर्हारं निर्विकल्प-समताप्रापणदं तथागतबलसमन्तबलसबलं मारबलाभिवर्धनं नाम बोधिसत्त्वसमाधिं भावयथ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः समनन्तरभावितं भगवता समापद्यते स्म। समनन्तर-समापन्नस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य यथेयं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरनेकलोकधातु शतसहस्रपरमाणुरजःसमां त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं संप्रकम्प्य महतावभासेन्स्व-भास्य च स्वकं शुद्धिबलाधानं दर्शयते स्म। स्वानि च मन्त्रपदानि भाषते स्म–

नमः समन्तबुद्धानामभावस्वभावसमुद्गतानाम्। नमः प्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणाम्। नमो बोधिसत्त्वानां दशभूमिप्रतिष्ठितेश्वराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम्। तद्यथा–ॐ

ख ख खाहि खाहि दुष्टसत्त्वदमक । असिमुसलपरशुपाशहस्त चतुर्भुज चतुर्मुख षट्चरण गच्छ गच्छ महाविघ्नघातक विकृतानन सर्वभूतभयंकर अट्टहासनादिने व्याघ्रचर्मनिवसन । G 16 कुरु कुरु सर्वकर्मां । छिन्द छिन्द सर्वमन्त्रान् । भिन्द भिन्द परमुद्राम् । आकर्षय आकर्षय सर्वमुद्राम् । निर्मथ निर्मथ सर्वदुष्टान् । प्रवेशय प्रवेशय• मण्डलमध्ये । वैवस्वतान्तकर कुरु कुरु मम कार्यम् । दह दह पच पच मा विलम्ब मा विलम्ब समयमनुस्मर । हूँ हूँ फट् फट् । स्फोटय स्फोटय सर्वाशापारिपूरक हे हे भगवन् किं चिरायसि ? मम सर्वार्थान् साधय । स्वाहा ॥

एष भगवतो मञ्जुश्रियस्य महाक्रोधराजा यमान्तको नाम यमराजानमपि घातयति, आनयति, किं पुनरन्यसत्त्वम् । समनन्तरभाषिते महाक्रोधराजे भगवतः समीपं सर्वसत्त्वा उपसंक्रमन्ते आर्ता भीतास्त्रस्ता उद्विग्नमनसो भिन्नहृदयाः । नान्यच्छरणम् । नान्यत् त्राणम् । नान्यत् परायणम् । वर्जयित्वा तं बुद्धं भगवन्तं मञ्जुश्रियं च कुमारभूतम् ॥

अथ ये केचित्पृथिवीचरा जलेचराः खगचराः स्थावरजङ्गमाश्च जरायुजाण्डजसंस्वेदजउपपादुकसत्त्वसंख्याताः, तेऽपि तत्क्षणतन्मुहूर्तेनानन्तापर्यन्तेषु लोकधातुषु स्थिता इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यग्दिक्षु विदिक्षु निलीनास्तत्क्षणं महाक्रोधराजेन स्वयमपोह्य नीताः । अयं च क्रोधराजा अवीतरागस्य पुरतो न जप्तव्यः । यत्कारणं सोऽपि म्रियते शुष्यते वा । समयमधिष्ठाय बुद्धप्रतिमाया अग्रतः·························वा मञ्जुश्रियो वा कुमारभूतस्याग्रतो जप्तव्यः । अन्यकर्मनिमित्तं वा यत्र वा तत्र वा न पठितव्यः । कारणं महोत्पादमहोत्सन्न आत्मोपघाताय भवतीति । परमकारुणिका हि बुद्धा भगवन्तो बोधिसत्त्वाश्च महासत्त्वाश्च । केवलं तु सर्वज्ञज्ञान···························संप्रतिष्ठापनाशेषसत्त्वधातुनिर्वाणाभिसंप्रापणा अशासितशासनः त्रिमात्रसंयोजनः त्रिरत्नवंशानुपच्छेदमन्त्रचर्यादीपनः महाकरुणाप्रभावनिष्यन्देन चेतसा मारबलाभिभवन महाविघ्ननाशन दुष्टराज्ञां निवारण आत्मबलाभिभवन परबलनिवारण स्तोभन पातन नाशन शासन उच्छोषण तोषण स्वमन्त्रचर्याप्रकाशन आयुरारोग्यैश्वर्याभिवर्धनतः क्षिप्रकार्यान् साधयतः, महामैत्र्या महाकरुणामहोपेक्षामहामुदितासहगतः । तन्निमित्तहेतुं सर्वतर्कवितर्कापगतेन चेतसा भाषते स्म ।

अथ ते नागा महानागा यक्षा महायक्षा राक्षसा महाराक्षसाः पिशाचा महा- G 17 पिशाचाः पूतना महापूतनाः कटपूतना महाकटपूतना मारुता महामारुताः कूष्माण्डा महाकूष्माण्डा व्याला महाव्याला वेताला महावेताला कम्बोजा महाकम्बोजा भगिन्यो महाभगिन्यो डाकिन्यो महाडाकिन्यः चूषका महाचूषका उत्सारका महोत्सारका डिम्फिका महाडिम्फिकाः किंपका महाकिंपका रोगा महारोगाः अपस्मारा महापस्माराः ग्रहा महाग्रहा आकाशमातरः महाकाशमातरः रूपिण्यो महारूपिण्यो क्रन्दना महाक्रन्दनाः छाया महाच्छाया प्रेषका महाप्रेषकाः किंकरा महाकिंकरा यक्षिण्यो महायक्षिण्यः पिशाच्यो महापिशाच्यो ज्वरा महाज्वराः चातुर्थका महाचातुर्थकाः नित्यज्वरा विषमज्वरा साततिका

मौहूर्तिका वातिकाः पैत्तिकाः श्लेष्मिकाः सांनिपातिका विद्या महाविद्या सिद्धा महासिद्धा योगिनो महायोगिनः ऋषयो महाऋषयः किंकरा महाकिंकरा महोरगा महामहोरगा गन्धर्वा महागन्धर्वा देवा महादेवा मनुष्या महामनुष्या जनपद्यो महाजनपद्यः सागरा महासागराः नद्यो महानद्यः पर्वता महापर्वताः निधयो महानिधयः पृथिव्यो महापृथिव्यः वृक्षा महावृक्षाः पक्षिण्यो महापक्षिण्यो राज्ञा महाराज्ञा शक्रा महेन्द्रा वासवा क्रतवो भूता वियति ईशानः यमः ब्रह्मा महाब्रह्मा वैवस्वत धनद धृतराष्ट्रः विरूपाक्षः कुबेरः पूर्णभद्रः पञ्चिकः जम्भल सम्भल कूष्मल हारीति हरिकेश हरिहारीति पिङ्गला प्रियंकर अर्थंकर जालेन्द्र लोकेन्द्र उपेन्द्र गुह्यक महागुह्यक चल चपल जलचर सातत गिरि हेमगिरि महागिरि कूटाक्ष त्रियसिरश्चेति । एतैश्चान्यैश्च महायक्षसेनापतिभिः अनेकयक्षकोटीनियुतशतसहस्रपरिवारैस्तत्रैव महापर्षन्मण्डले शुद्धावासभवने बोधिसत्त्वाधिष्ठानेन ऋद्धिबलाधानेन च संनिपतिता अभूवन्, संनिषण्णाश्च धर्मश्रवणाय ॥

येऽपि ते महाराक्षसराजानः अनेकराक्षसकोटीनियुतशतसहस्रपरिवाराः आनीता महाक्रोधराजेन, तद्यथा—रावण प्रविण विद्रावण शङ्कुकर्ण कुम्भ कुम्भकर्ण समन्तकर्ण यम
G 18 बिभीषण घोर सुघोर यक्ष यम घण्ट इन्द्रजित् लोकजिः योधनः सुयोधनः शूलः त्रिशूलः त्रिशिरः अनन्तशिरश्चेति, संनिपतिता अभूवन् धर्मश्रवणाय ॥

येऽपि ते महापिशाचा अनेककोटीनियुतशतसहस्रपरिवाराः, तद्यथा—पीलु उपपीलु सुपीलु अनन्तपीलु मनोरथ अमनोरथ सुताय ग्रसन सुधाम घोर घोररूपी चेति संनिपतिता अभूवन् धर्मश्रवणाय ॥

येऽपि ते महानागराजानः, अनेकनागकोटीनियुतशतसहस्रपरिवारा आनीताः क्रोधराजेन बोधिसत्त्वऋद्धिबलाधानेन च, तद्यथा—नन्द उपनन्द कम्बल उपकम्बल वासुकि अनन्त तक्षक पद्म महापद्म शङ्खपाल शङ्ख शङ्खपाल कर्कोटक कुलिक अकुलिक माण- कलशोद कुलिशिक चाम्पेय मणिनाग मानभञ्ज दुकुर उपदुकुर लकुट महालकुट श्वेत श्वेतभद्र नीलनीलाम्बुद क्षीरोद अपलाल सागर उपसागरश्चेति, एतैश्चान्यैश्च महानागराजानैः अनेकशतसहस्रमहानागपरिवारैस्तैस्तन्महापर्षन्मण्डलं संनिपतिताः संनिषण्णा अभूवन् धर्मश्रवणाय ॥

येऽपि ते ऋषयो महाऋषयः, तद्यथा—आत्रेय वरिष्ठः गौतम भगीरथः जह्नु अङ्गिरसः अगस्ति पुलस्तिः व्यास कृष्ण कृष्णगौतम अग्नि अङ्गिरस जामदग्नि आस्तीक मुनिः मुनिवर अश्वरः वैशंपायन पराशरः परशुः योगेश्वरः पिप्पलः पिप्पलाद वाल्मीकः मार्कण्डश्चेति, एतैश्चान्यैर्महाऋषयै अनेकमहाऋषिशतसहस्रपरिवारास्तत्पर्षन्मण्डलमुपजग्मुः । भगवन्तं शाक्यमुनिं वन्दित्वा संनिषण्णा अभूवन् मन्त्रचर्यार्थबोधिसत्त्वपिटकं श्रोतुमनुमोदितुं च ॥

येऽपि ते महोरगराजानः, तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संप्रविष्टा अभूवन् संनिषण्णाः । तद्यथा—भेरुण्ड भूरुण्ड मरुण्ड मारीच दीप प्रदीपाश्चेति ॥

येऽपि ते गरुडराज्ञस्तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संनिपतिता अनेकशतसहस्रपरिवाराः, तद्यथा–सुपर्ण श्वेतपर्ण पन्नग पर्णग सुजातपक्ष अजातपक्षः मनोजव पन्नगनाशन वैनतेय G 19 भरद्वाज शकुन महाशकुन पक्षिराजाश्चेति, तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संनिपतेयुः ॥

येऽपि ते किन्नरराज्ञः अनेककिन्नरशतसहस्रपरिवाराः, तेऽपि तं पर्षन्मण्डलं संनिपतेयुः। तद्यथा–द्रुम उपद्रुम सुद्रुम अनन्तद्रुम लोकद्रुम लेद्रुम वनोरस्क महोरस्क महोजस्क महोज महर्द्धिक विरुत सुस्वर मनोज्ञ चित्तोन्मादकर उन्नत उपेक्षक करुण अरुणश्चेति। एते चान्ये च महाकिन्नरराजानः अनेककिन्नरशतसहस्रपरिवाराः संनिपतिता अभूवन् धर्मश्रवणाय ॥

एवं ब्रह्मा सहांपतिः महाब्रह्मा आभास्वरः प्रभास्वरः शुद्धाभः पुण्याभः अदृह अतपाः अकनिष्ठा सुकनिष्ठा लोकनिष्ठा आकिंचन्या नैवकिंचन्या आकाशानन्त्या नैवाकाशानन्त्या सुदृशा सुदर्शना सुनिर्मिता परनिर्मिता शुद्धावासा तुषिता यामा तृदशा चातुर्महाराजिका सदामत्ता मालाधारा करोटपाणयः वीणातृतीयकाः पर्वतवासिनः कूटवासिनः शिखरवासिनः अलकवासिनः पुरवासिनः विमानवासिनः अन्तरिक्षचराः भूमिवासिनः वृक्षवासिनः गृहवासिनः। एवं दानवेन्द्राः—प्रह्लाद बलि राहु वेमचित्ति सुचित्ति क्षेमचित्ति देवचित्ति राहुबाहुप्रमुखाः अनेकदानवकोटीशतसहस्रपरिवाराः विचित्रगतयो विचित्रार्थाः सुरयोधिनोऽसुराः, तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संनिपतेयुः बुद्धाधिष्ठानेन बोधिसत्त्वविकुर्वणं द्रष्टुं वन्दितुं पर्युपासितुम् ॥

येऽपि ते ग्रहा महाग्रहा लोकार्थकरा अन्तरिक्षचराः, तद्यथा–आदित्य सोम अङ्गारक बुध बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहु कम्प केतु अशनिनिर्घात तारध्वज घोरधूम्र धूमवक्र ऋक्षवृष्टि उपवृष्टि नष्टार्क निर्नष्ट हशान्त(?)माष्टि ऋष्टि तुष्टि लोकान्त क्षय विनिपात आपात तर्क मस्तक युगान्त श्मशान पिशित रौद्र श्वेत अभिज अभिजत मैत्र शङ्कु त्रिशङ्कु ल्लथ रौद्रकः ऋतुनाशन बलवां घोर अरुण विहसित मार्ष्टि स्कन्द सनत् उपसनत् कुमारक्रीडन हसन प्रहसन नर्तपक नर्तक खज विरूपश्चेति, इत्येते महाग्रहाः, तेऽपि G 20 तत्पर्षन्मण्डलमनेकशतसहस्रपरिवृताः बुद्धाधिष्ठानेन तस्मिन् शुद्धावासभवने संनिपतिता अभूवन् संनिपण्णाः ॥

अथ ये नक्षत्राः खगानुचारिणः अनेकनक्षत्रशतसहस्रपरिवारिताः, तद्यथा–अश्विनी भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा मघा उभे फल्गुनी हस्ता चित्रा स्वाति• विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूला उभौ आषाढौ श्रवणा धनिष्ठा शतभिषा उभौ भद्रपदौ रेवती देवती प्रभिजा पुनर्णवा ज्योती अङ्गिरसा नक्षत्रिका उभौ फल्गुफल्गुवती लोकप्रवरा प्रवराणिका श्रेयसी लोकमाया ईरा ऊहा वहा अर्थवती असार्था चेति, इत्येते नक्षत्रराज्ञः तस्मिन् शुद्धावासभवने अनेकनक्षत्रशतसहस्रपरिवारिताः, तास्तस्मिन् महापर्षन्मण्डलसंनिपाते बुद्धाधिष्ठानेन संनिपतिताः संनिषण्णा अभूवन् ॥

षट्त्रिंशद् राशयः तद्यथा–मेष वृषभ मिथुन कर्कटक सिंह कन्य तुल वृश्चिक धनु मकर कुम्भ मीन वानर उपकुम्भ भृङ्गार खड्ग कुञ्जर महिष देव मनुष्य शकुन गन्धर्व लोकसत्त्वजित उग्रतेज ज्योत्स्न छाय पृथिवी तम रज उपरज दुःख सुख मोक्षबोधिप्रत्येक श्रावक नरक विद्याधर महोज महोजस्क तिर्यक्प्रेत असुर पिशित पिशाच यक्षराक्षस सर्वभूमित भूतिक निम्नग ऊर्ध्वग तिर्यग विकसित ध्यानग सुख योगप्रतिष्ठ उत्तम मध्यम अधमश्चेति, इत्येते महाराशयः अनेकराशिशतसहस्रराशिपरिवारिताः येन शुद्धावासभवनं येन च महापर्षत्संनिपातमण्डलं, तेनोपजग्मुः। उपेत्य भगवतश्चरणयोर्निपत्य स्वकस्वकेषु च स्थानेषु संनिषण्णा अभूवन्॥

येऽपि ते महायक्षिण्यः, अनेकयक्षिणीशतसहस्रपरिताः, तद्यथा- सुलोचना सुभ्रू सुकेशा सुस्वरा सुमती वसुमती चित्राक्षी पूरांशा गुह्यका सुगुह्यका मेखला सुमेखला पद्मोच्चा अभया जया विजया रेवतिका केशिनी केशान्ता अनिला मनोहरा मनोवती कुसुमावती कुसुमपुरवासिनी पिङ्गला हारीती वीरमती वीरा सुवीरा सुघोरा घोरवती सुरसुन्दरी सुरसा गुह्योत्तमारी वटवासिनी अशोका अन्धारसुन्दरी आलोकसुन्दरी प्रभावती अतिशयवती
G 21 रूपवती सुरूपा असिता सौम्या काणा मेना नन्दिनी उपनन्दिनी लोकान्तरा चेति, इत्येते महायक्षिण्यो अनेकयक्षिणीशतसहस्रपरिवाराः, तन्महापर्षन्मण्डलं दूरत एव भगवन्तं शाक्यमुनिं नमस्यन्त्यः स्थिता भूवन्॥

येऽपि ते महापिशाच्यः, अनेकपिशाचिनीशतसहस्रपरिवृताः, तेऽपि तं भगवन्तं शाक्यमुनिं नमस्यन्त्यः संनिपतेयुः। तद्यथा–मण्डितिका पांसुपिशाची उल्कापिशाची ज्वालापिशाची भस्मोद्गिरा पिशिताशिनी दुर्धरा भ्रामरी मोहनी तर्जनी रोहिणिका गोवाहिणिका लोकान्तिका भस्मान्तिका पीलुवती बहुलवती बहुलदुर्दान्ता घणा चिह्नितिका धूमान्तिका धूमा सुधूमा चेति, इत्येता महापिशाच्यः अनेकपिशाचीशतसहस्रपरिवारिताः, तेऽपि तन्महापर्षन्संनिपातमण्डलं संप्रविष्टा अभूवन्॥

येऽपि ते मातरा महामातरा लोकमनुचरन्ति, सत्त्वविहेठिका बलिमाल्योपहारिण्यश्च, तद्यथा–ब्रह्माणी माहेश्वरी वैष्णवी कौमारी चामुण्डा वाराही ऐन्द्री याम्या आग्नेया वैवस्वती लोकान्तकरी वारुणी ऐशानी वायव्या परप्राणहरा सुखमण्डितिका शकुनी महाशकुनी पूतना कटपूतना स्कन्दा चेति, इत्येते महामातरा अनेकमातरशतसहस्रपरिवाराः तेऽपि तं महापर्षन्मण्डलं नमो बुद्धायेति वाचमुदीरयन्त्यः स्थिता अभूवन्॥

एवमनेकशतसहस्रमनुष्या मनुष्यसत्त्वासत्त्व यावदवीचिर्महानरकम् यावच्च भवाग्रं अत्रान्तरे सर्वगगनतलं स्फुटमभूत्। सत्त्वनिकाये न च कस्यचित् प्राणिनो विरोधोऽभूत्। बुद्धाधिष्ठानेन च बोधिसत्त्वसंघालंकारेण च सर्व एव सत्त्वा मूर्धापस्थितं बुद्धं भगवन्तं मञ्जुश्रियं कुमारभूतं संपश्यन्ते स्म॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः सर्वावन्तं लोकधातुं बुद्धचक्षुषा समवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—भाष भाष त्वं शुद्धसत्त्व मन्त्रचर्यार्थविनिश्चयसमाधिपटलविसरं बोधिसत्त्वपिटकम्, यस्येदानीं कालं मन्यसे ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः भगवता शाक्यमुनिना कृताभ्यनुज्ञानः गगनस्वभाव- G 22 व्यूहालंकारं वज्रसंहतकठिनसंतानव्यूहालंकारं नाम समाधिं समापद्यते । समनन्तरसमापन्नस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य तं शुद्धावासभवनं अनेकयोजनशतसहस्रविस्तीर्णं वज्रमयमधितिष्ठते स्म । यत्र ते अनेकयक्षराक्षसगन्धर्वमरुतपिशाचाः संक्षेपतः सर्वसत्त्वधातुबोधिसत्त्वाधिष्ठानेन तस्मिन् विमाने वज्रमणिरत्नप्रख्ये संप्रतिष्ठिताः संनिषण्णा अभूवन् अन्योन्यमविहेठकाः । अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतस्तन्महापर्षत्संनिपातं विदित्वा यमान्तकं क्रोधराजमामन्त्रयते स्म—भो भो महाक्रोधराज, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वनिर्घात एवं महापर्षत्संनिपातमण्डलं सर्वसत्त्वानां च रक्ष रक्ष वशमानय । दुष्टान् दम । सौम्यान् बोधय । अप्रसन्नान् प्रसादय । यावदहं स्वमन्त्रचर्यानुवर्तनं बोधिसत्त्वपिटकं वैपुल्यमन्त्रचर्यामण्डलविधानं भाषिष्ये, तावदेतान् बहिर्गत्वा रक्षय ॥

एवमुक्तस्तु महाक्रोधराजा आज्ञां प्रतीक्ष्य महाविकृतरूपी निर्ययुः सर्वसत्त्वान् रक्षणाय शासनाय समन्तात् पर्षन्मण्डलं यमान्तकः क्रोधराजा अनेकक्रोधशतसहस्रपरिवारितो समन्तात्तं चतुर्दिक्षु इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यग् घोरं च नादं प्रमुञ्चमानः स्थितोऽभूत् ॥

अथ ते सर्वाः सौम्याः सुमनस्काः संवृत्ताः आज्ञां नोल्लङ्घयन्ति । एवं च शब्दं शृण्वन्ति—यो ह्येतं समयमतिक्रमेत्, स तवास्य स्फुटो मूर्ध्ना अजकस्येव मञ्जरीति । बोधिसत्त्वाधिष्ठानं च तत् ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः स्वमन्त्रचर्यार्थधर्मपदं भाषते स्म । एकेन धर्मेण समन्वागतस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः । कतमेनैकेन ? यदुत सर्वधर्माणां निःप्रपञ्चाकारतः समनुपश्यता । द्वाभ्यां धर्माभ्यां प्रतिष्ठितस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः । कतमाभ्यां द्वाभ्याम् ? बोधिचित्तापरित्यागिता सर्वसत्त्वसमता च । त्रयाभ्यां धर्माभ्यां स्वमन्त्रचर्यार्थनिर्देशाः पारिपूरिं गच्छन्ति । कतमाभ्यां त्रयाभ्याम् ? सर्वसत्त्वापरित्यागिता बोधिसत्त्वशीलसंवरारक्षणतया स्वमन्त्रापरित्यागिता च । चतुर्भिः धर्मैः समन्वागतस्य प्रथमचित्तोत्पादिकस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः । कतमैश्चतुर्भिः ? स्वमन्त्रापरित्यागिता परमन्त्रानुपच्छेदनता सर्वसत्त्वमैत्र्योपसंहरणता महाकरुणाभावितचेतना च । इमैश्चतुर्भिः धर्मैः समन्वागतस्य प्रथमचित्तोत्पादकस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः । पञ्च धर्मा G 23 बोधिसत्त्वस्य पिटकसमवशरणता मन्त्रचर्याभिनिर्हारं बोधिपूरिं गच्छेयुः । कतमे पञ्च ? विविक्तदेशसेवनता, परसत्त्वाद्वेषणता, लौकिकमन्त्रानिरीक्षणता, शीलश्रुतचारित्रस्थापनता च । इमे पञ्च धर्माः मन्त्रचर्यार्थपारिपूरिं गच्छेयुः । षट् धर्मा मन्त्रचर्यार्थपारिपूरिं गच्छेयुः । कतमे षट् ? त्रिरत्नप्रसादानुपच्छेदनता, बोधिसत्त्वप्रसादानुपच्छेदनता, लौकिकलोकोत्तर-

मन्त्रानिन्दनता, निःप्रपञ्चधर्मधातुदम्भनता, गम्भीरपदार्थमहायानसूत्रान्ताप्रतिक्षेपणता, अखिन्नमानसता, मन्त्रचर्यापर्येष्टिः, कुशलपक्षे अपरिहानता । इमे षट् धर्मा विद्याचर्यामन्त्रसिद्धिं समवशरणतां गच्छन्ति । सप्त धर्मा विद्यासाधनकालोपनि।मन्त्रचर्यानुप्रवेशनतां गच्छन्ति । कतमे सप्त? गम्भीरनयः प्रज्ञापारमिताभावना पठनदेशनस्वाध्यायनलिखनबोधिसत्त्वचर्याविमुक्तिः कालदेशनियमजपहोममौनतपअविलम्बितगतिर्मतिस्मृतिप्रज्ञाधृतिअधिवासवतः बोधिसत्त्वसंभारमहायानधर्मनयसंप्रवेशनतः स्वमन्त्रमन्त्राकर्षणरक्षणसाधनक्रियाकौशलतः महाकरुणामहामैत्रीमहोपेक्षामहामुदितापारमिता भाववतः निःप्रपञ्चसत्त्वधातुधर्मधातुतथतासमवसरणतः द्वयाकारसर्वज्ञज्ञानपरिगवेषणतः सर्वसत्त्वापरित्यागः हीनयानास्पृहणतश्च । इमे सप्त धर्मा विद्याविद्यामन्त्रसिद्धिं पारिपूरतां गच्छन्ति ।............कतमे अष्ट? दृष्टादृष्टफलश्रद्धा कौतुकजिज्ञासत अविचिकित्सा अष्टधर्मविद्यामन्त्रचर्यार्थसिद्धिं समवसरणतां गच्छन्ति । बोधिसत्त्वप्रसादसफलशुद्धिविकुर्वणतः अविपरीतमन्त्रग्रहणगुरुगौरवतः बुद्धबोधिसत्त्वमन्त्रतन्त्र आचार्योपदेशग्रहणअविसंवादनसर्वस्वपरित्यागतः सिद्धक्षेत्रस्थानास्थानस्वप्नदर्शनकौशलप्रकाशनतः विगतमात्सर्यमलमखिलस्थानमिद्धवीर्यारम्भरातततबुद्धबोधिसत्त्वाननिर्यातनतः । संक्षेपतः अतृप्तकुशलमूलमहासंनाहसंनद्धः सर्वविघ्नान् प्रहर्तुकामः G 24 बोधिमण्डाक्रमणमहाभोगप्रतिकाङ्क्षणमहेशाख्ययात्मभावतः महेशाख्यपुद्गलसमवधानाविरहितकल्याणमित्रमञ्जुश्रीकुमारभूतबोधिसत्त्वसमवधानतश्च । इमे अष्ट धर्मा मन्त्रचर्यार्थसिद्धिं समवशरणतां च गच्छन्ति । संक्षेपतः मार्षा अविरहितबोधिचित्तस्य रत्नत्रयाविमुक्तस्य परमदुःशीलस्यापि अखिन्नमनसः संतताभियुक्तस्य मदीयमन्त्रपटलविसर अनन्ताद्भुतबोधिसत्त्वचर्यानिष्यन्दितमानसोद्गतं सिध्यते इति । नान्यथा च गन्तव्यम् । अविकल्पमानसो भूत्वा जिज्ञासनहेतोरपि साधनीयमिति ॥

अथ सा सर्वावती पर्षत् सबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाधिष्ठिता एवं वाचमुदीरयन्त—साधु साधु भो जिनपुत्र विचित्रमन्त्रचर्यार्थक्रियाधर्मनयप्रवेशानुवर्तिनी धर्मदेशना सुदेशिता सर्वसत्त्वानामर्थाय । अहो कुमारभूत मञ्जुश्रीः, विचित्रधर्मदेशनानुवर्तिनी मन्त्रचर्यानुकूला सुभाषिता । यो हि कश्चित् महाराज्ञः इमं संनिपातपरिवर्तं वाचयिष्यति, धारयिष्यति, मनसि करिष्यति, संग्रामे वा अग्रतः हस्तिमारोप्य स्थापयिष्यति, विविधैर्वा पुष्पधूपगन्धविलेपनैः पूजयिष्यति—प्रत्यर्थिकानां प्रत्यमित्राणां वशमानयिष्यामः । परबलेसनाभङ्गं करिष्यामः । पुस्तकलिखितं वा कृत्वा स्वगृहे स्थापयिष्यति, तस्य कुलपुत्रस्य वा कुलदुहितुर्वा महाराज्ञस्य वा महाराज्ञीय वा भिक्षोर्वा भिक्षुण्या वा, उपासकस्य वा उपासिकाया वा महारक्षां महाभोगतां दीर्घायुष्मतां आयुरारोग्यतां सततभोगाभिवर्धनतां करिष्यामीति ॥

एवमुक्तस्तु सा सर्वावती पर्षत् तूष्णीमभूत् ॥

महायानमन्त्रचर्यानिर्देश्यमहाकल्पान्मञ्जुश्रीकुमारभूतबोधिसत्त्वविकुर्वणपटलविसरात् मूलकल्पात् प्रथमः संनिपातपरिवर्तः ॥



२ मण्डलविधानपरिवर्तः ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य सर्वसत्त्वमयानुप्रवेशावलोकिनीं नाम समाधिं समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य च मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य नाभिमण्डलप्रदेशाद् रश्मिर्निश्चरति स्म अनेकरश्मिकोटीनियुतशतसहस्रपरिवारिता । समन्तात् सर्वसत्त्वधातुमवभास्य पुनरेव तं शुद्धावासभवनमवभास्य स्थिताभूत् ॥ G 25

अथ खलु वज्रपाणिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—भाष भाष त्वं भो जिनपुत्र सर्वसत्त्वसमयानुप्रवेशनं नाम.................................... समनुप्रविश्य त्वदीयं मन्त्रगणं सर्वलौकिकलोकोत्तरं च मन्त्रसिद्धिं समनुप्राप्नुवन्ति । एवमुक्ते गुह्यकाधिपतिना यक्षेन्द्रेण मञ्जुश्रीः कुमारभूतः परमगुह्यमण्डलतन्त्रं भाषते स्म । सर्वविघ्नसंचोदनं नाम स......विकुर्वणं विदन्तयति(?) । दक्षिणं च पाणिमुद्यम्य अङ्गुल्यग्रेण पर्षन्मण्डलमाकारयति स्म । तस्मिन्नङ्गुल्यग्रे अनेकविद्याराजकोटीनयुतशतसहस्राणि निश्चेरुः । निश्चरित्वा च सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं महतावभासेनावभास्य च स्थिता अभूवन् ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः यमान्तकस्य क्रोधराजस्य हृदयं सर्वकर्मिकं एकवीरं आवाहनविसर्जनशान्तिकपौष्टिक-आभिचारुक-अन्तर्धानाकाशगमनपातालप्रवेशपादप्रचारिकाकर्षणविद्वेषणवशीकरणसर्वगन्धमाल्यविलेपनप्रदीपस्वमन्त्रतन्त्रेषु प्रदानः, संक्षेपतः यथा यथा प्रपद्यते, तथा तथा साध्यमानः अक्षरं नाम महावीर्यं सर्वार्थसाधनं महाक्रोधराजम् । कतमं च तत्? ॐ । आः । हूँ । इदं तन्महाक्रोधस्य हृदयम् । सर्वकार्मिकं सर्वमण्डलेषु सर्वमन्त्रचर्यासु च निर्दिष्टं महासत्त्वेन मञ्जुघोषेण सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः दक्षिणं पाणिमुद्यम्य क्रोधस्य मूर्ध्नि स्थापयामास । एवं चाह—नमस्ते सर्वबुद्धानाम् । समन्वाहरन्तु बुद्धा भगवन्तः ये केचिद् दशदिग्लोकधातु- G 26
व्यवस्थिता अनन्तापर्यन्ताश्च बोधिसत्त्वा महर्द्धिकाः । समयमधितिष्ठन्त । इत्येवमुक्त्वा तं क्रोधराजानं भ्रामयित्वा क्षिपति स्म । समनन्तरनिक्षिप्ते महाक्रोधराजे सर्वावन्तं लोकधातुं सत्त्वाः क्षणमात्रेण ये दुष्टाशयाः सत्त्वा महर्द्धिकाः तां निगृह्यानयन्ति स्म । तं महापर्षन्मण्डलं शुद्धावासभवनं प्रवेशयति स्म । व्यवस्थायां च स्थापयित्वा समन्तज्वालामालाकुलो भूत्वा दुष्टसत्त्वेषु च मूर्ध्नि तिष्ठते स्म ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पुनरपि तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य—शृण्वन्तु भवन्तः सर्वसत्त्वाः । यो ह्येनं मदीयं समयमतिक्रमेत्, तस्यायं क्रोधराजा निग्रहमापादयिष्यति । यत्कारणमनतिक्रमणीया बुद्धानां भगवतां समयरहस्यमन्त्रार्थवचनपथाः बोधिसत्त्वानां च महर्द्धिकानाम् । समासनिर्देशतः कथयिष्यामि । तं शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्येऽहम् । नमः समन्तबुद्धानाम् । ॐ र र स्मर अप्रतिहतशासन कुमाररूपधारिण हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा । अयं स मार्षाः मदीयमूलमन्त्रः आर्यमञ्जुश्रियं नाम । मुद्रा पञ्चशिखा महामुद्रेति विख्याता, तं प्रयोजये अस्मिन् मूलमन्त्रे, सर्वकर्मिकं भवति हृदयम् ।

बुद्धो सर्वकर्मकरं शिवम्। ॐ धान्यद नमः। मुद्रा चात्र भवति त्रिशिखेति विख्याता सर्वभोगाभिवर्धनी। उपहृदयं चात्र भवति। बाहे हूँ। मुद्रा चात्र भवति त्रिशिखेति विख्याता सर्वसत्त्वाकर्षणी। परमहृदयं चात्र भवति। मुं। मुद्रा भवति चात्र मयूरासनेति विख्याता सर्वसत्त्ववशंकरी। सर्वबुद्धानां हृदयम्। अपरमपि महावीरं नाम अष्टाक्षरं परमश्रेयसं महापवित्रं त्रिभववर्त्मीयच्छेदं सर्वदुर्गतिनिवारणं सर्वशान्तिकरं सर्वकर्मकरं क्षेमं निर्वाणप्रापणं बुद्धमिव संमुखदर्शनोपस्थितम्। स्वयमेव मञ्जुश्रीरयं बोधिसत्त्वः सर्वसत्त्वानामर्थाय परमहृदयं मन्त्ररूपेणोपस्थितः सर्वाशापारिपूरकं यत्र स्मरितमात्रेण पञ्चानन्तर्याणि परिशोधयति। कः पुनर्वादो जायेत। कतमं च तत्? ॐ आः। धीर हूँ खचरः। एष स

G 27 मार्षा यूयमेवाहं अष्टाक्षरं महावीरं परमगुणहृदयं बुद्धत्वमिव प्रत्यक्षस्थितम्। सर्वकार्येषु संक्षेपतो महागु·······························न्तनिष्ठादक्षमिति। मुद्रा चात्र भवति महावीरेति विख्याता सर्वाशापारिपूरकी। आह्वाननमन्त्रा चात्र भवन्ति। ॐ हे हे कुमाररूपिस्वरूपिणे सर्वबालभाषितप्रबोधने, आयाहि भगवं आयाहि। कुमारक्रीडोत्पलधारिणे मण्डलमध्ये तिष्ठ तिष्ठ। समयमनुस्मर। अप्रतिहतशासन हूँ। मा विलम्ब। रु रु फट् स्वाहा। एष भगवं मञ्जुश्रियः आह्वाननमन्त्रः। सर्वसत्त्वानां सर्वबोधिसत्त्वानां सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकदेवनागयक्षगन्धर्वगरुडकिन्नरमहोरगपिशाचराक्षससर्वभूतानां चेति। सप्ताभिमन्त्रितं चन्दनोदकं कृत्वा चतुर्दिशमित्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः क्षिपेत्। सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाः मञ्जुश्रियः स्वयं तस्य परिवारः सर्वलौकिकलोकोत्तराश्च मन्त्राः सर्वे च भूतगणाः सर्वसत्त्वाश्च आगता भवेयुः। नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। ॐ धु धुर धुर धूपवासिनि धूपार्चिषि हूँ तिष्ठ समयमनुस्मर स्वाहा। धूपमन्त्रः चन्दनं कर्पूरं कुङ्कुमं चैकीकृत्य धूपं दापयेत्ततः। आगतानां तथागतानां सर्वबोधिसत्त्वानां च। धूपाप्यायितमनसः आकृष्टा भवन्ति। भवति चात्र मुद्रा यस्य मालेति विख्याता सर्वसत्त्वाकर्षणी शिवा। आह्वाननमन्त्रा याश्च अयमेव मुद्रा पद्ममाला शुभा। आगतानां च सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां सर्वसत्त्वानां चागतानामर्घ्यो देयः। कर्पूरचन्दनकुङ्कुमैरुदकमालोड्य जातीकुसुमनवमालिकवार्षिकपुन्नागनागबकुलपिण्डितगराभ्यां एतेषामन्यतमेन पुष्पेण यथर्तुकेन वा सुगन्धपुष्पेण मिश्रीकृत्य अनेन मन्त्रेण अर्घ्यो देयः। नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। तद्यथा—हे हे महाकारुणिक विश्वरूपधारिणि अर्घ्यं प्रतीच्छ प्रतीच्छापय, समयमनुस्मर, तिष्ठ तिष्ठ मण्डलमध्ये प्रवेशय प्रविश सर्वभूतानुकम्पक गृह्ण गृह्ण हूँ। अम्बरविचारिणे स्वाहा। मुद्रा चात्र पूर्णेति विख्याता सर्वबुद्धानुवर्तिनी। ध्रुवा गन्धमन्त्रा चात्र भवन्ति। नमः सर्वबुद्धानाम्। नमः समन्तगन्धावभासश्रियाय तथागताय। तद्यथा—गन्धे गन्धे गन्धाढ्ये गन्धमनोरमे प्रतीच्छ प्रतीच्छेमं गन्धम्। समतानुसारिणे स्वाहा। भवति चात्र मुद्रा पल्लवा

G 28 नाम सर्वाशापारिपूरिका। पुष्पमन्त्रा चात्र भवन्ति। नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। नमः संकुसुमितराजस्य तथागतस्य। तद्यथा—कुसुमे कुसुमे कुसुमाढ्ये कुसुमपुरवासिनि कुसुमावति स्वाहा। तेनैव धूपमन्त्रेण पूर्वोक्तेनैव धूपेन धूपयेत्॥

सर्वबुद्धान्नमस्कृत्य अचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।
बलिमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सम्यक्संबुद्धभाषितम् ॥ १ ॥

नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा हे हे भगवं महासत्त्व बुद्धावलोकित, मा विलम्ब । इदं बलिं गृह्णापय गृह्ण । हूँ हूँ सर्वविश्व र र ट ट फट् स्वाहा । निवेद्यं चानेन दापयेत्, बलिं च सार्वभौतिकम् । भवति चात्र मुद्रा शक्तिः सर्वदुष्टनिवारिणी । नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानां सर्वतमोन्धकारविध्वंसिनाम् । नमः समन्तज्योतिगन्धावभासश्रियाय तथागताय । तद्यथा हे हे भगवं ज्योतिरश्मिशतसहस्रप्रतिमण्डितशरीर विकुर्व विकुर्व महाबोधिसत्त्वसमन्तज्वालोद्योतितमूर्ति खुर्द खुर्द अवलोकय अवलोकय सर्वसत्त्वानां स्वाहा । प्रदीपमन्त्राः । प्रदीपं चानेन दापयेत् । मुद्रा विकासिनी नाम सर्वसत्त्वावलोकिनी । नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—ज्वल ज्वल ज्वालय ज्वालय । हुँ । विबोधक हरिकृष्णपिङ्गल स्वाहा । अग्निकारिका मन्त्राः । भवति चात्र मुद्रा संपुटा नाम लोकविश्रुता सर्वसत्त्वप्रभोद्योतनी भाषिता मुनिवरैः पूर्वं बोधिसत्त्वस्य धीमतः ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः वज्रपाणिं बोधिसत्त्वमामन्त्रयते स्म—इमानि गुह्यकाधिपते मन्त्रपदानि सरहस्यानि परमगुह्यकानि—

त्वदीयं कुलविख्यातः सुतं घोरं सदारुणम् ।
य एव सर्वमन्त्राणां साध्यमानानां विचक्षणैः ॥ २ ॥
मूर्धटक इति विख्यात······जकुलयोरपि ।
तस्य निर्नाशनार्थाय विधेयं संप्रवक्ष्यते ॥ ३ ॥

नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामप्रतिहतशासनानाम् । उं कर कर कुरु कुरु मम G 29
कार्यम् । भञ्ज भञ्ज सर्वविघ्नां । दह दह सर्ववज्रविनायकम् । मूर्धटकजीवितान्तकर महाविकृतरूपिणे पच पच सर्वदुष्टां । महागणपतिजीवितान्तकर बन्ध बन्ध सर्वग्रहां । षण्मुख षड्भुज षट्चरण रुद्रमानय । विष्णुमानय । ब्रह्माद्यां देवानानय । मा विलम्ब मा विलम्ब । झल् झल् मण्डलमध्ये प्रवेशय । समयमनुस्मर । हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा । एष सः परमगुह्यकाधिपते परमगुह्यः महावीर्यः मञ्जुश्रीः षण्मुखो नाम महाक्रोधराजा सर्वविघ्नविनाशकः । अनेन पठितमात्रेण दशभूमिप्रतिष्ठापितबोधिसत्त्वा विद्रवन्ते, किं पुनर्दुष्टविघ्नाः । अनेन पठितमात्रेण महारक्षा कृता भवति । मुद्रा चात्र भवति महाशूलेति विख्याता सर्वविघ्नविनाशिका । अस्यैव क्रोधराजस्य हृदयम् । ॐ ह्रीँ ज्ञीः विकृतानन हुम् । सर्वशत्रुं नाशय स्तम्भय फट् फट् स्वाहा । अनेन मन्त्रेण सर्वशत्रून् महाशूलरोगेण चतुर्थकेन वा गृह्णापयति । सततजपेन वा यावद्रोचते, मैत्रतां वा न प्रतिपद्यते । अथ करुणाचित्तं लभते । जापान्ते मुक्तिर्न स्यात् । मृयत इति रत्नत्रयापकारिणां कर्तव्यं नाशेषं सौम्यचित्तानाम् । मुद्रा महाशूलैव प्रयोजनीया । उपहृदयं चात्र भवति । ॐ ह्रीँः काकरूप हुं खं स्वाहा । मुद्रा महाशूलयैव प्रयोजनीया । सर्वदुष्टां

यमिच्छति तं कारयति। परमहृदयम्। सर्वबुद्धाधिष्ठितं एकाक्षरं नाम। हूँ। एष सर्वकर्मकरः। मुद्रा महाशूलयैव प्रयोजनीया। सर्वार्थनिवारणम्। सर्वभूतवशंकरः संक्षेपतः। एष क्रोधराज सर्वकर्मेषु प्रयोक्तव्यः। मण्डलमध्ये जापः, सिद्धिकाले च विशिष्यते। विसर्जनमन्त्राः भवन्ति। नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। तद्यथा—जय जय सुजय महाकारुणिक विश्वरूपिणे गच्छ गच्छ स्वभवनम्, सर्वबुद्धांश्च विसर्जय। सपरिवारां स्वभवनं चानुप्रवेशय समयमनुस्मर। सर्वार्थाश्च मे सिद्ध्यन्तु मन्त्रपदाः। मनोरथं च मे परिपूरय स्वाहा। अयं विसर्जनमन्त्रः सर्वकर्मेषु प्रयोक्तव्यः। मुद्रा भद्रपीठेति विख्याता। आसनं चानेन दापयेत्। मनसा सप्तसप्तेन विसर्जनं सर्वेभ्यः लौकिकलोको-
G 30 त्तरेभ्यो मण्डलेभ्यः मन्त्रेभ्यश्चैव मन्त्रसिद्धिः समयजपकालनियमेषु च प्रयोक्तव्येति॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पुनरपि तं शुद्धावासभवनमवलोक्य तं महापर्षन्मण्डलं स्वकं च विद्यागणमन्त्रपटलविसरं भाषते स्म—नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। ॐ रिटि स्वाहा। मञ्जुश्रियस्येदं अनुचरी केशिनी नाम विद्या सर्वकर्मिका। महामुद्रायाः पञ्चशिखाया योज्या सर्वविषकर्मसु। नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम्। ॐ निटि। उपकेशिनी नाम विद्येयं सर्वकर्मिका। मुद्रया विकासिन्या च योजयेत् सर्वग्रहकर्मेषु। समन्तबुद्धानामप्रतिहतगतीनाम्। ॐ निः।

विद्येयं बलिनी नाम सर्वकर्मकरा शुभा।
मुद्रया भद्रपीठया संयुक्ता यक्षिणी आनयेद् ध्रुवम्॥ ४॥

नमः समन्तबुद्धानां अचिन्त्याद्भुतरूपिणाम्।
मुद्रया शक्तिना युक्ता सर्वडाकिनीघातिनी॥ ५॥

ॐ ह्रैः स्वाहा।

विद्या कापतलिनी नाम मञ्जुघोषेण भाषिता।
समन्तासर्वबुद्धैश्च प्रशस्ता दिव्यरूपिणी॥ ६॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतगतिप्रचारिणाम्।

तद्यथा—ॐ वरदे स्वाहा।

मुद्रा त्रिशिखेनैव प्रयोजयेत् श्रेयसात्मकः।
बहुरूपधरा देवी क्षिप्रभोगप्रसाधिका॥ ७॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम्।

ॐ भूरि स्वाहा।

मुद्रया शूलसंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी।
नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम्॥ ८॥

ॐ नु रे स्वाहा ।

विद्या तारावती नाम प्रशस्ता सर्वकर्मसु ।
मुद्रया शक्तियष्ट्या तु योजिता विघ्नघातिनी ॥ ९ ॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।

तद्यथा—ॐ विलोकिनि स्वाहा । G 31

विद्या लोकवती नाम सर्वकोशवशंकरी ।
योजिता वज्रमुद्रेण सर्वसौख्यप्रदायिका ॥ १० ॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।

तद्यथा—ॐ विश्वे विश्वसंभवे विश्वरूपिणि कह कह आविशाविश । समयमनुस्मर । रु रु तिष्ठ स्वाहा ।

एषा विद्या महावीर्या दर्शिता लोकनायकैः ।
दंष्ट्रमुद्रासमेतास्त्रसर्वसत्त्वा ···वेशिनी ।
शुभा वरदा सर्वभूतानां विश्वेति संप्रकाशिता ॥ ११ ॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।

तद्यथा—ॐ श्वेतश्रीवपुः स्वाहा ।

मयूरासनेन मुद्रेण विन्यस्ता सर्वकर्मिका ।
महाश्वेतेति विख्याता अचिन्त्याद्भुतरूपिणी ।
सौभाग्यकरणं लोके नरनारीवशंकरी ॥ १२ ॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।

तद्यथा—ॐ खि खिरि खिरि भंगुरि सर्वशत्रुं स्तम्भय जम्भय मोहय वशमानय स्वाहा ।

एषा विद्या महाविद्या योगिनीति प्रकथ्यते ।
योजिता वक्रमुद्रेण दुष्टसत्त्वप्रसादिनी ॥ १३ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतगतिप्रचारिणाम् ।

तद्यथा—ॐ श्रीः ।

एषा विद्या महालक्ष्मी लोकनाथैस्तु देशिता ।
मुद्रा संपुटया युक्ता महाराज्यप्रदायिका ॥ १४ ॥

नमः समन्तबुद्धानां सर्वसत्त्वाभयप्रदायिनाम् ।

तद्यथा—ॐ । अजिते । कुमाररूपिणि । एहि आगच्छ । मम कार्यं कुरु । स्वाहा । G 32

अजितेति विख्याता कुमारी अमृतोद्भवा ।
मुद्रया पूर्णया युक्ता सर्वशत्रुनिवारणी ॥ १५ ॥

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ।

तद्यथा—ॐ जये स्वाहा। विजये स्वाहा। अजिते स्वाहा। अपराजिते स्वाहा।

चतुर्भगिन्य इति विख्याता बोधिसत्त्वानुचारिका।
पर्यटन्ति महीं कृत्स्नां सत्त्वानुग्रहकारिकाः॥ १६॥
भ्राता तुम्बुरु विख्यात एतासामनुचारकः।
नौयानसमारूढा अन्दुर्धेतुः (?) निवासिनः।
मुष्टिमुद्रेण विन्यस्ता सर्वाशापारिपूरिका॥ १७॥

नमः समन्तबुद्धानां लोकाग्राधिपतीनाम्।

तद्यथा—ॐ। कुमार महाकुमार क्रीड क्रीड षण्मुख बोधिसत्त्वानुज्ञात मयूरासनसंघोद्यतपाणि रक्ताङ्ग रक्तगन्धानुलेपनप्रिय ख ख खाहि खाहि खाहि। हुं नृत्य नृत्य। रक्तपुष्पार्चितमूर्ति समयमनुस्मर। भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय भ्रामय। लहु लहु मा विलम्ब। सर्वकार्याणि मे कुरु कुरु चित्ररूपधारिणे। तिष्ठ तिष्ठ हुं हुं सर्वबुद्धानुज्ञात स्वाहा।

भाषिता बोधिसत्त्वेन मञ्जुघोषेण तायिना।
षड्विकारा मही कृत्स्ना प्रचचाल समन्ततः॥ १८॥
हितार्थं सर्वसत्त्वानां दुष्टसत्त्वनिवारणम्।
महेश्वरस्य सुतो घोरो वैनेयार्थमिहागतः॥ १९॥
स्कन्दमङ्गारकश्चैव ग्रहचिह्नैः सुचिह्नितः।
मञ्जुभाषिणी ततो भाषे करुणाविष्टेन चेतसा॥ २०॥
महात्मा बोधिसत्त्वोऽयं बालानां हितकारिणः।
सत्त्वचर्या यतः प्रोक्ता विचेरुः सर्वतो जगत्॥ २१॥
मुद्राशक्तियष्ट्यानुसंयुक्ता सङ्घमहात्मनः।
आवर्तयति ब्रह्माद्यां किं पुनर्मानुषं फलम्॥ २२॥
G 33 कौमारभित्तमखिलं कल्यमस्य समासतः।
कार्तिकेय मञ्जुश्रीः मन्त्रोऽयं समुदाहृतः॥ २३॥
सत्त्वानुग्रहकाम्यर्थं बोधिसत्त्व इहागतः।
त्र्यक्षरं नाम हृदयं मन्त्रस्यास्य उदाहृतम्॥ २४॥
सर्वसत्त्वहितार्थाय भोगाकर्षणतत्परः।
मुद्रया शक्तियष्ट्या तु विन्यस्तः सर्वकर्मिकः॥ २५॥

ॐ हूँ जः।

एष मन्त्रः समासेन कुर्यान्मानुषकं फलम्।

नमः समन्तबुद्धानां समन्तोद्योतितमूर्तिनाम्।

ॐ विकृतग्रह हुं फट् स्वाहा।

उपहृदयं चास्य संयुक्तो मुद्राशक्तिना तथा।
आवर्तयति भूतानि सग्रहां मातरां तथा॥ २६॥

सर्वमुद्रितमुद्रेषु विन्यस्ता सफला भवेत् ।
वित्रासयति भूतानां दुष्टाविष्टविमोचनी ॥ २७ ॥

एष मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य कार्तिकेयमञ्जुश्रीर्नाम कुमारः अनुचरः सर्वकर्मिकः । जपमात्रेणैव सर्वकर्माणि करोति, सर्वभूतानि त्रासयति, आकर्षयति, वशमानयति, शोषयति, घातयति, यथेप्सितं वा विद्याधरस्य तत्सर्वं संपादयति ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा– ॐ ब्रह्म सुब्रह्म ब्रह्मवर्चसे शान्तिं कुरु स्वाहा ।

एष मन्त्रो महाब्रह्मा बोधिसत्त्वेन भाषितः ।
शान्तिं प्रजग्मुर्भूतानि तत्क्षणादेव शीतला ॥ २८ ॥
मुद्रा पञ्चशिखायुक्ता क्षिप्रं स्वस्त्ययनं भवेत् ।
आभिचारुकेषु सर्वेषु अथवा चेद् पठ्यते ।
एष संक्षेपत उक्तो कल्पमस्य समासतः ॥ २९ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ।

तद्यथा–ॐ गरुडवाहन चक्रपाणि चतुर्भुज हुँ हुँ समयमनुस्मर । बोधिसत्त्वो ज्ञापयति स्वाहा ।

आज्ञप्तो मञ्जुघोषेण क्षिप्रमर्थकरः शिवः । G 34
विद्रापयति भूतानि विष्णुरूपेण देहिनाम् ॥ ३० ॥
मुद्रा त्रिशिखे युक्तः क्षिप्रमर्थकरः स्थिरः ।
य एव वैष्णवे तन्त्रे कथिताः कल्पविस्तराः ।
उपाया वैनेयसत्त्वानां मञ्जुघोषेण भाषिताः ॥ ३१ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ।

तद्यथा–ॐमहामहेश्वर । भूताधिपति । वृषध्वज । प्रलम्बजटामकुटधारिणे सितभस्मधूसरितमूर्ति हुँ फट् फट् । बोधिसत्त्वो ज्ञापयति स्वाहा ।

एष मन्त्रो मया प्रोक्तः सत्त्वानां हितकाम्यया ।
शूलमुद्रासमायुक्तः सर्वभूतविनाशकः ॥ ३२ ॥
यन्मया कथितं पूर्वं कल्पमस्य पुरातनम् ।
सैवमिति वक्ष्यन्ते सत्त्वा भूतलवासिनः ।
विविधा गुणविस्तारः शैवतन्त्रे मयोदिताः ॥ ३३ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ।

तद्यथा–ॐशकुन महाशकुन पद्मविततपक्ष सर्वपन्नगनाशक ख ख खाहि खाहि । समयमनुस्मर । हुँ । तिष्ठ । बोधिसत्त्वो ज्ञापयति । स्वाहा ।

एष मन्त्रो महावीर्यः वैनतेयेति विश्रुतः ।
दुर्दान्तदमकः श्रेष्ठः भोगिनां विषनाशनम् ॥ ३४ ॥
महामुद्रया समायुक्तः हन्त्यनर्थं सुदारुणम् ।
विचिकित्सयति न संदेहो विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ ३५ ॥
सत्त्वानुपायवैनेया बोधिसत्त्वसमाज्ञया ।
विचेरुर्गरुडरूपेण पक्षिराट् स महाद्युतिः ॥ ३६ ॥
यावन्तो गारुडे तन्त्रे कथिताः कल्पविस्तराः ।
ते मयैवोदिताः सर्वे सत्त्वानां हितकारणात् ॥ ३७ ॥
गरुत्मा बोधिसत्त्वस्तु वैनतेयार्थमिहागतः ।
भोगिनां विषनाशाय विचेरुः पक्षिरूपिणः ॥ ३८ ॥
G 35 यावन्तो लौकिका मन्त्राः तेऽस्मि कल्प उदाहृताः ।
वैनेयार्थं हि सत्त्वानां विचरामि तथा तथा ॥ ३९ ॥
ये तु ताथागतीमन्त्राः कुलिशाङ्ककुलयोरपि ।
तेऽस्मिन् कल्पविस्तरे भाषिताः पूर्वमेव तु ॥ ४० ॥
यथा हि धात्री बहुधा बालान् लालति यत्नतः ।
तथा बालिशबुद्धीनां मन्त्ररूपी चराम्यहम् ॥ ४१ ॥
दशबलैः कथितं पूर्वे अधुना च मयोदितम् ।
सकलं मन्त्रतन्त्रार्थं कुमारोऽप्याह महाद्युतिः ॥ ४२ ॥
जिनवरैश्च ये गीता गीता दशबलात्मजैः ।
मञ्जुस्वरेण ते गीता अचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् ॥ ४३ ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं तं च महापर्षन्मण्डलमवलोक्य सर्वसमयसंचोदनीं नाम समाधिं समापद्यते स्म, यत्र समाधेः प्रतिष्ठितस्य अशेषसत्त्वनिर्हारचर्यामनसः सर्वसत्त्वाः प्रतिष्ठिताः भवेयुः । समनन्तरसमापन्नस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं विचित्रमणिरत्नव्यूहालंकारमण्डलं अचिन्त्याद्भुतबोधिसत्त्वविकुर्वणं सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकचर्याप्रविष्टैरपि बोधिसत्त्वैः दशभूमिप्रतिष्ठितैरीश्वरैरपि न शक्यते मण्डलं लिखितुं वा, कः पुनर्वादो पृथग्जनभूतैः सत्त्वैः । तं दिव्यमार्यमण्डलसमयनिर्हारावस्थानावस्थितं मञ्जुश्रियं कुमारभूतं दृष्ट्वा सर्वे बुद्धा भगवन्तः सर्वप्रत्येकबुद्धाः, सर्वे आर्यश्रावकाः, सर्वे बोधिसत्त्वा दशभूमिप्रतिष्ठिताः, यौवराज्याभिषेकसमनुप्राप्ता आर्या प्रतिपन्नाश्च सर्वे सत्त्वा सास्रवा अनास्रवाश्च मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्याधिष्ठानेन अचिन्त्यबुद्धबोधिसत्वचर्यानिष्यन्दितं समाधिविशेषमानसोद्भवं मण्डलं प्रविष्टमात्मानं संजानन्ते स्म । न शक्यते तत्पृथग्जनैः सत्त्वैः समनसाप्यालम्बयितुम्, कः पुनर्वादो लिखितुं लेखयितुं वा ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः तां महापर्षन्मण्डलसमयमनुप्रविष्टः सत्त्वानामन्त्रयते स्म–शृण्वन्तु मार्षाः । अनतिक्रमणीयमेतत् तथागतानां बोधिसत्त्वानां च समयः, कः G 36
पुनर्वादोऽन्येषां सत्त्वानामार्यानार्याणाम् । अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः वज्रपाणिं गुह्यकाधिपतिमामन्त्रयते स्म–निर्दिष्टं भो जिनपुत्र अतिक्रान्तमानुष्यकं समयं मानसोद्भवम् । मानुष्यकं तु वक्ष्ये परिनिर्वृतानां च तथागतानाम्, यत्र सत्त्वा समनुप्रविश्य सर्वमहालौकिकलोकोत्तरा सिद्धिं गच्छेयुः ॥

अथ खलु वज्रपाणिर्गुह्याधिपतिः मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–भाष भाष त्वं भो जिनपुत्र, यस्येदानीं कालं मन्यसे ॥

परिनिर्वृते लोकनाथे शाक्यसिंहे अनुत्तरे ।
बुद्धत्व इव सत्त्वानां त्वदीयं मण्डलं भुवि ॥ ४४ ॥
दृष्टमात्रो हि लोकेऽस्मिन् मन्त्राः सिद्धिं प्रजग्मिरे ।
अज्ञानविधिहीनं तु शयानविकृतेन वा ॥ ४५ ॥
मन्त्राः सिद्धिं न गच्छेयुः ब्रह्मस्यापि महात्मनः ।
अनभियुक्ता तन्त्रेऽस्मिन् अदृष्टसमयोदिते ॥ ४६ ॥
मन्त्राः सिद्धिं न गच्छन्ति यत्नेनाप्यनेकदा ।
समयप्रयोगहीनं शक्रस्यापि प्रयत्नतः ॥ ४७ ॥
मन्त्राः सिद्धिं न गच्छन्ति किं पुनर्भुवि मानुषे ।
समयशास्त्रतत्त्वज्ञे चर्याकर्मसु साधने ।
पठितमात्रा हि सिध्यन्ते मन्त्रा आर्या च लौकिकाः ॥ ४८ ॥
मण्डलं मञ्जुघोषस्य प्रविष्टः सर्वकर्मकृत् ।
मन्त्रसिद्धिर्ध्रुवं तस्य कुमारस्यैव शासने ॥ ४९ ॥

अथ खलु वज्रपाणिर्गुह्याधिपतिः तं महासत्त्वं मध्ये भाषते स्म–संक्षेपतः भो भो महाबोधिसत्त्व सत्त्वानामर्थाय मण्डलविधानं भाषस्वेति ॥

एवमुक्तस्तु गुह्यकाधिपतिना मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सर्वसत्त्वानामर्थाय मण्डलविधानं भाषते स्म–आदौ तावत् प्रतिहारकपक्षे चैत्रवैशाखे च मासे सितपक्षे प्रशस्तदिवसे शुद्धग्रहनिरीक्षिते शुभनक्षत्रसंयुक्ते शुक्लप्रतिपदि पूर्णमास्यां वा अन्ये वा काले प्रावृण्मासविवर्जिते पूर्वाह्ने भूमिमधिष्ठातव्यं महानगरमाश्रित्य यत्र वा स्वयं तिष्ठेन्मण्डलाचार्यः G 37
समुद्रगामिनीं वा नदीमाश्रित्य, समुद्रतटसमीपं वा महानगरस्य पूर्वोत्तरे दिग्भागे नातिदूरे नात्यासन्ने मण्डलाचार्येण सत्त्वानां सप्ताहं पक्षमात्रं वा एकान्ते उडयं कृत्वा प्रतिवस्तव्यम् । यः तस्मिन् स्थाने सुचौक्षं पृथिवीप्रदेशं समन्ताच्चतुरस्रं षोडशहस्तं द्वादशहस्तं वा अपगतपाषाणकठल्लभस्माङ्गारतुषकपालास्थिवर्जितं सुचौक्षं सुपरिकर्मितं पृथिवीप्रदेशं निम्नात्मकेनोदकेन पञ्चगव्यसंमिश्रितेन चन्दनकर्पूरकुङ्कुमोदकेन वा यमान्तकेन क्रोधराजे-

नाष्टसहस्राभिमन्त्रितेन पञ्चशिखमहामुद्रासंयुक्तेन तं पृथिवीप्रदेशं अभ्युक्षयेच्चतुर्दिक्षु इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यग्विदिक्षु च सर्वतः क्षिपेत्। ततो तं पृथिवीप्रदेशं समन्ताच्चतुरस्रं षोडशहस्तं द्वादशहस्तं वा अष्टहस्तं वा, तत्र षोडशहस्तं ज्येष्ठम्, मध्यं द्वादशहस्तम्, कन्यसं अष्टहस्तम्। एतत् त्रिविधं प्रोक्तं मण्डलं सर्वदर्शिभिः राज्यकामाय। ततो ज्येष्ठं मध्यमं संभोगवर्धनं कन्यसं समयमात्रं तु सर्वकर्मकरं शिवम्। ततोऽन्यतमं मनसेप्सितं मण्डलमालिखेत्। तत्र तं पृथिवीप्रदेशं द्विहस्तमात्रं खनेत्। तत्र पाषाणाङ्गारभस्मास्थिकेशादयो विविधा वा प्राणकजातयः यदि दृश्यन्ते, अन्यं पृथिवीप्रदेशं खनेत्। निरुपहत्यं निरुपद्रवं भवेत्। न चेत्पर्वताग्रनदीपुलिनसमुद्रोत्सङ्गमहानदीपुलिनसिकतादिचयं महता प्रयत्नतः स प्रत्यवेक्षितं सुचौक्षं निःप्राणकं कृत्वा लिखेत्। तं पृथिवीप्रदेशं भूयो निःप्राणेनोदकेन पञ्चगव्यसंमिश्रेण नदीकूलमृत्तिकया मेध्यया वल्मीकमृत्तिकया वा यत्र प्राणका न सन्ति, तया मृत्तिकया पूरयितव्यम्। पूरयित्वा च खाकोटितं समतलं समन्तात् त्रिविधं मण्डलं यथेप्सितं कारयेत्। चतुर्दिक्षु चत्वारः खदिरकीलकां निखनेत् क्रोधराजेनैव सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा, पञ्चरङ्गिकेन सूत्रेण सप्ताभिमन्त्रितेन क्रोधहृदयेन कृत्वा समन्तात्तन्मण्डलं चतुरस्राकारेण वेष्टयेत्। एवं मध्यमे स्थाने। एवमभ्यन्तरे चतुरस्राकारं कारयेत्। मध्यस्थानस्थितेन मण्डलाचार्येण विधा अष्टसहस्रं मूलमन्त्रा उच्चारयितव्याः, महामुद्रा पञ्चशिखां बध्वा मूलमन्त्रेण ससखायरक्षा आत्मरक्षा च कार्या। जपतश्च निष्क्रसर्वहिमण्डलं प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखः कुशपिण्डकोपविष्टः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां मनसि कुर्वाणः। समन्ताच्च

G 38 तन्मण्डलं चतुरस्राकारेण वेष्टयेत्। बहिर्नाधः एकरात्रोषितां कृत्वा प्रवासयेत्॥

तत्र मण्डलाचार्येण कृतपुरश्चरणेन स्वतन्त्रमन्त्रकुशलेन उपायसत्त्वार्थमहायानाधिमुक्तेन एकरात्रोषितेन सुसखायसमेतेन विधिशास्त्रदृष्टेन कर्मणा पञ्चरङ्गिकेन चूर्णेन श्लक्ष्णोज्वलेन सुपरिकर्मकृतेन षडक्षराभिमन्त्रिते हृदयेनाभिमन्त्र्य तं चूर्णं मण्डलमध्ये स्थापयेत्। बहिश्चोच्छ्रितध्वजपताकतोरणे चतुष्पथालंकृतं कदलीस्तम्भरोपितफलभरितपिण्डीभिः प्रलम्बमानमाहतभेरीमृदङ्गशङ्खतन्त्रीभिर्घोषनिनादितं पृथिवीप्रदेशं कुर्यात्। प्रशस्तशब्दधर्मश्रवणचतुष्पथानुकूलमहायानसूत्रां चतुर्दिक्षु पुस्तकां वाचयन्। तद्यथा— भगवती प्रज्ञापारमिता दक्षिणां दिशि वाचयेत्। आर्यचन्द्रप्रदीपसमाधिः पश्चिमायां दिशि। आर्यगण्डव्यूह उत्तरायां दिशि। आर्यसुवर्णप्रभासोत्तमसूत्रं पूर्वायां दिशि। एवमधीतचतुःसूत्रान्तिकं पुद्गलां धर्मभाणकं पुस्तकाभावादध्येषयेत् धर्मश्रवणाय। ततो मण्डलाचार्येणोत्थाय चन्दनकर्पूरकुङ्कुमव्यामिश्रकेण श्वेतसुगन्धपुष्पैः मूलमन्त्रं जपता सर्वतस्तं मण्डलमभिकिरेत्। अभिकीर्य च बहिर्निर्गच्छेत्। सप्ताहाद्धविष्याहारोषितां द्वौ त्रयो वा उत्पादितबोधिचित्तं उपोषधउपवासोचितां चित्रकरा निपुणतरां प्रवेशयेत्। मूलमन्त्रेणैव शिखाबन्धं कृत्वा, ततः सुवर्णरूप्यविविधरत्नपञ्चविचित्रोज्वलचारुसूक्ष्मचूर्णताम्रां प्रतिगृह्य, महाभोगैः सत्त्वैः महाराजानैश्च धार्मिकैः लिखापनीयम्। बोधिपरायणीयं बोधिपरायणं नियतम्॥

मण्डलं दर्शनादेव किं पुनर्मन्त्रसाधने ।
सत्त्वानामल्पपुण्यानां निर्धृते शाक्यपुंगवे ॥ ५० ॥
कुत एवंविधा भोगा विधिरेषा नु कल्प्यते ।
दरिद्रजनतां दृष्ट्वा मञ्जुघोषो महाद्युतिः ॥ ५१ ॥
उदीरयेत् कल्पसंक्षेपं मण्डलं तु समासतः ।
शालितण्डुलचूर्णैस्तु सूक्ष्मैः पञ्चरङ्गोज्ज्वलैः ।
शुक्लपीतरक्तकृष्णहरितवर्णैर्वर्णयेत् ॥ ५२ ॥ G 39

पूर्वस्थापितकं चूर्णं मण्डलाचार्येण स्वयं गृह्य, महामुद्रां पञ्चशिखां बध्वा मूलमन्त्रं जपता तं चूर्णं मुद्रयेत् । अपरेण तु साधकाचार्येण मण्डलबहिर्दक्षिणपूर्वायां दिशि विधिदृष्टेन कर्मणा अग्निकुण्डं कारयेत् । द्विहस्तप्रमाणं हस्तमात्रनिम्नं समन्तात्पद्मपुष्कराकारं बहिःपद्मपुष्कराकारा पलाशकाष्ठसमिद्भिः अग्निं प्रज्वाल्य श्रीफलकाष्ठसमिधानां वितस्तिमात्रप्रमाणानां सार्द्रां दधिमधुघृताक्ता मूलमन्त्रं षडक्षरहृदयेन वा मुद्रामुष्टिं बध्वा आह्वयेत् । आहूय च पूर्वोक्तेनैव एकाक्षरमूलमन्त्रहृदयेन भूयो अष्टशतं जुहुयात् ॥

ततो मण्डलाचार्येण बद्धोष्णीषकृतपरिकरः आत्मना चित्रकरांश्च निपुणतरानात्मना कारयेत् । ततो मण्डलाचार्येण बुद्धबोधिसत्त्वां मनसि कुर्वता पूर्वोक्तेनैव धूपमन्त्रेण धूपं दहता अञ्जलिं कृत्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां प्रणम्य, मञ्जुश्रियं कुमारभूतं नमस्कृत्य चूर्णं गृहीत्वा आकारयेत् । रूपं चित्रकरैश्च पूरयितव्यम् । एतेन विधिना प्रथमत एव बुद्धं भगवन्तं शाक्यमुनिं सर्वाकारवरोपेतं रत्नसिंहासनोपविष्टं शुद्धावासभवनस्थं धर्मं देशयमानमालिखेत् । लिखितश्च मण्डलाचार्यस्यानुसाधकेन आत्मरक्षाविधानं मूलमन्त्रेण कृत्वा सर्वभूतिका बलिर्देया चतुर्दिक्षूर्ध्वमधः बहिर्मण्डलस्य क्षिपेत् ॥

ततो स्नात्वा अग्निकुण्डसमीपं गत्वा शुचिवस्त्रप्रावृतेन शुचिना कृतारक्षाविधानेन घृताहुतीनां कुङ्कुममिश्राणामष्टसहस्रं जुहुयान्मूलमन्त्रेण । ततः कुशपिण्डकोपविष्टेन जपं कुर्वतः तत्रैव स्थातव्यम् । श्वेतसर्षपाणामष्टाभिमन्त्रितं कृत्वा यमान्तकक्रोधराजेनाभिमन्त्र्य शरावसंपुटे स्थापयेत् । अनेकाकारविकृतरूपघोरस्वरवातवर्षदुर्दिनमन्यतमान्यतमं वा विघ्नमागतं दृष्ट्वा हुतेन सर्षपाहुतयः सप्त होतव्याः । ततो विघ्नाः प्रणश्यन्ति । मनुष्यविघ्नैर्वा पञ्चाहुतयो होतव्याः । स्तभिता भवन्ति अशक्तिवन्तः पुरुषा मृयन्ति वा । अमानुष्यैर्वा गृह्यन्ते तत्क्षणादेव । न संदेहोऽस्ति । कथंचन शक्रोऽपि म्रियते क्षिप्रम्, किं पुनर्दुष्टचेतसा मनुष्याः । इतरे वा विघ्ना यमान्तकक्रोधभयनिर्नष्टा विद्रवन्ति इतो इत इति ॥

ततोऽनुसाधकेन तत्रैव कुशपिण्डकोपविष्टेन यमान्तकक्रोधराजानं जपं कुर्वाणेन G 40 स्थातव्यम् । ततो मण्डलाचार्येण भगवतः शाक्यमुनेः प्रतिमाया दक्षिणे पार्श्वे द्वौ प्रत्येकबुद्धौ पद्मासनोपविष्टौ पर्यङ्केनोपविष्टौ कार्यौ । तयोरधस्ताद् द्वौ महाश्रावकौ धर्मं शृण्वन्तः

कार्यौ। तेषामपि दक्षिणतः भगवानार्यावलोकितेश्वरः सर्वालंकारविभूषितः शरत्काण्डगौरः पद्मासनोपविष्टः, वामहस्तेन पद्मं गृहीत्वा दक्षिणहस्तेन वरदः। तस्यापि दक्षिणतः भगवती पण्डरवासिनी पद्महस्ता दक्षिणेन हस्तेन भगवन्तं शाक्यमुनिं वन्दमाना पद्मासनोपनिषण्णा जटामकुटधारिणी श्वेतपट्टवस्त्रनिवस्ता पट्टांशुकोत्तरासुङ्गिनी कृष्णभस्मतृमुण्डीकृता। एवं तारा, भ्रुकुटी स्वकस्वकासनेर्यापथे सुस्थिता कार्या। उपरिष्टाच्च भगवती तेषां प्रज्ञापारमिता तथागतलोचना उष्णीषराजा स्वकार्याः। एवं बोधिसत्त्वाः षोडश कार्याः। तद्यथा–समन्तभद्रः, क्षितिगर्भः, गगनगञ्जः, सर्वनीवरणविष्कम्भी, अपायजहः, मैत्रेयः, चमरव्यग्रहस्तः, बुद्धं भगवन्तं निरीक्षमाणः, विमलगतिः, विमलकेतुः, सुधनः, चन्द्रप्रभः, विमलकीर्तिः, सर्वव्याधिचिकित्सकः सर्वधर्मीश्वरराजः, लोकगतिः, महामतिः, पतिधरश्चेति। एते षोडश महाबोधिसत्त्वाः प्रसन्नमूर्तयः सर्वालंकारभूषिता लेख्याः। प्रधानविद्याराजः, विद्याराज्ञी अब्जकूले रूपकमुद्रा। स च यथास्मरतः आगमतश्च। यथास्थानेषु वा शेषा लेख्याः। अन्ते च स्थाने चतुरस्राकारं स्थानं स्थापयेत् पद्मपुष्पसंस्कृतम्। येन स्मरिता विद्यादेवता तेऽस्मिन् स्थाने तिष्ठन्त्विति॥

एवं दक्षिणे पार्श्वे भगवतः शाक्यमुनेः द्वौ प्रत्येकबुद्धौ गन्धमादनः उपरिष्टश्चेति। एवं प्राङ्मुखं मण्डलं सर्वतःप्रवेशद्वारं कार्यम्। भगवतः शाक्यमुनेः पार्श्वे अपरौ द्वौ प्रत्येकबुद्धौ चन्दनः सिद्धश्चेति आलेख्यौ। तेषामधस्ताद् द्वौ महाश्रावकौ महाकाश्यपः महाकात्यायनश्चालेख्यौ। तेषामपि वामतः आर्यवज्रपाणिः कुवलयश्यामाभः प्रसन्नमूर्तिः सर्वालंकारभूषितः। दक्षिणे चामरव्यग्रहस्तः वामेन क्रोधमूर्तिहस्तः वज्रमुष्टिः वज्राङ्कुशि वज्रशृङ्खला सुबाहु वज्रसेन यथावेषचिह्नस्थानासनसर्वविद्याराज्ञाराज्ञीसपरिवारः रूपमुद्रादिषु
G 41 यथास्मरणा लेख्याः। तेषामपि वामतः चतुरस्राकारमुभयवज्रमुद्रां लिखेत्। लिख्य च वक्तव्यम्–येऽत्र स्थाने न स्मरिता विद्यागणाः, तेऽत्र स्थाने तिष्ठन्त्विति॥

तेषामुपरिष्टात् वेद्यारमिताः भगवती मामकी आलेख्याः। सर्वालंकारविभूषिताश्च ताः प्रसन्नमूर्तयः॥

तेषामप्युपरिष्टाद् अष्टौ उष्णीषराजानः समन्तज्वालमालाकुलाः। मुद्रा च स्वकस्वकानि महाराजचक्रवर्तीरूपाणि आलेख्यानि। कनकवर्णप्रसन्नेन्द्रियाणि सर्वालंकारविभूषितानि। ईषत्तथागतप्रतिमदृष्टिजातानि। तद्यथा–चक्रवर्ती, उष्णीषः, अभ्युद्गतोष्णीषः, सितातपत्रः, जयोष्णीषः, कमलोष्णीषः, तेजोराशिः, उन्नतोष्णीष इति॥

एते अतः उष्णीषराजानः प्रत्येकबुद्धानां वामतः आलेख्य, द्वारे बुद्धो बोधिसत्त्वो कार्यप्रवेशात दक्षिणतो लोकातिक्रान्तगामी नाम जटामकुटधारी सौम्यमूर्तिः दक्षिणहस्तेन अक्षसूत्रं गृहीत्वा वामहस्तेन कमण्डलुं द्वाराभिमुखः ईषद् भ्रुकुटीवदनः वामनः प्रवेशो महाबोधिसत्त्वः अजितंजयो नाम आलेख्यः। प्रसन्नमूर्तिः जटामकुटधारी दण्डकमण्डलु-

वामकरावसक्तः दक्षिणहस्तेन अक्षसूत्रं गृहीत्वा वरप्रदानकरः ईषद्भ्रुकुटीवदनः द्वाराभिमुख आलेख्यः ॥

सिंहासनस्याधस्ताद् धर्मचक्रः समन्तज्वालमालाकुलः, तस्याप्यधस्तात् रत्नविमानः, तत्रस्थो भगवां महाबोधिसत्त्वः मञ्जुश्रीः कुमारभूतः कुमाररूपी कुङ्कुमगौराकारः प्रसन्नमूर्तिः चारुरूपी ईषत्प्रहसितवदनः वामहस्ते नीलोत्पलावसक्तः दक्षिणहस्तेन श्रीफलावसक्तवरदः सर्वबालालंकारभूषितपञ्चचीरकोपशोभितः मुक्तावलीयज्ञोपवीतः पट्टांशुकोत्तरीयः पट्टवस्त्रनिवस्तः समन्तप्रभः समन्तज्वालमालाकुलः पद्मासनोपनिषण्णः यमान्तकक्रोधराजगतदृष्टिः मण्डलप्रवेशद्वाराभिमुखः चारुदर्शनो सर्वतः आलेख्यः ॥

तस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मस्याधस्ताद् यमान्तकः क्रोधराजा आलेख्यः महाकृतरूपी G 42 समन्तज्वालामालाकुलः आज्ञां प्रतीच्छमानः महाबोधिसत्त्वगतदृष्टिः सर्वत आलेख्यः । वामपार्श्वे पद्मस्याधस्ताच्छुद्धावासकायिकाः देवपुत्ररूपिणः बोधिसत्त्वाः पञ्च आलेख्याः । तद्यथा—सुनिर्मलः, सुदान्तः, संशुद्धः, तमोद्घातनः, समन्तावलोकश्चेति । सर्वे च ते शुद्धावासभवनोपनिषण्णाः अनेकरत्नोज्वलशिलातलाकाराः । समन्तज्वालाविचित्रपुष्पावकीर्णश्चारुरूपी आलेख्यः ॥

बहिः समन्ताच्चतुरस्राकारं चतुस्तोरणाकारं चतुर्दिशं विचित्रपञ्चरङ्गोज्वलं सुप्रगुणरेखावनद्धं अभ्यन्तरमण्डलं कार्यम् । पूर्वायां दिशि भगवतः शाक्यमुनेः उपरिष्टाद् रेखाभिः मध्ये संकुसुमितराजेन्द्रः पद्मासनोपनिषण्णः तथागतविग्रहः स्वल्पमात्रः कार्यः समन्तज्वालमालाकुलः वरप्रदानहस्तः पर्यङ्कोपनिषण्णः ॥

तस्य दक्षिणतः उष्णीषचक्रवर्तिमुद्रा लेख्या । वामतस्तेजोराशिमुद्रा लेख्या । तथागतलोचनाया उपरिष्टात्प्रज्ञापारमितामुद्रा लेख्या । भगवतः आर्यावलोकितेश्वरस्योपरिष्टात् प्रज्ञापारमितामुद्राया दक्षिणतः भगवानमिताभः तथागतविग्रहः कार्यः वरप्रदानहस्तः पद्मासनोपनिषण्णः समन्तज्वालमालाकुलः ॥

तस्यापि दक्षिणतः पात्रचीवरमुद्रे कार्यौ । एवमनुपूर्वतः प्रवेशस्थाने पद्ममुद्रा कार्याः । भगवतो संकुसुमितराजस्य तथागतस्य वामतो उष्णीषतेजोराशिमुद्रा लेख्या समन्तज्वालमालाकुला ॥

तस्यापि वामतः रत्नकेतुस्तथागतः कार्यः, रत्नपर्वतोपनिषण्णः धर्मं देशयमानः । नीलवैडूर्यमरकतपद्मरागविचित्रज्वालार्चिषि निर्गतः समन्तात्समन्तप्रभ आलेख्यः ॥

तस्यापि वामतः जयोष्णीषमुद्रा समन्तज्वालमालाकुला आलेख्या । तस्यापि वामतः धर्मचक्रमुद्रा आलेख्या समन्तज्वालावती । तस्यापि वामतः खरवरककमण्डलुमक्षसूत्रकमण्डलुं भद्रपीठमुद्रा आलेख्या । अनुपूर्वतः द्वारस्थाने वज्रसूच्योभयतः समन्तज्वाल G 43 आलेख्यः । भगवतो मञ्जुश्रियस्याधस्तान्महामुद्रा पञ्चशिखा नाम उत्पलमुद्रा वा लेख्या । समन्तज्वालिनौ एतौ । अन्योन्यासक्तं समन्तमण्डलाकारमालेख्यम् । द्वारतः पश्चान्मुख-

प्रवेशतः प्राङ्मुखश्च कार्यः । सर्वेष्वपि बहिर्मण्डलं भवति पञ्चवर्णरङ्गोज्वलं विचित्रचारुदर्शनं चतुःकोणविभक्तम् । चतुस्तोरणाकारं चतुर्दिशं द्विहस्तमात्राभ्यन्तरमण्डलतो बहिरालेख्यम् । पूर्वस्यां दिशि महाब्रह्मा चतुर्मुखः शुक्लवस्त्रनिवस्तः श्वेतवस्त्रोत्तरासङ्गिनः श्वेतयज्ञोपवीतः कनकवर्णः जटामकुटधारी दण्डकमण्डलुं वामावसक्तपाणिः ॥

तस्य दक्षिणतः आभास्वरो देवपुत्रः कार्यः कनकवर्णः ध्यानान्तरगतमूर्तिः पट्टवस्त्रनिवस्तः पट्टांशुकोत्तरीयः सुप्रसन्नवदनः जटामकुटधारी श्वेतयज्ञोपवीतः पर्यङ्कोपनिषण्णः दक्षिणहस्तेन वरदः ॥

तस्य दक्षिणत अकनिष्ठो देवपुत्रः कार्यः सर्वालंकारभूषितः प्रसन्नमूर्तिः ध्यानगतचेतसः पट्टवस्त्रनिवसननिवस्तः पट्टांशुकोत्तरीयः ॥

तस्य दक्षिणतः पयङ्कोपविष्टः दक्षिणहस्तेन वरदः श्वेतयज्ञोपवीतः ॥

एवमनुपूर्वतः, संतुषितः सुनिर्मितः, परनिर्मितः, सुयामशक्रप्रभृतयो देवपुत्रा आलेख्याः यथानुपूर्वतः यथावेषसंस्कृताः ॥

शक्रस्याधस्ताच्चातुर्महाराजकायिकाः सदामत्ताः मालाधारिणो करोटपाणयः वीणाद्वितीयका लेख्याः । भौमाश्च देवपुत्रा यथानुपूर्वतः यथावेषेणालेख्याः ॥

एवं दक्षिणायां दिशि अबृहअनयसुदृशसुदर्शनं परीत्ताभपुण्यप्रसवप्रभृतयो देवपुत्रा आलेख्या यथावेषस्थानाः ॥

एवं पश्चिमायां दिशि चोत्तरायां दिशि । तेषामधस्ताद् द्विपङ्क्तिआश्रिता आलेख्याः । द्वितीयमण्डलाद् बहिस्तृतीयमण्डलं भवति । चतुर्दिशं चत्वारो महाराजानः अनुपूर्वत आलेख्याः ॥

उत्तरायां दिशि प्रविशतो दक्षिणः धनदः निधिसमीपस्थः सर्वालंकारभूषितः ईषद्भग्नकिरीटः यक्षरूपी । तस्य दक्षिणतः मणिभद्रपूर्णभद्रौ यक्षसेनापती आलेख्यौ ॥

G 44 एवमनुपूर्वतः हारीती महायक्षिणी आलेख्या । प्रियंकरः कुमार उत्सङ्गोपविष्टो मण्डलं निरीक्षमाणः आलेख्याः । पञ्चिकः पिङ्गलः भीषणश्च आलेख्यः ॥

तेषां च समीपे यक्षाणां मुद्रा आलेख्याः । एवमनुपूर्वतः वरुणो पाशहस्तः पश्चिमायां दिशि आलेख्यः । नागौ नन्दोपनन्दौ तक्षकवासुकिप्रभृतयोऽष्टौ महानागराजानः आलेख्याः ॥

एवं द्विपङ्क्याश्रिताः अनुपूर्वतः यक्षराक्षसकिन्नरमहोरगऋषयः सिद्धप्रेतपिशाचगरुडकिन्नरमनुष्यामनुष्याद्याः। ओषधयश्च मणिरत्नविशेषाः पर्वताः सरितः द्वीपाश्च अनुपूर्वतः सर्वे प्रधानालेख्याः ॥

दक्षिणायां दिशि यम आलेख्यः सपरिवारः । मातरः सप्त पूर्वदक्षिणस्यां दिशि । अग्निः समन्तज्वालमालाकुलः दण्डकमण्डलुअक्षसूत्रव्यग्रपाणिः जटामकुटधारी श्वेतवस्त्रनिवस्तः पट्टांशुकोत्तरासङ्गिकः श्वेतयज्ञोपवीतः कनकवर्णः भस्मत्रिपुण्डरीकृतः ॥

एवं नानाकरणप्रहरणवेषसंस्थानवर्णतत्त्वद्विपङ्क्तीआश्रिता आलेख्याः । सर्वतः प्रविशतो बहिर्मण्डले उमापतिर्वृषवाहनस्त्रिशूलपाणिः, उमा च देवी कनकवर्णा सर्वालंकारभूषिता, कार्त्तिकेयश्च मयूरासनः शक्त्युद्यतहस्तः कुमाररूपी षण्मुखः रक्ताभासमूर्तिः पीतवस्त्रनिवस्तः पीतवस्त्रोत्तरासङ्गः । वामहस्तेन घण्टां गृहीत्वा रक्तपताकां च अनुपूर्वतः भृगिरिटि अत्यन्तकृशाकारः महागणपतिनन्दिकेश्वरमहाकालौ मातरः सप्त यथाभरणप्रहरणवेषसंस्थाना अभिलेख्याः । अष्टौ वसवः, सप्त ऋषयः, विष्णुश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजो गदाशङ्खासिहस्तो गरुडासनः सर्वालंकारभूषितश्च । अष्टौ ग्रहाः, सप्तविंशतिनक्षत्राः, येषु चरन्ति भुवि मण्डले । उपग्रहाश्चाष्टौ देवा लेख्याः । अनुपूर्वशः पञ्चदश तिथयः सितकृष्णाः, द्वादश राशयः, षट् ऋतवो द्वादश मासाः संवत्सरश्च । चतुर्भगिन्यः नावाभिरूढाः भ्रातृपञ्चमाः सलिलवासिनश्चेति संक्षेपतो मुद्रासु व्यवस्थाप्या हि देवता अनुपूर्वतश्च द्विपङ्क्त्याश्रिताश्च कार्या । संक्षेपतो मण्डलत्रये पितृमण्डलाश्रयः अभिलेख्यः चतुरस्रश्च । त्रिमण्डलेष्वपि व्यवस्था सैषा भवति । संक्षेपतः बुद्धो भगवान् सर्वसत्त्वानामग्र अवश्यमभिलेख्यः । G 45
अब्जकुले आर्यावलोकितेश्वरो दक्षिणतः अवश्यमभिलेख्यः । वामतो वज्रकुले वज्रपाणिरवश्यमभिलेख्यः । बोधिसत्त्वानामग्र आर्यसमन्तभद्रोऽवश्यमभिलेख्यः । मञ्जुश्रीः कुमारभूतोऽवश्यमभिलेख्यः । सैषा मुद्रासु यथाव्यवस्थायामभिलेख्याः । एतदभ्यन्तरमण्डलम् । मध्यमण्डलेऽपि ब्रह्मा सहांपतिः पूर्वायां दिश्यवश्यमभिलिखितव्यः । एवमाभास्वरो दक्षिणायां दिशि, अकनिष्ठ अरूपिणश्च देवा मण्डलाकारा अव्यक्ताः नैवसंज्ञानासंज्ञायतना देवाः । उत्तरायां दिशि शक्रो देवराजा सयामः संतुषितः सुनिर्मितः परनिर्मितः परीत्ताभप्रभृतयो देवपुत्रा अवश्यमेकैकः देवराजोऽभिलिखितव्यः । सैषा मुद्रासु व्यवस्थाप्याः ॥

एवं तृतीयमण्डलेऽपि उत्तरायां दिशि ईशानो भूताधिपतिः सहोमया अवश्यमभिलिखितव्यः । द्वितीयद्वारसमीपे कार्त्तिकेयमञ्जुश्रीः मयूरासनः शक्तिपाणिः रक्तावभासमूर्तिः पीतवस्त्रनिवस्तोत्तरासङ्गिनः दक्षिणहस्ते घण्टापताकावसक्तः कुमाररूपी मण्डलं निरीक्षमाणः । पूर्वायां दिशि वैनतेयः पक्षिरूपी । ऋषिर्मार्कण्डः अवश्यमभिलिखितव्यः । सैषा मुद्रासु च व्यवस्थाप्या ॥

दक्षिणपूर्वतः चतुःकुमार्यः कुमारभ्रातृसहिता नौयानसंस्थिता महोदधेः परिभ्रमन्त्यः । अग्निश्च देवराट् अवश्यं लिखितव्यः । एवं दक्षिणस्यां दिशि लङ्कापुरी, बिभीषणश्च राक्षसाधिपतिः, तत्र स्थितः पिचुमन्दवृक्षाश्रितः जम्भलजलेन्द्रनामा यक्षरूपी बोधिसत्त्वोऽवश्यमभिलिखितव्यः ॥

एवमनुपूर्वतो यमो राजा प्रेतमहर्द्धिकोऽवश्यमभिलिखितव्यः । एवं पिशाचराजा विकरालो नामावश्यमभिलिखितव्यः । सैषा मुद्रासु व्यवस्थाप्या ॥

एवं दक्षिणपश्चिमायां दिशि नन्दोपनन्दौ नागमुख्यौ अवश्यमभिलिखितव्यौ । ग्रहमुख्यश्चादित्यः । पश्चिमायां दिशि कपिलमुनिर्नाम ऋषिवरो निर्ग्रन्थतीर्थकरऋषभः

निर्ग्रन्थरूपी अनुपूर्वतः। सैषा मुद्रासु व्यवस्थाप्या। उत्तरपश्चिमासु च दिशासु यक्षराड्
G 46 धनदः, गन्धर्वराट् पञ्चशिखः, किन्नरराजा द्रुमः, एतेऽवश्यमभिलिखितव्याः। सैषा मुद्रासु च अनुपूर्वतः यथास्थानं संस्थिता अभिलिखितव्या इति ॥

चतुर्थमण्डलं बहिः पञ्चरेखाचितं मुद्रामालाभिश्चोपशोभितं चतुरस्रं चतुस्तोरणाकारं चतुर्महाराजविभूषितं यथानुपूर्वस्थिता। तद्यथा–मुद्रा भवन्ति पुरःप्रदेशे नीलोत्पलमभिलेख्यम्। दक्षिणतो वामतः पद्मं वज्रं परशुखड्गशूलत्रिशूलगदाचक्रस्वस्तिककलशमीनशङ्खकुण्डलध्वजपताकं पाशघण्टाकद्वारकधनुर्नाराचमुद्गर एतैर्विविधाकारप्रहरणमुद्रैः समन्ताच्चतुरस्रमालाकुलं कुर्यात्। इत्यतः बहिश्चतुर्दिशं चत्वारो महासमुद्राः स्थापनीयाः ॥

उत्तरायां दिशि चतुरस्राकारं मण्डलकं कृत्वा उभयवज्रं त्रिसूच्याकारं समन्तज्वालं त्रिकोणाकारं मण्डलकं कृत्वा स्थापयेत् ॥

दक्षिणायां दिशि धन्वाकारं मण्डलकं कृत्वा पात्रं समन्तज्वालं स्थापयेत्। पश्चिमायां दिशि समन्तप्रभाकारं मण्डलकं कृत्वा नीलोत्पलं सनालपत्रोपेतं समन्तज्वालम्। विदिक्षु च चत्वारो मुद्रा भवन्ति। उत्तरपश्चिमायां दिशि पाशं वर्तुलाकारं मण्डलं कृत्वा समन्तज्वालं दक्षिणपश्चिमायां दिशि दीर्घाकारमण्डलकं कृत्वा दण्डं समन्तज्वालं दक्षिणपश्चिमायां दिशि परशुं समन्तज्वालं त्रिकोणाकारं मण्डलकं कृत्वा पूर्वोत्तरायां दिशि खड्गं समन्तज्वालं स्थापयेत् ॥

आलिख्य सर्वत इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् त्रीणि मुद्राद्वारसमये बहिर्मण्डलस्यालेख्याः चूर्णैरेव। तद्यथा—वज्रव्यजनोपानहौ च समन्तज्वालिनस्त्वेते अभिलेख्या इति ॥

एतन्मण्डलविधानं कथितं त्विह समासतः।
सत्त्वानां हितकाम्यार्थं मञ्जुघोषेण धीमता ॥ ५२ ॥

ततो मण्डलाचार्येण शिष्याः पूर्वमेवानुग्रहीतव्याः अविकलेन्द्रियाः सर्वाङ्गशोभनाः ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः उत्पादितबोधिचित्ताः महायानयायिनः इतरयानास्पृहणशीला महासत्त्वाः श्राद्धा कल्याणधर्मिणः महाराज्याभिकाङ्क्षिणः अल्पभोगजुगुप्सनाः महाभोगाभि-
G 47 रुचितवन्तः भद्रा विनीताः शीलवन्तः। भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका नियमस्था उपोषधोपवाससंवरस्थाः। महाबोधिसत्त्वाद्वेषिणो महायक्षाः कुलीनाः प्रकृत्यैव धर्मचारिणः अहोरात्रोषिता शुचिवस्त्रप्रावृताः सुगन्धकेशाः त्रिःस्नायिनः मौनिनश्च। तदहो कर्पूरकुङ्कुमलवङ्गसुगन्धमुखगन्धिनः नित्यं चोपस्पृशितवन्तः कुशपिण्डकोपविष्टाः कृतरक्षाविधानाः ब्रह्मचारिणः सत्यवन्तः..................न्मण्डल..................नात्यासन्ने स्थापनीयाः। शुचिनः सुचौक्षाः। अष्टानां प्रभृति यावदेकं नान्येषाम्। ते च परस्परासंसक्तिनः क्षत्रिया मूर्धाभिषिक्ताश्च महाराजानः। तेषां च सुताः कुमारकुमारिकाश्च अविदितग्राम्यधर्माणः। कारणं भगवान् कुमाररूपी महाबोधिसत्त्वो मञ्जुश्रीः बालजनप्रबोधकः कुमारक्रीडनपरश्च। अतः प्रथमतर

एव कुमारः प्रवेशयितव्यः महाराजाभिवर्धन आयुरारोग्यैश्वर्यकामः भोगाभिवर्धनं च । विशेषतः बालानां मन्त्रसिद्धिः ध्रुवं स्थिता इति । एतां पूर्वस्थापितां कृत्वा सुसखायोपेता अप्रमत्ताः । ततो मण्डलाचार्येण कर्पूरधूपं दहता पृष्ठतो बहिर्निर्गन्तव्यम् । निर्गत्य च यथासुखर्तुकोदकेनाष्टशताभिमन्त्रितेन मूलमन्त्रेण महामुद्रापञ्चशिखमुद्रितेनोदकेन स्नात्वा उपस्पृश्य च शुचिवस्त्रप्रावृतेन शुचिना अग्निकुण्डं गत्वा कुशपिण्डकोपविष्टः उत्तरपूर्वाभिमुखः आहुतीनां कर्पूरकुङ्कुमचन्दनमिश्राणामष्टसहस्रं जुहुयात् ॥

पूर्वोक्तेन विधिना आहूय विसृज्य च भूयो मण्डलं प्रवेष्टव्यम् । प्रविश्य चाष्टौ पूर्णकलशाः शुचिवस्त्रोपेताः सहकारपल्लवविभूषिताः सुवर्णरजतरत्नधान्यव्रीहिप्रक्षिप्तगर्भाः । एकं भगवतः शाक्यमुनेः प्रतिपादयेत् । द्वितीयः सर्वबुद्धानाम् । तृतीयः सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकसंघस्य । चतुर्थः सर्वमहाबोधिसत्त्वानाम् । पञ्चमो महाबोधिसत्त्वस्य आर्यमञ्जुश्रियस्य । षष्ठः सर्वदेवानाम् । सप्तमाष्टमौ द्वितीयमण्डले द्वारकोष्ठके स्थापयितव्यौ शुचिवस्त्रोपेताः । एकः सर्वभूतानाम् । द्वितीयः पूर्वसत्त्वपरिणामितः साधारणभूतं स्थापयितव्येति ॥

ततः पूर्वोक्तेनैव विधिना धूपं दहता महामुद्रापञ्चशिखां बद्ध्वा भूयश्चावाहनं कुर्यात् । सर्वबुद्धानां सर्वप्रत्येकबुद्धानां आर्यश्रावकमहाबोधिसत्त्वानां सर्वभूतानाम् । सर्वसत्त्वांश्च G 48 मञ्जुश्रियं कुमारभूतं च पूर्वोक्तेन विधिना आह्वानयेत् ॥

एवं पुष्पधूपगन्धप्रदीपैः निवेद्यांश्च पूर्वनिर्दिष्टैनैव कर्मणा निवेद्यः । सर्वेषां सर्वतः अनुपूर्वेणैव कुर्यात् । प्रदीपग्रहणेनैव घृतदीपं दद्यात् । सर्वेभ्यः आर्यानार्येभ्यः निवेद्यग्रहणेन शाल्योदनं दध्नोपेतं मधुपायसविशेषविशेष्योपरचितघृतपक्वापूपान् अशोकवर्तीखण्डखाद्यकाद्यां सर्वं तथागतेभ्यो निर्यातयेत् । हविःपूर्णश्रीवेष्टमधुशिरपयोपक्वभक्षाद्यां सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकमहाबोधिसत्त्वानार्यदेवतानां च निर्यातयेत् । एवं लड्डुकागर्भोत्कारकविशेषानपूपोषकारणान् सर्वदेवभूतगणान् सर्वसत्त्वांश्च मन्त्रोपेतान् विधिना निर्यातयेत् । एवं सुगन्धपुष्पान् जातीतगरनागपुष्पपुन्नागप्रभृतिं पूर्वनिर्दिष्टान् सर्वबुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकमहाबोधिसत्त्वेभ्य आर्यानार्येभ्यो निर्यातयेत् । विशेषतः तथागतकुले जातीकुसुमं पद्मं पद्मकुले तथा कुवलयं कुलिशपाणे अन्यमन्येभ्यो इतरमिति कर्पूरधूपं तथागतकुले चन्दनं पद्मकुले तथा गुग्गुलं गुह्यकेन्द्रस्य वज्रिणस्यैव शस्यते । अन्यमन्येभ्यः सर्वेभ्यः धूपं दद्यात् । इतरघृतप्रदीपानार्येभ्यः सर्वेभ्यश्चैव दापयेत् । अनार्येभ्यो मन्त्रेभ्यः सुगन्धतैलं तु दापयेत् ॥

अनुपूर्वेण विधिना पूर्वदृष्टेन हेतुना ।
गन्ध···त्तथैवोक्तं सर्वमन्त्रेभ्यो नित्यशः ॥ ५३ ॥

अवलोकितेन यत्प्रोक्तं यत्प्रोक्तं कुलिशपाणिना ।
स्वकस्वकेषु तन्त्रेषु मन्त्रचर्यार्थसाधने ।
तेऽप्येहकल्पे द्रष्टव्या अनुवर्त्याश्च सर्वदा ॥ ५४ ॥ इति ॥

ततो मण्डलाचार्येण पूर्वदृष्टेन विधिना आवाहनपूजनधूपनादिनिवेद्यप्रदानानुवर्तनक्रियां कृत्वा, ततोऽनुसाधकेन कुशलेन त्वरमाणेन सार्वभौतिकं बलिं निरामिषां सर्वतश्च पटहशङ्खध्वनिनन्दीशब्दघोषनिनादितेन धूपपुष्पदीपमालाभिरचितः चतुर्दिक्षु विदिक्षु च इत्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतो बहिर्मण्डलं प्रदक्षिणी..........र्वं भौतिकां क्षि.........र्यो दधिमधुघृताक्तानां शालितन्दुलाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । षडक्षरमूलमन्त्रहृदयेन जुह्वतः पूर्वस्थापितकां मण्डलानुप्रवेशमहासत्त्वां कृतरक्षाविधानानां मण्डलाचार्यशिष्यत्वाभ्युपगतानामुत्पादितबोधिचित्तानामुपोषधिकानां सर्वबुद्धबोधिसत्त्वात्मानिर्यातितमूर्तीनां सिद्ध्यर्थसत्त्वोपभोगसाधारणभूतानामनुत्तरबोधिमण्डाक्रमणकुशलानां सर्वज्ञज्ञानबुद्धलिप्सकामानां मण्डलदर्शनादेव मुच्यते सर्वकिल्बिषात्। आनन्तर्यहारिणोऽपि ये मुच्यन्ते तत्क्षणाज्जनाः।इति॥

ततो मण्डलाचार्येण अनाहतेन वस्त्रेण तन्त्रोद्धृतेनापगतकेशेन मूलमन्त्रसप्ताभिमन्त्रितेन सुगन्धचन्दनकुङ्कुमाभ्यक्तेन पटेन मण्डलं प्रवेष्टुकामानां मुखं वेष्टयित्वा प्रथमतः बालषोडशप्रभृति यावत् त्रीणि वर्षजन्मिकं पञ्चचीरकोपशोभितं एकचीरकोपशोभितं शिखोपशोभितं अशिरस्कं वा राजपुत्रं मूर्धाभिषिक्तं क्षत्रियपुत्रं वा, अन्यं वा महोत्साहमहाराज्यकामं वा प्रवेशयेत् ॥

द्वितीयमण्डलस्थितं मुखं वेष्टयित्वा, उत्पलमुद्रां बद्ध्वा, मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा, कारापयित्वा सुगन्धपुष्पं दत्त्वा, चन्दनकुङ्कुमाभ्यां मिश्रं सचौक्षाभ्यां हस्ताभ्यां पुष्पाणि क्षिपापयितव्याः । यत्रास्य पुष्पमधितिष्ठति तमस्य मन्त्रं दद्यात् । स्वमन्त्रेति कीर्त्यते । सैवास्यानुबद्धा जन्मपरंपरासु सैवास्य कल्याणमित्रो बोधिमण्डक्रमणमहाबोधिसत्त्वज्ञज्ञानपरिपूरणार्थमभिनिर्हरति । सैवास्य साधनीयम् । महाभोगमहाराज्यमहेशाख्यपुद्गलसमवधानता चास्यामभिनिर्हरति । इहैव जन्मनि अविचारयतः साधनीयं सिध्यते सर्वकर्मेषु च । एवमनुपूर्वतः एकं प्रति तावद्यावदष्टानां नान्येषामिति सिद्धिकामैः। अन्येषां यथेप्सतः पापक्षपणार्थं समयमात्रं स्यादिति अभिषेकं ददता मण्डलाचार्येण आदौ तावन्मण्डले बहिर्नातिदूरे नात्यासन्ने पूर्वोत्तरे दिग्भागे भूप्रदेशे अधिष्ठाय मन्त्रपूतं कृत्वा मूलमन्त्रेण ततः राज्याभिषेकमिव मन्यमानमात्मानं एकान्तबुद्धधर्मसंघाभिप्रसन्नं श्राद्धं
G 50 महोत्साहिनं अविरहितबोधिचित्तं महायानयायिनं रत्नत्रयोपकारिणं अविकलेन्द्रियं अकुत्सितमिहैव जन्मनि मन्त्रां साधयितुकामः । भद्राशयं मन्त्रचर्योद्युक्तमानसं कौतुकजातीयं जिज्ञासनहेतोरपि अविकल्पितमन्त्रार्थतद्गतमानसं एकं प्रभृति यावत्पथे अभिषेच्या सेव्या वर्ज्या इति। प्राज्ञा अमूढचरिता इति। शेषतो अभिषेच्याः। नान्येषामपि ।^तत्रः सर्वराज्याभिषेकमिवोपकरणं संभृत्य आचार्यो वा येन तुष्येत, ततः विततवितानोच्छ्रितध्वजपताकश्वेतच्छत्रं मूर्धनि धार्यमाणः सितचामरेण वीज्यमानः महता सत्कारेण नन्दीशब्दनिर्घोषशङ्खभेरीमृदङ्गजयशब्दैः मङ्गलगाथाभिः प्रशस्तस्वस्तिकगाथाभिश्च जिनभाषितैरभिस्तूयमानः प्रदक्षिणीकृत्य च तन्मण्डलं सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां प्रणम्य आचार्यं शिरसा प्रणम्य,

एवं च वक्तव्यम्—उ········ष्याचार्यसर्वबुद्धबोधिसत्त्वमन्त्रचर्यानिर्हारं समनुप्रवेष्टुं सर्वलौकिकातिक्रान्तरहस्यविमोक्षमण्डलं समनुप्रवेष्टुं सर्वधर्मराज्यसमनुप्रवेशबुद्धत्वमधिगन्तुं संक्षेपतो वक्तव्यं बुद्धो भूयामिति ॥

ततः कुशपिण्डकोपविष्टः पूर्वाभिमुखः मं···················पञ्चशिखां बद्धापयितव्यः । ततो खे स्थितं मंत्रं यो यस्य रोचते भूर्जपत्रे गोरोचनया लिखितव्यम् । लिखित्वा चन्दनकुङ्कुमाभ्यां हस्तौ म्रक्षयित्वा शरावसंपुटं च ततस्तं भूर्जपत्रं शरावसंपुटाभ्यन्तरस्थं···········बोधिसत्त्वस्य पादमूले स्थापनीयम् ॥

ततस्तत्रोपविष्टेन विद्यामूलमन्त्रा अष्टशतवारानुच्चारयितव्याः । पूर्वमेव तु ततः तं कुशपिण्डकोपविष्टमभिषेचनीयम् । बहिर्मण्डले यः सर्वसत्त्वसाधारणभूतं पूर्णकलशं पूर्वस्थापितकं द्वारसमीपे तं गृहीत्वा आचार्येण मूलमन्त्रं पठता मूर्धनि अभिषेक्तव्यः । शेषाः यथेष्टमुदकेनेति ॥

ततस्तं शरावसंपुटं तस्यैव दातव्यम् । प्रदीपेन च पाठयितव्यः । यदि सा एव भवति मन्त्रा क्रमात्सिध्यति यत्नतः । अथ अन्यो मन्त्रपठनादेव सिध्यति । अथ मन्त्राक्षरहीना- G 51
तिरिक्ता वा दत्ता भवति, प्रथमसाधन एव सिध्यतीत्यविकल्पतः । सा एष पूर्वलिखिता आचार्येण त्रिभिः साधनैः कुर्वं सिध्यतीत्ययत्नतः ॥

एवं प्रथमतः विद्याभिषेकं दद्यात् । द्वितीयमण्डलाभिषेकं द्वितीयमण्डले सर्वदेवानां यत्प्रतिपादितकं पूर्णकलशं तेनाभ्यषिञ्चेत् । मूर्धनि यथैव वा पूर्वकं तेनैव विधिना मुच्यते सर्वकिल्बिषात् । अनुज्ञातश्च भवति सर्वबुद्धैः । सर्वलौकिकलोकोत्तरसमयमण्डलं सर्वमन्त्रमुद्रासाधनेषु च अभ्यष्टो भवति । सर्वबोधिसत्त्वैरिति आचार्याभिषेकं दद्यात् ॥

तृतीयमण्डले सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यः पूर्णकलशं निर्यातितकं तेनैव विधिना मूर्धन्यभिषेचयेत् । वक्तव्यम्—अनुज्ञातस्त्वं सर्वबुद्धैः बोधिसत्त्वैश्च महर्द्धिकैः सर्वलौकिकलोकोत्तराणां मन्त्राणां लिखनपठनमण्डलोपदेशमन्त्रतन्त्रमुद्राचर्यानिर्देशं स्वयं चरितुं निर्देष्टुं वा । इहैव जन्मनि परंपरासु च यावत्पश्चिमकं नियतं बुद्धत्वं प्राप्तव्यमिति ॥

एवं जयविजयाभिषेकेऽपि पूर्वनिर्दिष्टेन विधिना भगवतो बुद्धनिर्यातितकपूर्णकलशेन बोधिसत्त्व···निर्याति । तेन च पूर्णकलशेन तथैवाभ्यषिञ्चेत् । एवं च वक्तव्यम्—अनुज्ञातस्त्वं सर्वबुद्धैर्भगवद्भिर्महाबोधिसत्त्वैश्च श्रावकैः ॥

अधृष्यः सर्वभूतानामजितः सर्वदेहिनाम् ।
विजय त्वं सर्वमन्त्राणां साधयेस्त्वं यथेप्सतः ॥ ५५ ॥

ततो मण्डलाचार्येण एकैकस्य यथेप्सतः ।
पञ्चाभिषेका दातव्या सर्वेभ्यो पञ्च एव तु ॥ ५६ ॥

ततस्तामनुपूर्वेण मण्डलं प्रवेश्य सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां निर्यातयित्वा मण्डलं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्जयितव्यः । तदहोऽपरेण अनुपूर्वेण शिक्षयितव्याः, मन्त्रचर्यासु नियोक्तव्याः । तत्क्षणादेव भगवतो मञ्जुश्रियस्य महाबोधिसत्त्वस्य यः पूर्वनिर्यातितकं पूर्णकलशं गृहीत्वा तेषां मण्डलप्रविष्टानामुदकचुलुकत्रयं पूर्वाभिमुखं कृत्वा पाययेत् । वक्तव्याश्च—इयं भो
G 52 महाबोधिसत्त्वस्य मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य समयरहस्यं मातिक्रमिष्यथ इति, मा बहु अपुण्यं प्रसविष्यथ इति । सर्वमन्त्राश्च न प्रतिक्षेप्तव्याः । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाश्च न विसंवादनीयाः । गुरुराराधनीयश्चेति । अन्यथा समयातिक्रमः स्यात् । मन्त्राश्च सिद्धिं न गच्छेयुः । बहु पुण्यं स्यादिति । एवं विसर्जयितव्याः ॥

ततो मण्डलाचार्येण भूयो दधिमधुघृताभ्यक्ताः शालितण्डुलाहुतयोऽष्टाक्षरहृदयेन होतव्याः । तत उत्थाय मण्डलमध्यं प्रविश्य पूर्वनिर्दिष्टैः पुष्पैः पूर्वोक्तेन विधिना अर्घ्यं देयः सर्वेभ्यः । मनसा चिन्तयेत् । पूर्वोक्तेनैव धूपेन सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां प्रत्येकबुद्धार्यश्रावकां सर्वदेवनागयक्षगरुडगन्धर्वकिन्नरमहोरगयक्षराक्षसपिशाचभूतयोगिनसिद्धऋषयः । सर्वसत्त्वां संधूप्य पुष्पैरवकीर्य चन्दनकुङ्कुमोदकेनाभ्यषिञ्चेत् । पूर्वोक्तेनैव विधिना विसर्जयेत् । मनसा मोक्षः सर्वेभ्य इति ॥

ततो मण्डलाचार्येण निवेद्यं बलिं चूर्णं सर्वे नद्यां प्लावयितव्याः । दुःखितेभ्यो वा प्राणिभ्यो दातव्यम् । सुपरामृष्टं सुकेलायितं सुशोभितं पृथिवीप्रदेशं कृत्वा गोमयेन लेप्तव्यः । उदकेन वा प्लावयितव्यम् । सुचौक्षमृत्तिकया वाभ्यलिप्य सिकतया वा अस्यैव कार्यं यथेष्टतो गन्तव्यम् । तैर्मण्डलप्रविष्टैरात्मनः क्षीरोदनाहारेण हविष्याहारेण वा भवितव्यमिति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महाकल्पराजेन्द्रान्मञ्जुश्रीकुमारभूतविकुर्वणात् बोधिसत्त्वपटलविसराद् द्वितीयः मण्डलविधिनिर्देशपरिवर्तः समाप्त इति ॥



३ मण्डलविधानपरिवर्तः ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पुनरपि तं शुद्धावासभवनमवलोक्य तां महापर्षन्मण्डलसंनिपतितां सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां प्रणम्य एकाक्षरं परमगुह्यं सर्वविषघातसर्वकर्मिकं च मन्त्रं स्वमण्डलसाधनौपयिकं सर्वक्षुद्रकर्मेषु चोपयोज्यं भाषते स्म । कतमं च तत् ? नमः समन्तबुद्धानाम् । तद्यथा–जः । एष स मार्षा सार्वभूतगणाश्च अस्यैव मन्त्रमेकाक्षरस्य द्वितीयं मण्डलविधानं संक्षेपतो योज्यम् । अष्टहस्तं चतुर्हस्तं वा भूप्रदेशं संशोध्य पञ्चरङ्गिकैरेव चूर्णैः स्वयं लिखितव्यम्, न परैः । यत्र वा तत्र वा । न चात्र दोषः । समं चतुरस्रं त्रिमण्डलोपशोभितं पञ्चशिखां महामुद्रां प्रथमं च तावल्लिखेत् । भगवतो मञ्जुश्रियः उत्पलमुद्रां दंष्ट्रामुद्रां वज्रमुद्रां यष्टिमुद्रां च । एते मुद्रा अभ्यन्तरमण्डलपूर्वदिग्भागे आलिखितव्याः । ततः पद्मवज्र उत्पलध्वजपताकच्छत्रतोरणरथकुञ्जरअश्वबलीवर्दमहिषस्वस्तिकमयूरअजमेषपुरुषकुमाररूपी बहिर्द्वारमूले आलिखितव्यः । यथानुपूर्वतः पङ्क्तिआश्रिता आलेख्याः त्रिमण्डलाश्रिता एवं कार्याः स्युरिति ॥

ततो एकाक्षरेणैव मन्त्रेण पूर्वदक्षिणे दिग्भागे अग्निकार्यं कार्यम् । अपामार्गसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टशतं होतव्यम् । ततः पुष्पैरर्घ्यो देयः । एकाक्षरेणैव मन्त्रेण बलिनिवेद्यप्रदीप यथेप्सितं दातव्यम्, धूपं वा । आह्वाननविसर्जनं कुर्यादिति ॥

ततः प्रवेशयेद्राज्यकामं नगरमध्ये आलिखेत् । भोगकामं वटवृक्षसमीपे, पुत्रकामं पुत्रंजीवकवृक्षसमीपे, अनपत्नीकं हस्त्यश्वकामं कुञ्जरशालायां वाजिशालायां वा, दष्टकं महाह्रदे नागायतने वा, चातुर्थकनित्यज्वरसर्वज्वरेषु च एकलिङ्गे ग्रामदक्षिणदिशे वा, राक्षसगृहीतं श्मशाने शून्यगृहे वा, पिशाचगृहीतं विभीतकवृक्षसमीपे एरण्डवृक्षसमीपे वा, मातरसर्वगृहीतेषु चतुःपथेषु मृतकसूतकगृहसमीपे वा, ब्रह्मराक्षसगृहीतं तालवृक्षे श्लेष्मातकवृक्षे वा, गरदत्तकं एकाक्षरेणैव मन्त्रेणैव उदकं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा तत्रैव मण्डलमध्ये पातयितव्यः । मुच्यते ॥

एवं स्त्रियाः पुरुषस्य वा यशोर्थिनं च चत्वरे ब्रह्मस्थले वा आलिखितव्यम् । G 54
मृतवत्सायाः सफले वृक्षे क्षीरवृक्षे वा, शालिधान्यपक्वकेदारमध्ये अनपत्याया लिखितव्यम् । विविधरोगस्त्रीकृतान्यदुष्टतः प्रदरादिषु महारोगस्पृष्टासु, रक्षोघ्नं नदीपुलिने कूले वा पर्वताग्रे चाभिलेख्यम् । सर्वरोगेषु सर्वतः । डाकिनीकृतान्यपि ब्रह्मपालिकायां शून्यवेश्मएकान्तस्थाननिम्नप्रदेशे वा । एवं सर्वकर्मेषु अर्धरात्रे मध्याह्ने वा सर्वकालमभिलिखितव्यम् । तेनैवैकाक्षरमन्त्रेण पुष्पैरर्घ्यं दत्त्वा विसर्ज्य च मण्डलं उदकेन प्लावयितव्यम् । सर्वग्लानानां महती रक्षा कृत्वा भवति ॥

मुच्यते सर्वरोगेभ्यो ईप्सितमर्थं च संपद्यते ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दुर्भगः सुभगो भवेत् ॥ १ ॥
दरिद्रो लभते अर्थां दर्शनादेव मण्डलम् ।
स्त्रियस्य पुरुषस्यापि श्राद्धस्यापि कल्पतः ।
यथेष्टविविधाकारां प्राप्नुयात्संपदां सदा ॥ २ ॥

इति बोधिसत्त्वपटलविसरान्मञ्जुश्रीकुमारभूतमूलकल्पात् तृतीयो मण्डलविधानपरिवर्तः ॥

४ प्रथमपटविधानविसरः ।

नमो बुद्धाय सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनमवलोक्य, पुनरपि तन्महापर्षन्मण्डलसंनिपातमवलोक्य शाक्यमुनेश्चरणयोर्निपत्य प्रहसितवदनो भूत्वा भगवन्तमेतदवोचत्— तत्साधु भगवां सर्वसत्त्वानां हिताय मन्त्रचर्यासाधनविधाननिर्हारनिष्यन्दधर्ममेघप्रवर्षणयथेप्सितफलनिष्पादनपटलविसरः पटविधानं अनुत्तरपुण्यप्रसवः सम्यक्संबोधिबीजमभिनिर्वर्तकं सर्वज्ञज्ञानाशेषअभिनिर्वर्तकं संक्षेपतः सर्वाशापारिपूरकं सर्वमन्त्रफलसम्यक्संप्रयुक्तः सफलीकरणअवन्ध्यसाधितसाधकं सर्वबोधिसत्त्वचर्यापारिपूरकं महाबोधिसत्त्वसंनाहसंनद्धः सर्वमारबलअभिभवनपरापृष्ठीकरणम् । तद्वदतु भगवानस्माकमनुकम्पामुपादाय सर्वसत्त्वानां च ॥

एवमुक्ते मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन, अथ भगवां शाक्यमुनिर्मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्—साधु साधु मञ्जुश्रीः । यस्त्वं बहुजनहिताय प्रतिपन्नो लोकानुकम्पायै, यस्त्वं तथागतमेतमर्थं परिप्रष्टव्यं मन्यसे । तच्छृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्येऽहं ते । त्वदीयं पटविधानविसरसर्वसत्त्वचर्यासाधनमनुप्रवेशमनुपूर्वकः । वक्ष्येऽहं पूर्वनिर्दिष्टं सर्वतथागतैः । अहमप्येदानीं भाषिष्ये—

आदौ तावच्छुचौ पृथिवीप्रदेशे रजोविगते पिचुं गृह्य समयप्रविष्टैः सत्त्वैः तत्पिचुं संशोधयितव्यम् । संशोध्य च अनेन मन्त्रेण मण्डलाचार्येणाभिमन्त्रितव्यम्, अष्टशतवारां— नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामप्रतिहतमतिगतिप्रतिचारिणाम् । नमः संशोधनदुःखप्रशमनराजेन्द्रराजाय तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय । तद्यथा—'ॐ शोधय शोधय सर्वविघ्नघातक महाकारुणिक कुमाररूपधारिणे विकुर्व विकुर्व । समयमनुस्मर । तिष्ठ तिष्ठ । हुम् हुम् फट् फट् स्वाहा ॥

G 56 ततः अवितथग्राम्यधर्मकुमारीब्राह्मणकुलक्षत्रियकुलप्रसूतं वैश्यकुले प्रसूतं नातिकृष्णवर्णयोनिवर्णयोनिवर्जितां अविकलं सर्वाङ्गशोभनां मातापितृअनुज्ञातां उपोषधपरिगृहीतां उत्पादितबोधिचित्तां कारुणिकां अवदातवर्णां अन्यवर्णविवर्जितां संक्षेपतः स्त्रीलक्षणसुप्रशस्तचिह्नां सुशोभनेऽहनि शुक्लपक्षे शुक्लशुभग्रहनिरीक्षिते विगतधूपनिर्हारवर्दलापगते विगतवाते शुचौ प्रदेशे पूर्वनिर्दिष्टां कुमारीं स्नापयित्वा, शुचिवस्त्रप्रावृतेन सुनिवस्तां कृत्वा, अनेनैव मन्त्रेण महामुद्रोपेतरक्षां कृत्वा श्वेतचन्दनकुङ्कुमं निष्प्राणकेनोदकेन्मालोड्य तत्पिबन्तीं च कन्यां तेनैव मन्त्रेण संशोधनेनाभ्युक्षयेत् । चतुर्दिशं च क्षिपेत् श्वेतचन्दनं कुङ्कुमोदकं इत्यूर्ध्वमधश्च विदिक्षु । श्वेतचन्दनकुङ्कुमकर्पूरं चैकीकृत्य पूर्वं दापयेत् । स्वयं वा दद्यात् । साधकाचार्ये वा । तदेवं वाचा भाषितव्यं त्रीन् वारां—अधितिष्ठन्तु बुद्धा भगवन्तो इदं पटसूत्रम्, दशभूमिप्रतिष्ठिताश्च महाबोधिसत्त्वाः । ततस्ते बुद्धा भगवन्तो समन्वाहरन्ति

महाबोधिसत्त्वाश्च । धूपं दहता तस्मिं समये मयूरक्रौञ्चहंससारसचक्रवाकविविधा शुभशकुनया जलस्थलचारिणोऽन्तरिक्षे गच्छेयुः । शुभं वा कूजयेयुः । तत्साधकेन ज्ञातव्यम् । सफलं मे एतत्कर्म । अधिष्ठितं मे बुद्धैर्भगवद्भिर्महाबोधिसत्त्वैश्च मे । तत्पटसूत्रं सुजीवितं मेह जन्मनि । अवन्ध्या मे मन्त्रसिद्धिः । पटहभेरीमृदङ्गशङ्खवीणावेणुपणवमुखशब्दं वा भवेयुः । ....एवं वदेयुरकल्पस्मात् तस्मिं समये जयसिद्धि सिद्ध दत्त दिन्न गृह्ण श्रेयसः सफलकशाक्रप्रभूत एवमादयो अन्ये वा शुभां शब्दां प्रव्याहरन्ति । घण्टानिस्वनं वा भवेयुः नन्दीशब्दं वा । ततो विद्याधरेण ज्ञातव्यम् । बुद्धानां भगवतां महाबोधिसत्त्वानां चाधिष्ठानमेतत् । नान्यत्र अवन्ध्यसिद्धिरिति ॥

अथ ते तस्मिं समये क्रूरं प्रव्याहरन्ते—गृह्ण खाद खादापय नष्ट विनष्ट कष्ट दूर सुदूर नास्तीत्येवमादयः शब्दा निश्चरन्ति । वानरमहिषक्रोष्टुकगर्दभमार्जारकुत्सिततिर्यग्द्विपदचतुःपदानां शब्दा निश्चरेयुः । ततो साधकेन ज्ञातव्यं नास्ति मे सिद्धिरिति । इहजन्मनि संहर्तव्यः । भूयो वा पूर्वसेवां कृत्वा प्रारब्धव्यम् । एवं यावत् सप्तवारान् । पश्चानन्तर्य- G 57
कारिणस्यापि सप्तमे कर्मप्रयोगे सिध्यतीति ॥

ततः साधकेन तां कुमारीं कृतरक्षां कृत्वा कुशपिण्डकोपविष्टकां कारयेत् । पूर्वाभिमुखामुत्तराभिमुखां वा संस्थाप्य आत्मनश्च हविष्याहारः तां च कन्यां हविष्याहारं भोजयेत् । पूर्वमेव परिकल्पितं कुशपिण्डकं तेनैव विधिना तं पिचुं कर्तापयेत् । तत्सूत्रं सुकर्तितं शुक्लं पूर्वशिक्षापितकन्यया संहृत्य, अष्ट पञ्च त्रीणि एकं प्रभृति यावत् षोडशमात्रां पलां वा कर्षां वा सुप्रशस्तगणनमेतां कुर्यान्मध्यमे अष्टमां गाथा इतरे पञ्चैक वा । क्षुद्रसाध्येषु कर्मसु यथाशक्तितः कुर्यात्सर्वकर्मिषु मन्त्रवित् ॥

ततःप्रभृति यत्किंचित्पापं कर्म पुरा कृतम् ।
नश्यते तत्क्षणादेव सूत्रार्थं च न चेतने ॥ १ ॥

संगृह्यमिदं सूत्रं शुचौ भाण्डे निवेशयेत् ।
न हि तन्तुगतो कृत्वा धूपयेत्कर्पूरधूपनैः ॥ २ ॥

अप्राण्यङ्गसमुत्थं वा कुङ्कुमचन्दनादिभिः ।
अर्चितं सुगन्धपुष्पैर्मल्लिकचम्पकादिभिः ॥ ३ ॥

शुचौ प्रदेशे संस्थाप्य कृतरक्षापिधानितम् ।
मन्त्रवित्सर्वकर्मज्ञो कृतजापः सुसमाहितः ॥ ४ ॥

तन्तुवायं ततो गत्वा मूल्यं दत्त्वा यथेप्सितम् ।
अव्यङ्गमकृशं चैव शुक्लधर्मसदारतम् ॥ ५ ॥

अव्याध्यार्तमवृद्धं च कासश्वासविनिर्मुक्तम् ।
कासश्वासविनिर्मुक्तं अषण्डं योनिसत्वजम् ॥ ६ ॥

अनवद्यमकुब्जं चैवापङ्गुपतिवर्जितम् ।
समस्तलक्षणोपेतं प्रशस्तं चारुदर्शनम् ॥ ७ ॥
शुभबुद्धिसमाचारं लौकिकीं वृत्तिमाश्रितम् ।
सिद्धिकामोऽत्र तं याचेदुत्तमे पटवायने ॥ ८ ॥
प्रशस्ता शुभवर्णे वा बुद्धिमन्तो सुशिक्षितः ।
अतोत्कृष्टतमैः श्रेष्ठैः पटवायनश्रेयसैः ॥ ९ ॥
G 58 उत्तमे उत्तमं कुर्यान्मध्यमे मध्यसाधनम् ।
इतरैः क्षुद्रकर्माणि निकृष्टान्येव सर्वतः ॥ १० ॥
यथामूल्यं ततो दत्त्वा यथा वदति शिल्पिनः ।
प्रथमे वाक्समुत्थाने शिल्पिनस्य स मन्त्रवित् ॥ ११ ॥
दद्यात्पण्यं ततः क्षिप्रं वीरक्रयेति स उच्यते ।
प्रार्थनादेव चैतस्य पुण्यभावेन जापिने ॥ १२ ॥
क्षिप्रसिद्धिकरो ह्येष पटश्रेष्ठो निरुत्तरः ।
सर्वकर्मकरो पूज्यो दिव्यमानुष्यसौख्यदः ।
श्रेयसः सर्वभूतानां सम्यक्संबुद्धभाषितम् ॥ १३ ॥ इति ॥

ततो विद्याधरेण तन्तुवायस्य पोषधं दत्त्वा सुशुभे नक्षत्रे प्रातिहारकपक्षे शुक्लेऽहनि शुभग्रहनिरीक्षिते अन्ये वा शुक्लपक्षे सुकुसुमितसहकारमञ्जरीवरतरुपुष्पाढ्यवसन्तसमये ऋतुवरे तस्मिन् काले तस्मिन् समये पूर्वाह्णोदिते सवितरि पूर्वनिर्दिष्टं तन्तुवायं हविष्याहारं शुचिवस्त्रप्रावृतबद्धोष्णीषशिरस्कसुस्नातं सुविलिप्तं श्वेतचन्दनकुङ्कुमाभ्यामन्यतरेणानुलिप्ताङ्गं कर्पूरवासितवदनं हृष्टमनसं क्षुत्पिपासापगतं कृत्वा सर्वत्र भाण्डं रज्ज्वाद्युपकरणानि च मृद्गोमयाभ्यां प्रक्षाल्य प्रत्यग्राणि च भूयो भूयो पञ्चगव्येन प्रक्षालयेत् । ततो निःप्राणकेनोदकेन प्रक्षाल्य श्वेतचन्दनकुङ्कुमाभ्यामभ्यषिञ्चेत् शुचौ पृथिवीप्रदेशे अपगतकोलाहले विगतजनपदे विविक्तासने प्रसन्ने गुप्ते पुष्पार्चिते ॥

ततः साधकेन संशोधनमन्त्रेणैवाष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा श्वेतसर्षपान् चतुर्दिक्षु इत्यूर्ध्वमधः विदिक्षु च क्षिपेत् । ततो तन्तुवायं सर्षपैः संताड्य महामुद्रां पञ्चशिखां बद्ध्वा शिखाबन्धं कुर्वीत । महारक्षा कृता भवति । यदि ज्येष्ठं पटं भवति चतुर्हस्तविस्तीर्णमष्टहस्तसुदीर्घं एतत्प्रमाणं हि तन्तुवायोपचितं कुर्यात् । मध्यमं भवति द्विहस्तविस्तीर्णं पञ्चहस्तदीर्घत्वम् । कन्यसं सुगतवितस्तिप्रमाणअङ्गुष्ठहस्तदीर्घत्वम् । तत्र
G 59 भगवतो बुद्धस्य वितस्तिमध्ये दशपुरुषप्रमाणहस्तमेकं एषा सुगतस्य वितस्तिरिति कीर्त्यते । अनेन प्रमाणेन प्रामाण्यमाख्यातम् ॥

उत्तिष्ठ सिद्धिर्ज्येष्ठा तु कथिता लोकपुंगवैः ।
मध्यमे राज्यकामानामन्तर्धाने परे मुनौ ॥ १४ ॥

महाभोगार्थिनां पुंसां त्रिदेवासुरभोगिनाम् ।
कन्यसे सिद्धिमाख्याता मध्यमे सिद्धि मध्यमा ॥ १५ ॥

क्षुद्रकर्माणि सिध्यन्ते कन्यसे तु पटे सदा ।
सर्वकार्याणि सिध्यन्ते सर्वद्रव्याणि वै सदा ॥ १६ ॥

पटत्रयेऽपि निर्दिष्टा सिद्धिः श्रेयोर्थिनां नृणाम् ।
विधिभ्रष्टा न सिध्येयुः शक्रस्यापि शचीपतेः ॥ १७ ॥

सिध्यन्ते क्षिप्रमेवं तु सर्वकर्मानयत्नतः ।
विधिना च समायुक्ता इतस्यापि तृजन्मिनः ॥ १८ ॥

एष मार्गः समाख्यातो जिनैर्जिनवरात्मजैः ।
श्रेयसः सर्वसत्त्वानां दरिद्रानाथदुःखिनाम् ॥ १९ ॥

बोधिमार्गो ह्यशेषस्तु दर्शितस्तत्त्वदर्शिभिः ।
बोधिहेतुरयं वर्त्म मन्त्रमार्गेण दर्शितः ॥ २० ॥

मन्त्राः सिध्यन्त्ययत्नेन सर्वलौकिकमण्डलाः ।
लोकोत्तराश्चापि सिध्यन्ते मण्डला ये उदाहृताः ॥ २१ ॥

बोधिहेतुमतिर्येषां तेषां सिद्धिः सदा भवेत् ।
नान्येषां कथ्यते सिद्धिः अहिता ये जगे सदा ॥ २२ ॥

बोधाय प्रस्थितां सत्त्वां सदा सिद्धिरुदाहृता ।
मञ्जुश्रियस्य महात्मानो कुमारस्येह विशेषतः ॥ २३ ॥

क्षिप्रकार्यानुसाध्यर्थं प्राप्नुयात् सकलादिह ।
अनुपूर्वं ततो शिल्पी पटं वायेत यत्नतः ॥ २४ ॥

दिवसैः पञ्चरष्टाभिः षोडशाद्विचतुष्कयोः ।
अहोरात्रेण वै क्षिप्रं समाप्तिः पटवायने ॥ २५ ॥ G 60

अहोरात्रेण वै श्रैयो उत्तमा सिद्धि लिप्सुनाम् ।
शौचाचारसंपन्नो शिल्पिनो नित्यधिष्ठितः ॥ २६ ॥

दूरादावस्तथा गत्वा कुटिप्रस्नावमुत्सृजेत् ।
सचेलस्तु ततः स्नात्वा अन्यवासान्निवास्य च ॥ २७ ॥

शुक्लाम्बरधरः स्रग्मी उपस्पृश्य पुनः पुनः ।
श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गो हस्तौ उद्धृष्य शिल्पिनः ॥ २८ ॥

भूयो वयेत यत्नेन श्लक्ष्णं संधोतं सदा ।
एवमाद्यैः प्रयोगैस्तु अन्यैर्वा जिनभाषितैः ॥ २९ ॥

विचारशीली यत्नेन पटस्याशेषवायना ।
समाप्ते तु पटे प्रोक्ते पूर्वकर्मसु निर्मिते ॥ ३० ॥

प्रमाणस्थे अहीने च कुर्याद् भद्रेऽहनि समम् ।
अवतारयेत्ततो तन्त्रा शुक्लपक्षे सुशोभने ॥ ३१ ॥

परिस्फुटं तु पटं कृत्वा दशाबद्धानुशोभनम् ।
वेणुयष्ट्यावनद्धं तु पटं गृह्य ततो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

शिल्पिनं स्वस्त्ययित्वा तु संविभागार्थविस्तरैः ।
गत्वा यथेष्टतो मन्त्री सुसमाचारसुव्रती ॥ ३३ ॥

सुगन्धपुष्पैरभ्यर्च्य शुचौ देशे तु तं न्यसेत् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण कृतरक्षापिधानितम् ॥ ३४ ॥

येन तत्पिचुकं पूर्वं संशोध्यं बहुधा पुनः ।
तेनैव कारयेद् रक्षामात्मनश्च पटस्य वै ॥ ३५ ॥

मञ्जुश्रियो महावीरः मन्त्ररूपेण भाषितः ।
अतीतैर्बहुभिर्मन्त्रैर्मयाप्येतर्हि पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

स एव सर्वमन्त्राणां विचेरुः मन्त्ररूपिणः ।
महावीर्यो महातेजाः सर्वमन्त्रार्थसाधकः ॥ ३७ ॥

करोति त्रिविधाकारां विचित्रा त्राणहेतवः ।
जम्बूद्वीपगताः सत्त्वाः मूढाचारचेतनाः ॥ ३८ ॥

G 61 अश्राद्धविपरीतास्तु मिथ्याचारसलोलुपाः ।
न साधयन्ति मन्त्राणि सर्वद्रव्याणि वै पुनः ॥ ३९ ॥

अत एव भ्रमन्ते ते संसारान्धारचारके ।
यस्तु शुद्धमनसो नित्यं श्राद्धो कौतुकमङ्गले सदा ॥ ४० ॥

औत्सुको सर्वमन्त्रेषु नित्यं ग्रहणधारणे ।
सिद्धिकामा महात्मानो महोत्साहा महोजसः ॥ ४१ ॥

तेषां सिद्ध्यन्त्ययत्नेन मन्त्रा ये जिनभाषिताः ।
अश्राद्धानां तु जन्तूनां शुक्लो धर्मो न रोहते ॥ ४२ ॥

बीजमूषरे क्षिप्तं अङ्कुरोऽफलो यथा ।
श्रद्धामूलं सदा धर्मे उक्तं सर्वार्थदर्शिभिः ।
मन्त्रसिद्धिः सदा प्रोक्ता तेषां धर्मार्थशीलिनाम् ॥ ४३ ॥ इति ॥

ततो साधने शिल्पिनः सुशिक्षितचित्रकरो वा आत्मनो वा कुशला लेख्याः । अश्लेषकैरङ्गैः सर्वोज्वलं रङ्गोपेतं वर्णकं गृह्य पूर्वेणैव विधिना यथा तन्तुवायवायनेनैव लक्षणसमन्वागतेन चित्रकरेण । पेयालं विस्तरेण कर्तव्यं यथा पूर्वं तन्तुवायविधिः । तेनैव तत्पटं चित्रापयितव्यम्, स्वयं वा चित्रितव्यम् । कर्पूरकुङ्कुमचन्दनादिभिरङ्गं वासयितव्यम् । धूपं दहता तेनैव मन्त्रेणाष्टशतवारं परिजप्य नागकेसरपुन्नागबकुलचम्पकवार्षिकधानुष्कारिकमालतीकुसुमादिभिः तं पटमभ्यवकीर्य पूर्वाभिमुखः कुशपिण्डकोपविष्टः स्वस्थबुद्धिः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वगतचित्तः सूक्ष्मवर्तिप्रतिगृहीतपाणिरनायासचित्तः तं पटमालिखेत् ॥

आदौ तावच्छाक्यमुनिं तथागतमालिखेत् सर्वाकारवरोपेतं द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणलक्षितमशीत्यानुव्यञ्जनोपशोभितशरीरं रत्नपद्मोपरिनिषण्णं समन्तज्वालं समन्तव्यामोपशोभितमूर्तिं धर्मं देशयमानं प्रसन्नमूर्तिं सर्वाकारवरोपेतं मध्यस्थं वैदूर्यनालपद्मं अधश्च महासारम् । द्वौ नागराजानौ तं पद्मनालं धारयमाणौ तथागतदृष्टयो दक्षिणहस्तेन नमस्यमानौ शुक्लौ G 62
सर्वालंकारभूषितौ मनुष्याकारार्धसर्पदेहनन्दोपनन्दौ लेखनीयौ । समन्ताच्च तत्पद्मसरं पद्मपत्रपुष्पकुड्मलविकसितजलजप्राणिभिश्च शकुनमीनादिभिर्व्याप्तं अशेषविन्यस्तसुचिरसुशोभनाकारमभिलेख्यम् । यद्भगवतो मूलपद्मदण्डं विटपं तत्रैव विनिःसृतान्यनेकानि पद्मपुष्पाणि अनुपूर्वोन्नतानि वामपार्श्वेऽष्टौ पद्मपुष्पाणि । तेषु च पद्मेषु निषण्णानि अष्टौ महाबोधिसत्त्वविग्रहानभिलेख्याः । प्रथमं तावदार्यमञ्जुश्रीः ईषत्पद्मकिञ्जल्कगौरः कुङ्कुमकनकवर्णो वा कुमाराकारो बालदारकरूपी पञ्चचीरकशिरस्कः कुमारालंकारालंकृतः वामहस्तनीलोत्पलगृहीतः दक्षिणहस्तेन तथागतं नमस्यमानः चारुमूर्तिस्तथागतगतदृष्टिः सौम्याकारः ईषत्प्रहसितवदनः समन्तज्वालावबुद्धमण्डलपर्येषः । अपरस्मिं पद्मे आर्यचन्द्रप्रभः कुमारभूतः तथैवमभिलेख्यः । तृतीये सुधनः, चतुर्थे सर्वनीवरणः, पञ्चमे गगनगञ्जः, षष्ठे क्षितिगर्भः, सप्तमेऽनघः, अष्टमे सुलोचनमिति ॥

एते सर्वे कुमारदारककाकारा अभिलेख्याः कुमारालंकारभूषिताः । दक्षिणपार्श्वे भगवत अष्टौ महाबोधिसत्त्वाः सर्वालंकारभूषिताः, वर्जयित्वा तु मैत्रेयम् । भगवतः समीपे आर्यमैत्रेयः ब्रह्मचारिवेषधारी जटामकुटावबद्धशिरस्कः कनकवर्णः रक्तकषायधारी रक्तपटांशुकोत्तरीयः तृपुण्ड्रकक्कृतचिह्नः कामरूपी दण्डकमण्डलुवामविन्यस्तपाणिः कृष्णसारधर्मवामस्कन्धावक्षिप्तदक्षिणहस्तगृहीताक्षसूत्रः तथागतं नमस्यमानः तद्गतदृष्टिः ध्यानालम्बनगतचित्तचरितः ॥

द्वितीयस्मिं पद्मे समन्तभद्रः प्रियङ्गुवर्णश्यामः सर्वालंकारशरीरः वामहस्ते चिन्तामणिरत्नविन्यस्तः दक्षिणहस्ते श्रीफलविन्यस्तहस्तवरदः चारुरूपी तथैवमभिलिखितव्यम् ॥

तृतीये आर्यावलोकितेश्वरः शरत्काण्डगौरः सर्वालंकारभूषितः जटामकुटधारी श्वेतयज्ञोपवीतः सर्वज्ञशिरसीकृत आर्यामिताभ दशबलजटान्तोपलग्नोपविष्टं चारुरूपं चामरहस्तारविन्दविन्यस्तं दक्षिणहस्तेन वरदं ध्यानालम्बनगतचित्तचरितं समन्तद्योतितशरीरम् ॥

चतुर्थे आर्यवज्रपाणिः वामहस्तविन्यस्तवज्रं कनकवर्णं सर्वालंकारभूषितं दक्षिण-
G 63 हस्तोपरुद्धसफलं वरदं च चारुरूपिणं सौम्यदर्शनं हारार्धहारोपगुण्ठितदेहं मुक्ताहारयज्ञोपवीतं रत्नोज्ज्वलविच्छुरितमकुटं पट्टचलननिवस्तं श्वेतपट्टांशुकोत्तरीयं तथैवार्यावलोकितेश्वरं समन्तभद्रं तीर्थनिवासनोत्तरासङ्गदेहं आकारतश्च यथापूर्वनिर्दिष्टम् ॥

पञ्चमास्मिं तथा पद्मे आर्यमहामतिः, षष्ठे शान्तमतिः, सप्तमे वैरोचनगर्भः, अष्टमे अपायजहश्चेति । इत्येते बोधिसत्त्वा अभिलेख्याः । फलपुस्तकविन्यस्तकपाणयः सर्वालंकारसुशोभनाः पट्टांशुकोत्तरीयाः सर्वालंकारभूषिताः पट्टचलनिकानिवस्ताः ॥

तेषां चोपरिष्टात् अष्टौ प्रत्येकबुद्धा अभिलेख्याः । भिक्षुवेषधारिणो महापुरुषलक्षणशरीराः रक्तकाषायवाससा पर्यङ्कोपविष्टाः रत्नोपलनिषण्णाः शान्तवेषात्मकाः समन्तज्वालमालाकुलाः सुगन्धपुष्पाभिकीर्णाः । तद्यथा—मालतीवार्षिकाधानुष्कारिकापुन्नागनागकेसरादिभिः पुष्पैः समन्तात् पटमभ्यवकीर्यमाणं लिखितं भगवतः शाक्यमुनेः वामपार्श्वे आर्यमञ्जुश्रियस्योपरिष्टात् अनेकरत्नोपरचितं सुदीर्घाकारं विमानमण्डलं शैलराजोपशोभितं रत्नोपलसंछन्नपर्वताकारमभिलिखेत् ॥

तत्रस्थां बुद्धां भगवतां अष्टौ लिखेत् । तद्यथा—रत्नशिखिं वैदूर्यप्रभारत्नविच्छुरितसमन्तव्यामप्रभं पद्मरागेन्द्रनीलमरकतादिभिः वैदूर्याश्मगर्भादिभिः महामणिरत्नविशेषैः समन्ततो प्रज्वाल्यमाणं ईषदादित्योदयवर्णं तथागतविग्रहं पीतचीवरोत्तरासङ्गिनं पर्यङ्कोपविष्टं धर्मं देशयमानं पीतनिवासितोपरिवस्तं महापुरुषलक्षणकवचितदेहं अशीत्यानुव्यञ्जनोपशोभितमूर्तिं प्रशान्तदर्शनं सर्वाकारवरोपेतं रत्नशिखिं तथागतमभिलिखेत् ॥

द्वितीयं संकुसुमितराजेन्द्रं तथागतं कनकवर्णं अभिलिखेत् सुतरां नागकेसरबकुलादिपुष्पैरभ्यवकीरितमभिलिखेत् आर्यमभिनिरीक्षमाणं समन्तप्रभं रत्नप्रभाविच्छुरितद्योतिपर्येषम् ॥

तृतीयं शालेन्द्रराजं तथागतमभिलिखेत् पद्मकिञ्जल्काभं धर्मं देशयमानम् ॥

G 64 चतुर्थं सुनेत्रं तथागतमभिलिखेत् । यथेमं दुःप्रसहम् । षष्ठं वैरोचनं जिनम् । सप्तमं भैषज्यवैदूर्यराजम् । अष्टमं सर्वदुःखप्रशमनराजेन्द्रं तथागतमभिलिखेदिति ॥

सर्व एव कनकवर्णाः तथागतविग्रहाः कार्याः अभयप्रदानकराः । उपरिष्टाच्च तथागतानां मेघान्तरालस्थाः पटकोणे उभयतः पुष्पवर्षमुत्सृजमानाः द्वौ शुद्धावासकायिकौ देवपुत्रौ अभिलेख्यौ अन्तरीक्षस्थितौ । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणां नमस्यमानौ अभिलेख्यौ ॥

प्रत्येकबुद्धानां चोत्तरतः अष्टौ महाश्रावका अभिलेख्याः बोधिसत्त्वशिरःस्थानावरजोपविष्टाः । तद्यथा—स्थविरशारिपुत्रः महामौद्गल्यायनः महाकाश्यपः सुभूतिः राहुलः नन्दः भद्रिकः कफिणश्चेति ॥

प्रत्येकबुद्धापि। तद्यथा—गन्धमादनः चन्दनः उपरिष्टश्वेतसितकेतुनेमिसुनेमिश्चेति। सर्व एव सुशोभनाः शान्तवेषं आत्मनो सुदान्ताकाराः। महाश्रावका अपि कृताञ्जलयो बुद्धं भगवन्तं शाक्यमुनिं निरीक्षमाणाः। उपरिष्टाच्च शुद्धावासा देवसंनिकृष्टौ अपरौ द्वौ देवपुत्रौ समन्तात्पट्टवितानदीर्घापायशसोभनागृहीतौ सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणामुपरिष्टाद्धारयमाणौ दिव्यमाल्याम्बरधरौ देवपुत्रौ अभिलेख्यौ। भगवतः शाक्यमुनेः उपरिष्टान्मूर्धनि मुक्ताहाररत्नपद्मरागेन्द्रनीलादिभिः ग्रथितं रत्नसूत्रकलापं तस्मिंश्च पट्टवितानसुविन्यस्तं समन्ताच्च मुक्ताहारप्रलम्बोपशोभितमभिलिखेत्। अधश्च बुद्धस्य भगवतः पद्मासनात् आर्यमञ्जुश्रियस्य पादमूलसमीपे नागराजोपनन्दपार्श्वे महारत्नं पर्वतं पद्मसरादभ्युन्नतं रत्नाङ्कुरगुहाकन्दरप्रवाललतापरिवेष्टितं रत्नतरुं महर्षयसिद्धसेवितम्। तस्य पर्वतस्योत्तुङ्गे यमान्तकं क्रोधराजानं महाघोररूपिणं पाशहस्तं वामहस्तगृहीतदण्डं भृकुटिवदनमाज्ञां प्रतीच्छमानं आर्यमञ्जुश्रियगतदृष्टिं वृकोदरं ऊर्ध्वकेशं भिन्नाञ्जनकृष्णमेघसंकाशं कपिलश्मश्रुदीर्घकरालं दीर्घनखं रक्तलोचनकं सर्पमण्डितकण्ठोद्देशं व्याघ्रचर्मनिवसनं सर्वविघ्नघातकमहादारुणतरं महाक्रोधराजानं समन्तज्वालं यमान्तकं क्रोधराजा[नं] अभिलिखेत्॥

तस्य पर्वतस्याधस्ताच्छिलातलोपनिषण्णं पृथिव्यामवनतजानुदेहं धूपकटच्छुकव्यग्र- G 65
हस्तं यथावेषसंस्थानगृहीतलिङ्गं यथानुवृत्तचरितमार्यमञ्जुश्रियगतदृष्टिं साधकमभिलिखेत्। नन्दनागेन्द्रराजसमीपं भगवतः शाक्यमुनेरधस्तात् दक्षिणपार्श्वे पद्मसराभ्युद्गतं महारत्नशैलेन्द्रराजं कथितं तथागतमभिलिखेत्। यमान्तकक्रोधराजरहितं दिव्यपुष्पावकीर्णमभिलिखेत्। आर्यावलोकितेश्वरः स्यात्, तं पर्वतमभिलिखेत्। तदुच्चतुङ्गपर्वतपद्मरागोपलं तमेकाङ्कुरवैदूर्यमयशृङ्गाकारमभिलिखेत्॥

तत्रापाश्रितां देवीमार्यावलोकितेश्वरकरुणां आर्यतारां सर्वालंकारविभूषितां रत्नपट्टांशुकोत्तरीयां विचित्रपट्टनिवसनां स्त्र्यलंकारसर्वाङ्गविभूषितां वामहस्तनीलोत्पलविन्यस्तां कनकवर्णां कृशोदरीं नातिकृशां नातिबालां नातिवृद्धां ध्यानगतचेतनां आज्ञां प्रतीच्छन्तीम्। दक्षिणहस्तेन वरदादीषदवनतकायां पर्यङ्कोपनिषण्णां आर्यावलोकितेश्वरईषदपगतदृष्टिः समन्तज्वालामालपर्येषिताम्। तत्रैव वैदूर्यरत्नशृङ्गे पुन्नागवृक्षपरिवेष्टितं सर्वतः शाखासु समन्तपुष्पोपरचितविकसितसुपुष्पितं भगवतीं तारामभिच्छादयमानां तेनैव चापगतशाखासुचित्रं प्रवालाङ्कुरावनद्धं विचित्ररूपरङ्गोज्ज्वलं तारादेवीमुखावलोकनमभिलेख्या॥

सर्वविघ्नघातकी देवी उत्तमाभयनाशिनी।
साधकस्य तु रक्षार्थं लिखेत वरदां शुभाम्॥ ४४॥

स्त्रीरूपधारिणी देवी करुणा दशबलात्मजा।
श्रेयसः सर्वभूतानां लिखेत वरदायिकाम्॥ ४५॥

कुमारस्येह माता देवी मञ्जुघोषस्य महाद्युतेः।
सर्वविघ्नविनाशार्थं साधकस्य तु समन्तात्॥ ४६॥

रक्षार्थं मनुजेशानां श्रेयसार्थं पटे न्यसेत् ।
योऽसौ क्रोधराजेन्द्रः पर्वताग्रे समवस्थितः ॥ ४७ ॥

सर्वविघ्नविनाशाय कथितं जिनवरात्मजैः ।
महाघोरो महावन्द्यो महाचण्डो महाद्युतिः ॥ ४८ ॥

G 66 शासने द्विष्टसत्त्वानां निग्रहायैव प्रकल्पते ।
साधकस्य तु रक्षार्थं सर्वविघ्नविनाशकः ॥ ४९ ॥

दारुणो रोषशीलश्च आकृष्टा मन्त्रदेवता ।
सुघोरो घोररूपी च निषेद्धा सर्वनिर्घृणाम् ॥ ५० ॥

अवशानां च वशमानेता पापरौद्रप्रचारिणाम् ।
खचरे भूचरे वापि पाताले चापि समन्ततः ॥ ५१ ॥

नाशयति सर्वदुष्टानां विरुद्धा ये शासने मुनेः ।
चतुरस्रं समन्ताद्वै चतुःकोणं पटं लिखेत् ॥ ५२ ॥

अधश्चैव पटान्ते तु विस्तीर्णसरितालयम् ।
कुर्यान्नागभोगाङ्कमैकैकं च समन्ततः ॥ ५३ ॥

शुक्लेन शुभाङ्गेन मनुजाकारदेहजाः ।
उत्तराशिरसं स्थाप्य कृताञ्जलिपुटः सदा ॥ ५४ ॥

सप्तस्फुटो महावीर्यो महेशाख्यो अनन्तो नाम नामतः ।
तथागतं निरीक्षन्तो मणिरत्नोपशोभितः ॥ ५५ ॥

सुशोभनो चारुरूपी च रत्नाभरणभूषितः ।
आलिखेज्ज्वालमालिनं महानागेन्द्रविश्रुतम् ॥ ५६ ॥

सर्वलोकहितोद्युक्तं प्रवृत्तो शासने मुनेः ।
सर्वविघ्नविनाशाय आलिखेत् सरिताश्रितम् ॥ ५७ ॥

एतत्पटविधानं तु उत्तमं जिनभाषितम् ।
संक्षिप्तविस्तराख्यातं पूर्वमुक्तं तथागतैः ।
आलिखे यो हि विद्वां वै तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ५८ ॥

यत्कृतं कल्पकोटीभिः पापं कर्म सुदारुणम् ।
नश्यते तत्क्षणादेव पटं दृष्ट्वा तु भूतले ॥ ५९ ॥

पञ्चानन्तर्यकारिणं दुःशीलां जुगुप्सिताम् ।
सर्वपापप्रवृत्तानां संसारान्धारचारिणाम् ।
गतियोनिनिकृष्टानां पटं तेषां न वारयेत् ॥ ६० ॥

G 67

दर्शनं सफलं तेषां पटं मौनीन्द्रभाषितम् ।
दृष्टमात्रं प्रमुच्यन्ते तस्मात्पापात्तु तत्क्षणात् ॥ ६१ ॥
किं पुनः शुद्धवृत्तित्वात्सुशुद्धवृत्तोरूपिणः ।
मन्त्रसिद्धौ सदोद्युक्तो सिद्धिं लप्स्येयुर्मानवः ॥ ६२ ॥
यत्पुण्यं सर्वसत्त्वानां पूजयित्वा कल्पकोटिये ।
तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मन्त्री पटमालिखनाद्भुवि ॥ ६३ ॥
सिकता यानि गङ्गायाः प्रमाणे यानि कीर्तिता ।
तत्प्रमाणा भवेद्बुद्धाः प्रत्येकजिनवरात्मजाः ॥ ६४ ॥
खड्गिनः साधका लोके जित्वा बहुधा पुनः ।
तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्ये पटलिखनदर्शनात् ॥ ६५ ॥
वाचनादेव कायेस्य पूजना वाप्यनुमोदना ।
मन्त्रसिद्धिर्ध्रुवा तस्य सर्वकर्मे प्रकल्पिताः ॥ ६६ ॥
यावन्ति लौकिका मन्त्राः भाषिता ये जिनपुंगवैः ।
तच्छिष्यखड्गिभिर्दिव्यैः बोधिसत्त्वैर्महात्मभिः ।
सिद्ध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै पटस्याग्रतुमग्रतमिति ॥ ६७ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानसूत्रान्मञ्जु-
श्रीमूलकल्पाच्चतुर्थः प्रथमपटविधान-
विरसः परिसमाप्तः ॥



५ द्वितीयः पटविधानविस्तरः ।

G 68 अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः सर्वं तत्पर्षन्मण्डलमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–अस्ति मञ्जुश्रीः अपरमपि त्वदीयं मध्यमं पटविधानम्। तद्भाषिष्येऽहम्। शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु ॥

आदौ तावत्पूर्वनिर्दिष्टेनैव सूत्रकेण पूर्वोक्तेनैव विधिना पूर्वपरिकल्पितैः शिल्पिभिः पूर्वप्रमाण एव मध्यमपटः सुशोभनेन शुक्लेन सुव्रतेन अश्लेषकैरङ्गैरपगतकेशसंकारादिभिर्यथैव प्रथमं तथैव तत्कुर्यात् वर्जयित्वा तु प्रमाणरूपकात् । तत्पटं पश्चादभिलिखापयितव्यम् ॥

आदौ तावत् शुद्धावासभवनं समन्तशोभनाकारं स्फुटितरत्नमयाकारं सितमुक्ताहारभूषितम्। तस्मिन् मध्ये भगवान् शाक्यमुनिः चित्रापयितव्यः रत्नसिंहासनोपनिषण्णः धर्मं देशयमानः सर्वाकारवरोपेतः । दक्षिणपार्श्वे आर्यमञ्जुश्रीः पद्मकिञ्जल्काभः कुङ्कुमादित्यवर्णो वा वामस्कन्धप्रदेशे नीलोत्पलावसक्तः कृताञ्जलिपुटः भगवन्तं शाक्यमुनिं निरीक्षमाणः ईषत्प्रहसितवदनः कुमाररूपी पञ्चचीरकोपशोभितशिरस्कः बालदारकालंकारभूषितः दक्षिणजानुमण्डलावनतशिरः । भगवतश्च शाक्यमुनेर्वामपार्श्वे आर्यावलोकितेश्वरः शरत्काण्डगौरो यथैव पूर्वं तथैवमभिलेख्यम् । किं तु भगवतश्चामरमुद्धूयमानम्। तस्य पार्श्वे आर्यमैत्रेयः समन्तभद्रः वज्रपाणिर्महामतिः शान्तमतिः गगनगञ्जः सर्वनीवरणविष्कम्भिनश्चेति । एतेऽनुपूर्वतोऽभिलेख्याः । यथैव प्रथमं तथैव सर्वालंकारभूषिताः चित्रापयितव्याः ॥

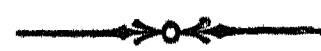
तेषां चोपरिष्टात् अष्टौ बुद्धा भगवन्तश्चित्रापयितव्याः स्थितका अभयप्रदानदक्षिणकराः पीतचीवरोत्तरासङ्गीकृतदेहाः वामहस्तेन चीवरकर्णकावसक्ता ईषद्रक्तावभासकाषायसुनिवस्ताः समन्तप्रभाः सर्वाकारवरोपेताः । तद्यथा–संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतः, रत्नशिखिः, शिखिः, विश्वभुक्, क्रकुच्छन्दकः बकग्रीविः काश्यपः सुनेत्रश्चेति । इत्येते बुद्धा भगवन्तश्चित्रापयितव्याः ॥

G 69 दक्षिणे पार्श्वे भगवत आर्यमञ्जुश्रियस्य समीपे महापर्षन्मण्डलं चित्रापयितव्यम्। अष्टौ महाश्रावकाः, अष्टौ प्रत्येकबुद्धाः, यथैव पूर्वं तथैव ते चित्रापयितव्याः। किं तु आर्यमहामौद्गल्यायनशारिपुत्रौ भगवतः शाक्यमुनेः चामरमुद्धूयमानौ स्थितकायमभिलेख्यौ। एवं शुद्धावासकायिका देवपुत्रा अभिलेख्याः। शक्रश्च देवानामिन्द्रः सयामश्च संतुषितश्च सुनिर्मितश्च शुद्धश्च विमलश्च सुदृशश्च अतपश्च आभास्वरश्च ब्रह्मा च सहांपतिः अकनिष्ठश्च, एवमादयो देवपुत्रा रूपावचराः कामावचराश्चानुपूर्वतोऽभिलेख्याः, आर्यमञ्जुश्रियसमीपस्थाः पर्षन्मण्डलोपरिचितविन्यस्ताः स्वरूपवेषधारिणो चित्रापयितव्याः। भगवतः सिंहासनस्याधस्तात्समन्तान्महापर्वतः महासमुद्राभ्युद्गतं यावत्पटान्ते चित्रापयितव्यः। एकस्मिन् पटान्तकोणे साधको यथावेषसंस्थानाकारः अवनतजानुकौर्परशिरः धूपकटच्छुकव्यग्रहस्तः चित्रापयितव्यः।

तस्मिंश्च रत्नपर्वते आर्यमञ्जुश्रियस्याधस्तात् यमान्तकक्रोधराजा यथापूर्वनिर्दिष्टमभिलेख्यम् । वामपार्श्वे भगवतः सिंहासनस्याधस्ताद् आर्यावलोकितेश्वरपादमूलसमीपे तस्मिंश्च रत्नपर्वतोपनिषण्णा तारादेवी अभिलेख्या । यथा पूर्वनिर्दिष्टा तथा चित्रापयितव्याः । समन्ताच्च तत्पटं मुक्तपुष्पावकीर्णं चम्पकनीलोत्पलसौगन्धिकमालतीवार्षिकधानुष्कारिकपुन्नागकेसरादिभिः पुष्पैरभ्यवकीर्णं समन्तात् पटम् । उपरिष्टाच्च पटान्तकोणे उभयान्ते द्वौ देवपुत्रौ महापुष्पौघमुत्सृजमानौ विचित्ररूपधारिणौ अन्तरीक्षस्थितौ वारिमेघान्तर्गतनिलीनौ उत्पतमानौ सितवर्णौ अभिलेख्याविति ॥

एतन्मध्यमकं प्रोक्तं पटः श्रेयार्थमुद्भवम् ।
मध्यसिद्धिस्तदायत्ता मनुजानां तु भूतले ॥ १ ॥
यत्किंचित्कृतं पापं संसारे संसरतो पुरा ।
नश्यते तत्क्षणादेव पटसंदर्शनादिह ॥ २ ॥
मूढसत्त्वा न जानन्ति भ्रमन्ता गतिपञ्चके ।
पटस्यादर्शना ये तु मञ्जुघोषस्य मध्यमे ॥ ३ ॥
अपि किल्बिषकारी स्यात्पञ्चानन्तर्यकारिणः ।
दुःशीलस्यापि सिध्येयुर्मन्त्रा विविधभाषिताः ॥ ४ ॥
अपि क्षिप्रतरं सिद्धिं प्राप्नुयात्कृतजापिनः ।
रोगी मुच्यते रोगाद् दरिद्रो लभते धनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं मध्यमे पटदर्शने ॥ ५ ॥
दृष्टमात्रे तदा पुण्यं प्राप्नुयाद्विपुलं महत् ।
नियतं देवमनुष्याणां सौख्यभागी भवेन्नरः ।
बुद्धत्वं नियतं तस्य जन्मान्ते च भविष्यति ॥ ६ ॥
लिखनाद्वाचनाच्चैव पूजनलेखनात्तथा ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ ७ ॥
प्रार्थनाध्येषणा ह्येवं पटस्यास्य महाद्युतेः ।
लभते सफलं जन्म क्षिप्रं चानुमोदना ॥ ८ ॥
न शक्यं वाचया वक्तुमपि कल्पाग्रकोटिभिः ।
यत्पुण्यं प्राप्नुयाज्जन्तुः सफलं पटदर्शनात् ॥ ९ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात्
पञ्चमः पटलविसरः । द्वितीयः पटविधानविसरः समाप्तः ॥



६ कन्यसपटविधानविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः अपरमपि पटविधानरहस्यं तृतीयं कन्यसं नाम । यः सर्वसत्त्वानामयत्नेनैव सिद्धिं गच्छेयुः । पूर्वनिर्दिष्टेनैव विधिना शिल्पिभिः सुगतवितस्तिप्रमाणं तिर्यक् तथैव समं चतुरस्रं पूर्ववत् पटश्चित्रापयितव्यः पूर्वनिर्दिष्टैरङ्गैः ॥

आदौ तावदार्यमञ्जुश्रीः सिंहासनोपनिषण्णः बालदारकरूपी पूर्ववत् धर्मं देशयमानः समन्तप्रभा अर्चिषो निर्गच्छमानश्चारुरूपी चित्रापयितव्यः । वामपार्श्वे आर्यसमन्तभद्रः रत्नोपलस्थितः चमरव्यग्रहस्तः चिन्तामणिवामविन्यस्तकरः प्रियङ्गुश्यामवर्णः पूर्ववच्चित्रापयितव्यः। दक्षिणपार्श्वे आर्यमञ्जुश्रियस्य रत्नोपलस्थितः आर्यावलोकितेश्वरः पूर्ववत् चमरव्यग्रहस्तः वामहस्तारविन्दविन्यस्तः समन्तद्योतितमूर्तिरभिलेख्यः । अधश्च सिंहासनात् कनकवर्णः पर्वतो यावत् पटान्ते चित्रापयितव्यः । पटान्तकोणस्य आर्यमञ्जुश्रियस्य सिंहासनस्याधस्ताद् दक्षिणपार्श्वे यमान्तकः क्रोधराजा पूर्ववच्चित्रापयितव्यः । धूपकटच्छुकव्यग्रहस्तः यथापूर्वं तथैव साधकः । उपरिष्टादार्यमञ्जुश्रियस्य संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतश्चित्रापयितव्यः षोडशाङ्गुलप्रमाणः रत्नपर्वतगुहालीनः । कूटागारसदृशाः प्राग्भारपर्वताः दश चित्रापयितव्याः । समन्ताच्च तत्पटं पर्वताकारवेष्टितं लिखेत् । उपरिष्टाच्च पटकोणावस्थितौ पर्वतप्राग्भारसंश्लिष्टौ उत्पतमानविमानपुष्पौघमुत्सृज्यमानौ शुद्धावासकायिकौ देवपुत्रौ शुद्धश्च नाम विशुद्धश्च नाम पूर्ववच्चित्रापयितव्यौ । नानापुष्पाभिकीर्णं च तत्पटमभिलिखापयितव्यमिति ॥

एतत्कथितं सर्वं त्रिविधं पटलक्षणम् ।
कन्यसं नामतो ह्येतत्पटः श्रेयो क्षुद्रकर्मसु ॥ १ ॥
यत्कृतं कारितं चापि पापं कर्म सुदारुणम् ।
कल्पकोटिसहस्राणि दर्शनात्पटमुच्यते ॥ २ ॥
G 74 पटं तु दृष्टमात्रं वै तत्क्षणादेव मुच्यते ।
बुद्धकोटीसहस्राणि सत्कुर्याद्यो हि बुद्धिमां ।
कन्यसं तु पटं दृष्ट्वा कलां नायाति षोडशीम् ॥ ३ ॥
यत्पुण्यं सर्वबुद्धानां पूजां कृत्वा तु तायिनाम् ।
तत्पुण्यं प्राप्नुयाद्विद्वान् कन्यसे पटदर्शने ।
शोभनानि च कर्माणि भोगहेतोरिहाचरेत् ॥ ४ ॥
यावन्ति केचन मन्त्रा ब्रह्मेन्द्रऋषिभाषिताः ।
वैनतेयेन तु प्रोक्ताः वरुणादित्यकुबेरयोः ॥ ५ ॥
धनाद्यै राक्षसैः सर्वैर्दानवेन्द्रैर्महोरगैः ।
सोमवायुयमाद्यैश्च भाषिता हरिहरादिभिः ।
सर्वे मन्त्रा इहानीताः सिध्यन्ते पटमग्रतः ॥ ६ ॥
शान्तिकानि सदा कुर्यात् पौष्टिकानि तथा इह ।
दारुणानि च वर्जीत गर्हिता जिनवरैस्त्विह ॥ ७ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् मञ्जुश्रीमूलकल्पात् षष्ठः पटलविसरः । तृतीयः कन्यसपटविधानः परिसमाप्त इति ॥

७ चतुर्थः पटविधानविसरः ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूत उत्थायासनाद् भगवन्तं शाक्यमुनिं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवतश्चरणयोर्निपत्य भगवन्तमेवमाह—साधु साधु भगवता यस्तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन सुभाषितोऽयं धर्मपर्यायः सर्वविद्याव्रतचारिणामर्थाय हिताय सुखाय लोकानुकम्पायै । बोधिसत्त्वानामुपायकौशल्यता दर्शिता निर्वाणोपरिगामिनी वर्त्मोपविशेषा नियतं बोधिपरायणा संततिर्बोधिसत्त्वानाम् । सर्वमन्त्रार्थचर्यासाधनीयमेतन्मन्त्ररहस्यसर्वजनविस्तारणकरी भविष्यत्यनागतेऽध्वनि निर्वृते लोकगुरौ अस्तमिते तथागतादित्यवंशे रिञ्चिते सर्वबुद्धक्षेत्रे सर्वबुद्धबोधिसत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धैः अन्धकारीभूते लोकभाजने विच्छिन्ने आर्यमार्गे सर्वविद्यामन्त्रौषधिमणिरत्नोपगते साधुजनपरिहीणे निरालोके सत्त्वधातौ सत्त्वा भविष्यन्ति कुसीदा नष्टस्पृहतया अश्राद्धाः खण्डका अकल्याणमित्रपरिगृहीताः शठाः मायाविनो धूर्तचरिताः । ते इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा च संत्रासमापत्स्यन्ते । आलस्यकौसीद्याभिरता न श्रद्धास्यन्ति, कामगवेषिणो न यतिष्यन्ति मिथ्यादृष्टिरताः । ते बहु अपुण्यं प्रसविष्यन्ति सद्धर्मप्रतिक्षेपकाः अवीचिपरायणाः घोराद् घोरतरं गताः । तेषां दुःखितानामर्थाय अवशानां वशमानेता वश्यानामभयप्रदाता । उपायकौशल्यसंग्रहया मन्त्रपटविधानं भाषतु भगवान्, यस्येदानीं कालं मन्यसे ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः मञ्जुश्रियं कुमारभूतं साधुकारमदात्—साधु साधु मञ्जुश्रीः, यस्त्वं तथागतमर्थं परिप्रष्टव्यं मन्यसे । अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयं परमं गुह्यतमं विद्याव्रतसाधनचर्यापटलपटविधानविसरं परमहृदयानामर्थं परमं गुह्यतमं महार्थं निधानभूतं सर्वमन्त्राणाम् । षडेते षडाक्षरपरमहृदयाः अविकल्पतो तस्मिं काले सिद्धिं गच्छन्ति । तेषां सत्त्वानां दमनाय उपायकौशल्यसंभारसमन्त्रप्रवेशनताय नियतं संबोधिप्रापणतया षट्सप्ततिबुद्धकोटिभिः पूर्वभाषितम्, अहमप्येतर्हि इदानीं भाषिष्ये अनागतजनतापेक्षाय । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहं ते । कतमं च तत्?

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिर्मन्त्रं भाषते स्म—"ॐ वाक्यार्थे जय । ॐ वाक्यशेषे स्व । ॐ वाक्येयनयः । ॐ वाक्यनिष्ठेयः । ॐ वाक्येयनमः । ॐ वाक्येदनमः । इत्येते G 7
मञ्जुश्रीः । त्वदीयषड्मन्त्राः षडक्षराः महाप्रभावाः तुल्यसमवीर्याः परमहृदयाः परमसिद्धाः बुद्धमिवोत्पन्नाः सर्वसत्त्वानामर्थाय, सर्वबुद्धैः संप्रभाषिताः समयग्रस्ताः संप्रचलिताः सर्वकर्मिकाः बोधिमार्गानुदेशकाः तथागतकुले मन्त्रप्रवराः उत्तममध्यमेतरतृधासंप्रयुक्ताः सुशोभनं कर्मफलविपाकप्रदाः शासनान्तर्धानकालसमयं सिद्धिं यास्यन्ति । समवशरणं सद्धर्मनेत्रीरक्षणार्थं ये साधयिष्यन्ति, तेषां मूल्यप्रयोगेणैव महाराज्यमहाभोगैश्वर्यार्थं ते साधयिष्यन्ति । तेषां क्षिप्रतरं तस्मिन् काले तस्मिन् समये सिद्धिं यास्यन्ति । अन्ततो जिज्ञासनहेतोरपि साधनीया ह्येते परमहृदयाः संक्षेपतः । यथा यथा प्रयुज्यन्ते तथा तथा सिद्धिं यास्यन्ति समासतः । एषां पटविधानं भवति । तस्मिन् कालें तस्मिन् समये महाभैरवे पञ्चकषाये सत्त्वा

अल्पपुण्या भविष्यन्ति अल्पेशाख्याः अल्पजीविनः अल्पभोगाः मन्दवीर्याः। न शक्यन्ते अतिविस्तरतरं पटविधानादीनि कर्माणि प्रारभन्तुम्। तेषामर्थाय भाषिष्ये संक्षिप्ततरम् ॥

आदौ तावद् विक्रयेण सूत्रकं क्रीत्वा पलमात्रमर्धपलमात्रं वा हस्तमात्रं दीर्घत्वेन अर्धहस्तमात्रं तिर्यक्कर्पटं सदशं तन्तुवायेन वाययितव्यम्। अपगतकेशमन्यं वा नवं कर्पटखण्डं प्रत्यग्रम्। अत ऊर्ध्वं यथेप्सतः द्विहस्तचतुर्हस्तं वा षट् पञ्च दश चाष्टं वा सुशुक्लं गृह्य यथेप्सतः चित्रकरेण चित्रापयितव्यम्। अश्लेषकैरङ्गैः चन्दनकर्पूरकुङ्कुमसितैः पटं चन्दनकुङ्कुमकर्पूरं चैकीकृत्य निष्प्राणकेनोदकेन निःकलुषेनालोड्य नवे भाण्डे पटं प्लावयित्वा दिवसत्रयं सुपिधानं पिथितं स्थापयेत्। कृतरक्षां शुचौ देशे आत्मनः शुचिर्भूत्वा शुक्लपक्षे पूर्णमास्यां पटभाण्डस्याग्रतः पूर्वाभिमुखः कुशपिण्डकोपविष्टः इमे मन्त्रपदाः अष्टशतवारमुच्चारयितव्याः। तद्यथा-ॐ हे हे भगवं बहुरूपधर दिव्यचक्षुषे अवलोकय, अवलोकय माम्। समयमनुस्मर कुमाररूपधारिणे महाबोधिसत्त्व। किं चिरायसि? हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा। अनेन मन्त्रेण कृतजापः तत्रैव स्वपेत्। स्वप्ने कथयति सिद्धिमसिद्धिं वा ॥

तत उत्थाय अविलम्बितसिद्धिनिमित्तं स्वप्नं दृष्ट्वा तं पटं लिखापयेत् न चेदसिद्धिनिमित्तानि स्वप्नानि दृश्यन्ते। तत्पटं तस्माद्भाण्डादुद्धृत्य आतपे शोषयेत्। शोषयित्वा च भूयः अन्ये नवे भाण्डे न्यसेत्। सुगुप्तं च कृतरक्षं च स्थापयेत्। ततो भूयो तेषां परमहृदयानां अन्यतमं मन्त्रं गृहीत्वा यथेष्टतः षडक्षराणां भूयो अक्षरलक्षं जपेत्। ततो आशु तत्पटं सिध्यतीति ॥

आदौ तावत् तं पटं गृह्य प्रातिहारकपक्षे अन्ये वा शुक्लेऽहनि शुभनक्षत्रसंयुक्ते शुभायां तिथौ शुक्लपक्षदिवसे वा सुशोभनैः शकुनैः मङ्गलसंमतायां रात्रौ अर्धरात्रकालसमये उपोषधिकेन चित्रकरेण तं पटं चित्रापयेत् शुचौ प्रदेशे कर्पूरधूपं दहता ॥

आदौ तावदार्यमञ्जुश्रियं बालदारकाकारं पञ्चचीरकशिरस्कं बालालंकारभूषितं कनकवर्णं नीलपट्टचलनिकानिवसितं नीलपट्टांशुकोत्तरीयं धर्मं देशयमानं सिंहासने अर्धपर्यङ्कोपविष्टदक्षिणचरणं रत्नपादपीठस्थं स्थापितसिंहासनोपविष्टं सर्वालंकारोपेतं चारुदर्शनं ईषत्स्मितमुखं साधकगतदृष्टिं चित्रापयेत् ॥

दक्षिणे पार्श्वे आर्यसमन्तभद्रं सितचामरोद्धूयमानं प्रियङ्गुश्यामं वामहस्तचिन्तामणिविन्यस्तं सर्वाङ्गशोभनं सर्वालंकारभूषितं नीलपट्टचलनिकानिवस्तं मुक्ताहारयज्ञोपवीतं सिकतं श्वेतपद्मासनस्थं चित्रापयितव्यम् ॥

आर्यमञ्जुश्रियस्य वामपार्श्वे आर्यावलोकितेश्वरः नीलपट्टचलनिकानिवस्तः सर्वाङ्गशोभनः सर्वालंकारविभूषितः मुक्ताहारयज्ञोपवीतः वामहस्ते श्वेतपद्मविन्यस्तः दक्षिणहस्ते सितोद्धूयमानचमरः हेमदण्डविन्यस्तः सौम्याकारः आर्यमञ्जुश्रियगतदृष्टिः। तथैवार्यसमन्तभद्रः। श्वेतपद्मासनस्थौ उभावप्येतौ अभिलेख्यौ एकपद्मविटपोत्थितौ ॥

त्रीणि पद्मानि । मध्यमे मूलपद्मकर्णिकायामार्यमञ्जुश्रियस्य सिंहासनं रत्नपीठं च । G 76 अपरस्मिन् पद्मे आर्यसमन्तभद्रः । तृतीये पद्मे आर्यावलोकितेश्वरः । शोभनं च तत्पद्मदण्डं मरकतपद्माकारं अनेकपद्मपुष्पमुकुलितं पत्रोपेतं विकसितार्धविकसितपुष्पमहा-सरानवतप्तोत्थितं द्वौ नागराजावष्टब्धनाभं नन्दोपनन्दसंधारितं तत्पद्मदण्डम् । सितवर्णौ च तौ नागराजानौ सप्तस्फटावभूषितौ सर्वालंकारशोभितशरीरौ मनुष्यार्धकायौ अहिभोगाङ्कितमूर्तयः आर्यमञ्जुश्रियं निरीक्षमाणौ जलान्तार्धनिलीनौ मणिरत्नोपशोभितच्छदौ लिखापयितव्यौ ॥

समन्ताच्च महासरम् । अधस्तात्साधकः दक्षिणपार्श्वे पटान्तकोणे आर्यमञ्जुश्रियस्य वक्त्रमण्डलं निरीक्षमाणो धूपकटच्छुकव्यग्रहस्तः अवनतशिरकोर्परजानुकायः यथावेषवर्णतः तथामभिलेख्यम् ॥

उपरिष्टादार्यमञ्जुश्रियस्य उभौ पटान्तकोणाभ्यां द्वौ देवपुत्रौ मालाधारिणौ पुष्प-मालागृहीतौ उत्पतमानौ मेघान्तर्निलीनौ महापुष्पौघमुत्सृजमानौ सुशोभनौ अभिलेख्यौ ॥

समन्ताच्च तत्पटं नागकेसरादिभिः पुष्पैः प्रकिरितमभिलिखेत् । यथेष्टतश्च त्रिरूप-काधिष्ठितं वा अभिलिखेत् । आर्यमञ्जुश्रीः धर्मं देशयमानः । आर्यसमन्तभद्रः आर्यावलो-कितेश्वरश्चमरविन्यस्तपाणयो लिखापयितव्याः । यथाभिरुचितकं वा साधकस्य त्रीणि रूपकाणि अवश्यं लिखापयितव्यानि । यथेष्टाकारा वा यथासंस्थानसंस्थिता वा साधकस्य यथा यथा रोचते, तथा तथा लिखितव्यानि ॥

मध्ये च आर्यमञ्जुश्रीः उभयान्ते च आर्यावलोकितेश्वरः समन्तभद्रश्च यथेप्सितः । अन्ये अवश्यं लिखापयितव्यानि । यथालब्धे वा कर्पटखण्डे वितस्तिहस्तमात्रे वा आत्मना वा परेण वा चित्रकारेण पोषधिकेन वा अपोषधिकेन वा श्राद्धेन वा अश्राद्धेन वा शुचिना वा अशुचिना वा शीलवतेन वा दुःशीलेन वा चित्रकरेण लिखापयितव्यः ॥

आत्मना साधकेन अवश्यं कृतपुरश्चरणेन श्राद्धेन उत्पादितबोधिचित्तेन अवश्यं G 77 भवितव्यमिति ॥

एवं सिध्यन्ति मन्त्रा वै नान्येषां पापकारिणाम् ।
श्राद्धेन तथा भूत्वा साधनीया मन्त्रदेवताः ॥ १ ॥

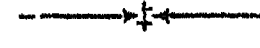
सिध्यन्ते मन्त्रराट् तस्य श्राद्धस्यैवेह नान्यथा ।
श्रद्धा हि परमं यानं येन यान्ति विनायकाः ॥ २ ॥

अश्रद्धस्य मनुष्यस्य शुक्लो धर्मो न रोहते ।
बीजानामग्निदग्धानामङ्कुरो हरितो यथा ॥ ३ ॥

श्राद्धे स्थितस्य मर्त्यस्य बोद्धारं हि कर्मणा ।
सिध्यन्ते देवतास्तस्य अश्राद्धस्यं न सिध्यति ॥ ४ ॥

.....................सर्वमन्त्रा विशेषतः ।
लौकिका देवता येऽपि येऽपि लोकोत्तरा तथा ।
सर्वे वै श्रद्दधानस्य सिध्यते विगतकल्मषः ॥ ५ ॥
आशु सिद्धिर्ध्रुवा तेषां बोधिस्तद्गतमानसाम् ।
नान्येषां कथ्यते सिद्धिः शासनेऽस्मिन् निवारिताः ॥ ६ ॥
पटः स्वल्पो विशेषो वा मध्यमो परिकीर्तितः ।
अधुना तु प्रवक्ष्यामि सर्वकर्मसु साधनमिति ॥ ७ ॥

बोधिसत्त्वपिटकान्महायानवैपुल्यसूत्रादार्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् सप्तमपटलविसरात् चतुर्थः पटविधानपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



८ उत्तमसाधनौपयिककर्मपटलविसरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिर्मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—ये ते मञ्जुश्रीः त्वया निर्दिष्टा सत्त्वाः, तेषामर्थाय इदं पटविधानविसरमाख्यातम् ।• ते स्वल्पेनैवोपायेन साधयिष्यन्ते । तेषामर्थाय साधनोपयिकं गुणविस्तारप्रभेदविभागशो कर्मविभागं समनुभाषिष्यामि । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्ये सर्वसत्त्वानामर्थाय ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत्—साधु साधु भगवन् । सुभाषिता तेऽस्मद्विभावनोद्योतनकरीं मन्त्रचर्यागुणनिष्पत्तिप्रभावनकरी वाणी । तद्वदतु तं भगवान्, यस्येदानीं कालं मन्यसे अस्माकमनुकम्पार्थम् ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य स्मितमकार्षीत् । अथ भगवतः शाक्यमुनेर्मुखद्वारात् नीलपीतस्फटिकवर्णादयो रश्मयो निश्चरन्ति स्म । समनन्तरनिश्चरिता च रश्मयो सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलं अवभास्य त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सर्वमारभवनं जिह्मीकृत्य सर्वनक्षत्रद्योतिशैलगणप्रभां यत्रेमौ चन्द्रसूर्यौ महर्द्धिकौ महानुभावौ तया प्रभया तेऽपि जिह्मीकृतौ नावभास्यन्ते निष्प्रभाणि च भवन्ति, न विरोचन्ते, जिह्मीकृतानि च संदृश्यन्ते, सर्वमणिमन्त्रौषधिरत्नप्रभां निःप्रभीकृत्य पुनरेव भगवतः शाक्यमुनेः मुखद्वारेऽन्तर्धीयते स्म ॥

अथ खलु वज्रपाणिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः तत्रैव पर्षन्मण्डले संनिपतितोऽभूत् संनिषण्णः । स उत्थायासनात् त्वरमाणरूपो भगवतश्चरणयोर्निपत्य भगवन्तमेतदवोचत्—नाहेतुकं नाप्रत्ययं बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । को भगवन् हेतुः कः प्रत्ययो स्मितस्य प्राविष्करणाय ?

•एवमुक्ते भगवान् वज्रपाणिं बोधिसत्त्वमामन्त्रयते स्म—एवमेतद् वज्रपाणे, एवमेतत्• । यथा वदसि तत्तथा । नाहेत्वप्रत्ययं तथागतानां विद्यते स्मितम् । अस्ति हेतुः अस्ति प्रत्ययः । ये इदं सूत्रेन्द्रराजं मञ्जुश्रीमूलकल्पविद्याचर्यानुष्ठानकर्मसाधनोपयिकसमवशरण- G 79
धर्ममेघनिःश्रितं समनुप्रवेशानुवर्तकं करिष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति श्रद्धास्यन्ति, पुस्तकलिखितं कृत्वा पूजयिष्यन्ति चन्दनचूर्णानुलेपनधूपमाल्यैः छत्रध्वजपताकैः विविधैर्वा प्रकारैर्वाद्यविशेषैर्वा नानातूर्यतालावचरैः । अन्तशः अनुमोदनासहगतं वा चित्तसंततिर्वा प्रतिलप्स्यन्ते, रोमहर्षणं सञ्जनं वा करिष्यन्ति, विद्याप्रभावशक्तिं वा श्रुत्वा संहृष्यन्ते, अनुमोदिष्यन्ते चर्यां वा प्रतिपत्स्यन्ते । व्याकृतास्ते मया अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वे ते भविष्यन्ति बुद्धा भगवन्तः । अत एव जिनाः स्मितं कुर्वन्ति नान्यथा इति ॥

आदौ तावद् दृष्टसमयः कृतपुरश्चरणः लब्धाभिषेकः अस्मिन् कल्पराजमूलमन्त्रहृदयं उपहृदयं वा अन्यतरं वा मन्त्रं गृहीत्वा एकाक्षरं वा अन्यं वा यथेप्सितं महारण्यं गत्वा त्रिंशल्लक्षाणि जपेत् फलोदकाहारः मूलपर्णभक्षो वा । कृतपुरश्चरणो भवति ॥

ततो पर्वताग्रमभिरुह्य ज्येष्ठं पटं पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य आत्मना पूर्वाभिमुखो कुशपिण्डकोपविष्टः श्वेतपद्मानां श्वेतकुङ्कुमाभ्यक्तानां लक्षमेकं भगवतः शाक्यमुनेः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणां पटस्याधस्तान्निवेदयेत् । कर्पूरधूपं च यथाविभवतः दहेत् । देवपुत्रनागानां च पूजां कुर्यात् यथालब्धैः पुष्पैः । ततोऽर्धरात्रकालसमये शुक्लपूर्णमास्यां प्रातिहारकप्रतिपूर्णायां पटस्याग्रतः अग्निकुण्डं कृत्वा पद्माकारं श्वेतचन्दनकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य कुङ्कुमकर्पूरं चैकीकृत्य अष्टसहस्राहुतिं जुहुयात् यथाविभवतः कृतरक्षः ॥

ततः भगवतः शाक्यमुनेः रश्मयो निश्चरन्ति । समन्ताच्च पटः एकज्वालीभूतो भवति । ततः साधकेन त्वरमाणरूपेण पटं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणां प्रणम्य पटं ग्रहीतव्यम् ॥

अतीतेन पूर्वलिखितसाधकपटान्तदेशे ततो गृहीतमात्रोत्पतति । अच्छटामात्रेण ब्रह्मलोकमतिक्रामति । कुसुमावतीं लोकधातुं संप्रतिष्ठति, यत्रासौ भगवां संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतः तिष्ठति ध्रियते यापयति धर्मं च देशयति । आर्यमञ्जुश्रियं च साक्षात्पश्यति । धर्मं
G 80 शृणोति । अनेकान्यपि बोधिसत्त्वशतसहस्रा पश्यति । तांश्च पर्युपास्ते । महाकल्पसहस्रं अजरामरलीली भवति । पटस्तत्रैव तिष्ठति । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाधिष्ठितो भवति । तेषां चाधिष्ठानं संजानीते क्षेत्रशतसहस्रं चाक्रामति । कायशतसहस्रं वा दर्शयति । अनेकऋद्धिप्रभावसमुद्गतो भवति । आर्यमञ्जुश्रियश्च कल्याणमित्रो भवति । नियतं बोधिपरायणो भवतीति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद्
अष्टम उत्तमसाधनौपयिककर्मपटलविसरात् प्रथमः समाप्त इति ॥



९ द्वितीयः उत्तमसाधनौपयिककर्मपटलविसरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः सर्वावतीपर्षन्मण्डलोपनिषण्णां देवसंघानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तो मार्षा मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य चर्यामण्डलमन्त्रसाधकमौपयिकं रक्षार्थं साधकस्य परमगुह्यतमं परमगुह्यहृदयं सर्वतथागतभाषितं महाविद्याराजम् । येन जप्तेन सर्वमन्त्रा जप्ता भवन्ति । अनतिक्रमणीयोऽयं भो देवसंघाः । अयं विद्याराजा । मञ्जुश्रियोऽपि कुमारभूतोऽनेन विद्याराज्ञा आकृष्टो वशमानीतो संमतीभूतः । कः पुनर्वादः तदन्ये बोधिसत्त्वाः लौकिकलोकोत्तराश्च मन्त्राः । सर्वविघ्नांश्च नाशयत्येष महावीर्यप्रभावः एकवीर्यः । एक एव सर्वमन्त्राणामग्रमाख्यायते । एक एव एकाक्षराणामक्षरमाख्यायते । कतमं च तत् एकाक्षरम् ? सर्वार्थसाधकं सर्वकार्यकरणं सर्वमन्त्रच्छेदनं दुष्टकर्मिणां सर्वपापप्रनाशनं सर्वमन्त्रप्रतिपूरणं शुभकारिणं सर्वलौकिकलोकोत्तरमन्त्राणामुपर्युपरि वर्तते अप्रतिहतसर्वतथागतहृदयसर्वाशापारिपूरकम् । कतमं च तत् ? तद्यथा—क्ल्ह्रीं । एष स मार्षा परमगुह्यतमं सर्वकर्मिकं एकाक्षरं नाम विद्याराजा । अनतिक्रमणीयः सर्वसत्त्वानाम् । अधृष्यः सर्वभूतानाम् । मङ्गलं सर्वबुद्धानाम् । साधकः सर्वमन्त्राणाम् । प्रभुः सर्वलोकानाम् । ईश्वरो सर्ववित्तेशानाम् । मैत्रात्मको सर्वविद्विष्टानाम् । कारुणिको सर्वजन्तूनाम् । नाशकः सर्वविघ्नानाम् । संक्षेपतः यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा करोति । असाधितोऽपि कर्माणि करोति । मन्त्रं जपता यं स्पृशति स वश्यो भवति । वस्त्राण्यभिमन्त्र्य प्रावरेत् । सुभगो भवति । दन्तकाष्ठमभिमन्त्र्य भक्षयेत् । दन्तशूलमपनयति । श्वेतकरवीरदन्तकाष्ठमभिमन्त्र्य भक्षयेत् । अप्रार्थितमन्नमुत्पद्यते । अक्षिशूले सैन्धवं चूर्णयित्वा सप्तवारानभिमन्त्र्य अक्षि पूरयेत् । अक्षिशूलमपनयति । कर्णशूले गजविष्ठोत्थितां गजनिसंभवां छत्रिकां केधुकपत्रावनद्धां मृद्वग्निना पचेत् । सुकेलायितां सुखोष्णं सैन्धवचूर्णपूतां कृत्वा सप्ताभिमन्त्रितेन कर्णान् पूरयेत् । तत्क्षणादुपशमयति । प्रसवनकाले स्त्रिया वा मूढगर्भायाः शूलाभिभूतायाः आटरुषकमूलं निष्प्राणकेनोदकेन पेषयित्वा नाभिदेशं लेपयेत् । सुखेनैव प्रसवति । नष्टशल्यो वा पुरुषः पुराणघृतं अष्टशत- G 82
वारानभिमन्त्र्य पाययेल्लेपयेद्वा तत्प्रदेशम् । तत्क्षणादेव निःशल्यो भवति । अजीर्णविषूचिकायातिसारे मूलेषु सौवर्चलं सैन्धवं वा अन्यं वा लवणं सप्तवारानभिमन्त्र्य भक्षयेत् । तस्माद् व्याधेर्मुच्यते । तदह एव स्वस्थो भवति । उभयातिसारे सद्यातिसारे वा मातुलुङ्गफलं पेषयित्वा निष्प्राणकेनोदकेन तस्मादाबाधान्मुच्यते । सकृज्जप्तेन तु जप्तेन वा वन्ध्यायाः स्त्रिया वा अप्रसवधर्मिण्याः प्रसवमाकाङ्क्षता अश्वगन्धमूलं गव्यघृतेन सह पाचयित्वा गव्यक्षीरेण सह पीषयित्वा गव्यक्षीरेणैवोद्दाल्य पञ्चविंशत्परिजप्तं ऋतुकाले पाययेत् । स्नानान्ते च परदारवर्जी गृही काममिथ्याचारवार्जितः स्वदारमभिगच्छेत् स्वपतिं वा । जनयते सुतं त्रिपञ्चवर्षप्रसवनकालातिरेकं वा । अनेकवर्षविष्टब्धो वा परमन्त्रतन्त्रौषधपरमुद्रितपरदुष्टकृतं वा गर्भधारणविवृतं वा व्याधिसमुत्थितं वा अन्यं वा यत्किंचित् व्याधिं परविधृतस्थावरजङ्गमकृत्रिमाकृत्रिमगरादिप्रमत्तं वा सर्वमूलमन्त्रौषधिमित्रामित्रप्रयोगकृतं वा । सप्तविंशतिवारान् पुराणघृतमयूरचन्द्रकं

चैकीकृत्य पेषयेत्। ततः सुपिष्टं कृत्वा शर्करेण सह योज्य हरीतकीमात्रं भक्षयेत्। सप्तदिवसानि च शर्करोपेतं शृतं क्षीरं पाययेत् अभिमन्त्र्य पुनः पुनः। मस्तकशूले काकपक्षेण सप्ताभिमन्त्रितेन उन्मार्जयेत्। स्वस्थो भवति। स्त्रीप्रदरादिषु रोगेषु आलम्बुषमूलं क्षीरेण सह पेषयित्वा नीलिकामूलसंयुक्तमष्टशताभिमन्त्रितं क्षीरेणालोड्य पाययेत्। एवं चातुर्थक एकाहिक द्व्याहिक त्र्याहिक साततिक नित्यज्वरविषमज्वरादिषु पायसं घृतसंयुक्तं अष्टशताभिमन्त्रितं भक्षापयेत्। स्वस्थो भवति। एवं डाकिनीग्रहगृहीतेषु आत्मनो मुखमष्टशतवारानभिमन्त्र्य निरीक्षयेत्। स्वस्थो भवति। एवं मातरबालपूतनवेतालकुमारग्रहादिषु सर्वामानुषदुष्टदारुणगृहीतेषु आत्मनो हस्तमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा गृहीतकं मस्तके स्पृशेत्। स्वस्थो भवति॥

एकजप्तेनात्मरक्षा, द्विजप्तेन सहायरक्षा, तृजप्तेन गृहरक्षा, चतुर्जप्तेन ग्रामरक्षा,
G 83 पञ्चजप्तेन यामगोचरगतरक्षा भवति। एवं यावत् सहस्रजप्तेन कटकचक्ररक्षा कृता भवति। एतानि चापराणि अन्यानि च क्षुद्रकर्माणि सर्वाणि करोति असाधितेऽपि। अथ साधयितुमिच्छति, क्षुद्रकर्माणि कार्याणि। एकान्तं गत्वा विविक्तदेशे समुद्रगामिनीं सरित्समुद्भवे समुद्रकूले गङ्गानदीकूले वा अथवा महानदीकूलमाश्रित्य शुचौ प्रदेशे उडपं कृत्वा त्रिस्नायी त्रिचैलपरिवर्ती मौनी भिक्षभैक्षाहारसाधकः यावकपयोफलाहारो वा त्रिंशल्लक्षाणि जपेत् सिद्धिनिमित्तम्। ततो दृष्ट्वा ततो साधनमारभेत्। ज्येष्ठं पटं तत्रैव देशे तस्मिं स्थाने पटस्य महतीं पूजां कृत्वा सुवर्णरूप्यमयैः ताम्रमृत्तिकमयैर्वा प्रदीपकैः तुरुष्कतैलपूर्णैः गव्यघृतपूर्णैर्वा प्रदीपकैः प्रत्यग्रवस्त्रखण्डाभिः खण्डाभिः कृतवर्तिभिः लक्षमेकं पटस्य प्रदीपानि निवेदयेत्। सर्वाणि समं समन्तात् समनन्तरप्रदीपितैः प्रदीपमालाभिः पटस्य रश्मयो निश्चरन्ति। समनन्तरनिश्चरितै रश्मिभिः पटः समन्तज्वालामालाकुलो भवति। उपरिष्टाच्चान्तरिक्षे दुन्दुभयो नदन्ति। साधुकारश्च श्रूयते॥

ततो विद्याधरेण त्वरमाणरूपेण साधकपटान्तकोणं पूर्वलिखितपटनिःसृतं अर्घ्यं दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य सर्वबुद्धान् प्रणम्य ग्रहेतव्यम्। ततो गृहीतमात्रेण सर्वप्रदीपगृहीतैः सत्त्वैः सार्धं समुत्पतति, एकाधिकविमानलक्षणं वा गच्छन्ति। दिव्यतूर्यप्रतिसंयुक्ते मधुरध्वनिगीतवादितनृत्योपेतैः विद्याधरीभिः समन्तादाकीर्णं तं साधकं विद्याधरचक्रवर्तिराज्ये ऽभिषेचयन्ति। सह तैः प्रदीपधारिभिः अजरामरलीली भवति। महाकल्पस्थायी भवति। उदितादित्यसंकाशः दिव्याङ्गशोभी विचित्राम्बरभूषितः। त एवास्य भवन्ति किंकराः। तैः सार्धं विचरति। सर्वविद्याधरराजा अस्य दासत्वेनोपतिष्ठन्ते। विद्याधरचक्रवर्ती भवति। चिरंजीवी अधृष्यो भवति। सर्वसिद्धानां परमसुभगो भवति। विद्याधरकन्यानां वशयिता भवति। सर्वद्रव्यानां बुद्धबोधिसत्त्वांश्च पूजयति। ततो भवति क्षणमात्रेण ब्रह्मलोकमपि गच्छति। शक्रस्यापि न गणयति, किं पुनस्तदन्यविद्याधराणाम्। अन्ते चास्य बुद्धत्वं भवति। आर्यमञ्जुश्रियश्चास्य.......................................साधनं भवति उत्तमतरम्।

तत एकान्ते गत्वा विविक्ते विगतजने निःसङ्गसङ्गरहिते महारण्यमनुप्रविश्य यत्र स्थाने G 84 पद्मसरं सरितोपेतं एकपर्वताश्रितं पर्वताग्रमभिरुह्य एकाक्षरं विद्याराजं मञ्जुश्रीकल्पभाषितं वा तथागतान्यबोधिसत्त्वभाषितं वा अन्यतरं मन्त्रं गृह्य तेषां यथेप्सतः पद्ममूलफलाहारो पयोपयोगाहारो वा विद्या षट्त्रिंशल्लक्षाणि जपेत् । जपान्ते च तेनैव विधिना पूर्वनिर्दिष्टेन ज्येष्ठं पटं प्रतिष्ठाप्य पद्मपुष्पाणां श्वेतचन्दनकुङ्कुमाभ्यक्तानां खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य पूर्वपरिकल्पितां पद्मां षट्त्रिंशत्सहस्राणि जुहुयात् ॥

ततो होमावसाने भगवतः शाक्यमुनेः पटस्य रश्मयो निश्चरन्ति । ततो साधकमवभास्य मूर्धान्तर्धीयन्ते । समनन्तरस्पृष्टश्च साधकः पञ्चाभिज्ञो भवति । बोधिसत्त्वलब्धभूमिः दिव्यरूपी यथेष्टं विचरते । षट्त्रिंशत्कल्पान् जीवति । षट्त्रिंशद् बुद्धक्षेत्रानतिक्रामति । तेषां च प्रभावं समनुपश्यति । षट्त्रिंशद्बुद्धानां प्रवचनं धारयति । तेषां च पूजोपस्थानाभिरतो भवति । अन्ते च बोधिपरायणो भवति । आर्यमञ्जुश्रीकल्याणमित्रपरिगृहीतो भवति यावद्बोधिनिष्ठं निर्वाणपर्यवसानमिति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पान्नवमपटलविसराद् द्वितीयः उत्तमसाधनौपयिककर्मपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

---

१० उत्तमपटविधानपटलविसरः ।

G 85 अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि कर्मसाधनोत्तमं भाषते स्म—इह कल्पराजे अन्यतमं मन्त्रं गृहीत्वा गङ्गामहानदीमवतीर्य नौयानसंस्थितः गङ्गाया मध्ये क्षीरोदनाहारः त्रिंशल्लक्षाणि जपेत् यथेष्टदिवसैः । ततो जपान्ते सर्वान् नागान् पश्यति । ततः साधनमारभेत् । तत्रैव नौमध्ये अग्निकुण्डं कारयेत् पद्माकारम् । ततो नागकेसरपुष्पैः पटस्य महतीं पूजां कृत्वा ज्येष्ठं पटं पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य आत्मनश्च पूर्वाभिमुखं कुशपिण्डकोपविष्टः नागकेसरपुष्पं एकैकं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा खदिरकाष्ठेन्धनाग्निप्रज्वालिते जुहुयात् यावत् त्रिंशत्सहस्राणि । श्वेतचन्दनकुङ्कुमपूतानां नागकेसरपुष्पाणां नान्येषां नागानां दर्शनमवेक्ष्यम् । सिद्धद्रव्यैश्च प्रलोभयन्ति । न ग्रहीतव्यानि ॥

ततो होमान्ते नौयानेन सार्धमुत्पतति । विद्याधरचक्रवर्ती भवति । सर्वनागेन्द्रराजाश्चास्यानुचरा भवन्ति । भृत्या इव तिष्ठन्ते । विंशत्यन्तरकल्पान् जीवति । स्वच्छन्दचारी चास्य भवति अप्रतिहतगतिः । आर्यमञ्जुश्रियं साक्षात्पश्यति । स मूर्ध्नि स्पृशति । स्पृष्टमात्रश्च पञ्चाभिज्ञो भवति । नियतं बुद्धत्वमधिगच्छति । अपरमपि उत्तमकर्मौपयिकसाधनं भवति । गङ्गामहानदीमवतीर्य एककाष्ठेनैव बिल्ववृक्षमयेन नौयानं कृत्वा सुदृष्टं सुकृतं तत्र समभिरुह्य बिल्वकाष्ठकमयं वाहनं तेनैव तां नावं अनुसाधकेनैव व्यक्तेन निपुणतरेण वाहयेत् । गङ्गामहानदीमपरित्यज्य वाहयेत् समन्तात् तिर्यग् दीर्घं वा । अतोऽन्यतरं मन्त्रं गृहीत्वा मूलमन्त्रषडक्षरं सकृत् अष्टाक्षरं एकाक्षरं वा क्रोधदूतीदूत अपरा वा अन्यतरं वा मन्त्रं गृहीत्वा ज्येष्ठं पटं तत्रैव पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य आत्मनश्च पूर्वामुखं प्रथमतः पश्चाद्यथेष्टं भवति । क्षीरयाचकफलाहारो वा उदककन्दमूलफलाहारो वा मौनी त्रिकालस्नायी त्रिचेलपरिवर्ती शुक्लकर्मसमाचारी सुशुक्लबुद्धिः । प्रथमं तावत्पटस्याग्रतः यथोपदिष्टपूर्वदृष्टविधिः विद्यां षष्टिलक्षाणि जपेत् । ततो जपान्ते नौर्महासमुद्राभिगामिनी भवति ॥

G 86 ततो साधकेनोपकरणानि संगृह्य पूर्वस्थापितकानि कुर्यात् तत्रैव नौयाने । ततो महासमुद्रं गच्छता न भेतव्यम्, नापि निवारयितव्या । न च शक्यन्ते निवर्तापयितुं वर्जयित्वा साधकवशात् ॥

ततो नौ मुहूर्तमात्रेणैव महासमुद्रं प्रविशति योजनसहस्रस्थितापि, किं पुनः स्वल्पमध्वानम् । तत्र प्रविष्टः सरितालये साधनकर्ममारभेत् । खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य पूर्वकारिताग्निकुण्डे कुम्भकारकारिते वा मृद्भाण्डे नागकेसरकिञ्जल्काहुतीनां श्वेतचन्दनकर्पूरव्यामिश्राणां स्वल्पतराणां प्रभूततरप्रमाणानां वा षष्टिलक्षाणि जुहुयात् ॥

जुह्वतश्च लङ्कापुरिवासिनो राक्षसा बहुरूपधारिणः हाहाकारं कुर्वन्तः नागपुरिभोगवतीवासिनश्च नागराजानः उत्तिष्ठन्ते विविधरूपधारिणो क्रूरतराः सौम्यतराश्च । ते नागराक्षसाश्च एवमाहुः—उत्तिष्ठतु भगवान्, उत्तिष्ठतु भगवानिति । अस्माकं स्वामी भवतु । एवं असुराः यक्षाः देवाः महोरगाः सिद्धाः सर्वमानुषाश्च प्रलोभयन्ति । नोत्थातव्यं

न भेतव्यं च । ततो विद्याधरेण मन्त्रं जपता वामहस्ते तर्जन्या तर्जयितव्याः । ततो विद्रवन्ति इतश्चामुनश्च प्रपलायन्ते नश्यन्ति च । ततो होमावसाने सा नौः तं साधकं गृहीत्वा क्षणेनाकनिष्ठभवनं गच्छति। अपराण्यपि लोकधातुं गच्छत्यागच्छति च । बोधिसत्त्वचित्तविदो भवति पञ्चाभिज्ञः । महर्द्धिको भवति महानुभावः । आर्यमञ्जुश्रियं चास्य सततं पश्यति । सर्वनागाः सर्वराक्षसाः सर्वदेवाः सर्वासुराः सर्वसत्त्वा चास्य वश्या भवन्ति आज्ञकराः, स्थापयित्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकानामिह मन्त्रसिद्धानां च । ते चास्य मैत्रात्मका भवन्ति अनुमन्तारः, यावत्सर्वसत्त्वानामधृष्यो भवति ॥

अपरमपि कर्मौपयिकोत्तमसाधनं भवति । बिल्वकाष्ठैर्महता नौयानं कारापयेत् । एककाष्ठदारुसंघातैर्वा महतावस्थानं च कुर्यात् । गङ्गामध्यस्थे द्वीपकं तत्रस्थं नौयानं कुर्यात् । तस्मिंश्च नौयाने विंशोत्तरशतं पुष्पाणां प्रदीपव्यग्रहस्तानां नौयानमभिरूढानां शुक्लाम्बरवसनानां कृतारक्षाणां ज्येष्ठपटपूर्वविधिसंस्थापितकस्याग्रतः संस्थापयेत् । ततो पटस्य महतीं पूजां कृत्वा नागकेसरचूर्णानां कुङ्कुमश्वेतचन्दनकर्पूरव्यामिश्राणां खदिरानले G 87 आहुतीसहस्राणि षट्त्रिंशद् जहुयात् ॥

ततो होमावसाने सा नौः क्षणमात्रेण ब्रह्मलोकं गच्छति, आगच्छति च । यथेष्टं विचरते । आर्यमञ्जुश्रियं साक्षात्पश्यति । दृष्टमात्रश्च भूमिप्राप्तो भवति पञ्चाभिज्ञः चिरकालजीवी महाकल्पस्थायी । महाविद्याधरचक्रवर्तिराजा भवति । ते चास्य प्रदीपधराः सिद्धविद्याधरा भवन्ति सहायकाः । तैः सार्धं यथेष्टं विचरते । स्वच्छन्दगामी भवति । बुद्धानां भगवतां पूजाभिरतो भवति । अन्ते च बुद्धत्वं नियतं भवति । अपरमपि कर्मौपयिकसाधनोत्तमो भवति ॥

नदीकूले समुद्रकूले वा हिमवन्तगिरौ तथा ।
पर्वते विन्ध्यराजेऽस्मिन् साधयेत् कर्ममुत्तमम् ॥ १ ॥
सह्ये मलये चैव अर्बुदे गन्धमादने ।
तृकूटे पर्वतराजेऽस्मिन् साधयेत् कर्ममुत्तमम् ॥ २ ॥
महासमुद्रे तथा शैले वृक्षाढ्ये पुष्पसंभवे ।
एते देशेषु सिध्यन्ते मन्त्रा वै जिनभाषिताः ॥ ३ ॥
विविक्तदेशे शुचौ प्रान्ते ग्राम्यधर्मविवर्जिते ।
सिध्यन्ते मन्त्रराट् सर्वे तथैव गिरिगह्वरे ॥ ४ ॥
प्रान्तशय्यासने रम्ये तथैव जिनवर्णिते ।
दुष्टसत्त्वविनिर्मुक्ते सिध्यन्ते सर्वमन्त्रराट् ॥ ५ ॥
धार्मिके नृपे देशे शौचाचाररते जने ।
मातृपितृभक्ते च द्विजवर्णाविवर्जिते ।
देवता सिद्धिमायान्ति तस्मिन् स्थाने तु नान्यथा ॥ ६ ॥

भागीरथीतटे रम्ये यमुने चैव सुशोभने ।
G 88 सिन्धुनर्मदवक्षे च चन्द्रभागे शुचौ तटे ॥ ७ ॥
कावेरी सरस्वती चैव सिता देवमहानदी ।
सिद्धिक्षेत्राण्येतानि उक्ता दशबलात्मजैः ॥ ८ ॥
दशबलैः कथिताः क्षेत्राः उत्तरापथपर्वताः ।
कश्मीरे चीनदेशे च नेपाले काविशे तथा ॥ ९ ॥
महाचीने तु वै सिद्धिः सिद्धिक्षेत्राण्यशेषतः ।
उत्तरां दिशिमाश्रित्य पर्वताः सरितश्च ये ॥ १० ॥
पुण्यदेशाश्च ये प्रोक्ता यवगोधूमभोजिनः ।
सत्त्वा दयालवो यत्र सिद्धिस्तेषु ध्रुवा भवेत् ॥ ११ ॥
श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणापथसंज्ञिके ।
श्रीधान्यकटके चैत्ये जिनधातुधरे भुवि ॥ १२ ॥
सिद्ध्यन्ते तत्र मन्त्रा वै क्षिप्रं सर्वार्थकर्मसु ।
वज्रासने महाचैत्ये धर्मचक्रे तु शोभने ॥ १३ ॥
शान्तिं गतः मुनिश्रेष्ठो तत्रापि सिद्धि दृश्यते ।
देवावतारे महाचैत्ये संकाश्ये महाप्रातिहारिके ॥ १४ ॥
कपिलाह्वये महानगरे वरे वने लुम्बिनिपुंगवे ।
सिद्ध्यन्ते मन्त्रराट् तत्र प्रशस्तजिनवर्णिते ॥ १५ ॥
गृध्रकूटे तथा शैले सदा सीतवने भुवि ।
कुसुमाह्वये पुरधरे रम्ये तथा काशीपुरी सदा ॥ १६ ॥
मधुरे कन्यकुब्जे तु उज्जयनी च पुरी भुवि ।
वैशाल्यां तथा चैत्ये मिथिलायां च सदा भुवि ॥ १७ ॥
पुरीनगरमुख्यास्तु ये वान्ये जनसंभवा ।
प्रशस्तपुण्यदेशे तु सिद्धिस्तेषु विधीयते ॥ १८ ॥
एते चान्ये च देशा वै ग्रामजनपदकर्वटा ।
पत्तना पुरवरा श्रेष्ठा पुण्या वा सरिताश्रिता ॥ १९ ॥
तत्र भिक्षानुवर्ती च जपहोमरतो भवेत् ।
लपने चाभ्यवकाशे च शून्यमायतने सदा ॥ २० ॥
G 89 पूर्वसेवां तु कुर्वीत मन्त्राणां सर्वकर्मसु ।
मध्यदेशे सदा मन्त्री जपेन्मन्त्रं समन्ततः ॥ २१ ॥
जापप्रवृत्तो सदायुक्तः त्यागाभ्यासात् मन्त्रवित् ।
शीलाचारसुसत्यश्च सर्वभूतहिते रतः ॥ २२ ॥

श्राद्धो मन्त्रचर्यायां पूर्वमेव जपे व्रती ।
शुचौ देशे सुक्षेत्रे म्लेच्छतस्करवर्जिते ॥ २३ ॥
सरीसृपादिषु सर्वेषु वर्जितं च विशिष्यते ।
फलपुष्पसमोपेते प्रशस्ते निर्मलोदके ॥ २४ ॥
सर्वे मन्त्रविन्मन्त्रं नान्यदेशेषु कीर्त्यते ।
देवालये श्मशाने वा एकस्थावरलक्षिते ॥ २५ ॥
एकलिङ्गे तथा प्रान्ते सर्वे मन्त्रं तु मन्त्रवित् ।
आत्मरक्षां सखायां तु कृत्वा वै स पुरश्चरी ॥ २६ ॥
मन्त्रयुक्तो सदा मन्त्री सेवेन्मन्त्रमुत्तमम् ।
महारण्ये महावृक्षे कुसुमाढ्ये फलोद्भवे ॥ २७ ॥
················पर्वताग्रे तु निम्नगे ।
उदकस्थाने सुचौक्षे च महासरित्तटे वरे ॥ २८ ॥
सेवेत मन्त्रं मन्त्रज्ञो स्थानेष्वेह·············।
प्राग्देशे च लौहित्ये महानद्ये नदीशुभे ॥ २९ ॥
कामरूपे तथा देशे वर्धमाने पुरोत्तमे ।
यत्रासौ निम्नगा श्लिष्टातिपुण्याग्रसरिद्वरा ॥ ३० ॥
तस्मिन् स्थाने सदाजापी भजेत सुविगां शुचिः ।
पूर्वसेवं तु तस्माद्वै कुर्यात्सर्वकर्मसु ॥ ३१ ॥
गङ्गाद्वारे तथा नित्यं गङ्गासागरसंगमे ।
शुचिर्जपेत मन्त्रं वै प्रयागे चैव सुव्रतः ॥ ३२ ॥
महाश्मशानान्येतानि जापी तत्र सदा जपेत् ।
विमलोदकानि सरितानि कृमिभिर्वर्जितानि च ॥ ३३ ॥ G 90
अत एव जपी तत्र जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
न पुण्यं तत्र वै किंचिद् दृश्यते लोकचेष्टितम् ॥ ३४ ॥
किं तु मन्त्रोपदेशेन किंचित्कालं वसेत वै ।
अन्यत्र वा ततो गच्छे समये सोमग्रहे भवेत् ॥ ३५ ॥
समयप्राप्तो वसेत्तत्र किंचित्कालं तु नान्यथा ।
अन्यत्र वा ततो क्षिप्रं गच्छे शक्तो तु मन्त्रवित् ॥ ३६ ॥
सुगताध्युषितचैत्येषु भूतलेषु सदा वसेत् ।
लोकतीर्थानि सर्वाणि कुदृष्टिपतितानि च ॥ ३७ ॥
अन्यानि तीर्थस्नानानि मन्त्रविद् वर्जयेत्सदा ।
न वसेत् तत्र मन्त्रज्ञो कुहेतुगतिमुद्भवाम् ॥ ३८ ॥

आक्रान्तं जिनवरैर्यत्तु भूतलं प्रत्येकखड्गिभिः।
बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः श्रावकैर्जिनवरात्मजैः॥ ३९॥

तानि सर्वाणि देशानि सेवेन्मन्त्रविन्मन्त्रजापी।
पूर्वमेवं प्रयत्नेन तस्मिन् स्थाने सदा चरे॥ ४०॥

विधिदृष्टेन मन्त्रज्ञो जपेन्मन्त्रं पुनः पुनः।
पापं ह्यशेषं नाशयति जपहोमैश्च देहिनाम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जपेन्मन्त्रं सुसमाहितम्॥ ४१॥ इति॥

एतानि स्थानान्युक्तानि सर्वकर्मेषु च उत्तमकर्मौपयिकसाधनेषु। एषामलाभेन यत्र वा तत्र वा स्थाने शुचौ पूर्वसेवाः कार्या। श्रद्धाविमुक्तेन साधनौपयिकोत्तमकर्म समाचरेत्॥

आदौ तावज्ज्येष्ठं पटं पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य आत्मनश्च पूर्वाभिमुखं प्रतिष्ठाप्य वल्मीकाग्रमृत्तिकां वा गङ्गानदीकूलमृत्तिकां वा गृह्य उशीरश्वेतचन्दनकुङ्कुमं वा कर्पूरादिभिर्व्यतिमिश्रयित्वा मयूराकारं कुर्यात्। तं पटस्याग्रतः स्थापयित्वा अच्छिन्नाग्रैः कुशैः शुचिदेशसमुद्भवैः चक्राकारं कृत्वा पटस्याग्रतः दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा वामहस्तेन मयूरं शुक्लपूर्णमास्यां रात्रौ पटस्य महतीं पूजां कृत्वा कर्पूरधूपं दहता तावज्जपेत् यावत्प्रभात इति॥

G 91 ततः सूर्योदयकालसमये तन्मृन्मयमयूरः महामयूरराजा भवति। चक्रश्चादीप्तः। आत्मनश्च दिव्यदेही दिव्यमाल्याम्बराभरणविभूषितः उदितादित्यसंकाशः कामरूपी। सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां प्रणम्य पटं प्रदक्षिणीकृत्य पटं गृहीत्वा तस्मिन् मयूरासने निषण्णः मुहूर्तेन ब्रह्मलोकमतिक्रामति। अनेकविद्याधरकोटीनयुतशतसहस्रपरिवारितः विद्याधरचक्रवर्ती भवति। षष्टिमन्वन्तरकल्पां जीवति। यथेष्टगतिप्रचारो भवति अप्रतिहतगतिः। दिव्यसंपत्तिसमन्वागतो भवति। आर्यमञ्जुश्रियं साक्षात्पश्यति, साक्षात्पश्यति। स एवास्य कल्याणमित्रो भवति। अन्ते च बुद्धत्वं प्राप्नोतीति॥

एवं दण्डकमण्डलुयज्ञोपवीतमनशिलारोचनखड्गनाराचभिण्डिपालपरशुनानाविधांश्च प्रहरणविशेषान् मृन्मयान् द्विपदचतुष्पदान् पक्षिवाहनविशेषान् सिंहव्याघ्रतरक्ष्वादींश्च वल्मीकमृत्तिकमयान् नदीमृत्तिकमयान् वा सुगन्धगन्धाभिप्लुतान् आसनवाहनशयनवाहनसितातपत्रमकुटाभरणविशेषान् सर्वांश्च रत्नविशेषान् सर्वांश्च प्रव्रजितोपकरणविशेषान् अक्षसूत्रोपानहकाष्ठपादुकपात्रचीवरखखरकसूचीशस्त्रप्रभृतयो पुष्पलोहमयानि अन्ये वा यत्किंचित् सर्वोपकरणभाण्डप्रभृतयो पुष्पलोहमयान् वाल्मीकमृत्तिकनदीकूलमृत्तिकमयां वा तान् सर्वान् पञ्चगव्येन प्रक्षालयित्वा अभ्युक्षयित्वा वा अष्टशतेनाभिमन्त्रितं कृत्वा संशोधनमन्त्रेणैव एकाक्षरेण मन्त्रेण वा अन्यतरेण वा मन्त्रेणेह कल्पराजोक्तेन वर्जयित्वा अनुसाधनौपयिकेन मन्त्रेण यथेष्टतः यथाभिरुचितं आत्मनो कृतरक्षः सहायकांश्च कृतपरित्राणः सुगुप्तमन्त्रतन्त्रज्ञः पूर्वनिर्दिष्टेषु स्थानेषु पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य आत्मनो पूर्ववत्पटस्य महतीं पूजां कृत्वा

ज्येष्ठस्य कर्पूरधूप दहता तेषां पूर्वनिर्दिष्टानां प्रहरणोपकरणसर्वविशेषान् पूर्वनिर्दिष्टकृत्रिमान् शुक्लपूर्णमास्यां रात्रौ अन्यतरं संगृह्य तेषां रात्रौ तावज्जपेत् यावत्सूर्योदयकालसमयम् ॥

अत्रान्तरे महाप्रभामाली पटो संदृश्यते । यदि वाहनविशेषं साधकेन गृहीतो भवति तदाभिरुह्य यथेष्टं गच्छति । यद्याभरणविशेषो प्रहरणविशेषो वा, तं गृहीत्वा वन्द्यो वा G 92 विद्याधरचक्रवर्ती भवति । यथेष्टं गच्छति दिव्यरूपी उदितादित्यसंकाशः महाप्रभामाली विद्युद्योतितमूर्तिः सर्वविद्याधरप्रभुः दीर्घजीवी महाकल्पस्थः अनेकविद्याधरकोटीनयुतशतसहस्रपरिवारः दिव्यमहामणिरत्नचारी । येन वा वाहनेन पूर्वपरिकल्पितेन दृष्टः, येन सिद्धो स एवास्य महाप्रभावो भवति । तमेवास्य वाहनम्, स एवास्य सहायकः । परमन्त्राणुसिद्धिः निवारयित्वा आत्ममन्त्रसिद्धिं संप्रयोजितमैत्रात्मको हितकामः सततानुबद्धः । य एवास्य प्रहरणाभरणरत्नविशेषाः आसनशयनयानसत्त्वप्रभृतयो त एवास्य महारक्षावरणगुप्तये नित्यानुबद्धा भवन्ति । महाप्रभावो महावीर्यो महाकायश्च भवति । आर्यमञ्जुश्रियं साक्षात्पश्यति । साधुकारं च ददाति । मूर्ध्नि अपरामृष्टेन कल्याणमित्रतां च प्रतिलभते । यावद् बोधिमण्डलमनुप्राप्त इति दशबलतां नियतमवाप्नोति । पूज्यश्च भवति सर्वसत्त्वानाम् । अनभिभवनीयः अधृष्यो भवति सर्वभूतानाम् । भूतकोटीवंशानुच्छेदकः भूमिप्राप्तश्च भवति । दशबलानां बोधिसत्त्वनियामतां च समनुगच्छतीति संक्षेपतो उत्तमकर्माणि सर्वाणि उत्तमस्थानस्थिते उत्तमपटस्याग्रतः उत्तमपूजाभिरतः उत्तमान्येव कर्माणि कुर्यात् । विद्याधरत्वमाकाशगमनं बोधिसत्त्वमनुप्रवेशं पञ्चाभिज्ञतां भूमिमनुप्रापणतां अनेनैव देहेन लोकधातुसंक्रमणतां दशबलवंशपरिपूरितायै आर्यमञ्जुश्रियं साक्षाद्दर्शनतायै अवन्ध्यदर्शनधर्मदेशनश्रवणतायै बुद्धवंशानुपच्छेदनतायै सर्वज्ञज्ञानानुक्रमणसमनुप्रापणतायै धर्ममेघविसृतसमनुप्रवेशनतायै । क्लेशानुच्छोषणअमृतवृष्टिधारिभिः प्रशमनतायै लोकानुग्रहप्रवृत्तिरनुष्ठानतायै तथागतधर्मनेत्रीरक्षणतायै तथागतवचनावन्ध्यकरणतायै मन्त्रचर्यासाधनौपयिकविधिप्रभावनतायै सर्वबुद्धबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकमाहात्म्यधर्ममुद्भावनतायै साधनीयमिमं कल्पराजविसरं मन्त्रप्रतिभासयुक्तज्येष्ठपटाग्रसमीपस्थसर्वलौकिकलोकोत्तरमन्त्रकल्पसर्वतन्त्रेषु विधिमार्गेण । संक्षेपतो इहान्यकल्पभाषितैरपि कर्मभिः साधनीयोऽयं पटराजा । आशुंस्तेषां मन्त्राणां सिद्धिर्भवतीति यन्मया कथितं तदवश्यं सिध्यतीति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद्
दशमः उत्तमपटविधानपटलविसरः परिसमाप्तः ॥

११ सर्वकर्मविधिसाधनपटविसरः ।

G 93 अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयं मध्यमं पटविधानं मध्यमकर्मौपयिकसाधनविधिः। समासतो तं भाषिष्ये । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्ये । अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेवमाह—तद्वदतु भगवां लोकानुकम्पको शास्ता सर्वसत्त्वहिते रतः, यस्येदानीं कालं मन्यसे अस्माकमनुकम्पार्थमनागतानां च जनतामवेक्ष्य ॥

एवमुक्ते भगवां मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन भगवानेतदवोचत्—शृणु मञ्जुश्रीः । आदौ तावत् शीलव्रतशौचाचारनियमजपहोमध्यानविधिम्, यत्र प्रतिष्ठिता सर्वमन्त्रचर्यासाधनकर्माण्यवन्ध्यानि भवन्ति सफलानि । आशु च सर्वमन्त्रचर्यासाधनकर्माण्यवन्ध्यानि भवन्ति सफलानि । आशु च सर्वमन्त्रप्रयोगानि सिद्धिं गच्छन्ति । कतमं च तत्? भाषिष्येऽहम्, शृणु कुमार ॥

आदौ तावद्विद्याव्रतशीलचर्यासमादानं प्रथमत एव समाददेत् । प्रथमं तावन्मण्डलाचार्योपदेशनसमयमनुप्रविशेत् । त्वदीयं कल्पराजोक्तं व्यक्तं मेधाविनं लब्धाचार्याभिषेकत्वं शासनाभिज्ञं कुशलं व्यक्तं धार्मिकं सत्यवादिनं महोत्साहं कृतज्ञं दृढसौहृदं नातिवृद्धं नातिबालं निःस्पृहं सर्वलाभसत्कारेषु ब्रह्मचारिणं कारुणिकं न लोभमात्रेण भोगहेतोर्वा अनुनयहेतोर्वा न मृषां वदते । कः पुनर्वादो स्वल्पमात्रेणैव लोभमोहप्रकारैः दृढप्रतिज्ञा समता सर्वभूतेषु दयावान् दानशीलः कृतपुरश्चरणः त्वदीयगुह्यमन्त्रानुजापी पूर्वसेवककृतविद्यः त्वदीयमण्डलसमनुपूर्वप्रविष्टः लोकज्ञः विधिज्ञः समनुग्राहकः कार्यवान् विचक्षणः श्रेयसप्रवृत्तः अभीरुअच्छम्भिनममङ्कुभूतः दृढवीर्यः अव्याधितः येन व्याधिना अकर्मशीली महोच्चकुलप्रसूतश्चेति । एभिर्गुणैर्युक्तो मण्डलाचार्यो भवति ॥

साधकश्च तत्समः न्यूनो वा किंचिदङ्गैः तादृशं मण्डलाचार्यमभ्यर्थ्य प्रार्थयेत्—
G 94 इच्छाम्याचार्येण महाबोधिसत्त्वस्य कुमारभूतस्यार्यमञ्जुश्रियस्य समयमनुप्रविष्टुम् । तद्ददत्वाचार्योऽस्माकमनुकम्पार्थं हितचित्तो दयावान् । ततस्तेन मण्डलाचार्येण पूर्वनिर्दिष्टेन विधिना शिष्यां यथापूर्वं परीक्ष्य प्रवेशयेत् । पूर्ववदभिषेकं दत्त्वा मन्त्रं दद्यात् । यथावत् क्रमशो समयं दर्शयेत् । रहस्यतन्त्रमुद्रामनुकर्माणि च प्रभूतकालेनैव सुपरीक्ष्य आशयं ज्ञात्वा दर्शयेत् सर्वतन्त्रमन्त्रादिषु कर्माणि नान्येषामिति विधिरेषा प्रकीर्त्तिता । ततः शिष्येण मण्डलाचार्यस्य यथाशक्तितः, आचार्यो वा येन तुष्येत, आत्मानं भोगांश्च प्रतिपादयेत् । ततस्तेन मण्डलाचार्येण पुत्रसंज्ञा उपस्थापयितव्या । पुत्रवत् प्रतिपत्तव्यम् । मातुश्च भोगा उपसंहर्तव्या इति ॥

ततस्तेन साधकेन अन्यतमं मन्त्रं गृहीत्वा एकान्तं गत्वा पूर्वनिर्दिष्टे स्थाने । पेयालं । तैरेव मन्त्रैः आह्वाननविसर्जनप्रदीपगन्धधूपबलिनिवेद्यं मण्डलोक्तेन विधिना विस्तरेण कर्तव्यम् । आहूय अर्घमासनं दत्त्वा त्रिसंध्यः त्रिःस्नायी त्रिचैलपरिवर्ती जापं

कुर्यात् । प्रत्यहं तत्र संध्याकालं नाम रात्र्यन्तात्प्रभृति यावद् युगमात्रादित्योदयम् । अत्रान्तरे प्रथमं संध्यमुच्यते । मध्यंदिने च आदित्ये उभयान्ते युगमात्रं प्रमाणं व्योम्नि संनिश्रितं रविमण्डलं मध्यं संध्यमुच्यते । अस्तमनकाले च युगमात्रशेषं त्रितीयं संध्यमुच्यत इति ॥

शीलव्रतसमायुक्तमाचार्यं दक्षपण्डितम् ।
महाकुलोच्चप्रसूतं च दृढवीर्यं तु सर्वतः ॥ १ ॥
मन्त्रतन्त्राभियुक्तं च सर्वकार्येषु दक्षधीः ।
सूक्ष्मो निपुणमन्त्रज्ञः धर्मधातुधरो सदा ॥ २ ॥
महोत्साही च तेजस्वी लोकधर्मानुपेक्षिणः ।
श्राद्धो मुनिवरधर्मोऽस्मिन् लौकिकानां तु वर्जिताः ॥ ३ ॥
कृतजापी विवेकज्ञो पूर्वसेवानुसेविनः ।
मन्त्रज्ञो मञ्जुघोषस्य दृष्टप्रत्ययतत्परः ॥ ४ ॥ G 95
लौकिकानां प्रयोगज्ञो मन्त्राणां बुद्धभाषिताम् ।
कृतरक्षो दृढस्थामो शौचाचाररतः सदा ॥ ५ ॥
बुद्धोपदेशितं मार्गमनुवर्ती च सर्वतः ।
उद्युक्तो मन्त्रजापेऽस्मिन् प्रशस्ते जिनवर्णिते ॥ ६ ॥
दृष्टकर्मफले नित्यं परलोके तथैव च ।
भीरुः स्यात्सर्वपापानामण्डमात्रं तथैव च ।
शुचिर्दक्षोन्यनलसः मेधावी प्रियदर्शनः ॥ ७ ॥
दशबलैः कथिता मन्त्रास्तथैव जिनसूनुभिः ।
लौकिका ये च मन्त्रा वै वज्रान्तकुलयोरपि ।
तेषां कृतश्रमो नित्यं ग्रन्थशास्त्रार्थधारकः ॥ ८ ॥
अव्याधितो न शक्तिष्ठो जराबाल्यो विवर्जितः ।
सिद्धमन्त्रो तथारक्षो आशुकारी तु सर्वतः ॥ ९ ॥
अदीर्घसूत्री तथामानी इङ्गितज्ञो विशेषतः ।
ब्रह्मचारी महाप्राज्ञो एकाकी चरसङ्गकृत् ॥ १० ॥
लब्धाभिषेको शूरश्च तन्त्रेऽस्मिन् मञ्जुभाषिते ।
कृतजापान्तकृद्युक्तो कृतविद्यो तथैव च ॥ ११ ॥
महानुभावो लोकज्ञो गतितत्त्वानुचिन्तकः ।
श्रेयसायैव प्रयुक्तश्च दाता भूतहिते रतः ॥ १२ ॥
तथाविशिष्टो आचार्यो प्रार्थनीयो सदा तु वै ।
लिखितं तेन मन्त्राणां मण्डलं सिद्धिमर्छति ॥ १३ ॥
अभिषेकं तु तेनैवं दत्तं भवति महत्फलम् ।
सिद्धिकामस्तु शिष्यैर्वा पूज्योऽसौ मुनिवत्सदा ॥ १४ ॥

अलङ्घ्यं तस्य वचनं शिष्यैः कर्तव्य यत्नतः।
भोगास्तस्य दातव्याः यथाविभवसंभवाः॥ १५॥
स्वल्पमात्रा प्रभूता वा येन वा तुष्टि गच्छति।
कायजीवितहेत्वर्थं चित्तं देहं यथा पितुः॥ १६॥
G 96 तथैव शिष्यो धर्मज्ञो आचार्याय ददे धनम्।
प्राप्नुयाद्यशः सिद्धिं आयुरारोग्यमेव तु॥ १७॥
पुष्कलं गतिमाप्नोति शिष्यो पूज्यस्तु तं गुरुम्।
मन्त्रास्तस्य च सिध्यन्ति विधिमार्गोपदर्शनात्॥ १८॥
सेवनाद्भजनाद् तेषां माननात्पूजनादपि।
तुष्यन्ते सर्वबुद्धास्तु तथैव जिनवरात्मजाः॥ १९॥
सर्वे देवास्तु तुष्यन्ते सत्क्रिया तु गुरौ सदा।
एतत्कथितं सर्वं गुरूणां मन्त्रदर्शिनाम्॥ २०॥
समयानुप्रवेशिनां पूर्वं प्रथमं वा साधकेन तु।
जनो वा तत्समो वापि उत्कृष्टो वा भवेद्यदि॥ २१॥
नावमन्यो गुरुर्नित्यं मेकाद्वा अधिकोऽपि वा।
तेनापि तस्य तन्त्रेऽस्मिन् उपदेशः सदा तु वै॥ २२॥
कर्तव्यो मन्त्रे सिद्धेऽस्मिन् यथासत्त्वानुदर्शिते।
न मत्सरो भवेत्तत्र शिष्येऽस्मिन् पूर्वनिर्मिते॥ २३॥
स्नेहानुवर्तिनी चक्षुः सुप्रतिष्ठितदेहिनाम्।
तमेव कुर्याच्छिष्यत्वं आचार्या शिष्यहेतवः॥ २४॥
अन्योन्यानुवर्तिनी यत्र स्नेहसंततिमानिनी।
स्निग्धसंतानानुधरा नु मन्त्रं दद्यात्तु तत्र वै॥ २५॥
आचार्यो शिष्यमेवं तु शिष्यो वा गुरुदर्शने।
उत्सुकौ भवतः नित्या साध्वसयोगतः उभौ॥ २६॥
तेषां नित्यं तु मार्गं वै मन्त्रचर्यानुदर्शने।
सफलानुवर्तनौ मन्त्रज्ञौ उभयो पितृपुतृणौ (?)॥ २७॥
धृतिं पुष्टिं च लेभे तौ तथा शिष्य गुरुः सदा।
रक्षणीयो प्रयत्नेन पुत्रो धर्मवत्सलः सदा॥ २८॥
अव्यवच्छेदबुद्धानां धर्मता भवति तेषु वै।
तदभावे ह्यनाथानां दद्यान्मन्त्रं यथोदितम्॥ २९॥
G 97 दरिद्रेभ्यश्च सत्त्वेभ्यो क्लीबेभ्यो विशेषतः।
सर्वेभ्योऽपि सत्त्वेभ्यो मन्त्रचर्या विशिष्यते॥ ३०॥

सर्वकाले च कुर्वीत अधमोत्तममध्यमे ।
सदा सर्वस्मि धर्मेषु कुर्यानुग्रहहेतुतः ॥ ३१ ॥
ईप्सितेभ्योऽपि प्रदातव्यं गतियोनिर्विचेष्टिते ।
शिष्येणैव तु तस्मै तु मन्त्रं गृह्य यथामतम् ॥ ३२ ॥
तेनैवोपदिष्टेन मार्गेणैव नान्यथा ।
सिद्धिकामो यतेत् तस्मिन्नितरेषां परायिके ॥ ३३ ॥
पितृवत् प्रणम्य शिरसा वैनतो गच्छे यथेष्टतः ।
एकान्तं ततो गत्वा जपेन्मन्त्रं समासतः ॥ ३४ ॥
भिक्षभैक्षाशवृत्ती तु मौनी त्रिःकालजापिनः ।
पूर्वनिर्दिष्टमेवं स्याद् यथामार्गं प्रवर्तकः ॥ ३५ ॥
तदानुवृत्ती सेवी च स्थानमायतनानि च ।
महारण्यं पर्वताग्रं तु नदीकूले शुचौ तथा ॥ ३६ ॥
गोष्ठे महापुरे चापि विविक्ते जनवर्जिते ।
शून्यदेवकुले वृक्षे एकलिङ्गे शिलोच्चये ॥ ३७ ॥
महोदकतटे रम्ये पुलिने वापि दीपके ।
विविधैः पूर्वनिर्दिष्टैः देशैश्चापि मनोरमैः ॥ ३८ ॥
एतैश्चान्यैः प्रदेशैस्तु जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
सखायैर्लक्षणोपेतैः मन्त्रार्थं नीतितार्किकैः ॥ ३९ ॥
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञैः आत्मसमसादृशैः ।
शूरैर्विजितसंग्रामैः सात्त्विकैश्च सहिष्णुभिः ॥ ४० ॥
श्राद्धैर्मन्त्रचर्यायां शासनेऽस्मिन् जिनोदिते ।
प्रशस्तैर्लक्षणोपेतैः क्षमिभिस्तु सहायकैः ॥ ४१ ॥
सिध्यन्ते सर्वकर्माणि अयत्नेनैव तस्य तु ।
प्रातरुत्थाय शयनात् स्नात्वा चैव शुचौ जले ॥ ४२ ॥
निःप्राणके जले चैव सरिन्महासरोद्भवे । G 98
उद्घृष्य गात्रं मन्त्रज्ञो मृद्गोमयचूर्णितैः ॥ ४३ ॥
मन्त्रपूतं ततो कृत्वा जलं चौक्षं सुनिर्मलम् ।
स्नायीत जपी युक्तात्मा नातिकालं विलङ्घयेत् ॥ ४४ ॥
ततोत्थाय तटे स्थित्वा हस्तौ प्रक्षाल्य मृत्तिकैः ।
सप्त सप्त पुनः सप्त वाराणि एकविंशति ॥ ४५ ॥
उपविश्य ततस्तत्र दन्तकाष्ठं समाचरेत् ।
विसर्जयित्वा दन्तधावनं ततो वन्देत तायिनम् ॥ ४६ ॥

वन्दित्वा लोकनाथं तु पूजां कुर्यान्मनोरमाम् ।
विविधैः स्तोत्रोपहारैस्तु संस्तुत्य पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
सुगन्धपुष्पैस्तथा शास्तु अर्धं दत्त्वा तु जापिनः ।
प्रणम्य शिरसा बुद्धानां तदा तु शिष्यसम्भवां ॥ ४८ ॥
तेषां लोकनाथानां अग्रतो यापदेशना ।
निवेद्य चाशनो तत्र पटस्याग्रत मध्यमे ॥ ४९ ॥
कुशपिण्डकृतः तत्स्थः निषण्णोपसगाहितः ।
जपं कुर्यात् प्रयत्नेन अक्षसूत्रेण तेन तु ॥ ५० ॥
यथालब्धं तु मन्त्रं वै नान्यमन्त्रं तदा जपेत् ।
अतिहीनं च वर्जीत अतिउत्कृष्ट एव वा ॥ ५१ ॥
मध्यमं मध्यकर्मेषु जपेन्मन्त्रं सदा व्रती ।
अत्युच्चं वर्जयेद् यत्नाद्वचनं चापि चेतरम् ॥ ५२ ॥
मध्यमं मध्यकर्मेषु प्रशस्तो जिनवर्णितः ।
नात्युच्चं नातिहीनं च मध्यमं तु सदा जपेत् ॥ ५३ ॥
वचनं श्रेयसायुक्तो सर्वबुद्धैस्तु पूर्वकैः ।
न जपे परसामीप्ये परकर्मपथे सदा ।
गुप्ते चात्मविदे देशे जपेन्मन्त्रं तु मध्यमम् ॥ ५४ ॥
तथा जपेत प्रयुक्तं स्यात् कश्चिन्मन्त्रार्थसुश्रुतः ।
भूयो जपेत तन्मन्त्रं मध्यमां सिद्धिमिच्छतः ॥ ५५ ॥
G 99 तस्माज्जन्तुविगते मन्त्रतत्त्वार्थसुश्रुते ।
विवेके विगतसंपाते जपेन्मन्त्रं तु जापिनः ॥ ५६ ॥
चतुर्थे रात्रिभागे तु तदर्ध अर्ध एव तु ।
ताम्रारुणे युगमात्रे च उदिते रविमण्डले ॥ ५७ ॥
प्रथमं संध्यमेवं तु कथितं मुनिपुंगवैः ।
युगमात्रं चतुर्हस्तो मध्यमो परिकीर्तितः ॥ ५८ ॥
अतो व्योम्ने दिते भानोः मन्त्रजापं तदा त्यजेत् ।
मन्त्रजापं तदा त्यक्त्वा विसर्ज्यार्घं ददौ व्रती ॥ ५९ ॥
शेषकालं तदायुक्तो कुशलेऽस्मिन् शासने मुनौ ।
सद्धर्मवाचनादीनि प्रज्ञापारमितादयः ॥ ६० ॥
पुस्तका दशभूमाख्याः पूज्या वाच्यास्तु वै सदा ।
कालमागम्य तस्मा वै प्रणम्य जिनपुंगवान् ॥ ६१ ॥
स्वमन्त्रं मन्त्रनाथं च ततो गच्छेन्न जीविकम् ।
कालचारी तथा युक्तो कालभोजी जितेन्द्रियः ॥ ६२ ॥

धार्मिको साधकोद्युक्तो प्रसन्ने बुद्धशासने ।
प्रविशेद् ग्रामान्तरं मौनी शौचाचाररतो सदा ॥ ६३ ॥
गृहे तु धार्मिके सत्त्वे प्रविशेद् भिक्षां जपी सदा ।
निष्प्राणोदकसंसिद्धे वाके शुचिसंमते ॥ ६४ ॥
सम्यग्दृष्टिसपत्नीके प्रसन्ने बुद्धशासने ।
तथाविधे कुले नित्यं भिक्षार्थी भिक्षमाददेत् ॥ ६५ ॥
यथा योधः सुसंनद्धो प्रविशेद् रणसंकटम् ।
अरीन् मर्दयते नित्यं रिपुभिर्न च हन्यते ॥ ६६ ॥
एवं मन्त्री सदा ग्रामं प्रविशेद् भिक्षानुजीविनः ।
रञ्जनीयं तथा दृष्ट्वा रूपं शब्दांस्तु वै शुभाम् ॥ ६७ ॥
रागप्रशमनार्थाय भावयेदशुभा शुभा ।
दृष्ट्वा कलेवरं स्त्रीषु यौवनाचारभूषितम् ॥ ६८ ॥
भावयेदशुचिदुर्गन्धां पूतिमूत्रादिकुत्सितम् । G 100
क्रिमिभिः क्लिष्टः श्मशानस्थं अनित्यं दुःखं कलेवरम् ॥ ६९ ॥
बालिशा यत्र मूढा वै भ्रमन्ति गतिपञ्चके ।
ग्रथिता कर्मसूत्रैस्तु चिरकालाभिशोभिनः ॥ ७० ॥
अज्ञानावृतमूढास्तु जात्यन्धा दुःखहेतुकाः ।
विपरीतधियो यत्र सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ॥ ७१ ॥
विविधैः कर्मनेपथ्यैः अनेकाकाररञ्जिताः ।
दीर्घदोलाभिरूढास्तु गमनागमनेषु चेक्षिताः ॥ ७२ ॥
नृत्यतायैव युक्तस्तु चरणाकारचेष्टिताः ।
सीदन्ति चिरमध्वानं यत्र सत्त्वा शुचे रताः ॥ ७३ ॥
अरघट्टघटाकारं भवार्णवजलोद्भवाः ।
न क्षयं जन्म तेषां वै दुःखवारिसमप्लुताम् ॥ ७४ ॥
दुःखमूलं तथा ह्युक्तो त्रिया बुद्धैस्तु केवलः ।
श्रावकैर्बोधिसत्त्वैस्तु प्रत्येकमुनिभिस्तथा ॥ ७५ ॥
एतन्महार्णवं दुःशोषं अक्षोभ्यं भवसागरम् ।
यत्र सत्त्वानि मज्जन्ते स्त्रीषु चेतनवञ्चिताः ॥ ७६ ॥
नरकं तिर्यलोकं च प्रेतलोकं च सासुरम् ।
मानुष्यं लोकं वै दिव्यं दिव्यं चैव गतिः सदा ॥ ७७ ॥
पर्यटन्ति समन्ताद्वै अशक्ताः स्त्रीषु वञ्चिताः ।
निमज्जन्ते महापङ्कात् संसारार्णवचारकात् ॥ ७८ ॥

स्त्रीषु सक्ता नरा मूढाः कुणपेणैव कोष्टुकाः।
यत्र सत्त्वा रता नित्यं तीव्रां दुःखां सहन्ति वै ॥ ७९ ॥
निर्नष्टशुक्लधर्माणां प्रविष्टा बुद्धशासने।
निवारयन्ति सर्वाणि दुःखा नैव भवार्णवे ॥ ८० ॥
मन्त्रजापरतोद्युक्ताः महेशाख्या मनस्विनः।
तेजस्विनो जितामित्राः तेषां दुःखो न विद्यते ॥ ८१ ॥
G 101 संयता ब्रह्मसत्यज्ञा गुरुदेवतपूजकाः।
मातृपितृभक्तानां स्त्रीषु दुःखं न विद्यते ॥ ८२ ॥
अनित्यं दुःखतो शून्यं परमार्थानुसेविनाम्।
गण्डशल्यं तथाभूतं जापिनां स्त्रीकलेवरम् ॥ ८३ ॥
रागी बालिश दुर्बुद्धिः संसारादपलायितः।
स्त्रीप्रसक्तो भवेन्नित्यं तस्य सिद्धिर्न विद्यते ॥ ८४ ॥
न तस्य गतिरुत्कृष्टा न चापि गति मध्यमा।
कन्यसा नापि सिद्धिश्च दुःशीलस्येह जापिने ॥ ८५ ॥
दुःशीलस्य मुनीन्द्रेण मन्त्रसिद्धिर्न चोदिता।
न चापि मार्गं दिदेश वै निर्वाणपुरगामिनम् ॥ ८६ ॥
कुतः सिध्यन्ति मन्त्रा वै बालिशस्येह कुत्सिते।
न चापि सुगतिस्तस्य दुःशीलस्येह जन्तुनः ॥ ८७ ॥
न चापि नाकपृष्ठं वै न च सौख्यपरायणः।
कः पुनः सिद्धिमेवं स्यान्मन्त्राणां जिनभाषिताम् ॥ ८८ ॥
छिन्नो वा तालवृक्षस्तु मस्तके तु यदा पुनः।
अभव्यो हरितत्वाय अङ्कुराय पुनः कार्या ॥ ८९ ॥
एवं मन्त्रसिद्धिस्तु मूढस्येह प्रकीर्तिता।
दुःशीलो पापकर्मस्तु स्त्रीषु सङ्गी पुनः सदा।
अकल्याणमित्रसंपर्की कुतः सिध्यन्ति मन्त्रराट् ॥ ९० ॥
तस्माद् दान्तो सदाजापी स्त्रीदोषमविचारकः।
सङ्गं तेषु वर्जीत सिद्धिस्तेषु विधीयते ॥ ९१ ॥
नान्येषां कथिता सिद्धिः बालिशां स्त्रीषु मूर्च्छिताम्।
अव्यग्ररतो धीमां शुचिर्दक्षमसङ्गकृत् ॥ ९२ ॥
कुलीनो दृढशूरश्च सौहृदो प्रियदर्शनः।
धर्माधर्मविचारज्ञो सिद्धिस्तेषां न दुर्लभा ॥ ९३ ॥

एवं प्रवृत्तो मन्त्रज्ञो ग्रामं भिक्षार्थमाविशेत् ।
यथाभिरुचितं गत्वात्र स्थानं पूर्वकल्पितम् ॥ ९४ ॥
भुञ्जीत गत्वा देशे तु कल्पिकं·········· । G 102
शुचौ देशे तु संस्थाप्य भिक्षाभाजनशुद्धधीः ॥ ९५ ॥
पादौ प्रक्षाल्य बहिर्गत्वा तस्मादावसथात् पुनः ।
निःप्राणके तदा अम्भे प्रथमं जङ्घमेव तु ॥ ९६ ॥
द्वितीयं वामहस्तेन जङ्घं चाश्लिष्य चाघृषेत् ।
अपसव्यं पुनः कृत्वा हस्तं प्रक्षाल्य मृत्तिकैः ॥ ९७ ॥
पूर्वसंस्थापितैः शुद्धैः शुचिभिः सप्त एव तु ।
मन्त्रपूतं ततो चौक्षं शुचिनिर्मलभाजने ॥ ९८ ॥
गृह्य गोमय सद्यं तु कपिलागोपरिस्रुते ।
निष्प्राणकाम्भसंयुक्ते कुर्या शास्तुर्मण्डमण्डलम् ॥ ९९ ॥
प्रथमं मुनिवरे कुर्यात् हस्तमात्रं विशेषतः ।
द्वितीयं सुमन्त्रनाथस्य तृतीयं कुलदेवते ॥ १०० ॥
यजापिनो यदा मन्त्री तत्कुर्यात्तु सदा पुनः ।
चतुर्थं सर्वसत्त्वानामुपभोगं तु कीर्त्यते ॥ १०१ ॥
दक्षिणे लोकनाथस्य मण्डले तु सदा इह ।
रत्नत्रयाय कुर्यात्तं मण्डलं चतुरस्रकम् ॥ १०२ ॥
द्वितीयं प्रत्येकबुद्धानां तृतीयं दशबलात्मजैः ।
इत्येते मण्डलाः सप्त चतुरस्राः समन्ततः ॥ १०३ ॥
हस्तमात्रार्धहस्तं वा कुर्यात् चापि दिने दिने ।
गुप्ते देशे तदा जापी प्रत्यहं पापनाशना ॥ १०४ ॥
ततोत्थाय पुनर्मन्त्री हस्तौ प्रक्षाल्य यत्नतः ।
उपस्पृश्य जले चौक्षे शुद्धे प्राणकवर्जिते ॥ १०५ ॥
निर्मले शुचिने यत्नात् शुचिभाण्डे तदाहृते ।
महासरे प्रस्रवणे वापि औद्भवे सरितामृते ॥ १०६ ॥
शुचिदेशसमायाते शुचिसत्त्वकरोद्धृते ।
उपस्पृश्य पुनर्मन्त्री द्वे त्रयो वा सदा पुनः ॥ १०७ ॥
आमृशेत ततो वक्त्रं कर्णश्रोत्रौ तथैव च ।
·················अक्ष्णौ नासापुटौ भुजौ ॥ १०८ ॥
मूर्ध्नि नाभिदेशे च संस्पृशेत् शुभवारिणा । G 103
वारान् पञ्च सप्त वा कुर्यात् सर्वं यथाविधिम् ॥ १०९ ॥

शौचाचारसंपन्नो शुचिर्भूत्वा तु जापिनः।
भिक्षाभाजनमादाय गच्छेत् सलिलालयम् ॥ ११० ॥
यत्र प्रतिष्ठिता वारि निम्नगा चोद्भवे तथा।
नदीप्रस्रवणादिभ्यो भिक्षां प्रक्षालयेत् सदा ॥ १११ ॥
ततोत्थाय पुनर्गच्छेत् विहारमावसथं तु वै।
पूर्वसंनिश्रितो यत्र वशे तत्र तु तं व्रजेत् ॥ ११२ ॥
गत्वा तं तु वै देशं न्यसेत् पात्रं तं जपी।
उपस्पृश्य ततः क्षिप्रं गृह्य पात्रं तथा पुनः ॥ ११३ ॥
पात्रे मृन्मये पर्णे राजते हेम्न एव वा।
ताम्रे वल्कले वापि दद्यात् शास्तुर्निवेदनम् ॥ ११४ ॥
निवेद्यं शास्तुनो दद्यात् स्वमन्त्रं मन्त्रराट् पुनः।
एकं तिथिमागम्य दुःखितेभ्योऽपि शक्तितः ॥ ११५ ॥
नातिप्रभूतं दातव्यं निवेद्यं चैव सर्वतः।
नात्मानुपाया मन्त्रज्ञो कुर्याद्युक्ता तु सर्वतः ॥ ११६ ॥
कुक्षिमात्रप्रमाणं तु स्थाप्यमानं ददौ सदा।
न बुभुक्षापिपासार्ता शक्ता मन्त्रार्थसाधने ॥ ११७ ॥
नाल्याशीमल्पभोजी वा शक्तो मन्त्रानुवर्तने।
अत एव जिनेन्द्रेण कथितं सर्वदेहिनाम् ॥ ११८ ॥
आहारस्थितिसत्त्वानां येन जीवन्ति मानुषाः।
देवासुरगन्धर्वनागयक्षाश्च किन्नराः ॥ ११९ ॥
राक्षसाः प्रेतपिशाचाश्च भूतोस्तारकसग्रहाः।
नासौ संविद्यते कश्चिद्भाजने योऽवहितपेक्षिणः ॥ १२० ॥
औदारिकमाकारकवलीकाहारश्च कीर्तिताः।
सूक्ष्माहारिकसत्त्वा वै इत्युवाच तथागतः ॥ १२१ ॥
ध्यानाहारिणो दिव्या रूपावचरचेष्टिताः।
आरूप्याश्च देवा वै समाधिफलभोजिनः ॥ १२२ ॥
अन्तराभवसत्त्वाश्च गत्वाहाराः प्रकीर्तिताः।
कामधातौ तथा सत्त्वा विचित्राहारभोजनाः ॥ १२३ ॥
कामिकोऽसुरमर्त्यानां कवलिकाहारभोजनाः।
अत एव जिनेन्द्रैस्तु कथितं धर्महेतुभिः ॥ १२४ ॥
आहारस्थिति सत्त्वानां सर्वेषां च प्रकीर्तिता।
जापिनो नित्ययुक्तस्तु मात्रा एव भुजिक्रिया ॥ १२५ ॥

शक्तो हि सेवितुं मन्त्रां भोजनेऽस्मिन् प्रतिष्ठितः ।
आचारपरिशुद्धस्तु कुशलो ब्रह्मचारिणः ।
मात्रज्ञता च भक्तेऽस्मिन् सिद्धिस्तस्य न दुर्लभा ॥ १२६ ॥
यथैवाक्षमभ्यज्य शाकटी शकटस्य तु ॥ १२७ ॥
चिरकालाभिलिप्त्यर्थं भारोद्वहनहेतवः ।
तथैव मन्त्री मन्त्रज्ञो आहारं स्थितये ददौ ॥ १२८ ॥
कलेवरस्य याप्यत्वाद्यर्थं पोषयेत सदा जपी ।
मन्त्राणां साधनार्थाय बोधिसंभारकारणा ॥ १२९ ॥
जपेन्मन्त्रं तथा मर्त्ये लोकानुग्रहकारणात् ।
अत एव मुनिश्रेष्ठो इत्युवाच महाद्युतिः ॥ १३० ॥
काश्यपो नाम नामेन पुरा तस्मिं सदा भुवि ।
श्रेयसार्थं हि भूतानां इदं मन्त्रं प्रभाषत ॥ १३१ ॥
दुःखिनां सर्वलोकानां दीनां दारिद्र्यखेदिनाम् ।
आयासोपरतां क्लिष्टां तेषामर्थाय भाषितम् ॥ १३२ ॥
श्रेयसायैव भूतानां संसृतानां तथा पुनः ।
आहारार्थं तु भूतानां इदं मन्त्रवरं वदेत् ॥ १३३ ॥
शृण्वन्तु श्रावकाः सर्वे बोधिसंनिश्रिताश्च ये ।
मह्येदं वचनं मन्त्रं गृह्य त्वं व्याधिनाशनम् ॥ १३४ ॥
क्षुद्व्याधिपीडिता ये तु ये तु सत्त्वाः पिपासिताः ।
सर्वदुःखोपशान्त्यर्थं शृण्वध्वं भूमिकाङ्क्षिणः ॥ १३५ ॥
इत्येवमुक्त्वा मुनिप्रख्ये काश्यपोऽसौ महाद्युतिः ।
श्रावका तुष्टमनसो प्रार्थयामास तं विभुम् ॥ १३६ ॥
वदस्व मन्त्रं धर्मज्ञो धर्मराजा महामुनिः । G 105
सत्त्वानुकम्पकः अग्रो समयो प्रत्युपस्थितः ॥ १३७ ॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः अग्रो मन्त्रं भाषेत विस्तरम् ।
कलविङ्करुताघोषादुन्दुभीमेघनिस्वनः ।
ब्रह्मस्वरो महावीर्यो ब्रह्मणो ह्यग्रणी जिनः ॥ १३८ ॥
शृण्वन्तु भूतसंघा वै ये केचिदिहागताः ॥ १३९ ॥
अपदा बहुपदा चापि द्विपदा चापि चतुष्पदाः ।
संक्षेपतो सर्वसत्त्वार्थं मन्त्रं भाषे सुखोदयम् ॥ १४० ॥
अतीतानागता सत्त्वा वर्तमाना इहागताः ।
संक्षेपतो नु वक्ष्यामि शृण्वध्वं भूतकाङ्क्षिणम् ॥ इति ॥ १४१ ॥

नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ॥ तद्यथा ॐ गगने गगनगञ्जे आनय सर्वं लहु लहु समथमनुस्मर आकर्षणि मा विलम्ब यथेप्सितं मे संपादय स्वाहा । इत्येवमुक्त्वा भगवां काश्यपः तूष्णी अभूत् ॥

अत्रान्तरे भगवता काश्यपेन सम्यक्संबुद्धेन विद्यामन्त्रपदानि सविस्तराणि सर्वं तं गगनं महार्हभोजनपरिपूर्णमेघं संदृश्यते स्म । सर्वं तं त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुं भोजनमेघसंछन्नगगनतलं संदृश्यते स्म । यथाशयसत्त्वभोजनमभिकाङ्क्षिणं यथाभिरुचितमाहारं तत्तस्मै प्रवर्तते स्म । यथाभिरुचितैश्चाहारैः भोजनकृत्यं क्षुद्दुःखप्रशमनार्थं पिपासितस्य पानं पानीयं चाष्टाङ्गोपेतं वारिधारं तत्रैव मनीषितं निपतति स्म ॥

सर्वसत्त्वाश्च तस्मिन् समये तस्मिन् क्षणे सर्वक्षुद्व्याधिप्रशमनसर्वतृषापनयनं च कृतमभूत् । सा च सर्वावती पर्षत् आश्चर्यप्राप्ता औद्विल्यप्राप्ता भगवतो भाषितमभिनन्द्य अनुमोद्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा तत्रैवान्तर्हिता । भगवां काश्यपश्च तथागतविहारैः विहरेयुरिति । मया च भगवता शाक्यमुनिनाप्येतर्हि भाषिता चाभ्यनुमोदिता च ॥

G 106 अस्मिं कल्पराजोत्तमे सर्वसत्त्वानामर्थाय क्षुत्पिपासापनयनार्थं सर्वमन्त्रजापिनां च विशेषतः पूर्वं तावज्जापिना इमं मन्त्रं साधयितव्यम् । यदि नोत्सहेद्भिक्षामटितुं पर्वताग्रमभिरुह्य षड् लक्षाणि जपेत् त्रिशुक्लभोजी क्षीराहारो वा । ततो तत्रैव पर्वताग्रे आर्यमञ्जुश्रियस्य मध्यमं पटं प्रतिष्ठाप्य पूर्ववन्महतीं पूजां कृत्वा उदारतरं च बलिं निवेद्यम् । अनेनैव काश्यप सम्यक्संबुद्धैर्भाषितेन मन्त्रेण खदिरसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य औदुम्बरसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां सार्द्राणां वितस्तिमात्राणां श्रीफलसमिधानां वा अष्टसहस्रं जुहुयात् ॥

ततोऽर्धरात्रकालसमये महाकृष्णमेघवातमण्डली आगच्छति । न भेतव्यम् । नाप्योत्थाय प्रक्रमितव्यम् । आर्यमञ्जुश्रियाष्टाक्षरहृदयेन आत्मरक्षा कार्या, मण्डलबन्धश्च सहायानां च पूर्ववत् । ततो सा कृष्णवातमण्डली अन्तर्धीयते । स्त्रियश्च सर्वालंकारभूषिताः प्रभामालिनी दिशश्चावभास्यमाना साधकस्याग्रतो कुर्वते- उत्तिष्ठ भो महासत्त्व । सिद्धास्मीति । गतः । साधकेन गन्धोदकेन जातीकुसुमसंमिश्रेण अर्घो देयः । ततः सा तत्रैवान्तर्धीयते । तदह एव आत्मपञ्चविंशतिमस्य सहायैर्वा यथाभिरुचितैः कामिकं भोजनं प्रयच्छति । यथेष्टानि चोपकरणानि संददाति । ततः साधकेन विसर्ज्यार्घं दत्त्वा पटं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य पटमादाय सर्वबुद्धबोधिसत्त्वान् प्रणम्य यथेष्टं स्थानं साधनौपयिकं पूर्वनिर्दिष्टं महारण्यं पर्वताग्रं वा निर्मानुषं वा स्थानं गन्तव्यम् ॥

तत्रात्मनः सहायैर्वा उदयं कृत्वा प्रतिवस्तव्यम् । प्रतिवसना च तस्मिं स्थाने । आकाशगमनादिकर्माणि कुर्यात् । ततो साधकेन पूर्ववत् कुशपिण्डकोपविष्टेन मध्यमं पटं प्रतिष्ठाप्य पूर्ववत् खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य त्रिसंध्यं श्वेतपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् दिवसान्येकाविंशति ॥

ततोऽर्धरात्रकालसमये होमान्ते आर्यमञ्जुश्रियं साक्षात्पश्यति । ईप्सितं वरं ददाति । आकाशगमनमन्तर्धानबोधिसत्त्वभूमिप्रत्येकबुद्धत्वं श्रावकत्वं पञ्चाभिज्ञत्वं वा दीर्घायुष्कत्वं वा G 107
महाराज्यमहाभोगतायैर्वा नृपप्रियत्वं वा । आर्यमञ्जुश्रिया सार्धं मन्त्रं विचरता संक्षेपतो वा यन्मनीषितं तत्सर्वं ददाति । यं वा याचते तमनुप्रयच्छति । सिद्धद्रव्याणि वा सर्वाणि लभते । आकर्षणं च महासत्त्वानां च करोति । संक्षेपतो यथा यथा उच्यते, तत्सर्वं करोति । प्राक्तनं वा कर्मापराधं वा संशोधयतीत्याह भगवां शाक्यमुनिः ॥

अपरमपि कर्मौपयिकमध्यमसाधनं भवति । आदौ तावत् तथा विशिष्टे स्थाने शुचौ देशे नद्याः पुलिनकूले वा पूर्ववत् सर्वं कृत्वा पश्चान्मुखं पटं प्रतिष्ठाप्य आत्मनश्च पूर्वाभिमुखो भूत्वा कुशपिण्डकोपविष्टः । पेयालं विस्तरेण कर्तव्यम् । त्रिसंध्यं षड्लक्षाणि जपेत् । जपपरिसमाप्ते च कर्णिकारपुष्पाणां शुक्लचन्दनमिश्राणां कुङ्कुममिश्राणां वा शतसहस्राणि जुहुयात् । पूर्ववत् तथैवाग्निं प्रज्वाल्य होमपर्यवसाने च पटप्रकम्पने मन्त्रित्वं पटरश्म्यवभासे निश्चरिते च रश्मौ राज्यं पटसमन्तज्वालमालाकुले चतुर्महाराजकायिकराज्यत्वं वाङ्निश्चरणे पटे त्रयस्त्रिंदशेश्वरत्वं शक्रत्वं पटधर्मदेशननिश्चरणे बोधिसत्त्वत्रिभूमीश्वरत्वं पटबाहुमूर्ध्नि स्पर्शने पञ्चाभिज्ञासप्तभूमिमनुप्रापणदशबलनियतमनुपूर्वप्रापणमिति ॥

अथ साधकेन भगवं काश्यपभाषितेन मन्त्रे साधिते क्षुत्पिपासाप्रतिघातार्थमनुप्राप्ते तेनैव विधिना तेनैवोपकरणेन मन्त्रचर्यार्थसाधनौपयिके धर्मे समनुष्ठेयम् । नान्यथा सिद्धिरिति ॥

एवमनुपूर्वमन्त्रचर्यामनुवृत्तिः समाप्तेरनुष्ठेया । नियतं सिध्यति । द्रव्योपकरणोषध्यपि शेषाणि मणिरत्नानि यथापूर्वनिर्दिष्टानीति ॥

मन्त्रज्ञो मन्त्रजापी च विधिराख्यातमानसः ।
तस्मिन् देशे तदा मन्त्री शुचिजश्वेतदोदनम् ॥ १४२ ॥
भुक्त्वा तु तुष्टमनसो परिपुष्टेन्द्रियः सदा ।
गृह्य तं पात्रशेषं तु सरिद्वच्छे शुभोदके ॥ १४३ ॥
एकान्ते छोरयित्वा तु तिर्येभ्यो ददौ व्रती ।
तिर्येभ्यो तु दत्त्वा वै पात्रं प्रक्षाल्य यत्नतः ॥ १४४ ॥
मृन्मयं तु पुनः पाकं ततः कुर्वीत यत्नतः । G 108
शेषपात्रं तु कुर्वीत निःस्नेहं निरामिषम् ॥ १४५ ॥
गन्धं चैव संत्याज्य शेषपात्रं मुनिर्वरः ।
यस्मिन् पात्रे अटे भिक्षां न जग्धे तत्र भोजनम् ॥ १४६ ॥
न भक्षे तत्र भक्षाणि फलद्रव्याणि तु सदा ।
न भुञ्जेत्पद्मपत्रेण न चापि कुवलयोद्भवैः ॥ १४७ ॥

सौगन्धिकेषु वर्जीत न भुङ्क्ते तत्र मन्त्रिणः ।
कौमुदा ये च पत्रा वै प्लक्षोदुम्बरसंभवा ॥ १४८ ॥
न चापि वटपत्रैस्तु कर्णशाकोगौल्मिणाम् ।
न चापि आम्रपत्रेषु तथा पालाशमुद्भवैः ॥ १४९ ॥
शालपत्रैः शिरीषैश्च बोधिवृक्षसमुद्भवैः ।
यत्रासौ भगवां बुद्धः शाक्यसिंहो निषण्णवान् ॥ १५० ॥
तं वृक्षं वर्जयेद् यत्नात् तत्काष्ठं चापि न खनेत् ।
नागकेसरवृक्षेषु न कुर्यात्पत्रशातनम् ॥ १५१ ॥
नापि भुङ्क्ते कदा कस्मिन् सर्वे ते वर्जिता बुधैः ।
नापि लङ्घेत्कचा मोहा मुनीनां पर्णशालिनाम् ॥ १५२ ॥
समयाद्भ्रश्यते मन्त्री तेषां पर्णेषु भोजने ।
अन्यपर्णैर्न भुञ्जीत भोजनं तत्र मन्त्रिणः ॥ १५३ ॥
मृन्मये ताम्रनिर्दिष्टैः तथा रूप्यैः सातमुद्भवैः ।
स्फटिकैः शैलमयैर्नित्यं तथा भोजनमाददे ॥ १५४ ॥
न भुङ्क्ते पर्णपृष्ठैस्तु तथा हस्ततले तथा ।
निवेद्य संभवा ये पर्णा मारारेर्दशबलात्मजां ॥ १५५ ॥
प्रत्येकखड्गिणां ये च तथा श्रावकपुद्गलाम् ।
वर्जये तं जपी पर्णं पद्भ्यां चैव न लङ्घयेत् ॥ १५६ ॥
विविधां भक्षपूपां तु तथा पानं च भोजनम् ।
न मन्त्री आददे यत्नात्सर्वं चैव निवेदितम् ॥ १५७ ॥
G 109 जिनानां जिनचाराणां च तथा श्रावकपुद्गलाम् ।
रत्नत्रयेऽपि दत्तं वै तं जापी वर्जयेत्सदा ॥ १५८ ॥
मन्त्रास्तस्य न सिध्यन्ते स्वल्पमात्रापि देहिनाम् ।
कः पुनः श्रेयसा दिव्यं सर्वमङ्गलसंमताम् ॥ १५९ ॥
पौष्टिकं शान्तिकं चैव सर्वाशापरिपूरिणम् ।
न सिद्ध्यन्ति तदा तस्य निवेद्य बलिभोजिनः ॥ १६० ॥
शुचिनो दक्षशीलस्य घृणिनो धार्मिणस्तथा ।
सिध्यन्ति मन्त्राः सर्वत्र शौचाचाररतस्य वै ॥ १६१ ॥
अन्नं सर्वेषु दत्त्वाद्यं न भुङ्क्ते तत्र जापिनः ।
अन्यमन्नं न भुञ्जीत भुञ्जीतान्येभ्यो प्रतिपादितम् ॥ १६२ ॥
भोजनं स्वल्पमात्रं तु स्वदत्तं चापि आददे ।
य एव प्रवृत्तो मन्त्रज्ञो तस्य सिद्धि करे स्थिता ॥ १६३ ॥

अनेन विधिना तं जापी भोजनं आददेद्व्रती ।
मुनिभिः संप्रशस्तं तु सर्वमन्त्रेषु साधने ।
विधिदृष्टां समासेन सर्वभोजनकर्मसु ॥ १६४ ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं सर्वशोधने ।
उपस्पृश्य ततो जापी इदं मन्त्रं पठेत्सदा ।
सप्तवारां ततो मन्त्री जपित्वा कायशोधनम् ॥ १६५ ॥

शृणु तस्यार्थविस्तारं भूतसंघानुदेवता ।
सर्वकायं परामृश्य इदं मन्त्रं वदेन्मुनी ॥ १६६ ॥

नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—ॐ सर्वकिल्बिषनाशनि नाशय नाशय सर्वदुष्टप्रयुक्तां समयमनुस्मर हूँ जः स्वाहा ॥ अनेन मन्त्रेण भिक्षोदनं यं वा अन्यं परिभुङ्क्ते, स मन्त्राभिमन्त्रितं कृत्वा परिभोक्तव्यः । भुक्त्वा चोपस्पृश्य पूर्ववत् मूर्ध्नप्रति सर्वं कायं परामृज्य ततो विश्रान्तव्यम् । विश्राम्य च मुहूर्तं अर्धोर्धेकयामं वा ततः पटमभिवन्द्य सर्वबुद्धानां सद्धर्मपुस्तकां वाचयेत् । आर्यप्रज्ञापारमिताआर्यचन्द्रप्रदीपसमाधिं आर्यदशभूमकः आर्यसुवर्णप्रभासोत्तमः आर्यमहामायूरी आर्यरत्नकेतुधारिणीम् । एषामन्यतमान्यतमं G 110
वाचयेद् युगमात्रसूर्यप्रमाणकालम् । ततो परिनाम्य यथापरिशक्तितश्च वाचयित्वा पुस्तकामुत्सार्य शुचिवस्त्रप्रच्छन्नां वा कृत्वा सद्धर्मं प्रणम्य ततो स्नानायमवतरे । नदीकूलं महाह्रदं वा गत्वा निष्प्राणकां मृत्तिकां गृह्य सप्तमन्त्राभिमन्त्रितां कृत्वा अनेन मन्त्रेण जलं क्षिपेत् । कतमेन ? नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—ॐ सर्वदुष्टां स्तम्भय हूँ इन्दीवरधारिणे कुमारक्रीडरूपधारिणे बन्ध बन्ध समयमनुस्मर स्फट् स्फट् स्वाहा । अनेन तु रक्षां कृत्वा दिशाबन्धं च सहायानां च मण्डलबन्धं तुण्डबन्धं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वाकर्षणं च शुक्रबन्धं सप्तजप्तेन सूत्रेण कटिप्रदेशावबद्धेन सर्वतश्च पर्यटेत् । जपकाले च सर्वस्मिन् सर्वकालस्नानकाले च दुष्टविघ्नविनाशनमुपशमनार्थमस्य मन्त्रस्य लक्षमेकं जपेत् । ततः सर्वकर्माणि करोति । पञ्चाशिखमहामुद्रोपेतं न्यसेत्सर्वकर्मेषु । सर्वां करोति, नान्यथा भवतीति ॥

ततः साधकेन मृद्गोमयचूर्णादीन् गृह्य स्नायीत यथासुखम् । निष्प्राणकेनोदकेन स्नातव्यम् । सर्वत्र च सर्वकर्मसु निष्प्राणकेनैव कुर्यात् । ततो स्नात्वा मृद्गोमयानुलेपनैरन्यैर्वा सुगन्धगन्धिभिश्चोपकरणविशेषैः । नापि सलिले खेटमूत्रपुरीषादीनुत्सृजेत् । सलिलपीकधारां वा नोत्सृजेत् । नापि क्रीडेत् करुणायमानः सर्वसत्त्वानामात्मनश्च प्रत्यवेक्ष्य अनात्मशून्यदुःखोपरुद्धवेदनाभिनुन्नं रुग्णमिव मातृविप्रयोगदुःखितसत्त्वो । एवं साधनरहितो मन्त्रज्ञो हि तथाविधं शतनपतनविकिरणविध्वंसनादिभिः दुःखोपधानैरुपरुध्यमानं संसारार्णवगहनस्थमात्मानं पश्येत् । अलयनमत्राणमशरणअदीनमनसमात्मानमवेक्ष्य । ध्यायीत कण्ठमात्रमुदकस्थो नाभिमात्रमुदकस्थितो वा तत्रैव तु जलमध्ये चित्तैकाग्रतामुपस्थाप्य ॥

प्रथमं तावन्महापद्मविटपं महापद्मपुष्पोपेतं महापद्मपत्रोपशोभितं चारुदर्शनरत्नमयं वैदूर्यकृतगण्डं मरकतपत्रं पद्मकेसरं स्फटिकसहस्रपत्रं अतिविकसितं तदा न जातस्फटिक-
G 111 पद्मरागपुष्पोपशोभितं तत्रस्थं सिंहासनं रत्नमयमनेकरत्नोपशोभितं दुष्ययुगप्रतिच्छन्नम्। तत्रस्थं बुद्धं भगवन्तं ध्यायीत धर्मं देशयमानं कनकावदातं समन्तज्वालमालिनं ध्यानप्रभामण्डलमण्डितं महाप्रमाणं व्योम्निरिव उल्लिखमानं पर्यङ्कोपनिषण्णम्। दक्षिणतश्च आर्यमञ्जुश्रीः सर्वालंकारवरोपेतं पद्मासनस्थं चामरग्राही भगवतः स्थितकोनो निषण्णः रक्तगौराङ्गः पिष्टकुङ्कुमवर्णो वा वामतश्च आर्यावलोकितेश्वरः शरत्काण्डगौरः चमरव्यग्रहस्तः। एवमष्टौ बोधिसत्त्वाः आर्यमैत्रेयः समन्तभद्रः क्षितिगर्भः गगनगञ्जः सर्वनीवरणविष्कम्भी अपायजह आर्यवज्रपाणि सुधनश्चेत्येते दश बोधिसत्त्वाः दक्षिणतो प्रत्येकबुद्धाः अष्टौ ध्यायीत। चन्दनः गन्धमादनः केतुः सुकेतु सितकेतुः क्रुष्टः उपारिष्टनेमिश्चेति। अष्टौ महाश्रावकाः तत्रैव स्थाने। तद्यथा—आर्यमहामौद्गल्यायन शारिपुत्र गवांपति पिण्डोलभरद्वाज पिलिन्दवत्सः आर्यराहुलः महाकाश्यप आर्यानन्दश्चेति। इत्येषां महाश्रावकाणां समीपे अनन्तं भिक्षुसंघं ध्यायीत। प्रत्येकबुद्धानां समीपे अनन्तां प्रत्येकबुद्धां ध्यायीत। महाबोधिसत्त्वानां चाष्टसु स्थानेषु अनन्तं बोधिसत्त्वसंघं ध्यायीत। एवं शस्तं नभस्तलं महापर्षन्मण्डलोपेतं ध्यायीत। आत्मनश्च नाभिमात्रोदकस्थो नानाविधैः पुष्पैः दिव्यमानुष्यकैः मान्दारवमहामान्दारवपद्ममहापद्मधानुष्कारिकइन्दीवरकुसुमैश्च नानाविधैः महाप्रमाणै महाकूटस्थैः पुष्पपुटैः भगवतः पूजां कुर्यात्। सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वानां चूर्णच्छत्रध्वजपताकैः दिव्यमानुष्यकैः प्रभूतैः प्रदीपकोटीनयुतशतसहस्रैश्च पूजां कुर्यान्मनोरमाम्॥

एवं च बलिधूपनिवेद्यादिसर्वपूजोपस्थानान्युपकरणानि दिव्यमानुष्यकान्युपहर्तव्यानि। भगवतश्च शाक्यमुने ऊर्णकोशाद्रश्मिमभिनिश्चरन्तं चात्मानमवभास्यमानं सर्वासां ध्यायीत। समनन्तरध्यानगतस्य जापिनः ब्राह्मपुण्यफलावाप्तिः। नियतं बोधिपरायणो भवतीति॥

इत्येवमादयो ध्यानाः कथिता लोकपुंगवैः।
श्रेयसः सर्वभूतानां हितार्थं चैव मन्त्रिणाम्॥ १६७॥
आदिमुख्यो तदा ध्यानो हितार्थं सर्वमन्त्रिणाम्।
G 112 कथयामास सत्त्वेभ्यो मुनिश्रेष्ठोऽथ सत्तमः॥ १६८॥
मण्डलाकारतद्वेषप्रथमे मुनिभाषिते।
द्वितीयं मण्डलं चापि तृतीयं मन्त्रमतः परम्॥ १६९॥
प्रथमे उत्तमा सिद्धिः मध्यमे तु तथा परम्।
कन्यसे क्षुद्रसिद्धिस्तु निगम्य मुनिपुंगवः॥ १७०॥
पटाकारं तथा ध्यानं ज्येष्ठमध्यमकन्यसाम्।
समासेन तु तद्ध्यानं सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ १७१॥

नातःपरं प्रपद्येत ध्यानाकारमनीषिणः ।
सिध्यन्ति तस्य मन्त्रा वै ध्यानेऽस्मिं सुप्रतिष्ठिताः ॥ १७३ ॥
यथेष्टं विधिनाख्यातं ध्यानं ध्यात्वा तु जापिनः ।
विसर्ज्य तत्र वै मन्त्रं अर्घं दत्त्वा यथासुखम् ॥ १७४ ॥
उत्तीर्य तस्माज्जलौघात्तु ततो गच्छेद्यथासुखम् ।
स्थानं पूर्वनिर्दिष्टं विधिदृष्टं सुसंयतम् ॥ १७५ ॥
जपेन्मन्त्रं तदा मन्त्री पूर्वकर्म यथोदिते ।
विसर्ज्य मन्त्रं वै तत्र आहूता याश्च देवताः ॥ १७६ ॥
ततो निकृत्वा रक्षा सहायानां वा तथैव च ।
कुशलो कर्मतत्त्वज्ञो विधिकर्मरतो मतः ॥ १७७ ॥
विविधैः स्तोत्रोपहारैस्तु संस्तुत्वा अग्रपुद्गलम् ।
स्वमन्त्रं मन्त्रनाथं च श्रावकां प्रत्येकखड्गिणां ॥ १७८ ॥
बोधिसत्त्वान् महासत्त्वान् त्रैलोक्यानुग्रहक्षमान् ।
ततोत्थाय पुनस्तस्मादासनान्मन्त्रजापिनः ॥ १७९ ॥
दूरादावसथाद् गत्वा बहिर्वातान्तवर्जिताम् ।
विसृजेत्खेटसिंघाणं मूत्रप्रस्रवणं तथा ॥ १८० ॥
दिवा उदङ्मुखं चैव रात्रौ दक्षिणामुखम् ।
न तत्र चिन्तयेदर्थान् मन्त्रजापी कदाचन ॥ १८१ ॥ G 113
न जपेत्तत्र मन्त्रं वै स्वकर्मकुलभाषितम् ।
प्रशस्ता कतिचिद्वाद्यैः उपविष्टो तदा भुवि ॥ १८२ ॥
उपस्पृश्य जले शुद्धे शुचिवस्त्रान्तगालिते ।
प्रक्षाल्य चरणौ जानोर्मृत्तिकैः सप्त एव तु ॥ १८३ ॥
प्रस्रुतो सप्त गृह्णीयात्····················।
पुरीषस्रावणे त्रिंशत् उभयान्ते करे उभौ ।
खेटच्छोरणे चैव सिंघाणे द्वयं तथा ॥ १८४ ॥
उपस्पृश्य ततो यत्नात् दूरादावसथा भुवि ।
शब्दमात्रं तथा गत्वा अध्वानादिषुक्षेपणा ॥ १८५ ॥
ततो परे यथेष्टं तु दक्षिणान्तां दिशां बहिः ।
श्वभ्रकेदारमौषर्ये सिकतास्तीर्णे तथैव च ॥ १८६ ॥
नदीवर्जां तु पारं च त्यजेदवस्करमाशुचिम् ।
प्रच्छन्ने रहसि विश्रब्धो प्रान्ते जनविवर्जिते ॥ १८७ ॥

तदा भवे तु चिन्मन्त्री कुर्यात् पूतिच्छोरणम् ।
न मन्त्रजापी कालज्ञो कुर्याद् वेगविधारणम् ॥ १८८ ॥
यथेष्टं च ततो गत्वा देशं वै शुचि प्रान्ते यथाविधि ।
कुटिः प्रस्रवणं कृत्वा तस्मिन् देशे यथासुखम् ॥ १८९ ॥
उडये वा रहसि च्छन्ने गुप्ते वा चैव भूतले ।
मौनी सङ्गं विवर्जीत कुर्यात् प्रस्रवणं सदा ॥ १९० ॥
विगते मूत्रपुरीषे तु कुर्यात् शौचं सदा व्रती ।
सुकुमारां सुस्पर्शपिष्टां तु मृत्तिकां प्राणवर्जिताम् ॥ १९१ ॥
गृह्य तिस्रं तथा चैकं गुदौ सदा उभयान्ते च करौ तथा ।
गृह्य पूर्वं तु निर्दिष्ट मन्त्रिणा च सदा भुवि ॥ १९२ ॥
पादौ प्रक्षाल्य यत्नेन दक्षिणं तु ततः परम् ।
अन्योन्येनैवं संश्लिष्य पादा चैव सदा जपी ॥ १९३ ॥
विस्तरः कथितं पूर्वं शौचं मन्त्रजापिनाम् ।
गन्धनिर्लेपशौचं तु कथितं शुचिभिः पुरा ॥ १९४ ॥
G 114 एतत् संक्षेपतो ह्युक्तं शौचं मन्त्रवातिनाम् ।
गन्धनिर्लेपतो शौचं शुचिरेव सदा भवेत् ।
दृश्यते सर्वतन्त्रेऽस्मिन् इत्युवाच मुनिप्रभुः ॥ १९५ ॥
उपस्पृश्य ततो जापी सिद्धकर्मरतो यतिः ।
विधिना पूर्वमुक्तेन अन्तःशुद्धेन मानसा ॥ १९६ ॥
शौचं पञ्चविधं प्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणाम् ।
कायशौचो तथा········ध्यानश्चैव कीर्त्यते ।
चतुर्थं सत्यशौचं तु आपः पञ्चम उच्यते ॥ १९७ ॥
सत्यधर्मा जितक्रोधो तन्त्रज्ञः शास्त्रदर्शिनः ।
सूक्ष्मतत्त्वार्थकुशलाः मन्त्रज्ञाः कर्मशालिनः ॥ १९८ ॥
हेतुदध्यात्मकुशलाः सिद्धिस्तेषु न दुर्लभा ।
न भाषेद्वितथां पूजां सत्यधर्मविवर्जिताम् ॥ १९९ ॥
क्रूरां क्रूरतरां चैव सर्वसत्यविवर्जिताम् ।
विद्वेषणीं सरोषां कर्कशां मर्मघट्टनीम् ॥ २०० ॥
सत्यधर्मविहीनां तु परसत्त्वानुपीडनीम् ।
पिशुनां क्लिष्टचित्तां च सर्वधर्मविवर्जिताम् ॥ २०१ ॥
हिंसात्मकीं तथा नित्यं कुशीलां धर्मचारिणीम् ।
मन्त्रजापी सदा वर्ज्या ग्राम्यधर्मं तथैव च ॥ २०२ ॥

मिथ्यासंकल्पक्रोधं वै परलोकातिभीरुणा ।
गर्हितं सर्वबुद्धैस्तु बोधिसत्त्वैस्तु धीमतैः ॥ २०३ ॥
प्रत्येकखड्गिभिर्नित्यं श्रावकैश्च सदा पुनः ।
मृषावादं तथा लोके सिद्धिकामार्थिनां भुवि ॥ २०४ ॥
नरका घोरतरं याति मृषावादोपभाषिणः ।
पुनस्तिर्यग्भ्यो तथा प्रेते यमलोके सदा पुनः ॥ २०५ ॥
वसते तत्र वै नित्यं मृषावादोपजीविनः ।
तपने दुर्मतिर्घोरे कालसूत्रे प्रतापने ॥ २०६ ॥
संजीवे असिपत्रे च तथैव शाल्मलीवने । G 115
बहुकल्पान् वसेत्तत्र मृषावादी तु जन्तुनः ।
कुतस्तस्य तु सिध्यन्ते मन्त्रा वै मिथ्यभाषिणः ॥ २०७ ॥
उद्वेजयति भूतानि मिथ्यावाचेन मोहितः ।
ततोऽसौ मूढकर्मा वै मन्त्रसिद्धिमपश्ययम् ॥ २०८ ॥
एवं च वदते वाचां नास्ति सिद्धिस्तु मन्त्रिणाम् ।
कुतस्तस्य भवेत्सिद्धिः बहुकल्पान कोटिभिः ॥ २०९ ॥
प्रतिक्षिप्तं येन बुद्धानां शासनं तु महीतले ।
ततोऽसौ पच्यते घोरे अविद्यां तु महाभये ॥ २१० ॥
संजीवे कालसूत्रे च नरके च प्रतापने ।
महाकल्पं वसेत्तत्र सद्धर्मो मे विलोपनात् ॥ २११ ॥
निरये घोरतमसे पच्यन्ते बालिशा जनाः ।
सद्धर्ममवमन्यन्तु अन्धेन तमसावृता ॥ २१२ ॥
अज्ञाना बालभावाद्वा मूढा मिथ्याभिमानिनः ।
पतन्ति नरके घोरे विद्याराजावमन्य वै ॥ २१३ ॥
तस्मात्पापं न कुर्वीत मिथ्याकार्यं च गर्हितम् ।
सद्धर्मं चावमन्यं वै मिथ्यादृष्टिश्च गर्हिताः ॥ २१४ ॥
तस्मात् श्राद्धो सदा भूत्वा सेवेन्मन्त्रविधिं सदा ।
सत्यवादी च मन्त्रज्ञो सत्त्वानां च सदा हितः ।
भजेत मन्त्रं मन्त्रज्ञो ध्रुवं सिद्धिस्तु तस्य वै ॥ २१५ ॥
करोति विविधां कर्मां उत्कृष्टाधममध्यमाम् ।
क्रिया हि कुरुते कर्म नाक्रिया हि हितं सदा ।
क्रियाकर्मसमायुक्तो सिद्धिस्तस्य सदा भवेत् ॥ २१६ ॥

क्रियार्थसर्वमर्थत्वात् कर्ममर्थ सदा क्रिया ।
अक्रियार्थं क्रियार्थं च क्रियाकर्म च युज्यते ।
सफलं चैव क्रिया यस्य क्रियां चैव सदा कुरु ॥ २१७ ॥
G 116 कृत्यं कर्मफलं चैव कृत्य कर्मफलं सदा ।
अफलं फलतां यान्ति फलं चैव सदाफलम् ॥ २१८ ॥
अफला सफलाश्चैव सर्वे चैव फलोद्भवाः ।
संयोगात् साध्यते मन्त्रं संयोगो मन्त्रसाधकः ।
असंयोगवियोगश्च वियोगो संयोगसाधकः ॥ २१९ ॥
साध्यसाधनभावस्तु सिद्धिस्तेषु न सिध्यते ।
सिद्धिद्रव्यास्तु सर्वत्र विरुद्धाः सिद्धिहेतवः ॥ २२० ॥
अप्रसिद्धा सिद्धमन्त्राणां मन्त्राः साधनकारणाः ।
कर्तुरीप्सिततमं कर्म कर्मरिप्सु क्रियाभवः ॥ २२१ ॥
अकर्मं सर्वकर्मेषु न कुर्यात् कर्महेतवः ।
मन्त्रतन्त्रार्थयुक्तश्च सकलं कर्ममारभेत् ॥ २२२ ॥
आरब्धं आरभेत्कर्म अकर्मां चैव नारभेत् ।
अनारम्भक्रिया मन्त्रा न सिध्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥ २२३ ॥
पुरा गीतं मुनिभिः श्रेष्ठैः सर्वसद्धर्मभाषिभिः ।
समयं जिनपुत्राणां मन्त्रवादे तु दर्शितम् ॥ २२४ ॥
साधकः सर्वमन्त्रज्ञो कल्पराजे इहापरे ।
देशितं मन्त्ररूपेण मार्गं बोधिकारणम् ॥ २२५ ॥
सिध्यन्ति मन्त्राः सर्वे मे यत्र युक्ति सदा भवेत् ।
सोऽचिरेणैव कालेन सिद्धिं गच्छेन्मनीषिताम् ॥ २२६ ॥
शिवार्थं सर्वभूतानां संबुद्धैस्तु प्र············ ।
····················रूपेण निर्वाणपुरगामिनाम् ॥ २२७ ॥
बोधिमार्गं तथा नित्यं सर्वकर्मार्थपूरकम् ।
बुद्धत्वं प्रथमं स्थानं निष्ठं तस्य परायणम् ॥ २२८ ॥
अनाभोगे तथा सिद्धिः प्राप्नुयात् सफलानिह ।
विचित्रकर्मधर्मज्ञा मन्त्राणां करणं भवेत् ॥ २२९ ॥
शीलध्यानविमोक्षाणां प्राप्तिरेषा समासतः ।
कथिता जिनमुख्यैस्तु सिद्धिः सर्वार्थसाधना ॥ २३० ॥
G 117 पुष्कलान् प्राप्नुयादर्थां उत्तमां गतिनिश्रयाम् ।
यथाध्यक्ष तथा नित्यं अधमा राज्यकारणा ॥ २३१ ॥

नृसुरासुरलोकानां प्राप्नुयात् सर्वमन्त्रिणः ।
आधिपत्यं तथा तेषां कुरुते सफलां क्रियाम् ॥ २३२ ॥
शौचाचारसमायुक्तो शीलध्यानरतः सदा ।
जपेन्मत्रं ततो मन्त्री सर्वमन्त्रेषु भाषिताम् ॥ २३३ ॥
चित्रान् कुरुते कर्मान् तथा चोत्तममध्यमान् ।
कन्यसांश्चैव कुर्वीत भूतिमाकाङ्क्ष्य मन्त्रिणः ॥ २३४ ॥
कन्यसे भोगवृद्धिस्तु मध्यमे चोर्ध्वदेहिनाम् ।
उत्कृष्टं चोत्तमेनैव संप्राप्नोति जापिनः ॥ २३५ ॥
जपान्ते विश्रमेन्मन्त्री यावत्कालमुदीक्षयेत् ।
साधनं तत्र कुर्वीत प्राप्तकाले तु जापिनः ॥ २३६ ॥
सिध्यन्ति सर्वकर्माणि तथापि तत्र नित्यं जापी पापक्षयाच्च पुंसाम् ।
करोति मन्त्री विधिपूर्वकर्म यत्तत् कृतं कर्मपरंपरासु ॥ २३७ ॥
सिद्धिः स्थिता तस्य भवे कदाद्वा समग्रतां याव लभेत पुंसः ।
जपेत मत्रं पुन मत्रजापी पापक्षयार्थं तत कर्मनाशना ॥ २३८ ॥
सिध्यन्तु मन्त्रास्तु तथोत्तमानि ये मध्यमा कन्यस लोकपूजिता ।
जपेन पापं क्षपयन्त्यशेषं यत्तत्कृतं जन्मपरंपरासु ॥ २३९ ॥
नश्यन्ति पापा तथ सर्वदेहिनां करोति चित्रां विविधाङ्गभूषणाम् ।
मनोरमां सर्वगुणानुशालिनां यक्षे समावास नृपत्व नित्यम् ।
सर्वार्थसिद्धिं समवाप्नुवन्ति मन्त्रं जपित्वा तु तथागतानाम् ॥ २४० ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पाद् एकादशमपटलविसराच्चतुर्थः साधनौपयिककर्मस्थानजपनियमहोमध्यानशौचाचारसर्वकर्मविधिसाधनपटलविसरः समाप्त इति ॥



१२ अक्षसूत्रविधिपटलविस्तरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि सर्वावन्तं शुद्धावासभवनमालोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—शृणु त्वं मञ्जुश्रीः । त्वदीयं विद्यामन्त्रानुसारिणां सकलसत्त्वार्थसंप्रयुक्तानां सत्त्वानाम् । येन जाप्यन्ते मन्त्राः, येन वा जाप्यन्ते । अक्षसूत्रविधिं सर्वतन्त्रेषु सामान्यसाधनौपयिकसर्वमन्त्राणाम् । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्ये । एवमुक्ते मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत्—साधु भगवन् । तद्वदतु अस्माकमनुकम्पार्थं सर्वमन्त्रचर्यानुसमयप्रविष्टानां सत्त्वानामर्थाय सर्वसत्त्वानां च । एवमुक्ते मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन भगवानस्मै तदवोचत्—शृणु त्वं मञ्जुश्रीः । भाषिष्ये विस्तारविभागशो येन सर्वमन्त्रचर्याभियुक्ताः सत्त्वाः सर्वार्थां साधयन्ति । कतमं च तत् ? आदौ तावन्मन्त्रं भवति—

नमः समन्तबुद्धानामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् । तद्यथा—ॐकुरु कुरु सर्वार्थां साधय साधय सर्वदुष्टविमोहनि । गगनावलम्बे । विशोधय स्वाहा ।

अनेन मन्त्रेण सर्वाक्षसूत्रेषु कर्माणि कुर्यात् । शोधनवेधनगृह्णनविरेचनादीनि कर्माणि कुर्यात् । प्रथममक्षसूत्रेषु वृक्षं चाभिमन्त्रयेत् ।

सप्तत्रिंशतिवाराणि कृतरक्षो व्रती तदा ।
एकरात्रं स्वपेत् तत्र स्वप्ने चैव स पश्यति ॥ १ ॥
अमनुष्यं रूपसंपन्नं विरूपं वा चिरकालयम् ।
क्रमते तस्य सौमित्री गृह्यमर्थयथावनः ॥ २ ॥
ततोऽसौ साधको गच्छेत् प्रातरुत्थाय तं तरुम् ।
तत्रापि पश्यते स्वप्नं विरूपं वा महोत्कटम् ॥ ३ ॥
वर्जयेत् तं तरुं मन्त्री अन्यत्र वाथ गच्छेय ।
प्रथमं रुद्रमक्षं तु इन्द्रमक्षमतः परम् ॥ ४ ॥
G 119 पुत्रं जीवकमिष्टं वा अन्यं वा फलसंभवः ।
वृक्षारोहसुसंपन्नैः सहायैश्चापि मारुहेत् ॥ ५ ॥
सहायानामभावेन स्वयं वा आरुहेज्जपी ।
ऊर्ध्वशाखाफलस्था .... ॥ ६ ॥
................तस्मिं ऊर्ध्वशाखाविनिर्गतः ।
ऊर्ध्वशाखां फलं गृह्य ऊर्ध्वकर्म प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वे उत्तमा सिद्धिः कथितं ह्यग्रपुद्गलैः ।
मध्यमे मध्यमा सिद्धिः कन्यसे ह्यधमेव तु ॥ ८ ॥
फलं तेषु समादाय अकुप्सां प्राणिभिः सदा ।
पश्चिमे शाखिनां प्राप्य सिध्यन्ते द्रव्यहेतवः ॥ ९ ॥

उत्तरे यक्षयोन्यादीन् आनयेद्देवतां सह ।
कृत्यमाकर्षः ख्यातो सर्वभूतार्थशान्तये ॥ १० ॥
देवतासुरगन्धर्वा किन्नरामथ राक्षसा ।
विधे सुकुरुते*कर्मं सर्वभूतार्थपुष्टये ॥ ११ ॥
सफलां कुरुते कर्मां अशेषां भुवि चेष्टिताम् ।
पूर्वायां दिशि ये शाखा तत्रस्था फलसंभवा ॥ १२ ॥
तेषु कुर्यात् सदा यत्नाद् दीर्घायुष्यार्थहेतवः ।
करोति विविधाकारां यत्र सिद्धिः फलैः सदा ॥ १३ ॥
या तु दक्षिणतो गच्छेत् शाखा पर्णानुशालिनी ।
तं जपी वर्जयेद् यस्मात् सत्त्वानां प्राणहारिणी ॥ १४ ॥
दक्षिणासृतशाखासु फला ये तु समुच्छ्रिता ।
अक्षैः तैः समं जप्याः शत्रूणां पापनाशनम् ॥ १५ ॥
तं जापी वर्जयेद्यत्नात् बहुपुण्यानुहेतवः ।
अधःशाखावलम्बस्था फला ये तु प्रकीर्तिता ॥ १६ ॥
गच्छेद् रसातलं तैस्तु दानवानां च योषिताम् ।
तैः फलैः अक्षसूत्रं तु गृहीता संप्रकीर्तिता ॥ १७ ॥
अधो यायां तु निलयाः पातालं तेन तं व्रजेत् । G 120
प्रविश्य तत्र वै दिव्यं सौख्यमासाद्य जापिनः ॥ १८ ॥
आसुरीभिः समासक्तो तिष्ठेत्कल्पं वसेच्चसौ ।
गृह्य अक्षफलं सर्वां ततो अवतरेज्जपी ॥ १९ ॥
कृतरक्षो सहायैस्तु ततो गच्छेद्यथासुखम् ।
गत्वा तु दूरतः स्थानं शुचौ देशे तथा निलम् ॥ २० ॥
तिष्ठेत्तत्र तु मन्त्री स्नोधयेमक्षमुद्भवाम् ।
गृह्य अक्षफलद्युक्तो संशोध्यं वाथ सर्वतः ॥ २१ ॥
संशोध्य सर्वतः अक्षां वेधयेन्मन्त्रशालिनः ।
तृ सप्त रष्ट एकं वा वारां ते एकविंशति ॥ २२ ॥
शोधयेन्मत्रसत्त्वज्ञो पूर्वमन्त्रेण तु सदा ।
सप्तजप्तेथमष्टैर्वा ततो शुद्धिः समिष्यते ॥ २३ ॥
कन्याकर्तितसूत्रेण पद्मनालसमुत्थितैः ।
त्रिगुणैः पञ्चभिर्युक्तो कुर्याद् वर्तिककं व्रती ॥ २४ ॥
तं ग्रन्थेन्मन्त्रतत्त्वज्ञो फलां सूक्ष्मां सुवर्तुलाम् ।
अच्छिद्रां प्राणकैर्निलं अव्यङ्गां वाप्यकुत्सिताम् ॥ २५ ॥

शोभनां चारुवर्णां तु अच्छिद्रामस्फुटितां तथा ।
रुद्राक्षं सुतजीवं वा इन्द्राक्षफलमेव तु ॥ २६ ॥
अरिष्टां शोभनां नित्यं अव्यङ्गां फलसंमताम् ।
ग्रथेन्मन्त्री सदोद्युक्तो अक्षमालां तु यत्नतः ॥ २७ ॥
सौवर्णमथ रूप्यं वा माणिक्यं स्फाटिकं समम् ।
शङ्खं मुसारं चैव मौक्तं वापि विधीयते ॥ २८ ॥
प्रवालैर्विविधा माला कुर्यादक्षमालिकाम् ।
अन्यरत्नांश्च वै दिव्यान् कुर्यात् शुभमालिकाम् ॥ २९ ॥
पार्थिवैर्वर्तुलैर्गुलिकैर्ग्रथेत् सूत्रे समाहितः ।
अन्यां वा गुलिकां किंचित् फलैर्वा धातुसंभवैः ॥ ३० ॥
G 121 कुशाग्रग्रथिकां चैव कुर्याद् यत्नानुजापिनः ।
शताष्टं पञ्चविंशं वा पञ्चाशं चैव मध्यमाम् ॥ ३१ ॥
एतत्प्रमाणमालां तु ग्रथेन्मन्त्री समाहितः ।
सहस्रं साष्टकं चैव कुर्यान्मालां तु ज्येष्ठिकाम् ॥ ३२ ॥
एतच्चतुर्विधां मालां ग्रथितं नित्यमन्त्रिभिः ।
ततो ग्रथितु माला वै त्रिमात्रां द्विक एव वा ॥ ३३ ॥
पुष्पलोहमयैः कटकैः सौवर्णै राजतैस्तथा ।
ततो ताम्रमयैर्वापि ग्रथेन्मालां समासतः ॥ ३४ ॥
ततोऽन्ते पाशकं कृत्वा न्यसेत् तदानुपूर्वतः ।
वेष्टयेत् तं तृसंध्यन्ताद् यथा बद्धोऽवतिष्ठति ॥ ३५ ॥
परिस्फुटं तु ततो कृत्वा मण्डलाकारदर्शनम् ।
सर्वभोगतथाकारं परिवेष्ट्याभिभूषितम् ॥ ३६ ॥
मुक्ताहारसमाकारो कण्ठिकाकारनिर्मितः ।
स्नात्वा शुभे अम्भे सरिते वापि निर्मले ॥ ३७ ॥
स्नात्वा च यथापूर्वं उत्तिष्ठे सलिलालयात् ।
उपस्पृश्य यथा युक्त्या गृह्यमक्षाणुसूत्रितम् ॥ ३८ ॥
प्रक्षाल्य पञ्चगव्यैस्तु तथा मृत्तिकचूर्णिकैः ।
प्रक्षाल्य शुभे अम्भे सुगन्धैश्चानुलेपनैः ॥ ३९ ॥
प्रशस्तैर्वर्णकैश्चापि श्वेतचन्दनकुङ्कुमैः ।
प्रक्षाल्य यत्नतो तस्मात् ततो गच्छेदुडयं तथा ॥ ४० ॥
यथास्थानं तु गत्वा वै यत्रासौ पटमध्यमः ।
जिनश्रेष्ठो मुनिर्मुख्यो शाक्यसिंहो नरोत्तमः ॥ ४१ ॥

शास्तु बिम्बे तथा नित्यं भुवि धातुवरे जिने ।
त·······························समीपतः ॥ ४२ ॥
संस्थाप्य पटे तस्मिन् अग्रते समुपस्थिते ।
सहस्राष्टशतं जप्तं शतं चैकत्र साष्टकम् ॥ ४३ ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा ददौ मालां मुनिसत्तमे । G 122
कृतजापी तथा पूर्वं प्रमाणेनैव तत्समः ॥ ४४ ॥
परिजप्य ततो मालां रात्रौ तत्रैव संन्यसेत् ।
स्वपेत् तत्रैव मन्त्रज्ञः कुशसंस्तरणे भुवि ॥ ४५ ॥
स्वप्ने यद्यसौ पश्ये शोभनां स्वप्नदर्शनाम् ।
सफलां स्वप्ननिर्दिष्टां सिद्धिस्तस्य विधीयते ॥ ४६ ॥
बुद्धश्रावकखड्गीणां स्वप्ने यद्य दृश्यते ।
सफलं सिध्यते मन्त्री ध्रुवं तस्य विधिक्रिया ॥ ४७ ॥
कुमाररूपिणं बालं विचित्रं चारुदर्शनम् ।
स्वप्ने यद्यसौ दृष्ट्वा मालां दद्या तथैव च ।
अमोघं तस्य सिध्यन्ते मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ॥ ४८ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावंतसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् मध्यमपट-विधानविसराद् द्वादशमः अक्षसूत्रविधिपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



१३ त्रयोदशः पटलविसरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयं मन्त्रपटलं समस्तविन्यस्तविशेषविधिना होमकर्मणि प्रयुक्तस्य विद्यासाधकस्य अग्न्योपचर्याविशेषविधानतः, यत्र प्रतिष्ठिता सर्वविद्याचर्यानियुक्ता सत्त्वा प्रयुज्यन्ते । कतमं च तत्? रहस्यविद्यामन्त्रपदानि । तद्यथा—ॐ उत्तिष्ठ हरिपिङ्गल लोहिताक्ष देहि ददापय हूँ फट् फट् सर्वविघ्नं विनाशय स्वाहा ।" एष स मञ्जुश्रीः परमाग्निहृदयं सर्वकर्मकरं सर्वकामदम् ॥

आदौ तावत् साधकेन अनेनाग्निहृदयेन सकृज्जप्तं घृताहुतित्रयं अग्नौ होतव्यम् । अग्निराह्वानितो भवति । तथाप्रयुक्तस्य शान्तिकपौष्टिकरौद्रकर्मेषु त्रिधा समिधाकाष्ठानि भवन्ति ॥

अशोककाष्ठं शान्त्यर्थे सार्द्रं चैव विशिष्यते ।
वितस्तिहस्तमात्रं वा त्र्यङ्गुलं वापि चोच्छ्रितम् ॥ १ ॥
स्निग्धाकारप्रशस्तं तु विधिरेषा विधीयते ।
अकोटरं असुषिरं वापि शुकपत्रनिभं तथा ॥ २ ॥
हरितं शुक्लवर्णं वा कृष्णवर्णं विवर्जयेत् ।
कृमिभिर्न च भक्षितं वर्ज्यमकोटरं वापि संदधेत् ॥ ३ ॥
अन्यवर्णो प्रकृष्टास्तु अधर्मश्चैव वर्जिता ।
नातिशुष्का न चार्द्रापि न च दग्धं समारभे ॥ ४ ॥
अपूर्ति अवक्रं चैव अत्युच्चं चापि वर्जयेत् ।
अग्निकुण्डं तथा कृत्वा चतुःकोणं समन्ततः ॥ ५ ॥
अधश्चैव खनेद्यत्नाच्चतुर्हस्तं प्रमाणतः ।
त्रिहस्तं द्वे तु हस्तानि एकहस्तं तथैव च ॥ ६ ॥
प्राणिभिर्विवर्जितं नित्यं सिंहतासंस्थितं च तत् ।
पद्माकारं ततो वेदिः समन्तान्मण्डलाकृतिः ॥ ७ ॥
G 124 चतुरस्रं चापि यत्नेन कुर्याच्चापाकृतिं तथा ।
वज्राकारसंकाशं उभयाग्रं त्रिसूचिकम् ॥ ८ ॥
कुर्यादग्निकुण्डेऽस्मिन् द्विहस्ता तिर्यञ्चं तत् ।
शुचौ देशे परामृष्टे नदीकूले तथा वरे ॥ ९ ॥
एकस्थावरदेशे च श्मशाने शून्यवेश्मनि ।
कु[र्या]द्धोमं सुसंरब्धो पर्वताग्रे तथैव च ॥ १० ॥

शून्यदेवकुले नित्यं महारण्ये तथैव च ।
यानि साधनदेशानि कथितान्यग्रपुद्गलैः ॥ ११ ॥
एतानि स्थानान्युक्तानि होमकर्मिति सर्वतः ।
कुशपिण्डकोपविष्टेन स्थित्वा हस्तमात्रं ततः ॥ १२ ॥
कुर्यात् तत्र मन्त्रज्ञो होमकर्म विशेषतः ।
क्षिप्रमेभिः स्थितं सिद्धिः स्थानेष्वेव न संशयः ॥ १३ ॥
प्राङ्मुखो उदङ्मुखो वापि कुर्यात् शान्तिकपौष्टिके ।
दक्षिणेन तु रौद्राणि तानि मन्त्री तु वर्जयेत् ॥ १४ ॥
प्राङ्मुखे शान्तिका सिद्धिः पौष्टिके चापि उदङ्मुखा ।
एभिर्मन्त्री सदाकालं मन्त्रजापं तु मारभेत् ॥ १५ ॥
बिल्वाम्रप्लक्षन्यग्रोधैः कुर्यात् कर्मणि पौष्टिकम् ।
आभिचारुककाष्ठानि शुष्ककट्वाम्लतीक्ष्णकाः ॥ १६ ॥
तानि सर्वाणि वर्जीत निषिद्धा मुनिभिः सदा ।
शान्तिके पौष्टिके कर्मे सार्द्रकाष्ठा प्रशस्यते ॥ १७ ॥
रौद्रकर्मे तथा कर्मा वर्जिता मुनिभिः सदा ।
तेषामभावे समिधानां काष्ठं तेषां तु कल्पयेत् ॥ १८ ॥
समन्तात् कुशसंस्तीर्णं उभयाग्रं तु कल्पयेत् ।
हरितैः स्निग्धसंकाशैर्मयूरग्रीवसंनिभैः ॥ १९ ॥
तथाविधैः कुशैर्नित्यं कुर्यात् शान्तिकपौष्टिकम् ।
मरकताकाशसंकाशैस्तथा शुष्कैः त्रिणैः सदा ॥ २० ॥
कुर्यात् पावककर्माणि निषिद्धा जिनवरैरिह । G 125
निर्मले चाम्भसो शुद्धे कृमिभिर्वर्जिते सदा ॥ २१ ॥
ततोऽभ्युक्ष्य समन्ता वै कुर्याच्चापि प्रदक्षिणम् ।
ज्वालयेद् वह्नि युक्तात्मा उपस्पृश्य यथाविधि ॥ २२ ॥
शुचिना तृणमूलेन कुर्यादुल्कां प्रमाणतः ।
मुष्टिमात्रं ततो कृत्वा ज्वालयेद् वह्नि यत्नतः ॥ २३ ॥
न चापि मुखवातेन वस्त्रान्तेन वा सदा ।
निवसनप्रावरणाभ्यां वर्जिता नान्यमम्बरे ॥ २४ ॥
न चापि हस्तवातेन उपहन्याभिरतेन वा ।
शुचिव्यजनेन तथा वस्त्रे पर्णे चापि प्रवातये ॥ २५ ॥
समीरिते कृते वह्नौ एभिरुद्भूतमारुते ।
ज्वाल्येदधिमन्त्रज्ञो होमार्थी सुसमाहितः ॥ २६ ॥

त्रीन् वारां ततोऽभ्युक्षे कृत्वा वा अपसव्यकम् ।
आहुतित्रयं ततो दद्याद् आज्ये गव्ये तु तत्र वै ॥ २७ ॥
ततः कुर्यात् प्रणामं वै सर्वबुद्धान तायिनाम् ।
स्वमन्त्रमन्त्रनाथं च ततो वन्दे यथेष्टतः ॥ २८ ॥
अग्निहृदये ततो मन्त्रे जप्ते जप्तेन वै सदा ।
आह्वयेद् वह्नि युक्तात्मा पुष्पैरेव सुगन्धिभिः ॥ २९ ॥
आह्वयति नित्यं मन्त्रज्ञो स्थानं दद्याद् विचक्षणः ।
आसनं स्थानं दत्त्वा तु तेन मन्त्रेण नान्यवै ॥ ३० ॥
दधिप्लुतमाज्यमिश्रं तु मध्वाक्तं समिधां त्रयम् ।
जुहुयादग्निपूजार्थं मन्त्रकर्मेण सर्वतः ॥ ३१ ॥
उभयस्थं तदा कुर्यात् समिधानां द्रव्यमिश्रितम् ।
आज्यमध्वक्तसंयुक्तां दध्यमिश्रे तथैव च ॥ ३२ ॥
सहस्रं लक्षमात्रं वा शताष्टं चापि कल्पयेत् ।
गुह्यमन्त्री तथा मन्त्रं सकृज्जप्त्वा क्षिपेत् शिखौ ॥ ३३ ॥
G 126 ज्वालामालिने वह्नौ एकज्वाले तथैव च ।
शान्तिकर्मणि जुह्वीत निर्धूमे चापि पौष्टिकम् ॥ ३४ ॥
सधूमे रौद्रकर्माणि गर्हिते जिनवर्णिते ।
होमकर्मप्रयुक्तस्तु अग्नौ वर्णो भवेद्यदि ॥ ३५ ॥
शान्तिके सितवर्णस्तु शस्तं जिनवरैः सदा ।
सिद्ध्यन्ति तत्र मन्त्रा वै सितेऽग्नौ जुह्वतो यदि ॥ ३६ ॥
रक्तवर्णं तथा नित्यं पौष्टिकात् सिद्धिमिष्यते ।
कृष्णे वा धूमवर्णे च कपिले चापि पायिकम् ॥ ३७ ॥
इत्येषा त्रिविधा सिद्धिः त्रिधा वर्णप्रवर्तिता ।
अन्यवर्णाभ्रवर्णा वा विविधाकारवर्णिता ॥ ३८ ॥
न सिद्धिस्तेषु मन्त्राणां पुनरस्तीह महीतले ।
तादृशं वर्णसंकाशं विविधाकारवर्णितम् ॥ ३९ ॥
शिखिं ज्वलन्तं दृष्ट्वा तु पुनः कर्म समारभेत् ।
भूयोऽपि कृतजापस्तु मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यदि ॥ ४० ॥
पुनर्होमं प्रवर्तीत विधिदृष्टेन कर्मणा ।
विसर्ज्याह्वानना चैव वह्निं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ४१ ॥
पूर्वप्रकल्पितेनापि मण्डलेऽस्मिन् यथाविधि ।
तेनैव कुर्याद्धोमं वै विसर्जनाह्वाननकर्मणाम् ॥ ४२ ॥

सर्वकर्माणि तेनैव कुर्यात् तत्रैव कर्मणि ।
अग्निचर्या तथारूपं पटस्याग्रतमारभेत् ॥ ४३ ॥
सिध्यन्ति तत्र मन्त्रा वै पूर्वमुक्तं तथागतैः ।
जिनवर्णितकर्माणि कुर्यान्न च तत्र वै सर्वतः ॥ ४४ ॥
नान्यकर्माणि कुर्वीत पापकानि विशेषतः ।
गर्हिता जिनवरैर्यद्व विरुद्धां लोककुत्सिताम् ॥ ४५ ॥
उत्तिष्ठ चक्रवर्तिर्वा बोधिसत्त्वोऽथ भूमिपः ।
पञ्चाभिज्ञं तथा लाभे देवत्वं वाथ सिद्ध्यति ॥ ४६ ॥
पटेऽस्मिन् नित्ययुक्तज्ञो होमकर्मविशारदः । G 127
पातालाधिपत्यं वा अन्तरीक्षचरामथ ॥ ४७ ॥
भौम्यदेवयक्षत्वं यक्षीमाकर्षणे सदा ।
राज्ये आधिपत्ये वा विषयेऽस्मिन् ग्राम एव वा ॥ ४८ ॥
विद्याधरमसुरत्वं सर्वसत्त्ववशानुगे ।
आकर्षणे च भूतानां महासत्त्वां महात्मनाम् ॥ ४९ ॥
बोधिसत्त्वां महासत्त्वां दशभूमिसमाश्रितां ।
आनयेद्धोमकर्मेण किं पुनर्मानुषं भुवि ॥ ५० ॥
सेनापत्यं तथा लोके ऐश्वर्ये च विशेषतः ।
सर्वभूतसमावश्यं नृपतत्त्वं तथापि च ॥ ५१ ॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां नृपतेर्वापि समं भुवि ।
सर्वकर्मान् तथा नित्यं कुर्याद्धोमेन सर्वतः ॥ ५२ ॥
सर्वतो सर्वयुक्तात्मा सर्वकर्म समाश्रयेत् ।
नियतं सिध्यते तस्य कर्म श्रेयोर्थमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
मध्यमाश्चैव सिध्यन्ते कर्मा कन्यस एव वा ।
सर्वद्रव्याणि तत्रैव सिद्धिमुक्ता त्रिधा पुनः ॥ ५४ ॥
दृश्यते सफला सिद्धिः होमकर्मे प्रवर्तिते ।
मुद्रां पञ्चशिखां बध्वा मन्त्रां चैव केशिनीम् ॥ ५५ ॥
कुर्यात् सर्वकर्माणि आत्मरक्षावानुधीः ।
होमकर्मे प्रवृत्तस्तु पठेन्मन्त्रमिमं ततः ।
सप्तजप्ताष्टजप्तं वा कर्मेऽस्मि इदं सदा ॥ ५६ ॥
नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामप्रतिहतशासनानाम् ॥
तद्यथा—ॐ ज्वल तिष्ठ हूँ रु रु विश्वसंभव संभवे स्वाहा ।
अनेन मन्त्रप्रयोगेण जपे काष्ठं पुनः पुनः ।
द्विजप्तं सप्तजप्तं वा जुहुयादग्नौ स मन्त्रवित् ॥ ५७ ॥

पुष्पधूपगन्धं वा सर्वं चैव समन्ततः ।
वारिणा मन्त्रजप्तेन अनेनैव तु प्रोक्षयेत् ॥ ५८ ॥
G 128 ततो सर्वकर्माणि आरभेद् विधिहेतुना ।
पूर्वप्रयोगेणैव कर्तव्यो सर्वकर्मसु ॥ ५९ ॥
पूर्वपञ्चशिखां बद्ध्वा महामुद्रां यशस्विनीम् ।
कृतरक्षो ततो भूत्वा केशिन्या चैव सदा जपी ॥ ६० ॥
आरभेत् सर्वकर्माणि सिद्धिहेतो विशारदाः ।
शकुना यदि दृश्यन्ते शब्दा चैव शुभा सदा ॥ ६१ ॥
सफलास्तस्य मन्त्रा वै वरदाने यथेप्सतः ।
आदिकर्मेषु प्रयुक्तस्तु प्रवृत्ता मन्त्रहेतुना ॥ ६२ ॥
सफला सकला चैव सिद्धिस्तेषु विधीयते ।
जयशब्दपटहो वा दुन्दुभीनां च निस्वनम् ॥ ६३ ॥
सिद्धिः सर्वत्र ह्युक्ता होमकर्मे समाश्रितः ।
अन्या वा शकुना श्रेष्ठा पक्षिणानां वा शुभा रुताः ॥ ६४ ॥
विविधाकारनिर्घोषा शब्दार्था जिनवर्णिताः ।
प्रशस्ता दिव्या मङ्गल्या मनोज्ञा विविधा रुताः ॥ ६५ ॥
छत्रध्वजपताकांश्च योषितश्चाप्यलंकृताः ।
पूर्णकुम्भं तथा अर्घदर्शनं सिद्धिहेतवः ॥ ६६ ॥
अनेकाकारवर्णा वा प्रशस्ता लोकपूजिता ।
तेषां दर्शन सिध्यन्ते मन्त्रा विविधगोचराः ॥ ६७ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात्
त्रयोदशमपटलविसरः परिसमाप्तमिति ॥



१४ चक्रवर्तिपटलविधानम् ।

G 129 अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयविद्यारहस्यसाधनौपयिकसंर्वमन्त्राणां समनुज्ञः तथागतधर्मकोशविसृतधर्ममेघानुंप्रविष्टगगनस्वभावसर्वमन्त्राणां लौकिकलोकोत्तराणां प्रभुः ज्येष्ठतमः, यथा कुमारः सर्वसत्त्वानाम् । तथागतो अत्र आख्यायते ज्येष्ठतमः श्रेष्ठो देवमनुष्याणां पुरुषऋषभः बुद्धो भगवान् । एवं हि कुमार सर्वमन्त्राणामयं विद्याराजा अग्रमाख्यायते श्रेष्ठतमः पूर्वनिर्दिष्टं तथागतैः अनभिलाप्यैर्गङ्गानदीसिकतपुण्यैर्बुद्धैर्भगवद्भिः। रत्नकेतोस्तथागतस्य परमहृदयं परमगुह्यं सर्वमङ्गलसंमतसर्वबुद्धसंस्तुतप्रशस्तं सर्वबुद्धसत्त्वसमाश्वासकं सर्वपापप्रणाशकं सर्वकामदं सर्वाशापरिपूरकम् । कतमं च तत् ? अत्रान्तरे भगवतः शाक्यमुनेः ऊर्णाकोशात् सर्वबुद्धसंचोदनी नाम रश्मिः निश्चरति स्म, येयं दशदिक्षूर्ध्वमधः सर्वावन्तं बुद्धक्षेत्राण्यवभास्य सर्वसत्त्वां मनांसि चाह्लाद्य उपरि भगवतः शाक्यमुनेः उष्णीषा अन्तर्धीयते स्म । उष्णीषाच्च भगवतः समन्तज्वालार्चितमूर्तिः अनवलोकनीयो सर्वसत्त्वैः दुर्धर्षः महाप्रभावसमुद्गतः प्रभामण्डलालंकृतदेहः विविधाकाररूपी महाचक्रवर्तिरूपी विद्याराजा एकाक्षरो नाम निश्चरति स्म । निश्चरित्वा सर्वं गगनतलमवभास्य सर्वविद्याराजपरिवृतः अनेकविद्याकोटीनयुतशतसहस्रपुरस्कृतः पूज्यमानो सर्वलोकोत्तरैः विद्याचक्रवर्तिराजानैः अभिष्टूयमानो सर्वमन्त्रैः प्रभाव्यमानो सर्वबुद्धबोधिसत्त्वैः दशभूमिप्रतिलब्धैः महात्मभिः सर्वगगनतलमापूर्य दिव्यरत्नोपशोभितमहामणिरत्नालंकृतदेहः चारुरूपी प्रभास्वरतरः विविधरूपनिर्माणकोटीनयुतशतसहस्रमुत्सृजमानः एकाक्षरं शब्दमुदीरयमानः महारश्मिजालं प्रमुञ्चमानः अन्तरिक्षे स्थितोऽभूत् भगवतः शाक्यमुनेरुपरिष्टात् संमुखमवलोकयमानः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं महापर्षन्मण्डलं चावभासयमानः ॥

G 130 अथ भगवान् शाक्यमुनिः एकाक्षरं विद्याचक्रवर्तिनं सर्वतथागतहृदयं रत्नकेतोर्नाम तथागतस्य परमहृदयपरमगुह्यतमं सर्वतथागतैर्भगवतः रत्नकेतोः संनिविष्टं सालेन्द्रराजअमिताभदुःप्रसहसुनेत्रसुकेतुपुष्पेन्द्रसुपिनान्तलोकमुनिकनकाद्यैस्तथागतैर्भाषितं चाभ्यनुमोदितं च सर्वैश्चातीतैः सम्यक्संबुद्धैः लपितं चानुमतं च। कतमं च तत् ? तद्यथा—भ्रूं ॥

एष स मञ्जुश्रीः परमहृदयः सर्वतथागतानां असर्वगुणां विद्याचक्रवर्तिनः एकाक्षरं नाम महापवित्रम् । अनेन साध्यमानाः सर्वमन्त्रा सिध्यन्ते । त्वदीयं ये कुमारकल्पराजवरे सर्वमन्त्रानुकूलं परमरहस्य अग्रः समनुज्ञः सर्वकर्मावरणविशोधकः अवश्यं तावत् साधि••• ••••••••••••कर्माणि सर्वमन्त्रेषु । अस्मिं कुमार त्वदीयकल्पराजे सर्वलौकिकलोकोत्तराणि च मन्त्रतन्त्राणि साधयितव्यानि । अनेन कृतरक्षः अधृष्यो भवति सर्वभूतानामिति । सर्वविघ्नैश्च लौकिकलोकोत्तरैर्नाभिभूयत इति ॥

समनन्तरभाषिते च भगवता शाक्यमुनिना सर्वोऽपि त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुः षड्विकारं प्रकम्पिता अभूवन्। सर्वाणि च बुद्धक्षेत्राणि अवभासितानि, सर्वश्च बुद्धा भगवन्तः

संनिपा ।तस्मिन् पर्षन्मण्डले शुद्धावासभवनोपनिषण्ण सर्वे च बोधिसत्त्वा दशभूमि- प्रतिलः तैका ह्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धाश्च सर्वसत्त्वा महर्द्धिका विद्यारा ोदिता आगच्छेयुर्वशीभूताः। अन्ये च सत्त्वा बहवः अनन्तापर्यन्तलोकधातु- व्यवस्थि तेर्यक्प्रेतदुःखगतिसंनिश्रिताः तेन महता रश्म्यवभासेन स्पृष्टा अवभासिता दुःखप्र नासन्नस्थाः सुखह्लादितमनसः नियतं त्रिधायानसंनिश्रिता भवेयुरिति ॥

ग्रान् शाक्यमुनिः तं महापर्षन्मण्डलमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्र- G 131 यते स ञ्जुश्रीः इमं विद्याराजं महर्द्धिकमेकवीरं सर्वकर्मिकं सर्वविद्याराजचक्र- वर्तिनं नामाशापारिपूरकं सर्वकल्पविस्तरे त्वदीयमन्त्रतन्त्रकल्पविस्तरसमनुप्रविष्टं सर्वमन्त्र कः साधारणभूतं महेशाख्यमहोत्साहसत्त्वसाधकविशेषप्रज्ञोपायकौशल- सर्वबो धकनिर्वाणप्रतिष्ठापनाक्रमणबोधिमण्डनिषदनाक्रमणकुशलसंभारभूतं अस्यैव समासः विस्तरं पटविधानमण्डलं संसाधनोपयिकं पूर्वमन्त्रचर्यानुचरितम्, यत्र प्रतिष्ठि साधयिष्यन्ति महाचक्रवर्तिनं विद्याराजं महद्भूतं सर्वमन्त्राणां परमेश्वरं प्रभंकरं सवाशापारिपूरकं विनायकं सर्वजगद्धितं बुद्धमिव साक्षात्प्रत्युपस्थितं स्वयंभुवं उत्तमोत्तिष्ठमध्यमकन्यससर्वकर्मिकम् ॥

क्षेमंगमं शिवं शान्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
देवानामपि तं देवं मुनीनां मुनिपुंगवम्॥ १ ॥
बुद्धमादित्यतं बद्धं विशुद्धं लोकविश्रुतम्।
सर्वधर्मस्वभावज्ञं भूतकोटिरनाविलम्।
वक्ष्ये कल्पवरं तस्य शृणुध्वं भूतिकाङ्क्षिणाम्॥ २ ॥
आदौ तावत्पटो दिव्ये विकेशे श्लेषवर्जिते।
नवे शुक्ले विशेषेण सदशे चैवमालिखेत्।
द्विहस्तमात्रप्रमाणेन हस्तमात्रं च तिर्यक्॥ ३ ॥
तथाविधे शुभे चैव निर्मले चारुदर्शने।
सिते सौम्ये तथा शुक्ले सुव्रते पिच्चिवर्जिते॥ ४ ॥
शङ्करापकरे शुक्लं पटे चैव दुकूलके।
आतस्ये वाल्कले चैव शुद्धे तन्तुविवर्जिते॥ ५ ॥
क्रिमानिलअसंभूते जन्तूनां चानुपायने।
अकौशेये तथा चान्ये यत्किंचित् साधुवर्णिते॥ ६ ॥
तादृशे च पटे श्रेष्ठे कुर्यादालेख्यमालयम्।
शास्तु बिम्बमालिख्य प्रभामण्डलमालिनम्॥ ७ ॥
G 132 हेमवर्णं तदालिख्य ज्वालामालिनं विदुम्।
एकाकिनं गुह्यलीनं पर्वतस्थं महायशम्॥ ८ ॥

रत्नमालावनद्धं वै कुर्यात्पट्टवितानकम् ।
उपरिष्टादुभौ देवौ धार्यमाणौ तु मालिखेत् ॥ ९ ॥
पर्वतस्योपरिष्टा वै कुर्याद् रत्नमालिकाम् ।
समन्ततश्च वितानस्य मुक्ताहारार्धभूषितम् ॥ १० ॥
उपरिष्टाच्छैलराजस्य सर्वमालिख्य यत्नतः ।
अधश्चैव तथा शैले महोदधिसमप्लुतम् ॥ ११ ॥
पटान्ते चैव पुष्पाणि समन्ताच्चैवमालिखेत् ।
नागकेसरपुन्नागबकुलं चैव यूथिकाम् ॥ १२ ॥
मालतीकुसुमं चैव प्रियङ्गुकुरबकं सदा ।
इन्दीवरं च सौगन्धीपुण्डरीकमतः परम् ॥ १३ ॥
विविधानि पुष्पजातीनि तथान्यां गन्धमाश्रिताम् ।
एतेषामेव पुष्पाणि······················॥ १४ ॥
········चैव पूजार्थं दद्युः शास्तुर्मनोरमम् ।
पूर्वनिर्दिष्टविधिना पटे ज्येष्ठे तथा पटे ॥ १५ ॥
सूत्रं तन्तुवायं च तथा चित्रकरं मतम् ।
प्रातिहारकपक्षे च आलिखेच्छुद्धतमेऽहनि ॥ १६ ॥
तथाप्रवृत्ते च काले च जापे चैव विधीयते ।
सर्वं सर्वमेवास्य पूर्वमुक्तं समाचरेत् ॥ १७ ॥
रङ्गोज्ज्वलं विचित्राढ्यं शास्तु विश्वं समालिखेत् ।
अनेकाकारसंपन्नं कर्णिकारसमप्रभम् ॥ १८ ॥
चम्पकाभासमाभासं आलिखेद्धेमवर्णितम् ।
एभिराकारसंपन्नं मुनिमालिख्य रत्नजम् ॥ १९ ॥
रत्नकेतुं महाभागं श्रेष्ठं वै मुनिपुंगवम् ।
सर्वधर्मवशिप्राप्तं बुद्धरत्नं तमालिखेत् ॥ २० ॥
रत्नपर्वतमासीनं गुहारत्नोपशोभितम् । G 133
पर्यङ्कोपरिविष्टं तु दत्तधर्मानुदेशनम् ॥ २१ ॥
ईषिस्मितमुखं वीरं ध्यानालम्बनचेतसः ।
गुहाबहिः समालिख्य अधश्चैव समन्ततः ॥ २२ ॥
पटान्तकोणे संनिविष्टं साधकं जानुकूर्परम् ।
धूपव्यग्रकरं चैव ईषित्कायावनामितम् ॥ २३ ॥
उत्तरासङ्गिनं कुर्याद्यथावेषानुलिङ्गिनम् ।
दक्षिणे भगवतस्याधः महोदधितलादपि ॥ २४ ॥

आलिखेन्नित्ययुक्तात्मा मन्त्रिणं श्रेयसार्थिनम् ।
एतत्पटविधानं तु कथितं लोकपूजितैः ॥ २५ ॥
मण्डलं तस्य देवस्य सांप्रतं तु प्रवक्ष्यते ।
युक्तमन्त्रस्तदा मन्त्री तस्मिन् काले सुमन्त्रवित् ॥ २६ ॥
कृतसेवः सदा मन्त्रे अभ्यस्तो जापसंपदे ।
अभिषिक्तस्तदा मन्त्रे कल्पेऽस्मिन् मञ्जुभाणिते ॥ २७ ॥
मण्डलाचारसंपन्ने नित्यं चाभिषेचिते ।
अभिषिक्तः सर्वमन्त्राणां मण्डलेऽस्मिन् विशारदः ॥ २८ ॥
युक्तिमन्तः सदा तन्त्रे आत्मरक्षे हिते मतः ।
सहायांश्चैव रक्षन्नैः सुपरीक्ष्य महाद्युतिः ॥ २९ ॥
आचार्यः सुसंरब्धः आरब्धव्रतसेविनः ।
महाप्रज्ञोऽथ सुस्निग्धः श्रीमान् कारुणिकः सदा ॥ ३० ॥
सहायानां च सर्वेषां तथालक्षणमादिशेत् ।
एक द्वौ त्रयो वापि तथा चाष्टमथापराम् ॥ ३१ ॥
कुर्याच्छिष्यान् सुसंपन्नान् प्रभूतांश्चापि वर्जयेत् ।
पूर्वदृष्टविधानं तु मण्डलेऽस्मि सदा चरेत् ॥ ३२ ॥
प्रथमा ये तु निर्दिष्टा मण्डला दशबलोदिता ।
मञ्जुघोषस्य नान्यं तु आलिखे नान्यकर्मणा ॥ ३३ ॥
G 134 प्रमाणं तु प्रवक्ष्यामि मण्डलस्य महाद्युतेः ।
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा तथा चाष्टमतः परम् ॥ ३४ ॥
शुचौ देशे नदीकूले पर्वताग्रे विशेषतः ।
पञ्चरङ्गिकचूर्णेन पूर्वदृष्टेन कर्मणा ॥ ३५ ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुस्तोरणभूषितम् ।
चतुःकोणं समं दिव्यं दिव्याचारसमप्रभम् ॥ ३६ ॥
रङ्गोज्वलं विचित्रं च चारुवर्णं सुशोभनम् ।
ससुगन्धं सुरूपं च सुसहायः समारभेत् ॥ ३७ ॥
मौनी व्रतसमाचारः अष्टाङ्गोपसेविनः ।
अक्लिष्टचित्तो मात्रज्ञः धार्मिकोऽथ जपी सदा ॥ ३८ ॥
अपापकर्मसमारब्धः शान्तिकपौष्टिक[कारकः ।]
मध्यस्था ते ततो विश्य आलिखेत् शास्तु वर्णिभिः ॥ ३९ ॥
प्रथमं सर्वं तं लेख्यं नानारत्नविभूषितम् ।
गुहासीनं महातेजं रत्नकेतुं तथागतम् ॥ ४० ॥

पर्यङ्कोपविष्टं तु धर्मचक्रानुवर्तकम् ।
पटे यथैव तत्सर्वं आलिखेच्छास्तुपूजितम् ॥ ४१ ॥
त्रिपङ्क्तिभिस्तथा रेखैः मुद्रैश्चाप्यलंकृतम् ।
कुर्यात् संछादितां सर्वां पङ्क्तिश्चैव समन्ततः ॥ ४२ ॥
अव्यस्तां समस्तां च अनाकुलिततद्गताम् ।
तेषां तु मध्ये कुर्वीत चक्रवर्ती महाप्रभुम् ॥ ४३ ॥
उदितादित्यसंकाशं कुमाराकारमर्चिषम् ।
आलिखेद्यत्नमास्थाय महाचक्रानुवर्तिनम् ॥ ४४ ॥
महाराजसमाकारं मुकुटालंकारभूषितम् ।
किरीटिनं महासत्त्वं सर्वालंकारभूषितम् ॥ ४५ ॥
चारुपट्टार्धसंवीतं चित्रपट्टनिवासिनम् ।
स्रग्मिणं सौम्यवर्णाभं माल्याम्बरविभूषितम् ॥ ४६ ॥
जिघ्रन्तो दक्षिणेनैव करेण बकुलमालकम् ।   G 135
ईषिस्मितमुखं देवं महावीर्यं प्रभविष्णुवम् ॥ ४७ ॥
सुरूपं चारुरूपं वै बालवृद्धविवर्जितम् ।
वामहस्तसदाचक्रं दीप्तमालिन परामृष्यन्तम् ॥ ४८ ॥
तदालेख्यं अर्धपर्यङ्कसुनिविष्टमर्धेन भुजसंनिश्रितम् ।
आलिखेद् दिव्यवर्णाभं सुरूपं रूपमाश्रितम् ॥ ४९ ॥
निषण्णं रत्नखण्डेऽस्मिन् सर्वतातो महाद्युतेः ।
श्रेयसः सर्वमन्त्राणां प्रवृत्तो वरदः सदा ॥ ५० ॥
ज्वलन्तं वह्निराकारं········मण्डलशोभिनम् ।
समन्तज्वालामालोपज्य (?) ज्वलते वायुमीरितः ॥ ५१ ॥
एवं मन्त्रप्रयोगैस्तु ज्वाल्यन्ते मानुषं भुवि ।
तथाविधं महावीर्यं सर्वमन्त्रप्रसाधकम् ॥ ५२ ॥
पश्येद् यो हि स धर्मात्मा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ।
पञ्चानन्तर्यकारीपि दुःशीलो मन्दमेधसः ॥ ५३ ॥
सर्वपापप्रशान्ता वै मुच्यते दर्शनाद् विभोः ।
मण्डलं दृष्टमात्रं तु देवदेवस्य चक्रिणे ॥ ५४ ॥
तत्क्षणा मुच्यते पापा येऽन्ये परिकीर्तिताः ।
ततः पूर्वद्वारं संशोध्य मन्त्रेणैव समं विभोः ॥ ५५ ॥
परिक्षिप्तं तोरणैः सर्वं कदल्याभिश्चोपशोभितम् ।
परिस्फुटं मण्डलं कृत्वा अशेषं चारुरूपिणम् ॥ ५६ ॥

बलिं धूपं प्रदीपं च गन्धमाल्यं सदा शुभम् ।
पूर्वेणैव विधानेन कुर्यात् सर्वमादरात् ॥ ५७ ॥
मध्यस्थं पूर्णकुम्भं तु चक्रिणस्याग्रतो न्यसेत् ।
तत्कुम्भं विजयेत्वाख्या मन्त्रज्ञस्तं न चालयेत् ॥ ५८ ॥
तथाग्निकुण्डं पूर्वं तु विधिदृष्टेन कर्मणा ।
होमकर्मसमारम्भो विभुमन्त्रेण नान्य वै ॥ ५९ ॥
G 136 होमं चाष्टसहस्रं तु खदिरेन्धनवह्निना ।
पालाशं चापि श्रीकण्ठं बिल्वोदुम्बर चाक्षकम् ॥ ६० ॥
अपामार्गं तथा जुहुयात् सर्वकर्मेषु यत्नतः ।
तिलं वा आज्यसंपृक्तं दग्धगन्धसमप्लुतम् ॥ ६१ ॥
जुहुयात्सर्वकर्मेषु सहस्रं साष्टकं सदा ।
त्रिसंध्यं पूर्वनिर्दिष्टं स्नानं चेलावधारणम् ॥ ६२ ॥
त्रिशूलं शुभनक्षत्रं कथितं च मनीषिभिः ।
पूर्वनिर्दिष्टकर्माणि जापं होमं तथापरम् ॥ ६३ ॥
कुर्यान्मन्त्रयुक्तेन चक्रवर्तिकुलेन वा ।
एकाक्षरेणैव सर्वाणि कुर्यात् सर्वकर्मसु ॥ ६४ ॥
महाप्रभावार्थयुक्तोऽसौ एकवीर सदापरम् ।
आचरेत् सर्वमन्त्राणां कल्पं तेषु सदा जपी ॥ ६५ ॥
सिध्यन्ते सर्वकल्पानि लौकिका लोकसंमता ।
लोकोत्तराश्च महावीर्या विद्याराजाश्च महातपाः ॥ ६६ ॥
सिध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै अस्मिन् कल्पे तु तान्यतः ।
मुनिभिः कथितं ये वै मन्त्रं तथा दशबलात्मजैः ॥ ६७ ॥
शक्राद्यैर्लोकपालैस्तु विष्णुरीशानब्रह्मणैः ।
चन्द्रसूर्यैस्तथान्यैर्वा यक्षेन्द्रै राक्षसैस्तथा ॥ ६८ ॥
महोरगैः किन्नरैश्चापि तथा ऋषिवरैर्भुवि ।
गरुडैर्मातरैर्लोकैः तथान्यैः सत्त्वसंज्ञिभिः ॥ ६९ ॥
भाषिता ये तु मन्त्रा वै सिद्धिं गच्छन्ति ते इह ।
आकृष्टाः सर्वमन्त्राणां प्रणेता सर्वकर्मणाम् ॥ ७० ॥
वशिता सर्वमन्त्राणां प्रणेता सर्वकर्मणाम् ।
वशिता सर्वभूतानां तन्त्रमन्त्रसविस्तराम् ॥ ७१ ॥
एष एकाक्षरो मन्त्रः करोति सर्वमन्त्रिणाम् ।
सफलं जप्तमात्रस्तु आकृष्टा सर्वदेवताम् ॥ ७२ ॥

वशिता सर्वकल्पानांश्चमी(?) एकाक्षरो महान् । G 137
करोति विविधाकारां विचित्रां साधुवर्णिताम् ॥ ७३ ॥
लौकिकां लोकमन्त्रां तु साधयेत्सम्यक्प्रयोजितः ।
परिस्फुटं तु पटं कृत्वा अशेषं चारुदर्शनम् ॥ ७४ ॥
शुचौ देशे नदीकूले पर्वताग्रे च तं न्यसेत् ।
पूर्वकर्मप्रयोगेण कुर्यात् पश्चान्मुखं सदा ॥ ७५ ॥
साधकः प्राङ्मुखो भूत्वा विधिदृष्टेन कर्मणा ।
दर्भपिण्डोपविष्टस्तु कुर्याज्जपमनाकुलम् ॥ ७६ ॥
नोच्चशब्दो न मृदुः नापि चित्तपरस्य तु ।
दूषयं सर्वभूतानां क्षिप्रसिद्धिर्भवेदिह ॥ ७७ ॥
मैत्रचित्तः सदा लोके दुःखितां कृपणां सदा ।
अनाथां दीनमनसां व्यसनार्तां सुदुर्बलाम् ॥ ७८ ॥
पतितां संसारघोरेऽस्मिं कृपाविष्टोऽथ सिध्यति ।
पटस्याग्रत यत्नेन महापूजां न्यसेत् सदा ॥ ७९ ॥
मानसी मानुषींश्चापि दिव्यां हृदयसुद्भवाम् ।
चिन्तयेत् कुर्याद्वापि जिनेन्द्रविश्वपटस्य तु ॥ ८० ॥
तत्रैवाग्निकुण्डं कुर्यात् तत्त्वविधानतः ।
सुसमृद्धं साधको ह्यग्निं जुहुयात्तत्र माहुतिः ॥ ८१ ॥
श्वेतचन्दनकर्पूरं कुङ्कुमं मिश्रपूजितः ।
शताष्टं आहुतिं जुह्वं षडष्टौ दीप्तितु मन्त्रवित् ॥ ८२ ॥
खदिरे प्लक्ष्यन्यग्रोधे पालाशे चापि नित्यतः ।
एषा समुद्भवे काष्ठे ज्वालयेद् वह्निमूर्जितः ॥ ८३ ॥
एषामभावे काष्ठानामन्यं काष्ठं समाहरेत् ।
पिचुमर्दं कट्वमम्लं च तथैव मदनोद्भवम् ॥ ८४ ॥
सर्वकण्टकिनो वर्ज्याः पापकर्मेषु कीर्तिताः ।
एकाक्षरेणैत्र मन्त्रेण कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् ।
आशु सिद्धिर्भवेत्तस्य पापं कर्म समाचरेत् ॥ ८५ ॥ G 138
सर्वमन्त्रधरा ह्यत्र सकर्मा कल्पविस्तरा ।
प्रयोक्तव्या निर्विकल्पेन सिद्धिं गच्छन्ति ते सदा ।
आकृष्यन्ते तदा मन्त्रा वरदा चैव भवन्ति ह ॥ ८६ ॥
पलाशोदुम्बरसमिधानां प्लक्षन्यग्रोध एव वा ।
घृताक्तानां दध्नसंयुक्तां मध्वोपेतां समाहिताम् ॥ ८७ ॥

जुहुयात् सर्वतो मन्त्री राज्यकामो महीतले ।
देवीं राज्यमाकाङ्क्षं जुहुयात् कुङ्कुमचन्दनम् ॥ ८८ ॥
विद्याधराणां देवानां आधिपत्यमकाङ्क्षयम् ।
जुहुयात्पद्मलक्षाणि षट्त्रिंशत् सकेसराम् ॥ ८९ ॥
होमान्ते वै तत्र कुर्वीत अर्घ्यं शास्तुनिवेदनम् ।
समन्ता ज्वलते तत्र पटश्रेष्ठो जिनाङ्कितः ॥ ९० ॥
तं च स्पृष्टमात्रं तु उत्पतेद् ब्रह्ममालयम् ।
अकनिष्ठा याव देवास्तु यावच्चापातालसंचयम् ॥ ९१ ॥
अत्रान्तरे सर्वसिद्धानां राजासौ भवते सदा ।
विद्रापयति भूतानि महावीर्यो दृढव्रतः ॥ ९२ ॥
क्रमो विद्याधराणां सदा राजा भविता कर्मसाधने ।
पुनश्च कल्पमात्रं तु स जीवेद् दीर्धमध्वनम् ॥ ९३ ॥
च्युतस्तस्मिन् महाकाले नियतो बोधिपरायणः ।
अपरं कर्मनिर्लेप कथितं संक्षेपविस्तरम् ॥ ९४ ॥
श्वेतपद्मां समाहृत्य श्वेतचन्दनसंयुताम् ।
जुहुयाच्छतलक्षाणि रत्नकेतुं स पश्यति ॥ ९५ ॥
दृष्ट्वा तं जिनं श्रेष्ठं पञ्चाभिज्ञो भवेत् तदा ।
महाकल्पं चिरं जीवेद् बुद्धस्यानुचरो भवेत् ॥ ९६ ॥
पश्यते च तदा बुद्धां अनन्तां दिशि संस्थितां ।
तेषां पूजयेन्नित्यं तथैरेव च संवसेत् ॥ ९७ ॥
G 139 रत्नावती नाम धात्वैक यत्रासौ भगवान् वसेत् ।
मुनिश्रेष्ठो वरः अग्रो रत्नकेतुस्तथागतः ॥ ९८ ॥
तत्रासौ वसते नित्यं मन्त्रपूतो न संशयः ।
अपरं कर्ममिष्टं च कथितं ह्यग्रपुद्गलैः ॥ ९९ ॥
नागकेसरकर्पूरं चन्दनं कुङ्कुमं समम् ।
एकीकृत्य तदा मन्त्री जुहुयाल्लक्षाष्टसप्तति ॥ १०० ॥
होमावसाने तदा देव आयातीह स चक्रिणः ।
तुष्टो वरदो नित्यं मूर्ध्नि स्पृशति साधकम् ॥ १०१ ॥
स्पृष्टमात्रस्तदा मन्त्री सप्तभूम्याधिपो भवेत् ।
जिनानामौरसः पुत्रो बोधिसत्त्वः स उच्यते ॥ १०२ ॥
नियतं बोधिनिष्ठस्तु व्याकृतोऽसौ भविष्यति ।
ततःप्रभृति यत्किंचिद् ज्ञानं ज्ञेयं जिनात्मजम् ॥ १०३ ॥

जानाति सर्वमन्त्राणां गतिमाहात्म्यमूर्जितम् ।
पञ्चाभिज्ञो भवेत्तस्मिन् दृष्टमात्रेण मन्त्रराट् ॥ १०४ ॥
करोति विविधाकारामात्मभावं सदा यदा ।
सर्वाकारवरोपेतां पूजाकर्मि सदा रतः १०५ ॥
भवते तत्क्षणादेव उद्युक्तो बोधिकर्मणि ।
क्षणमात्रे तदा लोकां बुद्धक्षेत्रान् स गच्छति ॥ १०६ ॥
लोकधातुसहस्राणि अण्डा ह्विण्डन्ति सर्वतः ।
बुद्धानां बोधिसत्त्वानां पश्यन्ते चरितां तदा ॥ १०७ ॥
धर्मं शृणोति तत्तेषां पूजां कर्मे समुद्यतः ।
अपरं कर्ममस्तीह चक्रवर्तिजिनोद्भवे ॥ १०८ ॥
प्रदीपलक्षणं दद्याच्छुचिवर्तिर्घृतः समे ।
सौवर्णे भाजने रौप्ये ताम्रे मृत्तिकमेऽपि वा ॥ १०९ ॥
ते तु प्रज्वलिते दीपे पुरुषैर्लक्षप्रमाणिभिः ।
गणमात्रसंन्यस्ते शतसाहस्रनाविकैः ॥ ११० ॥
स्त्रीवर्ज्यैः पुरुषैश्चापि प्रदीपहस्तैः समन्ततः । G 140
पटं शास्तु बिम्बाख्ये दद्यात् पूजा च कर्मणि ॥ १११ ॥
समं सर्वप्रवृत्तास्तु मन्त्रैकैकसमन्विते ।
दद्याच्छास्तुनो मन्त्रैस्तत्क्षणात् सिद्धिमादिशेत् ॥ ११२ ॥
समन्ताद् गर्जितनिर्घोषं दुन्दुभीनां च निस्वनम् ।
देवसंघा ह्यनेका वै साधुकारं प्रमुञ्चयेत् ॥ ११३ ॥
बुद्धा बोधिसत्त्वाश्च गगनस्थं तस्थुरे तदा ।
साधु साधु त्वया प्राज्ञ सुकृतं कर्म कारितम् ॥ ११४ ॥
न पश्यसि पुनर्दुःखं संसारार्णवसंप्लुतम् ।
क्षेमे शिवे च निर्वाणे अभये बुद्धत्वमाश्रितः ॥ ११५ ॥
मार्गे शुभे च विमले अष्टाङ्गे साधुचेष्टिते ।
प्रपन्नस्त्वं मन्त्ररूपेण चक्रिमेकाक्षराश्रिते ॥ ११६ ॥
अपरं कर्ममेवास्ति उत्तमां गतिनिश्रितः ।
महाप्रभावार्थविज्ञातं सर्वबुद्धैः संप्रकाशितम् ॥ ११७ ॥
गृह्य निम्बमयं काष्ठं कुर्याद् वज्रं त्रिसूचिकम् ।
उभयाग्रं मध्यपार्श्वं तु कुर्यात् कुलिशसंभवम् ॥ ११८ ॥
मन्त्रपूतं ततः कृत्वा पटस्याग्रतः कन्यसे ।
परामृश्य ततो मन्त्री जपेन्मन्त्रान् समाहितः ॥ ११९ ॥

लक्षषोडशकाष्ठं च समाप्ते सिद्धिरिष्यते ।
एकज्वाली ततो वज्रः समन्तात् प्रज्वलते हि सः ॥ १२० ॥
उज्जहार ततोऽचिन्त्यमूर्ध्वं संक्रमते हि सः ।
ब्रह्मलोकं ततो याति अन्यां वा देवसंमितिम् ॥ १२१ ॥
आकाशेन ततो गच्छे सर्वसिद्धेषु अग्रणीः ।
कुरुते आधिपत्यं वै सिद्धविद्याधरादिषु ॥ १२२ ॥
चक्रवर्तिस्ततो राजा भवते देवसंनिधौ ।
करोति विविधाकारं आत्मभावविचेष्टितम् ॥ १२३ ॥
G 141 दश चान्तरकल्पानि चिरं तिष्ठन्न चालयेत् ।
सौख्यभागी सदा पूज्यः सुरूपो रूपवां सदा ॥ १२४ ॥
बोधिचित्तसमाचारो जन्मदुःखविवर्जितः ।
भवते सुरसिद्धस्तु सर्वपापविवर्जितः ॥ १२५ ॥
च्युतस्तस्माद् भवेन्मर्त्यो बहुसौख्यपरायणः ।
गतिं सर्वां विचेरुस्थः भवते बोधिपरायणः ॥ १२६ ॥
अनन्ता विविधा कर्मा बहुलोकार्थपूजितम् ।
पठ्यन्ते मन्त्रराजेऽस्मिन् सकल्पाकल्पविस्तरात् ॥ १२७ ॥
भौम्याधिपत्यं शक्रत्वं चक्रवर्तित्वं च वा पुनः ।
विद्याधराणां तथा देवां कुरुते चाधिचेष्टितम् ॥ १२८ ॥
अनेकाकाररूपं वा······यदिहोच्यते ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति सुप्रयुक्तस्तु मन्त्रिणा ॥ १२९ ॥
रात्रौ पर्यङ्कमारुह्य········अचिन्त्यं जपतो व्रती ।
प्रभाते सिद्धिमायाति पञ्चाभिज्ञो भवेज्जपी ॥ १३० ॥
श्मशाने शवमाक्रम्य निश्चलो तं जपेद् व्रती ।
एकाक्षरं महार्थं तु प्रभाते सिद्धिमिष्यते ॥ १३१ ॥
श्मशानस्थो यदि जप्येत विद्याराजमहर्द्धिकः ।
षण्मासैः सिद्धिमायाति यथेष्टं कुरुते फलम् ॥ १३२ ॥
यत्र वा तत्र वा स्थाने जप्यमानो महर्द्धिकः ।
तत्रस्थः सिद्धिमायाति सुप्रयुक्तस्तु मन्त्रिभिः ॥ १३३ ॥
सितं छत्रं तथा खड्गं मणिपादुककुण्डलम् ।
हारकेयूरकटकं·········चाङ्गुलीयकम् ॥ १३४ ॥
कटिसूत्रं तथा वस्त्रं दण्डकाष्ठकमण्डलुम् ।
यज्ञोपवीतमुष्णीषं कवचं चापि चर्मिणम् ॥ १३५ ॥

अजिनं कमलं चैव अक्षसूत्रं च पादुके ।
सर्वे ते भूषणा श्रेष्ठा लोकेऽस्मिन् समतावुभौ ॥ १३६ ॥
सुरैर्मलैस्तथा चान्यैः············भूषणानि ह ।
सर्वे सिद्धिमायान्ति पटस्याग्रत जापिने ॥ १३७ ॥
सर्वद्रव्यं तथा धातुं भूषणं मणयोऽपि च ।
अनेकप्रहरणाः सर्वे विन्यस्ता पटमग्रते ॥ १३८ ॥
सकृज्जप्ताथ संशुद्धा लक्षमष्टौ भिमन्त्रिता ।
ज्वलते सर्वसंयुक्ता उत्तिष्ठे स्पृशनाज्जपी ॥ १३९ ॥
सत्त्वप्रकृतयो वापि विविधाकाररूपिणः ।
भूषणाः प्रहरणाश्चापि मृन्मया वा स्वभाविकाः ॥ १४० ॥
सुरूपचेष्टप्रकृतय नानापक्षिगणादपि ।
सर्वभूतास्तु ये ख्याता कृत्रिमा वा ह्यकृत्रिमा ॥ १४१ ॥
सत्त्वसंज्ञाथ निःसंज्ञा सिध्यन्ते मन्त्रपूजिता ।
विविधद्रव्यविन्यस्ता विविधा धातुकारिता ॥ १४२ ॥
··················वापि गतियोनिसुपूजिता ।
विन्यस्ता पटमग्रेऽस्मि पूर्वदृष्टविधानतः ॥ १४३ ॥
आमृष्य तं जपेन्मन्त्री षड् लक्षाणि च सप्त च ।
जपान्ते ज्वलिते तेषु सिद्धिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ १४४ ॥
स्पृष्टमात्रेषु तत्तेषां उत्पतेत्तु चतुर्दिशम् ।
चिरं जीवेच्चिरं सौख्यं प्राप्नोतीह दिवौकसाम् ॥ १४५ ॥
यथा यथा प्रयुज्यते विद्याराजमहर्द्धिकः ।
तथा तथा च तुष्येत वरदो च भवेत् सदा ॥ १४६ ॥
अन्यकर्मप्रवृत्तास्तु कर्मभिः कल्पविस्तरैः ।
तैरेव सिध्यते क्षिप्रं विद्याराजमहर्द्धिकः ॥ १४७ ॥
शुचिना शुचिचित्तेन शुचिकर्मसदारतः ।
शुचौ देशेऽथ मन्त्रज्ञः शुचिसिद्धि समृच्छति ॥ १४८ ॥
तत्कर्म तत्फलं विन्द्यादधिकादधिकं भवेत् ।
मध्ये मध्यमकर्मे तु कन्यसं तु ततः परम् ॥ १४९ ॥
कर्मा प्रभूतमर्थं दत्त्वा करोति भूतचेष्टितम् । G 143
असाधितः कर्मसिद्धिस्तु फलं दद्याल्पमात्रकम् ॥ १५० ॥
नित्यं च जापमात्रेण महाभोगोऽथ महाबलः ।
राज्ञां प्रियत्वं मन्त्रित्वं करोति जपिनः सदा ॥ १५१ ॥

पापं प्रणश्यते तस्य सकृज्जप्तस्तु मन्त्रराट् ।
द्विजप्तः सप्तजप्तो वा आत्मरक्षा भवेन्महां ॥ १५२ ॥
सहस्रयानां सर्वतो रक्षा अष्टजप्तः करोति सः ।
वस्त्राणामभिमन्त्रीत उभौ मन्त्री तदा पुनः ॥ १५३ ॥
मुच्यते सर्वरोगाणां उभौ वस्त्राभिमन्त्रितौ ।
स्पर्शनं तेषु मन्त्रेषु ज्वरं नश्यति देहिनाम् ॥ १५४ ॥
सुखं चाभिमन्त्रितः अक्ष्णी वा चापि यत्नतः ।
क्रुद्धस्य नश्यते क्रुद्धो दृष्टमात्रस्तु मन्त्रिभिः ॥ १५५ ॥
ये च भूतगणा दुष्टा हिंसका पापकर्मिणः ।
मुखं तेषु निरीक्षेत त्रिंशज्जप्तेन मन्त्रराट् ॥ १५६ ॥
हस्तं चाभिमन्त्रीत स्वकं चैव पुनः पुनः ।
तेषां प्रहारमावर्ज्या मुच्यते सर्वदेहिनाम् ॥ १५७ ॥
बालानां नित्य कुर्वीत स्नपनं पानभोजनम् ।
षष्टिजप्तवरे मन्त्रे उत्कृष्टे देवपूजिते ॥ १५८ ॥
त्यजन्ते सर्वदुष्टास्तु क्रव्यादा मातरा ग्रहाः ।
मन्त्रभीतास्तु नश्यन्ते त्यजन्ते बालिशान् सदा ॥ १५९ ॥
एवंप्रकाराण्यनेकानि कर्मां चैव महीतले ।
मानुषाणां तथा चक्रे क्षिप्रं चैव सदा न्यसेत् ॥ १६० ॥
सरीसृपा ये तु भूता वै विविधा स्थावरजङ्गमाः ।
सविषा निर्विषाश्चैव नश्यन्ते मन्त्रिदारिता ॥ १६१ ॥
ये केचिद् विविधा दुःखा या काचित् सत्त्ववेदना ।
विन्यस्ता मन्त्रराजेन शान्तिमाशु प्रयच्छति ॥ १६२ ॥
144 विविधायासदुःखानि महामार्योपसर्गिणः ।
नश्यन्ते क्षिप्रमेवं तु मन्त्रजप्तेन षट्शतम् ॥ १६३ ॥
कुर्याद्धोमकर्माणि मध्वमध्वाज्यमिश्रितम् ।
नीलोत्पलं सुगन्धं वै सहस्रं चाष्टपूजितम् ॥ १६४ ॥
शान्तिं तिलेन भूतानि प्रजग्मुः स्वस्थतां जनः ।
एवंप्रकाराण्यनेकानि बहुकल्पसमुद्भवाम् ॥ १६५ ॥
सर्वां करोति क्षिप्रं वै सुप्रयुक्तस्तु मन्त्रिभिः ।
जपमात्रेण कुर्वीत अरीणां क्रोधनाशनम् ॥ १६६ ॥
अनेकमन्त्रार्थयुक्तानां कल्पानां बहुविस्तराम् ।
विधिदृष्टा भवेत्तेषां तेषु सिद्धिरिहोच्यते ॥ १६७ ॥

अवश्यं क्षुद्रकर्माणि मन्त्रजप्तो करोति ह ।
सर्वाण्येव तु जप्तेन क्षिप्रमर्थकरः सदा ॥ १६८ ॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां त्रिसंध्यं जपमिष्यते ।
होमकर्मं च कुर्वीत मालत्याः कुसुमैः सदा ॥ १६९ ॥
श्वेतचन्दनकर्पूरकुङ्कुमाच्च विधीयते ।
वरजापिने मन्त्रः सफलां कुरुते सदा ॥ १७० ॥
मनीषितान् साधयेदर्थान् नित्यहोमेन जापिनम् ।
कर्पूरादिभि युक्तैस्तु नित्यहोमं प्रकल्पितम् ॥ १७१ ॥
साधयेद् विविधां कर्मां यथेष्टपरिकल्पिताम् ।
अल्पादल्पतरं कर्म प्रभूता भूतिमुद्भवम् ॥ १७२ ॥
मध्ये मध्यकर्माणि सदा सिद्धिरुदाहृता ।
तस्मात्सर्वेषु कर्मेषु कुर्याद्धोमं विशेषतः ॥ १७३ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात्
चतुर्दशमः चक्रवर्तिपटलविधानमण्डलसाधनौपयिकविसरः
परिसमाप्त इति ॥

---

१५ सर्वकर्मक्रियार्थपटलविस्तरः ।

अथ खलु वज्रपाणिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तत्रैव पर्षन्मध्ये संनिपतितोऽभूत् संनिषण्णः । स उत्थायासनाद् भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवतश्चरणयोर्निपत्य भगवन्तमेतदवोचत्—साधु साधु भगवन् सुदेशितं सुप्रकाशितं परमसुभाषितं विद्यामन्त्रप्रयोगमहाधर्ममेघविनिःसृतं सर्वतथागतहृदयं महाविद्याराजचक्रवर्तिन महाकल्पविस्तर सर्वथा पारिपूरकं सफलं संपादकबोधिमार्गनिरुत्तरं क्रियाभेदसंध्यजपहोमविद्यचर्यानुवर्तिनां मार्गं दृष्टफलकर्मप्रत्ययजनितहेतुनिमित्तमहाद्भुतदशबलाक्रमणकुशलबोधिमण्डाक्रमणनियतपरायणम् । तत्साधु भगवां वदतु शास्ता मन्त्रसाधनानुकूलानि स्वप्नसंदर्शनकालनिमित्तम् । येन विद्यासाधकानुवर्तिनः सत्त्वाः सिद्धिनिमित्तं कर्म आरभेयुः, सफलाश्च सर्वविद्याः कर्मनिमित्तानि भवन्ति इति ॥

एवमुक्ते भगवां शाक्यमुनिः वज्रपाणिं बोधिसत्त्वमेतदवोचत्—साधु साधु त्वं यक्षेश । बहुजनहिताय त्वं प्रतिपन्नः बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय सर्वविद्यासाधकानामर्थाय । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहं ते ॥

आदौ तावत्पूर्वकर्मारम्भं सर्वकर्मेषु निःसङ्गं स्थानं गत्वा पर्वताग्रे नदीकूले वा गुहाचत्वरकेषु वा, शुचौ देशे उडयं कृत्वा पटे प्रतिष्ठाप्य महतीं पूजां कृत्वा तेनैव विधिना पूर्ववत्सर्वकर्मेषु शुक्लपक्षे प्रातिहारपक्षे वा अवश्यं शुभेऽहनि रात्रौ प्रथमे यामे श्वेतचन्दनकर्पूरकुङ्कुमं चैकीकृत्य खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य पटस्याग्रतश्चतुर्हस्तप्रमाणमाग्रथितः आहुतिं सहस्राष्टं जुहुयान्निर्धूमे विगतज्वाले चाङ्गारे । तदा होमान्ते पद्मपुष्पाष्टसहस्रं जुहुयात् श्वेतचन्दनाभ्यक्तम् । होमान्ते च भद्रपीठं मुद्रां बद्ध्वा आसनं दद्यात् स्वमन्त्रस्य स्वमन्त्रेणैव । अनेन मन्त्रेण तु होमं कुर्यात्—नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—ॐ कुमाररूपिण दर्शय दर्शयमात्मनो भूतिं समुद्भावय स्वप्नं मे निवेद यथाभूतम् । हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा ।

G 146 अनेन मन्त्रेण कृतरक्षो होमकर्माणि सर्वाण्यस्मिन् कर्म कुर्यात् । ततोभयाग्रां कुशां संस्तीर्य कुशपिण्डकशिरोपधान पूर्वशिराः पटस्याग्रतो नातिदूरे नात्यासन्ने स्वपेत् प्रथमं यामं जागरिकायोगमनुयुक्तः । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां प्रणम्य पापं च प्रतिदेश्य आत्मानं निर्यातयेत् सर्वबुद्धानाम् । ततो निद्रावशमागच्छेत् यथासुखमिति ॥

प्रथमे यामे तु ये स्वप्ना तां विदुः श्लेष्मसंभवां ।
द्वितीये पित्तमुत्थानाद् गर्हिता लोकसंभवा ॥ १ ॥
तृतीये वातिकं विद्याच्चतुर्थे सत्यसंभवां ।
श्लेष्मिके स्वप्नमुख्ये तु ईदृशां पश्य वै सदा ॥ २ ॥

मणिकूटां मुक्ताहारांश्च समन्ततः प्रभूताम् ।
अम्भराशिं तृप्लुतं चात्मानं स पश्यति ॥ ३ ॥
समन्तात्सरिताकीर्णं महोदधिसमप्लुतम् ।
तत्रस्थो मात्मदेहस्थो पश्ये चैव यत्र वै ॥ ४ ॥
तत्र तं देशमाकीर्णं पुष्करिण्यो समन्ततः ।
प्लवं चोदपानं च पानागारं च वेश्मनम् ॥ ५ ॥
उदकोघैरुह्यमानं तु पश्येच्चैव समन्ततः ।
हिमालयं तथाद्रिं वा स्फटिकस्थं महानदम् ॥ ६ ॥
नगं शैलं च राजं च स्फटिकाभिः समं चितम् ।
मुक्ताजालसंछन्नं मुक्ताराशिं च पश्यति ॥ ७ ॥
महावर्षं जलौघं च पश्यतेऽसौ कहावहः ।
श्वेतं सितं छत्रं पाण्डरं वापि भूषणम् ॥ ८ ॥
कुञ्जरं शुक्लरूपं वा कफिने स्वप्नमुच्यते ।
सितं चामरपुरुषं वा अम्बरं वापि दर्शनम् ॥ ९ ॥
स्पर्शनं सैन्धवादीनां लवणानां च सर्वतः ।
कर्पासं क्षौमपट्टं वा लोहरूप्यं तथागुरुम् ॥ १० ॥
स्पर्शने ग्रसने चैव श्लेष्मिके स्वप्नमिष्यते ।
माषाध्मातकाश्चैव तिलपिष्टा गुडोदना ॥ ११ ॥
विविधा माषभक्षास्तु कफिने स्वप्नमिष्यते । G 147
स्वस्तिकापूपिका चान्ये कृसरा पायसा परे ॥ १२ ॥
तेषां भक्षणा स्वप्ने श्लेष्मिकस्य विधीयते ।
शष्कुल्या पर्पटा खाद्या विविधा सूपजातयः ॥ १३ ॥
स्पर्शनाद् भक्षणाच्चैव स्वप्ने श्लेष्माघबृंहणम् ।
अनेकप्रकारपूर्वास्तु खाद्यभोज्यानुसंमता ॥ १४ ॥
भक्षणात्स्पर्शनात्तेषां कफिने स्वप्नचेष्टितम् ।
आसनं शयनं यानं वाहनं सत्त्वसंभवम् ॥ १५ ॥
स्पर्शनारोहणा चैव प्रथमे यामे तु दर्शनम् ।
स्वप्ना यदि दृश्येरन् कफिने सर्वमुच्यते ॥ १६ ॥
एवंप्रकारा ये स्वप्ना जलसंभवचेष्टिता ।
विविधा वा खाद्यभोज्यानां श्लेष्मिकानां च दर्शनम् ॥ १७ ॥
तेषां स्वप्ने दृष्ट्वा वै श्लेष्मिकानां तु चेष्टितम् ।
अचिन्त्या ह्यनेका कथिता स्वप्ना लोकनायकैः ॥ १८ ॥

पैत्तिकस्य तु स्वप्नानि द्वितीययामे हि देहिनाम्।
ज्वलन्तमग्निरूपं वा नानारत्नसमुद्भवाम्॥ १९॥
अग्निदाहं महोल्कं वा ज्वलन्तं सर्वतोदिशः।
स्वप्ने पश्यते जन्तुः पित्तसंमूर्छितो ह्यसौ॥ २०॥
पद्मरागं तथा रत्नं अन्यं वा रत्नसंभवम्।
स्वप्ने दर्शनं विद्या पैत्तिकस्य तु देहिनः॥ २१॥
अग्निसंसेवनादाद्या स्पर्शनाद् भक्षणादपि।
विविधां पीतवर्णानां स्वप्ने पित्तमूर्छितैः॥ २२॥
तपन्तं नित्यमादित्यं आतपं कटुकं सदा।
स्वप्ने यानि पश्येत पित्तान्तेदेहमूर्छितः॥ २३॥
हेमवर्णं तदाकाशं पीतवर्णं महीतलम्।
स्वप्ने योऽभिपश्येत पित्तग्लान्यसंभवा॥ २४॥
G 148 समन्ताज्ज्वलितं वह्निं द्योतमानं नभस्तलम्।
पश्यते स्वप्नकालेऽस्मिन् पित्ताक्रान्तो हि देहिनः॥ २५॥
हेमवर्णं तदा भूमिं पर्वतं वा शिलोच्चयम्।
महानागं तथा यानं सर्वं हेममयं सदा॥ २६॥
पश्यते नित्यस्वप्नस्थो पित्तचेष्टाभिमूर्छितः।
सर्वं हेममयं भाण्डं यानं भूषणवाहनम्॥ २७॥
आसनं शयनं चापि जातरूपसमुद्भवम्।
स्पर्शनारोहणाच्चैव पैत्तिकं स्वप्नदर्शनम्॥ २८॥
पीतमाल्याम्बरसंवीतः पीतवस्त्रोपशोभितः।
पीतनिर्भासगन्धाढ्यो पीतयज्ञोपवीतिनः॥ २९॥
पीताकारं च आत्मानं स्वप्ने योऽभिपश्यति।
पित्तमूर्च्छासमुत्थानाद् द्वितीये यामे तु दर्शनात्॥ ३०॥
एवंप्रकारा विविधा वा येभ्यः स्वप्नानुवर्णिताः।
विविधा पीतनिर्भासाः स्वप्नाः पित्तसमुद्भवाः॥ ३१॥
मध्यमे याननिर्दिष्टा पित्तकान्तानुदेहिनाम्।
अनेकाकाररूपास्तु पीताभाससमुद्भवाः।
कथिता लोकमग्रैस्तु स्वप्नाः पित्तसमुद्भवाः॥ ३२॥
वातिका ये तु स्वप्ना वै तृतीये यामे तु कथ्यते।
प्रभास्वरा समन्ताद्वै दिशः सर्वा तु दृश्यते।
आकाशगमनं चापि तिर्यं चापि नभस्तले॥ ३३॥

समन्ता ह्यटते नित्यं आकाशे च नभस्तलम् ।
वातिकं स्वप्नमित्युक्तं ईदृशं तु विधीयते ॥ ३४ ॥
प्लवनं लङ्घनं चैव तरूणां चाभिरोहणम् ।
पठनं सर्वशास्त्रीणां मन्त्राणां च विशेषतः ॥ ३५ ॥
भाषणं जल्पनं चापि प्रभूतं चापि वातिके ।
रोहणं कण्टकवृक्षाणां भक्षणं वातितिक्तकम् ॥ ३६ ॥
कट्वम्लं सर्वखाद्यानां भक्षणं चापि वातिके । G 149
वातसङ्घमुख्यानां फलानां वातिकोपिताम् ॥ ३७ ॥
तेषां तु भक्षणे स्वप्ने निर्दिष्टा वातसंभवाः ।
भक्षाहारविशेषाणां द्रव्याणां च वातलम् ॥ ३८ ॥
क्षिप्तचित्ता तथा जन्तुस्पर्शनाद् भक्षणादपि ।
भृत्यता सर्वभूतानां दर्शनाच्चापि आत्मनाम् ॥ ३९ ॥
स्वप्ने यो हि पश्येत तादृशं वातिकं विदुः ।
विविधाकारचेष्टां तु विविधलिङ्गनभापिता ॥ ४० ॥
विविधा घोरभाषास्तु वातिके स्वप्नदर्शने ।
एवमादीनि स्वप्नानि कथिता लोकपुंगवैः ॥ ४१ ॥
त्रिधा प्रयोगोद्युक्तानि रागद्वेषमोहिनाम् ।
रागिणां विन्द्याच्छ्लेष्मजं पैत्तिकं द्वेषमुद्भवम् ॥ ४२ ॥
मोहनं वातिकं चापि व्यतिमिश्रं विमिश्रितः ।
स्वप्नोपघातं रागाख्यं ग्राम्यधर्मं तु दर्शनम् ॥ ४३ ॥
स्त्रीषु संख्या भवेत् तत्र स्वप्ने श्लेष्मसमुद्भवे ।
द्वेषिणां कलहशीलाख्यं स्वप्ने पित्तसमुद्भवे ॥ ४४ ॥
मोहजं स्तिमिताकारं स्मृतिनष्टोपदर्शने ।
व्यतिमिश्रेण संयुक्तोऽस्तु स्वप्ना दृश्यन्ति वै सदा ॥ ४५ ॥
तस्मात् सर्वप्रकारेण स्वप्नाख्यं सत्त्ववर्जितम् ।
क्रियाकालसमश्चैव निर्दिष्टस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४६ ॥
श्लेष्मिकाणां कथिता सत्त्वा वर्णवन्तः प्रियंवदाः ।
दीर्घायुषोऽथ दुर्मेधा स्निग्धवर्णा विशारदाः ॥ ४७ ॥
गौराः प्रांशुवृत्ताश्च स्त्रीषु सङ्गे सदा रताः ।
धर्मिष्ठा नित्यशूराश्च बहुमानाभिरताः सदा ॥ ४८ ॥
नक्षत्रे जातिनिर्दिष्टः मत्स्यराश्यादिचिह्निते ।
महीपाला तथा चान्ये सेनापत्यार्थसंस्थिते ।
जायते भोगवन्त्याश्च यथाकर्मोपजीविनः ॥ ४९ ॥ G 150

स्वकर्मफलनिर्दिष्टं न मन्त्रं कर्मवर्जितम् ।
न कर्म मन्त्रमुख्यं तु कथितं लोकनायकैः ।
तस्मात् श्लेष्मिके सत्त्वे सिद्धिरुक्ता महीतले ॥ ५० ॥
भूम्याधिपत्यं महाभोगे सिद्धिमायातु तस्य तु ।
आहारां श्लेष्मिकां सर्वां नातिसेवी भवेज्जपी ॥ ५१ ॥
अत्यर्थं सेविता ह्येते स्वप्ना शुद्ध्यार्थसंभवा ।
ता न सेवे तदा मन्त्री भिद्यर्था तु वर्णितः ॥ ५२ ॥
नापि स्वपेत्तदा काले युक्तिमन्तो विचक्षणः ।
पैत्तिकस्या तु सत्त्वस्य कथ्यते चरितं सदा ॥ ५३ ॥
द्वेषाकारक्रुद्धं तु कृष्णवर्णोऽथ दुर्बलः ।
क्रूरः क्रूरकर्मा तु सदा वक्रो विधीयते ॥ ५४ ॥
शूरः साहसिको नित्यं बलबुद्धिसमन्वितः ।
बह्वभाष्ये बहुमित्रा बहुशास्त्रसमाधिगः ॥ ५५ ॥
धार्मिकः स्थिरकर्मान्तः द्वेषमुत्थानवर्णितः ।
मनस्वी बहुशुक्रश्च जायते द्वेषलक्षितः ॥ ५६ ॥
शूरद्वेषी च बह्वर्थो लोकज्ञो प्रियदर्शनः ।
निर्मुक्तो निःस्पृहश्चापि धीरो दुःसहः सदा ॥ ५७ ॥
मानी मत्सरः क्रुद्धः स्त्रीषु कान्तो सदा भवेत् ।
महोत्साही दृढमन्त्री च महाभोगोऽथ जायते ॥ ५८ ॥
आक्रम्य चरते सत्त्वां यथाकर्मानुलब्धिनाम् ।
नित्यं तस्य सिध्यन्ते मन्त्राः प्राणोपरोधिनः ॥ ५९ ॥
क्षिप्रं साधयते ह्यर्थान् दारुणां मुनिरूर्जिताम् ।
सत्त्वोपघाता ये कर्माः सिध्यन्ते तस्य देहिनः ॥ ६० ॥
विविधप्रयोगास्तु ये कर्माः प्रयुक्ता सर्वमन्त्रिणाम् ।
आदरा ते तु सिध्यन्ते नान्यसत्त्वेषु कर्मसु ॥ ६१ ॥
द्वेषिका ये तु मन्त्रा वै परसत्त्वानुपीडिनः ।
G 151 परमन्त्रा तथा च्छिन्दे क्रोधसत्त्वस्य सिध्यति ॥ ६२ ॥
परद्रव्यापहारार्थं परप्राणोपरोधिनः ।
सिध्यन्ते क्रोधमन्त्रास्तु नान्यमन्त्रेषु योजयेत् ॥ ६३ ॥
कुरुते चाधिपत्यं वै एष सत्त्वोऽथ द्वेषजः ।
कृष्णवर्णोऽथ श्यामो वा गौरो वाथ विमिश्रितः ॥ ६४ ॥

जायते क्रोधनो मर्त्यो हेमवर्णविवर्जितः ।
रूक्षवर्णोऽथ धूम्रो वा कपिलो वा जायते नरः ॥ ६५ ॥
शूरः क्रूरः तथा लुब्धः वृश्चिकाराशिमुद्भवः ।
अङ्गारग्रहक्षेत्रस्थः श्लेष्मणाय बृहस्पतेः ॥ ६६ ॥
जायते ह्यल्पभोजी स्यात् कट्वम्लरससेविनः ।
आयुष्यं तस्य दीर्घं तु स्मृतिमन्तोऽथ जायते ॥ ६७ ॥
वातिकस्य तु वक्ष्येऽहं चरितं सत्त्वचेष्टितम् ।
विवर्णो रूक्षवर्णस्तु प्रमाणो नातिदुर्बलः ॥ ६८ ॥
नष्टबुद्धिः सदा प्राज्ञो ह्यस्थिरो ह्यनवस्थितः ।
गात्रकम्पं भ्रमिश्चापि छर्दिं प्रस्रवणं बहु ॥ ६९ ॥
बह्वाशी नित्यभोजी च बह्वावाचो भवे हि सः ।
विरुद्धः सर्वलोकानां बहुमित्रोऽथ जायते ॥ ७० ॥
दुःशीलो दुःखितश्चापि जायतेऽसौ महीतले ।
अन्तर्धानिकमन्त्रा वै तस्य सिद्धिमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥
वातप्रकोपना ये भक्षास्ते तस्यानुवर्तिनः ।
तं न सेवेत् सदा जापी कर्मसिद्धिमकाङ्क्षयन् ॥ ७२ ॥
मोहादुद्भवमेषां तु सत्त्वानां वातकोपिनाम् ।
मोहजाः कथिता ह्येते मूढमन्त्राः प्रसाधिताः ॥ ७३ ॥
नित्यं तेषु मूढानां मोहानां सिद्धिरिष्यते ।
नक्षत्रे जलजा राशौ ग्रहसत्यार्थमीक्षिते ॥ ७४ ॥
नाचरेच्छुभकर्माणि वातिके सत्त्वमूर्च्छिते । G 152
वश्याकर्षणभूतानां मोहनं जम्भनं तथा ॥ ७५ ॥
वातिकेष्वपि सत्त्वेषु मोहजैः पापमुद्भवैः ।
कथिता लक्षणा ह्येते स्वप्नानां सत्यदर्शनाः ॥ ७६ ॥
मुनिभिर्वर्णिता ह्येते पुरा सर्वार्थसाधकाः ।
मेषो वृषो मिथुनश्च कर्कटः सिंह एव तु ॥ ७७ ॥
तुला कन्या तथा वृश्चीं धनुर्मकर एव तु ।
कुम्भमीना गजः दिव्यं वानरमसुर एव तु ॥ ७८ ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाद्या मनुजानां ये प्रकीर्तिताः ।
राशयो बहुसत्त्वानां कथिता ह्यग्रपुंगवैः ॥ ७९ ॥
बहुप्रकारा विचित्रार्था विविधा कर्म वर्णिताः ।
तेषु सर्वेषु कर्मे च फलन्ति गुणविस्तराः ॥ ८० ॥

न कर्म गुणनिर्मुक्तं पठ्यते खलु देहिनाम्।
गुणे च कर्मसंयुक्तः करोति पुनरुद्भवम्॥ ८१ ॥
गुणं धर्मार्थसंयुक्तं सिद्धि मन्त्रेषु जायते।
जापी गुणतत्त्वज्ञः कर्मबन्धगुणागुणम्॥ ८२ ॥
न हि तां कुरुते कर्म यद्गुणेष्वपि सत्क्रियाम्।
क्रिया हि कुरुते कर्म न क्रिया गुणवर्जिता॥ ८३ ॥
क्रियाकर्मगुणां चैव संयुक्तः साधयिष्यति।
विधिपूर्वं क्रिया कर्म उक्तं दशबलैः पुरा॥ ८४ ॥
क्रियाकर्मगुणा ह्येते दृष्टा सत्त्वोपचेष्टिता।
विविधा स्वप्नरूपास्तु दृश्यन्ते कर्ममुद्भवाः॥ ८५ ॥
तस्मात् स्वप्ननिमित्तेन प्रयोज्याः कर्मविस्तराः।
विविधाकारचित्राश्च मनोज्ञाः प्रियदर्शनाः॥ ८६ ॥
विघ्नरूपाः अरूपाश्च दृश्यन्ते स्वप्नहेतवः।
महोत्साहा महावीर्या सिद्धिमाकाङ्क्षिणो नराः॥ ८७ ॥
G 153 उत्तमाधममध्येषु सिद्धिस्तेषु प्रकल्प्यते।
रौद्राः क्रूरकर्मास्तु स्वप्ना सद्यःफला सदा॥ ८८ ॥
उत्तमा ध्रुवकर्मासु चिरकालेषु सिद्धये।
लौकिका लोकमुख्यानां गुणोत्पादनसंभवाः॥ ८९ ॥
दृश्यन्ते विविधाः स्वप्ना जापिनां मन्त्रसिद्धये।
असिद्ध्यर्थं तु मन्त्राणां निद्रा तन्द्री प्रकल्प्यते॥ ९० ॥
विघ्नघातनमन्त्रं तु तस्मिन् काले प्रकल्प्यते।
युक्तिरूपो तदा मन्त्रा जापिनां तं प्रयोजयेत्॥ ९१ ॥
षड्भुजोऽथ महाक्रोधः षण्मुखश्चैव प्रकल्पिते।
चतुरक्षरो महामन्त्रः कुमारे मूर्तिनिसृतः॥ ९२ ॥
घोररूपो महाघोरो वराहाकारसंभवः।
सर्वविघ्नविनाशार्थं कालरात्रं तदेव राट्॥ ९३ ॥
व्याघ्रचर्मनिवस्तस्तु सर्पाभोगावलम्बितः।
असिहस्तो महासत्त्वः कृतान्तरूपी महौजसः॥ ९४ ॥
निर्घृणः सर्वविघ्नेषु विनायकानां प्राणहन्तकृत्।
शृण्वन्तु सर्वभूता वै मन्त्रं तन्त्रे सुदारुणम्॥ ९५ ॥
नाशको दुष्टसत्त्वानां सर्वविघ्नोपहारिकः।
साधकः सर्वमन्त्राणां देवसंघा शृणोथ मे॥ ९६ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—हे हे महाक्रोध ! षण्मुख ! षट्चरण ! सर्वविघ्नघातक ! हूँ हूँ ! किं चिरायसि ? विनायक ! जीवितान्तकर ! दुःस्वप्नं मे नाशय । लङ्घ लङ्घ । समयमनुस्मर फट् फट् स्वाहा ॥

समनन्तरभाषितोऽयं महाक्रोधराजा, सर्वविघ्नविनायकाः आर्ताः भीताः भिन्नहृदयाः त्रस्तमनसो भगवन्तं शाक्यमुनिं मञ्जुश्रियं कुमारभूतं नमस्कारं कुर्वते स्म । समये च तस्थुः ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः सर्वं तं शुद्धावासभवनमवलोक्य तं च महापर्षन्मण्डलं C 154 एवमाह—भो भो देवसंघाः, अयं क्रोधराजा सर्वलौकिकलोकोत्तराणां मन्त्राणां साध्यमानानाम् । यो हि दुष्टसत्त्वः जापिनं विहेठयेत् तस्यायं क्रोधराजा सकुलं दमयिष्यति । शोषयिष्यति । न च प्राणोपरोधं करिष्यति । परिताप्य परिशोष्य व्यवस्थायां स्थापयिष्यति । जापिनस्य रक्षाधरणगुप्तये स्थास्यति । अनुबृंहयिष्यति । यो ह्येवं समयमतिक्रमेत्, क्रोधराजेन कृतरक्षं साधकं विहेठयेत् ॥

सप्तधास्य स्फुटेन्मूर्धा अर्जकस्येव मञ्जरी ।
इत्येवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो मञ्जुघोषं तदाब्रवीत ॥ ९७ ॥
कुमार त्वदीयमन्त्राणां सकलार्थार्थविस्तराम् ।
मन्त्रतन्त्रार्थयुक्तानां साधकानां विशेषतः ॥ ९८ ॥
क्रोधराट् कथितं तन्त्रे सर्वविघ्नप्रनाशनम् ।
लोकनाथै पुरा ह्येतत् तथैव संनियोजितम् ॥ ९९ ॥
दुष्टविघ्नविनाशाय अरीणां क्रोधनाशनम् ।
जापिनां सततं ह्येतन्निशासु पठयेत्सदा ॥ १०० ॥
एष रक्षार्थं सत्त्वानां दुःस्वप्नानां च नाशनम् ।
कथितं लोकमुख्यैस्तु सर्वमन्त्रार्थसाधने ॥ १०१ ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि पुरुषाणां लक्षणं शुभम् ।
येषु मन्त्राणि सिध्यन्ते उत्तमाधममध्यमाः ॥ १०२ ॥
तेजस्वी च मनस्वी च कनकाभो महोदरः ।
विशालाक्षोऽथ सुस्निग्धो मन्दरागी क्रोधवर्जितः ॥ १०३ ॥
रक्तान्तनयनः प्रियाभाषी उत्तमं तस्य सिध्यति ।
तनुत्वचोऽथ श्यामाभो तन्वङ्गो नातिदीर्घकः ॥ १०४ ॥
महोत्साही महोजस्कः संतुष्टो सर्वतः शुभः ।
उत्कृष्टो योनितः शुद्धः अल्पेच्छेथ दुर्बलः ॥ १०५ ॥
तस्य सिद्धिर्ध्रुवा श्रेष्ठा दृश्यते सर्वकर्मसु ।
अहीनाङ्गोऽथ सर्वत्र पूर्वश्यामो महौजसः ॥ १०६ ॥

G 155 अक्लिष्टचित्तो मनस्वी च ब्रह्मचारी सदा शुचिः।
वासाभिरतो नित्यं लोकज्ञो धर्मशीली च ॥ १०७ ॥
बहुमित्रो सदा त्यागी मात्रा च चरतो सदा।
शुचिश्च दक्षशीलश्च शौचाचाररतः सदा ॥ १०८ ॥
सत्यवादी घृणी चैव उत्तमा तस्य सिध्यति।
अव्यङ्गगुणविस्तारः कुलीनो धार्मिकः सदा ॥ १०९ ॥
मातृपितृभक्तश्च ब्राह्मणातिथिपूजकः।
अतिकारुणिको धीरस्तस्यापि सिद्धिरुत्तमा ॥ ११० ॥
श्यामावदातः स्निग्धश्च अल्पभाषी सदा शुचिः।
मृष्टान्नभोजनाकाङ्क्षी शुचिदाराभिगामिनः ॥ १११ ॥
लोकज्ञो बहुमतः सत्त्वस्तस्यापि सिद्धिरुत्तमा।
नातिह्रस्वो न चोत्कृष्टः भिन्नाञ्जनमूर्धजः ॥ ११२ ॥
स्निग्धलोचनवर्णश्च शुचिः स्नानाभिरतः सदा।
रत्नत्रये च प्रसन्नोऽभूत् तस्यापि सिद्धिरुत्तमा ॥ ११३ ॥
उत्कृष्टकर्मप्रयुक्ता च सत्त्वानामाशयतद्विदः।
सहिष्णुः प्रियवाक्यश्च प्रसन्नो जिनसूनुना।
लोकोत्तरी तदा सिद्धिः सफला तस्य शिष्यते ॥ ११४ ॥
महासत्त्वो महावीर्यः महौजस्को महाव्रती।
महाभोगी च मन्त्रज्ञः सर्वतन्त्रेषु तत्त्ववित् ॥ ११५ ॥
वर्णतः क्षत्रियो ह्यग्रो ब्राह्मणो वा मनस्विनः।
स्त्रीषु सेवी सदारागी कनकाभोऽथ वर्णतः ॥ ११६ ॥
दृश्यते प्रांशुगौरश्च तुङ्गनासो महाभुजः।
प्रलम्बबाहु शूरश्च महाराज्याभिकाङ्क्षिणः ॥ ११७ ॥
प्रसन्नो जिनपुत्राणां ख्याख्यादेविपूजकः।
रत्नत्रये च भक्तश्च बोधिचित्तविभूषितः।
अतिकारुणिको धीरः क्वचिद् रोषो महोजः क्वचित् ॥ ११८ ॥
G 156 महाभोगी महात्यागी महोजस्को दुरासदः।
स्त्रीषु वल्लभ शूरश्च तस्यापि सिद्धिरुत्तमा ॥ ११९ ॥
अतिमानरतः शूरः स्त्रीषु सङ्गी सदा पुनः।
कनकाभः स्वल्पभोजश्च विस्तीर्णः कठिनः शुचिः ॥ १२० ॥
घृणी कारुणिकः दक्षो लोकज्ञः बहुमतो गुणैः।
मन्त्रजापी सदा भक्तः जिनेन्द्राणां प्रभंकरम् ॥ १२१ ॥

तेषु श्रावकपुत्राणां खड्गिनां च सदा पुनः ।
प्रभविष्णु लोकमुख्यश्च वर्णतः द्वितीये शुभे ॥ १२२ ॥
अव्यङ्गः सर्वतः अङ्गैः क्रूरः साहसिकः सदा ।
त्यागशीली जितामित्रो धर्माधर्मविचारकः ॥ १२३ ॥
नातिस्थूलो नातिकृशो नातिदीर्घो न ह्रस्वकः ।
मध्यमो मनुजः श्रेष्ठः सिद्धिस्तस्यापि उत्तमा ॥ १२४ ॥
आताम्रनखसुस्निग्धः रक्तपाणितलः शुचिः ।
चरणान्तं रक्ततः स्निग्धश्चक्रस्वस्तिकभूषितः ॥ १२५ ॥
ध्वजतोरणमत्स्याश्च पताका पद्ममुत्पलाः ।
दृश्यन्ते पाणिचरणयोः मनुजो लक्षलक्षणैः ॥ १२६ ॥
तादृशः पुरुषः श्रेष्ठः अग्रसिद्धिस्तु कल्प्यते ।
शुक्लदंष्ट्रो असुषिरस्तुङ्गः शिखरिणः समाः ॥ १२७ ॥
तुङ्गनासो विशालाक्ष्यः संहतभ्रूचिबुके शुभाः ।
गोपक्ष्मलोकचिह्नस्तु कृष्णदृक् तारकाङ्कितः ॥ १२८ ॥
ललाटं यस्य विस्तीर्णं छत्राकारशिरः शुभः ।
उष्णीषाकारशिरश्चैव कर्णौ शोभनतः शुभौ ॥ १२९ ॥
सिंहकारहनुः सदा अधरौ पक्वबिम्भसमप्रभौ ।
पद्मपत्ररक्ताभा जिह्वा यस्य दृश्यते तालुका चाभिरक्तिका ॥ १३० ॥
ग्रीवा कम्बुसदृशा पीनस्कन्धा समुद्भवा ।
कक्षवक्षः शुभः श्रेष्ठः विस्तीर्णोरस्तथैव च ॥ १३१ ॥
स्वल्पतो नाभिदेशश्च विस्तीर्णकठिनः शुभः । G 157
गम्भीरप्रदक्षिणा नाभी सिराजालअकुर्वता ॥ १३२ ॥
प्रलम्बबाहुर्महाभुजः कटिसिंहोरचिह्नितः ।
उरू चास्य वर्तुलकौ कौर्परौ खर्तवर्जितौ(?) ॥ १३३ ॥
एणेयजङ्घः सुसंपन्नवर्तुलाश्च प्रकीर्तिताः ।
चरणौ मांसलैपेतौ अङ्गुलीभिः समुन्नतौ ॥ १३४ ॥
रक्तौ रक्तनखौ स्निग्धौ उन्नतौ मांसशोभितौ ।
अशिरौ महीतलावर्णौ शोभनौ प्रियदर्शनौ ॥ १३५ ॥
अश्लिष्टौ वर्णतः शुद्धौ प्रशस्तौ लोकचिह्नितौ ।
उपरिष्टात्तु तेषां वै शिराजालअनुन्नतौ ॥ १३६ ॥
पुरीषप्रस्रवणौ मार्गौ गम्भीरावर्तदक्षिणौ ।
प्रशस्तौ स्वल्पतरौ नित्यं वृषणौ वर्तुलौ शुभौ ॥ १३७ ॥

अवधौ अखण्डौ च अनेकश्चैव कीर्त्यते ।
अङ्गजाते यदा शुद्धया रागान्ते च समाश्रितः ॥ १३८ ॥
स्वप्नकाले च आहारे वृष्याणां खाद्यभोजनैः ।
प्रस्तुतो वर्णतो नीलो रक्तो वा यदि दृश्यते ॥ १३९ ॥
प्रभूतस्रावी स्निग्धश्च शुभलक्षणलक्षितैः ।
तथाविधेये सत्त्वाख्ये उत्तमा सिद्धिरिष्यते ॥ १४० ॥
तृपुरीषी षण्मूत्री च शौचाचाररतः शुचिः ।
शयते यो हि यामान्ते प्रातरुत्थाति जन्तवः ॥ १४१ ॥
तस्य शुद्धिः सदा श्रेष्ठा दृश्यते सर्वकर्मिका ।
फलां विविधाकारां संपदा बहु वा पुनः ॥ १४२ ॥
अनुभोक्ता भवेन्मध्यैर्लक्षणैरभिलक्षितः ।
नक्षत्रैश्च तथा जातः पुष्यै रेवतिफल्गुनैः ॥ १४३ ॥
मघासु अनुराधायां चित्रारोहिणिकृत्तिकैः ।
जनकः तेषु दृश्यस्थः समर्थो ग्रहचिह्नितः ॥ १४४ ॥
G 158 प्रभातकाले यो जातः सिद्धिस्तेषु प्रदृश्यते ।
मध्याह्ने प्रातरश्चापि अत्रान्ते च शुचिग्रहाः ॥ १४५ ॥
शुक्ला सोमशुक्लाश्च पीतको बुधः बृहस्पतिः ।
सामर्थ्यकार्यसिद्ध्यर्थं निरीक्ष्यन्ते सर्वजन्तूनाम् ॥ १४६ ॥
अत्रान्तरे च ये जाता मनुजाः शुभकर्मिणः ।
तेषां सिध्यन्त्ययत्नेन मन्त्राः सर्वार्थसाधने ॥ १४७ ॥
मध्याह्नापरतेनैव रवावस्तमने सदा ।
अत्रान्तरे सदा क्रूरा ग्रहाः पश्यन्ति देहिनाम् ॥ १४८ ॥
आदित्याङ्गारकः क्रूराः केतु राहु शनिश्चरः ।
ये च ग्रहमुख्यास्तु कम्पनिर्घातउल्किनः ॥ १४९ ॥
तारा घोरतमश्चैव कृष्णारिष्टसमस्तथा ।
कालमारकुरुः रौद्रो दृश्यते तस्मिं कालतः ॥ १५० ॥
आदित्योदयकाले च बुधः पश्यति मेदिनीम् ।
युगमात्रे रथत्युच्चे पश्यतेऽसौ बृहस्पतिः ॥ १५१ ॥
शुक्रः परेण धनाध्यक्षो पश्यतेऽसौ युगे रवौ ।
मध्याह्नादापूर्यते चन्द्रः दर्शनं चन्द्रदेहिनाम् ॥ १५२ ॥
बुधकाले भवेद्राज्यं बृहस्पतो अर्थभोगकृत् ।
शुक्रे धननिष्पत्तिः महाराज्यं भोगसंपदम् ॥ १५३ ॥

दीर्घायुष्यं तथा चन्द्रे ऐश्वर्यं चापि साफलम् ।
मध्यंदिने तथा भानो मध्यदृष्टिसमोदिता ॥ १५४ ॥
मध्याह्ने विगते नित्यं आदित्यो दिशमीक्षते ।
युगमात्रे ह्यासिता नोच्चे केतुरेवमुदाहृताः ॥ १५५ ॥
राहुः शनैश्चरश्चैव तमकाल्युगान्तकः ।
ततः परेण ह्रस्वायां निष्टरिष्टोल्ककम्पकः ॥ १५६ ॥
आताम्रेऽस्तं गते भानौ सिन्दूरपुञ्जवर्णिते ।
योऽसौ ग्रहमुख्यस्तु बालदारकवर्णिनः ॥ १५७ ॥
शक्तिहस्तो महाक्रूरः अङ्गारस्येव दर्शने । G 159
ततो युगान्तार्पिते भानो शुभानां ग्रहयोनयः ॥ १५८ ॥
आदित्यदर्शनाज्जातः क्रूरः साहसिको भवेत् ।
सत्यकाङ्गारके जातः क्रुद्धलुब्धोऽभिमानिनः ॥ १५९ ॥
केतुरिष्टातिधूम्राणां जनयन्ते व्याधिसंभवा ।
दरिद्रा व्याधिनो लुब्धा मूर्खाश्चैव जना सदा ॥ १६० ॥
कालस्तमकम्पानां उल्किकां ग्रहकुत्सिताम् ।
कम्पनिर्घातताराणामशनिश्चैव प्रतापिनः ॥ १६१ ॥
वक्रो रिष्ट तथा चान्यां ऋक्षादीनां प्रकल्पते ।
राहुर्दर्शनघोरस्तु दृश्यते सर्वजन्तुनाम् ॥ १६२ ॥
दरिद्रानाथदुःशीला पापचौरनरा सदा ।
जायन्ते दुःखिता मर्त्या जना व्याधिमाणया ।
कुष्ठिनो बहुरोगाश्च काणखञ्जसदजुला (?) ॥ १६३ ॥
षण्डपण्डेऽनपत्याश्च दुर्भगाः स्त्रीषु कुत्सिताः ।
नरा नार्यस्तथा चान्ये दर्शनाग्रहकुत्सिताम् ॥ १६४ ॥
जायन्ते बहुधा लोकां जातकेष्वेव जातकाः ।
शुक्लपीतग्रहाः श्रेष्ठा तेषु जातिशुभोदयाः ॥ १६५ ॥
वर्णतः शुक्लपीताभाः प्रशस्ता जिनवर्णिताः ।
चत्वारो ग्रहमुख्यास्तु शुक्रचन्द्रगुरुर्बुधः ॥ १६६ ॥
तेषां दर्शनसिद्ध्यर्थं जापिना सर्वकर्मसु ।
बालिशानां च सत्त्वानां जातिरेव सदा शुभा ॥ १६७ ॥
सर्वसंपत्सदा मिष्टाः कथिता लोकपुंगवैः ।
क्षणमात्रं तथोन्मेषनिमेषं चापि अच्छटम् ॥ १६८ ॥
एषां संक्षेपतो जाति कथिता लोकपुंगवैः ।
एतन्मात्रं प्रमाणं नु ग्रहाणां लोकचिन्तिनाम् ॥ १६९ ॥

उदयन्ते तथा नित्यं एतत्कालं तु तत्त्वतः।
श्रेयसा पापका ह्येते भ्रमन्ते चक्रवत् तदा ॥ १७० ॥
G 160 शुभाशुभकरा तेऽत्र मन्त्रं एकत्वत्सदा।
ते देवलोकसमासृता नु············ ॥ १७१ ॥
एतेषां क्वचित् किंचित् पापबुद्धिस्तु जायते।
शुभाशुभफला सत्त्वा जायन्ते बहुधा पुनः ॥ १७२ ॥
स एषां दर्शनमित्याहुर्ग्रहाणां कर्मभोजिनाम्।
सत्त्वानां सत्वरमायान्ति शीघ्रगामित्वसत्वराः ॥ १७३ ॥
दृश्यादृश्यं क्षणान्मेषमच्छटां त्वरिता गतिः।
ततः कालं प्रकल्प्येते··············।
एतत्कालप्रमाणं तु दर्शितमग्रबुद्धिभिः ॥ १७४ ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि नियते जातके सदा।
मुहूर्ता द्वादशाश्चैव कालं कालं यानुहेतवः।
अपात्रं चैव वक्ष्यन्ते सिद्धिहेतुर्न वा पुनः ॥ १७५ ॥
शकुनं चैव लोकानां दृष्ट्यादृष्ट्य पुनः पुनः।
राष्ट्रभङ्गं च दुर्भिक्षं········नृपतेः शुभम् ॥ १७६ ॥
कालाकालं तदा मार्यः शिवं चक्रे सदा जनः।
केतुकम्पोऽथ निर्घातमुल्कं चैव सधूमिनम् ॥ १७७ ॥
नक्षत्रवारताराणां चरितं च शुभाशुभम्।
चरितं सर्वभूतानां शिवाशिवविचेष्टितम् ॥ १७८ ॥
क्रव्यादां मातरांश्चैव रौद्रसत्त्वोपघातिनाम्।
दुष्टसत्त्वां तथा वक्ष्ये चरितं पिशिताशिनाम् ॥ १७९ ॥
प्रसन्ना देवता यत्र रत्नधर्माग्रबुद्धिनाम्।
शुभकर्मसदायुक्तां मैत्रचित्तदयालवाम् ॥ १८० ॥
साधुचेष्टार्थबुद्धीनां परपूर्तिसमाश्रिताम्।
आकृष्टा मन्त्रमुक्तीभिः ओषध्याहारहेतुनाम् ॥ १८१ ॥
विस्तरं चरितं वक्ष्ये लक्षणं यत्र आश्रिताः।
परदेहं समाश्रित्य तिष्ठन्ते मानुषाश्रिता ॥ १८२ ॥
G 161 देवा पुनस्तमित्याहुरसुरा मानहेतुना।
द्विविधा तेऽपि तत्रस्था पार्षद्या सुरासुराः ॥ १८३ ॥
तेऽपि तत्र द्विधा यान्ति क्रूर साधारणा पुनः।
तेऽपि तत्र द्विधा यान्ति शुभाशुभगतिपञ्चकम् ॥ १८४ ॥

तत्रस्था त्रिविधा यान्ति विंशत्रिंशदसंख्यकम् ।
अकनिष्ठा याव देवेन्द्रा यामासंख्यमभूषकाः ॥ १८५ ॥
अपर्यन्तं याव धातूनां लोकानां च शुभाशुभम् ।
यावां संसारिका सत्त्वा यावां चार्यश्रावकाः ॥ १८६ ॥
बुद्धप्रत्येकबुद्धानां तदौरसानां च सूनुनाम् ।
बोधिसत्त्वां महासत्त्वां दशभूमिप्रतिष्ठिताम् ॥ १८७ ॥
सर्वसत्त्वा तथा नित्यं सत्त्वयोनिसमाश्रिताम् ।
सर्वबालिशजन्तूनां गतियोनिसमाश्रिताम् ।
विनिर्मुक्तानां संसाराद्दे बुद्धानां सर्वार्याम् ॥ १८८ ॥
सर्वतो नित्यं लक्षणं···चरितं सदा ।
वाचामिङ्गिततत्वं तु तेषां वक्ष्ये सविस्तरम् ॥ १८९ ॥
आकृष्टा सर्वभूतास्तु मन्त्रतन्त्रसयुक्तिभिः ।
आविष्टाकृष्टमन्त्रज्ञो परदेहसमाश्रिताम् ॥ १९० ॥
कुशलैः कुशलकर्मज्ञैरप्रमत्तैः सजापिभिः ।
अमूढचरितैः सर्वैर्निग्रहानुग्रहक्षमैः ।
आकृष्टा भूतला लोके मानुष्ये मन्त्रजापिभिः ॥ १९१ ॥
तेषां सिद्धिनिमित्तं तु सर्वं वक्ष्ये तु तत्त्वतः ।
तेषां देहानुरोधार्थं मानुषाणां सदारुजाम् ॥ १९२ ॥
नित्यमत्यन्तधर्मार्थं मोक्षार्थं तु प्रकल्प्यते ।
निग्रहं तेषु दुष्टानां विशुद्धानां तु पूजना ॥ १९३ ॥
निग्रहानुग्रहं चैव मन्त्रतन्त्रं प्रकल्प्यते ।
वातश्लेष्मपित्तानां त्रिविधात्र त्रिधा क्रिया ॥ १९४ ॥
तेषां तु प्रकल्पयेच्छान्तिं त्रिविधैव क्रमो मतः ।
तत्र मन्त्रैः सदा कुर्यान्मानुषाणां चिकित्सितम् ॥ १९५ ॥
महाभूतविकल्पस्तु भूतो भूताधिकः स्मृतः ।
अधिभूतं तथाभूतैरधिभूतः स उच्यते ॥ १९६ ॥
अधिभूतो यदा जन्तुरस्वास्थ्यं जनयेत्तदा ।
भूतं भूतप्रकारं तु द्विविधं तु प्रकल्प्यते ॥ १९७ ॥
सत्त्वभूतस्तथा नित्यमसत्त्वश्चैव प्रकल्प्यते ।
पित्तश्लेष्म तथा चायुर्ये चान्ये············ ॥ १९८ ॥
चत्वारश्च महाभूताः पञ्चममाकाशमिष्यते ।
आपस्तेजोसमायुक्तं पृथिवी वायुसमायुता ॥ १९९ ॥

असत्त्वसंख्यमित्याहुर्बुद्धिमन्तः सदा पुनः ।
लोकाग्राधिपतिः ह्यग्रः इत्युवाच महाद्युतिः ॥ २०० ॥
असत्त्वसंख्यं ह्यमानुष्यं·········· ।
मानुषं सत्त्वमित्याहुरग्रधीर्वदतां वरः ॥ २०१ ॥
अमानुषं मानुषं वापि सत्त्वसंख्यं सदैवतम् ।
सत्त्वानां श्रेयसार्थं तु सार्वज्ञं वचनं पुनः ॥ २०२ ॥
अतीतानागतैर्बुद्धैः प्रत्युत्पन्नैस्तथैव च ।
भाषितं कर्ममेवं तु शुभाशुभफलोदयम् ॥ २०३ ॥
केवलं वचनं बुद्धानामवश्यं कर्म करोति ।
तन्निमित्तं गोत्रसामान्यात् सिद्धिरेव प्रशस्यते ॥ २०४ ॥
सर्वज्ञं ज्ञानमित्याहुः क्षेमं शान्तं सदा शुचिम् ।
निष्ठं शुद्धनैरात्म्यं परमार्थं मोक्षमिष्यते ॥ २०५ ॥
तदेव वर्त्म सत्त्वेषु इदं सूत्रमुदाहृतम् ।
तत्र मन्त्र सदोषध्या अशेषं वचनं जगे ॥ २०६ ॥
भूतं भविष्यमन्यतं सर्वशास्त्रसुपूजितम् ।
लोकाग्र्यं धर्मनैरात्म्यं सदाशान्तशिवं पदम् ॥ २०७ ॥
G 163 एतत्सार्वज्ञवचनं निष्ठं तस्य परं पदम् ।
केवलं तु प्रकल्प्येते सर्वज्ञज्ञानमुद्भवम् ॥ २०८ ॥
प्रभावं सर्वबुद्धानां बोधिसत्त्वानां च धीमताम् ।
मन्त्राणां सर्वकर्मेषु सिद्धिः सर्वत्र दर्शिता ।
अत एव मुनीन्द्रेण कल्पराजः प्रभाषितः ॥ २०९ ॥
अनेन वर्त्मना गच्छन्मन्त्ररूपेण देहिनाम् ।
निर्वाणपुरमाप्नोति शान्तनिर्जरसंपदम् ।
अशोकं विरजं क्षेमं बोधिनिष्ठं सदा शिवम् ॥ २१० ॥
य एष सर्वबुद्धानां शासनं मन्त्रजापिनाम् ।
कथिते भूतले तन्त्रमशेषं मन्त्रजापिनाम् ॥ २११ ॥
सर्वं ज्ञानज्ञेयं च कर्महेतुनिबन्धनम् ।
सर्वमेतं तु मन्त्रार्थं त्रिविधा बोधिनिम्नगा ॥ २१२ ॥
अशेषज्ञानं तु बुद्धानामिह कल्पे प्रदर्शितम् ।
सत्त्वानां च हितार्थाय सर्वलोकेषु प्रवर्तितम् ॥ २१३ ॥
ये हास्ति कल्पराजेऽस्मिन् नान्यकल्पेषु दृश्यते ।
योऽन्यकल्पेषु कथितं मुनिपुत्रैस्तु मुनिवरैः ॥ २१४ ॥

ते ह्यस्ति सर्वमन्त्राणां कल्पं विस्तरमेव तु ।
अत एव जिनेन्द्रेण कथितं सर्वदेहिनाम् ॥ २१५ ॥
महीतले च त्रिलोकेऽस्मिं न सौ वि·········· ।
योऽस्मिन् कल्पराजेन्द्रे नानीतो न वशीकृतः ॥ २१६ ॥
अस्तंगते मुनिचन्द्रे शून्ये भूतलमण्डले ।
इह कल्पे स्थिते लोके शासनार्थं करिष्यति ॥ २१७ ॥
कुमारः सर्वभूतानां मञ्जुघोषः सदा शुभः ।
बुद्धकृत्यं तथा लोके शासनेऽस्मिन् करिष्यति ॥ २१८ ॥
प्रभावं कल्पराजस्य चिरकालाभिलापिणाम् ।
श्रुत्वा सकृदधिमुच्यन्ते तेषु सिद्धिः सदा भवेत् ॥ २१९ ॥
अवन्ध्यं सर्वभूतानां वचनेदं सदा शुभम् । G 164
मन्त्रिणां सर्वभूतेषु जापहोम सदा रताम् ॥ २२० ॥
त्र्यद्विकेषु ज्ञानेषु ज्ञानं यत्र प्रवर्तते ।
स एव प्रवर्तते अस्मिं कल्पराजे वरोत्तमे ॥ २२१ ॥
मन्त्रप्रतिष्ठा बुद्धानां शासनं*इहोदितम् ।
निर्विकल्पस्तु तं मन्त्रं विकल्पेऽस्मिन् तदिहोच्यते ॥ २२२ ॥
करोति सर्वसत्त्वानामर्थानर्थं शुभाशुभम् ।
गतिबुद्धिस्तथा सत्त्वं लोकानां च शिवाशिवम् ॥ २२३ ॥
स एष प्रपञ्च्यते कल्पे निःप्रपञ्चास्तथागताः ।
लोकातीता स्वसंबुद्धा लोकहेतोरिहोच्यते ॥ २२४ ॥
अधिकं सर्वधर्माणां लोकधर्मा ह्यतिक्रमा ।
करोति विविधां कर्मां विचित्रां लोकपूजिताम् ॥ २२५ ॥
मन्त्रराट् कर्मसूद्युक्तः सत्त्वराशेस्तथा हितः ।
कुमारो मञ्जुघोषस्तु बुद्धकृत्यं करोति सः ॥ २२६ ॥
तस्यार्थं गुणनिष्पत्तिर्लोकाधानं शुभाशुभम् ।
अध्येष्टाहं प्रवक्ता वै नाध्येष्टा धर्ममुच्यते ॥ २२७ ॥
केवलं सर्वसत्त्वानां हितार्थं बुद्धभाषितम् ।
अतीतैः सर्वबुद्धैस्तु भाषितं तु प्रवक्ष्यते ॥ २२८ ॥
बुद्धवंशमविच्छिन्नं भाषिष्यत्यधिमुच्यते ।
ते सर्वज्ञज्ञानमुद्भवमन्त्रिणां सर्वकर्मसु ॥ २२९ ॥
सर्वज्ञज्ञानप्रवृत्तं तु कर्ममेकं प्रशस्यते ।
पूर्वकर्म स्वकं लोके तदधुना परिभुज्यते ॥ २३० ॥

तस्मात् कर्म प्रकुर्वीत इह जन्मसु दुष्करम्।
मन्त्राः सिध्यन्त्ययत्नेन कर्मबन्ध इहापि तम्॥ २३१॥
जन्मे सिद्धिः स्यादिह कर्मेऽपि दृश्यते।
तस्मात् सर्वबुद्धैस्तु कर्ममेकं प्रशंसितम्॥ २३२॥
G 165 विधियुक्तं तु तत्कर्म क्षिप्रं सिद्धि इहापि तत्।
भ्रमन्ति सत्त्वा विधिहीना बालिशास्तु प्रमोहिताः॥ २३३॥
तस्मात्सर्वप्रकारेण कर्म एकं प्रशंसितम्।
विधिं कर्मसमायुक्तं संयुक्तः साधयिष्यति।
विधिहीनं तथा कर्म सुचिरेणापि न सिध्यति॥ २३४॥
न हि ध्यानैर्विना मोक्षं न मोक्षं ध्यानवर्जितम्।
तस्माद् ध्यानं च मोक्षं च संयुक्ते बोधिमुच्यते॥ २३५॥ इति॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात् त्रयोदशमः *सर्वकर्मक्रियार्थः पटलविसरः परिसमाप्त इति।



[* त्रयोदशस्य चतुर्दशस्य च पूर्वं संख्यातत्वाद् इह त्रयोदश इति अनन्तरपटलविसरे चतुर्दश इति तदनुसारि उत्तरोत्तरसंख्यानं चादर्शग्रन्थे दृश्यमानं लेखकप्रमादागतमिति प्रतिभाति॥]

१६ गाथापटलनिर्देशविसरः । G 166

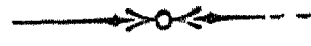
अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–शृणु मञ्जुश्रीः त्वदीये सर्वार्थक्रियाकर्मपटलविसरं पूर्वनिर्दिष्टम्। पर्षन्मण्डलमध्ये सविस्तरं वक्ष्येऽहम्—

पृष्टोऽयं यक्षराजेन वज्रहस्तेन धीमता ।
सर्वमन्त्रार्थयुक्तानां स्वप्नानां च शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अतः प्रसङ्गेन सर्वेदं कथितं मन्त्रजापिनाम् ।
यक्षराट् तुष्टमनसो मूर्ध्नि कृत्वा तु अञ्जलिम् ॥ २ ॥
प्रणम्य शिरसा शास्तुरभ्युवाच गिरां मुदा ।
अनुग्रहार्थं लोकानां कथितं ह्यग्रबुद्धिना ॥ ३ ॥
ममैवमनुकम्पार्थं सत्त्वानां च सुखोदया ।
जापिनां सर्वमन्त्राणां स्वप्नानां च शुभाशुभम् ॥ ४ ॥
चरितं गुणविस्तारं सत्त्वाधिष्ठनिकृष्टिनाम् ।
उत्तमा गतियोनिभ्यो हेतुज्ञानविचेष्टितम् ॥ ५ ॥
अतीतानागतं ज्ञानं वर्तमानं शुभाशुभम् ।
सर्वं सर्वगतं ज्ञानं सर्वज्ञज्ञानचेष्टितम् ॥ ६ ॥
अनाभास्यमनालम्ब्यं निःप्रपञ्चं प्रपञ्चितम् ।
मन्त्राकारवरोपेतं शिवं शान्तमुदीरितम् ॥ ७ ॥
प्रभावं सर्वबुद्धानां वर्णितं ह्यग्रबुद्धिना ।
सर्वमन्त्रार्थयुक्तानां जापिनां च विशेषतः ॥ ८ ॥
कर्म कर्मफलं सर्वं क्रियाकालं तथैव च ।
पात्रं स्थानं तथा वेषं स्वप्नप्रसङ्गे प्रचोदितम् ॥ ९ ॥
यक्षराण्मुनिवरं श्रेष्ठं सप्तमन्त्रतथागतम् ।
भद्रकल्पे तु ये बुद्धाः सप्तमोऽयं शाक्यपुंगवः ॥ १० ॥
शाक्यसिंहो जितामित्रः सप्तमोऽयं प्रकल्पितः ।
युगाधमेऽभिसंबुद्धो लोकनाथो प्रभंकरः ॥ ११ ॥
महावीर्यो महाप्राज्ञो महास्थामोदितो मुनिः ।
वज्रपाणिस्तु तं यक्षो बोधिसत्त्वो नमस्य तम् ॥ १२ ॥
स्वकेषु आसने तस्थुस्तूष्णींभूतोऽथ बुद्धिमान् । G 167
मञ्जुश्रियोऽथ महाप्राज्ञः पृष्टोऽसौ मुनिना तदा ॥ १३ ॥
अध्येषयति तं बुद्धं कन्यसं मुनिसत्तमम् ।
साधु भगवां संबुद्धः कर्मज्ञान सविस्तरम् ॥ १४ ॥

जातकं .... सदा शुभम्।
चरितं बहुसत्त्वानां कर्मज्ञान सहेतुकम्॥ १५ ॥
निविष्टाविष्टचेष्टानां श्रेयसार्थार्थयुक्तिनाम्।
जापिनां सिद्धिनिमित्तानि साध्यासाध्यविकल्पिताम्॥ १६ ॥
भूतिकामा तथा लोके ऐश्वर्याभोगकाङ्क्षिणाम्।
राज्यहेतुप्रकृष्टानां सिद्धिधारणकामिनाम्॥ १७ ॥
सर्वं सर्वगतं ज्ञानं संक्षेपेण प्रकाशतु।
इत्युवाच मुनिश्रेष्ठो अध्येष्टो जिनसूनुना॥ १८ ॥
कलविङ्करुतो धीमान् दिव्यदुन्दुभिनादिनः।
ब्रह्मस्वरो महावीर्यपर्जन्यो घोषनिःस्वनः॥ १९ ॥
बुद्धवाचोदितः शुद्धो वाचे गाथां सप्तमो मुनिः।
एष कुमार परार्थगतानां सिद्धिमजायत लोकहितानाम्।
श्रेयसि सर्वहिते जगति प्रणितारो शुध्यतु तिष्ठतु मोक्षविहूनाम्॥ २० ॥
सत्ययाक्षयवीर्यवां हि तच्चित्ता मदमैत्ररता सददानरता ये।
सिद्धि भवे सद तेषु जनेषु नान्य कथंचन सिद्धिमुपेष्ये॥ २१ ॥
मन्त्रवरे सद तुष्टिरता ये शासनि चक्रधरे तथा मञ्जुधरे वा।
धर्षयि मार प्रवर्तयि चक्रं सोऽपि ह चक्रधरो इह युक्तः॥ २२ ॥
वाचा दिव्य मनोरम यस्या बालिश जन्तु विवर्जित नित्या।
दिव्यमनोरमकर्णसुखा च प्रेमणीया मधुरा अनुकूला॥ २३ ॥
चित्तप्रह्लादनसौख्यप्रदा च मञ्जुरिति समुदीरय बुद्धा।
यस्य न शक्यमभावमजानं तेऽपि तथागतज्ञानविशेषैः॥ २४ ॥
तेषु सुताथ च भूमिप्रविष्टा दिव्यप्रकृष्टदशतथागतसंख्या।
तेऽपि सुरेश्वर लोकविशिष्टा दिव्यप्रभावमजानमशक्या॥ २५ ॥
रूप्य अरूप्य तथा अभूमा कामिकदिव्यं नृजा मनुजा वा।
G 168 योगिन सिद्धिं गता अथ लोके सर्वविशिष्ट तथा नरमुख्या॥ २६ ॥
सत्त्वमसौ न स विद्यति कश्चिद् यो प्रतिजानितु तस्य श्रिया मे।
एष सिरिपरिकल्पिततुल्यं मञ्जुसिरीति प्रतिजानि तु बुद्धाः॥ २७ ॥
मञ्जुश्रियं परिकल्पिततुल्यं नाममियं तथ पूर्वजिनेभिः।
एष कृता तव संज्ञितकल्पे दिव्य अनागतबुद्धमतीतैः॥ २८ ॥
नाम श्रुणि पर्यस्तव शुद्धो नास्य मनो भवि एकमनो वा।
तस्यमिमं शिवशान्ति भवेयं बोधिवरा भवि अग्रविशिष्टा॥ २९ ॥
मन्त्र अशेष तु सिद्ध भवेया उत्तम योनि गति लेभे।
उत्तमि धर्मि समाश्रयि नित्यं विघ्नविवर्जित सिद्धि भवेया॥ ३० ॥

ईप्सित मन्त्र प्रसाधयि सर्वां क्षिप्र स गच्छति बोधि ह मञ्जुम्।
लप्स्यति बोधिगतो मुनिमुख्यः गत्व निषीदति सत्त्वहितार्थम् ॥ ३१ ॥
बुद्धयि बोधि प्रवर्तयि चक्रं एष गुणो कथितो जिनमुख्यैः।
मञ्जुरिति शिरी त्वयि संस्मरि नामं अचिन्त्यगुणाः कथिता जिनमुख्यैः ॥३२॥
दर्शतु नित्यप्रभाव त्वदीयं पूर्वकसर्वगतैर्जिनमुख्यैः।
कल्प भणेया न शक्यमसंख्यैः मन्त्रशता तव शुद्धकुमार ॥ ३३ ॥
मञ्जुश्रियं तव मन्त्रचर्यं भाषित सर्वमशेषकबुद्धैः।
एष कुमार थ सर्वगता वै शासन तुभ्य रतोत्तम वीराः ॥ ३४ ॥
शुद्धावासनिषण्ण जना वै सत्त्वमशेषत ईहय सत्ता।
न क्रमि मन्त्र त्मदीय कदाचि नापि कथंचिह ये तव मन्त्रम् ॥ ३५ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पान्महायानवैपुल्यसूत्रात् चतुर्दशमः गाथापटलनिर्देशविसरः परिसमाप्तमिति ॥



G 169

१७ कर्मस्वकप्रत्ययपटलविसरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः सर्वतथागतविकुर्वितं नाम समाधिं समापद्यते स समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः शाक्यमुनेः ऊर्णाकोशाद् रश्मयो निश्चरन्ति स्म नीलपीत दातमाञ्जिष्ठस्फटिकवर्णाः । सर्वं चेदं बुद्धक्षेत्रमवभास्य सर्वलोकधात्वन्तराणि चालोकयि सर्वग्रहनक्षत्रांश्च मुहूर्तमात्रेण जिह्मीकृत्याकृष्टवान् । आकृष्टा च स्वकस्वका स्थान संनियोज्य तत्पर्षन्मण्डलं बुद्धाधिष्ठानेनाकृष्य च तत्रैव भगवतः शाक्यमुनेरूर्णाकोशा र्धीयते स्म । सर्वं च ग्रहनक्षत्रतारकाः ज्योतिषोरुपरुध्यमाना आर्ता भीता भगव शाक्यमुनिं प्रजग्मुः । कृताञ्जलयश्च तस्थुरे प्रकम्पयमाना मुहुर्मुहुश्च धरणितले प्रपतमाना

अथ भगवान् शाक्यमुनिः सर्वेषां ग्रहनक्षत्रतारकाज्योतिषाणां च बालिशो जनितबुद्धीनां च देहिनामनुग्रहार्थं वाचमुदीरयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तो मार्षाः देवसं समानुषाः । कर्म एव सत्त्वानां विभजते लोकवैचित्र्यम् । यश्च बुधानां भगवतां वज्रका शरीरतामभिनिष्पत्तिः, यश्च ससुरासुरस्य लोकस्य भ्रमत्संसाराटवीकान्तारप्रविष्टस्य लोक विचित्रशरीरतामभिनिष्पत्तिः, सर्वेदं कर्मजं शुभाशुभनिबन्धनम् । न तत्र कर्ता कारकः ईश्व प्रधानो वा पुरुषा सांख्यापसृष्टो वा प्रवर्तते किंचित् वर्जयित्वा तु कर्मजम् । सर्वकर्मप्रत्य जनितो हेतुमपेक्षते । स च हेतुप्रत्ययमपेक्षते । एवं प्रतीत्यसमुत्पत्तिप्रत्ययान्तोऽन्यमु श्लिष्यते श्लेष्माणां च भूताभिनिष्पत्ति महाभूतां जनयते । ते च महाभूताः स्कन्धान्त मनादिगतिकात् प्रतिपद्यन्ते । प्रपन्नाश्च गतिदेशान्तरं विस्तरविभागशोऽभ्युपपद्यन्ते कालान्तरोपरोधविलोमताज्ञानवह्निमीरिता कर्मोपरचितवासना अशेषमपि निर्दहन्ते । त्रि यानसमतानिःप्रपञ्चतां समतिनिर्हरन्ते । महायानदीर्घकालोपरचितकर्मस्वकं मध्यका प्रत्येकखड्गिनां स्वयंभु ज्ञानं प्रवर्तते । परघोषानुप्रवृत्तिश्रवश्रावकानां ह्रस्वकालाचिराधिरा तेनाल्पप्रवृत्तिधर्मान्तरबुद्धिरेव प्रवर्तते बालिशानां विमोहितानाम् । अथ च पुनर्विचित्रक
G 170 जनितोऽयं लोकसंनिवेशः देशवेषोपरतः शिवं निर्जरसंपदमशोकविरजकर्मलो सिद्धिमपेक्षते । विमलं मार्गविनिर्मुक्तमष्टाङ्गोपेतसुशीतलं कर्म एव कुरुते कर्म नान्यं कर्मापेक्षते

कर्माकर्मविनिर्मुक्तो निःप्रपञ्चः स तिष्ठति ।
त्रिधा यानप्रवृत्तस्तु नान्यं शान्तिमजायते ॥ १ ॥
त्रिविधैव भवेन्मन्त्रं त्रिधा कर्म प्रकीर्तिता ।
त्रिविधा फलनिष्पत्तिस्त्रिविधैव विचारणा ॥ २ ॥
विपरीतं त्रिधा कर्म त्रिविधैव प्रदृश्यते ।
कुशलं तत् त्रिविधं प्रोक्तं पुनस्तन्त्रे प्रदृश्यते ॥ ३ ॥
पुनरेवंविधं गोत्रं मन्त्राणामास्पदं शान्तम् ।
शान्तं निर्वाणगोत्रं तु बुद्धानां शुद्धमानसाम् ॥ ४ ॥

तदेव कर्म प्रत्यंशं मन्त्राङ्के संप्रकीर्तितः ।
ज्योतिषाङ्गं तथा लोके सिद्धिहेतोः प्रकल्पितम् ।
तदेव अंशं कर्मं वै प्रत्ययांशे प्रवर्तते ॥ ५ ॥
यथा हि शाली व्रीहीणामङ्कुरेण विभाव्यते ।
तथा हि सिद्धद्रव्याणां लक्षणेन विभाव्यते ॥ ६ ॥
यथा हि शुक्लो वर्णस्तु व्यवहारेण प्रकल्प्यते ।
तथा हि ज्योतिषयुक्तीनां व्यवहार्थं प्रकल्प्यते ।
सर्वतः सर्वयुक्तीनां कर्म एवं प्रशंसितम् ॥ ७ ॥
न तत्कर्म विना चिह्नैः क्वचिद्देहः (?) संस्थितः ।
चिह्नैश्च चरितैश्चापि जातकैर्गोत्रमाश्रितैः ॥ ८ ॥
विविधैः शकुनैर्नित्यं तत्कर्मं चोपलभ्यते ।
न क्वचिद् विग्रही कर्म अन्तलीनोऽन्य लक्ष्यते ॥ ९ ॥
ज्वरितः सर्वतो जन्तुर्विकारैश्चोपलक्ष्यते ।
एवं देहे समाश्रित्य कर्म दृश्यति देहिनाम् ॥ १० ॥
शुभाशुभफला चिह्ना जातकास्तु प्रकीर्तिताः ।
विविधाः शकुनयः सत्त्वा विविधा कर्मसुद्भवा ॥ ११ ॥
बल काल तथा यात्रा विविधा प्राणिनां रुता ।
शुभाशुभफला··············सदा ॥ १२ ॥ G 171
सिद्ध्यसिद्धिनिमित्तं तु प्रत्ययार्थमवेक्षते ।
निमित्तं चरितं चिह्नं प्रत्ययेति प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रत्ययं तु अपेक्षते ।
यज्ापिना सता मन्त्रे सिद्धिहेतोरपेक्षयेत् ॥ १४ ॥
कर्मस्वकान्यनन्तानि अव्यङ्गानि लक्षयेत् ।
अलक्षितं तु सर्वं वै विघ्न कर्मैः सुदारुणैः ॥ १५ ॥
तस्मात्सर्वाण्येतानि अङ्गानीति मुनेर्वचः ।
सालेन्द्रराजः सर्वज्ञो बोधिमण्डे समाविशेत् ॥ १६ ॥
मन्त्रं उदीरयामास सर्वविघ्नप्रनाशनम् ।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं तु दुःसहं च विनाशनम् ॥ १७ ॥
तस्य बोधिगतं चित्तं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
मारेण दुष्टचित्तेन कृतो विघ्नो महाभयः ॥ १८ ॥
अनिमित्तं तेन दृष्टं वै तरोर्मूले महाभयम् ।
अनिमित्तात् तस्य जायन्ते अनेकाकारभीषणाः ॥ १९ ॥
तस्य पुण्यबलाधाना चिरकालाभिलाषिणा ।
तेन मन्त्रवर्णं तस्य बलासौ भग्नाशौ नमुचिं तदा ॥ २० ॥

ऋद्धिमन्तो महावीर्या संवृतोऽसौ महाद्युतिः ।
तस्य मन्त्रप्रभावेन लिप्सेऽहं बोधिमुत्तमाम् ॥ २१ ॥
स एव वक्ष्यते मन्त्रः दुर्निमित्तोपघातनम् ।
दुःस्वप्नं दुःसहं चैव दुष्टसत्त्वनिवारणम् ॥ २२ ॥
शृण्वन्तु देवसंघा वै ग्रहनक्षत्रज्योतिषाम् ।
मन्त्रराट् भाषितः पूर्वं शालेन्द्रेण जिनेन वै ॥ २३ ॥
निग्रहार्थं च दुष्टानां ग्रहनक्षत्रतारकाम् ।
भूतानां चैव सर्वेषां सौम्यचित्तां प्रबोधनाम् ॥ २४ ॥
G 172 शृण्वन्तु भूतगणाः सर्वे ये केचित् पृथिवीचराः ।
अपदा बहुपदा वापि द्विपदा वापि चतुःपदाः ।
सर्वे संक्षपतः सत्त्वा ये केचित् त्रिषु स्थावराः ॥ २५ ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ।

ॐ ख ख खाहि खाहि । हुम् हुम् । ज्वल ज्वल । प्रज्वल प्रज्वल । तिष्ठ तिष्ठ । ष्णीः । फट् फट् स्वाहा । एष बुद्धाध्युषितो मन्त्रः ज्वालोष्णीषेति प्रकीर्तितः ॥

यानि कर्मसहस्राणि अशीति नव पञ्च च ।
करोति विविधां कर्मां सर्वमङ्गलसंमतः ।
दुःस्वप्नान् दुर्निमित्तांस्तु सकृज्जापेन नाशयेत् ॥ २६ ॥
करोति अपरां कर्मां सर्वमन्त्रेषु स्वामिनः ।
वशिता सर्वसत्त्वानां बुद्धोऽयं प्रभवो गुरुः ॥ २७ ॥
स्मरणादस्य मन्त्रस्य सर्वे विघ्नाः प्रणश्यिरे ।
देवातिदेवसंबुद्ध इत्युक्त्वा मुनिसत्तमः ॥ २८ ॥
मुहूर्तं तस्थुरे तूष्णीं यावत् कालमुदीक्षयेत् ।
तस्थुरे देवसंघाश्च शुद्धावासोपरिस्तदा ॥ २९ ॥
सर्वेषां देवमुख्यानां नक्षत्रग्रहतारकाम् ।
समयं जग्मु ते भीता उष्णीषो मन्त्रभाषिताः ॥ ३० ॥
तुल्यवीर्यो महावीर्य उष्णीषाख्यो महाप्रभः ।
शतपञ्चचतुष्कां वा सप्ताष्टा नवतिस्तथा ॥ ३१ ॥
द्विषष्टि पञ्च सप्तान्या उष्णीषेन्द्राः प्रकीर्तिताः ।
एतत्संख्यमसंख्येया राजानो मूर्धजा शुभा ।
तेष तुल्यो अयं मन्त्रः जिनमूर्धजजा इति ॥ ३२ ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात् पञ्चदशमः कर्मस्वकप्रत्ययपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

१८ ग्रहनक्षत्रादिलक्षणपटलविसरः ।

अथ भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य तं च पर्षन्मण्डलं मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयमन्त्रचर्याभियुक्तस्य बोधिसत्त्व- G 173 चर्यापरिपूरणार्थाभिप्रायस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य क्रियाकालक्रमणयोगानुकूलयोगचर्यानुकूलनक्षत्रव्यवहारानुवर्तनक्रमं सर्वमन्त्रचर्यार्थसाधनौपयिकपटलविसरं भाषिष्ये । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु ॥

एवमुक्ते भगवता मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत्—आश्चर्यं भगवन् यावद् भाषितं परमेणानुग्रहेण अनुहीता बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः सर्वबोधिसत्त्वचर्यानुवर्तिनां सर्वमन्त्रचर्यार्थपरिपूरकाणां सत्त्वानाम् । तद्वदतु भगवानस्माकमनुकम्पार्थम् । एवमुक्तो मञ्जुश्रीः कुमारभूतः कृताञ्जलिपुटो भगवन्तमवलोकयमानः तूष्णीमेवमवस्थितोऽभूत् ॥

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिर्लोकानुग्रहकाम्यया ।
वज्रेन्द्रवचनं श्रेष्ठं हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ १ ॥
इदं भो भद्रमुखाः श्रेष्ठं नक्षत्रं हिताहितम् ।
सर्वमन्त्रार्थचर्यायां युक्तायुक्ताः समाहिताः ॥ २ ॥
सिद्धमर्थं तथा पूर्णमनुकूलं चापि कथ्यते ।
सिद्धिहेतोस्तथा मन्त्री मन्त्रं तत्रोपलक्षयेत् ॥ ३ ॥
शुचेऽहनि शुचौ देशे शौचाचाररते सदा ।
प्रशस्ते तिथिनक्षत्रे शुक्लपक्षे सदा शुचिः ॥ ४ ॥
स्नातो ध्यायी व्रती मन्त्री मन्त्रतन्त्रार्थकोविदः ।
होमजाप तथा सिद्धिं कुर्यात्कर्म सविस्तरम् ॥ ५ ॥
रेवती फल्गुनी चित्रा मघा पुष्यार्थसाधिका ।
अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूला चापि वर्णिता ॥ ६ ॥
आषाढावुभौ भाद्रपदौ सदा सिद्ध्यर्थ श्रवणा ।
सिद्ध्यर्थं श्रवणा श्रेष्ठा धनिष्ठा चापि वर्णिता ॥ ७ ॥
सिद्धिहेतोस्तथा मन्त्रे रोहिण्या मृगशिरास्तथा । G 174
अश्विन्यौ पुनर्वसूयुक्ते नक्षत्रौ स्वातिरेवतौ ॥ ८ ॥
प्रशस्ता गणिता ह्येते विद्यासाधनतत्पराः ।
एतेषामिन्दुवारं तु विधिरेवमुदाहृतम् ॥ ९ ॥
शैलैः शान्तिकं शेषकाले ततो विद्यापुष्ट्यर्थं चापि तत्परम् ।
मध्याह्ने दिनकरे कर्म चन्द्रे चापि गर्हितम् ॥ १० ॥

अर्धरात्रे स्थिते चन्द्रे कुर्यात् कर्माभिचारुकम्।
तृतीये याममनुप्राप्ते पुष्टिहेतोः समारभेत्॥ ११॥
पुष्ट्यर्थं साधयेन्मन्त्रं भोगहेतोस्तदा नृषु।
उदयन्तं भास्करं विद्यात् सर्वकर्मेषु युक्तितः॥ १२॥
रक्ताभावे तथा भानोः कुर्यात् कर्माभिचारुकम्।
शेषकाले ततो विद्यात् पूर्वाह्णे रविमण्डले॥ १३॥
युगमात्रोत्थिते तथा नित्यं कुर्याच्छान्तिककर्मणि।
ततो द्विहस्तितो ज्ञेयं प्रमाणे चैव गभस्तिने॥ १४॥
कुर्याच्छान्तिककर्माणि शान्तिकेष्वपि योजिते।
मन्त्रमुद्रैस्तथा श्रेष्ठैर्जिनाग्रकुलसंभवैः॥ १५॥
मध्याह्ने सवितरि प्राप्ते कुर्यादाभिचारुकम्।
अतःपरेण आकृष्येद् वश्यार्थं च योजितम्॥ १६॥
युगमात्रावनते भानौ अपराह्णोपगते तथा।
कुर्यात् सर्वकर्माणि क्षुद्रार्थे च योजिताः॥ १७॥
ततःपरेण काले ते सूर्यं धानमते तदा।
वश्याकर्षण सर्वाणि कुर्यात् कर्माणि धीमतः॥ १८॥
अस्तं याते तदा भानौ रक्ताकारसमप्रभे।
कुर्यात् तानि कर्माणि रक्ताभाससमोदिताम्॥ १९॥
कान्तकामाः सदा कुर्यात् कर्मैश्चापि रागिभिः।
कुलत्रयेऽपि शान्त्यं (?) कथितं कर्म निन्दितम्॥ २०॥
G 175 कन्यार्थी कारयेत् क्षिप्रं कर्म कालसमोदितम्।
प्रथमे यामे तदा कर्म साधयेत् सत्त्वयोजितः॥ २१॥
अतःपरेण सर्वत्र सर्वकर्माणि कारयेत्।
अर्धरात्रे तदा चन्द्रो ग्रहः पश्येद् वसुंधराम्॥ २२॥
प्रविशेत् पश्चिमां देशां तस्मिन् काले समोदिताम्।
ततः परेण ग्रहः पश्ये सूर्यो सनराधिपाम्॥ २३॥
प्रसवे दक्षिणां देशां सिद्ध्यर्थी मन्त्रयोजितः।
मर्त्येऽपि लभते क्षिप्रं कार्यसिद्धिं तु पुष्कलाम्॥ २४॥
अजापी जापिनश्चापि·········लभते फलम्।
यथेष्टां कुरुते सिद्धिं जापिनस्यापि धीमते॥ २५॥
तृतीये यामे सदा गच्छेद् दिशं चापि यत्नतः।
दक्षिणपश्चिमान्मध्ये व्रजेत् तत्र फलोद्भवी॥ २६॥

उदयन्ते तथा भानौ प्रभवोदुत्तरां दिशम्।
ततःपरेण कालान्ते युगमात्रोत्थिते रवौ ॥ २७ ॥
गच्छेद् विदिशं तत्रज्ञः सिद्धिकामफलोद्भवाम्।
पश्चिमोत्तरयोर्मध्यं स देशः परिकीर्तितः ॥ २८ ॥
अजापी जापिनस्यापि युक्तिरुक्ता तथागतैः।
निर्दिष्टा कार्यनिष्पत्तौ सिद्धमन्त्रस्य वा तदा ॥ २९ ॥
मध्याह्ने पूर्वतो गच्छेद् दिशांश्चैव सर्वतः।
ततः परेण कर्माणि················कारयेत् ॥ ३० ॥
अर्धरात्रे तदा चन्द्रो ग्रहः पश्येद् वसुंधराम्।
कालान्ते विदिशान्ते मुनि········ बोधिना ॥ ३१ ॥
पूर्वमुत्तरयोर्मध्ये सदशः सिद्धि लिप्सताम्।
ततःपरेण दिशः प्रोक्ताः पूर्वदक्षिणयोः सदा ॥ ३२ ॥
कथितः कालभेदश्च दिशश्चैव विदिक्षु वा।
अपराह्णे तथा भानोः प्रविशे दैत्यमालयम् ॥ ३३ ॥
सुरङ्गेषु च सर्वेषु सत्त्वेषु कूपवासिषु। G 176
सर्वथा श्रीमुखेष्वेव सर्वत्र पातालोद्भववासिनाम् ॥ ३४ ॥
ततःपरेण यामान्ते रक्ताङ्गे ग्रहमण्डले।
प्रविशेद् यक्षयोनीनां निलयांश्चैव सुकश्मलाम् ॥ ३५ ॥
व्रजेत् परिगृह्यां क्षिप्रकालेष्वेव नियोजितम्।
उत्तिष्ठन्तं साधयेन्मन्त्रं प्रसादाश्रयसंभवाम् ॥ ३६ ॥
आरुरुक्ष पुराग्रं वै असिद्धिः सिद्धिरेव वा।
आरुरोह स्वकावासं प्रासादाग्रं तु मानवी ॥ ३७ ॥
सिध्यन्ते चिन्तिता तस्य कालेष्वेव सुयोजिताः।
मन्त्रसिद्धिः सदा तस्य मन्त्रतन्त्रविशारदैः ॥ ३८ ॥
दिशे गमनेनैव सिद्धिमात्रां समुच्यते।
अमन्त्री मानवः क्षिप्रं लभते फलसंभवाम् ॥ ३९ ॥
ईप्सितां साधयेदर्थां ग्राम्यांश्चैव च मानुषाम्।
काला निगमतः प्रोक्तं दिशांश्चैव समन्ततः ॥ ४० ॥
प्रसवेत् सर्वतो मन्त्री कालेष्वेह देशेषु च।
अश्विनी भरणिसंयुक्ता कृत्तिका मृगशिरास्तथा ॥ ४१ ॥
एतेष्वेव हि सर्वत्र नक्षत्रेष्वेव योजिता।
शान्तिकं कर्म निर्दिष्टं फलहेतुसमोदयम् ॥ ४२ ॥

रोहिण्यां साधयेदर्थां पुष्टिकामः सदा जापी।
आर्द्रायां कारयेत् कर्म वश्याकर्षणहेतुभिः ॥ ४३ ॥
पुनर्वस्वो तथा पुष्ये साधयेद्धनसंपदाम्।
विचित्राभरणवस्त्रांश्च अञ्जनं समनःशिलाम् ॥ ४४ ॥
रोचनां गैरिकांश्चैव आज्यं चैव सुपूजितम्।
वश्याकर्षणमेधां च पुष्येषु च नियोजयेत् ॥ ४५ ॥
आश्लेषायां तथा कर्मा आकृष्टाप्रहरणादयम्।
मघासु कुर्यात्तथा कर्म राज्यमर्थाभिवार्धनम् ॥ ४६ ॥
G 177 फल्गुन्यावुभौ श्रेष्ठौ आरुरोह स्ववाहनम्।
विचित्राणि कर्माणि हस्तेनैव विधीयते ॥ ४७ ॥
स्वात्यां विशाखयोः कुर्याद् द्रव्यकर्मसमुद्भवम्।
अनुराधा तथा ज्येष्ठा उभौ नक्षत्रयोजितौ ॥ ४८ ॥
सिद्धिकामः सदा कुर्याद् राज्यकामस्तथा सदा।
भौम्यार्थसंपदांश्चापि विविधां योनिजां पराम् ॥ ४९ ॥
साधयेद् धननिष्पात्तिं नक्षत्रेष्वेव योजिताः।
उभौ ह्याषाढौ तथा प्रोक्तौ जन्तुकर्मसु योजयेत्।
धातुजेष्वपि सर्वत्र दृश्यते सिद्धि मानवे ॥ ५० ॥
मूले मूलकर्माणि ओषध्यां त्रिविधोद्भवाम्।
साधयेन्मन्त्रतन्त्रज्ञो मूलनक्षत्रयोजिताम् ॥ ५१ ॥
श्रवणेष्वेव सर्वत्र कुर्याच्छ्रावण्यवर्णिताम्।
निर्वाणप्रापकं धर्मं प्रव्रज्यां चापि योजयेत् ॥ ५२ ॥
धनिष्ठेषु सदा कुर्यात् धूपपुष्करिसाधनाम्।
वृक्षां वाहनां चैव वस्त्रांश्चैव विधानवित् ॥ ५३ ॥
कुर्यात् शतभिषक् कर्म हिंसाप्राणिषु निर्दयाम्।
प्राणापरोधसत्त्वेषु कुत्सितां तां विवर्जयेत् ॥ ५४ ॥
उभौ भद्रपदौ श्रेष्ठौ भूम्यामर्थनिवारकौ।
संपदा कुरुते क्षिप्रं कर्मेष्वेव हि योजितौ ॥ ५५ ॥
..................सेनापत्यार्थसाधने।
राज्ये धननिष्पत्तिभूषणाभरणादिषु ॥ ५६ ॥
नानाधातुगणांश्चैव......यथेप्सिताम्।
साधयेन्मन्त्रतन्त्रज्ञ उभौ नक्षत्रयोजितौ ॥ ५७ ॥

रेवत्यां साधयेद् द्रव्यं नानाधातुसमुद्भवम् ।
साधयेन्मन्त्रकर्माणि नानारत्नसमुद्भवम् ।
सर्वोदकानि सर्वाणि साधयेन्मन्त्रवित् सदा ॥ ५८ ॥
अश्विन्यश्च भरण्यश्च कृत्तिकानां तथांशकम् । G 178
एतदङ्गारके प्रोक्तं क्षेत्रं चैव नभस्तले ॥ ५९ ॥
तस्यावार तथा कीर्तिं सौम्यां साधये च तदा महीम् ।
कृत्तिकं त्र्यंशकं विद्यात् रोहिणीमृगशिरो परौ ॥ ६० ॥
एतद् भार्गवे विद्यात् क्षेत्रं चैव नभस्तले ।
मृगशिरांशं तथा चैवं आर्द्रायां च सुयोजिताः ॥ ६१ ॥
पुनर्वसुश्च तदा विद्याच्छान्त्यर्थं क्षेत्रमुद्भवम् ।
पुष्याङ्गं तथाश्लेषं मघं चैव निबोधितम् ॥ ६२ ॥
एतद्भानोः सदा क्षेत्रं कुर्यादाभिचारुकम् ।
फल्गुन्या तु उभौ साङ्गौ ग्रहचिह्नितचिह्नितौ ॥ ६३ ॥
इन्दुवारं तथा विन्द्यात् क्षेत्रं तस्य निशाकरे ।
हस्तचित्रौ तथा सांशौ कुर्यात् कर्मातिमानितम् ॥ ६४ ॥
बुधस्थाने तु उद्दिष्टः सर्वकर्मप्रसाधकः ।
स्वात्या विशाखसंयुक्ता सांशा वापि कीर्तिता ॥ ६५ ॥
द्वितीयं क्षेत्र निर्दिष्टं दिवाकरस्य न संशयः ।
अनुराधा ज्येष्ठसांशौ तौ निर्दिष्टौ पृथिवीसुतौ ॥ ६६ ॥
द्वितीयमङ्गारकक्षेत्रं वृश्चिकातसमुद्भवः ।
सर्वधर्मार्थसंयुक्तः कर्मयुक्तार्थ साधयेत् ॥ ६७ ॥
वर्जयेद् धीमतो हिंसां प्राणहिंसाभिचारुकाम् ।
साधयेद् विविधानर्थां कर्मांश्चैव सुपुष्कलाम् ॥ ६८ ॥
मूलाषाढौ तथा प्रोक्तौ उभौ सांशत्रिकोद्भवौ ।
एतद् बृहस्पतेः क्षेत्रं नभःस्थं दृश्यते भुवि ॥ ६९ ॥
साधयेत् कर्म युक्तात्मा विधानाच्च निवारकाम् ।
महाभोगार्थसंपत्ती सफलांश्चैव फलोद्भवाम् ॥ ७० ॥
धन्विनि राशिनिर्दिष्टो कुर्यात् सर्वसंपदाम् ।
श्रवणा धनिष्ठ निर्दिष्टा शतभिषा सममोदिता ॥ ७१ ॥
एतत् शनिश्चरक्षेत्रं द्वितीयं कथितं पुरा । G 179
राश्य मकरनिर्दिष्टा सर्वानर्थनिवारकः ॥ ७२ ॥

तत्रस्थो यदि कर्माणि आरभेत विचक्षणः ।
सिध्यन्त्ययत्नान्मन्त्रज्ञस्तस्मिं काले प्रयोजिता ॥ ७३ ॥
राश्यः कुम्भनिर्दिष्टा प्रोक्ता मुनिभिः पुरा ।
उभौ भद्रपदौ प्रख्यौ रेवती च यशस्विनी ॥ ७४ ॥
अङ्गहीना तथा पूर्वा शुभेन्द्रग्रहचिह्निताः ।
प्रशस्ताः शोभनाः सर्वे तत् क्षेत्रं गुरवे [त]दा ॥ ७५ ॥
मीनराशि समासेन कथितं लोकचिह्नितैः ।
ग्रहः प्रधानः सर्वत्र तिर्यञ्मुक्ता सर्वकर्मसु ॥ ७६ ॥
सप्तैते कथिता ह्यग्रमानुषाणां गणागमे ।
अनन्ता ग्रहमुख्यास्तु अनन्ता ग्रहकुत्सिताः ।
मध्यस्था कथिता ह्येते मानुष्याणां हिताहिता ॥ ७७ ॥ इति ।
तेषां सत्त्वप्रयोगेषु निर्दिष्टा मन्त्रजापिनाम् ।
सत्त्वासत्त्वं तथा कालं नियमं चैव कीर्तितम् ॥ ७८ ॥
नाग्रहो धर्मसंयुक्तं न कर्मो ग्रहचिह्नितम् ।
संयोगग्रहनक्षत्रो मन्त्रसिद्धिसुदाहृता ॥ ७९ ॥
न सिद्धिः कालमिति ज्ञेया नासिद्धिः कालमुच्यते ।
सिद्ध्यसिद्धावुभावेतौ सङ्गाकालतः क्रमा ।
विपरीतरता धर्मा न धर्मा धर्मचारिणः ॥ ८० ॥
धर्मकर्मसमायोगा संयुक्तः साधयिष्यति ।
न दैवात् कर्ममुक्तस्तु सिद्धिर्न सिद्धिर्दैवमुद्भवा ॥ ८१ ॥
तत्कर्मश्च सिद्धिश्च दैवमेव नियोजयेत् ।
न दैवात् कर्ममुक्तस्तु दैवं कर्ममितःपरम् ॥ ८२ ॥
कर्मकं तु मनः प्रोक्तं विधिनिर्दिष्टहेतुना ।
ग्रहा कर्ममुक्तास्तु नक्षत्राश्च सुपूजिताः ॥ ८३ ॥
G 180 तस्मात् कर्म समं तेषां कर्मार्थं सिद्धिरिष्यते ।
कथिता गणना ह्येते कर्म एव सदैवतम् ॥ ८४ ॥
न ग्रहा राशयो योनिरक्षताश्च सुपूजिताः ।
कर्म एष सदा विद्यात् विधिमुक्ता समोदिता ॥ ८५ ॥
फलोद्भवं च सदा कर्म युक्तिर्मन्त्रेषु भाषिता ।
तस्मात् युक्तितः कर्म न ग्रहो नापि राश्यजा ॥ ८६ ॥
नक्षत्राणां तिथीनां च गतियोनि समासतः ।
कालप्रमाणनियमश्च न परं कर्मयोः सदा ॥ ८७ ॥

तस्मात् तन्त्रवित् सर्वं धर्म एव नियोजयेत् ।
अनन्तग्रहाणां लोके राशयो विविधा परे ॥ ८८ ॥
तिथयो गणिता संख्ये क्षेत्रश्चैव नियोक्तृभिः ।
तस्मात्संक्षेपतो वक्ष्ये कथ्यमानं निबोधताम् ॥ ८९ ॥
मेषो वृषो मिथुनश्च कर्कटश्च सुयोजितः ।
सिंहकन्यतुलं चैव वृश्चिकधन्विनौ परौ ॥ ९० ॥
मकरः कुम्भ इति ज्ञेयौ मीनवानर योऽपरे ।
मानुषो देवराशिश्च अपरो गरुडापरौ ॥ ९१ ॥
यक्षराक्षसा राश्यो तिर्यक्प्रेतशुभौ परे ।
नरका राशिनिर्दिष्टा अनन्ता गतियोनिजा ॥ ९२ ॥
निर्दिष्टा राशयः सर्वे नानाधातुसमुद्भवाः ।
असंख्येया मुनिभिः प्रोक्ता राशयो बहुधा परे ॥ ९३ ॥
तेषां गतिचिह्नानि सत्त्वयोनिसमाश्रयम् ।
कथितं कथयिष्येऽहं अनन्तां नक्षत्रां ग्रहाम् ।
क्षेत्रा च बहुधा प्रोक्ता नानाग्रहनिषेविता ॥ ९४ ॥ इति ।

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रादार्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् षोडशपटलविसराद् द्वितीयो ग्रहनक्षत्रलक्षणक्षेत्रज्योतिषज्ञानपरिवर्तपटलविसरः ॥



१९ ज्योतिषज्ञानपटलविसरः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः तृतीयमपि ज्योतिषज्ञाननियमपरिवर्तं भाषिष्ये पूर्वकैः सम्यक्संबुद्धैर्भाषितं चाभ्यनुमोदितं च त्वदीयमन्त्रतन्त्रार्थकल्पितम् । शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु ॥

एवमुक्ते भगवता शाक्यमुनिना मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवान् तेनाञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदवोचत्—तत्साधु भगवां भाषतु ज्योतिषज्ञानपटलविसरम् । तद्भविष्यति सत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय देवमनुष्याणां सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टानां च सत्त्वानामनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ अभिप्रस्थितानां च । उपायकौशल्यमन्त्रचर्यां सुखेन साधयिष्यन्ति । सर्वसत्त्वानुकूलं योगविधानकर्मानुकूलं कालनियमनिष्यन्दितकर्मस्वकतां नक्षत्रवारग्रहयोनिक्षेत्रराशिसमोदयाम् । तद्भविष्यति सुखसाधनोपायं मन्त्रानुवर्तनं सुखविपाकम् । तद्भविष्यति ते बोधिसत्त्वानां विष्यन्दितविकुर्वणऋद्ध्यधिष्ठानम् ॥

एवमुक्ते मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन, अथ भगवान् मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्—साधु साधु मञ्जुश्रीः यस्तथागतमेतमर्थं परिपृच्छसे । तेन हि शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्ये सर्वसत्त्वानामर्थाय । एवमुक्ते मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवतश्चरणयोर्निपत्य निषण्णो धर्मश्रवणाय ॥

अथ भगवान् सर्वावन्तं शुद्धावासभवनमाभया स्फुरित्वा सर्वबुद्धावलोकनद्योतनीं नाम समाधिं समापद्यते स्म । समन्तरसमापन्नस्य भगवतः कायान्नीलपीतावदातमाञ्जिष्ठ-
G 182 स्फटिकवर्णादयो रश्मयो निश्चरन्ति स्म । निर्गत्य च सत्त्वानां बुद्धक्षेत्रां अवभास्य सर्वाणि च ग्रहनक्षत्रयोनिसमाश्रयराशितारां भवनान्यवभास्य गगनतलगतां नरकतिर्यक्प्रेतदेवभवनमनुष्यसर्वसत्त्वभवनानि चावभास्य सर्वदुःखानि च प्रतिप्रस्रभ्य सर्वसत्त्वानां पुनरेव भगवतः शाक्यमुनेः कायेऽन्तर्धीयन्ते स्म ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिस्तस्मात् समाधेर्व्युत्थाय सर्वां तां नक्षत्रग्रहराशिदेवसंघानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तः सर्वनक्षत्रदेवसंघाः । यो ह्यस्मिन् धर्मविनये मन्त्रचर्यायां समनुप्रविष्ट इह कल्पविसरे तत्साधयेत् सर्वमन्त्राणां सर्वद्रव्यकर्मविधानादिषु, न भवद्भिस्तत्र विघ्नं कर्तव्यम् । सर्वैरेव संनिपतितैः रक्षाविधानसांनिध्यं कथयितव्यम् । यो ह्येनं समयमतिक्रमेत्, तस्य यमान्तकः क्रोधराजा सर्वनक्षत्रग्रहाणां तत्क्षणादेवमपर्यन्तलोकधातुस्थितानां ससुतानां सबान्धवां सपार्षदानानयति स्म, दमयति स्म, समनुशासयति स्म, भगवतः समीपमुपनामयति स्म, सर्वेषां च मूर्धनि स्थित्वा पादेनाक्रम्य विविधानि क्रूरकर्मऋद्धिप्रातिहार्याणि दर्शयति स्म बुद्धाधिष्ठानेन, प्राणैर्वियोजयति स्म, समये च स्थापयति स्म, विकृतरूपमात्मानं दर्शयति स्म, अन्ते सर्वभूतयक्षराक्षसनक्षत्रग्रहराशयो निसत्त्वगरुडमरुत

महोरगगणाः सर्वे भीतास्त्रस्ताः, थरथरायमानाः महाविक्रोशं कुर्वाणाः भगवतः पादयोर्निपत्य प्रकम्पमाना एवमाहुः—परित्रायस्व भगवन्, परित्रायस्व । सुगत अनाथाः स्म, अत्राणाः स्म, महाक्रोधराजभयभीताः । जीवितं नो भगवां समनुप्रयच्छास्माकम् । इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं भूताः प्रवेपमानगात्राः ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः तां नक्षत्रग्रहसंघातांश्च यक्षराक्षसप्रेतपिशाचमातरगणानामन्त्रयते स्म—मा भैष्ट मार्षाः । मा भैष्ट मार्षाः । नास्ति तथागतानामन्तिके उपसंक्रान्तानां भयं वा मरणं वा । सर्वदुःखा निवार्यो हि मार्षाः बुद्धं शरणं गच्छेद् द्विपदानामग्र्यम् । धर्मं शरणं गच्छेद् विरागाणामग्र्यम् । संघं शरणं गच्छेद् गणानामग्र्यम् । न तस्य भवति लोमहर्षम् । वाञ्छन्ति तत्त्वो वा (?) कः पुनर्वादो मृत्युभयम् । सर्वभयदुःखेभ्यो मुक्त एव द्रष्टव्यः । सर्वसांसारिकं भयं न कदाचिद् विद्यते । दुःखोपशमं शान्ति निज्वरं सनियतं G 183 बोधिपरायणं पदमवाप्नुयादिति ॥

अथ तत्क्षणादेव भगवता तेषां सर्वदुःखानि ऋद्ध्या प्रतिप्रस्रब्धानीति । यमान्तकश्च क्रोधराजा भगवतश्चरणयोर्निपत्य, मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य समीपे संनिषण्णो धर्मश्रवणाय । सर्वे च ते ग्रहनक्षत्रगणाः सर्वदुःखानि च प्रतिप्रस्रभ्यन्ते स्म । सर्वश्च केतवो प्रशान्ता निषण्णाश्च धर्मश्रवणाय । स्वस्थीभूता एकाग्रमनसो भगवन्तं व्यवलोकमाना विस्मयोत्फुल्लनयना औद्बिल्यमनसश्च संवृत्ता अभूवन् ॥

अथ भगवता लोकानुकम्पार्थं तथा तथा धर्मदेशना कृता चतुरार्यसत्यसंप्रयुक्ता, यथा यथा तैः सत्त्वैः कैश्चित् सत्यानि दृष्टानि, कैश्चिदर्हत्त्वं कृतम्, कैश्चित् प्रत्येकबोधः, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, सर्वे च नियता व्याकृता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ, सर्वैश्च पिथितान्यपायदुर्गतिविनिपातानि, देवमनुष्योपपत्तौ द्वाराण्युत्पादितानि, स्वर्गार्गलमपावृतम्, सर्वे च समयमधितिष्ठन्ति ॥

अथ भगवन् शाक्यमुनिस्तेषामनुशयं ज्ञात्वा विनयकालसमयमनन्तरमेव तेषां विनीतां सत्त्वां ज्ञात्वा धर्मं भाषते स्म—

अरिदुःखसमाक्रान्तं दोषजं विविधाश्रयम् ।
अभावो देवगणाः सर्वे पूज्यन्ते शासने इह ॥ १ ॥
आरभध्वं परं वीर्यं बोधिसोपानहेतुकम् ।
प्राप्नुयादेव संघाताः शान्तनिर्ज्वरमाल्यम् ॥ २ ॥
अशोकं विरजं क्षेमं निर्वाणं वापि नैष्ठिकम् ।
निर्मलं गगनतुल्याख्यं अभावं तु स्वभाविकम् ॥ ३ ॥
परं प्राप्स्यथानिन्दितं दिव्यं सुजुष्टमनावृतम् ।
अनित्यदुःखशून्यार्थमनात्मं तु समोदितम् ।
भावयन्तो द्विवा सर्वं प्राप्स्यन्ते च नैष्ठिकम् ॥ ४ ॥ इति ।

मन्त्रतन्त्राभिधानेन चर्या चैव सुखोदया ।
कथिता जिनवरैः श्रेष्ठा मन्त्रसिद्धिरुदाहृता ॥ ५ ॥
उपायं सत्त्वानां अग्रे नियोगेनैव धीमतैः ।
G 184 कथिता मन्त्रसिद्धिस्तु फलकाले समोदये ॥ ६ ॥
विचित्रं कर्मणां जाति विचित्रेव *योजिता ।
विचित्रा कर्मतः सिद्धिर्विचित्रं कर्मयोनिजम् ॥ ७ ॥
विचित्रा चित्ररूपेण मन्त्रैरेभिर्नियोजिता ।
विचित्रार्थाः कर्मविस्तरा विचित्रं कर्म उच्यते ॥ ८ ॥
कर्म चिन्त्या तथा चित्रं अचिन्त्यं चापि चिन्तितम् ।
तस्मात् प्रारम्भमन्त्री मन्त्रचित्रेषु पुष्कलाम् ॥ ९ ॥
राशयः कथिताश्चित्रा तेषु जाता नराः सदा ।
सदेवासुरमुख्यास्तु विविधाः प्राणिविहंगमाः ॥ १० ॥
तेषां च यानि चिह्नानि तानि सिद्धिषु योजयेत् ।
मेषराशौ तथा जातः मनुजा वा दिवौकसा ॥ ११ ॥
वह्वपत्यो बहुभाष्यो सुरूपश्चापि जायते ।
वणिक्शीली तथा शूरो मनुजः स्त्रीषु वर्णितः ॥ १२ ॥
वक्रो लुब्धचित्तश्च भूपतिर्गृहसेविनः ।
तत्रस्थश्चन्द्रमा प्रोक्तः सर्वकर्मे प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥
आदित्यो यदि दृश्येत मेषराशिसमाश्रितः ।
तत्र कर्म सदा सिद्धिं क्रूरकर्मसुयोजिताम् ॥ १४ ॥
यानं गमनं चैव आसनं शयनं सदा ।
न भजेत् तन्त्रमन्त्रज्ञो विरुद्धा सर्वयोगिभिः ।
तत्र जातः सदा मर्त्यो मन्त्रं देयाभिचारुकम् ॥ १५ ॥
वृषराशौ तदा जातो मनुजो भोगवान् सदा ।
स्त्रीषु कान्तः सदा लुब्धः धर्माधर्मविचारकः ॥ १६ ॥
ग्राम्यसेवी सदाध्यक्षो देवराज्ञानि बोधताम् ।
तत्रस्थश्चन्द्रमा जातो धार्मिकोऽसौ सुरेश्वरः ॥ १७ ॥
भवेत्तस्य चित्तं वै राज्यमाश्रयता सदा ।
तस्य मन्त्रा सदा देया चैत्या जिनभाषितः ॥ १८ ॥
G 185 तेन चन्द्रार्थयुक्तेन राशयोऽर्थनिबोधिताः ।
गमनागमनं कर्म श्मश्रुकर्म च युक्तिमान् ॥ १९ ॥

आचरेद् ग्रहकर्माणि न कुर्याद्याभिचारुकम् ।
सर्वकर्मसमुद्योगं मन्त्रसिद्धिसुखोदयम् ॥ २० ॥
आलिखेन्मण्डलादीनां बुद्धबिम्बांश्च कारयेत् ।
सिद्धद्रव्यसुरा श्रेष्ठा साध्यमाना दिवौकसा ।
सिध्यन्ते मन्त्रिभिर्युक्ता नक्षत्रेष्वेव राशिषु ॥ २१ ॥
मिथुनायां यदा जातो मानुषोऽथ दिवौकसः ।
तेषां च गतिचिह्नानि सिद्धिकालं निबोधताम् ॥ २२ ॥
आढ्यो उद्युक्तचित्तश्च शठो मूर्खोऽथ जायते ।
तत्रस्थो यदि विख्यातः नक्षत्रा निशि भूषणम् ॥ २३ ॥
ततः कान्तो भवेन्मर्त्यो बन्धूनां वल्लभः सदा ।
धनाढ्यो युक्तिमन्तश्च महेशाख्योऽथ जायते ॥ २४ ॥
शेषैर्ग्रहैः क्रूरैस्तु विविधैश्चापि कुत्सितैः ।
जायते धूर्त रागार्तः व्याधिभिश्च समाकुलः ॥ २५ ॥
न दद्युस्तस्य मन्त्रां वै शान्तिकं पौष्टिकं परम् ।
क्षुद्रां कश्मलांश्चैव क्रव्यादां पिशिताशिनाम् ।
क्रूरैर्ग्रहमुख्यैस्तु दर्शनाश्च भवेत्सदा ॥ २६ ॥
एतेषां मन्त्रसिद्ध्यर्थं क्रूरकर्मेषु योजये ।
निषिद्धं गमनं तत्र अग्रपञ्चविवर्जितम् ॥ २७ ॥
गमनागमनयोस्तत्र न सिद्धिः सर्वकर्मसु ।
क्षुद्रकर्म तथा तेषां दद्युः सर्वतो जनाः ॥ २८ ॥
सिताख्यौ ग्रहमुख्यानां तौ पातकौ द्वे परेऽपरौ ।
चतुर्था ग्रहमुख्यानां दर्शनं श्रेयसोद्भवम् ॥ २९ ॥
सितौ रक्तौ उभौ कृष्णौ दर्शनं क्रूरकर्मिणाम् ।
सितौ शुक्रेन्दुमुख्यौ तौ पीतकौ बुधबृहस्पतौ ॥ ३० ॥
अर्काङ्गारकश्चैव रक्तौ तौ दिशिभूमिजौ । G 186
षण्डो राहो तथा कृष्णौ विचित्राः शेषका ग्रहाः ॥ ३१ ॥
नानाग्रहगृहा प्रोक्ता विचित्रा धातुसुभूषिताः ।
विचित्राकृतयः केचिद् विचित्रप्रहरणोद्यताः ॥ ३२ ॥
नानाधातुगणाध्यक्षा नानाऋषिपुरातनैः ।
शोभ्यन्ते ग्रहाणां सर्वं अप्सराभिश्च किन्नरैः ॥ ३३ ॥
गगनस्था वर्णतो याता गतियोनिविदिता ।
अन्तरीक्षचराः सर्वे नक्षत्रैः सहचारिणः ॥ ३४ ॥

व्योम्नि धानसमायाता विचित्रा गतिचेष्टिता।
महर्द्धिका प्रभावतः गत्या रूपवेषसमाश्रयात् ॥ ३५ ॥
कथिता मुनिवरैः सर्वैः कर्मतत्त्वार्थयोजिताः।
चतुर्थेऽहनि संयुक्ताश्चतुःसत्त्वनियोजिताः ॥ ३६ ॥
चत्वारो ग्रहवरा प्रोक्ता सितो पीतोऽर्थसाधकाः।
शेषाः क्रूरकर्मसु रक्तौ कृष्णौ च योजितौ ॥ ३७ ॥
नाचरेत् सर्वकर्माणि शान्तिकानि विशेषतः।
कृष्णरक्तौ ग्रहौ ह्येतौ तिथौ चापि चतुर्दशी ॥ ३८ ॥
नाचरेत् सर्वकार्याणि क्षुद्रकर्माणि साधयेत्।
मानुषे साधयेदर्थां गणनामे शुभोदयाम् ॥ ३९ ॥
तैरेव कारयेत् क्षिप्रं आसनं शयनं सदा।
मन्दिरं च विशेद्धीमां सर्वदुर्गाणि कारयेत् ॥ ४० ॥
कर्कटराशिजातस्थो दृश्यते मनुजः शुभः।
शास्ता च भवेत् क्षिप्रं राजानश्चक्रवर्तिनः ॥ ४१ ॥
भवन्ते जन्मिनो बोधो पूर्वकर्मसमुद्भवैः।
शुक्रेन्द्रग्रहमुख्यानां दर्शनं चैव जायताम् ॥ ४२ ॥
शुभेऽहनि शुभे देशे बोधिसत्त्व अजायत।
पुष्यनक्षत्रयोगेन जायन्ते मरुपूजिताः ॥ ४३ ॥
G 187 बुद्धास्त्रैलोक्यगुरवोऽन्येऽपि महर्द्धिकाः।
राज्यकर्ता निकृन्ता च बहुप्राणिनराधिपाः ॥ ४४ ॥
जायन्ते विविधा लोके शन्यर्काङ्गारचिह्निताः।
केचिज्जनभूयिष्ठा मर्त्याः कर्मपरायणाः ॥ ४५ ॥
जायन्ते विविधाचारा पुष्ये जाता पि ते सदा।
तस्मात्कर्मफलं विद्धि गतिमात्मानचेष्टिता ॥ ४६ ॥
केवलं तु सदाचारा ग्रहकर्मनियोजिता।
लोकधर्मानपेक्षेह निर्दिशन्ति तथा जिनाः ॥ ४७ ॥
कर्मजं लोकवैचित्र्यं लोकधातुसमाधिजम्।
भाजनं सर्वलोकानामाश्रयोद्भवसंभवम् ॥ ४८ ॥
विचित्रं कथितं लोके सुराः श्रेष्ठां निबोधताम्।
कर्मजं हि पुराप्यासीत् कथयामास वत्सलः ॥ ४९ ॥
सत्त्वसाधारणो धीमान् बोधिसत्त्वो महार्द्धिकः।
मञ्जुघोषस्तदा वव्रे सत्त्वानां हितकाम्यया ॥ ५० ॥

कर्मजं कथितं सर्वं मन्त्रतन्त्र सविस्तरम् ।
एषो वः सुराः सर्वे धर्मो ह्येकेन यः सदा ॥ ५१ ॥
कर्कटो राशिजातस्य दद्यान्मन्त्रं तु पौष्टिकम् ।
ततः परेण सिंहस्य राशिर्दृश्यति मानवाम् ॥ ५२ ॥
सिंहजातो भवेन्मर्त्ये अशूनो लुब्ध एव तु ।
स्त्रीशठो मांसभोजी स्याद् गिरिकन्दरवासिनः ॥ ५३ ॥
सेनापत्यं तथा नित्यं कारयेच्च वसुंधराम् ।
महीपालो महाध्यक्षः क्रूरकर्मा सदा शुचिः ॥ ५४ ॥
कृतघ्नः कृतमन्त्रश्च पापकर्मसदारतः ।
मित्रद्रोही सदा लुब्धः शठश्चैवमजायत ॥ ५५ ॥
ग्रहैश्चापि सदा दृष्टा सितैः पीतैश्च धीमतैः ।
जायते धार्मिकस्तत्र कृष्णैश्चापि शठः स्मृतः ॥ ५६ ॥
तत्र कर्म समुद्दिष्टं पौष्टिकं सिद्धिलिप्सिताम् । G 188
उत्तिष्ठं खेचरं चापि अतिमानसमोद्गतम् ॥ ५७ ॥
नान्यं कर्म समुद्वेतं (?) समानं चापि वर्जयेत् ।
ततः परेण सिंहस्य कन्यराशिरिति स्मृतः ॥ ५८ ॥
तत्र जातो भवेद्धूर्तस्तस्करः कृपणः शठः ।
स्त्रीषु कान्तः सदा लुब्धः क्रूरः साहसिकः सदा ॥ ५९ ॥
मूर्खश्च परदारी च स्तब्धो मानोन्नतः सदा ।
शुभनक्षत्रवारेण शुभदृष्टिग्रहोदितैः ॥ ६० ॥
पीतशुक्लैर्ग्रहैर्दृष्टा जायन्ते च महाधनाः ।
शुद्धमन्त्रः सदा धीमान् शुचिवृत्तिसमाश्रये ॥ ६१ ॥
संभूता मन्त्रतन्त्राश्च साधयेत महीतले ।
क्षिप्रमर्थकरा ये तु पुष्ट्यर्था ये तु कीर्तिताः ॥ ६२ ॥
साधयेन्मन्त्रवित्सर्वां जिनाब्जीकुलयोरपि ।
जिनेन्द्रमुख्या ये मन्त्रा बहुधा चापि कीर्तिता ॥ ६३ ॥
साधयेन्मन्त्रवित्सर्वां राश्यर्थेष्वेव जातिषु ।
ततः परेण भवेद् राशिः तुलानामनि कीर्तिता ॥ ६४ ॥
प्रसिद्धां कर्मभूयिष्ठां तन्नासेवेत तदाश्रिताम् ।
तुलायां जायते धीमान् मन्त्रसिद्धिषु योजितः ॥ ६५ ॥
न कारयेत् साधनां सर्वां उत्तिष्ठं भूनिबन्धनाम् ।
सर्वमन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं गतियोनिषु आचरेत् ॥ ६६ ॥

धूर्तः कृपणो लुब्धः मत्सरी चैव जायते ।
तुलायां राशिजातस्थो दृश्यते च सदा रतः ॥ ६७ ॥
तं कुर्यात् सदा मन्त्री तस्मि राशौ समाश्रितः ।
यं न चाचक्षते लोके भूमिरर्थार्थसंपदाम् ॥ ६८ ॥
ग्रहमुख्ये तदा जातो पीतैः शुक्लैश्च सर्वतः ।
न भजेन्मन्त्रसिद्धिं च यत्नरक्षार्थसंपदे ॥ ६९ ॥
G 189 क्षणमात्रे तथा सर्वं साधयन्तं नियोजितैः ।
शुभैर्ग्रहैर्यदा दृष्टाः पीतैः शुक्लैश्च सर्वतः ॥ ७० ॥
महात्मा जायते शूरः धार्मिकोऽथ नराधिपः ।
क्रूरतैर्ग्रहैर्दृष्टः शन्यर्काङ्गारसिंहजैः ॥ ८० ॥
तुलायां जातराश्यर्थः मत्सरो भवते पुमां ।
बहुरोगो दरिद्रश्च व्याधिरोगार्तसमुद्भवम् ॥ ८१ ॥
प्रचण्डः सर्वकर्मेषु क्रूरः साहसिकः सदा ।
न भजेच्छान्तिककर्माणि जिनतत्त्वाङ्गभाषितम् ॥ ८२ ॥
रौद्रं कुरुते कर्मां वज्रिणे समुदयोदिताम् ।
आभिचारुककर्माणि नानायुद्धकृतानि तु ॥ ८३ ॥
तस्मिन् राशौ सदा तत्र कुले तत्र समुद्भवे ।
कुत्सिता जिनवरैः कर्म सिद्धिमायाति तत्र तु ॥ ८४ ॥
प्रधानगुणविस्तारं प्रभावं चापि वर्जयेत् ।
प्रवासगमनं चैव नाचरेद्दिशि माशुजम् ॥ ८५ ॥
मन्दरं वाहनं चापि सत्त्वधातुकृताकृतम् ।
नाचरेत् सर्वकर्माणि तस्मिन् राशौ दिवाकरे ॥ ८६ ॥
वृश्चिकात्तु समुत्पादे सत्त्वयोनि समाश्रयेत् ।
भवते लिङ्गवैचित्र्यं कथ्यमानं निबोधताम् ॥ ८७ ॥
तीव्रः साहसिकः क्रूरो दुर्धर्षो मानदर्पितः ।
वक्रो लुब्धस्तथा मर्त्यो जायते वसुधातले ॥ ८८ ॥
प्राज्ञो धार्मिको विद्वान् वक्रश्चैव दुरासदः ।
स्त्रीषु कान्तो भवेन्मर्त्यः कृतज्ञो दृढपराक्रमः ॥ ८९ ॥
तन्त्रमन्त्रसदोद्युक्तः सेवायां गुरुपूजकः ।
दर्शनं ग्रहमुख्यानां शुक्रचन्द्रबुधो गुरुः ॥ ९० ॥
प्रशस्तं श्रेयसं लक्ष्यं आयुरारोग्यवर्धनम् ।
तेषां दर्शनसिद्ध्यर्थं मन्त्रिणामूर्ध्वसाधने ॥ ९१ ॥

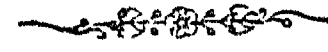
शन्यर्काङ्गारकौ राहुः पश्यति तं नरं यदा । G 190
क्रूरः साहसिको वक्रो जायते रौद्रकर्मकृत् ॥ ९२ ॥
तेषां च वज्रिणे मन्त्राः सिध्यन्ते क्रूरकर्मिणाम् ।
नागच्छेत् सर्वतो मर्त्यो दिनेष्वेव सुकुत्सितैः ॥ ९३ ॥
ततः परेण धन्वाख्यं राशिमुक्तं तथागतैः ।
जायन्ते बहुधा मर्त्या गतिदेशसमाश्रयात् ॥ ९४ ॥
अन्ते च शोभनाः सर्वे बाल्याद् दुःखभागिनः ।
यथाविभागनिर्देशा आयुषः परिकीर्तिताः ॥ ९५ ॥
तथा धनार्थनिष्पत्तिं वाचिष्ये अर्थसंपदाम् ।
स्वयोनिं नाशयेन्नित्यं परयोनिं विवर्धयेत् ॥ ९६ ॥
वहुपत्नो बहुभाष्य बहुरागरतिप्रियः ।
असंयतो भवेन्मर्त्यो धनूराशिसमाश्रयात् ॥ ९७ ॥
प्रभुः श्रीमान् सदा दक्षो धार्मिको वापि जायते ।
दर्शनं यदि मुख्यानां ग्रहाणां सितपीतकाम् ॥ ९८ ॥
तेषामाचरेन्मन्त्रां नानाप्रहरणोद्भवाम् । ।
नानाशस्त्रफला वापि वस्त्रभूषणवाहना ॥ ९९ ॥
नानाधातुकृतांश्चैव नानाधातुफलोद्भवाम् ।
सिध्यन्ते तस्य मन्त्रं वै मुनिजुष्टाङ्गसंभवा ॥ १०० ॥
ततः परेण कर्माणि सर्वद्रव्यैस्तु कारयेत् ।
प्रसवेत् सर्वतो मन्त्री गतिदेशनिरत्ययाम् ॥ १०१ ॥
स्वालयं वाहनं चापि स्वसुतां च निवेशनम् ।
भेषजं सर्वमिष्टं तु महार्थं चोर्ध्वगामिनम् ॥ १०२ ॥
सिद्धये तस्य मुक्तात्मा क्षिप्रमेव करे स्थिता ।
ततः परेण राश्यायां मकरस्थो दृश्यते समः ॥ १०३ ॥
तेषु जातः सदा मर्त्यः लिङ्गैरेतैर्हि लक्षयेत् ।
मातृभक्तो पितृभक्तश्च ख्यातो बहुमतः प्रभुः ॥ १०४ ॥
दुःसहः सर्वदुःखानामाढ्योऽपि धनसंचकः । G 191
कृपणो लुब्धचित्तश्च शठश्चैवमजायत ॥ १०५ ॥
शुक्रेन्द्रग्रहदृष्टानां सर्वसंपत्ति जायते ।
कृष्णरक्तग्रहा ये तु क्रूरकर्मा तु पूर्ववत् ॥ १०६ ॥
नागच्छेत् तत्र मन्त्रज्ञः विदिशां चैव सर्वतः ।
दुष्टां साधयेत् कर्मां अनिष्टं चैव वर्जयेत् ॥ १०७ ॥

गमनागमनं चैव उत्तरां दिशिमाश्रयेत् ।
महासमुद्रार्थगतां द्रव्यां नौयानमाविशेत् ॥ १०८ ॥
प्राप्नुयात् संपदं तत्र निम्नमाध्यक्षदेशजम् ।
ततः परेण कुम्भेति मकरात् समुदितात् परः ॥ १०९ ॥
कुम्भराशिसमाख्येया सत्त्वजाताश्रया सदा ।
बहुधा बहुलिङ्गास्तु कथिता ते नरोत्तमैः ॥ ११० ॥
विचित्रा चित्ररूपास्तु वर्णजातिसमाश्रयात् ।
श्यामवर्णा विशालाक्षा जायन्ते बहुमता नराः ॥ १११ ॥
मैथुनाशक्तवस्ते तु ग्राम्यधर्मार्थचिन्तकाः ।
कृतज्ञा धार्मिका प्रोक्ता मन्त्रजाः कुम्भराशयः ॥ ११२ ॥
शुक्लपीता ग्रहा दृष्टा लोकेऽस्मिन् संप्रपूजिताः ।
कृष्णरक्ता ग्रहा ये तु दृष्टजातिसमोदया ॥ ११३ ॥
व्यङ्गा कृपणयो मूर्खा चपलाः तस्करावहाः ।
बहुरोगा दरिद्राश्च जायन्ते मानवाः सदा ॥ ११४ ॥
तेषां न कारयेत् कर्म उत्तमं मुनिपूजितम् ।
अङ्गार्थसंभवा येन दद्युः * सर्वकर्मसु ॥ ११५ ॥
न गच्छेत् प्राप्य तीरान्तं अतो नैवापि वर्णिनम् ।
कुर्यात् वज्रकुले कर्म मन्त्रसिद्धिलिलिप्सया ॥ ११६ ॥
क्रूरं क्रूरकर्मान्तं स्फट् हुंकारभूषितम् ।
मन्त्रं साधयेच्चात्र क्रोधराजसुयोजितम् ।
G 192 सिध्यन्ते पापकर्मास्तु रौद्रकर्मास्तु योजिता ॥ ११७ ॥
ततः परेण मीनेति राशिरुक्ता तथागतैः ।
तत्रस्था मानवाः सर्वे दृश्यन्ते बहुलिङ्गिनः ॥ ११८ ॥
मीनराशिसमाजाता रूपाण्येतानि समुद्भवैः ।
प्रभुर्मानधीः श्रीमां भोगसंपच्छतान्वितः ।
प्रभवः सर्वलोकानां जायतेऽसौ महीतले ॥ ११९ ॥
क्षिप्रमर्थकरो धीमां नराधिपोऽथ अजायत ।
शुक्रेन्दुदर्शनाज्जातः भवेल्लोके नरोत्तमः ॥ १२० ॥
दर्शनाद् बुधजीवानां धनाढ्योऽयमजायत ।
प्रांशुमूर्तिर्विशालाक्षः स्त्रीषु कान्तो भवेत्सदा ॥ १२१ ॥
बहुमित्रो नराध्यक्षः कुटिलश्चैवमजायत ।
बहुमित्रोऽथ शुक्रश्च जायते मित्रवत्सलः ॥ १२२ ॥

ततः परेण क्रूरो वै ग्रहमुख्यो दिवाकरः ।
पश्यते यद्यसौ मर्त्यान् शनिराहुस्तु भूमिजा ॥ १२३ ॥
तदा कष्टमिति ध्वजः क्रूरश्चैव जायते ।
पूर्ववत् कथिता ह्येते ग्रहाः कृष्णान्तशुक्लयोः ॥ १२४ ॥
कुर्यात् सर्वकर्माणि मीनराशिसमाश्रयाः ।
तत्रस्थश्चन्द्रमां पश्येत् सर्वांश्चैव साधयेत् ॥ १२५ ॥
अतः परेण राशीनां गजमानुषमानुषाम् ।
गन्धर्वा राक्षसा गरुडाश्चापि पन्नगाः ॥ १२६ ॥
तेषां स्वरूपतो जातिगतिदेशमचिह्नितः ।
मना उद्भवस्तेषां लिङ्गैरेतैस्तु लक्षयेत् ॥ १२७ ॥
यथा सत्त्वप्रकृतिश्च तथा लिङ्गं विभाष्यते ।
स्वमन्त्रा भाषिता ह्येतैः तेषां चैव नियोजयेत् ॥ १२८ ॥
राशयः कथिता लोके द्वादशैव गणोद्भवाः ।
गणिता ग्रहमुख्यैस्तु नक्षत्रैस्तु नियोजिताः ॥ १२९ ॥
संक्षेपात् कथिता ह्येते कथ्यमानातिविस्तरा । G 193
मानुषाणां तदा चक्रे नक्षत्रे ग्रहमण्डलैः ॥ १३० ॥
अत ऊर्ध्वं तु देवानां ऋषीणां च महर्द्धिकम् ।
ज्ञानं प्रवर्तते तत्र एतन्मानुषचेष्टितम् ॥ १३१ ॥
अचिन्त्या बुद्धधर्माणां ज्ञानदृष्टि नरोत्तमाम् ।
साधयेत् सर्वमन्त्रज्ञः राशिजातौ समुद्भवा ॥ १३२ ॥
क्रूरनक्षत्रां तिथयो नित्यं शुक्लपक्षे समाचरेत् ।
सिद्धिस्तेषु सदा प्रोक्ता कृष्णे कृष्णकर्मिणाम् ॥ १३३ ॥
ग्रहैः सितैः पीतैः दिनैश्चैव समाचरेत् ।
शुक्लपूर्णगता चन्द्रे पौर्णमास्येषु योजयेत् ॥ १३४ ॥
प्रतिपच्छुक्लपक्षे तु तृतीये चैव रोचयेत् ।
पञ्चमी सप्तमी चैव दशम्येकादशोद्भवाम् ॥ १३५ ॥
त्रयोदश्यां तथा शुक्ले सर्वकर्माणि आचरेत् ।
पुष्ट्यर्थं शान्तियोगं च गमनागमनं शुभाशुभम् ॥ १३६ ॥
आलेख्या मन्त्रतन्त्रस्थं नृत्यगीतरतिः सदा ।
भूषणं यानमावासं क्षुरकर्मं च धीमता ॥ १३७ ॥
प्रयोक्ता सर्वतो विद्वान् मर्त्यैश्चापि श्रीमतैः ।
भोगसंपत्सदासिद्धिरिष्टसत्त्वसमागमम् ॥ १३८ ॥

निर्दिष्टं मुनिमुख्यैस्तु अन्यकर्माणि अन्यतः।
धनार्थिभिः श्रीमतैः क्षिप्रं कुर्यान्मन्त्रार्थसाधनम् ॥ १३९ ॥
× × × × × × चन्द्रशुक्रगुरुर्बुधैः।
वारैर्ग्रहवरैर्दिव्यैः सुपूजितैः शुचिमङ्गलैः ॥ १४० ॥
तिथियुक्तैः समासेन निर्दिष्टैश्चापि भावयेत्।
घोरैर्घोररूपैस्तु ग्रहैर्मन्त्रैस्तिथिभिः सदा ॥ १४१ ॥
G 194 आचरेद् रौद्रकर्माणि कृष्णे कृष्णकर्मिणाम्।
गतिदेशसमासं च युक्तिमन्त्रार्थसाधने ॥ १४२ ॥
ग्रहा राश्यर्थनक्षत्रा तिथयश्च समोदिता।
कर्मसिद्धिप्रभावं च नियमं सर्वकर्मसु ॥ १४३ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात्
सप्तदशमपटलविसरात् तृतीयो ज्योतिषज्ञानपटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥



२० निमित्तज्ञानमहोत्पादपटलविसरः । G 195

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीस्त्वदीयकल्पविसरे सर्वभयोत्पादनिमित्तनिर्घातगतानि आश्चर्यनिमित्तलिङ्गानि कथयन्ति । शुभाशुभं सुभिक्षदुर्भिक्षपरराष्ट्रगमनं अनावृष्टिमतिवृष्टिं सत्त्वानां सूचयन्ति । महासाधनादिषु यो विघ्नं कारयति, ततो साधकेन च मन्तव्यम् । साध्यासाध्यानि च तस्मिन् देशे कर्तव्यमकर्तव्येति ज्ञातव्यम् । ततो यदि न शोभनानि निमित्तानि भवन्ति, तस्माद् देशादपक्रम्य अन्यत्र गत्वा साधयितव्यानि । अथ चेच्छोभनानि निमित्तानि भवन्ति, तस्मिन्नेव देशे साधयितव्यानि, तत्रैव च स्थातव्यम् । एवं ज्ञात्वा साधकेन मन्त्रचर्याभियुक्तेन कर्तव्यमकर्तव्यमिति मन्त्रचर्यायां निमित्तानि ज्ञात्वा शुभाशुभं बोद्धव्यमिति ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवतः पादयोर्निपत्य पुनरप्येवमाह—तत्साधु भगवान् देशयतु निमित्तज्ञानपरिवर्तविसरम् । तद्भविष्यति सर्वसत्त्वानां हिताय सुखाय सर्वमन्त्रचर्याभियुक्तानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां शुभाशुभफलोदयनिमित्तलिङ्गानि । यत्ते सर्वसत्त्वा मन्त्रचर्यानुप्रविष्टा साध्यासाध्यं कालनिमित्तं ज्ञात्वा स्थातव्यं प्रक्रमितव्यमिति पश्यन्ते ॥

एवमुक्ते भगवान् शाक्यमुनिः मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—तेन हि मञ्जुश्रीः शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहं ते—

आदौ तावद् भवेल्लिङ्गमुत्पातानां समोदयम् ।
महद्भयमनादिस्थममानुषाणां तु चेष्टितम् ॥ १ ॥
सर्वे च ग्रहनक्षत्राः कूष्माण्डा ग्रहराक्षसाः ।
मातरा देवताश्चैव सर्वे प्रेता महर्द्धिकाः ॥ २ ॥
दर्शयन्ति तदा लिङ्गं महोत्पातानां च संभवे ।
आदिमन्तं ततो मध्यं अशुभं चैव ते सदा ॥ ३ ॥
भूमिस्थितिर्नाशकं च कथयन्ति विविधाश्रयात् । G 196
सर्वमानुषसत्त्वेषु भूतलेऽस्मिन्निबोधताम् ॥ ४ ॥
कबन्धा विविधाश्चापि पक्षिणश्च समाकुलाः ।
दृश्यन्ते सर्वतो लोके तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ५ ॥
रात्रौ शक्रायुधं दृष्ट्वा धनुश्चापि विशेषतः ।
शरनाराचपाशाश्च विविधा प्रहरणोद्भवाः ।
दृश्यन्ते गगनाद् रात्रौ तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ६ ॥
चन्द्रबिम्बे यदाकाशे दृश्यन्ते विकृतरूपिणः ।
कबन्धा पुत्तलाश्चैव नृत्यन्ता गगनालये ।
सुषिरं छिद्रमित्याहुर्दृश्यते शशिमण्डले ॥ ७ ॥

पुरुषा उच्चनीचाश्च युध्यन्तां शशिमण्डले ।
दृश्येयुर्मानुषे लोके तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ८ ॥
विविधाः प्राणहराश्चापि नानाभूतगणास्तथा ।
नृत्यमानाश्च युध्येयुस्तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ९ ॥
मण्डलाकारसंकाशं दृश्यस्थः शशिमण्डलम् ।
तादृशं तु ततो दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ १० ॥
युध्यन्तां सर्वसंख्यांश्च दृश्यन्ते शशिमण्डले ।
एकस्तत्र पतेत्क्षिप्रं यस्य यो दिशिमाश्रितः ।
तं देवदिशिमित्याहुः भूपतिर्मृयते ध्रुवम् ॥ ११ ॥
तादृशं दृष्ट्वा सत्त्वाख्यं विविधाकारसंभवम् ।
अचिरात् तत्र भयात् क्षिप्रं तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ १२ ॥
शरनाराचशक्तिश्च दृष्ट्वा तत्र निशाकरे ।
तस्करोपद्रवं क्षिप्रं शस्त्रसंपातजं भयम् ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा विकृतरूपास्तु नानासत्त्वसमाश्रयाम् ।
रात्रौ भूतले चन्द्रे तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ १४ ॥
कृष्णवर्णा विहङ्गास्तु शुक्ला चैव सपीतलाः ।
G 197 रक्ताश्चैव तथा धूम्राः स्वभावविकृताश्रयाः ॥ १५ ॥
ते वै विवर्णवर्णास्तु दृश्यन्ते भूतले यदा ।
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ १६ ॥
शुक्ला पक्षा भवेत्कृष्णा कृष्णा पक्षा तथा सिता ।
दृश्यन्ते विकृतरूपास्तु विहङ्गाश्चैव महीतले ।
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ १७ ॥
मृगक्रोष्टुकगणाः सर्वे प्रविशेयुर्ग्राममालयम् ।
श्वापदा व्यालिनो धूर्ता म्लेच्छोपद्रवतस्कराः ॥ १८ ॥
भवेयुर्भयकृतं तेषां दुर्भिक्षं वापि वर्णितम् ।
विविधा भूतगणाश्चापि दृश्यन्ते तु महीतले ॥ १९ ॥
विकृताविकृतरूपिण्यः यक्षराक्षसकिन्नराः ।
दिवा रात्रौ तथा नित्यं नृत्यन्ते च महीतले ।
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ २० ॥
नरनारीकुमारांश्च क्रन्देयुर्भृशं भूतले ।
रात्रौ दिवा तथा नित्यं व्याधिस्तत्र मिहागमः ॥ २१ ॥

उरगा विकृतबीभत्सा दृश्यन्ते वसुधातले ।
गृहे रथ्ये तथा भिन्ध्या मन्दिरे वृक्षसंनिधौ ।
सर्वतो व्याप्य तिष्ठन्ते भवेत्तत्र महाभयम् ॥ २२ ॥
महामार्योपसर्गं च विषविस्फोटमूर्छनम् ।
दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गं च भवेत्तत्र जनागमे ॥ २३ ॥
विकृताविकृतबीभत्सा पक्षिणः श्वानक्रोष्टुका ।
ऊर्ध्वतुण्डा यदाकाशे रवन्ते विकृताननाः ॥ २४ ॥
अर्धरात्रौ तु मध्याह्ने उभे मर्त्ये च कुत्सिता ।
भवेन्महाभयं क्षिप्रं परचक्रसमागमम् ॥ २५ ॥
दुर्भिक्षमतिवृष्टिश्च भवेत्तत्र समासतः ।
मासमेकेन सप्ताहान्महादुःखोपपीडिताः ॥ २६ ॥
अन्योन्यं भूतले वासा मानुषा तस्कराग्निना ।
महाशस्त्रभयं तत्र तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ २७ ॥ G 198
गगनस्था सर्वतो मेघा दृश्यन्ते च वक्रसंभवा ।
स्फुटाकाराथ रौद्राश्च तीव्रगर्जननादिनः ॥ २८ ॥
सप्तस्फुटा द्विश्चतुर्वा च दृश्यन्ते उरगाश्रयाः ।
सुघोरा घोरवक्राश्च दृश्यन्ते गगनाश्रयाः ॥ २९ ॥
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा अचिरात् तत्र महाभयम् ।
महामार्योपद्रवं च ज्वरो व्याधिः रोगाश्चैव महाभयाः ॥ ३० ॥
सद्यःप्राणहराः क्षिप्रं विषाः स्थावरजङ्गमाः ।
उत्सृजन्ति तदा मेघां तदा वृष्टिं च दारुणम् ॥ ३१ ॥
नश्यन्ते भूतयस्तत्र अन्योन्यानिरपेक्षिणः ।
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ३२ ॥
महाप्रपातदुर्भिक्षमुल्कापातान् समन्ततः ।
धूमकेतोश्च निर्घातान् दिशादाहान् कथयिष्यामि ते ॥ ३३ ॥
शृणु प्रपातं दृश्यस्थं उल्किनां चैव जायते ।
रात्रौ दिवा समन्ता वै उल्कापातो भवेद् यदि ।
महाभयमनारोग्यं ज्ञात्वा मन्त्री व्रजेत् ततः ॥ ३४ ॥
महोल्काज्वलमानाया दिशं गच्छेत वै सदा ।
तादृशं नृपतीनां भङ्गः यतो वक्रं ततो भयम् ॥ ३५ ॥
विदिशां पतते उल्कां समन्ताद्वै निशि सर्वदा ।
तत्र देशे महाव्याधिः दुर्भिक्षनृपघातनम् ॥ ३६ ॥

दिवारात्रौ यदा उल्का पतते वै समन्ततः।
तादृशं च भवेन्मृत्युर्नृपतीनां च मन्त्रिणाम्।
तं बुद्ध्वा मन्त्रजापी स्यात् ज्ञात्वा तस्माद्देशादपक्रमेत्॥ ३७॥
उल्किनः प्रपते युद्धाद् यतो पुच्छस्ततो भयम्।
अन्या वा दृश्यते भङ्गो नृपतीनां रणसंकटे॥ ३८॥
महाक्षोभं तदा चक्रे महोल्काग्रहचिह्निते।
G 199 समन्तात्पतते क्षिप्रं तस्माद्देशादपक्रमेत्॥ ३९॥
यादृशं उल्कमावेश्य आश्रयात् पतते सदा।
तां दिशं व्याधिदुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गं च जायते॥ ४०॥
गमनागमनयोर्मृत्युस्तारकाणां तदाश्रयात्।
योऽयं नक्षत्रजातस्थः तस्य मृत्युभयं भवेत्॥ ४१॥
द्विरात्रान्नश्यते जन्तुर्नक्षत्रा पतते भुवि।
नराधिपानां च सर्वेषामेष एव विधिर्भवेत्॥ ४२॥
योऽयं पश्यते देवः इष्टं × ष्वेदमाकुलम्।
रात्रौ दर्शनेऽवश्यं प्रतिमायां दिवा तदा।
तस्य मृत्युभयं विद्यान्मासैः षड्भिस्तदा स्मृतः॥ ४३॥
प्रतिमा चलिता यस्य देवतेष्टस्य जन्तुनः।
हसते रुदते चैव तं देशं वर्जयेत् सदा॥ ४४॥
प्रतिमा पतते चैव विशीर्यते वा स्वकात्मना।
तस्य भङ्गं भवेत् क्षिप्रं गृहाश्चैव नराधिपे।
कुर्वन्ति विविधाकारां लिङ्गां विविधरूपिणाम्॥ ४५॥
प्रतिमा यदि दृश्यस्था देवायतनमन्दिरे।
तादृशं तु ततो दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत्॥ ४६॥
समन्तात् सर्वतो मन्त्री पश्येयुः प्रतिमां सदा।
विकृतरूपबीभत्सां नानाविकृतमाश्रिताम्॥ ४७॥
स्वयं वा पश्यते मन्त्री अन्यैर्वा दृश्यते भुवि।
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा तस्माद् देशादपक्रमेत्॥ ४८॥
अर्धरात्रे तथा यामे तृतीयेऽर्धे यदि दृश्यते।
तारकाणां महावृष्टिं तस्माद् देशादपक्रमेत्॥ ४९॥
चतुर्थभागे तथा रात्रौ तारका क्षिप्रगामिनः।
खद्योत इव गच्छन्ति तं देशं सर्वतो न भजेत्॥ ५०॥

वसुधातलेन गच्छन्ति तस्मि देशे ततो व्रजेत् । G 200
यत्र संश्रयते वृष्टि यत्र गच्छन्ति तारकाः ॥ ५१ ॥
तं देशं मा विशेत् क्षिप्रं यत्र वृष्टिमहद्भयम् ।
तं देशं नश्यते क्षिप्रं परचक्रभयानकम् ॥ ५२ ॥
दुर्भिक्षं शस्त्रसंपातं तं विद्यात् देशमाकुलम् ।
चोरोरगव्यालानां म्लेच्छवूर्तसमाकुलम् ॥ ५३ ॥
तं देशं नराधिपा नित्यं प्रवसेत् सर्वतोदिशम् ।
विलुप्तराज्यो विभ्रष्टपरचक्रसमाश्रितः ॥ ५४ ॥
वर्षा अष्ट एकं च तं देशं तत्र केचिरं पुनः ।
प्राप्नुयात् तदा राज्यं देशागमनं पुनः ॥ ५५ ॥
ज्ञात्वा उपक्रमात् सर्वां विक्रियां क्रियायोजितान् ।
क्रियाकालं समासेन तं जापी आरभेत्सदा ॥ ५६ ॥
उल्कापात महान्तो वै दृश्यते यदि किञ्चितम् ।
समन्तान्नित्यकालं च तस्माद् देशादपक्रमेत् ॥ ५७ ॥
उल्किनो बहुधाकारा दृश्यन्ते विविधाश्रयाः ।
विचित्रा चित्ररूपिण्यः यक्षिण्यश्च महर्द्धिकाः ॥ ५८ ॥
ज्वलन्तां वक्त्रदेशाभ्यां क्रव्यादांश्च पिशाचिकाः ।
तस्मात् परीक्षयेदुल्कां लिङ्गैरेभिः समोदितान् ॥ ५९ ॥
अतिदीर्घ तथा ह्रस्वो मध्याश्चैव प्रकीर्तितः ।
चतुर्हस्ता द्विहस्ता वा हस्तमात्रप्रमाणतः ॥ ६० ॥
दृश्यन्ते भूतले मर्त्यैराश्रयन्ते महोदयाः ।
महाप्राणाः स्वरूपाश्च देवतैपा महर्द्धिका ॥ ६१ ॥
विचित्राकाररूपास्तु द्भुतास्ते च दिवौकसान् ।
देवासुरेऽथ संग्रामे वर्तमाने महद्भये ॥ ६२ ॥
शक्रमाज्ञामिह क्षिप्रं गच्छन्तेऽथ भूतले ।
जम्बूद्वीपगतान् मर्त्यान् नराध्यक्षान् नराधिपान् ॥ ६३ ॥
पश्यन्ते सर्वलोकांश्च धर्माधर्मविचारकाम् । G 201
मातृज्ञा पितृभक्ताश्च कुले ज्येष्ठापचायकाः ॥ ६४ ॥
महामन्त्रधरा सर्वे जापिनो यत्रजाम्बूद्वीपगता नराः ।
तदा देवा महोत्सवापि जायन्ते तदा दैत्यां कुर्वन्ते च पराभवम् ॥ ६५ ॥
धर्मिष्ठा भूतले मर्त्या जाम्बूद्वीपनिवासिनः ।
महोत्साहं तदा काले तृदशाध्यक्षोऽथ वासवः ॥ ६६ ॥

तदा भग्नव्रतोत्साहा असुरा भिन्नमानसा ।
अभिमानं लभेतां येन पाताले तेन ताः ॥ ६७ ॥
प्रविशन्ते स्वपुरं तत्र भिन्नमाना कृतव्यथाः ।
महाप्रमोदं तदा देवा लेभिरे तृदशेश्वराः ॥ ६८ ॥
तदा जम्बूद्वीपेऽथ सर्वत्र सुभिक्षमारोग्यते जनाः ।
स्वस्था च सर्वतो जग्मुः नरनारी गतव्यथा ॥ ६९ ॥
तस्मात् सर्वप्रकारेण बुद्धे भक्तिः कुर्थे जनाः ।
धर्मे संघे च भूयिष्ठे गतद्वन्द्वे निरामये ॥ ७० ॥
पूजां कुरुथ मर्त्यातो लिलिप्सः सर्वसंपदाम् ।
मन्नचर्यां तदा चक्रे वक्त्रे वाचां शुभोदयाम् ॥ ७१ ॥
दशकर्म यथालोकां संप्रतिष्ठा निरोपगाम् ।
कुरुध्वं जनसंपातान् त्रिधा शुद्धेन मानसाः ॥ ७२ ॥
विरतिः प्राणिवधे नित्यं अदत्तं वापि नाचरेत् ।
न भजेदङ्गनामन्यां अगम्यपरिवर्जिताम् ॥ ७३ ॥
संतुष्टिः स्वेन धर्मेण संकुरुध्व जनसत्तमाः ।
मृषावादं न भाषेत विपाकं यद्यदुःखदम् ॥ ७४ ॥
नाभाषेत् कर्कशां वाणीं सर्वसत्त्वार्थदुःखदाम् ।
यत्किंचित् क्लेशसंयुक्तां वाचादर्थविवर्जिताम् ॥ ७५ ॥
शून्या धर्मार्थसंयुक्तामभिन्नां नाचरेत् सदा ।
पैशुन्यं वर्जयेन्नित्यं वचनं परभेदने ॥ ७६ ॥
G 202 क्लिष्टचित्तस्य सर्वत्र निषिद्धं मुनिपुंगवैः ।
अभिध्यं नाचरेत् कर्म परसत्त्वोपकारिणः ॥ ७७ ॥
यो यस्य सदा मृतं न कुर्यात् द्वेषसमुत्थितम् ।
व्यापादं वर्जयेत् कर्म सत्त्वद्वेषमनास्पदम् ॥ ७८ ॥
उपघातं परसत्त्वस्य न कुर्यात् सर्वतो जनाः ।
मिथ्यादृष्टिं न कुर्यात्तां सर्वधर्मविनाशिनीम् ॥ ७९ ॥
नास्ति दत्तं हुतं चैव न चेष्टं मन्नसाधने ।
न सिध्यन्ते तथा मन्त्राः सर्वतन्त्रार्थकल्पिताः ॥ ८० ॥
न बुद्धानां सुखोत्पत्तिः न शान्तं निर्वाणमिष्यते ।
न चापि चर्या तथा बोधो प्रत्येकार्थसंभवाम् ॥ ८१ ॥
न चार्हत्त्वं भुवि लोकेऽस्मिं नापि धर्मेषु जायते ।
स्वभावैषा विविधा लोके अर्थादर्थ तथातथा ॥ ८२ ॥

एवमाद्यां अनेकांश्च विविधाकारचिह्नितान् ।
न तां भजेत् सदा मन्त्री पापदृष्टिसमुद्भवाम् ॥ ८३ ॥
दशकर्म यथा प्रोक्ता विरला स्वर्गोपगा स्मृताः ।
भावना चैव फलं तेषां निर्वाणामर्थसंभवाम् ॥ ८४ ॥
अनिष्टा तु भवे लोके तदा सुराणां पराजयम् ।
दैत्यानां वर्धते मानः अतिदर्पार्थसंभवाम् ॥ ८५ ॥
जनालये तदा सर्वं जम्बूद्वीपनिवासिनः ।
बाध्यन्ते व्याधिभिः क्षिप्रं अन्योन्यां तेऽपि मूर्छिता ॥ ८६ ॥
जनाध्यक्षास्तदा सर्वे अन्योन्यापराधिनः ।
क्षिप्रं नश्यन्ति ते सर्वे मुनिधर्मार्थवर्जिताः ॥ ८७ ॥
समरे क्रुद्धचित्तानां शस्त्रसंपातमूलवः ।
न ते भेजे देवमुख्यानां तर्जन्यापद्यनालये ॥ ८८ ॥
बुद्धं धर्मं तथा संघं न पूजेदशुभा नृपा ।
न मन्त्रां जप्तु ते क्षिप्रं ते नृपा तस्थुरे सदा ॥ ८९ ॥
विनश्यन्ते तदा लोका विविधायासमूर्छिताः । G 203
ततस्ते दैत्यवरा क्षिप्रं सुसंरब्धा रुरोह तम् ॥ ९० ॥
सुमेरुपर्वतमूर्धानमाविशन्ते जनसत्तमाः ।
परिषण्डो तदा मेरो विभजेन्मन्दिरा शुभौ ॥ ९१ ॥
समन्ताद्वन विध्वस्तं दिवौकसां कारयन्ति ते ।
विविधा रथवरै रूढा नानाभरणभूषिता ॥ ९२ ॥
नानाप्रहरणा दद्युः पुरःश्रेष्ठां पराजयाम् ।
ततस्ते खरं भेजे अप्सराणां भज जग्रहे ॥ ९३ ॥
ईश्वराः प्रभवः सर्वे असुरास्ते बलदर्पिताः ।
जग्राह सुरकन्यां वै सुधा चैव च भोजनम् ॥ ९४ ॥
ततस्ते सुरवराः श्रेष्ठाः प्रविष्ठा नगरोत्तमम् ।
मेरुमूर्ध्नि ततो गत्वा नगरं दर्शनाश्रयम् ॥ ९५ ॥
शक्रानुयाता सर्वे वै पिशिता द्वारपुरोत्तमे ।
न तु माया पुरी भीतिः उपजग्मु मुदाश्रयम् ॥ ९६ ॥
निवर्त्य तत्र वै सर्वे स्वालयं जग्मु ते सुरा ।
यदेका मन्त्रसिद्धिस्तु निवशेर्जन्मुमाश्रयम् ॥ ९७ ॥
जप्तमन्त्रोऽपि वा मर्त्यः निवसं तत्र आलये ।
तत्र देशे न चार्तानि न दुर्भिक्षं न शत्रवः ॥ ९८ ॥

न रोगा नापि भयं विद्याज्जप्तमन्त्रे स्थिते भुवि ।
न चास्या दस्यवः सर्वे शक्नुवन्तीह हिंसितुम् ॥ ९९ ॥
न चार्तिमृत्यवस्तत्र अमर्यादा प्रवर्तते ।
न रुजा व्याधिसंमूर्छा ज्वररोगापहारिणः ॥ १०० ॥
विम्यन्ते भूतले तस्मिन् जप्तमन्त्रो यदाश्रयः ।
येऽत्र मन्त्रवरा ह्युक्ता जिनेन्द्रकुलउद्भवा ॥ १०१ ॥
अब्जाके तु तथा मन्त्रा मन्त्रिणं मन्त्रपूजिताः ।
तत्र मन्त्रवरां मन्त्री जह्नुजोपमहर्द्धिकाम् ॥ १०२ ॥
G 204 तदा ते सुरवराः श्रेष्ठा असुराणां तु पराजयः ।
एवमुक्ता गुणा ह्यत्र दृश्यते भूतले कदा ॥ १०३ ॥
तार्किका विविधाकारा कथयन्तीह महीतले ।
ग्रहमेषो इति श्रुत्वा अवतारार्थविस्तरा ॥ १०४ ॥
गीतं ऋषिवैर्ज्ञानमुल्किनां ग्रहचिह्निताम् ।
निर्दिष्टं तत्र निर्देशः निर्घातस्य प्रवक्ष्यते ॥ १०५ ॥
उल्कापाते यदा लोका निर्घातो भुवि मण्डले ।
प्रद्युम्नगर्जना कस्माच्छ्रूयते च महीतले ॥ १०६ ॥
भृशं चुचुक्षुत्र तद्देशं तिथिरेभि समायुतैः ।
अतुल्यशब्दनिर्घोषरौद्रां वापि तमाह्वयाम् ॥ १०७ ॥
श्रूयते गर्ज च क्षिप्रं महामेघवचः श्रूयते ।
पष्ठ्यचमथमष्टम्यां त्रयोदश्यामथ श्रूयते ॥ १०८ ॥
कृष्णपक्षे तथा नित्यं द्वादश्यां तु चतुर्दशी ।
नक्षत्रैरेभि संयुक्ता वारैश्चापि ग्रहोत्तमैः ॥ १०९ ॥
अश्विन्यां कृत्तिकानां च भरण्यां यातं निबोधताम् ।
पूर्वभद्रपदे चैव आर्द्रामघाश्लेषसंयुक्ते ॥ ११० ॥
* * * * * * * * ग्रहैश्चापि सुपूजिते ।
शन्यर्काङ्गारकैः क्रूरैः भूम्या निपतते यदा ॥ १११ ॥
अवर्षोदकर्मा क्रूरं शब्दो निघात उच्यते ।
महद्भयं तत्र देशे वै दुर्भिक्षं राष्ट्रमर्दनम् ॥ ११२ ॥
परचक्रभयं विद्यान्नानाव्याधिमहद्भयम् ।
निर्घातं पतते चोर्व्यां नक्षत्रैरेभि कीर्तितैः ॥ ११३ ॥
वारैरशुभैश्चापि ग्रहैः कृष्णरक्तकैः ।
तत्र देशे नृपो भृशं हन्यते शस्त्रिभिः सदा ॥ ११४ ॥

तस्मिन् काले रौद्रे च कर्माणि तत्र देशे तदा जपेत् ।
विविधा व्याधयस्तत्र अर्थनाशश्च दृश्यते ॥ ११५ ॥
मृत्युस्तत्र भवेद् व्याधिर्दुर्भिक्षैश्चापि निन्दितैः । G 205
अनावृष्टिः सदाकाले द्वादशाब्दानि निर्दिशेत् ॥ ११६ ॥
पश्चिमां दिशमाश्रित्य प्रपते भूतले नभात् ।
निर्घातं मृत्युसंकीर्णं दृश्यते मृत्युतस्करैः ॥ ११७ ॥
मध्याह्ने तु तदा काले युवाप्यस्तमितेऽपि वा ।
उदयन्तं भास्करं रक्तं सुशब्दैः श्वापदैरेवम् ॥ ११८ ॥
त्रिःसंध्यात् कुत्सितः शब्दः शेषकाले तु तुष्टये ।
अर्धरात्रे यदा शब्दः निर्वातस्य महद्भयम् ॥ ११९ ॥
गुप्तां पुरवरां तत्र कारयन्तु नृपोत्तमाः ।
नानाम्लेच्छगणा धूर्ता तस्कराधिष्ठितापि ते ॥ १२० ॥
परद्रव्योपकारार्थं कुर्वन्तीह महीतले ।
शेषकाले भवेच्छब्दः निर्घातस्य सुपुष्कलम् ॥ १२१ ॥
मन्त्रिमुख्यो भवेत्तत्र बहुव्याधिसमाकुलम् ।
बहुव्याधितत्वं च नृपास्तस्य विधीयते ॥ १२२ ॥
पत्नी वा हन्यते तस्य मन्त्रिमुख्यस्य हन्यतः ।
सर्वे शौल्किकास्तत्र नानाजातिसमाश्रिताः ॥ १२३ ॥
हन्यन्ते मृत्युना तेऽपि तथा जीवकसेवकाः ।
प्रकृष्टा वणिजा मुख्या नियुक्ता सर्वतो नृपाः ॥ १२४ ॥
मध्याह्नपरिमिल्याह्नः ऋषिभूतो रवे तदा ।
निर्घातमतुले शब्दं यदा शुश्राव ते जनाः ॥ १२५ ॥
व्याधिभिर्व्यस्तसर्वत्र भवतीह महीतले ।
अन्यथा तुमुलं शब्दो यदि शुश्राव मानवाः ॥ १२६ ॥
अकस्मात् सर्वतो नित्यं नृपस्तत्र न जीवते ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य निर्घातो प्रपतेच्छुभः ॥ १२७ ॥
विद्युच्चोर्ध्वं तथा वृष्टिरचिरात् तं विनिर्दिशेत् ।
पूर्वायां दिशिमाश्रित्य शुश्रुवः यदि नादिते ॥ १२८ ॥
G 206
निर्घातस्य भवेत्तत्र प्राच्याध्यक्षो विनश्यति ।
हिमाद्रिकुक्षिसंनिविष्टा जनास्तत्र निवासिनः ॥ १२९ ॥
शुश्राव शब्दं महाभैरवे ग्रहे चिह्निते ।
तस्मिं देशे जनाध्यक्षो विनश्यन्ते म्लेच्छतस्कराः ॥ १३० ॥

वत्से वत्साश्च ये मुख्या नेपालाधिपतिस्तदा ।
हन्यन्ते शत्रुभिः क्षिप्रं नानाद्वीपनिवासिनः ॥ १३१ ॥
विदिक्षु भैरवं नादे ऊर्ध्वमुत्तरतो भवेत् ।
कामरूपेश्वरो हन्या गौडाध्यक्षेण सर्वदा ॥ १३२ ॥
लौहित्यात् परतो ये वै जराध्यक्षाथ जीविना ।
कलशाह्वा चर्मरङ्गाश्च समोतद्याश्च वङ्गकाः ॥ १३३ ॥
नृपांश्च विविधां हन्या सशब्दे भैरवा ग्रहे ।
पूर्वदक्षिणतो भागे यदि शब्दो महद्भयम् ॥ १३४ ॥
कलिङ्गा कोसलाश्चैव सामुद्रा म्लेच्छवासिनः ।
हन्यन्ते शस्त्रिभिः क्रूरैः तदाध्यक्षाश्च नृपाचराः ॥ १३५ ॥
पूर्वपश्चिमतो भागे यदा शब्दो महान् भवेत् ।
मेघगर्जनवत्क्रूरो दिवारात्रौ महाम्बुदे ॥ १३६ ॥
तं निर्घातमिति वेद्मि देवसंघा निबोधताम् ।
शुभाशुभं तदा चक्रे मानुषाणां जनोत्तमाः ॥ १३७ ॥
यदा शुभे च नक्षत्रे लग्ने चापि शुभोत्तमे ।
तिथिश्रेष्ठे सिते चापि शब्दो शुश्राव मेदिनीम् ॥ १३८ ॥
शुभो सुभिक्षमारोग्यं संपत् क्रीडाय साधनम् ।
सिद्धमन्त्रस्तु जायेत वरदा जापिनां सदा ॥ १३९ ॥
तदा काले भवेत्सिद्धिः सर्वकर्मसु योजिता ।
क्रूरैर्ग्रहैश्चापि विद्यात् शुभैश्चापि फलोदया ॥ १४० ॥
कर्मसिद्धिर्भवेत्तत्र सर्वकर्मसु योजिता ।
निर्घाता बहुधा प्रोक्ता क्ष्मातलेऽस्मिन् निबोधत ॥ १४१ ॥
G 207 केचित्प्राणहराः सद्यः केचित् सत्यफलोदया ।
सर्वार्थसाधना केचिच्छब्दा गम्भीरनादिनः ॥ १४२ ॥
तं च शब्दं शृणुयात् क्षिप्रं देवसंघा निबोधताम् ।
धीरो गम्भीरयुक्तश्च स्तनितं चापि गर्जिते ॥ १४३ ॥
दीर्घदुन्दुभयो यद्वत् तच्छब्दसंमुखावहम् ।
स शब्दो भैरवः क्रूरो यथानिर्दिष्टकारकः ॥ १४४ ॥
उल्कापातसमे काले भूमिकम्पान्न जायते ।
शब्दं क्रूरनिर्घोषं निर्दिशं चापि योजयेत् ॥ १४५ ॥
महद्भयं तदा विन्द्यात् सर्वनिर्देशभामिमाम् ।
सत्त्वाघातं ततो विद्यात् दुर्भिक्षं व्याधिसंभवम् ॥ १४६ ॥

अमानुषं च तदा चक्रे मायोपद्रवादिकम् ।
भूपालां तदा मृत्युर्दिवसैस्त्रिंशाविंशतिः ।
यथोद्दिष्टकराः सर्वे शब्दा रौद्रनिनादिते ॥ १४७ ॥
भूमिकम्पं तु निर्दिक्ष्ये कथ्यमानं निबोधत ।
नक्षत्रेष्वेव कम्पाये .... ॥ १४८ ॥
तिथिभिः सर्वत्र योज्यं स्यान्नक्षत्रं चापि युक्तवाम् ।
निर्घाते यथा सर्वं कर्मेष्वेव योजयेत् ॥ १४९ ॥
अश्विन्यां चलिता भूमिर्दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ।
भरण्यां कृत्तिकां चैव उभौ कम्पौ सुखोदयौ ।
रोहिण्यां मृगशिरः कम्पो जायते अर्थसंपदः ॥ १५० ॥
आर्द्रा पुनर्वसुश्चैव नक्षत्रा परिचिह्नितौ ।
एषु कम्पेद् यदा पृथ्वी तत्र देशे महद्भयम् ॥ १५१ ॥
मध्यदेशा विनश्यन्ते तद्देशाश्च नराधिपाः ।
पुष्ये यदि कम्प्येत मूर्वी भूतलवासिनीम् ।
तत्र देशे शिवं शान्तिं सुभिक्षमारोग्यं विनिर्दिशेत् ॥ १५२ ॥
आश्लेषायां चलते क्षिप्रं कृत्स्ना चैव वसुंधरा ।
तत्र देशे समाकीर्णं म्लेच्छतस्कररौद्रिभिः ॥ १५३ ॥ G 208
मघासु चलिता भूमिः सर्वेष्वेव न सर्वतः ।
अङ्गदेशे विनश्यन्ते मागधो नृपतिस्तथा ।
मागधाः जनपदा सर्वे पीड्यन्ते व्याधितस्करैः ॥ १५४ ॥
उभौ फल्गुननक्षत्रे क्ष्माकम्पो यदि जायते ।
हिमाद्रिकुक्षिसंनिविष्टा गङ्गामुत्तरतस्तदा ॥ १५५ ॥
हन्यन्ते व्याधिभिः क्षिप्रं वृजिमैथिलवासिनः ।
वैशाल्यामधिपाः सर्वे हन्यन्ते अर्तिभिस्तदा ॥ १५६ ॥
विविधा म्लेच्छमुख्यास्तु हिमाद्रेः सानुसंभवाः ।
निवस्ता कुक्षिमध्ये वै नितम्बेष्वेव द्रोणयः ।
म्लेच्छाध्यक्षवरा मुख्या हन्यन्ते अग्निभिः सदा ॥ १५७ ॥
हस्तचित्रौ यदा भूमिश्चलते संध्ययोर्यदा ।
म्लेच्छतस्करनराध्यक्षा हन्यन्ते शस्त्रिभिः सदा ॥ १५८ ॥
स्वात्या विशाखयुक्त्या वै नक्षत्रेष्वेव योजिता ।
चलते मेदिनी कृत्स्ना दृश्यन्ते वणिजा परे ॥ १५९ ॥

वणिजाध्यक्षवराः श्रेष्ठा मुख्याश्चैव शुक्लिनः ।
व्याधिभिः शस्त्रसंपातैर्विनश्यन्ते जलचारिणः ।
अनुराधे ज्येष्ठविख्यात नक्षत्रेष्वेव सर्वदा ॥ १६० ॥
भ्रमते वसुमती कृत्स्ना नमते चापि दारुणम् ।
यदा उन्नतनिम्नस्था पर्वता निम्नगा वरा ॥ १६१ ॥
क्ष्मातलं कम्पते क्रूरं उभे संध्ये तदा परे ।
भवेत्तत्र भयं क्षिप्रं दुर्भिक्षं चापि निन्दितम् ॥ १६२ ॥
मरणं दिवसैः षड्भिर्महानृपस्य भवेत्तदा ।
नश्यन्ते पुरवरा क्षिप्रं मध्यदेशेषु ते जनाः ॥ १६३ ॥
ईषच्च चलिता भूमिरनुराधायां शुभोदया ।
सस्यनिष्पत्ति सर्वत्र मध्या यदि जायते ॥ १६४ ॥
G 209 मूलाषाढमिति ज्ञेयं नक्षत्रेष्वेव कम्पते ।
पूर्वउत्तराषाढे तृधा दुःखसमोदये ॥ १६५ ॥
व्याधि दुर्भिक्ष सर्वत्र तस्करादिभि पीड्यते ।
मेदिनी सर्वतो ज्ञेया यदि कम्पो भवेद्दिवा ॥ १६६ ॥
श्रवणासु चलिता भूमिर्धनिष्ठेष्वेव सर्वतः ।
सुभिक्षमायुरारोग्यं दुर्भिक्षैश्चापि वर्जिता ॥ १६७ ॥
मेदिनी सस्यसंपन्ना यदि कम्पो भवेन्निशम् ।
शतभिषे भद्रपदे चापि यदि कम्पेत मेदिनी ॥ १६८ ॥
दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गं वै दृश्यते तत्र आस्पदे ।
हन्यते तस्करे मर्त्या दुर्भिक्षं चापि कुत्सितम् ॥ १६९ ॥
भवन्ति भूतले मर्त्या अर्धरात्रे निशि कम्पते ।
उत्तरासु च सर्वासु रेवत्यासु च कीर्तिता ॥ १७० ॥
उभौ नक्षत्रौ सर्वत्र रेवती भद्रपदस्तथा ।
एतेष्वेव हि सर्वत्र यदा कम्प अजायत ॥ १७१ ॥
नक्षत्रेष्वेव पूर्वोक्तकम्पो दृष्टः सुखावहः ।
एते कम्पाः समाख्याता निर्घाता वरचिह्निताः ॥ १७२ ॥
उल्कापातसमे काले त्रिदोषा जन्तुपीडना ।
निर्याते च यदा पूर्वि निर्दिष्टं विस्तरान्वितम् ॥ १७३ ॥
गुहास्तत्रैव कर्तव्या सर्वं चैव दिशाह्वये ।
सरवः कम्पनिर्दिष्टः सालोकश्चापि सुखान्वितम् ॥ १७४ ॥

सिद्धिकाले तदा सर्वे दृश्यन्ते मन्त्रजापिनाम् ।
योगिनां च तथा सिद्धि अभिक्ष्णां तु संभवे ॥ १७५ ॥
बोधिसत्त्वानां तथा जाते बुद्धबोधिं च प्राप्तये ।
प्रभावा ऋषिमुख्यानां ऋद्ध्यावर्जितचेतसाम् ॥ १७६ ॥
सुरश्रेष्ठस्तदा काले आगमं चापि कीर्तयेत् ।
सालोका सरवा मूर्वी घोपनिःस्वनगर्जनम् ।
कम्पमुत्पद्यते क्षिप्रं एतेष्वेव च कारणैः ॥ १७७ ॥ G 210
निःशब्दा च निरालोका यदा कम्पेत मेदिनी ।
नारकाणां तु सत्त्वानां चलितानां तु निर्दिशेत् ।
दुःखं बहुविधैः खिन्नामयाकायातिभीषणा ॥ १७८ ॥
तेषां च कर्मजं दुःखं पश्यमावृत्ति दृश्यते ।
कथितां कर्मनिर्घोषां तं जनान्नृपिसत्तमा ॥ १७९ ॥
निबोध्यमखिलं सर्वं धारयध्व सुखेच्छया ।
केतुना दृश्यते सर्वं गगनस्थं तु कीर्तयेत् ॥ १८० ॥
रात्रौ दिवा च कथ्येते दृश्यन्ते चोत्तरा नभे ।
मध्याह्नि सर्वत्र दृश्यते दृश्यते दीर्घतो ध्रुवा ॥ १८१ ॥
धूम्रवर्णा महारश्म्यां धूमायन्तं महद्भयम् ।
यदेव देशमाश्रित्य धूमायेत नभस्तलम् ॥ १८२ ॥
तदेव देशे नृपो ह्यग्रो हन्यते व्याधिभिर्ध्रुवम् ।
यदेव ग्रहमाश्रित्य वारं नक्षत्रमुज्ज्वला ॥ १८३ ॥
दृश्यते धूम्ररेखाया गगने चापि उज्ज्वलम् ।
तदेव राशिनक्षत्रं ग्रहं चैव सुलक्षयेत् ॥ १८४ ॥
तदेव हन्यते जन्तुः शस्त्रिभिर्व्याधिभिस्तदा ।
यस्मात्तु दृश्यते रेखा धूम्रवर्णा महद्भया ॥ १८५ ॥
तं देशं नाशयेत् क्षिप्रं ग्रहः क्रूरो न संशयः ।
स्निग्धा च नीलसंकाशा धूम्ररेखामजायत ॥ १८६ ॥
तच्छिवं शान्तिकं विद्यादायुरारोग्यवर्धनम् ।
रूक्षवर्णा विवर्णा वा धूम्रवर्णा तु निन्दिता ॥ १८७ ॥
प्रशस्ता शुक्लसंकाशा चतुरश्मिसमुद्भवा ।
सौम्या कीर्तिता नित्यं शुभवर्णफलप्रदा ॥ १८८ ॥
कीर्तिता पुष्पलक्ष्मीकं तं विद्यायत्र मा तिथाः ।
हिमपुञ्जनिभा शुभ्रा स्निग्धस्फटिकसंनिभा ॥ १८९ ॥

G 211 सोमसौम्य * विज्ञेया रूक्षवर्णसमप्रभा ।
कल्याणं चार्थनिष्पत्तिं दुःखनिर्वाणतेदृशम् ॥ १९० ॥
.... यस्मिन् देशे समोदिता ।
नक्षत्रे वापि युक्तेऽग्रे तले तारकमण्डले ॥ १९१ ॥
निर्गते नभसि विख्याते दृश्यते यं महीतले ।
सर्वा समन्तादायुरारोग्यं जाता ये तारकाश्रयाः ॥ १९२ ॥
प्रभविष्णु भवेत् तत्र सुखी धर्मचरः प्रभुः ।
श्रेष्ठो जायते मर्त्यः तस्मै नक्षत्रमाश्रयेत् ॥ १९३ ॥
ग्रहे वा शुचिते प्रोक्ता सर्वदुःखनिवारणी ।
रेखा च दृश्यते यत्र तं विद्यात् दुःखवर्जितम् ॥ १९४ ॥
प्रहृष्टरूपसंपन्नस्निग्धाकारविभूषितम् ।
रेखा नभस्तले याता धूमायन्ती महद्भया ॥ १९५ ॥
ततोऽन्यश्रेयसि युक्ता प्रशस्ता वापि नभस्तले ।
शिवं सुभिक्षमारोग्यं तं देशं विदुर्बुधाः ॥ १९६ ॥
धार्मिकं तत्र भूयिष्ठं धूमकेतोरजायते ।
सिता स्फटिकसंकाशा प्रभाः संचेयु सर्वतः ॥ १९७ ॥
एकशः श्रीमतो ख्याताः तारकेऽस्मिन् नभस्तले ।
ततः स्फटिकसंकाशा रश्म्या चापि मूर्तिजः ॥ १९८ ॥
प्रभवः श्रीमतः ख्यातः तस्मिन् नक्षत्रमाश्रयेत् ।
केतवो बहुधा ह्युक्ता सहस्रौ द्वौ त्रयोऽथ वा ॥ १९९ ॥
त्रिंशमेकं च बहुधा नानाकर्मफलोदया ।
केचिच्छ्रेष्ठा तथा मध्या केचिद्धर्मपराङ्मुखाः ॥ २०० ॥
उदयन्तं तदा केचिन्महद्भयसुदारुणा ।
स्निग्धाकारसमा ज्ञेया स्फटिकाकारसमप्रभा ॥ २०१ ॥
स्निग्धा शोभना ज्ञेया स्फटिकाकारसमप्रभा ।
स्निग्धा शोभना ज्ञेया चारुवर्णाल्पभोगता ॥ २०२ ॥
G 212 केचित् तिर्यगः क्रूरा उत्तरा दक्षिणा परा ।
श्रेयसा चैव भूतानां उदयन्ते शशिसमप्रभा ॥ २०३ ॥
महाप्राणा विकृतास्तु अतिदीर्घा नृपनाशना ।
मध्ये उदिता ह्येते प्राच्यावस्थितरश्मिजाः ॥ २०४ ॥
पूर्वपश्चिमतो याता पूर्वदेशाधिपतिं हनेत् ।
पूर्वपश्चिमतो याता पश्चादेशा नृपतिं हनेत् ॥ २०५ ॥

समन्ताद् रश्मिजातायाः समन्ताद् दुर्भिक्षमादिशेत् ।
विदिक्षा ह्युदिता ह्येते म्लेच्छप्रत्यन्तगणाधिका ॥ २०६ ॥
निहनेत् सर्वतो याता तस्मिं स्थाने समादिशेत् ।
धूम्रवर्णा विवर्णास्तु रूक्षवर्णा महाभयाः ॥ २०७ ॥
प्रभवः सर्वतो याता सर्वप्राणिषु आदिशेत् ।
दिवा सर्वतो नित्यं मध्याह्ने यदि दृश्यते सदा ।
महद्दुःखं महोत्पातं नृपतीनां तदादिशेत् ॥ २०८ ॥
यत्र तिर्यग्गता रेखा यत्र स्थिता समोदिता ।
तत्रस्था नृपतिं हन्ति यस्मिं देशे समागता ॥ २०९ ॥
दिवा विदिक्षु निर्दिष्टा महाव्याधिसमागमम् ।
तस्करोपद्रवां मृत्युं तस्मि स्थाने समादिशेत् ॥ २१० ॥
नीलवर्णं यदाकाशे दिवा पश्येत केतवम् ।
विविधायासदुःखैस्तु विविधोपद्रवभूमिपा ॥ २११ ॥
समन्तात् कथिता ह्येते महादुःखभयानकाः ।
यातिरौद्रा दिवा ह्युक्ता रात्रौ केचित् शुभोदया ॥ २१२ ॥
रक्तवर्णं यदा पश्येत् केतुश्चन्द्रसमाश्रितम् ।
रुधिराक्तां महीं क्षिप्रं शस्त्रसंपातितं तदा ॥ २१३ ॥
पृथिव्यां क्षिप्रमसृक्........रात्र्यवसुंधराम् ।
बहुसत्त्वोपघाताय बहुदुःखनिराश्रयम् ॥ २१४ ॥
जायन्ते जनपदास्तत्र यस्मिं स्थाने समादिशेत् ।
पीता च पीतनिर्भासा दृश्यते व्योम्नि मूर्तिना ॥ २१५ ॥ G 213
हरिद्राकारसंकाशा हरितालसमप्रभा ।
हेमवर्णा यदाकाशे केतवो उदयन्ति वै ।
तत्र विद्यान्महद्दुःखं सर्वसत्त्वेषु लक्षणम् ॥ २१६ ॥
महामारिगताध्यक्षो जनास्तेव निबोधिता ।
द्वादशाब्दं तथा हन्ति अनावृष्ट्योपद्रवादिषु ॥ २१७ ॥
अतिकृष्णा रौद्रमित्याहुरतिधूम्रास्तु वर्जिता ।
अतसीपुष्पसंकाशा पावकोच्छिष्टवर्जिता ॥ २१८ ॥
महामेघसमाकारा नीलकज्जलवर्णिता ।
वराहाकार तथा केचित् परपुष्टसमप्रभा ।
दृश्यन्ते गगना घोरा तस्माद्देशादपक्रमेत् ॥ २१९ ॥

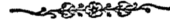
महाक्रूरा तथा रौद्रा दृश्यन्ते क्रूरकर्मिणः ।
महादुःखं महाघोरं मार्योपसृष्टिरेव वा ।
महादुर्भिक्षमित्याहुस्तस्मिं देशे भयानकम् ॥ २२० ॥
ओड्रूपुष्पसमाकारं रक्तभास्करविद्विषम् ।
असृग्वर्णं यदा पश्येदुदितं केतु नभस्तलम् ॥ २२१ ॥
सर्वत्र व्याधितोद्वेगं बहुसत्त्वोपरोधिनम् ।
नृपतीनां तदा मृत्युस्तत्क्षणादेवमादिशेत् ॥ २२२ ॥
अकस्मात्पश्यते यो हि नरो वा यदि वा स्त्रियः ।
तस्य मृत्युः समादिष्टं सप्ताहाभ्यन्तरेण तु ॥ २२३ ॥
द्विरात्रैस्त्रिभिर्वापि दिवसैः शस्त्रिभिर्हन्यते ।
तदा दिवा वा यदि वा पश्येदकस्मान्निशिरेव वा ॥ २२४ ॥
तस्य मृत्युः समादिष्टा तत्क्षणादेव भूतले ।
विषेण हन्यते जन्तुः शस्त्रिभिर्वा न संशयः ॥ २२५ ॥
शुक्ला स्निग्धवर्णाश्च निशिरेव सुखोदया ।
अन्यथा दर्शनं नेष्टं विविधाकाररूपिणाम् ॥ २२६ ॥
G 214 स्वकायपरकाये वा यदि केतु समाश्रिता ।
रात्रौ चापि दिवा चापि सद्यःप्राणहरा स्मृता ॥ २२७ ॥
शुक्लवर्णां यदा पश्ये शशिगोक्षीरसमप्रभाम् ।
हिमकुन्दसमाकारां नानारत्नसमप्रभाम् ।
तस्य राज्यं समाख्यातं सिद्धिर्वा मन्त्रजापिने ॥ २२८ ॥
एते केतवो दृष्टा शरीरे मन्दिरेऽपि वा ।
स्वसैन्यपरसैन्ये वा यत्रस्थं तत्र फलप्रदम् ।
तमाहुः कीर्तितां श्रेष्ठां नानाचित्रसमप्रभाम् ॥ २२९ ॥
दृश्यन्ते सर्वतो मर्त्यैः बहुनर्थावहाः स्मृताः ।
सर्वतः कथिता मर्त्यैर्विग्रहे मन्दिरेऽपि वा ॥ २३० ॥
केतवः सिद्धकायानां सर्वेष्टाः सफलाः स्मृताः ।
अन्यथा कुत्सिताः सर्वे बहुदुःखभयप्रदाः ॥ २३१ ॥
सर्वे वै कथिता ह्येते केतवो ग्रहचिह्निताः ।
पूर्ववत्कथितं सर्वं तिथिनक्षत्रराशिजाः ॥ २३२ ॥
विविधैर्वारयोगैस्तु ग्रहैश्चापि महर्द्धिकाः ।
पूर्ववत् सर्वमित्येषां कथिताः सर्वतः लोके ॥ २३३ ॥

तदा सर्वे ते संज्ञिनो केचिच्चारुसमप्रभा ।
चित्रा कचित्ततः शुभ्रः स्निग्धो वर्णतः शुभः ॥ २३४ ॥
सुनेत्रो नेत्रनामः शशिकुन्दसमप्रभः ।
सुभ्रू सुनयनश्चैव रुक्मवर्णः सहेमजः ॥ २३५ ॥
सर्वे सिता विचित्राश्च नानानामसनोदिताः ।
षड्वर्णानामपि तेषां केतूनां निबोधिता ॥ २३६ ॥
नानावर्णरूपाणां तत्संज्ञाश्च प्रयोजयेत् ।
नानाविकृतिनो येऽपि येऽपि घोराः सुदारुणाः ॥ २३७ ॥
ये मया कथिता पूर्वं तत्संज्ञाश्च सर्वतः ।
एवमाद्याधिका प्रोक्ता केतवो बहुरूपिणः ॥ २३८ ॥
मानुषाणां तदा चक्रे शुभाशुभफलोदयाः । G 215
विग्रहा ग्रहमुख्यानां दृश्यते च समन्ततः ॥ २३९ ॥
देवासुरे च युद्धे वै दर्शयन्ति तदात्मनाम् ।
महाप्रभावा महेशाख्या दिव्या दिव्ययोनयः ॥ २४० ॥
सिताः शुभोदयाः सर्वे देवपर्षत्समाश्रिताः ।
विकृताविकृतरूपास्तु कुत्सिता विकृतवर्णिनः ।
सर्वे वै असुरपक्षे तु क्रूरकर्मान्तचारिणा ॥ २४१ ॥
यदा देवासुरे युद्धे वर्तमाने महद्भये ।
असुराः पराजिता देवैः केतवः सूचयन्ति ते ।
दर्शने भू(त)ले मर्त्यैं प्रदद्युः सर्वतो नभः ॥ २४२ ॥
सिताः शुभफला नित्यमिष्टाश्चैव सुरप्रियाः ।
दर्शयन्ति तदात्मानं देवपक्षसमाश्रिताः ।
मर्त्यानां तदा क्षिप्रं सुभिक्षमारोग्य विनिर्दिशेत् ॥ २४३ ॥
असुरैर्निर्जिता देवा यदा काले भवन्ति वै ।
तदा विकृतवर्णास्तु क्रूरकर्मनियोजिता ।
असुराणां तदा पक्षे केतव उदयन्ति वै ॥ २४४ ॥
तदा सर्वतः क्रूरा वाता वायन्ति जन्तुनाम् ।
महावृष्टिमनावृष्टि नागाश्चैव क्रूरिणः ॥ २४५ ॥
मुमोच विषजां तोयं बहुव्याधिसमाकुलम् ।
मानुषाणां तदा चक्रे विषविस्फोटमूर्च्छनम् ॥ २४६ ॥
विविधा राक्षसा चैव दैत्ययक्षसमाश्रिता ।
कुर्वन्ति मानुषां हिंसामतिदारुणविघ्नकाम् ॥ २४७ ॥

प्राणोपरोधिनं दुःखं कुर्वन्तीह महीतले ।
अश्मवृष्टिं तदाकाशे प्रपतेद् भूतले तदा ॥ २४८ ॥
महावाताः प्रवायन्ति तस्मिं काले तु भीषणाः ।
प्रचण्डा वायवो वान्ति बहुसत्त्वापकारिणः ॥ २४९ ॥
G 216 नानातिर्यगता प्राणा सस्यनाशं प्रचक्रिरे ।
बहुभूतगणाः क्रूरा कुर्वन्तीह च भूतले ।
मानुषाणां तदा विघ्नं चक्रिरे प्राणोपरोधिनाम् ॥ २५० ॥
एवंप्रकारा ह्यनेकाश्च बहुविघ्नसमाश्रया ।
नानातिर्यग्गताश्चैव चण्डाः श्वापदमौरगाः ॥ २५१ ॥
विविधा नागयोनिस्था सत्त्वानामपकारकाः ।
प्राणोपरोधिनं कुर्वन्ति विविधा म्लेच्छतस्करा ॥ २५२ ॥
कपिलाभासतो वर्णा वाता क्रूराश्च अग्निजाः ।
वायन्ति विविधा लोके यदा देव पराजयेत् ॥ २५३ ॥
अधर्मिष्ठा तदा मर्त्या जाम्बूद्वीपगता सदा ।
तदा ते देवपक्षात्तु हीयन्ते दैत्ययोनिभिः ॥ २५४ ॥
यदा धर्मव्रतः सत्त्वा भूतलेऽस्मिन् समागताः ।
बुद्धधर्मरताः श्रेष्ठा संघे चैव सदा वराः ॥ २५५ ॥
मातृपितृभक्ताश्च सत्यसत्त्वा जपे रताः ।
तदा ते सर्वतो देवा निर्जिजे दैत्ययोनिजम् ॥ २५६ ॥
तदा सस्यफलसंपन्ना बहुपूर्णा वसुंधरा ।
दीर्घकालायुषो मर्त्या बहुसंख्यपरायणाः ॥ २५७ ॥
धार्मिका नृपतयः सर्वे सुखदाः सौख्यपरायणाः ।
तदा तासु सुखा दैत्या ह्लादिनो व्याधिनाशकाः ।
भवेयुः सर्वे ते लोके सुखकारणशीतलाः ॥ २५८ ॥
नातिशीता न चोष्णा वै ऋतवः सुखदाः सदा ।
नानापक्षिगणाश्चैव कूजयेन्मधुरं सदा ॥ २५९ ॥
बहुपुष्पफलाढ्या तु तरवः सर्वतो शुभा ।
सर्वे व्याधिविनिर्मुक्ता जन्तवो भूनिवासिनः ॥ २६० ॥
न चोद्वेगं तदा चक्रे नृपतिर्धार्मिको भवेत् ।
बहुधान्यसुखाश्चैव नानारत्नथ मन्दिरम् ॥ २६१ ॥
G 217 पश्यते सर्वयोन्यांस्तु जम्बूद्वीपगता नराः ।
फलाढ्या तरवो नित्यं बहुक्षीराश्च धेनवः ॥ २६२ ॥

धर्मायतनसत्राश्च कूपवाक्य समन्ततः ।
कुर्वन्ते च जनाः सर्वे जम्बूद्वीपगता नराः ॥ २६३ ॥
बहुधा बहुविधाश्चैव प्राणि धर्मरताः स्थिताः ।
समन्तात्सर्वतो तेषां यस्य पूर्णा वसुंधरा ॥ २६४ ॥
विपरीता तदन्यथा तेषां भ्रष्टमर्यादचेष्टिताम् ।
कर्मे युगाधमे काले अन्यथा काले फलमादिशेत् ॥ २६५ ॥
निःफलं सफलं चैव * * * * * * ।
विकृतं हेतुजं कर्म अशुभा चैव कामयेत् ॥ २६६ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पा-
च्चतुर्थो निमित्तज्ञानमहोत्पादपटलपरिवर्तः परिसमाप्त इति ॥



G 218

२१ ग्रहोत्पादनियमादिनिर्देशपटलः ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये कल्पविसरे सर्वसाधनोपयिके मन्त्रचर्याभियुक्तस्य साधनकाले सर्वमन्त्राणां सर्वकल्पविस्तरेषु राहुरागमनसुराणामधिपतेः सर्वग्रहनायकस्य ग्रहसंज्ञा चन्द्रदिवाकरादिषु नक्षत्रयोगेन दृश्यन्ते । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । ते भाषिष्ये ॥

एवमुक्ते भगवता शाक्यमुनिना सम्यक्संबुद्धेन मञ्जुश्रीः कुमारभूतः उत्तरासङ्गं कृत्वा भगवतस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवान् तेनाञ्जलिं प्रगृह्य भगवतश्चरणयोर्निपत्य पुनरेवोत्थाय भगवन्तमनिमिषं व्यवलोकयमानः उत्फुल्लनयनो भूत्वा हृष्टतुष्टो भगवन्तमेवमाह—तत्साधु भगवान् निर्दिशतु राहोरागमनम्, यत्र सत्त्वानां मन्त्रचर्याभियुक्तानां सिद्धिकालं भवेयुरिति सर्वसत्त्वानां च सुखोदयं शुभाशुभनिमित्तं वा । तं निर्दिशतु भगवान् यस्येदानीं कालं मन्यसे ॥

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य साधुकारमदात्—साधु मञ्जुश्रीः यस्त्वं तथागतमेतमर्थं परिप्रश्नसे सर्वसत्त्वानां च हितायोद्युक्तः । तेन हि मञ्जुश्रीः शृणु, भाषिष्ये सर्वसत्त्वानां निर्दिशश्चेति ॥

आदौ ताव ग्रहैः क्रूरैः राहोश्चन्द्रमण्डले ।
आगमोदिते काले यथावन्तं निबोधिता ॥ १ ॥
यदा देवासुरं युद्धं वर्तते च महद्भयम् ।
तदासौ दैत्यराजा वै दानवेन्द्रो महर्द्धिकः ॥ २ ॥
महाभयः प्रमाणा वै समन्तादुच्छ्रितो महान् ।
* * * * * * * सुमेरोरधिको भवेत् ॥ ३ ॥
महाप्रमाणः क्रूरोऽसौ अतिदर्पातिदर्पितः ।
प्रभविष्णुर्ग्रहो मुख्यो यदा भेजे सुरालयम् ॥ ४ ॥
G 219 ततः पाणिना परामृश्य सुमेरुं देवसंमितिम् ।
अप्सरां प्रेक्षते दैत्यः यदा काले नभस्तलम् ।
तदा चन्द्रमसपूर्णः करे वामे स दैत्यराट् ॥ ५ ॥
नानामणयस्तस्य करे कङ्कनतां गता ।
तदा भुवि लोकेऽस्मिं ग्रहभूतेति कथ्यते ॥ ६ ॥
यदा पद्मरागेऽस्मिं अर्चिर्भवति रक्तका ।
तदा तार्किका मानवा आहुः आग्नेयं मण्डलं विभोः ॥ ७ ॥
यदा तु नीलरक्तेऽस्मिं प्रभा नीलतां व्रजेत् ।
तदा नीलमिति ज्ञेयं शशिने भास्करेऽपि वा ॥ ८ ॥

माहेन्द्रमिति कथ्यते तार्किका भुवि मानवा ।
वायव्यमण्डलमित्याहुस्तार्किका एव ते तदा ॥ ९ ॥
विविधा रत्नमालेभ्यो विविधा रत्नसंभवा ।
विविधं तार्किके शास्त्रे विविधा गतियोनिजाः ॥ १० ॥
विविधैव क्रिया तेषां विविधा फलसंपदा ।
सम्यग्ज्ञानविहीनानां बालिशानामियं क्रिया ।
तस्मात् तथागतं ज्ञानं सम्यक् तेन नियोजयेत् ॥ ११ ॥
असुरस्य तदा दृष्टिः अज्ञानेष्वेव दिवौकसाम् ।
रथं संपूर्णयामास शशिनस्य महात्मने ।
यदा काले भुवि मर्त्यानां राहोरागमनं भुवि ॥ १२ ॥
शशिमण्डलमाक्रम्य यदा तिष्ठति स ग्रहः ।
तदा महद्भयं विद्यान्नक्षत्रेष्वेव निबोधताम् ॥ १३ ॥
अश्विन्येव यदा युक्तः शशिने भास्करमण्डलौ ।
उभौ तौ युग्मतः ग्रासं दिवा रात्रौ च कथ्यते ।
अश्विन्यागमनं नित्यं दुर्भिक्षं तं विदुर्बुधाः ॥ १४ ॥
भरण्यां तु यदा चन्द्र रवेर्वा मण्डलाश्रयेत् ।
विविधा सस्यनिष्पत्तिः सुभिक्षं चापि निर्दिशेत् ॥ १५ ॥
कृत्तिकासु यदा चन्द्रः राहुना ग्रस्यते ध्रुवम् । G 220
रात्रौ वा यदि प्रभाते वा यामान्ते निन्दितं हि तम् ॥ १६ ॥
तदा विन्द्यान्महद्दुःखं व्याधिसंभवमेव वा ।
मध्यदेशेषु नान्यत्र भवेन्नक्षत्रमादिभिः ।
जनपदेष्वेव वक्तव्यो नृपैर्बोधिविधोद्भवैः ॥ १७ ॥
मृगशिरासु यदा चन्द्रः भास्करो वा नभस्तले ।
राहुणा ग्रस्तपूर्वौ तौ अस्तं यातौ महर्द्धिकौ ॥ १८ ॥
पूर्वदेशे नरा यातु व्याधिभिर्हन्यते तदा ।
नृपाध्यक्षा गतायुष्या तत्र देशे विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
आर्द्रायां पुनर्वसुश्चैव ग्रस्तौ च शशिभास्करौ ।
रुधिराक्तां महीं सर्वां म्लेच्छदेशेषु कीर्तयेत् ॥ २० ॥
अन्योन्यहतविध्वस्ता हतप्राणा गतायुषा ।
निर्दिष्टा तत्र देशेऽस्मिन् पूर्वमुत्तरयोस्तदा ।
निकृष्टा पापकर्माणः म्लेच्छतस्करतां गताः ॥ २१ ॥

पुष्याश्लेषौ यदा चन्द्रे भास्करे वा नभस्तले ।
रहुणा ग्रस्तबिम्वा तौ मध्याह्ने वार्धरात्रतः ।
तदा विद्यान्महादोष पश्चादन्यां नृपेश्वराम् ॥ २२ ॥
मघासु यदि ग्रस्येतौ शशिभास्करमण्डलौ ।
राहुणा सह मुचन्तो अस्तं यातौ ग्रहोत्तमौ ।
तदा प्रहाय तं विद्याज्जम्बूद्वीपेषु सर्वतः ॥ २३ ॥
दुर्भिक्षराष्ट्रभङ्गं च महामारिं च निर्दिशेत् ।
उभौ फल्गुनिसंयुक्तौ राहुरागमनं भवेत् ॥ २४ ॥
मध्याह्नेऽथवा रात्रे च मुच्यते च पुनः क्षणात् ।
सुभिक्षं ततो विद्याज्जम्बूद्वीपेषु दृश्यते ॥ २५ ॥
हस्तचित्रे यदा राहुः ग्रसते चन्द्रभास्करौ ।
ग्रस्तौ सह मुच्येते अस्तं यातौ च दुःखदा ॥ २६ ॥
G 221 महामारिभयं तत्र तस्कराणां समन्ततः ।
नृपाश्च नृपवराः श्रेष्ठा हन्यन्ते व्याधिभिस्तदा ।
दिश्चः सर्वे समन्ताद्वै दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ॥ २७ ॥
विशाखस्वातिनौ युक्तौ नक्षत्रवरपूजितौ ।
राहोरागमनं विद्यात् पशूनां पीडसंभवाम् ।
विविधा कुलमुख्यास्तु हन्यन्ते शस्त्रिभिस्तदा ॥ २८ ॥
ज्येष्ठानुराधसंयुक्तौ नक्षत्रौ वरवर्णितौ ।
राहोरागमनं तत्र सुभिक्षं वा विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥
मूलेन यदि चन्द्रस्थः राहुर्दृश्यति भूतले ।
उदयन्तं तदा ग्रस्तं उदितं वापि सर्वतः ॥ ३० ॥
अस्तं यातेन तेनैव शशिनो राहुणा सदा ।
प्राच्याध्यक्षा विनश्येयुः पूर्वदेशजनालयाः ॥ ३१ ॥
महान्तं शस्त्रसंपातं दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ।
परचक्रभयाद् भिन्ना त्रस्ता गौडजना जनाः ।
राजा वै नश्यते तत्र व्याधिना सह मूर्छितः ॥ ३२ ॥
उभौ अषाढौ तदा काले राहुर्दृश्यति मेदिनीम् ।
तत्र दुःखं महाव्याधि तत्र दृश्यति भूतले ।
नृपमुख्यास्तदा सर्वे दुष्टचित्ता परस्परम् ॥ ३३ ॥
धनिष्ठे श्रवणे चैव निर्दिष्टं लोकनिन्दितम् ।
नानागणमुख्या वै विश्लिष्टान्योन्यतद्भुवा ॥ ३४ ॥

पूर्वभद्रपदे चैव नक्षत्रे शतभिषे तथा ।
राहुरागमनं दृश्येत सुभिक्षं चैव निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥
उत्तरायां यदा युक्तः नक्षत्रे भद्रपदे तथा ।
राहुरागमनं श्रेष्ठं दिवा रात्रौ तु निन्दितम् ॥ ३६ ॥
रेवत्यां तु यदा चन्द्रः राहुणा ग्रस्त सर्वतः ।
उदयन्तं तथा भानोर्निशि वा चन्द्रमण्डले ॥ ३७ ॥
अस्तं यातो यदा राहुर्ग्रहमुख्यैः सहोत्तमैः । G 222
मध्यदेशाश्च पीड्यन्ते मागधो नृपतेर्वधः ॥ ३८ ॥
एतद् गणितं ज्ञानं मानुषाणां महीतले ।
नक्षत्राणामेतत् प्रमाणं चैव कीर्तितम् ।
अशक्यं मानुषैरन्यैः प्रमाणं ग्रहयोनितम् ॥ ३९ ॥
नक्षत्रमाला विचित्रा वै भ्रमते वै नभस्तले ।
एतन्मानुषां संख्यात्ततोऽन्यद् देवयोनिजाम् ॥ ४० ॥
यो यस्य ग्रहमुख्यो वा क्षेत्रराशिसमोदिता ।
नक्षत्रं कथितं पूर्वं तस्य तं कुरुतेऽन्यथा ॥ ४१ ॥
ईषत् प्रमाणं न दोषोऽस्ति बहुत्राचास्ति निन्दितम् ।
एतत् प्रमाणकाले वै ग्रहमुख्योऽर्थकृत् स्मृतः ॥ ४२ ॥
कालं कथितं ज्ञेयं नियमं चैव कीर्त्यते ।
नक्षत्रराशिसंयुक्तः कम्पो निर्घात उल्किनः ॥ ४३ ॥
सग्रहौ यदि तत्रस्थौ रविचन्द्रौ तु दृश्यते ।
उभयान्तं तदा तस्य नक्षत्रां जातिभूषिताम् ॥ ४४ ॥
अन्यथा निष्फलं विद्यात् प्रभावं वापि निन्दिते ।
तस्माज्जपे तदा काले मन्त्रसिद्धिसमोदिता ॥ ४५ ॥
धूम्रवर्णं यदाकाशं दृश्यते सर्वतः सदा ।
तदा महद्भयं विद्यात् परचक्रभये तदा ॥ ४६ ॥
शशिने भास्करे चापि धूम्रवर्णो यदा भवेत् ।
पर्येषा द्वित्रयो वा वा तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥ ४७ ॥
धूमिकायां भवेद् वृष्टिः सर्वकाले भयानके ।
कुत्सितं सर्वतो विद्यात्तत्र व्याधिसमागमम् ॥ ४८ ॥
ग्रीष्मे शरदे चैव धूमिका यदि जायते ।
समन्तात् सप्तरात्रं तु तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥ ४९ ॥

दिवा वा यदि वा रात्रौ धूमिका यदि जायते ।
G 223 नक्षत्रैर्ग्रहचिह्नैस्तु तिथिवारान्तरेण वा ॥ ५० ॥
पूर्ववत् कथितं सर्वं यथा निर्घात उल्किनाम् ।
तैरेव दिवसैः पूर्वं धूमिकाया नियोजयेत् ॥ ५१ ॥
अर्धरात्रेऽथ मध्याह्ने धूमिका जायते सदा ।
तत्र विद्यान्महोद्वेगं नृपतीनां पुरोत्तमाम् ॥ ५२ ॥
शरदे यदि हेमन्ते ग्रीष्मे प्रावृषेऽपि वा ।
धूमिका सर्वतो ज्ञेया नक्षत्रैश्चैव कीर्तितः ॥ ५३ ॥
शुभाशुभं तथा ज्ञेयं दिवा वा यदि वा निशा ।
निःफलं चापि विद्या वै सफलं चापि कीर्तिताम् ॥ ५४ ॥
सर्वतो भूमिकम्पे वापि तथोल्क चैकतो राहुसमागमम् ।
तत्र धूमो भवेद् यद्यत् समन्ताच्चैव नभस्तले ।
अचिरात् तत्र तद्राज्यं घात्यते शस्त्रिभिः सदा ॥ ५५ ॥
प्रभवः सर्वतो देशे मृत्युश्चैव प्रकीर्त्यते ।
सप्ताहाद्द्विजयमुख्या भुवि वाता सत्त्वयोनयः ॥ ५६ ॥
घात्यन्ते सर्वतो नित्यं शस्त्रिभिर्मृत्युवशानुगा ।
अन्योन्यापरतो राज्यं कृपावर्जितचेतसः ।
विभिन्नाः शस्त्रिभिः क्षिप्रं वणिजा नृपयोनयः ॥ ५७ ॥
ग्रीष्मे सितवर्णस्तु नभो यत्र प्रदृश्यते ।
महाव्याधिभयं तत्र नीले चैव शिवोदयम् ॥ ५८ ॥
पीतनिर्भासमुद्यन्तं सविता दृश्यते यदा ।
ग्रीष्मे च कथिता मृत्युः शरत्काले च निन्दितम् ॥ ५९ ॥
हेमन्ते च वसन्ते च ताम्रवर्णः प्रदृश्यते ।
अन्यथा पीतनिर्भासौ निन्दितो लोकवर्जितः ॥ ६० ॥
शरदे ग्रीष्मतो ज्ञेयः मितिवर्णः प्रशस्यते ।
प्रावृट्काले तथा शुभ्रे पीतो वा न च * * * ॥ ६१ ॥
महाप्रभावसंकाशं महानीलसमप्रभः ।
G 224 नभो ज्ञेयं सदाकालं सर्वसौख्यफलप्रदम् ॥ ६२ ॥
विपरीतं ततो विद्या देशमावासपीडनम् ।
सस्योपघातमारिं च दुर्भिक्षं चापि मुच्यते ॥ ६३ ॥
अतिकष्टं सुरा ह्येतं भयं वा रसदूषितम् ।
महाप्रणादं घोरं च शुक्रे वै च नभस्तले ॥ ६४ ॥

तत्क्षणादेव सर्वेषां नृपतीनां प्राणोपरोधिनम् ।
ततोऽन्यच्छुभसंयुक्तं श्रेयसा चैव कल्पयेत् ॥ ६५ ॥
सग्रहे भास्करे चन्द्रे यदा राहो महद्भये ।
नश्यन्ते जनपदास्तत्र विविधा कर्मयोनिजा ।
ततोऽन्यच्छुभसंयुक्तं शब्दं लोकपूजितम् ॥ ६६ ॥
श्रेयसार्थे नियोक्तासौ सुरश्रेष्ठा ग्रहोत्तमा ।
विविधा मन्त्र सिद्ध्यन्ते विविधा मूलफलप्रदा ॥ ६७ ॥
विविधा वा न वा सर्वे विविधा प्राणसंभवाः ।
अनेकाकारसंपन्ना स्वरूपा विकृतास्तदा ॥ ६८ ॥
नानाप्रहरणाश्चैव नानाशस्त्रसमुद्भवाः ।
सर्वमतयो ह्यग्रा मूलमन्त्रसुभूषणा ।
सर्वे ते साध्यमाने वै सिद्धिं गच्छेयु सग्रहा ॥ ६९ ॥
ग्रहे चन्द्रे यदा भानो राहुणार्थोऽपि सग्रहे ।
तस्मिन् काले तदा जापी मन्त्रमावर्तयेत् सदा ॥ ७० ॥
सर्व ते वरदाश्चैव * * * * भवन्ति ते ।
सत्त्वोपकारं फलं ह्येतत् प्रतिष्ठा तत्र दृश्यते ।
सिध्यते मन्त्रराट् क्षिप्रं ग्रहे जप्ता सराहुके ॥ ७१ ॥
सप्तभिर्दिवसैर्मासैः पक्षैश्चापि सुपूजिताः ।
मन्त्राणां सिद्धि निर्दिष्टा सग्रहे चन्द्रभास्करौ ।
यामान्ते अर्धरात्रे वै सिद्धिरुक्ता तथागतैः ॥ ७२ ॥
विधियुक्तासु वै मन्त्रा विहीनां नेष्यते ध्रुवम् ।
ब्रह्मस्यापि महात्मानः किं पुनर्भुवि मानुषाम् ॥ ७३ ॥ G 225
शक्रस्यापि च देवस्य रुद्रस्यापि त्रिशूलिने ।
विष्णोश्चक्रगदाहस्ते तार्क्षस्यापि महात्मने ।
नेष्यते सिद्धिरेतेषां विधिहीनेन कर्मणाम् ॥ ७४ ॥
मन्त्रे सुजप्ते युक्ते च तन्त्रयुक्तेन हेतुना ।
सिध्यन्ते इतरस्यापि * * * * * * * ॥ ७५ ॥
विधिना मानुषैर्मुक्ता विद्यातत्त्वसुभूषिता ।
सिध्यन्ते सग्रहा क्षिप्ता जप्ता कालेषु योजिता ॥ ७६ ॥
ददाति फलसंयुक्तं विद्या सर्वत्र योजिता ।
हेतुकर्मफला विद्या * * * हेतुदूषणी ॥ ७७ ॥

कर्म सहेतुकं विद्या विद्याद्धेतुफलोदया ।
विद्या कर्मफलं चैव हेतु चान्य नियोजयेत् ॥ ७८ ॥
चतुःप्रकारात्तथा विद्या चतुर्वा कर्मसु योजिता ।
दद्यात् कर्मफलं क्षिप्रं सा विद्या हेतुयोजिता ॥ ७९ ॥
सा विद्या फलतो ज्ञेया बुद्धैश्चापि सुपूजिता ।
विद्या सर्वार्थसंयुक्ता प्रवरा सर्वकर्मिका ॥ ८० ॥
प्रदद्युः कर्मतो सिद्धिं सा विद्या कर्मसु योजिता ।
श्रेयसा चैव योजयेत् न मन्त्राणां गतिगोचरम् ॥ ८१ ॥
प्रभावं मन्त्रसिद्धिं च लोकतत्त्वं निबोधताम् ।
निःफलं कर्मतो वा या फलं कर्म च तत्र च ॥ ८२ ॥
* * * * * * * * लोकतत्त्वनियोजितम् ।
दृश्यते फलहेतुर्वा मन्त्रा बुद्धैश्च वर्णिता ॥ ८३ ॥
न फलं कर्मक्रमं हन्ति नाफलं कर्म क्रिया परा ।
फलं कर्मसमारम्भात् सिद्धि मन्त्रेषु जायते ॥ ८४ ॥
गुणं द्रव्यक्रमायोगा क्रमं द्रव्यक्रियाक्रमा ।
मन्त्रराट् सिध्यते तत्र फला कर्मेषु योजिता ॥ ८५ ॥
G 226 विधिद्रव्यसमायुक्तः वृत्तस्थो कर्मयोजितः ।
न योनिः कर्मतो ज्ञेयं यो नियुक्तः सदा फले ॥ ८६ ॥
न बृहत्कर्मतां यान्ति सिद्धिमन्त्राक्षरं सदा ।
तदा मन्त्री जपेन्मन्त्रं विधियोनिसमाश्रया ॥ ८७ ॥
कालक्रमा गुणाश्चैव विधियोनिगतिसौगतः ।
सिध्यन्ते मन्त्रराट् सर्वे विधिकालार्थसाधिका ॥ ८८ ॥
न गुणं द्रव्यतो ज्ञेयं नाद्रव्यं गुणमुच्यते ।
गुणद्रव्यसमायोगात् संयोगान्मन्त्रमर्चयेत् ॥ ८९ ॥
अर्चिता देवताः सर्वे आमुखेनैव योजयेत् ।
तत्प्रमाणं गुणं द्रव्यं क्षिप्रमन्त्रेषु साधयेत् ॥ ९० ॥
क्रमः कालगुणोपेतः गुणकालक्रमक्रिया ।
चतुर्धा दृश्यते सिद्धिः मन्त्रेष्वेव सुयोजिता ॥ ९१ ॥
प्रभावं गुणविस्तारं सत्त्वनीतिसुखोदयम् ।
प्रदद्युः सर्वतो मन्त्रा गुणेष्वेव नियोजिताः ॥ ९२ ॥
प्रभवं सर्वतः कर्म गुणद्रव्यं च सिध्यते ।
नापि द्रव्या गुणामेता द्रव्यकर्माच्च वर्जिता ॥ ९३ ॥

न सिद्धिं दद्यु तत्क्षिप्रं यथेष्टमनसोद्भवात् ।
मानसा मन्त्र निर्दिष्टा न वाचा मनसा विना ॥ ९४ ॥
नान्यतो मन्त्र विज्ञेया न वान्या मनसे विना ।
नान्यकर्मा मनश्चैव संयोगात् सिद्धिरिष्यते ॥ ९५ ॥
न दृष्टिकर्मतो हीना नेष्टं कर्मविवर्जितम् ।
सम्यग्दृष्टि तथा कर्म वाक् च चित्तं च योजितम् ॥ ९६ ॥
सिध्यन्ते देवताः क्षिप्रं मन्त्रतन्त्राक्षरोदितम् ।
सम्यग्दृष्टिसमायोगा सम्यक्कर्मान्तयोजयोः ॥ ९७ ॥
* * * * * * मन्त्रा सिध्यन्ति सर्वदा सम्यक् ।
कर्मान्तवाक्सुमोपेतं सम्यग्दृष्टिसुयोजितम् ॥ ९८ ॥
सिध्यन्ते सर्वतो मन्त्राः सम्यक्कर्मान्तयोजिताः । G 227
न चित्तेन विना मन्त्रं न स्मृत्या सह चित्तयोः ॥ ९९ ॥
सम्यक्स्मृत्या च चित्ते च दृश्यते मन्त्रसिद्धये ।
न स्मृत्या च विनिर्मुक्ता मन्त्र उक्तस्तथागतैः ॥ १०० ॥
स्मृत्या समाधिभावेन सम्यक् तेन नियोजिताः ।
दृश्यन्ते ऊर्जितं मन्त्रैः सिध्यन्ते च समाधिना ॥ १०१ ॥
सम्यक्समाधिनो भावो मन्त्रा लोकसुपूजिताम् ।
तत्प्रयोगा इमा मन्त्राः समाध्या परिभाविता ॥ १०२ ॥
सिध्यन्ते मन्त्रराट् तत्र योगं चापि सुपुष्कलम् ।
सम्यक्समाधिभिर्ध्येयं मन्त्रं ध्यानादिकं परम् ॥ १०३ ॥
सिध्यन्ते योगिनो मन्त्रा नायोगात् सिद्धिमुच्यते ।
यो मया कथितं पूर्वं सम्यगुक्तसुयोजितम् ॥ १०४ ॥
नान्यथा सिद्धिमित्याहुर्मुनयः सत्त्ववत्सलाः ।
नासंकल्पात् भवेन्मन्त्रः सम्यक् तत्त्वार्थयोजिताः ॥ १०५ ॥
संकल्पा मन्त्र सिध्यन्ते सम्यक् ते विधियोजिता ।
न पूज्य मन्त्रराट् सर्वे सम्यक्संकल्पवर्जिताः ॥ १०६ ॥
सिध्यन्ते सर्वतो मन्त्राः सम्यगाजीवयोजिता ।
सम्यक्संकल्पतो ज्ञेयं मन्त्रेष्वेव सुखोदयम् ॥ १०७ ॥
आजीवे शुद्धितां याति मन्त्रा सम्यक् प्रयोजिता ।
सिध्यन्ते भुवि निर्दिष्टा मन्त्रमुख्या सुयोजिता ॥ १०८ ॥
आजीवं हि फलं युक्तो सम्यगेव सुयोजयेत् ।
सम्यक् संजीवरतो मन्त्री शुद्धचित्तः सदा शुचौ ॥ १०९ ॥

शुचिनः शुचिकर्मस्य शुचिकर्मान्तचारिणः ।
सिध्यन्ते शुचिनो मन्त्रा कश्मलाकश्मले सदा ॥ ११० ॥
क्रव्यादा येतरा मन्त्रा ये चान्ये परिकीर्तिता ।
सिध्यन्ते मन्त्रिणां मन्त्राः क्रव्यादेष्वेव भाषिताः ॥ १११ ॥
G 228 रुद्रविष्णुर्ग्रहा चौरे गरुडैश्चापि महर्द्धिकैः ।
यक्षराक्षसगीतास्तु सिध्यन्ते मन्त्रकश्मलाः ॥ ११२ ॥
विविधैर्भूतगणैश्चापि पिशाचैर्मन्त्र भाषिताः ।
स्वयं न सिध्यते विधिना हीना अशौचाचाररतेष्वपि ॥ ११३ ॥
विधिना योजिता क्षिप्रं अशौचेष्वेव सिद्धिदा ।
तस्मान्मन्त्रं न कुर्वीत विधिहीनं तु कर्मयोः ॥ ११४ ॥
सिध्यन्ते सात्वता मन्त्रा विधिकर्मसुयोजिताः ।
साध्यास्तु तथा मन्त्रा आर्या बुद्धैस्तु भाषिता ॥ ११५ ॥
तेषां सिद्धिं विनिर्दिष्टा मार्गेष्वेव सुयोजिता ।
आर्याष्टाङ्गिकं मार्गं चतुःसत्यसुयोजितम् ॥ ११६ ॥
चतुर्ध्यानं सदा चेयं चत्वारश्चरणाश्रिताः ।
सिध्यन्ते मन्त्रमुख्यास्तु प्रवरा बुद्धोपदेशिता ॥ ११७ ॥
अनाख्येयस्वभावं वै गगनाभावस्वभावताम् ।
मन्त्राणां विधिनिर्दिष्टां आर्याणां च महौजसाम् ॥ ११८ ॥
भूम्यानां विधिनिर्दिष्टा सिद्धिमार्गविवर्जितम् ।
विद्यानां कथयिष्येऽहं तन्निबोध दिवौकसाः ॥ ११९ ॥
दशकर्मपथे मार्गे कुशले चैव सुभाषिते ।
सिध्यन्ते दिव्यमन्त्रास्तु विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १२० ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रादार्यमञ्जुश्रीमूलकल्पा-
देकोनविंशतिपटलविसरात् पञ्चमः ग्रहोत्पादनियमनिमित्त-
मन्त्रक्रियानिर्देशपरिवर्तपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



२२ सर्वभूतरुतज्ञानादिपटलः । G 229

अथ भगवान् शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये मूलकल्पपटलविसरे सर्वभूतरुतनिमित्तज्ञानपरिवर्तनिर्देशं नाम । तं भाषिष्येऽहम्, यं ज्ञात्वा सर्वमन्त्रचर्यानियोगयुक्ताः सर्वसत्त्वा सर्वमन्त्राणां कालाकालं ज्ञास्यन्ते । तं शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहम् ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतो उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवतः शाक्यमुनेः सिंहासनं तेनाञ्जलिमुपनाम्य त्रिरपि प्रदक्षिणीकृत्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा भगवन्तमेतदवोचत्—तत् साधु भगवान् निर्दिशतु तं भूतरुतज्ञाननिर्देशं सर्वसत्त्वानामर्थाय । तद् भविष्यति सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टानां सर्वकालनियमोपकरणं सिद्धिनिमित्तये यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यसे ॥

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिः मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य साधुकारमदात्—साधु साधु मञ्जुश्रीः, यस्त्वं तथागतमेतमर्थं परिप्रश्नितव्यं मन्यसे । तेन हि मञ्जुश्रीः शृणुष्व निर्देक्ष्यामि, एवमुक्ते मञ्जुश्रीर्भगवतश्चरणयोर्निपत्योत्थाय निषण्णोऽमूद्धर्मश्रवणाय ॥

अथ भगवान् सर्वावर्ती पर्षदमवलोक्य सर्वभूतरुतप्रचोदनीं नाम समाधिं समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः ये केचित् सत्त्वा अनन्तापर्यन्तेषु लोकधातुषु स्थिताः, सर्वे ते बुद्धरश्म्यावभासिताः । सर्वांश्च तान् बुद्धान् भगवतः शिरसा प्रणम्य अनन्तापर्यन्तलोकधातुस्थितां अभ्यर्च्य येन भगवतः शाक्यमुनेः शुद्धावासभवनोपरिस्थितं सिंहासनं तेनोपजग्मुः । येन च सहा लोकधातुः तेन च प्रत्यष्ठात् । तत्र च स्थिता सर्वभूतगणा बुद्धानुभावेन स्वकं स्वकं रुतं विदर्शयन्तः भगवतः पादमूलसमीपोपगता धर्मश्रवणाय । भगवन्तं प्रणम्य अभ्यर्च्य च यथास्थानेषु च संनिषण्णा अभूवन् धर्मश्रवणाय ॥

अथ भगवान् शाक्यमुनिः शाक्यसिंहो शाक्यराजाधितनयः तेषां सर्वसत्त्वानां धार्म्या कथया संदर्शयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । तेषां सर्वभूतसुरेश्वराणां तथा तथा धर्मदेशनां कृतवान्, यथा तैः सर्वैः कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित् प्रत्येकायां बोधौ, कैश्चिच्छ्रावकत्वे, कैश्चित् सत्यानि दृष्टानि, कैश्चिदर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिद् दशकुशले कर्मपथे स्थित्वा प्रणिधानं कृतम् । अनन्तान् बुद्धान् भगवतः अनन्तान् कल्पकोटीष्वजोपस्थानग्लानप्रत्ययभैषज्यप्रदानं चीवरपिण्डापातशयनासनपरिष्कारं प्रदद्याम इति नियता च भविष्यामो बुद्धबोधेरिति ॥ G 230

अथ भगवां शाक्यमुनिः तेषां सत्त्वानामाशयं ज्ञात्वा मन्त्रं भाषते स्म सर्वभूतरुताभिज्ञा नाम, यं साधयित्वा सर्वबोधिसत्त्वाः सर्वसत्त्वाश्च रुतं विजानेयुः एकक्षणेन सर्वेषां सर्वसत्त्वानां यथागोचरमवस्थितानाम् । कतमं च तत् ?

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानां समन्तापर्यन्तावस्थितानां महाकारुणिकानाम् । ॐ नमः सर्वविदे स्वाहा ॥

कल्पमस्य भवति—आदौ तावन्महारण्यं गत्वा क्षीरयावकाहारः मूलफलशाकाहारो वा अक्षरलक्षं जपेत्। त्रिःकालस्नायिना वल्कलवाससा पूर्ववत् सर्वं विधिना कर्तव्यं यथा मन्त्रतन्त्रेषु तथागतकुलोद्भवेषु। ततः पूर्वसेवां कृत्वा अक्षरलक्षस्यान्ते तत्रैव साधनमारभेत्। विनापि पटेन। अग्निकुण्डं कृत्वा द्विहस्तप्रमाणं चतुर्हस्तविस्तीर्णं समन्ताच्चतुरस्रम्। सर्वं पुष्पफलैरर्घ्यं दत्त्वा प्राङ्मुखः कुशपिण्डकोपविष्टः नवमग्निमुत्पाद्य क्षीरवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य श्रीफलफलानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं दिवसान्येकविंशतिः॥

ततो पूर्वायां दिशि महावभासं कृत्वा बुद्धो भगवानागच्छति। ततो साधके मूर्ध्नि परामृशति। अपरामृष्टे साधके तत्क्षणादेव भगवतो वाचा निश्चरते—सिद्धस्त्वम् गच्छ यथेष्टम्। इति कृत्वान्तर्धीयते॥

G 231 ततःप्रभृति साधकः पञ्चाभिज्ञो भवति महाप्रभावदिव्यमूर्तिः बोधिसत्त्वाचारः द्विरष्टवर्षाकृतिः यथेष्टगतिः सर्वभूतरुतज्ञः एकक्षणमात्रेण सर्वभूतानां रुतं विजानीते। प्रभवश्च भवति यथेष्टगामी। पञ्चवर्षसहस्राणि जीवते। अवैवर्तिको भवति बोधिसत्त्वः। विंशतिभिः साधनप्रवेशैर्नियतं सिध्यतीति। नात्र विचिकित्सा कार्या। प्रसाधितस्यापि न मन्त्रं जपता पूर्वमादितश्चैव मध्ये चैव निबोधताम्॥

रुतज्ञानं प्रभावं च स्वभावं चैव कीर्त्यते।
मध्ये आदितश्चैव अन्ते चैव दिवौकसाम्॥ १॥
भाषितं कथ्यते लोके मध्यदेशे च कीर्तिता।
मागधामङ्गदेशेषु काशिपुर्या नरोत्तमा॥ २॥
वृजिकोसलमध्येषु नरेष्वेव यथाव च।
तथा ते देवराट् सर्वे मन्त्रां वत्रे स्वभावतः॥ ३॥
त्रिदशो मध्यदेशे च वत्स पश्य दशार्णवा।
अमन्ते यथा वाचा तथा देशेषु जायते॥ ४॥
त्रिदशेष्वेव सर्वत्र तथा वाणी मुदाहृता।
यामा देवमुख्याश्च निर्माणाश्च सनिर्मिताः॥ ५॥
तदा वाचकृतां वाचा मध्यदेशार्थचारिणी।
तथारूपिणं सर्वे वै अकनिष्ठाश्च महर्द्धिकाः॥ ६॥
सर्वे ते सुरश्रेष्ठा रूपधातुसमाश्रिता।
ध्यानाहारगता सौम्या कदाचिद्वाचामभाषिरे॥ ७॥
ब्राह्मीस्वरमतेला च कलविङ्करुतस्वना।
मधुराक्षरनिर्घोषा मत्तकोकिलनिस्वना॥ ८॥

यद्यदर्था भवेद्वाचा धीरगम्भीरसंयुता ।
तथा सर्वतोवक्त्रा दृष्टया चैव सुपूजिता ॥ ९ ॥
भवन्ते ते सदा देवा मध्यदेशे सवाचकाः ।
मधुराक्षरसंपन्नाः स्निग्धगम्भीरनादिनः ॥ १० ॥
मेघगर्जना तेषां वाचैषा तां तु लक्षयेत् । G 232
मध्यदेशा यथा मर्त्या अवन्त्येष्वेव पूजिताः ॥ ११ ॥
वाचा शब्दसंपन्ना तथा ज्ञेयां सुरेश्वराम् ।
अरूपिणां कुतो वाचा असंज्ञायतनसंभवाम् ॥ १२ ॥
अभावादाश्रयात्तेषां न वाचां जग्मिरे सुराः ।
अधः श्रेष्ठाः सुराः सर्वे मध्यदेशेषु वाचकाः ॥ १३ ॥
मध्यदेशार्थचिह्नानां वाचैषा संप्रवर्तते ।
अथ देवामथ भूम्यां वै यक्षाश्चैव महर्द्धिकाः ॥ १४ ॥
देवयोनिसमाविष्टा बहुसत्त्वगणास्तथा ।
करोटपाणयो देवा सदामत्ताश्च वीणकाः ॥ १५ ॥
चत्वारोऽपि महाराजा चतुर्योनिसमाश्रिताः ।
त्रिदशा देवमुख्यास्तु शक्रेण सह समाश्रिताः ॥ १६ ॥
सुयामामथ सर्वत्र ऊर्ध्वंजापि सुरूपिणः ।
सर्वदेवगणा श्रेष्ठा वाचा ह्येषा तु कीर्त्यते ॥ १७ ॥
मध्यदेशे यथा मर्त्या हीनोत्कृष्टमध्यमाम् ।
तथा देववती वाचा हीनोत्कृष्टमध्यमाम् ॥ १८ ॥
वाचा तृविधा ज्ञेया हीनोत्कृष्टमध्यमा ।
त्रिविधात् कर्मतो ज्ञेया हीनोत्कृष्टमध्यमा ॥ १९ ॥
तथा देवालये वाणी मधुरं चापि सूक्तजिता ।
रुतं मतं तथा ज्ञेयं कर्मेष्वेव नियोजयेत् ॥ २० ॥
असुराणां भवेद्वाचा गौडपौण्ड्रोद्भवा सदा ।
यथा गौडजनश्रेष्ठं रुतं शब्दविभूषितम् ।
तथा दैत्यगणा श्रेष्ठं रुतं चापि नियोजयेत् ॥ २१ ॥
तेषां पर्यटन्तानां समन्तानां च पुरोजवाम् ।
यक्षराक्षसप्रेतानां नागांश्चापि सपूतनाम् ।
सर्वेषामसुरपक्षाणां वङ्गसामतटाश्रयात् ॥ २२ ॥
हरिकेले कलशमुख्ये च चर्मरङ्गे ह्यशेषतः । G 233
सर्वेषां जनपदां वा तथा तेषां तु कल्पयेत् ॥ २३ ॥

त्रिप्रकारा यथोद्दिष्टा तेषां नैव वियोजयेत्।
देवानां च तथा नित्यं पुरोगानां परिकीर्तयेत्॥ २४॥
प्रेतयक्षगणाध्यक्षाः स्कन्दमातरकिन्नराः।
नागांश्चैव सदा काले यथा वाचा निबोधताम्॥ २५॥
लाडोद्रेषु तथा सिन्धौ यथामुत्तरतो तथा।
जनेष्वेव हि सर्वत्र तां तु तेषां नियोजयेत्॥ २६॥
नागानां च यथा लाडी वाचा ह्युक्ता मनीषिणी।
यक्षाणां तु तथा वाचा उत्तरां दिशि ये नराः॥ २७॥
गरुडानां यथा ह्योड्रे किन्नराणां तु कीर्त्यते।
नेपाले सर्वतो वाचा यथा सा तां निबोधताम्॥ २८॥
पूतनानां तथा नार्या विन्ध्यकुक्षिनिवासिनाम्।
विन्ध्यजाता मनुष्याणां म्लेच्छानां च या वाचा॥ २९॥
पूतनानां तु सा ज्ञेया वाचैषां परिकीर्तिता।
राक्षसानां यथा वाचा तां वत्रे सुरोत्तमा॥ ३०॥
ससृज्यदक्षिणा देशा अन्ध्रलाटेषु कीर्तिता।
द्रविडानां तु सर्वेषां डकारबहुला सदा॥ ३१॥
तां तु वाचा समालक्ष्ये राक्षसेष्वेव नियोजयेत्।
त्रिप्रकारा तथा ज्ञेया राक्षसानां कुलयोनयः॥ ३२॥
त्रिप्रकारैव वाचैषा त्रिधा चैव नियोजयेत्।
सर्वतो त्रिविधा ज्ञेया देशभाषाश्च ते त्रिधा॥ ३३॥
त्रिप्रकारं तथा कर्म त्रिदेशं चैव योजयेत्।
त्रिविधः सर्वतो ज्ञेयः त्रिविधं कर्म रुतं स्मृतम्॥ ३४॥
समं सर्वेषु तत्रैव विधातान्यं नियोजयेत्।
नानाभूतगणा प्रोक्ता नानाभूतलवासिनः॥ ३५॥
G 234 नाना च बहुभाषज्ञा नानाशास्त्रविभूषिता।
मानुषा मानुषां विद्या नानावाचविभाषिताम्॥ ३६॥
नानाशास्त्रमता ज्ञेया नानामन्त्रार्थशालिनः।
नानाकर्मसमोद्देशा नानासिद्धिस्तु मुच्यते॥ ३७॥
आविष्टानां यदा मर्त्या पात्रस्थानसमागता।
तेषां च विधियुक्तेन मन्त्रैश्चापि सुयोजिता॥ ३८॥
आगता भूतले देवान् वाचैनैव विभावयेत्।
लिङ्गमर्थं तथा पात्रं देवं चैव नियोजयेत्॥ ३९॥

श्रेयसा श्रेयसे चैव आवेशानां तु लक्षयेत् ।
नानादेशसमाचारा नानाभाषसमोदया ॥ ४० ॥
नानाकर्मार्थसंयोगा नानालिङ्गैस्तु लक्षयेत् ।
मध्यदेशा बहिर्येषां वाचा भवति चञ्चला ॥ ४१ ॥
ते तु व्यक्तं नरा ज्ञेया म्लेच्छभाषारता हि ते ।
ये क्रूरा राक्षसा घोरा रौद्रकर्मान्तचारिणः ॥ ४२ ॥
डकारबहुला वाचा लकाराव्यक्तमार्षो ।
दाक्षिणात्या यथा वाचा चञ्चला भवति निन्दिता ॥ ४३ ॥
तथा च राक्षसस्त्वेषु वाचैषा परिकीर्तिता ।
बहुधा रुतया ज्येष्ठा आविष्टानां तु त्रिजापराम् ॥ ४४ ॥
आकृष्टा मन्त्रिभिः क्षिप्रं स्वयं वा इह मागता ।
बहुधा गृह्णन्ति सत्त्वानां मातरासग्रहा सुरा ॥ ४५ ॥
गरुडा यक्षगन्धर्वा किन्नरा * * * * * ।
पिशाचा चोरगराक्षसानां यक्षपूतनाम् ॥ ४६ ॥
आविष्टानां तथा लिङ्गा कथ्यमाना निबोधताम् ।
म्लेच्छभाषिण क्रव्यादा पिशाचाव्यक्तलापिनाम् ॥ ४७ ॥
लकारबहुला वाचा डकारान्तास्तु पूतना ।
तेषां नोर्ध्वगता दृष्टि कर्मेष्वेतेषु योजिता ॥ ४८ ॥
मात्सर्या क्रूरसत्त्वानां मृषावादादशुचे रता । G 235
तेषां नोर्ध्वं गता दृष्टि अधोदृक् नोर्ध्वगता हि ते ॥ ४९ ॥
मातराणां तथा वाचा शुभार्थोपसंहिता ।
ग्रहाणां कुमारमुख्यानां वाचा भवति केवला ॥ ५० ॥
शुभाङ्गसंपदा वाचा बालभाव्यर्थयोजिता ।
प्रभाव सर्वतः श्रेयां सर्वतश्च दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥
गरुडानां तथा वाचा आविष्टानां तु लक्षयेत् ।
गकारसमता ज्ञेया म्लेच्छभाषेव लक्ष्यते ॥ ५२ ॥
अव्यक्तं च स्फुटाभासं कीर्तियुक्तं शुभोदयम् ।
सुपर्णिने पायवदित्येषा विषदर्पनिवारणी ॥ ५३ ॥
नानागतयो ह्येषां नानाभूतसमागमाम् ।
नानावर्णतो ज्ञेया नानालिङ्गैस्तु लक्षयेत् ॥ ५४ ॥
शुभाकरमभाकरमभासन्तं भक्षतो नागराट् पदे ।
वासुकीप्रभृतयो नागा धार्मिका वसुधातले ।
क्षिप्रवाचा समायुक्ताश्च वसन्तो उरगाधिपाः ॥ ५५ ॥

स्वेन स्वेन तु कायेन यो लिङ्गेन तु लक्षयेत् ।
तेन तेन तु लिङ्गेन तं तं सत्त्वं विनिर्दिशेत् ॥ ५६ ॥
कश्मला कथिता सर्वे अधोदृष्टिगता हि ते ।
नानालिङ्गिनां ज्ञेया नानासत्त्वनिकायताम् ।
नानाकायगतैः कर्मैः नानाकायं निबोधताम् ॥ ५७ ॥
एवंप्रकारा ह्यनेका बहुलिङ्गाभिभाषिणा ।
नानाबुद्धिकृतैः कर्मैः नानायोनिसमाश्रितैः ।
आविष्टानां भुवि मर्त्यानां कथिता लिङ्गानि वै सदा ॥ ५८ ॥
सुराणामसुराणां च यथा वाचार्थलिङ्गिनी ।
तथैव तद् योजयेत् क्षिप्रं भूमिर्मानुषतां गताः ।
देवानां तदा विद्यात् सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ५९ ॥
G 236 निरीक्षन्ते तथा चोर्ध्वं दिशां चैव समन्ततः ।
अविक्लवा मनसौद्विल्या हृष्टा रूपसमन्विता ॥ ६० ॥
शुद्धाक्षा अनिमिषाक्षाश्च स्निग्धा च स्निग्धवक्त्रयः ।
प्रसन्नग्लल्या (?) तथा सर्वे सुरश्रेष्ठा नु लक्षयेत् ॥ ६१ ॥
पर्यङ्कोपहिता ज्ञेया निषण्णा भूतले शुचौ ।
केचिदम्बरं निःसृत्य निषण्णा खेचरा परे ॥ ६२ ॥
ब्रह्माद्या कथिता देवा ध्यानप्रीतिसमाहिताः ।
तदूर्ध्वं श्रेयसां स्थाने रूपिणा बहुरूपिणा ॥ ६३ ॥
आकृष्टा मन्त्रिभिर्मन्त्रैः मन्त्रजानां सनिश्रिता ।
तेषां रूपधरा कान्तिः आश्रया ते परिवर्तये ॥ ६४ ॥
ध्यानप्रीतिसमापन्नाः ईषिस्मितमुखा सदा ।
शुद्धाक्षा विशालाक्षा बहुरूपसमाश्रिता ॥ ६५ ॥
बमन्त्यो तदा कान्त्या श्रिया रूपसमन्विता ।
परज्ञानविदो देवा तेषां तं निबोधयेत् ॥ ६६ ॥
पर्यङ्कोपरिविष्टा वै ध्यायन्ता ऋषिवत् सदा ।
तदावेशं विदुर्बुद्ध्या इष्टमर्थप्रसाधकम् ॥ ६७ ॥
श्रेयसा सर्वमन्त्राणां हितायैवोपयोजयेत् ।
कथितं सर्वमेवं तु निबोधत सुरेश्वराः ॥ ६८ ॥
ऋषिणा कथिता ह्येते संयता ते ऋषवस्थिता ।
आविष्टानां तदा लिङ्गा ऋषीणां कथिता मया ॥ ६९ ॥

ऊर्ध्वदृष्टिगता देवा ऊर्ध्वपादाथ कश्मला ।
विकृता रौद्ररूपाश्च ऊर्ध्वकेशास्तु राक्षसाः ॥ ७० ॥
मातराणां तदेवं तु केषां चैव तु दृश्यते ।
क्रव्यादा नग्नका तिष्ठ सचेला निश्चलतां गता ॥ ७१ ॥
ऊर्ध्वपादा विकृताख्या ऊर्ध्वकेशा ग्रहा परे ।
विचेरुर्मेदिनीं कृत्स्नां समन्तात् सरितातटाम् ॥ ७२ ॥
एकवृक्षा श्मशानां च एकलिङ्गा पुलिनोद्भवाम् । G 237
देवावसथरथ्यासु विन्ध्यकुक्षिशिलोच्चयाम् ॥ ७३ ॥
हिमाद्रे सानुमांश्चैव म्लेच्छतस्करमन्दिराम् ।
तत्रस्था विकृतरूपास्तु मन्त्राकृष्टाश्च मागता ॥ ७४ ॥
गृह्णन्ति प्राणिनां क्षिप्रं शौचाचारपराङ्मुखाम् ।
सर्वमेदिनीं गच्छेद् भयादाहारमोहिताम् ॥ ७५ ॥
गृह्णन्ति बहुधा लोके बहुव्याधिसमाश्रिताम् ।
नानाविकृतरूपास्ते नानावेषधरा परा ॥ ७६ ॥
गृह्णन्ति प्राणिनां क्षिप्रं मृतकं मूत्र सुप्तकाम् ।
तेषां च कथितं लिङ्गं चरितं तु विभावितम् ॥ ७७ ॥
वाचमालक्षितं पूर्वं कथितं तु महीतले ।
आविष्टानां तथा चिह्नं मानुषेष्वेव लक्षितम् ॥ ७८ ॥
स्थिरप्रकाराः सर्वत्र सुरश्रेष्ठा निबोधता ।
आविष्टानां तथा लिङ्गा कथिता भूतले नृणाम् ॥ ७९ ॥
स्निग्धं प्रेक्षते नित्यं अनिमिषश्चापि दृष्टितः ।
मानुषे सत्त्वसंक्लिष्टे सुरश्रेष्ठे तु महीतले ॥ ८० ॥
वत्रे वसुधरां वाचां शब्दसंघार्थभूषिताम् ।
युक्ते श्रेयसे धर्मे मानुष्ये वाश्रयोगतो ॥ ८१ ॥
सुरश्रेष्ठो गतो मुख्यो ज्ञेयो सर्वार्थसाधको ।
चिन्तितं जापिने तेन गतबुद्धिर्दिवालये ॥ ८२ ॥
तत्सर्वं बोधयेत् क्षिप्रं मन्त्रिणे चिन्तितं तु यत् ।
एतत् सम्यगाख्यातमावेशं भुवि दैवतम् ॥ ८३ ॥
असंज्ञिनोऽपि सदा मन्त्रैराकृष्यन्ते तु भूतले ।
न भाषे मधुरं वाचं न यक्षो सत्वरा सुराः ॥ ८४ ॥
निःश्रेष्ठा विवशा चैव स्थिता ते मौनमाश्रिताः ।
न वाचा किंचनस्तेषां न चिन्ता नापि मानिता ॥ ८५ ॥

G 238 तस्मात् तं न चाकृष्ये तं जापी परिवर्तयेत् ।
असाध्यं नापि तत्तेषां मन्त्राणां जिनसौद्भवाम् ॥ ८६ ॥
नाकृष्यं विद्यते किंचिद् दुष्करं तेषां जप्तमन्त्रार्थतापिनाम् ।
आकृष्यन्ते तथा आर्या आर्यैर्मन्त्रैस्तु युक्तितः ॥ ८७ ॥
आर्याणां यानि चिह्नानि खड्गिश्रावकसंभवाम् ।
बोधिसत्त्वा महात्मानो दशभूमिसमाश्रिताः ॥ ८८ ॥
आकृष्यन्ते तथा मन्त्रैः समयैश्चापि सुभूषिताः ।
महादूत्यैस्तथोष्णीषैर्मुनिवर्णसुयोजितैः ॥ ८९ ॥
बुद्धपुत्रैस्तु धीमद्भिरब्जकेतुकुलोदितैः ।
कुलिशाह्वैर्मन्त्रमुख्यैस्तु क्रोधराजमहर्द्धिकैः ॥ ९० ॥
नान्ये मन्त्रराट् शक्ता लौकिका ये महर्द्धिकाः ।
नापि समयवित्तेषां न चोत्कृष्टो मन्त्रमीश्वरः ॥ ९१ ॥
वर्णितुं गणयितुं गन्तुं तं स्थानं यत्र ते सदा ।
समया संचाल्यते तेषां हेतुः कर्मसमाहिताम् ॥ ९२ ॥
ननु चाकृष्यते तेषां हेतुः कर्मसमाहितम् ।
तन्त्रं चाकृष्यते तेषां समये बुद्धभाषितैः ॥ ९३ ॥
तस्मात् तं न चालये यत्ना न वृथामर्थेन योजयेत् ।
महार्द्धिका ते महात्मानो दशभूमिसमाश्रिताः ॥ ९४ ॥
अशक्ता सर्वमन्त्रा वै गन्तुं यत्र ते तदा ।
तथागतानां तथा माज्ञा संस्मृत्वामरपूजिता ॥ ९५ ॥
आगच्छेयुस्तदा सर्वे मन्त्रजप्तार्थमन्त्रवित् ।
आकृष्टानां भवेल्लिङ्गा मानुष्योकाय मानुषाम् ॥ ९६ ॥
धीरतः स्निग्धवर्णश्च गम्भीरार्थसुदेशकः ।
धीरो गम्भीरतां यातो अल्पबाष्पो भवेत्तदा ॥ ९७ ॥
अखिन्नमनसोत्कृष्टो पृष्टश्च मन्त्रवित् ।
G 239 खमुद्रो बन्धयामास सुविदेशे चैव नभस्तले ॥ ९८ ॥
परसत्त्वविदो ह्यग्रो धर्मतत्त्वार्थदेशकः ।
नीतिप्रीतिसुखाविष्टो कृपाविष्टस्य चेतसा ॥ ९९ ॥
महोत्साहो दृढारम्भो बुद्धधर्मार्थदेशकः ।
मुहूर्तं क्षणमात्रं वा प्रविशेन्मानुषाश्रयम् ॥ १०० ॥
बहुरूपो सुरूपश्च ऊर्ध्वं तिष्ठे नभस्तलम् ।
बुद्धधर्मगता दृष्टिः संघे चैव सगौरवा ॥ १०१ ॥

क्षणमात्रं तदा तिष्ठेन्मानुषीं तनुमाश्रिता ।
सत्यसंधो महात्मानो जितक्रोधो त्रिदोषहा ॥ १०२ ॥
प्रथमं तावतो विद्या पश्चाच्चैव नियोजिता ।
मानुषैस्तदा दृष्टा पुनर्मुक्ताश्च यथेष्टगाः ॥ १०३ ॥
स्तब्धो निश्चलाक्षश्च सितवर्णस्तथैव च ।
अङ्गकेतुस्तदाविष्टो घोरगम्भीरसुस्वरः ॥ १०४ ॥
सुप्रसन्नो महाकायो तिष्ठते च महीतले ।
पर्यङ्कमासनाविष्टो कृपाविष्टोऽथ चेतसा ॥ १०५ ॥
स मुद्रापद्मरोपेतो महासत्त्वो समाविशे ।
अवलोकितो मुनिश्रेष्ठो बोधिसत्त्वो महर्द्धिको ॥ १०६ ॥
स्वेच्छया आगतो लोकां सत्त्ववत्सलकारणो ।
अभयाग्रा कारणो * * * * * * * ॥ १०७ ॥
अभयाग्राकरोपेतौ ऊर्ध्वदृष्टिसमास्थितौ ।
साधकं पश्यते दृष्ट्या करुणाविष्टचेतसा ॥ १०८ ॥
ईषिस्मितमुखा देवा केचिद् भ्रूलतभूषिताः ।
महासत्त्वो महात्मानो सत्त्वानां हितकारकः ॥ १०९ ॥
प्रसन्ना सर्वतो मूर्त्या तं विद्यादवलोकितम् ।
क्रूरो वज्रधरो मुख्यो बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः ॥ ११० ॥
आविष्टो क्रूरिणो सर्वो रक्तान्तायतलोचनो ।
इन्दीवरत्विषाकार ईषत्काये तु लक्षयेत् ॥ १११ ॥
परामृश्यन्तं तदा वज्रं मुद्रां बध्नाति मात्मनाम् ।
तुष्टो वरदो मर्त्यान् भोगां दापयते सदा ॥ ११२ ॥
महात्मा कृष्णवर्णो वै ईषि दृश्यति तत्क्षणात् । G 240
स्निग्धं गम्भीरमुक्तोऽसौ वाचां भाषते तदा ॥ ११३ ॥
नृणां किमर्थमेतं वो कर्मवरं दास्याम वो भुवे ।
अमोघं दर्शनमित्याहुर्वज्रिणेऽब्जिने जिने ॥ ११४ ॥
वरदा सप्रभा मन्त्रा फलं दद्युस्तदा तदा ।
जिनैरागमनं तत्र निर्माणो भुवि मानुषाम् ॥ ११५ ॥
समयात् कथिता ह्येते वर्णाश्चैव विबोधिताः ।
तथागतादाश्रयाद्धि वा फलहेतुसमुद्भवाः ॥ ११६ ॥
निर्माणा कथ्यते बिम्बं न बिम्बं निर्माणमाश्रितम् ।
बिम्बनिर्माणयो यद्वत् प्रतिबिम्ब न विद्यते ॥ ११७ ॥

पद्मकिञ्जल्कवर्णोऽसौ हेमवर्ण महाद्युतिः ।
निर्भिन्नरोचनाभासो कुङ्कुमाराभिविद्विषः ॥ ११८ ॥
उद्यन्तमिवार्कं वै कर्णिकारसमप्रभः ।
तादृशं विद्यते बिम्बे बुद्धबिम्बसमाश्रिते ॥ ११९ ॥
ब्राह्मश्च स्वनिर्घोषो कलविङ्करुतध्वनिः ।
श्रेयसः सर्वभूतानां युक्तियोगान्नियुज्यते ॥ १२० ॥
तादृशं लक्षणं दृष्ट्वा बुद्धमित्याहु जन्तवः ।
तद्गोत्रा च विधिस्तेषां वज्राब्जकुलयो तदा ॥ १२१ ॥
लौकिकानां तु मन्त्राणां मन्त्रनाथं तु योजयेत् ।
यत्पूर्वं कथितं सर्वं बहुप्रस्तावभूषितम् ॥ १२२ ॥
तं नियुज्य तदा मन्त्री मन्त्रेष्वेव च सर्वतः ।
ऋषीणामेकसंस्थानं गरुडानां च निबोधितम् ॥ १२३ ॥
स्वलिङ्गा वाचया चैव तं नियुञ्ज्यथ मन्त्रिणाम् ।
बहुलिङ्गा तदा चैषा स्वलिङ्गा चैव साधयेत् ॥ १२४ ॥
स्वमुद्रामुद्रिता ह्येते इतरा व्यन्तराः स्मृताः ।
कथितं सर्वमावेशं स्वमुखं दुःखदं पराम् ॥ १२५ ॥
G 241 एष कालक्रमो योगे आवेशे चैव योजयेत् ।
महाप्रभावैर्मुद्रैस्तु मन्त्रैश्चापि निवारयेत् ॥ १२६ ॥
नियुञ्ज्यात् सर्वतो मन्त्री जप्तमात्रां च चेतराम् ।
अन्यथामाचरेद्यस्तु इतरैर्मन्त्रिभिः सदा ॥ १२७ ॥
परिरक्ष्य तदा पात्रं मन्त्रैश्चापि महर्द्धिकैः ।
दूतिदूतगणैश्चापि चेटचेटिगणैः सदा ॥ १२८ ॥
इतरान् लौकिकान् देवान् आह्वये चैव महर्द्धिकाम् ।
यक्षराड् विविधा सर्वा यक्षिण्यश्च महर्द्धिकम् ॥ १२९ ॥
आह्वयेत् तत्क्षणान्मन्त्री मनसो यद्यभीप्सितम् ।
अन्यमन्त्रा न चाह्वेया नान्ये देवगणा सदा ॥ १३० ॥
स्वयमेवागता ये तु समये तां नियोजयेत् ।
सर्वे सम्पदका ह्येते मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ॥ १३१ ॥
तं तस्मा नेतरां कर्म आवेशां चापि वर्जयेत् ।
आकृष्टा महर्द्धिका देवा दिव्या आर्याश्च भूमिजा ।
अल्पकार्येऽथ युञ्जाना समयभ्रंशोऽथ जायते ॥ १३२ ॥

तक्षकः प्रेक्षते स्तब्धं वासुकिश्चापि नृत्यते ।
कर्कोटकश्च महानागो मुचिलिन्दयशस्विनः ॥ १३३ ॥
शङ्खपालदुर्लक्षो नृत्यन्ते उरगाधिपाः ।
शङ्खपालोऽथ शङ्खश्च मणिनागोऽथ कुण्डिलः ॥ १३४ ॥
सागरा भ्रमते क्षिप्रं पतते च मुहुर्मुहुः ।
सर्पवन्निःश्वसन्ते ते विषदर्पसमुच्छ्रिताः ॥ १३५ ॥
विविधा नागवरे ह्येते अन्तान्ता तेषु निबोधताम् ।
केचिद् भावयतो हृष्टो केचित् तिष्ठन्ति निश्चलम् ॥ १३६ ॥
केचित् पते * * क्षिप्रं स्वस्याङ्गा ऊर्ध्वमूर्धजा ।
पतन्ति विविधाकारं प्लुतं चापि करोति वै ॥ १३७ ॥
अनन्ता भ्रमते क्षिप्रं पद्मवच्चञ्चले जले ।
अनन्ता नागयोन्यास्तु संख्याता लिङ्गवेपयोः ॥ १३८ ॥
पूर्ववत् कथिता वाचा दष्टाविष्टमहोदितम । G 242
मोचयेत् कुलिशाह्वेन मन्त्रेण क्रोधराजेन युक्तिमांश्च ॥ १३९ ॥
मन्त्रेणैव कुर्यान्तं तेषां मन्त्रेण योजयेत् ।
मन्त्रास्तु पार्णिना येऽत्र निर्दिष्टा विषनाशकाः ॥ १४० ॥
ते तु मन्त्रा सदा योज्या दष्टाविष्टेषु सर्वतः ।
शेषा विघ्ना तथा कुर्या ग्रहमातरयोजिता ॥ १४१ ॥
तेनैव कारयेत् कर्म ग्रहमातरपूतनाम् ।
असंख्या लक्षणा ह्येते दष्टाविष्टेषु जन्तुषु ॥ १४२ ॥
तैरेव लौकिकैर्मन्त्रैस्तत्तत्कर्म नियोजयेत् ।
अशेषं कथितं ह्येतं दष्टाविष्टं च लक्षणम् ॥ १४३ ॥
अधुना बोधयिष्यामि तिर्यग्भाषां समानुषाम् ।
नारकानां तु भाषां वा कथ्यमानां निबोधताम् ॥ १४४ ॥
यदा पक्षिगणाः सर्वे संनिपत्य समन्ततः ।
ग्रामवासं तदा चक्रुः मध्याह्ने जनमालये ॥ १४५ ॥
तदा ते कथये वाचां रेफयुक्तां सभैरवाम् ।
क्रकः ककारमित्याहुः काका ये क्रूरभाषिणो ॥ १४६ ॥
कथयन्ति भयं तत्र क्षुधा चैव च दर्शयेत् ।
मयूरा कोकिलाश्चैव संनिपत्य प्रगे तदा ॥ १४७ ॥
क्रूरां दर्शयेद्वाचां भयं तत्र निवेदयेत् ।
बुभुक्षां कथयामास आहारं चैव योजयेत् ॥ १४८ ॥

सदाहं सर्वकायाता ग्रामस्थानेषु दृश्यते ।
तदा ते कथयन्त्येते तां वाचां भयभैरवाम् ॥ १४९ ॥
षण्मासां नश्यते देशे ग्राम्यक्तां (?) भोजनोत्तमाम् ।
तेषां क्षीरसमं देयं तोयं चैव सुखोदयम् ॥ १५० ॥
शारिकाशुकमुख्यांस्तु कपोता हरितास्तथा ।
चक्रवाका भासखकीका सर्वे आगत्य मीलये ॥ १५१ ॥
G 243 ग्राममध्यगता ह्येते यदा कुर्वन्ति मालयम् ।
तदा ते कथयन्त्येवं महादुर्भिक्षकारणम् ॥ १५२ ॥
अनावृष्टिं तथा व्याधिं बहुरोगसमागमम् ।
लूता विस्फोटकाश्चैव महातस्करताश्रयाम् ॥ १५३ ॥
अवगच्छन्तु भवन्तो वै षड्भिर्मासैर्भविष्यते ।
यदा सर्वपक्षिगणा क्रूरं चक्रतुर्भृशदारुणम् ॥ १५४ ॥
रोदमाने तदा सर्वे सत्त्वानां च निवेदिता ।
यथास्थिता यथाकालं तदैव तत्र योजयेत् ॥ १५५ ॥
दकारबहुलां वाचं मनुष्यभाषिणो यदा ।
आगत्य ग्रामवासेऽस्मिन् कथयन्ति यथा हि तम् ।
रात्रौ स्वस्त्ययनं कृत्वा तस्माद्देशादपक्रमेत् ॥ १५६ ॥
मधुराक्षरसंयुक्तं यदा नेदु सपक्षिजा ।
तस्मात् सुभिक्षमारोग्यमेवं चाहुर्निवेदयेत् ॥ १५७ ॥
यदा दक्षिणतो गच्छे मृगा गच्छेथ मग्रतम् ।
सिद्धिं च निर्दिशन्ते ताः मृगाश्चैव सुपुष्कलाम् ॥ १५८ ॥
श्वानजम्बूकनिलयस्थाः ते मृत्युं दर्शयन्ति ते ।
न गच्छेत्तत्र मेधावी जम्बूकैश्च निवारितः ।
प्रविशेत् स्वालयं क्षिप्रं कथयामास ते तदा ॥ १५९ ॥
अतिक्रूरा निनेदुस्ताः अग्रतश्चापि प्रधावयेत् ।
गच्छेत तत्क्षणान्मन्त्री यदिच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥ १६० ॥
वामतो दक्षिणं गच्छेज्जम्बूको यदि गच्छतः ।
सिद्धियात्रं विजानीयाज्जम्बूकेन निवेदिताम् ॥ १६१ ॥
चाषा च पक्षिणा सर्वे मृगाश्चैव सजम्बुकाः ।
हरिणा शशकाश्चैव विविधा तिर्यजातयः ॥ १६२ ॥
प्रदक्षिणं च यदा चक्रुर्महासिद्धिं सुपुष्कलाम् ।
कथयामास ते सर्वं गच्छ पूज्यो भविष्यसि ॥ १६३ ॥

सर्वमशोभना ह्येते उरगा श्वापदादयो । G 244
मार्गे यदि दृश्यते स्थान गच्छेत् कुत्र वा क्वचित् ॥ १६४ ॥
सर्वे ते कथयन्त्येवं नास्ति सिद्धि निवर्तताम् ।
गच्छतां स्वकमावासं स्वस्थो तिष्ठति स्वे गृहे ॥ १६५ ॥
न गच्छेत्तत्र मन्त्रज्ञो उरगैस्तु निवेदितम् ।
यदि गच्छेत्तदा कालं उद्वेगो मृत्यु वा भवेत् ॥ १६६ ॥
नानातिर्यगता प्राणा जलावासा स्थलेचरा ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव कथयन्ति शुभाशुभम् ॥ १६७ ॥
विपरीतैर्भयं विद्यात् स्वस्थैः स्वस्थतां गताः ।
केचित् तिर्यगता दिव्याः मानुषाभाषिणो तदा ॥ १६८ ॥
योऽयं निवेदये वार्चा तं तथैव नियोजयेत् ।
स्वलिङ्गैः सदा स्वास्थ्यं क्रूरैश्चापि सुभैरवम् ॥ १६९ ॥
तत्तथैवावधारणार्थं बुद्धिं दद्याथ मन्त्रवित् ।
लिङ्गाननेकधां लक्ष्ये नानायोनिसमाश्रिताम् ॥ १७० ॥
मानुषाणां तथा वाचा युक्ता मध्यार्थभाषिणी ।
मध्यदेशे तु या वाचा शब्दपदार्थावभाषिता ॥ १७१ ॥
स मानुषी वाचमित्याहुः ततोऽन्यं म्लेच्छवाचिनी ।
वाणी सर्वततो ज्ञेया मध्यदेशे निबोधिता ॥ १७२ ॥
मधुराक्षरसंयुक्ता हृद्या कर्णसुखावहा ।
अनेला मानसोद्भूता अविक्षिप्तार्थभाषिणी ॥ १७३ ॥
स ज्ञेया मानुषी वाचा रुतं चैव स्वभावतः ।
ततोऽन्ये सर्वतोऽनर्था सा वाचा म्लेच्छवर्णिनी ॥ १७४ ॥
कथितं मानुषं वान्यं पशूनां तावदिहोच्यते ।
सिंहोऽपि देशमाक्रम्य गच्छेत्पुरवरं सदा ॥ १७५ ॥
भृशं तत्र हरेत् क्षिप्रं तरुं तस्य सुदारुणम् ।
रुद्यते पशुराजा वै करुणं दीन निवेदयेत् ॥ १७६ ॥
महद्भयं तदा विद्यात् सर्वदेशोपसंप्लवम् । G 245
महापुरे यदा रावं पशुराज्ञेति श्रूयते ॥ १७७ ॥
पश्चिमे महद्भयं विद्याद् दक्षिणे शान्तिकामताम् ।
पूर्वेण तु भवेच्चक्रं परराष्ट्रागमं विदुः ॥ १७८ ॥
उत्तरेण भवेद् घोरा अतिवृष्ट्याद्य संप्लवम् ।
विदिक्षेष्वेव सर्वत्र भयं चैव निवेदयेत् ॥ १७९ ॥

रावैर्द्विस्त्रिभिर्ज्ञेयं त्रिभिर्दिक्षु महद्भयम्।
क्षेम दक्षिणतो सर्वं सिंहेनैव निवेदितम्॥ १८०॥
चत्वारो मथ पञ्चा वा सप्त षष्ठ निबोधिता।
अष्टात् परेणमित्याहुः निःफलं चैव नियोजयेत्॥ १८१॥
दक्षिणावस्थिता श्रेया अथउर्ध्वार्थसंपदा।
क्षेमं * कसामीप्ये देवायतनचत्वरे।
सदारावं तदा वर्ज्यं तस्माद्देशादपक्रमेत्॥ १८२॥
यथा सिंहे तथा सर्वं सर्वप्राणिषु योजयेत्।
शरभैः शार्दूलाव्यैर्वै यथा तत्सर्वं निबोधताम्॥ १८३॥
अभावा मानुषावासं हिंसः शरभया सदा।
किं तु प्रासादिकं ज्ञानं कथ्यते तां सुरोत्तमाम्।
क्रोष्टुकेषु च सर्वत्र तां तथैव नियोजयेत्॥ १८४॥
पूर्वपश्चिमतो भागे यदा हस्ती रुदेद् भृशम्।
तस्मान्महद्भयं विन्द्यात् तत्र देशेषु जन्तुनाम्॥ १८५॥
श्मशाना वायसाश्चैव उर्ध्वतुण्डा रुदन्ति वै।
तत्र विद्यान्महोद्वेगं वायसैश्च निवेदितम्॥ १८६॥
प्रस्थितो मन्त्रिणे कालं यद्यदेशाभिकाङ्क्षिणम्।
गच्छतो वामतः काको भृशं रौति सुदारुणम्।
न गच्छेत् तत्र मेधावी वायसेन निवेदितम्॥ १८७॥
रौति दक्षिणतो श्रेयं अग्रतस्तु निवारयेत्।
न गच्छेत् तत्र मन्त्रज्ञो गच्छन् मृत्युवशो भवेत्॥ १८८॥
गोमयं भक्षयेत् पक्षी यदा रौति सुखोदयम्।
G 246 मृष्टान्नभोजनं विद्यात् गोलाभं चैव निर्दिशेत्॥ १८९॥
मन्दिरारूढनिलयस्थो यदा रौति स वायसः।
अर्धरात्रे तथा काले गृहभेदं समादिशेत्॥ १९०॥
धान्यपुञ्जधरारूढो यदा रौति स वायसः।
सुशुभं कूजते क्षिप्रं मधुरं चापि भाषितम्।
अचिरात् तं फलं विन्द्या बहुधान्यधनागमम्॥ १९१॥
गृहद्वारं यदा पश्यं वायसो रवतो भृशम्।
तत्र रात्रौ भवेत्तस्य शस्त्रसंपात चौरिभिः॥ १९२॥
क्षीरवृक्षे यदा श्रेष्ठो कण्टके कलहप्रियः।
हस्तिस्कन्धसमारूढं अश्वपृष्ठे च शोभनम्॥ १९३॥

भोगिनां मस्तके राज्यं पद्मपुष्पेषु संपदा ।
नानाविविधसंपल्यो मधुराक्षरकूजिताः ॥ १९४ ॥
सर्वतो लिङ्गमर्थानां तत्पूर्वं कथितं हितम् ।
* * * कूजनं क्रूरं समं सर्वेषु योजयेत् ॥ १९५ ॥
शिवाय सर्वतो ज्ञेया दक्षिणेन फलप्रदा ।
तत्सर्वं सिंहतो ज्ञेयं शिवान्तु सर्वदा ॥ १९६ ॥
क्रूरा अशोभनारावा दीना मृत्युपरायणा ।
सर्वतो सुखनिष्पत्तिं फलं सस्यसमुद्भवम् ॥ १९७ ॥
सर्वे शिवगणा प्रोक्ता सायंप्राते च शोभना ।
एकारवेति यद्येता दक्षिणां दिशमाश्रिता ॥ १९८ ॥
शिवा शिवतमा प्रोक्ता द्वितीया रात्रे तु कीर्त्यते ।
तृतीये रावे तथा ज्ञेया राज्ञे अर्थावहा भवेत् ॥ १९९ ॥
चतुर्थे तु महालाभं पञ्चमे पुत्रदा स्मृता ।
षष्ठे च धननिष्पत्तिः सप्तमे न भवे शुभा ॥ २०० ॥
अष्टमं निःफलं विद्या तदूर्ध्वं भयपीडिता ।
एवं करोति शिवा तत्र असंख्येया तेऽप्यनिष्टदा ॥ २०१ ॥
पश्चिमेन शिवा ज्ञेया परचक्रभयं तदा ।
द्वितीये दुर्भिक्षकान्तारे क्रूरराचा यदा भवेत् ॥ २०२ ॥
तृतीये अर्थनाशं तु चतुर्थे प्राणरोधिनम् । G 247
पञ्चमे कथिते रावे अमात्यानां व्याधिपीडकाः ॥ २०३ ॥
षष्ठे चोरागमं विद्या सर्वतस्तु शिवा तु सा ।
सप्तमेन महाव्याधिं अष्टमे चादि निन्दिता ।
तदूर्ध्वं भयभीतार्ता क्षुधिता वा प्रभाषते ॥ २०४ ॥
उत्तरेण तु यो रावो शिवायाः श्रूयते सदा ।
महाघोरतमं व्याधिं तत्र स्थाने विनिर्दिशेत् ॥ २०५ ॥
द्वितीये क्रूररावे तु दुःखदा सा भवेत्तदा ।
तृतीये अर्थनाशं तु चतुर्थे अग्निसंभवम् ॥ २०६ ॥
पञ्चमेन महावृष्टिं षष्ठे राजापरुध्यते ।
सप्तमेन महायुद्धं शस्त्रसंपातमादिशेत् ।
अष्टमे निःफलं विद्या तदूर्ध्वं यः किंचि रोदिति ॥ २०७ ॥
पूर्वेण च यदा रौति शिवा यामे तु मन्तिमे ।
तदा सजागमं विद्या द्वितीयारावे तु प्रेषिणाम् ॥ २०८ ॥

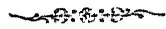
तृतीयं राजतो मृत्युः बद्धो वा यदि श्रूयते ।
चतुर्थे चोरतो दुःखं पञ्चमे प्राणरोधिकम् ॥ २०९ ॥
षष्ठे च भवते व्याधिः सप्तमे अग्नितो भयम् ।
अष्टमे निःफलं विद्या शेषं पूर्ववत् सदा ॥ २१० ॥
यदा दक्षिणपूर्वेण विदिशे व्याहरे शिवा ।
प्रथमेन भवेत्सौख्यं द्वितीये सर्वतो जनाम् ॥ २११ ॥
तृतीये धननिष्पत्तिश्चतुर्थे सस्यसंपदा ।
पञ्चमे सुभिक्ष निर्दिष्टं षष्ठे क्षेमं समादिशे ।
सप्तमे सर्वतो ज्ञेयमष्टमे निष्फलं सदा ॥ २१२ ॥
यदा दक्षिणभागेन पश्चिमामध्यतो सदा ।
निर्दिशे च ध्रुवा ज्ञेया शिवा क्रूरतमा स्मृता ॥ २१३ ॥
प्रथमेन भवेन्मृत्युः हन्यते ब्राह्मणा द्विके ।
G 248 तृतीये क्षत्रियं हन्या चतुर्थे वैश्यमित्याहुः ।
* * * * पञ्चमे शूद्रयोनयः ॥ २१४ ॥
षष्ठे म्लेच्छिनां हन्ति सप्तमे तस्करा तदा ।
अष्टमे निःफलं विद्या अतिदुःखं क्रूराविणाम् ।
* * * * असंख्येयानां तु दृश्यते ॥ २१५ ॥
उत्तरापश्चिमाभागे यदा तीव्रं विरौति सा ।
अतिक्षिप्रं महाव्याधिः राज्ञे वा व्याधिमादिशेत् ॥ २१६ ॥
द्वितीयेन हन्यते हस्ती राज्ञो मुख्यो गजोत्तमम् ।
तृतीयेन भवेन्मृत्युः * * मादिष्टः तत्र वै ।
चतुर्थेन भवेन्मृत्युः मुख्यानां च धनेश्वराम् ॥ २१७ ॥
पञ्चमे धननाशं तु षष्ठे व्याधि संभवेत् ।
सप्तमेन भवे दुःखं सर्वतो च भयावहम् ।
अष्टमे निःफलं विद्या पूर्वं वै सर्वतो तदा ॥ २१८ ॥
उत्तरे पूर्वयोर्मध्ये विदिक्षु चैव लक्षयेत् ।
अतिक्रूरा यदा क्षिप्रं शिवा व्याहरते तदा ।
उत्तरे पूर्वतो मध्ये विदिक्षुश्चैव लक्षयेत् ॥ २१९ ॥
अतिक्रूरा यदा क्षिप्रं शिवा व्याहरते सदा ।
मृत्युना हन्यते जन्तुः पौरमुख्यो धनेश्वरः ॥ २२० ॥
द्वितीयेन हनेन्मन्त्री तृतीये गजमादिशे ।
चतुर्थे विविधयोन्यस्तु म्लेच्छतस्करजीविनः ॥ २२१ ॥

चतुर्थेन भवेद् व्याधिः सर्वेषां च तदा जने ।
पञ्चमे हन्यते पुत्रो अमात्यो वा नृपतेर्ध्रुवम् ॥ २२२ ॥
षष्ठे मृत्युमादिष्टा महादेव्या तु नराधिपे ।
सप्तमेन हनेद् राष्ट्रं मुक्तं चापि विनिर्दिशेत् ।
अष्टमं निःफलं विद्या पूर्ववत् कथिता सदा ॥ २२३ ॥
अतः ऊर्ध्वं तथा रावो शिवानां च भवे यदा ।
अमानुषं तं विदुर्मर्त्यो महोपद्रवकारकम् । G 249
अपक्रम्य ततो गच्छे मन्त्रैर्वा रक्षमादिशेत् ॥ २२४ ॥
महाप्रभावैर्विख्यातैर्जिनाब्जकुलयोद्भवैः ।
होमकर्माणि कुर्वीत शान्ति तत्र समादिशेत् ॥ २२५ ॥
एवंप्रकारा ह्यनेकानि बहुभाष्या पशुयोनयः ।
नानापक्षिगणांश्चापि रुतं चैव निबोधये ॥ २२६ ॥
बहुधा तिर्यगता केचिच्चापसुमूर्तिजा ।
केचिद्विकृतरूपास्तु रौद्राः सत्त्वविहेठकाः ॥ २२७ ॥
केचित् प्राणापरोधिकां सत्त्वां हिण्ड्यन्तेऽथ महीतले ।
असृक्पानरताः केचित् अन्वाहिण्डन्ति मेदिनीम् ।
केचिद्रुधिरगन्धेन भ्रमन्ते मेदिनीतलम् ॥ २२८ ॥
विविधा मातरा ह्येते ग्रहमुख्यास्तु बालिशाः ।
कुमारकुमारिकारूपा ग्रहाः प्रोक्ताः विविधा परा ।
भ्रमन्ते मेदिनीं कृत्स्नां क्षणमात्रेण सर्वतः ॥ २२९ ॥
सहस्रं योजनं केचिद् वायुवद् भ्रमतापराः ।
पशुवेषकृता केचिद् दृष्ट्वा नष्टा च जन्तुषु ॥ २३० ॥
विविधं करोति सर्वे ते सर्वत्र वसुधातले ।
मृतपूतकसत्त्वेषु सुप्ते उपहते तथा ॥ २३१ ॥
गृह्णते मानुषां केचित् बलिमाल्यार्थकारणात् ।
सर्वेषां मानुषां लोके क्रमन्ते केचिन्नभस्तलात् ॥ २३२ ॥
सर्वाकारविदो ज्ञेया बहुरूपा विकारिणः ।
शुभा अशुभरावाश्च ज्ञेया लिङ्गैस्तु सर्वतः ॥ २३३ ॥
शुभाशुभफलं सर्वं विकृतं सुकृतं तथा ।
आगमैर्बहुविधैर्ज्ञेया लोकतत्त्वार्थचिह्नितैः ॥ २३४ ॥
ऋषिभिर्जिनसुतैश्चैव खड्गिभिर्जिनवरैः सदा ।
श्रावकैर्महर्द्धिकैः सर्वं नानायोनिसमाश्रितम् ॥ २३५ ॥

G 250 ग्रहैर्ग्रहवरैः ख्यातैः प्रकृष्टैर्लोकचिह्नितैः ।
ज्ञेयं शास्त्रतो तत्त्वं आगमाधिगमापि वा ॥ २३६ ॥
नानालिङ्गविधानेन गतियोनिविभावतः ।
ज्ञेयं शुभाशुभं सर्वं क्रूरैः सौम्यैश्च लिङ्गिभिः ॥ २३७ ॥
छत्रं सितं पताकं च मत्सं मांसं च सार्द्रयोः ।
उत्क्षिप्ता च मेदिनी पद्मयत्र गोमयं तदा ॥ २३८ ॥
दधि पुष्पं फलं चैव स्त्रियं वाम्बरभूषिताम् ।
शुक्लवस्त्रं तथा ज्ञेयं द्विजं श्रेयार्थभाषिणम् ॥ २३९ ॥
वृषं गजं तथा ज्ञेयं अश्वं चामरभूषितम् ।
प्रदीपं भाजने न्यस्तं पूर्णधान्यफलोदयम् ॥ २४० ॥
देवद्विजप्रतिमां वा पूज्यमाना सदा नृपैः ।
अभिषेकार्थयुक्तं वा नृपबिम्बाथ मन्त्रिणाम् ॥ २४१ ॥
शङ्खस्वनं च भेरींश्च पटहं चापि सुदुन्दुभिम् ।
घण्टाशब्दं प्रहृष्टं च जयशब्दं प्रघोषितम् ॥ २४२ ॥
मानुष्योदीरितां वाचां जयसिद्धिफलप्रदम् ।
एतां निमित्तामावेद्य इष्टां चैव निवेदिताम् ॥ २४३ ॥
सर्वसंपत्करं क्षेमं इष्टं चैव सुपूजितम् ।
सर्वां प्राप्नुयादर्थां सफलां मनसोद्भवाम् ॥ २४४ ॥
मन्त्रजापं ततो गच्छेत् सिद्ध्यर्थी सिद्धिमादिशेत् ।
सर्वेषां सर्वसत्त्वानां प्रस्थितानां तु निर्दिशेत् ॥ २४५ ॥
योऽयं देवताध्यक्ष इष्टो गोत्रजो परो ।
अध्येष्टव्यो भवेन्नित्यं तं लिङ्गी पश्यतो फलम् ॥ २४६ ॥
विविधाकारचिह्नास्तु देवाः प्रोक्तास्तु सर्वदा ।
तल्लिङ्गिना तथा प्रोक्ता विविधा वेषचिह्नयः ।
यो यमिष्टतरं पश्येत् सो तस्यैव फलोदयम् ॥ २४७ ॥
वाचां बहुविधां वव्रे यदा ते मानुषा भुवि ।
G 251 कथयन्ति शुभां वाचां अन्योन्यालापमाश्रिताः ॥ २४८ ॥
परेषां च यदा वव्रे विश्वस्ताश्च समन्ततः ।
एवं च वाचिरे मूचुः शुभं श्रेयं जपं सदा ।
क्षेममारोग्य सर्वं वै स्वस्तिशान्तिसुखोदयः ॥ २४९ ॥
धनिनः देवतो मुख्य सुरो धर्मराजास्तथा ।
सर्वतो भास्करश्चैव छत्रध्वजपताकयोः ॥ २५० ॥

बुद्धं धर्मं तदा संघं मन्त्रं तारमितिः सदा ।
कुमारं काञ्चनं शुभ्रं अग्निस्कन्धं महोत्सवम् ॥ २५१ ॥
जिनं पद्म तथा वज्रं लोकेशं बोधिमुत्तमम् ।
बोधिसत्त्वा तथा लोकां ब्रह्मश्चैव सुरोत्तमाम् ॥ २५२ ॥
बहुप्रकारा ह्यनेकानि प्रशस्तां साधुवर्णिताम् ।
शुश्राव शब्दान् यथा गन्ता सर्वासां प्राप्नुया हि सौ ॥ २५३ ॥
ततोऽन्ये लोकविद्विष्टं सशब्दं चापि निन्दितम् ।
प्रशस्ता शकुनयो ह्येता प्रस्थितानां जपे रताम् ॥ २५४ ॥
सर्वेषां च मयं योगो उद्योगार्थसमंपदाम् ।
ततोऽन्यन्निदितं सर्वं न लेभे कामितं फलम् ॥ २५५ ॥
प्रशस्तैव सर्वतो गच्छे अप्रशस्तैश्च न व्रजेत् ।
प्रणम्य सर्वतो बुद्धांस्त्रयं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ २५६ ॥
स्वमन्त्रं मन्त्रनाथं च मातापित्रौ थ दुःकराम् ।
प्रणम्य सर्वतो गच्छे शिवं तत्र विनिर्दिशेत् ॥ २५७ ॥
आचार्यगुरुमुख्यानामुपाध्यायं चैव यत्नतः ।
प्रशस्तधार्मकथिकप्रशस्तं चैव व्रते रतम् ।
यथार्हं तदाभ्यर्च्य इष्टदेवमनेहितम् ॥ २५८ ॥
स्नातभुक्तोऽथ विश्वस्तः प्रत्यूषे वा जितेन्द्रियः ।
शौचाचाररतो मन्त्री गच्छेत् सर्वतोदिशम् ।
यथाशाफलसंयोगं प्राप्नुयात् सर्वतो शुभाम् ॥ २५९ ॥
शान्तिस्वस्त्ययनं चैव आयुरारोग्यवर्धनम् । G 252
श्रीसंपत् कथितामग्र्या यथेष्टं मनसेप्सितम् ॥ २६० ॥ इति ॥

इति महायानवैपुल्यसूत्राद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकादार्यमञ्जुश्रीमूलकल्पाद् विंशतिमः सर्वभूतरुतज्ञाननिमित्तशकुनिनिर्देशपरिवर्त-पटलविसरः परिसमाप्तमिति ॥



G 253

२३ शब्दज्ञानगणनानामनिर्देशपटलः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयकल्पविसरे शब्दगणनानिर्देशं नाम विवर्तनम् । शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहम् ॥

एवमुक्ते भगवां मञ्जुश्रीः कुमारभूतो उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य, येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य, त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य, भगवतश्चरणयोर्निपत्योत्थाय एवमाह—तत्साधु भगवां निर्दिशतु शब्दज्ञानगणनानिर्देशं नाम धर्मपर्यायम् । श्रुत्वा सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टानां सत्त्वानां च सर्वशब्दगणनाज्ञानम् । तद्भविष्यति सर्वसत्त्वानां सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टानां च हितोदयं सुखावहं सर्वशब्दगणनासमतिक्रमज्ञानम् । तद्भगवां आर्यकामो हितैषी सर्वसत्त्वानामर्थे भाषयतु ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिर्मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य साधुकारमदात्-साधु साधु मञ्जुश्रीः यस्त्वं तथागतमेतमर्थं सत्त्वसत्त्वार्थसंपदं प्रति प्रस्तोतव्यं मन्यसे । तेन हि त्वं मञ्जुश्रीः शृणु, निर्देक्ष्यामि । अथ खलु मञ्जुश्रीर्भगवता कृताभ्यनुज्ञातस्ततोत्थाय स्वे आसने निषण्णोऽभूद् धर्मश्रवणाय भगवन्तं व्यलोकयमानः ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनं बुद्धचक्षुषा अवलोक्य, सर्वशब्दगणनासमतिक्रमास्पन्दनां नाम समाधिं समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः नीलपीतावदातमाञ्जिष्ठस्फटिकवर्णादयो महारश्मिजालप्रभामण्डला निश्चेरुः । निश्चर्य च समन्तात् सर्वसत्त्वानां सर्वलोकधातुं महतावभासेनावभास्य, सर्वसत्त्वभवनानि च सर्वनरकतिर्यक्प्रेतयामलौकिकां असुरभवनां अवभासयित्वा, महादुःखवेदनां प्रतिप्रस्रभ्य,
G 254
पुनरेव भगवतः शाक्यमुनेः कायेऽन्तर्धीयते स्म ॥

सर्वसत्त्वां संप्रबोध्य भगवानेवमाह—

अथ शब्दविदं ज्ञानं बाध्यं धर्मार्थपूजितम् ।
गणनां चैव लोकज्ञो भाषिरे मधुरां गिराम् ॥ १ ॥
बाध्यात् पदतो ज्ञेयं पदं बाध्यसुभूषितम् ।
धातुस्तेनातिविस्तारं प्रत्ययान्तं क्रियोद्भवम् ॥ २ ॥
लिङ्गं शब्दतो ज्ञेयं न लिङ्गं शब्दवर्जितम् ।
शब्दलिङ्गसमुद्भेदा नीतनेयधर्मार्थयोः ॥ ३ ॥
नानानेयं शब्दं च ज्ञानं न शब्दं ज्ञानयोजितः ।
ज्ञानशब्दाच्च यो भावः स शब्दो तत्त्वार्थयोजनः ॥ ४ ॥
प्रत्यया हेतुता ज्ञेया प्रत्ययो हेतुमुद्भवः ।
प्रत्यये तु तदा हेतौ क्रियायोगविभाविनी ॥ ५ ॥

धारणा वा तदो ह्युक्ता आश्रयो प्रत्ययो विदा ।
धातुप्रत्यययोगेन शब्दो धर्मार्थयोजकः ॥ ६ ॥

न शब्दो अर्थतो ज्ञेयं न शब्दादर्थमिष्यते ।
अर्थप्रत्यययोगेन स शब्दो शब्दविधैर्विदाः ॥ ७ ॥

बहुधा धातवो प्रोक्ता प्रत्ययाश्च तदाश्रयाः ।
यं प्रतीत्य तदा शब्दा विभेजुस्ते वराश्रयाः ॥ ८ ॥

येन शब्दविदो विद्या मन्त्रा तत्त्वार्थभाषिता ।
न तां शब्दवदवगच्छेन्मन्त्राणां प्रत्ययैर्विना ॥ ९ ॥

नोत्पद्यन्ते तथा मन्त्रा विना प्रत्ययमाश्रया ।
न तां दिदृक्षु सर्वत्र मन्त्रां प्रत्ययतो शिवाम् ॥ १० ॥

अर्थप्रत्ययतां शून्यां धातवैश्च विवर्जिताम् ।
न तां विद्धि संयोगं लिङ्गवाक्यार्थसंमतम् ॥ ११ ॥

न लिङ्गे गति निर्दिष्टा हेतुप्रत्ययधातुजा । G 255
तथाश्रयोजिता सिद्धिर्लिङ्गो धर्मार्थयोजिता ॥ १२ ॥

गतिदेशक्रियानिष्ठं पदं वाक्यमतः परम् ।
चित्रत्वमति वा शब्दे यो वाचमवसृजेत् सदा ॥ १३ ॥

न शब्दार्थनिष्पत्तिर्लिङ्गेष्वेव तु योजिता ।
मूर्धजं कथितं शब्दं ह्रुंकारार्थभूपितम् ॥ १४ ॥

सर्वं प्रत्ययमाश्रित्य आश्रयं च विनाश्रये ।
ताल्वोष्ठपुटो वाक्य आश्रयोद्भावनो परे ॥ १५ ॥

शमिनादाश्रयते ज्ञेयं युक्तिरव्यभिचारिणी ।
मतिस्तत्त्व तथा धातो विस्तारामर्थभूषिता ॥ १६ ॥

धातुः करोति संयोगं प्रत्ययार्थात्तु लिङ्गितः ।
दन्त्यं तालवश्चैव ओष्ठं शाब्दमतः परम् ॥ १७ ॥

ऋजिक्षु सर्वतो लोकां विसर्गां धातुचेष्टिताम् ।
गतिमन्त्रप्रभावेन आश्रयान्तां निबोधताम् ॥ १८ ॥

गतिमेव सदा मन्त्रा धातुप्रत्ययजा मता ।
उभौ तां शब्दनिष्पत्तिं प्रत्ययादाश्रयः स्मृतः ॥ १९ ॥

विभज्य बहुधा मन्त्रां सद्भावागमनिश्रियान् ।
विभक्तियोनिजा ह्येषा शब्दा मन्त्राश्च सर्वतः ॥ २० ॥

ज्ञेया विभजत्यर्थे * * * पूजितास्तथा ।
एकद्विकसमायोगात् त्रिकसंख्यार्थसप्तमम् ।
असंख्यादष्टाधिका ज्ञेया मानुषाणां निबोधिता ॥ २१ ॥
आधारं ज्ञेयमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रार्थपूजने ।
सप्तमे विधिनिर्दिष्टा मन्त्रसिद्धिषु जापिनाम् ॥ २२ ॥
सप्तमर्थार्थतो ज्ञेया सप्तमस्य क्रमो यथा ।
विविधं क्रमनिर्देशं सप्तम्यर्थेषु योजयेत् ॥ २३ ॥
मन्त्राणां षष्ठयो ख्याता समूहावयवास्तथा ।
संबन्धाद्धि मन्त्राणां लिङ्गे द्वे नियोजिता ॥ २४ ॥
G 256 विकारं बहुधास्तस्य षट्प्रकारं निगद्यते ।
स्त्रीषु सलिङ्गिनी षष्ठया अष्टमन्त्रेषु योजयेत् ॥ २५ ॥
पञ्चप्रकारा ये मन्त्रा पञ्चमर्थार्थयत्नता ॥
नपुंसकलिङ्गमन्त्रार्थो उक्तो धर्मार्थवर्जिता ॥ २६ ॥
ये तत्र निश्रिता मन्त्रा अपादानार्थयोजिता ।
* * * * सर्वे प्राणहरा स्मृताः ।
मूर्ध्नशब्दसमायोगान्निःसृता ओष्ठदन्तयोः ॥ २७ ॥
जिह्वा निष्पीडिता येऽत्र शब्दप्राणापरोधिका ।
समप्रत्ययशान्ता ते शमिधातुसयोजिता ॥ २८ ॥
प्रपन्नासकरान्तानां अस्त्ययनेत्रयोजयेत् (?) ।
पुष्ट्यर्था धातवो ये तु शब्दाः प्रत्ययार्थसुशोभिता ॥ २९ ॥
तां विदुः पुष्टिकर्मेषु अपादानेषु योजिताः ।
विभज्य यं स्थानं येऽन्ये परिकीर्तिताः ॥ ३० ॥
शब्दाक्षरविपुष्टा ते धातु विकसते स्फुटा ।
पुंस्कलिङ्गा तथा मन्त्रा महाप्रभावार्थयोजिता ॥ ३१ ॥
चतुर्थसंविभक्तिभ्यामक्षरं मात्रभूषितम् ।
पवर्गे कथितं ह्यग्र प्रवरं सर्वकार्मकम् ॥ ३२ ॥
रेफप्रत्ययसमोद्भूतं उकारावथ शोभनम् ।
मध्यचिह्नं विसर्गं च भकारं गतिभूषितम् ॥ ३३ ॥
विदुः प्रवरं शब्दं सर्वकर्मार्थसाधनम् ।
नियतं नैष्ठिके वर्त्म बोधिसत्त्वे नियोजिते ॥ ३४ ॥
अनुत्तरं शब्दमित्याहुः महाबोधिपथं पथम् ।
यं जपं मानुषो क्षिप्रं सर्वमन्त्रां प्रसाधयेत् ॥ ३५ ॥

पञ्चमार्थमतः प्रोक्ता अक्षरमेकचिह्नितम् ।
अन्तजं पवर्गेम मकारान्तं विदुः सदा ॥ ३६ ॥
द्वितीयं लोकमुख्यं तु शब्दमित्याहु मानवा ।
न तु शब्दसमायोगा निःसर्गान्तविभूषितम् ॥ ३७ ॥
जज्ञे यो प्रवरो मन्त्रो उत्कृष्टो शब्दयोनिजो । G 257
बुद्धो लोकगुरुः श्रेष्ठः छत्रोष्णीषेति लक्ष्यते ॥ ३८ ॥
अन्ते तकारवर्गे तु कथिता लोकगुरो त्रिकम् ।
मन्त्रा सर्वतो ह्यग्रे सशब्दो लोकपूजितो ॥ ३९ ॥
अकारान्तं विभक्तार्थं विसर्गान्तं विबोधितम् ।
मध्यलिं * सशब्दान्तं अन्तं शब्दविभूषितम् ॥ ४० ॥
तं विदुः शब्दमुत्कृष्टं मन्त्रं देवपूजितम् ।
पञ्चमार्थे नियुक्ता ये संख्ये गणनोद्भवे ॥ ४१ ॥
विभक्तपञ्चमे ह्येते विभक्त्यार्थ सुपञ्चमा ।
अनन्ता कथिता मन्त्रा अनन्ता जिनभाषिता ॥ ४२ ॥
मन्त्रा उष्णीषा * * * * जिनमूर्धजा ।
अनन्ता शब्दविदो ज्ञेया शब्दाः सर्वार्थसंपदाः ।
चतुःषष्टिपरोपेतां मन्त्रं शब्दयोजिनम् ॥ ४३ ॥
स शब्दो सर्वतः श्रेष्ठो पवर्गे यः चतुरं पदम् ।
चतुर्मकारसंयोगा अन्ते निःप्रयोजिता ॥ ४४ ॥
सशब्दा मन्त्रमुख्यास्तु छत्रसंज्ञार्थसाधका ।
चतुर्थगणना प्रोक्ता विभक्तिः शब्दयोनिजा ॥ ४५ ॥
संप्रदानार्थमन्त्राणां द्विलिङ्गादाश्रयतां गताः ।
कथिता अब्जिने मन्त्रा पुष्ट्यमर्थार्थसंपदा ॥ ४६ ॥
चतुर्थ कथिता मन्त्रा चतुःप्रकारा नियोजिता ।
चतुरक्षरशब्दानां मूर्धमूष्माथ तालवम् ॥ ४७ ॥
कथितं शब्दनिर्देशे तृतीये संप्रयोजयेत् ।
विकासार्थं स्फुटधातूनां प्रत्यये लिङ्गेऽथ योजयेत् ॥ ४८ ॥
प्रथमे अन्ते च यः शब्दो स शब्दो लोकपूजितो ।
वरो मन्त्रो प्रधानाख्यो * * * संनियोजितो ॥ ४९ ॥
स शब्दो पुष्टिनो ह्युक्तो अब्दकेतुसमुद्भवो ।
त्रान्तो त्रिकसमायोगो मध्यन्तोऽतिवर्णितो ॥ ५० ॥

258 स शब्दो लोकमुख्योऽसौ प्रवरो अर्थतो सदा।
धात्वोपेतं सदाकालं समार्थे तं प्रयोजयेत्॥ ५१॥

उषसमे च तदा वक्रे धातुं तां निबोधताम्।
मधुराक्षरसंपन्नो उत्वं तां पुंसि योजिताम्॥ ५२॥

स शब्दो लोकमग्रोऽसौ प्रवरो मन्त्रमुच्यते।
चतुष्टयां तमक्षरं वर्ज्ये द्वितीयायां परिकीर्तिता॥ ५३॥

स ज्ञेयो शान्तिकाम्यार्थं प्रवरो बुद्धभाषितो।
तृतीयो ओष्ठपुरोष्माणं प्रत्ययार्थान्तवर्जितम्॥ ५४॥

पुष्टिलिङ्गे सदा युक्तो भूधातोन्तयोजितो।
ऊर्ध्वचिह्नं तथो भ्रान्तं स मन्त्रो बुद्धभाषितो॥ ५५॥

तृतीये विभक्तिमाश्रित्य योऽर्थो भूतिसशब्दयोः।
आद्या वर्णतो ग्राह्या अग्रा शान्तिका पौष्टिकोदया॥ ५६॥

द्वितीयं कर्मणि प्रोक्तं तृतीया करणे तथा।
उभयो विभक्तयो ज्ञेयं स शब्दो मन्त्रराट् स्मृतः॥ ५७॥

प्रथमं कर्ममित्याहुः कर्ता यः स्वतन्त्रयोः।
जिनाब्जकुलिशे मन्त्रे मन्त्रनाथा हितास्तथा।
हिते विभक्त्यन्ता सर्वतो ज्ञेया प्रत्ययान्ताश्च धातुजा॥ ५८॥

सलिङ्गमर्थतो ज्ञेयं वाक्यात् पदयोद्भवेत्।
मन्त्राः कथित मुख्यास्तु विभोः जिनजा सुराः॥ ५९॥

जिनाब्जकुलयोर्मन्त्रा वज्रिणे लौकिकास्तथा।
अर्थवतः धातुं परिगृह्णाति संक्रमाम्॥ ६०॥

उदात्तानुदात्ताश्चैव सूचिता ज्ञेयार्थसाधना।
मन्त्रा लिङ्गगतान्ता च मध्ये ह्रुत्वा तथोद्यताः॥ ६१॥

अनादिनिधनं शब्दं तन्मन्त्रांश्च योजयेत्।
निवान्ता कलमन्ताश्च रेफयुक्ताश्च विस्तरा॥ ६२॥

बाध्यार्थपदयोर्मध्ये यो लिङ्गच्छविच्छुतम्।
G 259 तं लिङ्गं स्वरितोपेतं क्षिप्रं मन्त्रेषु योजयेत्॥ ६३॥

पूर्वानुपदयो कालक्रियाशक्तिषु युज्यते।
पदयोर्मध्यनिष्पत्तिः योऽर्थो स शब्दविश्रुतः॥ ६४॥

तस्मात् तं परिज्ञेयार्थं सुरूपं रूपवर्णितम्।
फलार्थे निष्पदश्रेयं स मन्त्रो बुद्धभाषितः॥ ६५॥

अभावस्वभावतो कालं स्वभावतश्च परिकीर्त्यते ।
तयोर्निजरयं शान्तं पदधर्मार्थभूषितम् ।
वाक्यं परतो श्रेयं शान्तमर्थाक्षरं शुभम् ॥ ६६ ॥
यं ज्ञेयो मन्त्रिभिर्मन्त्रा प्रशस्ता बुद्धभाषिता ।
इतिमेकाक्षरं ब्रह्म ओंशब्दार्थभूषितम् ॥ ६७ ॥
ज्ञेया रूपिणः शुभ्रो प्रशस्तो मङ्गलावहो ।
कल्याणार्थकरो ह्युक्तो प्रशस्तो मङ्गलान्वितो ॥ ६८ ॥
उक्तो लोकनाथैस्तु स मन्त्रो मुख्यतो स्मृतो ।
विविधार्थाश्च शब्दमुख्याश्च मुख्यशब्दा परैस्तथा ॥ ६९ ॥
स शब्दो धर्मिणः श्रेयो क्रियाकालक्रमोदिता ।
आदित्यवंशात् ते मन्त्रा दीप्तिशब्दार्थभूषिताः ॥ ७० ॥
ज्वलन्ते पावके मन्त्रा सौम्यासौम्याह्वययोजिताः ।
सुरूपाः सौम्यचित्ताश्च नक्षत्राभिधर्मिणो सदा ॥ ७१ ॥
चन्द्रेऽस्मि उदिता मन्त्राः शब्दैश्चन्द्राक्षरोदितैः ।
शुचयो निर्मला प्रोक्ता अक्षरा एकजा परा ॥ ७२ ॥
अमात्रसहविख्याता चारुवर्णा महर्द्धिका ।
मन्त्रा अग्रवरा प्रोक्ता उष्णीषा जिनसूनुभिः ॥ ७३ ॥
विविधाकारयोगास्तु योगतुष्टिरिव स्थिता ।
प्रसन्ना शुचयो नित्यं प्रत्येकार्हयभाषिता ॥ ७४ ॥
प्रत्येकबुद्धयोर्मन्त्रः प्रशस्तो शान्तिकर्मणे ।
स्वाहावासनयोर्मन्त्रा ओंकारार्थपूजिताः ॥ ७५ ॥
एकद्विकसंज्ञा सो स मन्त्रो सर्वकर्मसु । G 260
श्रेयसैव सदा योज्या प्रत्येकजिनमुद्भवो ॥ ७६ ॥
अनन्तः सहितो ज्ञेयः पूर्वदाश्चान्तमध्यमम् ।
बहुलिङ्गिनो मन्त्रा बहुमन्त्रार्थमक्षरा ॥ ७७ ॥
बहुधा धातवो ह्येते * * षान्ता निबोधिता ।
मन्त्रां तां तु वै सिद्धिः तवर्गे मादिमक्षरम् ॥ ७८ ॥
रेफान्तं आदितः ताडयेन्मन्त्राब्जसंभवाः ।
तारय दुःखितां सत्त्वां करुणैषामवलोकिते ॥ ७९ ॥
सा वै तारमुख्या तु अनन्ता मन्त्रा हि वै तुरे ।
त्वर्याच्छब्दयोर्मध्ये पवर्ग मामकी स्मृता ॥ ८० ॥

पवर्गे देवं विख्याता कुलमातार्थसाधनी ।
सितचिह्ना प्रसिद्धार्थे देवी पाण्डरवासिनी ॥ ८१ ॥
तारा तु कथितं पूर्वं रक्षोर्थे तां प्रयोजये ।
ळकारबहुलो योधर्गच्छब्दान्तं ते त्रयोद्भवम् ॥ ८२ ॥
जिनाङ्कमसृजं शब्दं देवी लोचनमुच्यते ।
शब्दमर्थाक्षरं सिद्धिः सर्वमन्त्रेषु योजयेत् ॥ ८३ ॥
कुलमात्रा प्रसिद्धेयं जिनवज्राब्ज सर्वतः ।
सर्वमन्त्रेषु प्रयोक्तव्या पूर्वमादित शान्तये ॥ ८४ ॥
लोचना भुवि विख्याता मन्त्राग्रा तत्र साधनी ।
यतः सर्वमिति ज्ञेयं आदिमन्त्रेषु योजयेत् ॥ ८५ ॥
प्रसिद्ध्यर्थं च मन्त्राणां आत्मरक्षार्थकारणम् ।
सप्रसिद्धा सर्वतो ज्ञेया देवीं तां जिनलोचनाम् ॥ ८६ ॥
अनेकाकाररूपास्तु मन्त्रा स शब्दते सदा ।
आदिमध्येषु वर्णेषु चतुःषष्ठ्याक्षरेषु च ॥ ८७ ॥
सर्वत्र सर्ववर्णेषु मन्त्रां तन्त्रांश्च योजयेत् ।
आदिमेषु च सर्वत्र तवर्गा तच्च वर्णयोः ॥ ८८ ॥
G 261 सर्वे शान्तिनः प्रोक्तानां त्रिधा प्रयोजयेत् ।
तकारात् प्रकृतिवर्णेषु ळकारान्ता सर्वयोनिजा ॥ ८९ ॥
ते मया पौष्टिका वर्णा तदन्ये चाभिचारुकाः ।
ते पुनः त्रिविधा ज्ञेया क्रूरशान्तिकपौष्टिकाः ॥ ९० ॥
तथा ते त्रिप्रकारास्तु तथा ह्युक्ता त्रिधा त्रिधा ।
योगसमायामा अनन्ता ते पुनस्त्रिधा ॥ ९१ ॥
सौम्यां अक्षरां विद्धि शान्तये तं वियोजयेत् ।
वरदा ह्यक्षरा केचिन्मध्यमा पुष्टिहेतुका ॥ ९२ ॥
रौद्रां पापकरां ज्ञेयां हकारान्तामक्षरां पराम् ।
एवमेतत् प्रयोगेण शब्दैश्चापि सुभूषिताम् ॥ ९३ ॥
अनन्तां ह्यक्षरां विद्धि अनन्ता मन्त्रदेवताः ।
एवमेतेन योगेन अनन्तां मन्त्रांश्च योजयेत् ॥ ९४ ॥
तं विदुर्मन्त्रराजानं पुंस्कं सर्वार्थसाधकम् ।
एकारसहितो यो वर्णः स शब्दो मन्त्रभूषितः ।
नपुंसकं तं विदुर्मन्त्रं मध्यकर्मेषु योजयेत् ॥ ९५ ॥

इकारसहितो यो वर्णः स मन्त्रो विद्यते कीर्त्यते ।
सा स्त्री इतरे मन्त्रेषु प्रसिद्धा क्षुद्रकर्मसु ॥ ९६ ॥
ते त्रिधा पुनः सर्वेऽत्र नानाशब्दविभूषिताः ।
त्रिधां तां त्रिविधां सर्वां सर्वकर्मेषु योजयेत् ॥ ९७ ॥
पुल्लिङ्गसंज्ञो यो वाक्यो पुरुषोऽर्थो सर्वतो मतः ।
तं विदुः पुरुषमन्त्रं वै सर्वकर्मेषु योजयेत् ॥ ९८ ॥
नपुंसकलिङ्गे यो मन्त्रः तां विद्धि नपुंसकम् ।
कुर्यात् सर्वकर्मेषु सर्वसौख्यसुखोदयम् ॥ ९९ ॥
स्त्रीलिङ्गसंज्ञो यो मन्त्रः तां विद्धि सदा स्त्रियम् ।
सर्वकर्मकरा तेऽपि नित्यं रक्षेषु योजयेत् ।
अनन्तकर्मकरा मन्त्रा अनन्तार्था शब्दयोनयः ॥ १०० ॥
विविधा शब्दमुख्यास्तु नानातन्त्रमन्त्रयुताम् । G 262
तथैवाचरे क्षिप्रं मन्त्रा सिध्यन्त्ययत्नतः ॥ १०१ ॥
कथितं शब्दविज्ञानं सर्वमन्त्रार्थसाधनम् ।
* * * * * * गणनं कीर्त्यते बुधैः ॥ १०२ ॥
जापिनां हितकाम्यार्थं तां तु विद्धि दिवौकसाः ।
एकद्विकसमायोगा * यावच्छतमुच्यते ॥ १०३ ॥
दशगुणं पञ्चकां विंशत् सहस्रं तं निबोधताम् ।
दशसाहस्रिको संख्यं अयुतेति परिकीर्त्यते ॥ १०४ ॥
दशायुतास्तथा नित्यं प्रयुतं लक्षमुच्यते ।
लक्षसाहस्रिको कोटिः * * स्थानार्बुदं स्मृतम् ॥ १०५ ॥
दशार्बुदो निर्बुदो ज्ञेयः समुद्रं च ततः परे ।
दशोऽन्यत् सागरो ज्ञेयस्ता दशार्थे समुद्यतः ॥ १०६ ॥
अक्षोभ्यं परे विन्द्यान्निःक्षोभ्यं च ततः परे ।
देवराट् सर्वे विवाहं कीर्त्यते बुधैः ॥ १०७ ॥
अधिका दश तरे तस्य खड्गमित्याहु वाणिजाः ।
निखड्गं तद् विदुर्मन्त्री निखड्गं चापि खड्गिनम् ॥ १०८ ॥
ततः परेण शङ्खं वै संख्या तस्य परेण तु ।
सा मया गणिते ज्ञेया महामायनिपश्चिमा ॥ १०९ ॥
असंख्याया विदुर्मर्त्या ततोऽन्ये देवयोनिजाम् ।
दशार्धगुणिता सर्वे सार्धा च दशयोजिताः ॥ ११० ॥

ततःपरेण शक्यं वै अशक्यं चापि दुर्जयम् ।
अर्चितोपचितः स्थाने दृष्टिस्थानं विदुर्बुधाः ॥ १११ ॥
ततो कृष्टिनिकृष्टिश्च अनन्तानन्तयोनिजा ।
ततः परेण बुद्धानां ज्ञानं श्रावकखड्गिनाम् ॥ ११२ ॥
बुद्धपुत्रा महात्मानो येऽपि तत्त्वविदो सुराः ।
अनन्ता गतयो ह्येषां गणनं स्थानमुत्तमम् ॥ ११३ ॥
G 263 अनन्तज्ञानिनां स्थानं नात्र भूतलवासिनाम् ।
कथितं गणिते स्थानं गणितज्ञैस्तु मन्त्रिभिः ॥ ११४ ॥
मन्त्रसिद्ध्यर्थयुक्तानां जपकाले नियोजनाम् ।
प्रमाणं गणिते ज्ञेयं मन्त्रजापार्थकारणा ॥ ११५ ॥
संख्याग्रहणप्रमाणं वा विधियुक्तोऽर्थजापिनाम् ।
असिद्धा प्रविशे विन्ध्यं सिद्धमन्त्रो व्रजे हितम् ॥ ११६ ॥
तथा हैमवतं शैलं सिद्धमन्त्रो व्रजेत् सदा ।
यथेष्टं गमनं तस्य सिद्धमन्त्रस्य देहिनः ॥ ११७ ॥
असिद्धो हिमालयं गच्छेद् यदि मन्त्री जापकारणात् ।
न सेहुः दुःसहं सैन्यं सर्वद्वन्द्वां च शीतलाम् ॥ ११८ ॥
स्वल्पप्राणा स्वल्पप्रयोगाच्च मूल्यसिद्धिः समोदिता ।
बहुपुष्पफलोपेतं विन्ध्यकुक्षिनितम्बयोः ॥ ११९ ॥
भेजे मन्त्र सुजप्तर्थं तस्मात् विन्ध्यं तु भूधरम् ।
पूर्वं सेवेत्सदा विन्ध्यो निर्दिष्टो जपकारणात् ॥ १२० ॥
तस्मात्सिद्धिं विजानीयात् विन्ध्याद्रेर्गिरिगह्वरे ।
गङ्गादक्षिणतो भागे सर्वं विन्ध्ये प्रयोजयेत् ॥ १२१ ॥
उत्तरतो भागे हिमवन्तं विनिर्दिशेत् ।
तस्मात् साधयेन्मन्त्रां यथेष्टशुचयोदिताम् ॥ १२२ ॥
सिद्धो हिमवां गच्छे सिद्धो विन्ध्यनितम्बयोः ।
गिरिगह्वरकूलेषु गुहावसथमन्दिरे ॥ १२३ ॥
तटे सरित्पतेर्नित्यं सति * * कूलेषु वा ।
सर्वत्र साधयेन्मन्त्रां यथा तुष्टिकरं हितम् ॥ १२४ ॥ इति ।

महायानवैपुल्यसूत्राद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकादार्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् एकविंशतितमः शब्दज्ञानगणनानामनिर्देशपरिवर्तपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

---

२४ निमित्तज्ञानज्योतिषपटलविसरः । G 264

अथ भगवां शाक्यमुनिः सर्वनक्षत्रग्रहतारकज्योतिषां सर्वलोकधातुपर्यापन्नानां सर्वदिग्व्यवस्थितां सर्वमहर्द्धिकोत्कृष्टतरां ग्रहानामन्त्रयते स्म–शृण्वन्तु भवन्तः मार्षाः । सर्वग्रहनक्षत्रप्रभावस्ववाक्यं प्रभावं निर्देशयितुं भवन्तः सर्वमन्त्रक्रियार्थां साधयन्तु भवन्तः । इह कल्पराजे मञ्जुघोषस्य शासने सिद्धिं परतश्चान्यां कल्पराजांसि औत्सुक्यमना भवन्तु भवन्त इति । अथ भगवां शाक्यमुनिः–

ग्रहाणां चरितं सर्वं सत्त्वार्थं वहेकार्थम् ।
सर्वजापिनां मन्त्रार्थं च प्रसाधितम् ।
* * * * * * वक्ष्ये सर्वं स सर्ववित् ॥ १ ॥
अश्विन्या भरण्या कृत्तिका ।
नक्षत्रा त्रिविधा ह्येते अङ्गारग्रहचिह्निता ॥ २ ॥
मेषराशि प्रकथ्येते तेषु सिद्धिर्न जायते ।
उत्तमा मध्यमाश्चैव कन्यसा सिद्धि दृश्यते ।
न गच्छेत् सर्वपत्थानां क्रूरग्रहनिवारितः ॥ ३ ॥
रोहिणी मृगशिरश्चैव आर्द्रं नक्षत्रमुच्यते ।
पुनर्वसुपुष्यनक्षत्रौ अश्लेषश्च प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥
मघाफल्गुन्यौ उभौ चापि हस्तचित्रौ तथैव च ।
स्वात्यविशाखमनुराध ज्येष्टमूलस्तथैव च ॥ ५ ॥
आषाढौ तौ शुभप्रशस्तौ जापिनां हितौ ।
श्रवणधनिष्ठनक्षत्रौ क्रूरकर्मणि ॥ ६ ॥
शतभिषभद्रपदौ उभौ नक्षत्रौ सिद्धिहेतवः ।
रेवत्या जायते श्रीमान् युद्धशौण्डो विशारदः ॥ ७ ॥
शेषा नक्षत्रमुख्यास्तु न जायन्ते युगाधमे ।
अभिजित् सुचरितश्चैव सिद्धि पुण्या प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥
तिष्यउपपदश्चैव कनिष्ठो निष्ठ एव तु ।
भूतः सत्यस्तथा लोक आलोकश्च प्रकीर्त्यते ॥ ९ ॥
भोगदः शुभदश्चैव अनिरुद्धो रुद्र एव तु । G 265
यशोदस्तेजराड् राजा * लोकस्तथैव च ॥ १० ॥
नक्षत्रा बहुधा प्रोक्ता चतुःषष्टिसहस्रकाः ।
न एतेषां प्रभावोऽयमस्मिन् काले युगाधमे ॥ ११ ॥
कथिता केवलं ज्ञाने कल्पराजे सुखोदये ।
स्वयंभुप्रभावास्तु सत्त्वा वै तस्मिन् काले कृतौ युगे ॥ १२ ॥

आकाशगामिनः सर्वे जरामृत्युविवर्जिता ।
अस्मिन् काले न नक्षत्रा नार्कचन्द्रा न तारका ।
न देवता नासुरा लोके आदौ काले युगोत्तमे ॥ १३ ॥

न संज्ञा नापि गोत्रं वै न तिथिर्न च जातकम् ।
नोपवासो न मन्त्रा वै न च कर्म शुभाशुभम् ॥ १४ ॥

स्वच्छन्दा विचरन्त्येते न भोज्यं नापि भोजनम् ।
शुद्धा निरामया ह्येते सत्त्वा बहुधा समा ।
लोकभाजनसंज्ञा वै * * ग्रस्यायां प्रवर्तते ॥ १५ ॥

ततस्ते पूर्वेण कर्मेण आकृष्टा यान्ति भूतलम् ।
भूमौ विमानदिव्यसंस्थां ससुरासुरः ॥ १६ ॥
* * * संभवं ततो मध्यमे * * * ।
मध्यमे तु युगे प्राप्ते मानुष्यं तनुमाश्रिताः ॥ १७ ॥

आहारपानलुब्धानां सा प्रभा प्रणाशिता ।
गात्रे खक्खटत्वं वै शुभाशुभविचेष्टितम् ॥ १८ ॥
ततो दिवसमासा वै संवृता वै ग्रहज्योत्स्नया ।
ततःप्रभृति यत्किंचित् ज्योतिषां ज्ञानमेव वा ।
मया हि तत्कृतं सर्वं सत्त्वानामनुग्रहक्षमा ॥ १९ ॥

ऋषिभिर्वेषः पुरा ह्यासीत् ब्रह्मवेषोऽथ धीमतः ।
महेश्वरं तनुमाश्रित्य विष्णुवेषोऽथवा पुनः ।
गारुडीं तनुमाभुज्य यक्षराक्षसचारिणाम् ॥ २० ॥
G 266 पैशाचीं तनु एवं स्याज्जातो जातो वदाम्यहम् ।
कुशला बोधिसत्त्वास्तु तासु तासु च जातिषु ॥ २१ ॥

उपपत्तिवशान्नित्यं बोधिचर्यार्थकारणात् ।
बोधिसत्त्वः पुरा आसीदहमेव तदा युगे ॥ २२ ॥
अज्ञानतमसा वृतो बालिशोऽहं पुरा ह्यसौ ।
यावन्ति केचिल्लोकेऽस्मिन् विज्ञाना शिल्पचेष्टिता ॥ २३ ॥

शास्त्रे नीतिपुराणां च वेदव्याकरणं तथा ।
छन्दं च ज्योतिषश्चैव गणितं कल्पसंमतम् ॥ २४ ॥

मिथ्याज्ञानं तथा ज्ञानं मिथ्याचारं तथैव च ।
सर्वशास्त्रं तथा लोके पुरा गीतं मया चिरा ।
न च ज्ञानं मया लब्धं यथा शान्तो मुनी ह्ययम् ॥ २५ ॥

बोधिकारणमुक्त्यर्थं मोक्षहेतोस्तथैव च ।
संसारचारके रुद्धो न च मुक्तोऽस्मि कर्मभिः ॥ २६ ॥
बुद्धत्वं विरजं शान्तं निर्वाणं यच्युतं पदम् ।
सम्यक्ष लब्धो मे चिरकालाभिलापितम् ।
प्राप्तोऽस्मि विधिना कर्मैः युक्तिमन्तोऽधुना स्वयम् ॥ २७ ॥
प्राप्तः स्वायंभुवं ज्ञानं * जिनैः पूर्वदर्शितम् ।
न तं पश्यामि तं स्थानं बहिर्मार्गेण लभ्यते ॥ २८ ॥
भ्रान्तः संसारकान्तारे बोधिकारणदुर्लभाम् ।
न च प्राप्तो मया ज्ञानं यादृशोऽयं स्वयंभुवः ॥ २९ ॥
अधुना प्राप्तोऽस्मि निर्वाणं कर्मयुक्ता शुभे रतः ।
केवलं तु मया ह्येतद् वक्ष्यते शास्त्रसंग्रहः ॥ ३० ॥
न च कर्मविनिर्मुक्तं लभ्यते सिद्धिहेतवः ।
दीर्घः संसारसूत्रोऽयं कर्मबद्धो निबन्धनः ॥ ३१ ॥
तस्यैतद् भूतिमाहात्म्यं पच्यते च शुभाशुभम् ।
केवलं सूचयन्त्येते नक्षत्रग्रहज्योतिपाम् ॥ ३२ ॥
नान्येषां दृश्यते चिह्नमधर्मिष्ठा मनुजां तथा । G 267
अत एव ग्रहायुक्ता सानुग्राह्या शुभाशुभे ॥ ३३ ॥
चत्वारो लोकपालास्तु आपो भूम्यनिलज्योतिपखद्योतिभूताः प्रकीर्तिताः ।
इत्येते च महाभूता भूतसंग्रहकारणा ॥ ३४ ॥
प्रचोदितास्तु मन्त्रे वै सत्त्वसंग्रहकारणात् ।
तेषां कालनियमाच्च मन्त्रसिद्धिरजायते ॥ ३५ ॥
तेषु जापिषु यत्ने वै रक्षणीया शुभाशुभैः ।
प्रकृष्टो लोकमुख्यैस्तु शक्राद्याश्च सुरेश्वराः ॥ ३६ ॥
तेऽपि तस्मिन् तदा काले युगान्ते परिकल्पिता ।
मन्त्रा सिद्धिं प्रयत्नेन सिध्यन्ते च युगाधमे ॥ ३७ ॥
अत एव हि जिनेन्द्रैस्तु कुमारपरिकल्पितः ।
मञ्जुघोषो महाप्राज्ञः बालदारकरूपिणः ।
भ्रमते सर्वलोकेऽस्मिन् सत्त्वानुग्रहतत्क्षमः ॥ ३८ ॥
तस्मिन् काले सदा सिद्धिर्मञ्जुघोषस्य दृश्यते ।
नक्षत्रं ज्योतिषज्ञानं तस्मिन् काले भविष्यति ॥ ३९ ॥
सप्तविंशतिनक्षत्रा मुहूर्ताश्च प्रकीर्तिता ।
राशयो द्वादशश्चैव तस्मिन् काले युगाधमे ॥ ४० ॥

ते ग्रहा संविभाज्यं वै नक्षत्राणां राशिमाश्रिता ।
पृथुभूतानि सर्वाणि संश्रयन्ति पृथक् पृथक् ॥ ४१ ॥
जातकं चरितं चैव सत्त्वा राशे प्रतिष्ठिता ।
मोहजा विपरीतास्तु शुभाशुभफलोदया ॥ ४२ ॥
अत एव कर्मवादिन्यो राशयस्ते मुहुर्मुहुः ।
सत्त्वानां सिद्धियात्रं तु कल्पयन्ति शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥
जातकेषु तु नक्षत्रो रोहिण्यां परिकल्पितः ।
श्रीमां क्षान्तिसंपन्नः बहुपुत्रः चिरायुषः ॥ ४४ ॥
अर्थभागी तथा नित्यं सेनापत्यं करोति सः ।
G 268 वृषराशिर्भवेदेष वृषे च परिमर्दते ॥ ४५ ॥
मृगशिरे चैव लोकज्ञः धार्मिकः प्रियदर्शनः ।
कृत्तिकांशे तथा नित्यं राजा दृश्यति मेदिनीम् ।
त्रिसमुद्राधिपतिर्नित्यं व्यक्तजातकमाश्नुते ॥ ४६ ॥
प्रादेशिकेऽथ दुर्गे वा एकदेशो नृपो भवेत् ।
यदि जातकसंपन्नः ग्रहे च गुरुचिह्निते ॥ ४७ ॥
समन्तात् वसुधां कृत्स्नां अनुभोक्ता भविष्यति ।
दश वर्षाणि पञ्च वै तस्य तस्य राज्यं विधीयते ॥ ४८ ॥
अश्विन्या भरणी चैव कृत्तिकांशं विधीयते ।
एष राशि समर्थो वै वणिज्यार्थार्थसंपदा ॥ ४९ ॥
यदि जातकसंपन्नः ऐश्वर्यभोगसंपदम् ।
जातकं अस्य नक्षत्रे रक्ते भास्करमण्डले ॥ ५० ॥
अस्तं गते यथा नित्यं विकृतिस्तस्य जायते ।
क्रूरः साहसिकश्चैव असत्यलापी च जायते ॥ ५१ ॥
तनुत्वचोऽथ रक्ताभो दृश्यतेऽसौ महीतले ।
अस्य जातिक्षणान्मेषनिमिषं च प्रकीर्तितम् ॥ ५२ ॥
अत्रान्तरे च यो जातस्तस्यैते गुणविस्तराः ।
अच्छटापदमात्रं तु जातिरेषां प्रकीर्तिता ॥ ५३ ॥
अतो जातितो भ्रष्टा ग्रहाणां दृष्टिवर्जिता ।
जायन्ते विविधा सत्त्वा व्यतिमिश्रे प्रजातके ॥ ५४ ॥
व्यतिमिश्रा गतिनिष्पत्तिर्व्यतिमिश्रा भोगसंपदा ।
अत एव न जायन्ते जातिकेष्वेव वर्णितैः ॥ ५५ ॥

जातका कथिता त्रिंशत् शुभाशुभफलोदया ।
क्रूरजातिर्भवे ह्येपां अङ्गारग्रहचिह्निता ॥ ५६ ॥
महोदरोऽथ स्निग्धाभो विशालाक्षः प्रियंवदः ।
जायते नित्यं धृतिमां बृहस्पते ग्रहनीक्षिते ॥ ५७ ॥
युगमात्रे तथा भानौ उदितौ चन्द्रार्कदेवतौ ।
अहोरात्रे तथा नित्यं सम्यग्जातकमिष्यते ॥ ५८ ॥
विपरीतैर्जातकैरन्यैर्विपरीतास्तु प्रकल्पिता ।
ग्रहदर्शन सिध्यन्तु मिथ्याजाति शुभाशुभे ॥ ५९ ॥
मिथ्याफलनिष्पत्तिः सम्यग्ज्ञानशुभोदयः ।
गतियोनि समाश्रित्य क्षेत्रे जातिप्रतिष्ठिताः ॥ ६० ॥
अवदातो महासत्त्वो भार्गवैर्ग्रहचिह्निते ।
आर्द्रः पुनर्वसुश्चैव आश्लेपस्यांश उच्यते ॥ ६१ ॥
एषु जातो महात्यागी शठः साहसिको नरः ।
स्त्रीषु सङ्गी सदा लुब्धो अर्थानर्थस्वविद्विपः ॥ ६२ ॥
परदाराभिगामी स्यात् कृष्णाभः श्याम एव वा ।
वर्णतो जायते धूम्रो उग्रो वै मैथुनप्रियः ॥ ६३ ॥
मैथुनं राशिमाश्रित्य जायतेऽसौ शनीश्वरी ।
शनिश्चरति तत्रस्थो दिवा रात्रौ मुहुर्मुहुः ॥ ६४ ॥
एष जातकमध्याह्ने प्रभावोद्भवमानसः ।
तस्मिन् कालेति यो जातस्तत्प्रमाणमुदाहृतम् ॥ ६५ ॥
स भवे धननिष्पत्तिः ऐश्वर्यं भुवि चिह्नितम् ।
पुष्ये तथैव नक्षत्रे आश्लेषे च विधीयते ॥ ६६ ॥
एतत् कर्कटको राशिः गुरुयुक्तो महर्द्धिकः ।
पीतको वर्णतो ह्यग्रो जातकः संप्रकीर्तितः ॥ ६७ ॥
अर्धरात्रे तथा नित्यं जातकोऽयमुदाहृतः ।
तत्कालं तु प्रमाणेन यदि जातः सत्त्वमिष्यते ॥ ६८ ॥
सर्वार्थसाधको ह्येष विधिदृष्टेन हेतुना ।
राज्यधननिष्पत्तिः आ बाल्याद्धि करोति सः ॥ ६९ ॥
पीताभासोऽथ श्यामो वा दृश्यते वर्णपुष्कलः ।
शौचाचाररतः श्रीमां जायतेऽसौ विशारदः ॥ ७० ॥
मघः फल्गुनीश्चैव सांशमुत्तरफल्गुनी । G 270
भास्करः स भवेत् क्षेत्रः सिंहो राशिर्विधीयते ॥ ७१ ॥

तत्र जाता महाशूरा मांसतत्परभोजना ।
गिरिदुर्गं समाश्रित्य राज्यैश्वर्यं करोति वै ॥ ७२ ॥
यदि जातकसंपन्नः क्षेत्रस्था नियताश्रिता ।
उद्यन्ते तथा भानौ जातक एषु कीर्त्यते ॥ ७३ ॥
उत्तराफल्गुनीसंज्ञा हस्तचित्रा तथैव च ।
नक्षत्रेषु च जातस्थो शूरश्चौरो भवेन्नरः ॥ ७४ ॥
असंयमी परदारेषु सेनापत्यं करोति सः ।
यदि जातकसंपन्नः नियतं राज्यकारणम् ॥ ७५ ॥
कन्याराशिर्भवे ह्येषा यत्रैते तारका स्मृता ।
उभौ भवेदेषां स्वामी स्यादन्यो वा क्वचित्पुनः ॥ ७६ ॥
एतेषां तारका श्रेष्ठा ग्रहो रक्षति दारुणः ।
सौम्यो वा पुनर्भद्रश्च प्रमुदः सदा पति ॥ ७७ ॥
मध्याह्ना पूरणाज्जातिः जातकं एषु दृश्यते ।
चित्रांशं स्वातिनश्चैव विशाखास्यार्धसाधिकम् ॥ ७८ ॥
तुलाराशिः प्रकृष्टार्थं सोमश्चरति देहिनाम् ।
एत दारुणं क्षेत्रं शनिर्भार्गवनालयम् ॥ ७९ ॥
जातकं ह्येषु जातस्थः प्रहरान्ते निशासु वै ।
एषु जाता भवेन्मर्त्या बहुपानरताः सदा ।
अप्रगल्भा तथा ह्रीशा महासंमतपूजिता ॥ ८० ॥
क्वचिद्राज्यं क्वचिद्भोगां प्राप्नुवन्ति क्वचिद् ध्रुवम् ।
अनियता जातके दृष्टा मात्रा बाल्यविवर्जिता ।
यदि जातकसंपन्ना बहुपत्या सुखोदयाः ॥ ८१ ॥
अनुराध दृष्टनक्षत्रे प्रकृष्टः कर्मसाधनम् ।
मैत्रात्मको बहुमित्रः शूरः साहसिकः सदा ॥ ८२ ॥
G 271 ज्येष्ठा कथितं लोके जातः प्रचण्डो हि मानवः ।
बहुदुःखो सहिष्णुश्च क्रूरो जायति मानवः ॥ ८३ ॥
वृश्चिकां राशिमित्याहुः तीक्ष्णः साहसिकः सदा ।
एतेष्वेव सदा जाति जातकं च उदाहृतम् ॥ ८४ ॥
मध्यंदिने तथादित्ये यदि जन्तुः प्रजायते ।
तीव्रो विजितसंग्रामः राजासौ भवते ध्रुवम् ॥ ८५ ॥
बालदारकरूपास्तु ग्रहो मीक्षति तत्क्षणम् ।
योऽसावङ्गारकः प्रोक्तः पृथिवीदेवताशुभः ॥ ८६ ॥

अत एव पृथिवीं भुङ्क्ते ह्यमुतश्चैव पालिता ।
ततोऽन्यो विपरीतास्तु जाति एव शुभाशुभा ।
दीर्घायुषोऽथ तेजस्वी मनस्वी चैव जायते ॥ ८७ ॥
जायते ह्यनुराधायां महाप्राज्ञो मित्रवत्सलः ।
एतदङ्गारकक्षेत्रं व्यतिमिश्रैर्ग्रहैः सदा ।
मूलनक्षत्रसंजातः पूर्वाषाढास्तथैव च ॥ ८८ ॥
आषाढे उत्तरे अंशे धनूराशिः प्रकीर्तिता ।
एतद् बृहस्पतेः क्षेत्रं जातकं तस्य जायते ॥ ८९ ॥
अपराह्णे तथा सूर्ये शशिने वापि निशासु वै ।
तस्य जातकमित्याहुः यो जातो राज्यहेतवः ॥ ९० ॥
स्वकुलं नाशयेन्मूले यत्न शोभनमुच्यते ।
मध्यजन्मस्थितो भोगान् प्राप्नुयात् स न संशयः ॥ ९१ ॥
अतिक्रान्ते तु तारुण्ये यथा भास्करमण्डले ।
वार्धक्ये भवते राजा महाभोगो महाधनः ॥ ९२ ॥
निम्नदेशे ससामर्थ्यो नान्यदेशेषु कीर्त्यते ।
ततोऽन्ये विपरीतास्तु दृश्यन्ते विविधा जना ॥ ९३ ॥
उत्तराषाढमेवं स्या श्रवणश्चैव प्रकीर्त्यते ।
धनिष्ठः श्रेष्ठनक्षत्रः राशिरेषा मकरो भवेत् ॥ ९४ ॥
एतत् शनिश्चरक्षेत्रं तदन्यैर्वा ग्रहचिह्नितम् । G 272
जातकर्मेषु नित्यस्थो दृश्यते च महीतले ॥ ९५ ॥
निर्गते रजनीभागे प्रथमान्ते च मध्यमे ।
एषु जाता महाभोगा दृश्यन्ते च समन्ततः ॥ ९६ ॥
नीचा नीचकुलावस्था महीपाला भवन्ति ते ।
प्रचण्डा कृष्णवर्णाभाः श्यामवर्णा भवन्ति ते ॥ ९७ ॥
रक्तान्तलोचना मृदवः शूराः साहसिकाः सदा ।
जलाकीर्णे तथा देशे नृपतित्वं करोति वै ॥ ९८ ॥
दीर्घायुषो ह्यनपत्या बहुदुःखासहिष्णवः ।
ततोऽन्ये विपरीतास्तु दरिद्रव्याधिता जनाः ॥ ९९ ॥
धनिष्ठा शतभिषश्चैव पूर्वभद्रपदं तथा ।
अंशमेतद् भवेत् राशिः कुम्भसंज्ञेति उच्यते ॥ १०० ॥
एतद् ग्रहमुख्येन क्षेत्रमध्युषितं सदा ।
व्यतिमिश्रस्तथा चन्द्रैः शुक्रेणैव च धीमता ॥ १०१ ॥

एषु जातिर्भवेद्रात्रौ प्रत्यूषे च प्रदृश्यते।
प्रकृष्टोऽयं जातको नित्यो लोके चेष्टितशुद्धिताः॥ १०२॥
क्रूरकर्मे भवेन्मृत्यो बुद्धिमन्त्यो उदाहृतः।
विचित्रां भोगसंपत्तिमनुभोक्ता महीतले॥ १०३॥
तदन्ये विपरीतास्तु दरिद्रव्याधिता जनाः।
भद्रपदश्चैव नक्षत्रः रेवती च प्रकीर्तिता॥ १०४॥
पूर्वभद्रपदे अंशे मीनराशि प्रकल्पिता।
जातकर्मेषु नित्यस्था दृश्यते च समन्ततः॥ १०५॥
रात्र्या मध्यमे यामे दिवा वा सवितो स्थिते।
अर्धयामगते भानौ मध्याह्ने ईषदुत्थितम्॥ १०६॥
स्तोकमात्रविनिर्गतं ....।
हस्तमात्रावशेषे तु एककालं तु जातकम्।
शुद्धः शुक्लतरश्चैव शुक्लतैव सुयोजितः॥ १०७॥
G 273 शुक्लक्षेत्रमिति देवा तं विदुर्ब्रह्मचारिणः।
पीतकैः शुक्लनिर्भासैर्ग्रहैश्चापि अधिष्ठितः।
तत्क्षेत्रं श्रेयसो नित्यं धार्मिकं परमं शुभम्॥ १०८॥
एषु जाता भवेन्मर्त्या सर्वाङ्गाश्च सुशोभना।
राज्यकामा महावीर्या दृढसौहृदबान्धवा॥ १०९॥
दीर्घायुषो महाभोगा निम्नदेशे समाश्रिता।
प्राचीं दिशं समाश्रित्य वृद्धिं यास्यन्ति ते सदा॥ ११०॥
न तेषां जङ्गले देशे वृद्धि जायति वा न वा।
न मत्स्या मूलचारिण्या दृश्यन्ते ह कथंचन।
जलौघे चाभिवर्धन्ते ऋषीणामालयोऽम्भसि॥ १११॥
तेषु जाति प्रकील्र्येते राशिरेव प्रकीर्तिता।
तेषु जाता हि मर्त्या वै निम्नदेशेऽतिवर्धका॥ ११२॥
महीपाला महाभोगा प्राच्यावस्थिता सदा।
ग्रहाः श्रेष्ठाभिवीक्ष्यन्ते बृहस्पत्याद्याः शनैश्चराः॥ ११३॥
प्राच्याधिपत्यं तु कुर्वन्ति एषु जातं न संशयः।
राशयो बहुधा प्रोक्ता नक्षत्राश्च अनेकधा॥ ११४॥
तृविधा ग्रहमुख्यास्तु चिरकाले तु नाधुना।
मानुषाणामतो ज्ञानं तिथयः पञ्चदशास्तथा॥ ११५॥

त्रिंशतिश्चैव दिवसानि अतो मासः प्रकीर्तितः ।
पक्षः पञ्चदशाहोरात्राः द्विपक्षो मास उच्यते ॥ ११६ ॥
ततो द्वादशमे मासे वर्षमेकं प्रकीर्तितम् ।
एतत् कालप्रमाणं तु युगान्ते परिकल्पितम् ॥ ११७ ॥
प्राप्ते कलियुगे काले एषा संख्या प्रकीर्तिता ।
मानुषाणां तथायुष्यं शतवर्षाणि कीर्तिताः ॥ ११८ ॥
तेषां संवत्सरे प्रोक्तो ऋतवः संप्रकीर्तिताः ।
आदिमन्ते तथा मध्ये त्रिविधा ते परिकीर्तिताः ॥ ११९ ॥
अन्तरा उच्चनीचं स्यादायुषं मानुषेष्विह । G 274
तेषां मनुष्यलोकेऽस्मिं उत्पाताश्च प्रकीर्तिताः १२० ॥
मानुषाणां तथायुष्यं शतवर्षाणि कीर्तितम् ।
अमानुष्या जीवलोकेऽस्मिन् विद्रवन्ति इतस्ततः ।
वित्रस्ता तेऽपि भीता वै विचरन्ति इतस्ततः ॥ १२१ ॥
देवासुरमुख्यानां यदा युद्धं प्रवर्तते ।
तदा ते मनुष्यलोकेऽस्मिं कुर्वन्ते व्याधिसंभवम् ।
केतुकम्पास्तथोल्काश्च अशनिर्वज्र एव तु ॥ १२२ ॥
धूम्रा दिशः समन्ताद् वै धूमकेतु प्रदृश्यते ।
शशिमण्डलभानो वै कबन्धाकारकीलका ॥ १२३ ॥
छिद्रं च दृश्यते भानौ चन्द्रे चैव महर्द्धिके ।
एवं हि विविधाकारा दृश्यन्ते बहुधा पुनः ॥ १२४ ॥
दुर्भिक्षं च अनायुष्यं राष्ट्रभङ्गं तथैव च ।
नृपतेर्मरणं चैव यतीनां च महद्भयम् ॥ १२५ ॥
लोकानां चैव सर्वेषां तत्र देशे भयानकम् ।
मघासु चलिता भूमिरश्विन्यां च पुनर्वसू ॥ १२६ ॥
मध्यदेशाश्च पीड्यन्ते चौराः साहसिकास्तदा ।
महाराज्यं विलुम्पेते दक्षिणापथसंश्रितैः ॥ १२७ ॥
भरणिः कृत्तिकाश्चैव रोहिण्या मृगशिरास्तथा ।
यदा कम्पो महाभयो लोको तत्र शङ्का प्रजायते ॥ १२८ ॥
पश्चिमां दिशिमाश्रित्य राजानो म्रियते तदा ।
येऽपि प्रत्यन्तवासिन्यो म्लेच्छतस्करजीविनः ॥ १२९ ॥
विन्ध्यपृष्ठे तथा कुक्षौ अनुक्लीनो जनेश्वरः ।
तेऽपि तस्मिं तदा काले पीड्यन्ते व्याधिमूर्छिताः ॥ १३० ॥

अरीणां संभवस्तेषामन्योन्यातिशया जनाः ।
आर्द्रः पुष्यनक्षत्रः आश्लेपाश्चैव फल्गुनी ॥ १३१ ॥
G 275 * * * * उभावुत्तरपूर्वकौ ।
एतेषु चलिता भूमि नक्षत्रेषु नराधिपां ॥ १३२ ॥
सर्वां च कुरुते व्यग्रां अन्यो आतपरुन्धना ।
वधबन्धप्रपीडाश्च दुर्भिक्षश्च प्रजायते ॥ १३३ ॥
हस्त चित्र तथा स्वात्या अनुराधा ज्येष्ठ एव तु ।
एषु कम्पो यदा जातः भूरिस्मिं लोकभाजने ॥ १३४ ॥
हिमवन्तगता म्लेच्छा तस्कराश्च समन्ततः ।
नेपालाधिपतेश्चैव खशद्रोणिसमाश्रिताः ॥ १३५ ॥
सर्वे नृपतयस्तत्र परस्परविरोधिनः ।
संग्रामशीलिनः सर्वे भवन्ते नात्र संशयः ॥ १३६ ॥
मूलनक्षत्रकम्पोऽयं आपाढौ तौ पूर्वमुत्तरौ ।
नक्षत्रेष्वेव दृश्यन्ते चलनं वसुधातले ॥ १३७ ॥
पूर्वदेशा मनुष्याश्च पौण्डोद्राः कामरूपिणः ।
वङ्गालाधिपती राजा मृयते नात्र संशयः ॥ १३८ ॥
गौडानामधिपतिः श्रीमान् रुध्यते परराष्ट्रकैः ।
ग्लानो वा भवते सद्यं मृत्युर्वा जायते क्वचित् ॥ १३९ ॥
समुद्रान्ता तथा लोका गङ्गातीरे समाश्रिता ।
प्लाव्यन्ते उदके सर्वे बहुव्याधिप्रपीडिता ॥ १४० ॥
श्रवणे यदि धनिष्ठायां शतभिषाभद्रपदौ तथा ।
पूर्वमुत्तरमेव स्याद् रेवत्यां यदि जायते ॥ १४१ ॥
महाप्रकम्पो मध्याह्ने लोकभाजनसंचलम् ।
प्रकम्पते वसुमती सर्वा पर्वताश्च सकानना ॥ १४२ ॥
सर्वे ते व्यस्तविन्यस्ता दृश्यते गगने सदा ।
उत्तरापथदेशाश्च पश्चादेशसमाश्रिता ॥ १४३ ॥
दक्षिणापथे सर्वत्र सर्वां दिशि समाश्रिता ।
नृपवरा भूतिभूयिष्ठा अन्योन्यापरुन्धिना ॥ १४४ ॥
G 276 महामार्यो च सत्त्वानां दुर्भिक्षराष्ट्रभेदने ।
प्रत्यूषे च शिवा शान्तिर्देहिनां च प्रकम्पने ॥ १४५ ॥
ततोत्कृष्टवेलायां रौद्रकम्पः प्रजायते ।
ततोत्कृष्टतरश्चापि मागधानां वधात्मकः ॥ १४६ ॥

अङ्गदेशाश्च पीड्यन्ते मागधो नृपतिस्तथा ।
ततो ह्यासि मध्याह्ने अपराह्ने दिवाकरे ॥ १४७ ॥
यदि कम्पः प्रवृत्तोऽयं कृत्स्ने चैव महीतले ।
सर्वप्रव्रजिता नित्यं प्राप्नुयाद् व्याधिसंभवम् ॥ १४८ ॥
ज्वरारोगशूलैस्तु व्याधिभिः स्फोटकैः सदा ।
क्लिश्यन्ते सप्तरात्रं तु श्रेयस्तेषां ततः परे ॥ १४९ ॥
तमो ह्यासिगते भानोः क्ष्माकम्पो यदि जायते ।
चतुर्वर्णतरोत्कृष्टा ब्राह्मणाः सोमपायिनः ॥ १५० ॥
क्लिश्यन्ते नश्यते चापि मन्त्री राज्ञो न संशयः ।
पुरोहितो वा धर्मिष्ठो अमात्यो वा राजसेवकः ॥ १५१ ॥
अन्यो वा व्रतिनो मुख्यो मन्त्रमन्त्रार्थकोविदः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्य शूद्रस्तथैव च ॥ १५२ ॥
निपुणः पण्डितश्चापि शास्त्रतत्त्वार्थनीतिमां ।
हन्यते नश्यते चापि व्याधिना वा प्रपीड्यते ॥ १५३ ॥
स्मृतिमान् श्रुतितत्त्वज्ञ इतिहासप्रचिन्तकः ।
हन्यते व्याधिना क्षिप्रं वज्रेणेव सपादपः ।
ततोऽस्तं गते भानौ ततोत्कृष्टतराथ पृष्यते ॥ १५४ ॥
अपराह्ने युगान्ते च यदि कम्पः प्रजायते ।
व्यतिमिश्रास्तथा सत्त्वास्तिर्यग्योनिसमाश्रिता ।
मानुषा लोकमुख्यास्तु तस्मिं कम्पेऽधिरीश्वराः ॥ १५५ ॥
ततो रात्रेः प्रथमे यामे यदि कम्पः प्रजायते ।
महावृष्टिः प्रदृश्येत शिलापातनसंभवा ॥ १५६ ॥
ततो ह्यासि यामे वै चलते वसुमती तदा ।　G 277
तस्य चिह्नं तदा दृष्ट्वा वातवर्षं महद्भवेत् ॥ १५७ ॥
ततो ह्यासि यामान्ते दृश्यते कर्म दारुणम् ।
परचक्रागमनं विन्द्या पाश्चात्यं तु नराधिपम् ॥ १५८ ॥
ततो द्वितीयो यदा कम्पः प्रजायते ।
मृत्युव्याधिपरचक्रकुक्षिरोगं च दारुणम् ॥ १५९ ॥
पित्तश्लेष्मगता व्याधिं स कोपयति जन्तुनाम् ।
संवेजयति भूतानि देशाद् देशागमं तथा ॥ १६० ॥
ततो द्वितीयमध्ये तु यामे कम्पः प्रजायते ।
महावातं ततो विन्द्याद् वृक्षदेवकुलां भिदे ॥ १६१ ॥

अट्टप्राकारशृङ्गांश्च पर्वतानां न संशयः।
विहारावसथान् रम्यान् मन्दिरांश्च सतोरणाम्।
पातयत्याशु भूतानां आवासां तिर्यग्गतां तथा ॥ १६२ ॥
अर्धरात्रकाले तु यो कम्पः प्रजायते।
हन्यन्ते नृपवरा मुख्याः प्राच्यानामधिपतिस्तदा।
सुतो वा नश्यते तस्य दुर्भिक्षं वा समादिशेत् ॥ १६३ ॥
ततो ह्यसि मध्ये तु अन्ते यामे प्रजायते।
कम्पो महीतले कृत्स्नः शान्तिमारोग्यं निर्दिशेत् ॥ १६४ ॥
ततोऽन्तेऽर्धरात्रे तु यदा कम्पः प्रजायते।
अनूपा मध्यदेशाश्च नृपतो व्याधिपीडिताः।
म्रियन्ते दारुणैः दुःखैः परस्परविरोधिनः ॥ १६५ ॥
तृतीये मास संप्राप्ते बालिशानां सुखोदयम्।
मशदंशपतङ्गाश्च सर्वे नश्यन्ति तस्कराः ॥ १६६ ॥
आयुरारोग्यसौभिक्षं कुर्यात् प्रत्यूषकम्पने।
अग्निदाहं विजानीयान्नगराणां तु सर्वतः ॥ १६७ ॥
उदयन्तं यदादित्ये भूमिकम्पः प्रजायते।
G 278 मध्यदेशेऽथ सर्वत्र तस्करैश्च उपद्रुतः।
दृश्यते नृपतेर्मृत्युः सप्ताहात्परतस्तदा ॥ १६८ ॥
यस्मिं स्थाने यदा कम्पो दृश्यते प्रबलो यदा।
तस्मिं स्थाने तदा दृष्टः शुभाशुभविचेष्टितम् ॥ १६९ ॥
उल्कनिर्घातभूकम्पं एककाले समादिशेत्।
ज्वलनं सितमुल्कायाः यद्वक्रं नाशयेत्तु तम् ॥ १७० ॥
सितवर्णस्तथा नित्यं प्रशस्तः शुभदस्तथा।
रक्तवर्णो महाघोरः अग्निदाहोपदिश्यते ॥ १७१ ॥
धूम्रवर्णोऽथ कृष्णो वा राज्ञो मृत्युं समादिशेत्।
पीतवर्णाथ कपिला वा व्यतिमिश्रा वाथ वर्णतः ॥ १७२ ॥
व्यतिमिश्रं तदा कम्पं उत्पातं चैव निर्दिशेत्।
निर्घातश्चैव कीर्त्यते यस्यां दिशि तस्यामादिशेत् ॥ १७३ ॥
यदि मध्यं तदा मध्ये देशेष्वेव प्रकीर्तितम्।
सस्वरो मधुरश्चैव क्षेममारोग्यमादिशेत् ॥ १७४ ॥
क्रूरघोरतरो लोके शुभदो दुन्दुभिस्वनः।
भीषणो ह्यतिभीमश्च दुर्भिक्षं तत्र निर्दिशेत् ॥ १७५ ॥

एवमाद्याः प्रयोगास्तु ग्रहाणां वै तदा सदा ।
सिद्धिकर्म तदा कुर्यान्नक्षत्रेष्वेषु शोभने ॥ १७६ ॥
अश्विनी भरणी चैव पुष्या भद्रपदा उभे ।
रेवत्या चानुराधश्च जापकाले प्रशस्यते ।
सिध्यन्ते एषु मन्त्रा वै सिद्धमर्थं ददन्ति ते ॥ १७७ ॥
मण्डलं चैव आलेख्यमेतेष्वेव तारकैः ।
वारग्रहमुख्यानां पीतशुक्लावभासिनाम् ॥ १७८ ॥
तिथयः शोभने ह्येते पूर्णमी पञ्चदशी तथा ।
प्रवासं नैव कुर्वीत मण्डलं तु समालिखेत् ॥ १७९ ॥
प्रथमा तृतीयपञ्चम्या दशमी चैव सप्तमी ।
त्रयोदश्यां तथा यात्रां कल्पयन्तु नराधिपाः । G 279
शुभदः सर्वजन्तूनां यात्रायानं प्रशस्यते ॥ १८० ॥
न लिखेत् सर्वमन्त्राणां मण्डलं तन्त्रमन्त्रयोः ।
न सिध्यन्ते एषु मन्त्रा वै विघ्नहेतुमुदाहृता ॥ १८१ ॥
यात्रां होमतः सिद्धिः तिथिः श्लिष्टैर्ग्रहोत्तमैः ।
बृहस्पतिः शुक्रचन्द्रश्च बुधः श्रेष्ठः सर्वकर्मसु ॥ १८२ ॥
एते ग्रहा वरा नित्यं चत्वारस्तिथिमिश्रिता ।
सिद्धियात्रां तथा लोके कुर्वन्तेऽथ महीतले ॥ १८३ ॥
दुष्टारिष्टविनिर्मुक्ता छेदभङ्गायतत्त्वरम् ।
एतेष्वेव विनिर्मुक्ता दिवसांश्चैव प्रकल्पयेत् ॥ १८४ ॥
द्वादशैव मुहूर्तानि तस्मिं काले प्रयोजयेत् ।
श्वेतो मैत्र एवं स्यात् रक्ताक्षाः प्रकीर्तिताः ॥ १८५ ॥
रौद्रो महेन्द्रः शुद्धश्च अभिजिश्चैव सुशोभनः ।
भ्रमणो भ्रामणश्चैव कीर्त्यते च शुभप्रदः ॥ १८६ ॥
सौम्योऽथ वरदश्चैव कीर्त्यते च शुभप्रदः ।
सोमोऽपि वरदश्चैव इत्येते द्वादश क्षणाः ॥ १८७ ॥
बहुधा लक्षणा प्रोक्ता मुहूर्तानां तृंशत्संज्ञका ।
दशम्या वृष्टिरेवं स्यात् चतुर्दश्या रात्रावेव च ॥ १८८ ॥
अष्टमी द्वादशी चैव * * * * * वर्जिताः ।
त्वराद्या गणिते युक्तो असिते पक्षे तु रात्रितः ॥ १८९ ॥
विघ्नकारणमेषां तु विनायकोऽहचतुर्थितः ।
एतद्गणनयोर्युक्तं कालमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ १९० ॥

एषोन्मेष निमेषश्च अच्छटा त्वरिता गतिः ।
एतत्कालप्रमाणं तु विस्तरं वक्ष्यते पुनः ॥ १९१ ॥
अच्छटाशतसंघातं नाडिकाश्च प्रकीर्तिता ।
चतुर्नाडिकयो घटीत्युक्ता चतुर्घटया प्रहरः स्मृतः ॥ १९२ ॥
G 280 चतुःप्रहरो दिवसस्तु रात्र्य एभिः प्रकीर्तिताः ।
एभिरष्टैस्तथायुक्तः अहोरात्रं प्रकल्पितम् ॥ १९३ ॥
दशोन्मेषनिमेषं तु क्षणमात्रं प्रकल्पितम् ।
दशतालप्रमाणं तु क्षणमात्रं तु वक्ष्यते ॥ १९४ ॥
दश क्षणा निमिल्याहुर्मुहूर्तं परिकल्पितम् ।
चतुर्मुहूर्तः प्रहरस्तु मन्त्रज्ञैः परिकल्पितः ॥ १९५ ॥
एतत्कालप्रमाणं तु त्रिसंध्ये परिकल्पयेत् ।
होमकाले तथा जापे सिद्धिकाले तु योजयेत् ॥ १९६ ॥
स्वप्नकाले तथा जाग्रं स्नानपानेऽहनि सदा ।
अहोरात्रं तु दिवसं वै संज्ञा एषा प्रकीर्तिता ॥ १९७ ॥
दिवसानि पञ्चदशश्चैव पक्षमेकं प्रकीर्तितम् ।
द्विपक्षं मासमिल्याहुर्गणितज्ञा विशारदाः ॥ १९८ ॥
षड्भिर्मासैस्तथा चन्द्रः राहुणा ग्रस्यते पुनः ।
ततो द्वादशमे मासे वर्षशब्दः प्रकीर्तितः ॥ १९९ ॥
ततो द्वादश वर्षाणि महावर्षं तदुच्यते ।
विपरीता ग्रहनक्षत्रा दानवेन्द्राश्च प्रकीर्तिता ।
ततो द्वादशमे अब्दे कुर्वन्तीह शुभाशुभम् ॥ २०० ॥
एकपक्षे यदा राहुरसुरेन्द्रः प्रदृश्यते ।
समस्तं व्यस्तविन्यस्तं शशिभास्करमण्डलौ ।
महान्तं शस्त्रसंपातं दृश्यते वसुधातले ॥ २०१ ॥
एवमाद्यां सदा नित्यं काले काले प्रयोजयेत् ।
अनेके बहुधा चैव विघ्ना दृश्यन्ति दारुणाः ॥ २०२ ॥
प्राप्ते काले युगान्ते वै अधार्मिष्ठे लोकभाजने ।
समस्तं चन्द्रमसं ग्रस्तं मूलनक्षत्रमाश्रितम् ॥ २०३ ॥
रात्रौ संग्रहश्चैव अस्तमेति स चन्द्रमाः ।
दिवा वा यदि वा भानोरस्तमेति स पीडितः ॥ २०४ ॥
G 281 रविणे चन्द्रमसश्चैव अर्धरात्रे तु सग्रहे ।
अस्तमेन्ति यदा भीता दानवेन्द्रस्य च्छायया ॥ २०५ ॥

हन्यते पूर्वदेशस्थो राजा दुष्टो न संशयः ।
स्वकं वा मृत्युभयं तस्य परैर्वा स विलुप्यते ॥ २०६ ॥

म्लेच्छानामधिपतिश्चैव पूर्वदेशं विलुम्पते ।
उद्रा जनपदाः सर्वे उद्राणामधिपतिस्तथा ॥ २०७ ॥

अश्विन्या यदि दृश्येरं रोहिण्यां भरणीस्तथा ।
कृत्तिकास्थौ यदा दृश्यौ ग्रहौ चन्द्रदिवाकरौ ॥ २०८ ॥

विविधाः श्लेष्मिका रोगा पैत्तिका वातसुद्भवा ।
व्यतिमिश्रास्तथा चान्ये जायन्ते सर्वदेहिनाम् ॥ २०९ ॥

विविधा रोगमुत्थाना दृश्यते सर्वबालिशाम् ।
मघासु यदि फल्गुन्यो उत्तरा पूर्वमेव तौ ॥ २१० ॥

हस्तचित्रे तथा स्वात्यां विशाखासु तथैव च ।
एषु चन्द्रो यदा गृह्ये भास्करो वा न संशयः ॥ २११ ॥

राहुणा ग्रस्यते पूर्वं शशिभास्करमेव तौ ।
प्राच्यो * * * * * * देशाधिपतिस्तथा ॥ २१२ ॥

वङ्गाङ्गमागधो राजा अक्षिशूलेन गृह्यते ।
पुत्रो वा मृयते तेषां मृत्युर्वा पत्नितो भयम् ।
अरीणां दुष्टचित्तानां संघातो वा भवेत् तदा ॥ २१३ ॥

मृगशिरार्द्रे पुनर्वसा पुष्याश्लेषौ तथैव च ।
एषु दृश्यति राहुर्वै सूर्यशशिने तथा ॥ २१४ ॥

मागधो नृपतिः पीड्यते मागधा जनपदा तदा ।
अमात्या व्याधिभयं विद्याद् बन्धक्लेशां सपौरजाम् ॥ २१५ ॥

अनुराधाज्येष्ठयोः सर्वं दृश्येरं दानवेश्वरः ।
सर्वान् जनपदान् व्याधिं जनयेत् सर्वगतं तदा ॥ २१६ ॥

वधबन्धपरिक्लेशां आयासां विविधांस्तथा ।
बन्धरुन्ध ततस्तेषु जनमुख्यस्तु वर्धते । G 282
पूर्वाषाढे श्रवणे च उत्तराषाढे तथैव च ॥ २१७ ॥

भानोर्मण्डलं व्यस्तोऽसौ शशिने रक्तभावता ।
ग्रहस्यागमं नित्यं दुर्भिक्षं चोपजायते ॥ २१८ ॥

श्रवणधनिष्ठनक्षत्रपूर्वभद्रपदम् ।
शतभिषेषु यदा चन्द्र भानो वा यदि गृह्यते ॥ २१९ ॥

कृष्णभावं समाश्रित्य ग्रहस्यागमनं विदुः ।
महान्तशोकमायासं दुर्भिक्षं च समन्ततः ।
सर्वां जनपदां विद्याद्राजचौरमहद्भयम् ॥ २२० ॥
रेवत्यामथ नक्षत्रे उत्तराभद्रपदा यदा ।
राहुणा ग्रस्यते पूर्वं शशिनौ भास्करमण्डलौ ।
पश्चाद् भानोऽथ विन्यस्तः पक्षेनैकेन दृश्यते ॥ २२१ ॥
राज्याद् भ्रश्यते सर्वः मागधो नृपतिः पतिः ।
एते च कथिता चिह्ना राहोरागमनं यदा ॥ २२२ ॥
दिशासु यासु गृह्णाति शशिनो भास्करमण्डलम् ।
तेषु तेषु तदा देशे उत्पद्यन्ते शुभाशुभम् ॥ २२३ ॥
य एव भूतले कम्पा कथिता लोकचिह्निता ।
गृहोपरागे तं विद्यात् तत्र तत्र शुभाशुभम् ॥ २२४ ॥
धूमिका वृष्टिहेतुः स्यात् दिवसाल्येऽथ पञ्च वै ।
ततोऽर्धं लोकतश्चिन्ता तीरभुक्तिसमाश्रिता ॥ २२५ ॥
नश्यन्ते जनपदाः सर्वा व्याधिसंभवमालया ।
नृपतिश्चापि नश्येत गङ्गातीर उत्तरे ॥ २२६ ॥
हिमवन्तस्तथा कुक्षौ दुर्भगज्वरमाश्रिता ।
भूपाला चापि विन्यस्ता कोट्टपालाः समन्ततः ॥ २२७ ॥
गङ्गाया उत्तरे तीरे तीरभुक्तिपतिस्तदा ।
विविधैः शोकसंतापैः मृयतेऽसौ नराधिपः ॥ २२८ ॥
G 283 सपुत्रभार्यया सार्धं नश्यतेऽसौ नराधिपः ।
नक्षत्रेषु येषु कम्पो वै तेषु धूमं समादिशेत् ॥ २२९ ॥
दिशः सर्वासु धूमाश्च घोरा वर्दलवर्जिता ।
पश्चाद्दा समतिक्रान्ता बहुदेवसिके सदा ॥ २३० ॥
नश्येत् परंपरा मर्त्या गोचरा मानुषोद्भवा ।
न दृष्टिस्तत्र प्रवर्तते मानुषाणां परस्परम् ॥ २३१ ॥
विद्यान्महद्भयं तत्र सराष्ट्रं नृपतिं हनेत् ।
येषु एवं भवेत्कम्पः उल्कापातः समन्ततः ॥ २३२ ॥
पर्येषां चापि विन्यस्तं द्वित्रिश्चैव दारुणः ।
रात्रौ इन्द्रधनुश्चैव श्वेतपक्षं यदि वायसम् ॥ २३३ ॥
शुक्लवर्णोऽथ कृष्णो वै कृष्णो शुक्लोऽथ दृश्यते ।
विपरीता पक्षिणो वर्णा विपरीता ऋतुनिस्वना ॥ २३४ ॥

विपरीताः पक्षिणः सन्ति यत्र तत्र महद्भयम् ।
द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव सर्वे बहुपदापदा ॥ २३५ ॥
पक्षिणः तिर्यक्प्राणा विपरीतास्तु महाभयम् ।
ऊर्ध्वतुण्डा तथा श्वाना रवन्ते च मुहुर्मुहुः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ यत्र तत्र महाभयम् ॥ २३६ ॥
एवंप्रकारा अनेकाश्च बहुधा यत्र प्रकल्पिता ।
अनावृष्टिर्भवेत् तत्र राज्ञश्चक्रं विनश्यति ॥ २३७ ॥
यथा हि जातकर्माख्यातं प्राणिनां च शुभाशुभम् ।
तथोत्पाता ततो जाता कुर्वन्तीह शुभाशुभम् ॥ २३८ ॥
नान्यथा दृश्यते किंचिन्निमित्तं पूर्वहेतुना ।
नाहेतुकं प्रवर्तन्ते विघ्ना उत्पातसंभवाः ॥ २३९ ॥

इति आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद्द्वाविंशतितमः निमित्तज्ञानज्योतिषपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



G 284 ## २५ एकाक्षरचक्रवर्त्युद्भवपटलविसरः ।

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि ग्रहनक्षत्रतारकज्योतिषगणानामन्त्रयते स्म— * * * * शृण्वन्तु भवन्तः सर्वे । अनतिक्रमणीयोऽयं कल्पराजा मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य मन्त्रतन्त्राभिषेकमण्डलविधाने च (?) जपहोमनियमविद्यासाधनप्रवृत्तानामस्मिं कल्पवेर विद्याधराणां तिथिनक्षत्रचरितगणितामभिज्ञानाम्। न तत्र भवद्भिः विघ्नं कर्तव्यम्। प्रवृत्तानां शासनेऽस्मिन् सर्वैश्च देवसंघैः तत्र रक्षा कार्या । सर्वे च दुष्टसत्त्वानि निषेद्धव्यानि रोद्धव्यानि, शासयितव्यानि । सर्वेण सर्वं न घातयितव्यानि । व्यवस्थासु च स्थापयितव्यानि शासनेऽस्मिन् दशबलानाम् ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः सर्वतथागतोष्णीषाभ्युन्नतं नाम समाधिं समापद्यते स्म सर्वदुष्टनिवारणार्थं सर्वसत्त्वानाम्। समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः शाक्यमुनेः सर्वे च ते तथागताः दशदिग्लोकधातुव्यवस्थिता भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतं शुद्धावासभवनस्थं व्यवलोक्योपसंक्रमन्ते । उपसंक्रम्य अचिन्त्यबुद्धस्वकाधिष्ठानेन भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमामन्त्रयन्ते स्म—

भाष भाष भो महावीर लोकानां च हितोदयम् ।
प्रवृत्ते सर्वमन्त्राणां समन्त्रतन्त्र यथाविधि ॥ १ ॥
भाषितः सर्वबुद्धैस्तु विद्याराजा महर्द्धिकः ।
एकाक्षरः प्रवरो ह्यग्रो नष्टे काले कलौ युगे ॥ २ ॥
प्रवरः सर्वमन्त्राणां सर्वबुद्धैस्तु भाषितम् ।
उष्णीषराजा महावीर्यः सर्वभूतनिवारणम् ॥ ३ ॥
निषेद्धा ग्रहनक्षत्रां मातरां दुष्टचेतसाम् ।
विघ्नाः सर्वे तथा लोके ये चान्ये दुष्टचेतसः ॥ ४ ॥
अनुग्रहार्थं तु सत्त्वानां जापिनां च सुखोदयाम् ।
सकलेऽस्मिन् शासने ह्यग्रः चक्रवर्तिर्महर्द्धिकः ।
G 285 उष्णीषराजा महावीर्यः सर्वास्मिं परमेश्वरः ॥ ५ ॥
भाष त्वं कालमेतस्य यस्येदानीं तथागत ।
एवमुक्तास्तु ते बुद्धास्तूष्णींभावा ह्यवस्थिता ॥ ७ ॥

अथ तेषां बुद्धानां संनिपाता सर्वं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातवः सर्वसत्त्वानां च लोकभाजनानि एकज्वालीभूतानि, न च एकसत्त्वानां पीडा अभूत्। बुद्धाधिष्ठानेन महान्तश्चावभासाः संदृश्यन्ते स्म ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः सर्वं तं शुद्धावासभवनमलोक्य तांश्च बोधिसत्त्वान्महासत्त्वान् तत्र स्थितानि च देवपुत्रां सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धांश्च भगवतः महापर्षत्संनिपातानामन्त्रयते स्म—

समन्वाहरन्तु बुद्धा भगवन्तः, सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाः, कल्पमेकाक्षरस्य विद्याचक्रवर्तिनः सर्वतथागतोष्णीषाणां उपर्युपरि वर्तमानस्याप्रतिहतशासनस्यापरिमितबलपराक्रमस्य भगवतः उष्णीषराजचक्रवर्तिनः पुनरपि कल्पं भाषेऽहमस्मिं काले कलौ युगे ॥

अथ भगवतो दुरतिक्रमशासनस्य त्रैलोक्यगुरोः सर्वदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगसत्कृतस्य सर्वकर्मार्थसाधकस्य मन्त्रे वक्ष्ये पुनरपि कलौ युगे काले शासनान्तर्धानकालसमये । शासनारक्षको भगवां उष्णीषचक्रवर्ती भविष्यति, सिद्धिं च यास्यते । सर्वकालं सर्वबुद्धानां च शासनान्तर्धानकालसमये बुद्धोऽयं भगवां सत्त्वार्थं करिष्यति । आरक्षकोऽयं भगवां सर्वतथागतधर्मकोशसंसृष्टः। शृण्वन्तु भवन्तो देवगणाः सर्वसत्त्वाश्च । भ्रूम् ॥

एष भगवां सर्वज्ञः बुद्धैर्मन्त्ररूपेण व्यवस्थितः ।
महाकारुणिकः शास्ता विचेरुः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥
मन्त्राणामधिपतिः श्रीमां ख्यातो उष्णीषसंमतः ।
करुणाय समागम्य स्थितोऽयमेषमक्षरः ।
स धर्मधातुं निश्रित्य स्थितोऽयं विश्वरूपिणः ॥ ९ ॥ G 286
यथा हि बुद्धानां शरीरा प्रवृत्ता धातवो जने ।
सामिषा लोकपूज्यास्ते निरामिषास्तु विशेषतः ॥ १० ॥
सद्धर्मधातवः प्रोक्ता निरामिषा लोकहेतवः ।
सामिषा कलेवरे प्रोक्ता जिनेन्द्राणां महर्द्धिका ॥ ११ ॥
विविधा धातवः प्रोक्ताः मुनिचन्द्रा निरास्रवाः ।
सामिषा निरामिषाश्चैव प्रसृता लोकहेतवः ॥ १२ ॥
धर्मधातुं संमिश्रं सत्त्वानां करुणावशात् ।
तिष्ठते मन्त्ररूपेण लोकनाथं प्रभंकर ॥ १३ ॥
स विश्वरूपी सर्वज्ञः दृश्यते ह महीतले ।
सर्वार्थसाधको मन्त्रः सर्वबुद्धैस्तु भाषितः ॥ १४ ॥
एष संक्षेपतो मन्त्रः जप्तोऽयं विधिना स्वयम् ।
करोति सर्वकर्मं वै ईप्सितां सफलां सदा ॥ १५ ॥
अस्य कल्पं समासेन पुनः काले प्रचक्ष्यते ।
युगान्ते मुनिवरे लोके अस्तं याते तथागते ।
कल्पसिद्धिस्तदा काले मन्त्रसिद्धिरुदाहृता ॥ १६ ॥

अथ भगवतश्चक्रवर्तिनस्तथागतोष्णीषस्य परकर्मप्रयोगविध्वंसनकरस्याजितंजयस्य सर्वमन्त्राधिपतेः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानुनीतस्योष्णीषचक्रवर्तिनः संक्षेपतः कल्पमेकाक्षरस्य प्रवर्तितपूर्वं विस्तारतः ॥

आदौ तावत् यास्मिं स्थानेऽयं जप्यते, तस्मिं स्थाने पथे योजनाभ्यन्तरेण सर्वदुष्टग्रहाः प्रपलायन्ति । सर्वमन्त्राः सिद्धा अपि न प्रभवन्ति । सर्वदेवाः सांनिध्यं त्यजन्ति, अन्यत्र साधकस्येच्छया । अन्येषां लौकिकलोकोत्तराणां साधकानां सिद्धिमपहरति । परप्रयोगमन्त्रां छिन्नभिन्नउत्कीलनतां मोचयति ॥

स्वयं विद्याच्छेदं कर्तुकामः कुशानां हरितानां मुष्टिं गृहीत्वा, अष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा, शस्त्रेण च्छिन्द्यात् तां विद्यामुद्दिश्य । सा छिन्ना भवति । अनेन प्रतिकृतिं कृत्वा, हृदये कीलकेन ताडयेत् । कीलिता भवते । सप्तजप्तेन सूत्रेण कुसुम्भरक्तेन ग्रन्थिं कुर्यात् । बद्धा
G 287 भवति । शरावेणाष्टशतजप्तेन पिधयेत्, रुद्धा भवति । शस्त्रेण हृदयं द्विधा कुर्यात्, भिन्ना भवति । राजिकाभिर्विषरुधिररक्ताभिः रञ्जयेत्, शिष्टिता भवति । करवीरलतया आहनेत्, पीडिता भवति । सर्वविद्याभिचारुकमिच्छया करोति । सर्वत्र पूर्तिकं कर्म मुक्ताक्षीरेण स्नापयित्वा, होमं कुर्याच्छान्तिः । घृतहोमेन सर्वेषां शान्तिराप्यायनं कृतं भवति । मुष्टिबन्धेन सर्वमन्त्रां स्तम्भयति, मनसा मोक्षयति । मन्त्रं साधयितुकामस्तमनेनैवोपरुध्य साधयेत् । अन्यकल्पं साधयितुमिच्छति, तमनेनैव साधयेत् । सिध्यति । अनेनैव मन्त्रेणावाहनं भवति । पुनरनेनैव विसर्जनं भवति । अनेनैव यस्य रक्षा क्रियते, सोऽप्यदृश्यो भवति । यो मन्त्रो न सिध्यति, प्रत्यादेशं वा न ददाति, अनेनैव सह जयेत् । शीघ्रं सिध्यति, प्रत्यादेशं वा ददाति । यदि न सिध्यति, प्रत्यादेशं प्रयच्छति । सो मृयते ॥

दधिमधुघृताक्तानां तिलानामष्टशतं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्ताहम् । यं मन्त्रमुद्दिश्य सोऽस्य वशो भवति । यदुच्यते, तत्कर्म करोति । प्रत्यादेशं वा प्रयच्छामि । देवां वशीकर्तुकामः देवदारुसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात्, सप्तरात्रेण वश्यो भवति । नागां वशीकर्तुकामः त्रिमधुरं जुहुयात् । वश्या भवन्ति । यक्षां वशीकर्तुकामो दधिभक्तं जुहुयात् वश्या भवन्ति । यक्षिणीं वशीकर्तुकामेन दधिभक्तं जुहुयात् । सर्वगन्धैर्गन्धर्वं वशीकरोति । अशोकप्रियङ्गुसमिद्भिः कुसुमैर्वा यक्षिणीनागिनागग्रहाणां राजिकाभिः राजनसिद्धार्थकैः । ब्राह्मणं पुष्पहोमेन, वैश्यं दधिक्षीरघृतेन, शूद्रं तुषपांसुभिः, स्त्रियं लवणहोमेन, रण्डां माषजम्बूलिकाहोमेन, कन्यां लाजाहोमेन, सर्वान् घृततैलहोमेन वश्यां करोति सर्वत्र त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । इत्युक्त्वा तूष्णींभूतो जिनोत्तमः ॥

देवसंघां तदा मन्त्रे सप्तमो मुनिपुंगवः ।
प्रहस्य लोकधर्मज्ञः मुक्तोऽसौ गतधीस्तदा ॥ १७ ॥

मुनिश्रेष्ठस्तदा ज्येष्ठं बुद्धपुत्रं तदालपेत् ।
मञ्जुघोषं तदा वज्रे बोधिसत्त्वं महर्द्धिकम् ॥ १८ ॥

G 288 एष कल्पो मया प्रोक्तः एकदेशो हि चक्रिणे ।
विस्तीर्णं यस्य नाथस्य देवदेवस्य धीमतः ॥ १९ ॥

कल्पैर्यस्य प्रमाणं तु न शक्यं भाषितुं जिनैः ।
संक्षेपेण प्रवक्ष्ये ते मानुषाणां हितोदया ॥ २० ॥

एवमुक्ते तदा श्रीमां मञ्जुघोषो महर्द्धिकः ।
अध्येषयति तं बुद्धं शुद्धावासोपरिस्थितम् ॥ २१ ॥

भाष भाष महावीर संबुद्ध द्विपदोत्तम ।
नष्टे काले युगान्ते वै मानुषाणां सुखोदयम् ॥ २२ ॥

कथमस्य महातेजा महावीरस्य मन्त्रराट् ।
पटसिद्धिः प्रदृश्येत क्षिप्रं पटविधिः कथम् ॥ २३ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात् त्रयोविंशतितमः एकाक्षरचक्रवर्त्युद्भवपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



G 289 ## २६ एकाक्षरचक्रवर्तिकर्मपटनिर्देशः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–शृणु मञ्जुश्रीः । एकाक्षरचक्रवर्तिनस्य महानुभावस्य संक्षेपेण पटविधानं भवति । विस्तरशः पूर्वमुदीरितम्, अधुना संक्षेपेण । युगाधमे सत्त्वा अल्पवीर्या भवन्ति अल्पप्रज्ञा मन्दचेतसः । न शक्यन्ते विस्तरशः पटप्रमाणप्रयोगं साधयितुम् ॥

संक्षेपेण प्रवक्ष्येऽहं सत्त्वानां हितकाम्यया ।
उत्तमार्थं तु यथा सिद्धिं प्राप्नुवन्ति सजापिनः ॥ १ ॥

उत्तमसाधनं कर्तुकामेन अनाहते पटे अच्छिन्नदशे केशापगते अश्लेषकैर्वर्णैर्भगवां चित्रापयितव्यः । धर्मराजा धर्मचक्रप्रवर्तकः सर्वलोकाधिपतिः पुरुषोत्तमः द्विपदानामग्र्यः तथागतरत्नः रत्नकेतुर्नाम जिनोत्तमः धर्मं देशयमानः समन्तज्वालप्रभामण्डलः । अधस्ताद् ब्रह्मा आर्यवज्रपाणिश्च, उपरिष्टान्मालाधारिणौ देवपुत्रौ, अधस्ताद् साधकः । तस्याग्रतस्त्रिसंध्यं अगरुधूपं दहता दशलक्षाणि जपेत् । पश्चात् कर्माणि भवन्ति ॥

प्रथमं चक्रसाधनं कर्तुकामः, द्वादशारं पुष्पलोहमयं चक्रं कृत्वा प्रातिहारकपक्षे भगवतोऽग्रतस्त्रिसंध्यमगरुधूपं दहता दश लक्षाणि जपेत् । अन्ते पूर्णमास्यां उदारां पूजां कृत्वा, हस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेत्, यावत् प्रज्वलितमिति । तं गृहीत्वा विद्याधरचक्रवर्ती भवति । यैर्दृश्यते, याश्च पश्यति, तैः सहोत्पतति ॥

अथ च्छत्रं साधयितुकामः, श्वेतच्छत्रं विचित्रं चाभिनवं कारयित्वा, सुवर्णचक्रचिह्नं कौशेयवस्त्रावलम्बितं तेनानेनैव विधानेन शिरसि कृत्वा जपेत्, विद्या स्वयमेवोपतिष्ठति । अनेन च भगवतोऽग्रतस्त्रिसंध्यमगरुधूपं दशलक्षं जपेत् । अन्ते पूर्णमास्यामुदारां पूजां कृत्वा हस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेद्, यावत् प्रज्वलितमिति । तं गृहीत्वा विद्याधरचक्रवर्ती भवति । मासे मासे पौर्णिमास्यां पञ्चभिः पक्षैः प्रातिहारिकपक्षे सिध्यति । अथ सिद्धमात्रेण सर्वधर्मा आमुखीभवन्ति । सर्वाभिज्ञां प्रतिलभते । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाभिनन्दितः सर्वसत्त्वानुप्रवेशः सिद्धो भवति । लोकधात्वन्तरेऽपि सहस्रपरिवारश्चक्रवर्ती भवति ॥

G 290

अथोष्णीषं साधयितुकामः हस्तमात्रे दण्डे सौवर्णरजतताम्रमयं मणिमयं वा कृत्वा तावज्जपेद् यावत् प्रज्वलितमिति । तं गृहीत्वा यथेष्टं विचरति । सत्त्वेभ्यो धर्मं देशयति । महाकल्पं जीवति ॥

अथ भद्रघटं साधयितुकामः सौवर्णं भद्रघटं कृत्वा सर्वबीजरत्नौषधिपरिपूर्णं शुक्लवस्त्रावगुण्ठितं तमनेन साधयेत् । एकस्मिं प्रातिहारकपक्षे कर्मारभेद्, अपरस्मिन् सिध्यति । तस्मिं हस्ते प्रक्षिप्य यमिच्छति तं लभते । अक्षयं भवति ॥

अथ चिन्तामणिरत्नं साधयितुकामः सौवर्णदण्डो जात्यमणिं स्फटिकमणिं च सौवर्णं वा वस्त्रावलम्बन्तं कृत्वा अनेनैव विधानेन साधयेत् । यं चिन्तयति तत्सर्वं सिध्यति ।

देवमनुष्येषु चानेन गृहीतेनाप्रतिहतबलपराक्रमो भवति । अथ भगवतः कोटिं जपेत्, स्वशरीरेणोत्पतति । दिव्यबहुमहाकल्पं जीवति । अन्ये वा घोरसितातपत्रप्रमुख्यादयः (?) । तदप्यनेन भगवतो दशलक्षजप्तेन कर्माणि कर्तव्यानि सिध्यन्ति । एवमप्रतिहतः तथागतोष्णीषः परकल्पविधानेनापि यथा यथा प्रयुज्यति, तथा तथा सिध्यति । अचिरादेव भगवतः उष्णीषचक्रवर्तिनः दशलक्षजप्तः सर्वं साधयति सर्वविद्यामन्त्राधिपतिचक्रवर्ती ॥

अथ वज्रं साधयितुकामः रक्तचन्दनमयं एकसूचिकं वज्रं कृत्वा, अथवा पुष्पलोहमयं कृत्वा, पञ्चगव्येन प्रक्षाल्य, शुक्लपञ्चदश्यां पटस्याग्रतः उदारां पूजां कृत्वा, घृतप्रदीपान् प्रज्वाल्य, गन्धोदकेन प्रक्षाल्य, यक्षा वश्या भवन्ति । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामात्मानं निर्यात्य, अनेनोष्णीषराजपरिवारेण तेजोराशिसितातपत्रेण वा रक्षां कृत्वा, मण्डलबन्धं G 291 सहायानां च रक्षां कृत्वा, वज्रं दक्षिणेन हस्तेन गृहीत्वा, प्रथमे यामेऽतिक्रान्ते द्वितीये यामे उपविश्य एकाग्रचित्तः तावज्जपेद्, यावत् प्रज्वलितमिति । अत्रान्तरे सर्वविद्याधराः सर्वे देवनागयक्षाः संपतन्ति । सर्वे च विद्याधरराजानः आगच्छन्ति । तैरभिष्टूयमानः विद्याधरपुरं गच्छति । विद्याधरचक्रवर्ती भवति वज्रपाणिसदृशकायः वज्रपाणिसमबलः । क्षणलवमुहूर्तेनाकनिष्ठं देवभवनं गच्छति । महाकल्पस्थायी भगवन्तमार्यमैत्रेयं पश्यति । धर्मं शृणोति । मृतो यत्रेच्छति, तत्रोपपद्यते । यदिच्छति, वज्रपाणिसकाशादुत्पद्यते ॥

अथ खड्गं साधयितुकामः निर्व्रणं खड्गं गृहीत्वा, अहोरात्रोषितो भगवतोदारां पूजां कृत्वा तावज्जपेद्, यावज्ज्वलितेन सिद्धेन सपरिवारेणोत्पतति । आकुञ्चितकुण्डलकेशः द्विरष्टवर्षाकृतिः अपन्थदायी अगम्यः सर्वविद्याधराणाम् । अन्तरकल्पं जीवति ॥

अथ मनःशिलां साधयितुकामः वीरक्रयेण क्रीत्वा पुष्पयोगत्रिरात्रोषितः संघोद्दिष्टकां भिक्षां भोजयित्वा आज्ञा दापयितव्या । अनुज्ञातस्तत्र साधनं प्रविशेत् । उदारां पूजां कृत्वा घृतप्रदीपसहस्रं प्रज्वालयितव्यम् । त्रिरात्रोषितः सर्वसत्त्वानां मैत्रचित्तमुत्पाद्य आत्मानं निर्यात्य मनःशिलां गृहीत्वा तावज्जपेद्, यावत् त्रिविधा सिद्धिः । ऊष्मधूमज्वलितपूर्वमेव चिन्तयितव्यम् । अमुकसिद्धिरूष्मायमानतिलकं कृत्वा, सर्वदेवनागयक्षभूतपिशाचादीन् । जम्बूद्वीपनिवासिनश्च सत्त्वा दासभूता भवन्ति । किंकरा भवन्ति । वर्षसहस्रं जीवति । धूमायमाने तिलकं कृत्वा अन्तर्धीयते यदीच्छेत् । देवानामप्यदृश्यो भवति । क्षणलवमुहूर्तेन दृश्यते । पुनरन्तर्धीयते । सर्वान्तर्धानिकानां राजा भवति । त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवति । ज्वलितेन विद्याधरो भवति । सपरिवार उत्पतति । विद्याधरराजा भवति देवकुमारवपुः अधर्षणीयः सर्वदेवानां किं पुनर्विद्याधराणाम् । कल्पस्थायी भवति । कालगतस्तुषिते देवनिकाये उपपद्यते ॥

अथ त्रिशूलं साधयितुकामः । पुष्पलोहमयं तृशूलं कृत्वा संवत्सरं जपेत् । ततो G 292 वालुकामयं हस्तप्रमाणं चैत्यं कृत्वा, तस्य महतीं पूजां कृत्वा, उदारं च बलिं निवेद्य, दक्षिणहस्तेन तृशूलं गृहीत्वा तावज्जपेद्, यावत् पर्यङ्कं बद्ध्वा यावत् स्फुरति, ज्वलति, रश्मि-

सहस्राणि प्रमुञ्चति। अत्रान्तरे महेश्वरप्रमुखा देवा आगच्छन्ति। सर्वविद्याधराः पुष्पवर्षं प्रवर्षन्ति। ततस्तैः परिवृतः यावतां पश्यति, यैश्च दृश्यते, तैः सहोत्पतति। त्रिनेत्रः द्वितीय इव महेश्वरः सर्वविद्याधरनमस्कृतः महाकल्पस्थायी। निरीक्षितमात्रेण दुष्टचित्तां पातयति। न कस्यचिद् गम्यो भवति सदेवके लोके प्रागेव विद्याधराणाम्। च्युतः सुखावत्यामुपपद्यते॥

अथ वेताडं साधयति। अक्षताङ्गं पुरुषं गृहीत्वा, चतुरखदिरकीलकैः यन्त्रितस्योरस्युपविश्य रक्तपूर्णं जुहुयात्। तस्य जिह्वाग्रे चिन्तामणिरत्नं दृश्यते। तं गृह्य विद्याधरचक्रवर्ती भवति। यानि प्रहरणानि चिन्तयति, तानि मनसैवोपपद्यन्ते। योजनशतं प्रभयावभासयति। इच्छया कालं करोति। यत्रेच्छति तत्र गच्छति। लोकधात्वन्तरेऽपि विद्याधरचक्रवर्ती भवति। च्युतो विमलायां लोकधातावुपपद्यते॥

द्वितीयं वेतालसाधनम्। अक्षताङ्गं वेतालं गृहीत्वा, बदरकीलकैः कीलयित्वा, तस्य मुखे लोहचूर्णं जुहुयात्। तस्य जिह्वा निर्गच्छति। तं छित्त्वा शतपरिवार उत्पतति। अन्तरकल्पं जीवति। सुमेरुमूर्धनि क्रीडति, रमति। यदा मृयते, तदा एकदेशिको राजा भवति॥

अथाङ्कुशं साधयितुकामः कुशमयमङ्कुशं कृत्वा, कृष्णमयोरेकतरेण पञ्चगव्येन प्रक्षाल्य, एकरात्रोषितः अङ्कुशस्य हस्तं प्रमाणमात्रं कर्तव्यम्। उदारां पूजां कृत्वा वज्रपाणेर्घृतप्रदीपशतं प्रज्वाल्ययितं कर्तव्यम्। वज्रं कुर्यात्। तथैव सितातपत्रस्य आत्मनो रक्षा कर्तव्या। तेजोराशिना मण्डलबन्धं विकरेणेन (?) कीलकां सप्ताभिमन्त्रितां कृत्वा चतुर्दिशं निखानयितव्या। अथाबन्धं स्थानं च परिग्रहं कृतं भवति। ततो द्वितीये प्रहरे
G 293 एकाग्रमनाः पर्यङ्कं बद्ध्वा, अङ्कुशं गन्धपुष्पधूपैरभ्यर्च्य कृतरक्षः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां नमस्कृत्य अङ्कुशं हस्तेन गृह्य तावज्जपेद्, यावदत्रान्तरे नरकायिकानां देवानां वेदनान्युपशाम्यन्ते। सर्वबुद्धबोधिसत्त्वां नमस्कृत्य उत्पतति विद्याधरराजो अप्रतिहतगतिः अङ्कुशव्यग्रहस्तः। सर्वदेवनागयक्षादयश्च दृष्ट्वा दूरादेव प्रणामं कुर्वन्ति। कल्पस्थायी। यदा मृयते तदा वज्रभवनं गच्छति। वज्रपाणिं पश्यति। यदि पटं साधयति, तेन ज्वलितेन विद्याधरो भवति। यमिच्छति कल्पं साधयितुम्, तस्य मन्त्रस्य नामं ग्रहाय लक्षं जपेत्। अन्ते एकारात्रोषितः उदारां पूजां कृत्वा अर्ककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य तिलानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात्। होमान्ते आगच्छति। धनं यमिच्छति तं ददाति। वशं तिष्ठति किंकरवशः॥

अथ महेश्वरं कर्तुकामः। महेश्वरस्य महतीं पूजां कृत्वा दक्षिणायां मूर्तौ अर्ककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य अष्टसहस्रं जुहुयात्। हाहाकारशब्दं भवति। न भेतव्यम्। तत आगच्छति। ब्रवीति–किंकर्तव्या। सर्वे महेश्वरा विद्या मम सिद्धा भवन्तु। यद्वरं रोचति तं ददाति। एवमस्त्विति कृत्वा अन्तर्धीयते॥

एवं विष्णुब्रह्माद्यमाकर्षयति। यं चारोचयति तस्याप्येषो विधिः कर्तव्यः। कृतरक्षेण कार्यम्॥

अथ यक्षिणी आकर्षयितुकामः । तस्य नामं गृह्य सप्ताहमशोकपुष्पाणि जुहुयात् । आगच्छति, वरं ददाति । सप्तमे सप्ताहेऽवश्यमागच्छति माता भगिनी भार्या यं चारोचयति । अथ न वा गच्छति, मूर्धानमस्य स्फुटति ॥

नागीमाकर्षितुकामस्य नागपुष्पाणामेष एव विधिः ॥ यक्षं आकर्षितुकामस्य मासत्रयं दधिभक्तं जुहुयात् । अन्ते एकरात्रोपितः भगवतः पूजां कृत्वा यक्षाणां यक्षबलिं चोदनानि निवेद्य यक्षाकर्षणं करिष्यामीति मनसि कृत्वा वटवृक्षसमिधां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । अत्रान्तरे कुबेराद्या यक्षा आगच्छन्ति । तेषां रक्तकुसुमैः अर्घो दीयते । वक्ष्यन्ति–किं कर्तव्यं ते ? वक्तव्याः–एकैकं दिने यक्ष आज्ञाकरं यक्षं प्रेषयेति । G 294 तत एकैकं यक्षं प्रयच्छन्ति । तस्य आज्ञा दातव्या । योजनाशतादपि स्त्रियमानयन्ति । प्रभाते तत्रैव नयन्ते । शतपरिवृतस्य भक्तं प्रयच्छन्ति । पृष्ठमारुह्य यत्रेच्छति तत्र गच्छति । नयति । रसायनं ददाति । आज्ञप्तः सर्वं करोति ॥

अथ वज्रपाणिं साधयितुकामः । चतुर्गुणं सप्तगुणं पूर्वसेवां कृत्वा प्रातिहारकपक्षे सकलामुदारतरां पूजां कृत्वा यावत् पूर्णमासीति । पूर्णमास्यां पूजां कृत्वा भिक्षवः संघोद्दिष्टकां भोजयित्वा आर्यवज्रधरस्यैव अनुमोदितव्या । तत उदारां पूजां कृत्वा प्रथमे यामेऽतिक्रान्ते द्वितीये यामे पर्यङ्कं बद्ध्वा उपविश्यैकाग्रमानसः वज्रधरं द्रक्ष्यामीति चित्तं संकल्प्य गुग्गुलुगुलिकानां बदरास्थिप्रमाणानां रात्रावेकयामं जुहुयात् । ततो भगवतः स्रग्दामचलनं भवति । भूः प्रकम्पति । मेघा गुलुगुलायन्ति । सर्वे विद्याधराः पुष्पवर्षं प्रवर्षन्ति । अत्रान्तरे भगवां वज्रपाणिरागच्छति सर्वविद्याभिः परिवृतः। विद्योत्तमप्रमुखैः विद्याराजैः परिवृतः । सर्वदेवैः सर्वनागैः सर्वयक्षैः सर्वगन्धर्वैः किन्नरैर्बोधिसत्त्वैः परिवृतः आगच्छति । तत्क्षणं नारकाणां सत्त्वानां तीव्रवेदना व्युपरता भवन्ति । गन्धोदकेन अर्घ्यो देयः । प्रणिपत्य स्थातव्यम् । ततो वज्रधरो वक्ष्यति–किं ते वरं ददामि ? विद्याधरचक्रवर्तित्वं बिलप्रवेशं राष्ट्रं अन्तर्धानं यद्वा रोचते, तस्यैव भगवतः सकाशाल्लभ्यते । यद्वा रोचति विद्याधरचक्रवर्तित्वं सर्वविद्याधराणां चक्रवर्ती वज्रकायो वज्रपाणिसदृशः । चित्तमात्रेण सर्वप्रहरणान्युत्पद्यन्ते । महाकल्पस्थायी । यदा मृयते तदा वज्रभवनं गच्छति । अन्येषामपि विद्याधराणां एष एव विधिः । संक्षेपतो यानि वज्रपाणिकल्पे यानि अवलोकितेश्वरकल्पे यानि च भगवता प्रोक्तानि कल्पानि, यानि ब्रह्मकल्पे यानि महेश्वरकल्पे संक्षेपतो लौकिकलोकोत्तरेषु कल्पेषु ये साधनीयाः, ते एतेनैव साधनया सिध्यन्ते । महामन्त्राः साध्यमाना न सिध्यन्ति । अनेन सार्धं जप्तव्याः सप्तरात्रम् । नियतं दर्शनं ददाति । अथ न ददाति, विनश्यति । महेश्वरप्रमुखानां देवानां अग्रतः यदि जपति, सप्तरात्राभ्यन्तरेण दर्शनं ददाति । यदि न ददाति G 295 त्रिसप्तधा मूर्धा स्फुटति । चन्द्रग्रहे आदित्यग्रहे वा घृतवचाञ्जनपवित्रदण्डकाष्ठयज्ञोपवीतहरितामनःशिलादयः साधयितव्याः ॥

अथ द्रव्यं साधयितुकामः । मनःशिलां गृह्य मानुषक्षीरेण पेषयित्वा पञ्चगुलिका कर्तव्या । अगुरुसमुद्गके प्रक्षिप्य श्वेतसिद्धार्थकसहितां साधयेत् । चन्द्रग्रहे सूर्यग्रहे वा बलिविधानं कृत्वा यदा सर्षपा चिटिचिटायन्ति, तथा प्रथमा सिद्धा या वा सर्वजनवशीकरणं तया सर्वस्य लौकिकेया विधेया भवन्ति । यदुच्यते तत्सर्वं करोति । अथ धूमायते, सर्वान्तर्धानिकानां राजा भवति । अन्तरकल्पं जीवति । ज्वलिते यदा देवकुमारवपुः तरुणार्कतेजो विद्याधरराजा भवति । महाकल्पं जीवति । एवं रोचनाहरितालादीनि साधयितव्यानि ॥

अथाञ्जनं साधयितुकामः । स्रोताञ्जनं नीलोत्पलं कुष्ठं चन्दनं चैकतः कृत्वा ताम्रभाजने संस्थाप्य चन्द्रग्रहे तावज्जपेद् यावद् धूमायति । तेनाञ्जितनयनः अन्तर्धीयते कामरूपी । सर्वान्तर्धानिकानां राजा भवति ॥

अथ खड्गा साधयितुकामः । निर्व्रणं खड्गमादाय कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा पटस्योदारां पूजां कृत्वा बलिविधानं च कृतरक्षः खड्गं दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तावज्जपेद् यावत् स्फुरति । ज्वलिते एकाकी विद्याधरो भवति । ज्वलितेन सर्वविद्याधराणां राजा भवति अप्रतिहतबलपराक्रमः । यैर्दृश्यते यांश्च पश्यति तैः सहोत्पतति ॥

अथ वज्रं साधयितुकामः । पुष्पलोहमयं वज्रं कृत्वा षोडशाङ्गुलं उभयत्रिसूचिकं रक्तचन्दनेनानुलिप्य प्रातिहारकपक्षप्रतिपदमारभ्य पटस्योदारां पूजां कृत्वा जपेत् । प्रतिदिनं वर्धमाना भिक्षवो भोजयितव्या । अन्ते त्रिरात्रोषितः पटं सधातुके चैत्ये प्रतिष्ठाप्य उदारां पूजां कृत्वा घृतप्रदीपशतं प्रज्वाल्य कुशपिण्डकोपविष्टः वज्रमुभाभ्यां
G 296 पाणिभ्यां गृहीत्वा तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति । तं गृह्य सपरिवार उत्पतति । विद्याधरचक्रवर्ती भवति वज्रपाणितुल्यपराक्रमः । महाकल्पं जीवति । भिन्ने देहे वज्रपाणिभवनं गच्छति ॥

एवं शूलचक्रशरशक्तिप्रभृतयः सर्वे प्रहरणाः पटपादुकदण्डकाष्ठयज्ञोपवीतादीनि परकल्पविधानेन साधयितव्यानि । सर्वेषां त्रिविधा सिद्धिः ॥

शान्तिकं कर्तुकामः । पद्माकारां वेदिं कृत्वा याज्ञिकैः समिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य स्रुवेण परमान्नाहुतीनां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । त्रिरात्रेण आत्मनः परस्य वा शान्तिर्भवति । सप्तरात्रेण ग्रामस्य वा नगरस्य वा । महामारिउपद्रवे शमीसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां जुहुयात् । उदुम्बरसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां जुहुयादनावृष्टेः । त्रिमधुरं जुहुयात् । सर्वत्र परमशान्तिर्भवति । भिक्षाहारः त्रिंशल्लक्षं जपेत् प्रातिहारकपक्षे । शुक्लपूर्णमास्यां त्रिरात्रोषितः चन्द्रग्रहे कृष्णगोक्षीरमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा पिबेत् । रसायनं गुणोपेतं भवति । दूर्वाप्रवालानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं दशरात्रं जुहुयात् अकालमृत्युः प्रशाम्यति । दीर्घायुर्भवति । ध्वजशङ्खादीनि अभिमन्त्रयेत् ।

दृष्ट्वा श्रुत्वा च परसैन्यं स्तम्भयति । सर्वव्रीहिगन्धोदकपरिपूर्णं नवं कलशं कृत्वा अष्टशतजप्तेन विनायकोपद्रुतं स्पृष्ट्वा स्नापयेत् । अभिषिक्तो लक्ष्मीवां भवति । अनेनाभिषेकेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । मण्डलकर्माणि करोति ग्रहकर्माणि । शतसहस्रजप्तेन मयूरपिच्छकेन सर्वविषां नाशयति । तेनैव ज्वरमक्षिशूलरोगादीं नाशयति । सूत्रकेण सर्वज्वरां मुद्रासमेतयुक्तो मन्त्रेणासुरयन्त्राणि घातयति । खदिरसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । महानिधानं प्रयच्छति ॥

समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य रक्तचन्दनाक्तानां पद्मानां शतसहस्रं प्रवाहयेत् । पद्मराशितुल्यं निधानं लभति । दीयमानमक्षयं भवति । बिल्वाहुतीनां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । भोगां प्राप्नोति ॥

देवां वशीकर्तुकामः । अगरुसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां जुहुयात् अष्टसहस्रम् । G त्रिसंध्यमेकविंशतिरात्रम् । तन्दुलानां दधिमधुघृताक्तानामेकीकृत्य जुहुयात् । अक्षयमन्नं भवति ॥

यक्षाणां वशीकरणे गुग्गुलुगुलिकानां दधिमधुघृताक्तानां जुहुयात् । अशोकसमिद्भिर्यक्षिणीनाम् । नागानां नागपुष्पां आर्यवज्रवज्रपाणिरगरुसमिधाभिः विद्याधराणां दमनकसमिधाभिः अगुरुसमिधानां तुरुष्कतैलाक्तानां गन्धर्वाणां कुन्दुरुहोमेन प्रेतानां श्रीवासकहोमेन किन्नराणां सर्जरसहोमेन विनायकानाम् । सर्वेषामष्टशतिको होमः । सप्ताहं राजानकस्य राजसर्षपतैलाक्तानां अष्टशतं जुहुयात् । त्रिसंध्यं सप्तरात्रं आदित्याभिमुखं लक्षं जपेत् सर्वपापैः प्रमुच्यति ॥

सर्वविद्यानामाप्यायनं कर्तुकामः । गोमूत्रयावकाहारः उशीरमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा शुक्लपुष्पैरभ्यर्च्य क्षीराष्टशतं जुहुयात् । क्षीरेण च स्नपयेत् । अष्टशतजप्तेन अगरुधूपं दद्यात् । आप्यायितो भवति । सकृदुच्चारितेन आत्मरक्षा कृता भवति । द्विरुच्चारितेन परस्य । त्रिरुच्चारितेन द्रव्यस्य रक्षा कृता भवति ॥

छिन्नभिन्नमष्टकीलितानामाप्यायनं कर्तुकामः । उशीरमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा शुक्लपुष्पैरभ्यर्च्य अनेन उष्णीषराजेन पटस्याग्रतः राजसर्षपाणां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् विद्यामुद्दिश्य । उत्कीलिता भवति । पापिजनातिरिक्तां विद्यां ज्ञात्वा गोरोचनया भूर्जपत्रे लिख्य ततः आत्ममन्त्रमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा भगवतः उदारां पूजां कृत्वा अनेन भगवता सार्धं अष्टसहस्रं जप्त्वा तत्रैव कुशसंस्तरे स्वपेत् । ऊनातिरिक्तां स्वप्ने आगत्य कथयति ॥

अथ पद्मं साधयितुकामः । रक्तचन्दनमयं पद्मं कृत्वा उदारां पूजां कृत्वा त्रिरात्रोषितः तं पद्मं दक्षिणेन हस्तेन गृहीत्वा तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति । विंशतिपरिवारः उत्पतति । विद्याधरचक्रवर्ती भवति अप्रतिहतगतिः । यदा मृयते, तदा सुखावत्यामुपपद्यते ॥

अथ वज्रं साधयितुकामः । वल्मीकमिश्रया मृत्तिकया वालुकमिश्रया वज्रं कृत्वा
G 298 भिक्षाहारः मौनी अपत्यदायी वज्रं गृह्य त्रीणि लक्षं जपेत् । एकसूचिकं वज्रं कर्तव्यम् । ते वज्रमन्ते सिद्धार्थकमध्ये स्थाप्य चन्द्रग्रहे चन्द्रग्रहे स्थातव्यम् । तावज्जपेद् यावत् सर्षपा चिटिचिटायन्ति । वज्रं सिद्धं भवति । तेन वज्रेण गृहीतेन सर्वकर्माणि करोति । पर्वतशिखराणि चूर्णयति । नागह्रदं शोषयति । नदीः प्रतिस्रोतमानयति । नागां विद्रापयति । विषाणि निर्विषीकरोति । सर्वे प्राणिनः स्तम्भयति, मोहयति, पातयति । यन्त्राणि चूर्णयति । शकटप्रभृतीनि च स्तम्भयति, चूर्णयति । एवमादीनि सर्वकर्माणि करोति । एष एकसूचिकस्य वज्रस्य साधनम् ॥

उष्णीषचक्रवर्तिनं साधयतो न कश्चिच्छक्नोति विघ्नं कर्तुम् । साक्षान्मूर्ध्नटकोऽपि हि विधिना नाविधिना । अस्य च जापकाले सततं बुद्धलोचनां पूर्वं पश्चाच्च जप्तव्यम् । एवं सौम्यत्वं भवति । सिद्धिरस्याभिमुखी भवति ॥

अथ समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य पद्मानां लक्षं निवेदयेत् । श्री आगत्य वरं प्रयच्छति । राष्ट्रं ददाति । अथ त्रीणि लक्षाणि निवेदयेत् । सार्वभौमिको राजा भवति । जम्बूद्वीपाधिपतिर्भवति । विवरस्याग्रतः पटं प्रतिष्ठाप्य लक्षाणि त्रीणि जपेत् । सर्वयन्त्राणि पतन्ति । निर्विशङ्केन प्रवेष्टव्यम् । प्रविश्य रसरसायनं निःकाशयति । अथ तत्रैव तिष्ठति, वैष्णवचक्रभयमुत्पद्यते । अथ प्रविशति, अनुस्मरितमात्रेण भस्मीभवति । मनसेन उत्थापयति, न कदाचिदपि प्रविशति तस्मिं ॥

शुक्लप्रतिपदमारभ्य त्रिःकालं जातीकुसुमैः सकृज्जप्तेन भगवताः पादाङ्गुष्ठे ताडयितव्यम्, यावत् पादाङ्गुष्ठाद् रश्मिर्निश्चरति । साधकशरीरेऽन्तर्धीयति । तत्क्षणादेवाकुञ्चितकुण्डलकेशो भवति कल्पस्थायी ॥

अथ समुद्रतटे पश्चान्मुखं पटं प्रतिष्ठाप्य नागकाष्ठैः अग्निं प्रज्वाल्य समुद्रस्योद्दिश्य नागपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । समुद्रे ऊर्मय आगच्छन्ति सिद्धिनिमित्तम् । न भेतव्यम् । तावद् यावत् समुद्रो ब्राह्मणवेषेणागच्छति । ब्रवीति—किं मया कर्तव्यम् ? वक्तव्यम्—वश्यो मे भव । ततो यदुच्यते तत्सर्वं करोति ॥

G 299 पद्मं भूम्यां लिख्य सहस्रपत्रं तस्योपर्युपविश्य शतसहस्रं जपेत् । भूमिं भित्त्वा उत्तिष्ठति सहस्रपरिवारः । उत्पतति । महाकल्पस्थायी विद्याधरराजा भवति अपरिपन्थदायी । तेजेन पञ्चयोजनानि अवभासयति ॥

प्रातिहारकपक्षे जातीपुष्पाणां भगवतः उष्णीषराजस्योपरि लक्षं निवेदयेत् । एकैकं जप्तव्यं तावद् यावदुष्णीषाद् रश्मिर्निश्चरति । साधकस्य शरीरेऽन्तर्धीयते । तत्क्षणादेव पञ्चाभिज्ञो भवति दशलक्षजप्तः । यथा प्रयुज्यति तथा तथा । अनेनैव भगवता सार्धं यदि विद्या जप्यते सा नियतमागच्छति साक्षादस्य जप्यमाना । यदि न वागच्छति स मूर्धा स्फुटति । शुष्यति ॥

अयं च एकाक्षर उष्णीषचक्रवर्ती तथागत एव साक्षात् । कोऽन्यः सदेवके लोके सर्वमन्त्रविद्यानां राजा? तथागत एव । सितातपत्रतेजोराशिप्रमुखानि अस्य परिवारः । सर्वेषामुष्णीषराजानां साधनविधानं सर्वं अत्रैव योज्यम् । सर्वे च उष्णीषराजा अनेन साध्याः । उत्तमसाधनं इच्छता अस्थाने न योज्यम् । यदि युज्यति, उत्तमा सिद्धिर्न भवति । संक्षेपतः सर्वे देवा अनेनाकृष्यन्ते ॥

अथ निदानमुद्घाटयति । यत्र निधानं तिष्ठति, तत्र गत्वा अकालकलशं गृह्य सर्वगन्धैर्लिप्य श्वेतचन्दनोदकं कुम्भे प्रक्षिप्य अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा निधानं स्थापयेत् । यदि निधानं तिष्ठति, तदा स भूमिः स्फुटति । यदि निधानं पुरुषमात्रे तिष्ठति, उदकेन स्प्रष्टव्यम् । हस्तमात्रं गत्वा ग्रहेतव्यः ॥

अथ सिंहं साधयितुकामः । वल्मीकमृत्तिकया कृत्वा गोरोचनया समालभ्य पिण्डिकायां प्रतिष्ठाप्य उदारां पूजां कृत्वा तावज्जपेद् यावच्चलति । चलितेन सिद्धो भवति । पृष्ठमारुह्य आकुञ्चितकुण्डलकेशः आत्मपञ्चमो उत्पतति । ब्रह्मायुषो नववर्षसहस्राणि जीवति सर्वविद्याधराणामागम्य ॥

एवं हस्त्यश्वमहिषाश्च साधयितव्याः । यदा सिंहनादं नदति, तदा देवा आसनेभ्यश्चलन्ति ॥

G 301

पद्मसरं गत्वा पद्मानां लक्षं निवेदयेत् , सामन्तराज्यं प्रतिलभते । रक्तकरवीरकलिकानां लक्षं जुहुयात् , राजकन्यां लभते । जातीपुष्पाणां लक्षं समुद्रगामिन्यां नद्यां प्रवाहयेत् , कन्यां लभते यामिच्छति । सर्वे ते उत्तमसाधनानि सिध्यन्ति ॥

अनेनोष्णीषचक्रवर्तिना स यत्र गच्छति, इन्द्रोऽप्यस्यासनं ददाति । सर्वे च देवराजानः दूरादेव दृष्ट्वा भीता त्रस्ता भवन्ति । सर्वेषां च देवराजानां प्रभां प्रभां व्यामीकरोति । योजनशताभ्यन्तरेण करोति ॥

अयं चक्रवर्ती तथागतः । एष देवलोके सर्वे च कल्पस्य भगवतः उष्णीषचक्रवर्तिनः एकाक्षरस्य वशे वर्तन्ति । तन्निम्नाश्च सर्वे मन्त्रतन्त्राः सकल्पकाः सविस्तराः । इत्याह भगवां शाक्यमुनिः सिंहो नरोत्तम इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात्
चतुर्विंशतितमः एकाक्षरचक्रवर्तिकर्मविधिपट–
निर्देशपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



G 301

२७ एकाक्षरमूलमन्त्रहृदयकल्पः।

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य तत्रस्थांश्च देवसंघान् सर्वांश्च बुद्धबोधिसत्त्वां प्रत्येकबुद्धार्यश्रावकां पुनरपि मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म– निर्दिष्टोऽयं मञ्जुश्रीः सर्वतथागतानां सर्वस्वभूतं धर्मकोशं चिन्तामणिप्रतिप्रख्यं लोकानामाशयसफलीकरणार्थम्। तस्मिं काले युगाधमे शून्ये बुद्धक्षेत्रे परिनिर्वृतानां तथागतानां सद्धर्मनेत्री अन्तर्धानकालसमये तस्मिं काले तस्मिं समये सर्वतथागतानां मन्त्रकोशसंरक्षणार्थं त्वदीयकुमारमन्त्रतन्त्राणां कल्पराजेऽस्मिं निधानभूतो भविष्यति। जप्यमानो विधिना सारभूतोऽयं मञ्जुश्रीः सर्वतथागतमन्त्राणां त्वदीये च कुमारकल्पराजेऽग्रभूतो भविष्यत्ययं एकाक्षरचक्रवर्ती। अनेन जप्यमानेन सर्वे ताथागता विद्याराजानः जप्ता भवन्ति॥

अपरमपि मञ्जुश्रीः त्वदीयकल्पराजे निधानभूतं सारभूतं अग्रभूतं ज्येष्ठभूतमेकाक्षरं पूर्वमासीत्। अतीते काले अतीते समये द्वाषष्टिगङ्गानदीसिकतप्रख्यैः कल्पैः अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवां। यस्य स्मरणादेव नामग्रहणमात्रेण पञ्चानन्तर्याणि क्षयं गच्छन्ति। नियतं बोधिपरायणा बहवः सत्त्वाः ये नाममात्रं श्रोष्यन्ते, कः पुनर्वादो ये मन्त्रसिद्धये। अवश्यं च सर्वमन्त्रजापिभिः अयं भगवानमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजा तथागतः प्रथमत एव मनसि कर्तव्यः। वाचा च वक्तव्या– नमस्तस्मै भगवते अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्राय तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय॥

ततोऽमिताभं रत्नकेतुं ततः सर्वबुद्धानां प्रणामं कृत्वा यथेप्सितं मन्त्रा जप्तव्याः। आशु सिद्धिं प्रयच्छन्ति। यत् कारणं महापुण्याभिवृद्धये मन्त्राणां तथागतानां संज्ञापरिकीर्तनं नमस्कारं च सर्वतथागतानां च प्रमाणम्। नियतं बोधिपरायणोऽयं कुशलसंभारपरिपूरितो भवति। बोधिसत्त्वसंख्यं गच्छति। मन्त्रा च तस्य आशु सिद्धिं प्रयच्छन्ति। G 302 अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रेण तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अयमेकाक्षरमन्त्रः सर्वतथागतहृदयः सर्वमन्त्रतन्त्राभिमतः सर्वकर्मार्थसाधकः मञ्जुघोष त्वदीये कल्पराजे परमरहस्यं परमगुह्यतमं लोकेनात्महिताय प्रयोक्तव्यम्॥

अशिष्ये चापि अधार्मिके.... ... ...
अप्रसन्ने तथा शास्तु शासनेऽस्मिं जिनोदिते॥ १॥
दुष्टे मानिने चापि शास्तुः शासनच्छिद्रिणे।
न कथंचित् प्रयोक्तव्यः अप्रसन्ने जिनसूनुनाम्॥ २॥
श्रावकां खड्गिणां चापि पूजानुग्रहमक्षमे।
न तस्य देयं मन्त्रं वै सिद्धिस्तस्य न दृश्यते॥ ३॥

श्राद्धः सौम्यचित्तश्च प्रसन्नो जिनशासने ।
बोधिसत्त्वो तथा नित्यं पूजानुग्रहतत्परः ॥ ४ ॥
तस्य सिद्धिर्भवेन्मन्त्रे इह कल्पे मयोदिते ।
एकाक्षरे महामन्त्रे मञ्जुघोषनियोजिते ॥ ५ ॥
तेनासील्लोकनाथेन मन्त्रं दत्तं सुखावहम् ।
हृदयं सर्वबुद्धानां सर्वमन्त्राणां च उद्भवः ॥ ६ ॥
षट्सप्तत्यः तथा कोट्यः पुरा गीतं स्वयंभुना ।
मन्त्राणां श्रेयसार्थाय देहिनां पापमोहिनाम् ॥ ७ ॥
सर्वेऽस्तं गता मन्त्राः शास्तुबिम्बं समाश्रिताः ।
तेषु सारभूतोऽयं विद्याराजा महर्द्धिकः ।
एक अक्षरविन्यस्तो शाश्वतोऽयं प्रवर्तते ॥ ८ ॥
स्थितैषो धर्मकोटिस्थः बुद्धानां तु जगद्धिताम् ।
धर्मनेत्र्या समाश्रित्य स्थितोऽयमेकमक्षरः ॥ ९ ॥
सर्वार्थसाधको मन्त्रः दुष्टराज्ञां निवारकः ।
करोति कर्मवैचित्र्यं सर्वकर्मप्रसाधकः ॥ १० ॥
साष्टं कर्मसहस्रं च कुरुते च ध्रुवं तथा ।
विचित्रां संपदं दद्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११ ॥
मञ्जुश्रियस्य हृदयोऽयं मकारो मन्त्रसंयुतः । G 303
उकारगतिनिलयञ्चः आसील्लोके प्रवर्तितः ॥ १२ ॥
अमितायुर्ज्ञानराजेन विनिश्चितार्थः प्रकाशितः ।
मञ्जुघोषस्य बुद्धेन प्रवृत्तोऽयं वशहेतुना ॥ १३ ॥
त इमं युगान्तके लोके शास्तरि परिनिर्वृते ।
सिद्धिं च यास्यते क्षिप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १४ ॥
अमितायुर्नाम आसीत् बुद्धक्षेत्रविकल्पितम् ।
तत्रासौ भगवां बुद्धः धर्मचक्रप्रवर्तकः ॥ १५ ॥
तिष्ठत्यपरिमितां कल्पां आयुर्वसितमधिष्ठितः ।
अत एव तस्य संज्ञाभूदमितायुर्ज्ञानविनिश्चयः ॥ १६ ॥
राजेन्द्रः सर्वलोकानां महर्द्धिकोऽयं तथागतः ।
स ददुः मन्त्रवरं मुख्यं बुद्धपुत्रस्य धीमते ॥ १७ ॥
ज्येष्ठः तनयमुख्यस्य महास्थाने महर्द्धिके ।
ततस्तेन सुतेनैतत् समन्तभद्रस्य योजितम् ॥ १८ ॥
ततस्तं बुद्धपुत्रो वै मञ्जुघोषस्य दत्तवां ।
अधुनाहं तथागतो ह्यग्रकल्पमस्यमुदीरयेत् ॥ १९ ॥

इदं तन्मन्त्रमुख्यं वै धर्मराजेन भाषितम्।
श्रेयसार्थं तु भूतानां सर्वेषां मन्त्रमब्रवीत्॥ २०॥

नमोऽमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्राय तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय। नमः सर्वबुद्धानां शालेन्द्रराजरमितायुरत्नकेतुप्रभृतीनाम्। एभ्यो नमस्कृत्वा त्रिरपि मन्त्रो जप्तव्यमेकाक्षरम्। कतमं च तत्? मुँ॥

एष सः मार्षा अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रेण तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन भाषितम् अमितव्यूहवत्यां लोकधातौ स्थितेन सर्वसत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनस्यार्थाय अनागतां च जनतामवेक्ष्य शासनान्तर्द्धानकालसमयं विदित्वा अन्ते युगाधमे रत्न-
G 304 त्रयापकारिणां दुष्टराज्ञां निवारणार्थं ज्येष्ठमौरसं पुत्रं सर्वतथागतानां महास्थामप्राप्ताय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय दत्तवां। बुद्धाधिष्ठानेन समन्तभद्रस्य दत्तवां। समन्तभद्रो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य दत्तवां। ततो मञ्जुश्रियेण कुमारभूतेन सर्वसत्त्वानामनुग्रहार्थं महाकरुणावशेन हृदयस्थः स्वमूर्तौ स्थापितवां। अनागतकालमवेक्ष्य युगाधमे शासनान्तर्धानकालसमये अहमपश्चिकस्तथागतः दुष्टे काले कलौ युगे मम शासनसंरक्षणार्थं करिष्यत्ययं मन्त्रवरः॥

अस्य कल्पं वक्ष्ये समासतः। शृणु कुमार मञ्जुस्वर सुस्वर। तवैतन्माहात्म्यं कल्पविस्तरम्। अस्य कल्पराजेन्द्रस्य सविस्तरतरं वक्ष्ये॥

आदौ तावत् पर्वताग्रमारुह्य विंशल्लक्षाणि जपेत्। पूर्वसेवा कृता भवति। क्षीराहारेण मौनिना नान्यत्र मन्त्रगतचित्तेन तृशरणपरिगृहीतेन उत्पादितबोधिचित्तेन च पोषधशीलसंवरसमादापनाबोधिसत्त्वसंवरसंवरपरिगृहीतेन जप्तव्यम्। ततः कर्माणि भवन्ति। आदौ तावत् पटं लिखापयितव्यम्। उपोषथिकेन चित्रकरेण अश्लेषकैर्वर्णैः अन्यतरेण शुचिना चेलखण्डेन पट्टके वा चन्दनकर्पूरकुङ्कुमपर्युषितेन शुचौ देशे शुचिना चित्रकरेण त्रिशुक्लभोजिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन आदित्योदयकालपरिपूर्णपञ्चदश्यां विशुद्धनक्षत्रेण लिखापयितव्यं यावन्मध्याह्नम्। परतो वर्जयेत्। एवं दिवसे दिवसे यावत् परिसमाप्त इति॥

आदौ तावत् पटस्य अमितायुर्वर्तीं लोकधातुमालिखेत्। हस्तमात्रे पटे सुगतवितस्तिचतुरस्रे पट्टके वा समन्तादमितायुर्वर्तीं लोकधातुं समन्तात् पद्मरागेन्द्रनीलस्फटिकमरकतपर्वतैरधस्तात् उपशोभितं उपरिष्टाच्च तेषां महारत्नविमानोपशोभिताकारं ध्वजपताकोपशोभितोच्छ्रिताकारम्। तत्र मध्ये रत्नसिंहासनोपविष्टममितायुविनिश्चयराजेन्द्रं तथागतं धर्मं देशयमानं समन्तप्रभाज्वालामालिनं ईषद्रक्तावदातं वामपार्श्वेरत्नोपलनिषण्णं महास्थामप्राप्तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं चामरव्यग्रहस्तं तथागतदृष्टिं वामहस्तबीजपूर्णकफलन्यस्तं प्रियङ्गुश्यामावदातं सर्वालंकारा-
C 305 लंकृतशरीरं समन्तज्वालं दक्षिणपार्श्वे भगवन्तं समन्तभद्रं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं रत्नोपलस्थितं चामरव्यग्रहस्तं उद्धूयमानसितविन्यस्तपाणिं वामहस्तेन रत्नपाणिं सर्वालंकाररत्नमकुटविच्छुरितं

प्रियङ्गुश्यामावदातं नीलपट्टचलनिकानिवस्तं मुक्तिकाहाररत्नयज्ञोपवीतं समन्तज्वालामालावबद्धम् । तस्य दक्षिणपार्श्वे आर्यमञ्जुश्रियं रत्नोपलस्थितकं कुमारभूतं पञ्चचीरकोपशोभितशिरं बालदारकालंकारालंकृतं कनकवर्णं नीलपट्टचलनिकानिवस्तं मुक्तावलीरत्नव्यतिमिश्रयज्ञोपवीतं तथागतदृष्टिं ईषत्प्रहसितवदनं सौम्याकारं चारुरूपं कृताञ्जलिपुटं सर्वाकारवरोपेतं लिखापयितव्यम् । तस्याधस्ताद् यथावेषलिङ्गं वेषी संस्थानधारी साधकः पद्ममालां गृह्य जानुकोर्परसंस्थितः अवनतशिरः पटकोणान्तदेशे लिखापयितव्यः । भगवतः उपरिष्टाच्चत्वारो बुद्धा भगवन्तः लिखापयितव्यः । दक्षिणोद्देशे द्वौ अमिताभः पुण्याभश्च । वामपार्श्वे उपरिष्टाद् द्वौ तथागतौ अभिलिखापयितव्यौ सालेन्द्रराजो रत्नकेतुश्च । समन्तप्रभा समन्तज्वाला कनकवर्णाः सर्वाकारवरोपेता सर्वपुष्पाभिकीर्णा निषण्णा पद्मासनेष्वेव नान्यासनेषु धर्मं देशयमानाः पर्यङ्कोपविष्टाः सौम्याकारा भगवतः उपरिष्टात् पुष्पवर्षं प्रवर्षयमानं मेघान्तर्गतलीनं तथागतविग्रहमुत्पतमानं सुनेत्रनामा अभिलिखापयितव्यः सर्वाकारवरोपेतं समन्तप्रभाज्वालामालिनं दक्षिणहस्तेन वरप्रदं वामहस्तेन चीवरकर्णकावसक्तम् ॥

एतद् भगवतः अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पटविधानम् । एतस्यैव भगवतः अयमेकाक्षरो मन्त्रः । उष्णीषराजोऽयं उष्णीषचक्रवर्ती प्रतिस्पर्धी समतुल्यवीर्यः तुल्यप्रभावः । अचिन्त्यमस्य गुणविस्तारप्रभावम् । महर्द्धिकोऽयं महानुभावः । संक्षेपतः सर्वतथागतोष्णीषराजानं महाचक्रवर्तिनमेकाक्षरस्य च यानि कल्पविस्तराणि उक्तानि तानि सर्वाणि करोति । असाधितोऽपि जप्तमात्रः कर्माणि कुरुते, कः पुनर्वादः साधितः । यथेष्टफलसंपदां ददाति । ईप्सितं भवति मनसा यदभिरुचितं अस्य पटस्य दर्शनादेव । नियतं बोधिपरायणो भवति ॥

तस्यैव भगवतः अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रस्याधिष्ठानेन सर्वतथागतहृदय इत्युच्यते । G 306 सर्वतथागत उष्णीषराजमित्युच्यते । चक्रवर्ति इत्युच्यते । महाचक्रवर्तिराज इत्युच्यते । मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य हृदय इत्युच्यते । एकाक्षर इत्युच्यते । संक्षेपतः अचिन्त्यमस्य प्रभावः । अचिन्त्यो हि बुद्धानामधिष्ठानः । अचिन्त्यं बुद्धविकुर्वितम् । असाधितोऽपि अकृतपुरश्चरणोऽपि सर्वगृहारम्भप्रतिष्ठितोऽपि सर्वभक्षमद्यमांसग्राम्यधर्मप्रतिषेविणोऽपि वर्जयित्वा अश्राद्धस्य अनुत्पादितबोधिचित्तस्य । एतेषां नास्ति सिद्धिः, रत्नत्रयोपकारिणां तत्प्रतियत्नोपघातिनां च । एतेषां क्षुद्रकर्माणि न सिध्यन्ति । कः पुनर्वादो मध्यमोत्तमा सिद्धिः । सर्वकामप्रचारभक्ताचारप्रचारस्य साधिकाष्टं कर्मसहस्रं क्षुद्रकर्मप्रयुक्तस्य सिध्यन्ते । कतमे च ते ? आदौ तावदेकजप्तः आत्मरक्षा, द्विजप्तः पररक्षा, त्रिजप्तो महारक्षा भवति । महाबोधिसत्त्वेनापि दशभूमिप्रतिष्ठितेन न शक्यते संक्षोभयितुम्, कः पुनर्वादः तदन्यैः सत्त्वैः । पञ्चरङ्गिकेण सूत्रेण चतुर्जप्तेन कट्यां वेष्टयेत् । शुक्रबन्धः कृतो भवति । स्वप्नोपघातं चास्य न भवेत् वर्जयित्वा तु स्वेच्छया । तदह एव रात्र्यामेको यदि रोचते, दिने दिने कर्तव्यः । अथ न रोचते, भस्म सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा नाभिदेशं स्पृशेत् । त्रिसप्ताहं शुक्रबन्धः कृतो

भवति । पञ्चजप्तो बुद्धं भगवन्तं ध्यात्वा यं स्पृशेत्, स वश्यो भवति । चन्द्रमसग्रहे शशिग्रहे शशिमण्डले अर्ककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य विनापि पटेन पूर्वाभिमुखः आज्याहुतीनां दशसहस्राणि जुहुयात् । राजकुलसमीपे निम्नगानान्तरिते देवावसथे वा नान्तरितम् । यस्मिं देशे राजा तिष्ठति, तत्र समीपे होमकर्म प्रयोक्तव्यः । प्रभाते राजा वश्यो भवति । यदुच्यते तत्सर्वं करोति । यदा न पश्यते, तदा तस्य चित्तं न्यस्तं भवति । मान्द्यो वा भवति । चित्तविक्षेपतां प्रतिपद्यते । भूयो प्रत्यायनं कर्तव्यम् । क्षीराहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् यत्र वा तत्र वा काले । ततःप्रभृति स्वस्थो भवति । एतत्कर्म श्राद्धानां रत्नत्रयप्रसन्नानां उत्पादितबोधिचित्तानां
G 307 न कर्तव्यम् । यदि करोति, महन्ततरं अपुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् । अन्येषामपकारिणं कर्तव्यं दुष्टचित्तानां रौद्रचित्तानां । दिनेदिने दर्शनं च दातव्यम् । सौम्यचित्ता भवन्ति । यदि न भवन्ति महता अर्थेन वियुज्यन्ते । प्राणावशेषा भवन्ति ॥

पुनरपि कर्म भवति । चन्द्रग्रहे पलाशसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य घृताहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । प्रभाते देशस्वामी राजा भवति । मन्त्रापयति, मन्त्रितव्यम् । सद्भावमुपदर्शयते । उपदेष्टव्यं षण्मासाभ्यन्तरेण सहस्रपिण्डं ग्रामं ददाति । यद्यर्धरात्रं जुहोति, त्रिभिर्मासैः । यदि सर्वयामिकं रात्रिं जुहोति, मासेनैकेन लभते । यदि मासं जुहोति, रात्र्यां रात्र्यां विषयं प्रतिलभते । विषयप्रतितुल्यं वा ग्रामं अन्यं वा यत्किंचिद् वित्तम् । अरयो न प्रभवन्ति । यदि संप्रभवन्ति, पुनरपि कर्म भवति ॥

चन्द्रग्रहे अपामार्गकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य पलाशसमिधानां ब्राह्मणागारे दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । अन्ते पिचुमन्दपत्राणां कटुतैलाक्तानां आहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात् । प्रभाते सौम्या ब्राह्मणाः । राजा विद्विष्टो भवति ॥

अपरमपि कर्म भवति । चन्द्रग्रहे यथोपपन्नकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य घृताहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । होमान्ते च यस्यां दिशि प्रभुस्तिष्ठति, तस्यां दिशि तद्भस्म क्षिपेत् । स वश्यो भवति । यं वा तं वा यस्मिं वा तस्मिं वा काले रोचते भोगां विस्तरैः साहाय्यतां च प्रतिपद्यते । स्वल्पमल्पं वा महान्तं वा ग्राममनुप्रयच्छति, विषयं वा । अमोघा च सिद्धिर्भवति षड्भिर्मासैः नियतम् ॥

अथ क्रुद्धचित्तश्चतुर्वर्ण्यो अन्यतरं विकृतस्थाने वा यातो विकृष्टप्रधानलिङ्गेन वा अन्यदेवताभक्तं लौकिकेषु यस्मिं दिशि ते तिष्ठन्ति तदेव वेश्म सोऽस्य देशान्तरं प्रक्रमते । उद्विग्नश्च भवति । रात्रौ प्रपलायते वा । कुटुम्बं वास्य भिद्यते । प्रत्यायनं क्षीराष्टसहस्राहुतयो होतव्याः । स्वस्थो भवति ॥

अपरमपि कर्म भवति । चन्द्रग्रहे तेनैव विधिना बुद्धबोधिसत्त्वप्रतिमापटस्य वा सद्धर्म-
G 308 पुस्तके वा सधातुकगर्भचैत्ये वा शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन अहोरात्रोषितेन निष्प्राणकेनोदकेन कर्म कर्तव्यम् । शुष्कपुष्पैः सुगन्धैः चन्दनकुङ्कुमपरिपूर्णः कर्पूरधूपधूपितोद्देशं तं कुर्यात् ।

यत्र कर्म प्रयुज्यते ब्राह्मणागारे पलाशकाष्ठैः क्षत्रियागारे अश्वत्थकाष्ठैः वैश्यागारे खदिरकाष्ठैः शूद्रागारे तदन्यैः काष्ठैः अग्निं प्रज्वाल्य तदेव कर्म कुर्यात् । ब्राह्मणस्य पलाशसमिधं क्षत्रियस्याश्वत्थसमिधं वैश्यस्य खदिरसमिधं शूद्रस्य अपामार्गसमिधं तदन्यैर्वा यथालब्धैः राज्यहोमान्ते कुर्यात् । कर्म तथैव । महाराज्ञा अपराजितमूलसमिधं जुहुयात् अष्टसहस्रम् घृताहुतीनां अष्टसहस्रं अन्ते च तस्यां तदेव भस्मं क्षिपेत्, यस्यां दिशि महाराजा तिष्ठति । दुष्टचित्त आगच्छति वा उष्णीषचक्रवर्ती एकाक्षरमुद्रं बध्वा क्षिपेत् उत्पलमुद्रं वा । स वित्रस्तो निवर्तति । भग्नचक्रो वा भवति । अन्यद् वा यत्किंचिन्महोत्पातं भवति महोपसर्गं चित्तदौस्थित्यं येन वाचास्य निवर्तते ॥

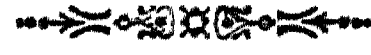
एतानि वापराणि च यथेष्टानि कर्माणि भवन्ति । वस्त्रमभिमन्त्र्य प्रावरेत् । सुभगो भवति । अक्षिण्यभिमन्त्र्य अञ्जयेत् । सर्वजनप्रियो भवति । सप्ताभिमन्त्रितं कुर्यात् । अक्षिणी मुखं च सर्वतः कृत्वा क्रुद्धस्य मुखं निरीक्षयेत् । स वश्यो भवति । सौम्यश्च पुष्पफलं अन्यं वा यत्किंचित्सगन्धं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा राज्ञो निवेदयेत् । स चाघ्रातमात्रेण वश्यो भवति । अन्यो वा यः कश्चित् सत्त्वः, स दर्शनमात्रेणैव वश्यो भवति । सर्वाङ्गशूलेषु अष्टशतमभिमन्त्रितं कृत्वा उष्णवारिणा स्नायीत । स्वस्थो भवति । एतानि कर्माणि कुर्यान्न दुःखितेभ्यः सत्त्वेभ्यः ॥

अनाथे पतिते क्लीबे व्रतिने चेह शासने ।
रत्नत्रयप्रसन्नेन कुर्यात् तत्कर्म ईदृशम् ॥ २१ ॥
स्त्रीषु कर्म न कुर्याद्वै बालवृद्धे तथातुरे ।
दरिद्रे दुःखिते चापि अल्पसत्त्वे वियोनिजे ॥ २२ ॥
न कुर्यात् कर्ममेवं तु महासत्त्वे प्रयोजयेत् ।
शूरे साहसिके लुब्धे महापक्षे महाधने ।
अतिमानिने प्रचण्डे च कुर्यात् कर्म ईदृशम् ॥ २३ ॥
शासनद्वेषिणे क्रुद्धे परद्रव्यापहारिणे । G 309
अश्राद्धे सर्वमन्त्राणां ओषधीनां च योगिनाम् ॥ २४ ॥
प्रगल्भे दुष्टचित्ते च नृपे लोककुत्सिते ।
एतेषु कर्म प्रयुञ्जीत धार्मिकेषु विवर्जितम् ॥ २५ ॥
अपरं कर्ममित्याहुः बुद्धैस्तत् परिवर्जितम् ।
तदेव भस्म क्रुद्धो वै यां दिशं क्षिपते जपी ॥ २६ ॥
तत्रस्था अरयः क्रुद्धा नृपतिश्चापि नश्यते ।
दीर्घग्लान्यतां याति तेऽपि जना ध्रुवम् ॥ २७ ॥
महामार्योपसर्गं च तस्मिं देशे तु दृश्यते ।
न कुर्यात् कर्म एवं तु सकृच्छ्रपतितोऽपि हि ॥ २८ ॥
त्रिसप्ताहाद् विनश्यन्ते सर्वे तत्र जनाधिपाः ।
यावत् तत्कर्मणा पूर्णे द्विसप्ताहा तु संहरेत् ॥ २९ ॥

प्रथमे चित्तविक्षेपं द्विसप्ताहे तु ग्लान्यताम् ।
तृसप्ताहे तथा मृत्युः तस्मात् तं परिवर्जयेत् ॥ ३० ॥
प्रथमे विद्रवन्ते ते द्वितीये देशविभ्रमम् ।
त्रिसप्ताहे तथा नाशं न कुर्यात् कर्म ईदृशम् ॥ ३१ ॥
केवलं सत्त्ववैनेया निर्दिष्टं लोकनायकैः ।
न भृशं संपदं ह्येते बुद्धा ते शुद्धमानसाः ॥ ३२ ॥
प्राणोपरोधिनं कर्म सर्वबुद्धैस्तु गर्हितम् ।
न कुर्यात्तं जपी कर्म उत्तमां सिद्धिमिच्छता ॥ ३३ ॥
नरकोपपत्तिः कामेषु एतेष्वेव प्रदृश्यते ।
केवलं तु इदं प्रोक्तं कृष्णशुभकर्मफलोदयम् ॥ ३४ ॥
कर्मवैचित्र्यमाहात्म्यं यथा दृष्टं द्विपदोत्तमैः ।
शक्तं शुभोदयं नित्यं कृष्णं चास्य शुभप्रदम् ॥ ३५ ॥
व्यतिमिश्रं तथा कर्म व्यतिमिश्रं तु पठ्यते ।
तथेदं कर्मवैचित्र्यं दर्शितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३६ ॥
G 310 तां जापी वर्जयेत् कृष्णं व्यतिमिश्रं कर्म एव वा ।
शुक्लं भजेत कल्याणं शुभकर्मफलोदयम् ॥ ३७ ॥
प्राणोपरोधान्नरकं तु जापी याति पुनः पुनः ।
तन्निवृत्तेस्तथा धर्मः अहिंसः कर्ममुत्तमम् ॥ ३८ ॥
स्वर्गः तथा सिद्धिः मन्त्राणां च शुभा गतिः ।
प्राप्यते सुकृतैः कर्मैः विरुद्धैर्विरुद्धमुच्यते ॥ ३९ ॥
धर्माधर्मं मया प्रोक्तं सर्वज्ञत्वं विचेष्टितम् ।
शुभकर्म सदाजापी आरभेत् सिद्धिलिप्सया ॥ ४० ॥
मन्त्रा तस्य सिध्यन्ते जापिनस्य शुभे स्थिते ।
अनिवर्तनं तस्य मोक्षं वै सितकर्मपरायणे ॥ ४१ ॥
मन्त्रिणे श्रेयसा सिद्धिः प्रवदन्ति तथागताः ।
विनयार्थं तु सत्त्वानां कर्मवैचित्र्यमुच्यते ॥ ४२ ॥
यथेष्टं सहस्रकर्मं तु साधिकाष्टं च सिध्यते ।
क्षुद्रकर्म प्रकुर्वीत उत्तमं तु न लभ्यते ॥ ४३ ॥
मध्यमं सिध्यते किंचिद् यत्नाज्जापहोमितम् ।
अधमं सिध्यते क्षिप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४४ ॥
त्रिविधं कर्म निर्दिष्टं उत्तमाधममध्यमाः ।
उत्कृष्टरूपी तपस्वी च लभते उत्तमं तथा ॥ ४५ ॥

मध्यजापी तथा मध्यां कर्मसिद्धिमवाप्नुयात् ।
स्वल्पजापी तथा नित्यं स्वल्पकर्मसमावृताम् ॥ ४६ ॥
लभते क्षुद्रसिद्धिं तु नान्यसिद्धिमवाप्नुयात् ।
कालप्रमाणजापस्तु होमे दृष्टस्तृधा पुनः ॥ ४७ ॥
अधिकादधिकं सिद्धिर्मध्या मध्येषु दृश्यते ।
स्तोकस्तोकतरं कर्म लभ्यते क्षुद्रसिद्धिरिति ॥ ४८ ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात् पञ्चविंशतिमः एकाक्षरमूलमन्त्र आर्यमञ्जुश्रीहृदयकल्पपटविधानविसरः परिसमाप्त इति ॥



G 311

२८ कर्मविधानार्थपटलविसरः ।

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः अपरमपि त्वदीयपटविधानं साधनौपयिकं सर्वकर्मार्थसाधकम् । एतेनैव तु एकाक्षरेण हृदयमन्त्रेण षडाक्षरेण वामकरान्तेन त्वदीयेन मूलमन्त्रेण वा षडक्षरहृदयेन ॐकाराद्येन एकाक्षरेण वा पटस्याग्रतः अस्यैव कल्पं भवति । पश्चिमे काले पश्चिमे समये मयि तथागते परिनिर्वृते शून्ये बुद्धक्षेत्रे युगाधमे प्राप्ते अत्राणे लोके अशरणे अपरायणे इदमेव कल्पराजा त्राणभूतं भविष्यति शरणभूतं लयनभूतं परायणभूतम् । कतमं च तत्?

आदौ तावत् पूर्वमेवानाहते पटे केशापगते सप्तहस्तायते तृहस्तपृथुके सदशे कुङ्कुमचन्दनरसपर्युषिते बुद्धं भगवन्तं शाक्यमुनिं लिखयेत् पद्मासनोपविष्टं धर्मं देशयमानं मञ्जुश्रियं कुमारभूतमवलोकयन्तम् । दक्षिणे पार्श्वे सुधनं सुभूमिं आर्याक्षयमतिं मञ्जुश्रियं च भगवतो नमस्कारं कुर्वन्तं कुमाररूपिणं सर्वालंकारविभूषिताङ्गं वामपार्श्वे समन्तभद्रं आर्यावलोकितेश्वरं भद्रपालं सुशोभनं च लेखयेत् । भगवत्प्रतिमा ह्रस्वतरा च लेखयितव्या । आर्यावलोकितेश्वरसुधनौ चमरव्यग्रहस्तौ कार्यौ । वसुधा चाधस्तात् । रत्नकरण्डकव्यग्रहस्ताः पूर्वकायविनिर्गताः लेखयितव्याः । उपरिष्टाच्च विद्याधरकुमारौ मालाधारिणौ मेघाश्च वर्षमाणाः सविद्युता लेखयितव्याः । सर्वे च बोधिसत्त्वा पुष्पमालाधारिणो भगवतो मुखं व्यवलोकयन्तः कर्तव्याः । सालंकाराः प्रसन्नदृष्टयः पूर्वकाये ईषदवनतेन लेखयितव्याः ॥

तमीदृशं पटं सधातुके चैत्ये स्थाप्य पश्चान्मुखमक्षरलक्षं जपेत् । अस्य मञ्जुश्रियः काष्ठमौनी त्रिकालस्नायी तृचेलपरिवर्ती सततपोषधिकः शाकयावकयथाभैक्षभैक्षाहारश्चतुर्भागमन्नं कृत्वा रत्नत्रयस्य भागमेकं अन्यः मञ्जुश्रियः अन्यत् सर्वसत्त्वानां शेषमात्मनोपयुञ्जीत । अक्षान्तकायो मनसि भगवन्तं कृत्वा सर्वसत्त्वानालम्बनेन मनसा नात्मार्थमहं किंचित् करोमि
G 312
करिष्याम्यन्यत्र सर्वसत्त्वानामर्थायेति ध्यात्वा जापं कुर्यात् । स्नानं गन्धं पुष्पं धूपं बलिं प्रदीपांश्च दद्यात् । स्नापनं पटच्छायायाः गन्धानधस्तात् पुष्पाणि च बलिं च सततं दद्यात् । तत्रैव तेषां पूर्वं दद्यात् रत्नत्रयस्य, पश्चान्मैत्रेयस्य, तदनन्तरमवलोकितेश्वरस्य आर्यसमन्तभद्रस्य आर्याकाशगर्भस्य आर्याक्षयमतेः कुमारभूतस्य चन्द्रप्रभस्य सर्वनीवरणविष्कम्भिणः आर्यवज्रधरस्य आर्यतारायाः आर्यमहामायूर्या आर्यापराजितायाः भगवत्याः प्रज्ञापारमितायाश्च । गन्धं पुष्पं धूपं बलिं च सर्वमेतेषां पूर्वं दत्त्वा पश्चात् पटस्य दद्यात् ॥

पश्चाद् बहिरेकस्मिं प्रदेशे सर्वोष्ट्रगर्दभश्वहस्तिरूपाणि विनायकानि वल्मीकमृत्तिकया कृत्वा तेषां चाशेषं दद्यात् । अविस्मृत्य पिण्याकपिष्टकतिलकृतकुल्थमत्स्यमांसमूलकवार्ताकपद्मपत्रकांस्यभाजनानि च वर्जयेत् । कुशपिण्डकोपविष्टः तत्रैव श्रान्तः सर्वबुद्धानुस्मृतिं भावयेत् । मनसा जापं कुर्यात् । अन्यत्र विविक्ते कुशसंस्तरे शय्यां कल्पयेत् । अतिपानमतिभोजनं अतिपर्यटनं अतिदर्शनमतिशय्यां च वर्जयेत् । त्रिःकालं बुद्धानुस्मृतिं भावयेत् । शुक्रबन्धं च कुर्यात् । शोभनानि च स्वप्नानि नान्यस्य प्रकाशयेत् । भगवतो निवेदयेत् ॥

एवमनुपूर्वेण त्वरमाणः अक्षरलक्षं जपेत् । अन्ते च भगवतीं प्रज्ञापारमितां वाचयेत् । जपकाले भगवतोऽथ मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य मुखमवलोक्य जापं कुर्यात् अनाकुलाक्षरपदः । अक्षसूत्रान्ते च नमस्कारं कृत्वा निवेदयेत् । अनेन विधिना पूर्वसेवां कृत्वा पटं कचित् स्वस्थे स्थाने स्थाप्य कर्म कुर्यात् यत्र मनसः परितुष्टिरस्ति ॥ पटविधानं समाप्तम् ॥

पश्चाद् भगवन्तं मञ्जुश्रियं श्वेतचन्दनमयं पद्मासनस्थं भगवतीं प्रज्ञापारमितां एक-हस्ते दधानं दक्षिणेन फलं दधानं कारयेत् । तमेकस्मिं शुचौ प्रदेशे पश्चान्मुखं स्थापयित्वा तस्याग्रतोऽग्निकुण्डं कुर्यात् । सर्वकर्म सचतुरस्रं द्विवितस्तिप्रमाणम् । अधश्च गन्धान् सर्व-धान्यानि च क्षिपेत् । तस्योपरि कुर्यात् ॥

अनेन विधिना नवमग्निमुत्पाद्य अश्वत्थसमिद्भिरग्निं अथवा अशोकस्य वा घृततन्दुलोदनं G 313 क्षीरदधि मधु च सर्वमुपहृत्य ताम्रभाजने स्थापयित्वा अष्टसहस्रं परिजप्य पूर्णाहुतिं दद्यात् । पश्चादन्यस्मिं दिने शुक्लप्रतिपदमारभ्य कर्म कुर्यात् । अश्वत्थसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य विगतधूमं दृष्ट्वा अग्निमावाहयेत् । "आगच्छ हरिपिङ्गल दीप्तजिह्व लोहिताक्ष हरिपिङ्गल देहि ददापय स्वाहा ॥"

अनेन मन्त्रेणाहुतित्रयं दद्यात् । पश्चाद् भगवन्तमावाहयेत् । "आगच्छागच्छ कुमार-भूत । सर्वसत्त्वार्थमुद्यतोऽहम् । साहाय्यं मे कल्पय गन्धपुष्पधूपं च प्रतिगृह्ण स्वाहा ॥"

यद् ददाति तदनेन दातव्यम् । आगतस्य चार्घो देयः सुगन्धपुष्पपानीयेन । पश्चाद्धोमं कुर्यात् । सप्तवारानुदाहृत्य एकैकाहुतिं क्षिपेत् । एवं सप्तदिवसानि । घृततन्दुलानि तिलयाव-केन चाप्यायनं कुर्यात् ॥

अत्रान्तरादवश्यमार्यमञ्जुश्रियं कुमाररूपिणं पश्यति । द्व्यङ्गुलप्रमाणानां चन्दनसमिधा-नामष्टसहस्रं जुहुयात् दिने दिने शतम् । पृथिवीपतीनां वशमानयति । जातीकुसुमानां लक्षं जुहुयात् । राजा वश्यो भवति । पद्मानां दधिमधुघृताक्तानां सहस्रं जुहुयात् । द्रव्यं लभते । शमीसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य तिलान् जुहुयात् । धनपतिर्भवति । सततमुदकमुदके जुहुयात् । प्रात-रुत्थितः सर्वजनप्रियो भवति । अर्कसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां लक्षं जुहुयात् । सहस्रपिण्डं ग्रामं लभते । बहुपुत्रिकां जुहुयात् । कन्यां यामिच्छति तां लभते । अपामार्गं जुहुयात्, व्याधिं प्रशमयति । क्षीरवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य तिलाहुतीनां लक्षं जुहुयात् । यां चिन्तयित्वा करोति तां लभते । विषयार्थी पद्मानां लक्षं जुहुयात् । विषयं लभते । यवानां लक्षहोमेनाक्षयमन्नमुत्प-द्यते । गुग्गुलुप्रियङ्गु च घृतेन सह होमयेत् । पुत्रं लभते । अकाकोलीने जातीकुसुमानां पानीये जुहुयात् । सप्ताहेन ग्रामं लभते । जातीकुसुमानां जले एकैकं पुष्पं गृहीत्वा जुहु-यात् । अवशेषं खण्डं यस्य घ्राणाय दीयते स घ्राणमात्रेण वश्यो भवति । कुङ्कुमकस्तूरिकालवङ्ग-पुष्पं च मुखे प्रक्षिप्य जपेत् । येन सह मन्त्रयते स वश्यो भवति । मरिचमष्टसहस्राभिमन्त्रितं G 314 कृत्वा मुखे प्रक्षिप्य क्रुद्धोऽपि वचनेन प्रियो भवति । शिखामनेनैव बध्नीयात् । अदृश्यो भवति । शत्रुं दृष्ट्वा मनसानुस्मरेत्, विगतक्रोधो भवति । नित्यजापेन सर्वजनप्रियो भवति । महति प्रत्यूषेऽभ्युत्थाय जातीकुसुमसहितं पानीयं शुचौ प्रदेशे भूमौ जुहुयात् । मन्त्री भवति अनति-

क्रमणीयवचनः। भये समुत्पन्ने मनसि कुर्यात्। भयं न भवति। परस्य क्रुद्धस्यापि मैत्रीं भावयित्वा अनुस्मृत्य मुखं व्यवलोकयेत्। विगतक्रोधो भवति। सर्वसुगन्धपुष्पैः होमं कुर्यात्। यमुद्दिश्य करोति स वश्यो भवति। सप्ताभिमन्त्रितं उदकं प्रत्युषसि पिबेत्। नियतवेदनीयं कर्म क्षपयति। सप्तजप्तेनोदकेन मुखं प्रक्षालयेत्, सर्वजनप्रियो भवति। पुष्पाण्यभिमन्त्र्य यस्य ददाति, स वश्यो भवति। आचार्यत्वमेकेन लक्षहोमेन तन्दुलानाम्। विषयपतित्वं तिलानाम्। पद्मानां सहस्रं जुहुयात्। दीनारसहस्रं लभते। वीरक्रयक्रीतां गुग्गुलुसर्जरसं गन्धरसं श्रीवासकं चैकतः कृत्वा जुहुयात्। पञ्चम्यां पञ्चम्यां षण्मासम्। पूर्णे सहस्रगुणं लभते। सर्वगन्धैः प्रतिकृतिं कृत्वा तीक्ष्णशस्त्रेणैकधारेण च्छित्वा च्छित्वा जुहुयात्। दक्षिणेन पादौ पुरुषस्य वामपादं स्त्रियः। यमिच्छति स वश्यो भवति। सप्ताहं त्रिसंध्यं धत्तुरकपुष्पाणि जुहुयात्। गावो लभते। अर्ककाष्ठैर्धान्यं शिरीषपुष्पैरश्वान् अशोकपुष्पैः सुवर्णं व्याधिघातकपुष्पैर्वस्त्राणि लभते। यद्यदिच्छति तत्सर्वं जातीकुसुमहोमेन करोति। यद्वर्णानि पुष्पाणि पानीये जुहोति सवितुरुदये, तद्वर्णानि वस्त्राणि लभते। सप्तजप्तं भाजनं कृत्वा भिक्षामटति, भिक्षामक्षयां लभते। रात्र्यामुत्थाय परिजप्यात्मानं स्वयं शोभनानि स्वप्नानि पश्यति॥

अथ राजानं वशीकर्तुकामः। तस्य पादपांसुं गृहीत्वा सर्षपैस्तैलैश्च मिश्रयित्वा जुहुयात्। सप्ताहं त्रिसंध्यं वश्यो भवति॥

राज्ञीं वशीकर्तुकामः। सौवर्चलां शतपुष्पां वाराहीं चैकतः कृत्वा जुहुयात्। सप्तरात्रं त्रिसंध्यं वश्या भवति। राजामात्यं वशीकर्तुकामः। भल्लातकानां तिलां वचां च प्रतिकृतिं कृत्वा G 315 जुहुयात्। सप्ताहं सप्तरात्रं च वश्यो भवति। पुरोहितं वशीकर्तुकामः। ब्रह्मदण्डीं शतपुष्पां चैकतः कृत्वा जुहुयात्। सप्तरात्रं त्रिसंध्यं वश्यो भवति। ब्राह्मणानां वशीकर्तुकामः। पायसं घृतसहितं जुहुयात्। सर्वे वश्या भवन्ति। अथ क्षत्रियं वशीकर्तुकामः। शाल्योदनं घृतसहितं जुहुयात् सप्ताहम्। वैश्यानां वशीकरणे यावकां गुडसहितां जुहुयात्। वश्यो भवति। पिण्याकं जुहुयात्। शूद्रा वश्या भवन्ति। सर्वानेकतः कृत्वा जुहुयात्। सर्वे वश्या भवन्ति। चतुःपथे एकशून्ये गृहे वा बलिं निवेद्य योऽस्य ग्लानः स तस्माद् विनिर्मुक्तो भवति॥

मुखं स्पृशं जपेत्, ज्वरमपगच्छति। अष्टशतजप्तेन शिखाबन्धेन सर्वव्याधिभ्यः परिमुच्यते। सर्वरोगेभ्यः मूश्रकं बध्वा शिखाबन्धं कृत्वा स्वप्तव्यम्। सर्वरोगा अपगच्छन्ति। व्याधिना ग्रस्तः जपमात्रेण मुच्यते। गलग्रहे वल्मीकमृत्तिकां जप्त्वा लेपः कार्यः। व्याधिरपगच्छति। अक्षिरोगे नीलीकलिकानि जुहुयात्। व्युपशाम्यति॥ पटविधानस्यान्तरिकर्म॥

पूर्वोक्तेन विधानेन अनाहते पटे केशापगते आर्यमञ्जुश्रीः कुमारभूतः अभिलेख्यः सर्वालंकारविभूषितः रक्तवर्णः कुमाररूपी पद्मासनस्थः। दक्षिणपार्श्वे आर्यावलोकितेश्वरः, वामपार्श्वे समन्तभद्रः। आर्यमञ्जुश्रियस्य किंचिदूनौ। तं पटं स्थापयित्वा कोटिं जपेत्। राजा भवति। चन्दनसमिधानां कुङ्कुमाभ्यक्तानां लक्षं जुहुयात्। राजा भवति। अगरुसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां लक्षं जुहुयात्। राजा भवति। जातीकुसुमानां घृताक्तानां कोटिं जुहुयात्। राजा भवति॥

यत्प्रमाणानां पद्मानां राशिं जुहोति, तत्प्रमाणानीं दीनाराणां राशीं लभते । यावद् G 316
यावत् तावज्जप्यमानां न गृह्णाति, तावद् विद्याधरचक्रवर्ती भवति । भल्लातकानां लक्षं जुहुयात्, दीनारसहस्रं ददाति । व्याधिघातकफलानां लक्षं जुहुयात्, महाधनपतिर्भवति । अष्टसहस्रहोमेन गुग्गुलुसमिधानां धान्यं लभते । सततिलहोमेनाव्यवच्छिन्नं धान्यं लभते । गोतण्डुलानां लक्षं जुहुयात् । सह दध्ना गोसहस्रं लभते । बहुपुत्रिकाफलानि शमीफलानि चैकतः कृत्वा जुहुयात् । यामिच्छति कन्यां तां लभते । शमीपत्राणि जुहुयात् । सर्वकामदो भवति । अगस्तिपुष्पाणि क्षीराक्तानि जुहुयात् । ब्राह्मणवशीकरणे । करवीरपुष्पाणि शुक्लानि जुहुयात् क्षत्रियवशीकरणे । कर्णिकारपुष्पाणि जुहुयाद्राजवशीकरणे । धत्तूरकपुष्पाणि जुहुयात् शूद्रवशीकरणे । अर्कपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां लक्षं जुहुयात् । सर्वव्याधिभ्यः परिमुच्यते ॥

अनेनैव विधिना पुष्पाणां सुगन्धानां लक्षं पादमूले निवेदयेत् । नित्यसुखी भवति । अश्वत्थसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य शमीपुष्पाणां सहस्रं जुहुयात् । नक्षत्रपीडा व्युपशाम्यति । गोरोचनया मन्त्रमभिलेख्य शिरसि बध्वा संग्रामेऽवतरेत् । शस्त्रैर्न स्पृश्यते । हस्तिस्कन्धे मञ्जुश्रियमग्रतो बलस्य दत्त्वा दर्शनमात्रेणैव परबलस्य भङ्गो भवति । ध्वजाग्रे कुमाररूपिणं सौवर्णमयूरासनस्थं कृत्वा संग्राममवतरेत् । दर्शनादेव परबलस्य भङ्गो भवति । जातीकुसुमानां पादमूले लक्षं निवेदयेत् । तत्रैव कुशसंस्तरे शय्यां कुर्वीत । स्वप्ने यथाभिलषितं कथयति । प्रदीपानां सहस्रं दत्त्वा एकप्रदीपं पद्मसूत्रवर्तिं कृत्वा मधुयष्टिं वेष्टयित्वा प्रज्वाल्य पश्येत्, यथाभूतं मञ्जुश्रियं कुमारभूतं पश्यति ॥ द्वितीयं पटविधानं समाप्तम् ॥

सौवर्णं रजतं वा कुमारं कृत्वा वरदं दक्षिणेन पाणिना, वामेन भगवतीं प्रज्ञापारमितां दधानम् । तमीदृशं सधातुककरण्डकं पुरतः स्थाप्याक्षरलक्षं जपेत् । पूजां वासरिणां कुर्यात् । बालदारकदारिकाश्चास्याग्रतो भोजयितव्याः । गीतं वादितं पुस्तकवाचनं च कुर्यात् । G 317
जपपरिसमाप्तौ पुष्पत्रयेणार्घं दत्त्वा प्रेषयेत् । पूर्वोक्तेन विधानेनावाहनविसर्जनं पद्ममुद्रां बध्वा जापं कुर्यात् । ध्वजमुद्राया आवर्तनं स्वस्तिकमुद्रया आसनं पूर्णमुद्रयार्घं एकलिङ्गमुद्रया पुष्पाणि मनोरथमुद्रया प्रदीपं यमलमुद्रया धूपं मयूरासनमुद्रया गन्धं यष्टिमुद्रया बलिम् । अनेन विधानेन रात्रौ दिने दिने कुर्याद् यावज्जापपरिसमाप्तिरिति । पश्चात् कर्माणि कुर्यात् ॥

जातीकुसुमानां समुद्रगामिन्यां नद्यां लक्षं प्लावयेत् । विषयं लभते । रात्रौ जातिकुसुमौघं कृत्वा भगवतः पुरतः स्वपेत् । भगवन्तं पश्यति धर्मं देशयमानं बोधिसत्त्वपरिवृतम् । यमुद्दिश्य करोति तदेव कर्म कुर्यात् । नान्यस्य कुर्यात् । उपोषधिकेन शुक्लप्रतिपदमारभ्य श्रीवासकधूपं मधुमिश्रं जुहुयात्, राज्यं लभते । कोटिं जपेत्, मञ्जुश्रियं स्वयमेव पश्यति, धर्मदेशनां च करोति । यदि केनचित् सहोल्लापयति संमुखमवभाषते अवैवर्तिकश्च बोधिसत्त्वो भवति ॥ तृतीयं विधानम् ॥

रक्तचन्दनमयं कुमाररूपिणं एकेन पार्श्वेन प्रियंकरं अन्येन वीरमतीं साशोकवृक्षाश्रयां कारयेत् । तमेकपार्श्वे स्थापयित्वा लवणसर्षपराजिकाव्यामिश्रेण रक्तचन्दनप्रतिकृतिं कृत्वा च्छित्वा च्छित्वा जुहुयाद् यस्य नाम्ना, स वश्यो भवति । उदुम्बरफलानि यस्य नाम्ना जुहुयात्, स वश्यो भवति । काकोदुम्बरिकाफलानि जुहुयाद् यस्य नाम्ना, स वश्यो भवति । शृङ्गाटकं जुहुयात् ब्राह्मणवशीकरणे पद्ममूलानि, क्षत्रियवशीकरणे कशेरुकाणि जुहुयात् । वैश्यवशीकरणे शालूकानि जुहुयात् । शूद्रवशीकरणे लवणशर्कराणामष्टसहस्रं जुहुयात् । त्रिसंध्यं सप्ताहं यस्य नाम्ना जुहोति, स वश्यो भवति । निम्बपत्राणि कटुतैलाक्तानि जुहुयात् आहुत्याष्टसहस्रं त्रिसंध्यं सप्ताहं यस्य नाम्ना, स वश्यो भवति । सर्वेण होमेन वशीकरणम् ॥ बृहतीकुसुमानां लक्षं जुहुयात्, सुवर्णं लभते । कालाञ्जनिकाकुसुमानामष्टसहस्रं जुहुयात्, महान्तं ग्रामं लभते । पाटलपुष्पाणि जुहुयात्, धान्य-
G 318 मक्षयं लभते । श्रीपर्णीपुष्पाणि जुहुयात्, सुवर्णं लभते । वचां दधिमधुघृताक्तां जुहुयात्, सर्ववादेषूत्तरवादी भवति । ब्राह्मीरसघृतसहितं ताम्रभाजने स्थापयित्वा तावज्जपेद् यावद् दशसहस्राणि । पश्चात् पिबेत्, सर्ववादिनो विजयते । यस्य क्रुद्धस्याष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा लोष्टं क्षिपेत् पुरतः, स क्रोधं मुञ्चति ॥ चतुर्थं विधानम् ॥

अनाहते पटे केशापगते उपोषधिकेन चित्रकरेण अश्लेषकैर्वर्णकैः आर्यमञ्जुश्रियश्चित्रापयितव्यः । पद्मासनोपविष्टं धर्मं देशयमानम् । दक्षिणपार्श्वे आर्यमहामेखला वामपार्श्वे चार्यप्रज्ञापारमिता जापवती सर्वालंकारविभूषिता शुक्लवस्त्रनिवसना । तस्याधस्तात् पद्मसरः बहुविधपुष्पसंकीर्णः । नागराजानौ अकायत्रिनिर्गतौ पद्मदण्डधृतहस्तौ । आर्यापराजिता चैकस्मिं विघ्नविनायकां नाशयन्ती असिज्वालामुखी भृकुटीकृतलोचना । अन्यस्मिं पार्श्वे आर्यपर्णशबरी पाशपरशुव्यग्रहस्ता कृष्णरक्तनेत्रा मयूरपृष्ठाभिरूढा साधकं परिरक्षन्ती । साधकश्च पद्ममालाव्यग्रहस्तः भगवतो मञ्जुश्रियमुखं व्यवलोकयमानः । उपरिष्टाच्चामरपुष्पमालादुन्दुभिधारिणौ देवपुत्रौ लेखयितव्यौ ॥

तं पटं पश्चान्मुखं स्थाप्य सधातुके चैत्ये कोटिं जपेत् । जपान्ते च महतीं पूजां कृत्वा भगवतीं प्रज्ञापारमितां वाचयित्वा दशसहस्राणि जपेत् । मञ्जुश्रियो मुखं व्यवलोकयमानः । पश्चात् पटं कम्पते । राज्यं लभते । चक्षुश्च लभते । विद्याधरो भवति । हसते । चक्रवर्ती भवति । भाषणे बोधिसत्त्वः प्रथमभूमिप्रतिलब्धो भवति । धर्मदेशनां चास्य शृणोति ॥

तस्यैव पटस्याग्रतः कपिलायाः समानवत्सायाः गोघृतं गृह्य ताम्रभाजने स्थाप्य तावज्जपेद् यावदूष्मायति धूमायति प्रज्वलति । ऊष्मायमानं पीत्वा परमेधावी भवति श्रुतिधरः ।
G 319 धूमायमानेऽन्तर्धानम्, ज्वलमाने आकाशगमनम् । आमशरावसंपुटे स्थाप्य वचां जातीकुसुमैर्वेष्टयित्वा तावज्जपेद् यावदङ्कुरीभवति । तां भक्षयित्वा श्रुतिधरो भवति । अन्यां कोटिं जपेत्, मञ्जुश्रियं साक्षात्, पश्यति धर्मदेशनां च शृणोति, तां चाधिमुच्यते ॥

सौवर्णपद्मं शतपत्रं कारयित्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलतीति । तेन गृहीतमात्रेण विद्याधराणां चक्रवर्ती भवति परैरधर्षणीयः । मनःशिलां हरितालमञ्जनं वा श्रीपर्णीसमुद्गके प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावत् खुटखुटाशब्दं करोति । गृहीतमात्रेण भूमिचराणां राक्षसपिशाचानामधिपतिर्भवत्यधृष्यः । खड्गं गृह्य सल्लक्षणसंकीर्णं अव्रणं तावज्जपेद् यावदहिरिव फणं कृत्वा तिष्ठति । तं गृह्य विद्याधरचक्रवर्ती कल्पायुरधृष्यः । मनःशिलां त्रिलोहपरिवेष्टितां कृत्वा मुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावच्चुलुचुलायतीति । अदृश्यो भवति खड्गहर्ता । अदृश्यः सर्वाणि कुशलोपसंहितानि करोति वर्जयित्वा कामोपसंहितम् । शमीवृक्षरूढस्याश्वत्थस्य सारं गृह्य त्रिलोहपरिवेष्टितं कृत्वा मुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावच्चुलुचुलायति । अधृष्यो भवति । वर्षसहस्रं जीवति । राजतं चक्रं कृत्वा असुरविवरस्याग्रतः तावज्जपेद् यावच्चक्रं असुरयन्त्राणि भित्त्वा प्रविशति । तत्क्षणमेवासुरयुवतयो निर्गच्छन्ति । ताभिः सह प्रविश्य कल्पस्थायी भवति । लोहमयं त्रिशूलं कृत्वा तस्मिं विवरद्वारे जापं करोति, तत्र सर्वयन्त्राणि स्फुटन्ति । यावद्भिः सहेच्छति तावद्भिः सह प्रविशति । कल्पस्थायी भवति । मैत्रेयं च भगवन्तं पश्यति ॥ पञ्चमं पटविधानम् ॥

श्वेतार्कमयं अङ्गुष्ठमात्रं भगवन्तं मञ्जुश्रियं कारयित्वा अर्कपुष्पाणां लक्षं निवेदयेत् । सामन्तराज्यं प्रतिलभते । श्वेतकरवीरमूलमयं कृत्वा अङ्गुष्ठमात्रमेव तत्पुष्पाणामेकां कोटिं निवेदयेत् , मन्त्री भवति । करहाटवृक्षमयं वितस्तिप्रमाणमात्रं कारयित्वा तत्पुष्पाणां लक्षं निवेदयेत् । सेनापत्यं लभते । श्वेतचन्दनमयं वितस्तिप्रमाणमात्रं भगवन्तं मञ्जुश्रियं कृत्वा जातीकुसुमानां लक्षं निवेदयेत् । पौरोहित्यं लभते । अश्वत्थवृक्षमयं अङ्गुलमात्रप्रमाणं भगवन्तं मञ्जुश्रियं कारयित्वा अकाकोलीने पानीयकुम्भं निवेदयेत् । बहुजनसंमतो भवति । सर्वगन्धमयं कृत्वा सर्वगन्धपुष्पैर्निवेदितैः यमिच्छति तमाप्नोति । सततस्समितमगरुसमिधानां जुहुयात्, मन्त्री बहुजनस्य संमतो भवति । सततजापेन पञ्चानन्तर्याणि विक्षिपयति । मरणकाले मञ्जुश्रियं G 3 पश्यति । धर्मदेशनां चास्य करोति । उत्थायोत्थाय अष्टशतं जपेत् सर्वसत्त्वानामधृष्यो भवति । अक्षिणी परिजप्य स्वामिनं पश्येत् । प्रसादवान् भवति । यमुद्दिश्य कर्मकरो तत्रस्थं सप्तभिर्दिवसैः ग्रामान्तरस्थं एकविंशतिभिर्दिवसैः विषयान्तरस्थं चतुर्भिः मासैः नद्यन्तरितं षड्भिर्मासैः । स्वकुलविधानेनान्यमन्त्रविधानेन चाशेषं कर्म करोति वर्जयित्वा कामोपसंहितम्, आभिचारुकं चेति ॥ षष्ठो विधानः ॥

इत्युक्तं युगान्ते हितं * * * * * * तथा ।
सत्त्वानामल्पपुण्यानां हितार्थं मुनिना पुरा ॥ १ ॥
शासनान्तर्हिते शास्तुः शाक्यसिंहस्य तायिने ।
सिद्धिं यास्यते तस्मिं काले रौद्रेऽतिभैरवे ॥ २ ॥

सप्तमं वक्ष्यते ह्यत्र कल्पराजं सुखावहं ।
ममैतत् कथितं कल्पं तस्मिं काले सुदारुणे ॥ ३ ॥

सत्त्वानामल्पपुण्यानां मार्गो ह्येष प्रवर्तितः।
बोधिसंभारहेतुत्वं त्रियानपथनिम्नगम् ॥ ४ ॥
उपायकौशल्य सत्त्वानां दर्शयामि तदा युगे।
तृष्णामूढा हि वै सत्त्वा रागद्वेषसमाकुलाः ॥ ५ ॥
तेषां दर्शयाम्येतं मार्गं तृष्णावशानुगम्।
तृष्णाबन्धनबद्धास्तु कुशलं वा कर्महेतुतः ॥ ६ ॥
सिद्धिसाध्यं तथा द्रव्यं मन्त्रतन्त्रं समोदितम्।
विनयार्थं तु सत्त्वानां कथितं लोकनायकैः।
एतत् कर्मस्य माहात्म्यं साधकानां तु जापिनाम् ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा मुनिवरो ह्यग्र शाक्यसिंहो नरोत्तमः।
कथित्वा मन्त्रतन्त्राणां बलं वीर्यं सविस्तरम् ॥ ८ ॥
अमोघं दर्शयेत् सिद्धिं तस्मिं काले युगाधमे।
G 321 शुद्धावासं तदा वव्रे देवसंघां जिनोत्तमो ॥ ९ ॥
यमेतन्मार्षा प्रोक्तं कल्पराजं सविस्तरम्।
सर्वलोकहितार्थाय मञ्जुघोषस्य शासनम् ॥ १० ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात
षड्विंशतिमः कर्मविधानार्थमञ्जुश्रीहृदयपरिवर्तपटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥

---

२९ मञ्जुश्रीपटविधानपरिवर्तकर्मविधिः । G 322

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये कल्पविधानपरिवर्ते सप्तमः पटकर्मविधानम् । यो तस्मिं काले तस्मिं समये युगान्ते साधयिष्यति, अमोघा तस्य सिद्धिर्भविष्यतीति सफलाः सुखोदयाः सुखविपाकाः । दृष्टधर्मवेदनीया सर्वदुर्गतिनिवारणीया नियतं तस्य बोधिपरायणीया सिद्धिर्भविष्यति ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य हृदयं भाषते स्म—

षडक्षरं षड्गतिमोचनात्मकं अचिन्त्यतुल्याप्रतिमं महर्द्धिकम् ।
विमोचकं सर्वभवार्णवार्णवं तृदुःखदुःखा भवबन्धबन्धनात् ॥ १ ॥

असह्यं सर्वभूतानां सर्वलोकानुलिखकम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां भवमार्गविशोधकम् ॥ २ ॥

प्रापकं बुद्धधर्माणां सर्वदुष्टनिवारणम् ।
अनुमोदितं सर्वबुद्धैस्तु सर्वसंपत्तिकारकम् ॥

उत्कृष्टः सर्वमन्त्राणां मञ्जुघोषस्य शासने ॥ ३ ॥

कतमं च तत् ? ॐ वाक्येद नमः ॥

अस्य कल्पं भवति । शाकयावकभिक्षभैक्षाहारो वा त्रिःकालस्नायी त्रिचेलपरिवर्ती अक्षरलक्षं जपेत् । पूर्वसेवा कृता भवति ॥

ततः अच्छिन्नाग्रदशके पटे पोषधिकेन चित्रकरेण अश्लेषकैर्वर्णकैः आर्यमञ्जुश्रीश्चित्रापयितव्यः पद्मासनस्थो धर्मं देशयमानः सर्वालंकारविभूषितः कुमाररूपी मुक्तोत्तरासङ्गः । तस्य वामेन आर्यावलोकितेश्वरः पद्महस्तः चामरव्यग्रहस्तः, दक्षिणेन आर्यसमन्तभद्रः । उपरि मेघगर्भविनिर्गतौ विद्याधरौ मालाधारिणौ लिखापयितव्यौ । अधस्तात् साधको धूपकटच्छुकव्यग्रहस्तः । समन्तात् पर्वतशिखरा लिखापयितव्याः । अधस्तात् पद्मसरः ॥

सधातुके चैत्ये पटं पश्चान्मुखं प्रतिष्ठाप्य उदारां पूजां कृत्वा घृतप्रदीपांश्च प्रज्वाल्य G 323
जातीपुष्पाणां अष्टसहस्रेण एकैकमभिमन्त्र्य मञ्जुश्रीमुखे ताडयेत् । ततो महागम्भीरहुंकारशब्दः श्रूयते । पटो वा प्रकम्पते । हुंकारशब्देन सार्वभौमिको राजा भवति । पटप्रकम्पने सर्ववादिषूत्तरवादी भवति सर्वलोकैकशास्त्रज्ञः । अथ न सिध्यति, सर्वकर्मसमर्थो भवति ॥ अयं प्रथमः कल्पः ॥

अगरुसमिधानामध्यर्धमङ्गुलप्रमाणानां निर्धूमेषु खदिराङ्गारेषु कृत्स्नां रात्रिं तुरुष्कतैलाक्तानां जुहुयात् । अरुणोदये आर्यमञ्जुश्रियं पश्यति । सोऽस्य यथेप्सितं वरं ददाति वर्जयित्वा कामोपसंहितम् ॥

तस्यैव पटस्याग्रतः चन्दनधूपमव्यवच्छिन्नं दहं कृत्स्नां रात्रिं जपेत् । ततः आर्य-

मञ्जुश्रीः साक्षादागच्छति गम्भीरां धर्मां देशयति । तामधिमुच्यति । अधिमुच्य सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः वशिताप्राप्तो भवति ॥

रक्तचन्दनमयं पद्मं कृत्वा षडङ्गुलपरिणाहं सनालं रक्तचन्दनेन म्रक्षयित्वा सहस्रं संपाताहुतं सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा पूर्णमास्यां पटस्याग्रतः पद्मपत्रे स्थाप्य हस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेद्, यावत् प्रज्वलित इति । तेन गृहीतेन द्विरष्टवर्षाकृतिः तप्तकाञ्चनप्रभः भास्करस्योपरितेजा देवकुमारः सर्वविद्याधरनमस्कृतः महाकल्पं जीवति । भिन्ने देहेऽभिरत्यामुपपद्यते ॥

चन्द्रग्रहे श्वेतवचां गृह्य पञ्चगव्येन प्रक्षाल्य अश्वत्थपत्रैरवष्टम्भयित्वा तावज्जपेद् यावदूष्मायति धूमायति ज्वलति । सर्वजनवशीकरणः सर्ववादिविजयी । धूमायमाने अन्तर्धानम् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि जीवति । ज्वलिते आकाशगमनं महाकल्पं जीवति ॥

कपिलायाः समानवत्सायाः घृतं गृह्य ताम्रभाजनं सप्तभिरश्वत्थपत्रैः स्थाप्य तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिरिति । तं पीत्वा श्रुतिधरमन्तर्धानाकाशगमनमिति ॥

G 324 पुष्करबीजं मुखे प्रक्षिप्य चन्द्रग्रहे तावज्जपेद् यावच्चुलुचुलायति । त्रिलोहपरिवेष्टितं कृत्वा मुखे प्रक्षिप्यान्तर्हितो भवति । उद्गीर्णायां दृश्यति ॥

लवङ्गगन्धं मुखे प्रक्षिप्य षड्लक्षं जपेत्, यमालपति स वश्यो भवति । क्षीरयावकाहारः लक्षं जपेद्, विद्याधरो भवति। भिक्षाहारः काष्ठमौनी लक्षं जपेत् अन्तर्हितो भवति। कोटिं जपेदार्यमञ्जुश्रीस्तथा धर्मं देशयति यथा चरमभविको बोधिसत्त्वः भवति । सततजापेन सर्वार्थवृद्धिर्भवति ॥

सर्वगन्धैर्यस्य प्रतिकृतिं कृत्वा च्छित्वा जुहोति, स सप्तरात्रेण वश्यो भवति । गुग्गुलुगुलिकानां बदरास्थिप्रमाणानां घृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयाद्, दीनारलक्षं लभति ॥

समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य पद्मानां शतसहस्रं निवेदयेत् । पद्मराशितुल्यं महानिधानं पश्यति । क्षयं न गच्छति । गौरसर्षपाणां कुङ्कुमाभ्यक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । राजा वश्यो भवति । तिलानां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात्। सर्वंददो महागृहपतिर्भवति। अपतितगोमयेन मण्डलकं कृत्वा मुक्तपुष्पैरभ्यवकीर्याष्टशतं जपेत् । ततः सद्धर्मपुस्तकं वाचयेत् । मासेन परममेधावी भवति। रोचनाष्टशतं कृत्वा तिलकं कुर्यात् । सर्वजनप्रियो भवति । शिखां सप्तजप्तां कृत्वा सर्वसत्त्वानामवध्यो भवति। किरिमालं दशसहस्राणि जुहुयात् । सर्वव्याधिभिर्मुच्यते । दिने दिने सप्तवारां जपेत् । नियतवेदनीयं कर्म क्षपयति । अथाष्टशतजपेन मरणकालसमये समस्तं संमुखं आर्यमञ्जुश्रियं पश्यतीति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात्
सप्तविंशतिमः मञ्जुश्रीपटविधानपरिवर्तकर्मविधिः सप्तमकपटलविसरः
परिसमाप्तमिति ॥

३० क्षेत्रकालविधिनियमपटलविसरः । G 325

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयमन्त्रतन्त्रे विद्याराज्ञां चक्रवर्तिप्रभृतीनां सर्वतथागतोष्णीषप्रमुखानां सर्वमन्त्राणां सिद्धिस्थानानि भवन्ति । तत्रोत्तरापथे सर्वत्र ताथागती विद्याराज्ञः सिद्धिं गच्छति संक्षेपतः ॥

चीने चैव महाचीने मञ्जुघोषोऽस्य त्रस्यति ।
ये च तस्य मन्त्रा वै सिद्धिं यास्यन्ति तत्र वै ॥ १ ॥
उष्णीषराज्ञां सर्वत्र सिद्धिर्दृश्येयु तत्र वै ।
काविशे वखले चैव उदियाने समन्ततः ॥ २ ॥
कश्मीरे सिन्धुदेशे च हिमवत्पर्वतसंधिषु ।
उत्तरां दिशि निःसृत्य मन्त्राः सिध्यन्ति श्रेयसाः ॥ ३ ॥
ये च गीता पुरा बुद्धैः अधुना च प्रवर्तिता ।
अनागता च संबुद्धैः उद्गीर्णा शान्तिहेतवः ॥ ४ ॥
सर्वे वै तत्र सिध्यन्ति हिमाद्रिकुक्षिसंभवे ।
जनपदे श्रेयसे भद्रे शान्तिं कर्तुं समारभे ॥ ५ ॥
मध्यदेशे तथा मन्त्राः सिध्यन्त्येते पद्मसंभवा ।
गजोमानिकुले चापि सिद्धिस्तत्र प्रदृश्यते ॥ ६ ॥
पञ्चिकस्य च यक्षस्य हारील्या यक्षयोनिजा ।
गान्धर्वा ये तु मन्त्रा वै सिद्धिस्तेषां समोदिता ॥ ७ ॥
काशिपुर्यां ततो नित्यं मगधेषु समन्ततः ।
अङ्गदेशे तथा प्राच्यां कामरूपे समन्ततः ॥ ८ ॥
लौहित्यां तु तटे रम्ये वङ्गदेशेषु सर्वतः ।
जम्भलस्य भवत् सिद्धिः तथा मणिकुलोदिते ॥ ९ ॥
समुद्रतीरे द्वीपेषु सर्वतत्र जलाश्रये ।
सिंहलानां पुरी रम्या सिध्यन्ते मन्त्रदेवताः ॥ १० ॥
भृकुटी चैव * * * महाश्रिया यशस्विनी । G 326
सिताख्याः सर्वमन्त्रास्तु चतुःकुमार्या महोदधौ ॥ ११ ॥
सिध्यन्त तत्र वै स्थाने पूर्वदेशे समन्ततः ।
विन्ध्यकुक्षिनिविष्टाश्च अग्रेन्द्रे च समन्ततः ॥ १२ ॥
कार्तिकेयोऽथ मञ्जुश्रीः सिध्यन्ते च समन्ततः ।
शृङ्गारगह्वरः कुक्षाद्रेः कन्दरे च सकानने ॥ १३ ॥

सिद्धिर्विनायकां तत्र विघ्नकर्ता सजापिनाम् ।
हस्ताकारसमायुक्तानेकदन्तां महौजसाम् ॥ १४ ॥
अश्वरूपा तथानेका * * * कारशालिनाम् ।
ईशानस्य सुतां दिव्यां विविधां विघ्नकारकाम् ॥ १५ ॥
तत्प्रोक्ता मन्त्रयुक्तांश्च सिद्धिक्षेत्रं प्रदृश्यते ।
मातरा विविधाकारां ग्रहांश्चैव सुदारुणाम् ॥ १६ ॥
प्रेतयोनिसमादिष्टा मानुषाहारनैर्ऋताम् ।
प्रेतराज्ञः समादिष्टं सिद्धिक्षेत्रं ततोदितम् ॥ १७ ॥
तदाद्यात् सर्वभूतानां सिद्धिक्षेत्रं समादिशेत् ।
वज्रक्रौञ्चो महावीर्यः सिध्यन्ते तत्र वै दिशे ॥ १८ ॥
आसुरा मन्त्रमुख्यास्तु ये चान्ये लौकिकास्तथा ।
सिध्यन्ते तत्र मन्त्रा वै दक्षिणां दिशिमाश्रिताः ॥ १९ ॥
प्रेतराज्ञस्तथा नित्यं यमस्यैव विनिर्दिशेत् ।
सिध्यन्ते जात्यमन्त्रास्तु सशैवा च सवैष्णवा ॥ २० ॥
क्रूराश्चाक्रूरकर्मेषु क्षेत्रमादिष्वदक्षणम् ।
वज्रपाणिसमादिष्टा मन्त्रास्ते क्रूरकर्मिणः ॥ २१ ॥
दक्षिणापथमाश्रित्य सिध्यन्ते पापकर्मिणाम् ।
अशुभां फलनिष्पत्तिं दृश्यते तत्र वै दिशे ॥ २२ ॥
आदित्यभाषिता ये मन्त्राः सौम्याश्चैव प्रकीर्तिताः ।
ऐन्द्रा मन्त्राः प्रसिध्यन्ते पश्चिमे दिशि शोभने ॥ २३ ॥
G 327 स्वयं तत्र * सिध्येत यक्षेन्द्रोऽत्र महर्द्धिकः ।
धनदः सर्वभूतानां बालिशानां तु मोहिनाम् ॥ २४ ॥
चित्तं ददाति जन्तूनां विधिदृष्टेन हेतुना ।
सिध्यन्ते पश्चिमे देशे भोगवानर्थसाधकः ॥ २५ ॥
धनदो नाम नामेन विश्रुतोऽत्र महीतले ।
वज्रपाणिः स्वयं यक्षः बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः ॥ २६ ॥
मन्त्रमुख्यो वरश्रेष्ठो दशभूमाधिपः स्वयम् ।
सिध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै वज्राब्जकुलसंभवा ॥ २७ ॥
तथाष्टकुलिका मन्त्रा अष्टभ्यो दिक्षु निश्रिता ।
उत्तरायां दिशि सिध्यन्ते मन्त्रा वै जिनसंभवा ॥ २८ ॥
पूर्वदेशे तथा सिद्धिः मन्त्रा वै पद्मसंभवा ।
दक्षिणापथ निश्रित्य सिध्यन्ते कुलिशालयाः ॥ २९ ॥

पश्चिमेन गजः प्रोक्तो विदिशे मणिकुलस्तथा ।
पश्चिमे चोत्तरे संधौ सिद्धिस्तेषु प्रकल्पिता ॥ ३० ॥
पश्चिमे दक्षिणे चापि संधौ यक्षकुलस्तथा ।
दक्षिणे पूर्वदिग्भागे श्रावकानां महौजसाम् ॥ ३१ ॥
कुलाख्यं तेषु दृष्टं वै तत्र स्थानेषु सिध्यति ।
पूर्वोत्तरे दिशाभागे प्रत्येकानां जिनसंभवम् ॥ ३२ ॥
कुलाख्यं बहुमतं लोके सिद्धिस्तेषु तत्र वै ।
अधश्चैव दिशाभागे सिध्यन्ते सर्वलौकिका ॥ ३३ ॥
पातालप्रवेशिका मन्त्रा वै सिध्यन्तेऽष्टकुलेषु च ।
लोकोत्तरा तथा मन्त्रा उष्णीषाद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ३४ ॥
सिद्धिमायान्ति ते ऊर्ध्वं चक्रवर्तिजिनोदिता ।
दिक्समन्तात् सर्वत्र वज्रिणस्य तु सिध्यति ॥ ३५ ॥
तथान्ये मन्त्रराट् सर्वे अब्जयोनिसमुद्भवा ।
सिध्यन्ते सर्वदा सर्वे सर्वमन्त्राश्च भोगदा ॥ ३६ ॥
सिध्यन्ते सर्वकालेऽस्मिं वज्राब्जकुलयोरपि ।
एतत्क्षेत्रं तु निर्दिष्टं कालं तत्परिकीर्त्यते ॥ ३७ ॥
उत्पत्तेः सर्वबुद्धानां मन्त्रसिद्धि जिनोदिता । G 328
मध्यकाले तु बुद्धानां अब्जवज्रसमुद्भवाम् ॥ ३८ ॥
मन्त्राणामन्यकालेऽस्मिन् तदन्येषां मन्त्रशालिनाम् ।
सिद्धिश्च कालतः प्रोक्ता नान्यकाले प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥
तपसामुत्तमा सिद्धिस्त्रिभिर्जन्मैरवाप्नुयात् ।
सातत्यजापिनां मन्त्रं तद्भक्तां गतमानसाम् ॥ ४० ॥
प्रसन्नानां जिनपुत्राणां इह जन्मेऽपि सिध्यति ।
रत्नत्रये च भक्तानां बोधिचित्तविभूषिताम् ॥ ४१ ॥
संवरस्थां महाप्राज्ञ तन्त्रमन्त्रविशारदाम् ।
मत्राः सिध्यन्त्ययत्नेन बोधिसंवरतस्थिताम् ॥ ४२ ॥
सत्त्वानां कर्मसिद्धिस्तु आत्मसिद्धिमुदाहृता ।
सिद्धा एव सदा मन्त्रा असिद्धा सत्त्वमोहिता ॥ ४३ ॥
अत एव जिनेन्द्रैस्तु कल्पराज उदाहृतः ।
सविस्तरं कृथा मन्त्रं बुद्धश्रेष्ठो हि सत्तमः ॥ ४४ ॥
स वव्रे मुनिमुख्यस्तु बुद्धचन्द्रो महर्द्धिकः ।
ज्येष्ठं च बुद्धपुत्रं तं मञ्जुघोषो महौजसम् ॥ ४५ ॥

शृणु त्वं कुमार मन्त्राणां प्रभावगतिनैष्ठिकम् ।
यस्मिं काले सदा बुद्धा ध्रियन्ते लोकनायकाः ॥ ४६ ॥

तस्मिं काले तदा सिद्धिः उष्णीषाद्या प्रकीर्तिता ।
चक्रवर्तिस्तथा राजा तेजोराशिः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥

सितातपत्रजपोष्णीष बहवो वर्णिता जिनैः ।
एवमाद्यास्तथोष्णीषाः सिध्यन्ते तस्मिं काले ॥ ४८ ॥

चक्रवर्तिर्यदा काले जम्बूद्वीपे भविष्यति ।
धर्मराजा च संबुद्धः तिष्ठते द्विपदोत्तमः ।
तस्मिं काले भवेत् सिद्धिः मन्त्राणां सर्वभाषिताम् ॥ ४९ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रा-
दष्टाविंशतिमः क्षेत्रकालविधिनियमपटलविसरः
परिसमाप्तमिति ॥



३१ आविष्टचेष्टाविधिपरिवर्तः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–शृणु मञ्जुश्रीः कुमार पूर्वनिर्दिष्टं पदं सत्त्वाविष्टानां चरितं शुभाशुभं निमित्तं च वक्ष्ये ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः उत्थायासनाद् भगवतश्चरणयोर्निपत्य मूर्ध्निमञ्जलिं कृत्वा भगवन्तमेतदवोचत्–तत्साधु भगवां वदतु सत्त्वानां परसत्त्वदेहसंक्रान्तानामार्यदिव्ययतिसिद्धगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचमहोरगप्रभृतीनां विचित्रकर्मकृतशरीराणां विचित्रगतिनिश्रितानां विविधाकारानेकचिह्नानां मनुष्यामनुष्यभूतानां चित्तचरितानि । समयो भगवं, समयः सुगत, यस्येदानीं कालं मन्यसे । एवमुक्तो मञ्जुश्रियः कुमारभूतो तूष्णींभावेन स्वके आसने तस्थुः अध्येष्य जिनवरं लोकनायकं जिनसत्तमं गौतममिति ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः सत्त्वानां चित्तचरितनिमित्तज्ञानचिह्नं कालं च भाषते स्म–

परदेहगतः सत्त्वः आकृष्टो मन्त्रयुक्तिभिः ।
केचिदाहारलोभेन गृह्णन्ते मानुषं भुवि ॥ १ ॥
अपरे क्रुद्धचित्ता वै पूर्ववैरात्र चापरे ।
गृह्णन्ते मानुषां लोके भूतलेऽस्मिं सुदारुणाः ॥ २ ॥
वीतरागा तथा नित्यं कारुण्यात् समया पुनः ।
अवतारं मर्त्यलोकेऽस्मिं गृह्णते मानुषां शुभाम् ॥ ३ ॥
प्रशस्तां शुभमव्यङ्गां नराणां वर्णसाधिकाम् ।
उदयन्तं तथा भानो तेषामावेशमुच्यते ॥ ४ ॥
अवतारास्तेषु कालेऽस्मिं भानोरस्तमने निशा ।
रात्र्यां च प्रथमे यामे सितपक्षेषु दृश्यते ॥ ५ ॥
प्रशस्ता शुभकर्माणां ये नरा धार्मिकाः सदा ।
शुचिदक्षसमायुक्ता अवतारस्तेषु दृश्यते ॥ ६ ॥
आविष्टास्तु तनो मर्त्या वीतरागैर्महर्द्धिकैः ।
शुचिदेशे जने चैव शुभे नक्षत्रतारके । G 330
प्रशस्ते दिवसे वारे शुक्लपक्षे शुभेऽह्नि ॥ ७ ॥
शुक्लग्रहसंयुक्ते तिथौ पूर्णसमायुते ।
परिपूर्णे तथा चन्द्रे अवतारं तेषु दृश्यतं ॥ ८ ॥
अवतीर्णस्य भवे चिह्नः वीतरागस्य महर्द्धिके ।
आकाशे तालमात्रं तु पृथिव्यामुत्प्लुत्य तिष्ठते ॥ ९ ॥

पर्यङ्कोपविष्टोऽसौ दृश्यते नियताश्रये ।
नानादिव्यमतुल्याद्या ब्राह्मा कर्णसुखास्तथा ॥ १० ॥
वदनेऽसौ महासत्त्वो यत्रासौ पीदधियो स्थितः ।
उष्णीषमुद्रैराकृष्टः पततेऽसौ महीतले ॥ ११ ॥
महीमस्पृशतस्तिष्ठेदर्घं दद्यात्तु तत्क्षणात् ।
जातीकुसुमसंमिश्रं श्वेतचन्दनकुङ्कुमम् ॥ १२ ॥
मिश्रितं उदकं दद्यादर्घं पाद्यं तु तत्क्षणम् ।
प्रणिपत्य महीं मन्त्री अध्येष्ये हितकाम्यया ॥ १३ ॥
अध्येष्टो हि सः सत्त्वो वीतमत्सरचेतसः ।
वाचं प्रभाषते दिव्यां अनेलां कर्णसुखां तथा ॥ १४ ॥
यथेप्सं तु ततः पृच्छे मन्त्रज्ञे हि विशारदः ।
न भेतव्यं तत्र काले मञ्जुघोषं तु संस्मरेत् ॥ १५ ॥
मुद्रां पञ्चशिखां बद्ध्वा अन्यं वोष्णीषसंभवम् ।
दिशाबन्धं ततः कृत्वा दिश्यूर्ध्वमध एव तु ॥ १६ ॥
ततोऽसौ सर्ववृत्तान्तमध्यान्तं च प्रवक्ष्यते ।
आदिमध्यं तथा कालं भूतं तथ्यमनागतम् ॥ १७ ॥
वर्तमानं यथाभूतं आचष्टेऽसौ महाद्युतिः ।
अनिमिषाक्षास्तथा स्तब्धः प्रेक्षतेऽसौ भीतविद्विषः ॥ १८ ॥
यस्तेनोदिता वाचा सत्यं तं नान्यथा भवेत् ।
सिद्धिसाध्यं तथा द्रव्यं योनिं सनिचयं गतिम् ॥ १९ ॥
G 331 प्रत्येकबोधिमर्हत्त्वं महाबोधिं नियतं च तत् ।
बुद्धत्वगोत्रनियतं * * * * ॥ २० ॥
अगोत्रं चैव कालं वै भव्यसत्त्वमहर्द्धिकम् ।
सर्वं सो कथये सत्यं समयेनाभिलक्षितः ।
लक्षणमात्रं कथेद् योगी नान्यकालमुदीक्षयेत् ॥ २१ ॥
एतत्क्षणेन यत्किंचित् प्रार्थये सौमनसात्मना ।
तत्सर्वं लभते क्षिप्रं मन्त्रसिद्धिश्च केवला ।
प्राप्नुयात् सर्वसंपत्तिं यथेष्टं चाभिकाङ्क्षितम् ॥ २२ ॥
विसर्ज्य मन्त्री तत्क्षिप्रमर्घं दत्त्वा तु संमताम् ।
पात्रसंरक्षणां कुर्याद् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ २३ ॥
पतितं देह मत्वा वै शयानं चैव महीतले ।
उष्णीषमुद्रया युक्तं मन्त्रं चैव जिनोचितम् ॥ २४ ॥

तेनैव रक्षां कुर्वीत मुद्रा पञ्चशिखेन वा ।
स्वस्थदेहस्तदा सत्त्व उच्छिष्टेन महीतले ॥ २५ ॥
सर्वमाविष्टसत्त्वानां रक्षा एषा प्रकल्पिता ।
अशक्ता दुष्टसत्त्वा वै हिंसितुं पात्रनिश्रिते ॥ २६ ॥
रक्षा च महती ह्येषा जन्तूनां पात्रसंभवा ।
वाचा च तस्य मध्यस्था मध्यदेशे प्रकीर्तिता ॥ २७ ॥
देवयोनिं समाश्रित्य अकनिष्ठाद्याश्च रूपिणाम् ।
एतेऽन्ये तानि चिह्नानि दृश्यन्ते रूपसंभवाम् ॥ २८ ॥
कामधात्वेश्वरा ये तु कामिनांश्चैव दिवौकसाम् ।
ततो हीना गतिश्चिह्ना वाचा चैव समाधुरा ॥ २९ ॥
ततो हि भूतनिष्पन्ना विमानस्था सदिवौकसाम् ।
वाचा काशिपुरीं तेषां यक्षाणां च समागधिम् ॥ ३० ॥
अङ्गदेशां तथा वाचा महोरगाणां प्रकीर्तिता ।
पूर्वी वाचा भवेत्तेषां गरुडानां महौजसाम् ॥ ३१ ॥
तथा वङ्गे समाजाता या वाचा तु प्रवर्तते । G 332
किन्नराणां तथा वाचा सा वाचा परिकल्पिता ॥ ३२ ॥
औड्री वाचा भवेन्नित्यं सिद्धविद्या सखड्गिणान् ।
विद्याधराणां तु सा वाचा * * * * ॥ ३३ ॥
ऋषीणां तु कामरूपी तु वाचा विश्वरूपिणाम् ।
पञ्चाभिज्ञं तु सा वाचा ऋषीणां परिकल्पिता ॥ ३४ ॥
या तु सामातटी वाचा या च वाचा हरिकेल्कि ।
अव्यक्तां स्फुटां चैव डकारपरिनिश्रिताम् ॥ ३५ ॥
ल्कारबहुला या वाचा पैशाची वाचमुच्यते ।
कर्मरङ्गाख्यद्वीपेषु नाडिकेसरमुद्भवे ॥ ३६ ॥
द्वीपवारुषके चैव नग्नवालिसमुद्भवे ।
यवद्वीपिषु सत्त्वेषु तदन्यद्वीपसमुद्भवा ॥ ३७ ॥
वाचा रकारबहुला तु वाचा अस्फुटतां गता ।
अव्यक्ता निष्ठुरा चैव सक्रोधा प्रेतयोनिषु ॥ ३८ ॥
दक्षिणापथिका वाचा अन्ध्रकर्णाटद्राविडा ।
कोसलाडविसत्त्वेषु सैंहले द्वीपमुद्भवा ॥ ३९ ॥
डकारे रेफसंयुक्ता सा वाचा राक्षसी स्मृता ।
तदन्यद्वीपवास्तव्यैः मानुष्यैश्चापि भाषितम् ॥ ४० ॥

स एष वचनमित्युक्त्वा मातराणां महौजसाम् ।
पश्चिमी वाच निर्दिष्टा वैदिशीश्चापि माल्वी ॥ ४१ ॥
वत्समत्सार्णवी वाचा शूरसेनी विकल्पिता ।
दशार्णवी चापि पार्वत्या श्रीकण्ठी चापि गौर्जरी ॥ ४२ ॥
वाचा एषा तु निर्दिष्टा आदित्याद्यां ग्रहोत्तमाम् ।
तदन्यां ग्रहमुख्यां तु पारियात्री विकल्पिता ॥ ४३ ॥
अर्बुदे सह्यदेशे च मलये पर्वतवासिनाम् ।
खषद्रोण्यां तु संभूते जने वाचा तु यादृशी ॥ ४४ ॥
G 333 तादृशी वाच निर्दिष्टा कूष्माण्डाधियोनिजम् ।
शरषससंभूता यरलावकमुद्भवा ॥ ४५ ॥
घकारप्रथिता वाचा दानवानां विनिर्दिशेत् ।
कश्मीरे देशसमुद्भूता काविशे च जनालये ॥ ४६ ॥
सर्वे एते कुलोद्भूता वज्रपाणिकुलोद्भवा ।
तेषां मन्त्रमुख्यानां सर्वेषां वाचमिष्यते ॥ ४७ ॥
तथाब्जमध्यदेशस्था कुलयोनिसमाश्रिता ।
वाचागतिचिह्नाश्च दृश्यन्ते अब्जसंभवाः ॥ ४८ ॥
पूर्वनिर्दिष्टमेवं स्यात् जिनमन्त्रा विकल्पिता ।
वीतरागां तु ये चिह्ना ते चिह्ना जिनसंभवा ॥ ४९ ॥
यत्र देशे भवेद्वाचा तत्रस्था गतिचेष्टिता ।
तदेव निर्दिशेत् सत्त्वं तच्चिह्नं तु सर्वतः ॥ ५० ॥
हिमाद्रेः कुक्षिसंविष्टा गङ्गातीरे तु चोत्तरे ।
यक्षगन्धर्वऋषयो जने वाचा प्रदृश्यते ॥ ५१ ॥
विन्ध्यकुक्ष्यद्रिसंभूता गङ्गातीरे तु दक्षिणे ।
श्रीपर्वते तथा शैले संभूता ये च जन्तवः ॥ ५२ ॥
राक्षसोस्तारकप्रेता विकृता मातरास्तथा ।
घोररूपा महाविघ्ना ग्रहाश्चैव सुदारुणा ॥ ५३ ॥
परप्राणहरा लुब्धा तज्जनोद्वाचसंभवा ।
तत्र देशे तु ये चिह्ना तद्देशे गतिचेष्टिता ॥ ५४ ॥
तद्वाचवाचिनो दुष्टा आविष्टानां विचेष्टितम् ।
एते चान्ये च बहवो तच्चेष्टागतिचेष्टिनः ॥ ५५ ॥
विचित्राकाररूपाश्च विविधाकारचिह्निता ।
विविधसत्त्वमुख्यानां विविधा योनिरिष्यते ॥ ५६ ॥

एतदाविष्टचिह्नं तु लक्षणं गतिचिह्नितम् ।
सर्वेषां तु प्रकुर्वीत मानुषाणां सुखावहम् ॥ ५७ ॥
रक्षार्थं प्रयोक्तव्या कुमारो विश्वसंभवः । G 334
षडक्षरेणैव कुर्वीत मन्त्रेणैव जापिनः ॥ ५८ ॥
महामुद्रासमायुक्तं * * * * ।
पञ्चचीरासु विन्यस्तः महारक्षो कृता भविष्यति ॥ ५९ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायानवैपुल्यसूत्राद्
एकूनत्रिंशतिमः आविष्टचेष्टविधिपरिवर्तपटविसरः
परिसमाप्तः इति ॥



G 335 ## ३२ विधिनियमकालपटविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म - अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयमन्त्राणां सर्वतन्त्रेषु समनुप्रवेशासर्वविद्यारहस्यमनेककालगुणसकलफलोदयमप्यनुबन्धनिमित्तम् । प्रमाणतो वक्ष्ये सिद्धिकारणानि । तद्यथा—

जन्मान्तरिता सिद्धिः न सिद्धिः कालहेतुतः ।
तत्प्रमाणप्रयोगस्तु पूर्वसंबद्धमुद्भवा ॥ १ ॥
अहितावहितो सिद्धिः भवेद् युक्तिविचारणम् ।
त्वत्कुमाराश्रययुक्तिः दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥ २ ॥
अत्र पूर्वकृतं कर्म युक्तिरित्यभिधीयते ।
तद्योगे युक्तितो धीरो प्राप्नुयात् सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ३ ॥
असिद्धं सिध्यते कर्म न सिद्धिः कर्मणा विना ।
कर्मकर्तृसमायुक्तं संयुक्तः सिद्धि कल्प्यते ॥ ४ ॥
लिलेभ परमं स्थानं विधियुक्तेन हेतुना ।
न वत्रे मन्त्रिणा मन्त्रं अमन्त्रो मन्त्रिणो भवेत् ॥ ५ ॥
मौनकर्मसमाचारे सिद्धिमाप्नोति पुष्कलाम् ।
जापी बीजसमाहार आजहार धियोत्तमम् ॥ ६ ॥
वियतः श्रेष्ठतमं स्थानं प्रथमं गतिमाप्नुयात् ।
वियताभावतः स्वस्थो प्राप्नुया निर्जरसंपदम् ॥ ७ ॥
निमित्ता कालतो यस्य अकाले सिद्धिकाङ्क्षिणः ।
न सिद्धिस्तस्य मन्त्राणां शक्रस्यापि समासतः ॥ ८ ॥
अहितो भूतजन्तूनां अकालाक्रमणः पुनः ।
न सिद्धिस्तस्य दृश्यते ब्रह्मणस्यापि महात्मनः ॥ ९ ॥
तन्द्रीतृष्णासमायुक्तो मदमानसमन्वितः ।
शैथिल्यौदीर्यमुद्रेक्षी नित्यं प्राम्यजने रतः ॥ १० ॥
G 336 आलस्यो मिथुनसंयोगी अस्य सिद्धिः कुतो भवेत् ।
सुराणां गुरवो यद्य असुराणां च ये तदा ॥ ११ ॥
तेऽपि साधयितुं मन्त्रं न शक्ता विधिवर्जितम् ।
विधिहीनं तथा कर्म चित्तविभ्रमकारकम् ॥ १२ ॥
तस्मात् तं जपेन्मन्त्रं अयुक्तं विधिना विना ।
बालानां दृष्टिसंमोहं जनयन्ति तथाविधा ॥ १३ ॥
संमूढास्तु ततो बाला पतन्ते कष्टतमां गतिम् ।
ततस्ते मन्त्रधरास्तस्मादुज्जहार ततः पुनः ॥ १४ ॥

अनुपूर्व्या ततः सिद्धिं प्रयच्छन्ति शुभां गतिम् ।
ततो तं जपिनं मन्त्रा स्थापयन्ति शिवाचले ॥ १५ ॥
एवममोघं मन्त्राणां जपमुक्तं तथागतैः ।
दृष्टिभ्रान्तेऽपि चित्तस्य अनुग्रहायैव युज्यते ॥ १६ ॥
एते कल्याणमित्रा वै एते सत्त्वेषु वत्सला ।
एतेषां सिद्धि निर्दिष्टा त्रियानसमता शिवा ॥ १७ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
अविधिप्रयोगान्मन्त्रा हि प्रयुक्ता मन्त्रजापिभिः ॥ १८ ॥
चिरकालं तु संसारात् कथंचिन्मुक्तिरिष्यते ।
सुचिरात् कालतरं गत्वा मन्त्राणां सिद्धि दृश्यते ॥ १९ ॥
विधियुक्ता हि मन्त्रा वै क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुयात् ।
पश्यते फलनिष्पत्तिं नाफलं मन्त्रमुच्यते ॥ २० ॥
इहैव जन्मे सिध्यन्ति मन्त्राः फलसमोदिता ।
न निष्पत्तिः फलकर्मणां नाफलं कर्ममिष्यते ॥ २१ ॥
फलं कर्मसमायोगात् सफलं कर्म उच्यते ।
तज्जापी जन्मजनिता वियत्नाभावसंभवः ॥ २२ ॥
शिवं लोकनिर्दिष्टं शान्तभावा विमुच्यते ।
तद्गतं गतिमाहात्म्यं बुद्धवर्त्मानुसेविनः ॥ २३ ॥
विपरीतकलौ काले सिद्धिस्तस्यापि दृश्यते । G 337
इहैव जन्मे भवेत्सिद्धिः जन्मान्ते च प्रवर्तते ॥ २४ ॥
यावन्निष्ठा भवेच्छान्ति शिववर्त्मसंस्कृतम् ।
यत्तु लोकविनिर्दिष्टं शिवं स्थानं सुनिर्मलम् ॥ २५ ॥
बुद्धत्वं सम्प्रकाशं तु जनैः सर्वप्रकाशितम् ।
तदन्तं तस्य अन्तं वै मन्त्रसिद्धिरुदाहृता ॥ २६ ॥
अप्रकाश्यमभावं तु जिनानां प्रत्यात्मसंभवम् ।
मन्त्रा तु कथितं लोके मुनिचन्द्रैर्महर्द्धिकैः ॥ २७ ॥
साक्षात् सिद्धि समादिष्टा इह जन्मेऽपि देहिनाम् ।
शून्ये तत्वविदे क्षेत्रे मन्त्रा बुद्धत्वमाविशेत् ॥ २८ ॥
अन्ते कलियुगे काले शान्ति तत्त्वविदे गते ।
मन्त्रा सिद्धिं न गच्छेयुः क्षिप्रमर्थाभिकाङ्क्षिणाम् ॥ २९ ॥
तस्मिं काले प्रयोगेन विधिदृष्टेन कर्मणा ।
साधयेन्मन्त्रतत्त्वज्ञः शासनेऽस्मिं मुनिर्वचे ॥ ३० ॥

म्रियते तथागते सिद्धि उत्तमा क्षिप्रमिष्यते ।
मध्यकाले तथा सिद्धिः मध्यमा तु उदाहृता ॥ ३१ ॥
युगान्तं कालमासाद्य अधमा सिद्धिरुच्यते ।
युगे शोभने काले वियत्योत्पतनं तथा ॥ ३२ ॥
सिद्धिश्च सर्वमन्त्राणां निर्दिष्टा लोकनायकैः ।
तदा काले जिनेन्द्राणां कुलाग्र्यं तत् प्रसिध्यति ॥ ३३ ॥
मध्ये पद्मकुले सिद्धिः युगान्ते वज्रकुलस्य तु ।
प्रणिधानवशात् केचित् मन्त्राः सिध्यन्ति सर्वदा ॥ ३४ ॥
अवलोकितेशो मञ्जुश्री तारा भृकुटी च यक्षराट् ।
सर्वे माणिचरा यक्षा सिध्यन्ते सर्वकालतः ॥ ३५ ॥
रागिणो ये च मन्त्राद्या प्रयुक्ताः सर्वदैवतैः ।
सिध्यन्ते कलियुगे काले लौकिका ये सुचिह्निताः ॥ ३६ ॥
G 338 प्रोक्ता ये देवमनुजैः दानवेन्द्रैर्यक्षराक्षसैः ।
ऋषिभिर्गरुडैश्चापि पिशाचैर्भूतगणैर्ग्रहैः ॥ ३७ ॥
मानुषामानुषाश्चैव कामधातुसमाश्रितैः ।
महर्द्धिकैः पुण्यवद्भिश्च क्रूरकर्मैः सुदारुणैः ॥ ३८ ॥
शक्र ब्रह्म तथा रुद्रैः ईशानेन तथापरैः ।
विष्णुना सर्वभूतैस्तु मन्त्राः प्रोक्ता महर्द्धिकाः ॥ ३९ ॥
तेऽपि तस्मिं युगान्ते वै सिद्धिं गच्छन्ति जापिनाम् ।
क्रूरकर्मे तथा सिद्धिः तस्मिं काले महद्भये ॥ ४० ॥
वश्याकर्षणभूतानां क्रव्यादानां महीतले ।
दृश्यते निष्फला सिद्धिः परलोकान्तगर्हिता ॥ ४१ ॥
अत एव जिनेन्द्रेण तस्मिं काले महद्भये ।
मञ्जुघोषः समादिष्टः सत्त्वानुग्रहतत्परः ॥ ४२ ॥
विनश्यन्ति तदा सत्त्वां मन्त्ररूपेण जापिनाम् ।
शासनेऽस्मिन् प्रसन्नानां त्रिरत्नेष्वेव पूजकाम् ॥ ४३ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायानवैपुल्यसूत्रात् त्रिंशतिमः विधिनियमकालपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

३३ कर्मक्रियाविधिनिमित्तज्ञाननिर्देशः । G 339

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः सर्वावन्तं शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म-त्वदीये मञ्जुश्रीः कल्पराजे निर्दिष्टसमाख्याते धर्मधातुकोशतथागतगर्भधर्मधातुनिष्पन्दानुचरिते महासूत्रवररत्नपटलविसरे तथागतगुह्यवरमनुज्ञाते मन्त्रवधसाध्यमाने निमित्तज्ञान-चिह्नकालप्रमाणान्तरितसाधनौपयिकानि सर्वभूतरुतरवितानि असत्त्वसत्त्वसंज्ञानिर्घोषाणि भवन्ति ॥

शाब्दिकं ज्ञानं इत्युक्त अशाब्दिकं चैव कीर्त्यते ।
व्यतिमिश्रं तथा युक्ति मन्त्राणां त्रिविधा क्रिया ॥ १ ॥
दिव्यशब्दसमायुक्ता अनित्यार्थप्रयोजिता ।
अपशब्दापगता नित्यं संस्कारार्थार्थभूषिता ॥ २ ॥
अबाह्यः सर्वसिद्धान्ते आर्या मन्त्राः प्रकीर्तिता ।
नित्यं पदार्थहीनं तु तत् त्रिधा परिभिद्यते ॥ ३ ॥
गुरु लघु तथा मध्यैः वर्णैश्चापि विभूषिता ।
सा भवेन्मन्त्रदेवी तु स्वरच्छन्दविभूषिता ॥ ४ ॥
संस्कृतासंस्कृतं वाक्यं अर्थानर्थ तथा परे ।
धात्वर्था तथा युक्तिः गतिमन्त्रार्थभूषिता ॥ ५ ॥
विकल्पबहुला वाचा मन्त्राणां सर्वलौकिका ।
एकद्वित्रिवर्णं तु च्छन्दैः साश्वरितालयः ॥ ६ ॥
त्रि चतुः पञ्च षष्ठं वा सप्तमं वाष्टमं तथा ।
नवमं दशमं चैव वर्णानां सिद्धिरिष्यते ॥ ७ ॥
दशाक्षरसमायुक्ता वर्णानां हेतुनाम् ।
यावद्दश गुणा ह्येते वर्णा दृश्यन्ति महीतले ॥ ८ ॥
शताक्षरं विंशतिकं यावदेकाक्षरं भवेत् ।
एतत्प्रमाणैर्वर्णैस्तु ग्रथिता मन्त्रसंपदा ॥ ९ ॥
पदैश्चतुर्भिः संयुक्ता मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ।
ज्येष्ठाः प्रवरा ह्यार्या मन्त्रा ये जिनभाषिताः ॥ १० ॥
ते तु मध्यमा अधमा * * * * तदा । G 340
तदात्मजैर्जिनपुत्रैस्तु भाषिता ते तु मध्यमा ॥ ११ ॥
अधमा ये तु मन्त्रा वै भाषिता सर्वलौकिका ।
निकृष्टा कथिता मन्त्रा भाषिता नैर्ऋतैस्तु ये ॥ १२ ॥
दशाष्टसप्तविंशं वा यावदभ्यधिकं शतम् ।
एतत्प्रमाणं मन्त्राणां आर्याणां जिनभाषिताम् ॥ १३ ॥

एकद्विकवर्णं तु सहस्रार्धं वर्णतो भवेत् ।
यावत्प्रमाणं तु मन्त्राणां बोधिसत्त्वैः प्रकाशिता ॥ १४ ॥
तदक्षरे पदविन्यस्तं मन्त्रयुक्तिमुदाहृता ।
छन्दांसि स्वरयुक्तानां धात्वर्थार्थभूषिता ॥ १५ ॥
वचनं सुप्रयुक्तं वै तन्त्रयुक्तिसमन्वितम् ।
भवेत् कदाचिकात् सिद्धिः शब्दस्वरवियोजिता ॥ १६ ॥
मुद्रायुक्तं तु शब्दैस्तु मूर्ध्नादूष्मान्ततालुकैः ।
दन्तोष्ठकण्ठतः शब्दं विसृतं साधनं क्रिया ॥ १७ ॥
अव्यक्तविनिवृत्तं तु सुप्रयुक्तमुदाहृतम् ।
संपूर्णं वाक्यतः शब्दं संप्रयुक्तः साधयिष्यति ॥ १८ ॥
विधिभ्रष्टं क्रियाहीनं शब्दार्थैश्च वियोजितम् ।
मन्त्रं न सिध्यते क्षिप्रं दीर्घकालमपेक्षते ॥ १९ ॥
अवन्ध्यं तस्य सिद्धिस्तु न वृथा कारये जपी ।
अन्यजन्मेऽपि दृश्यन्ते मन्त्रसिद्धि वरप्रदा ॥ २० ॥
तस्य मन्त्रप्रभावेन चिरकालाच्च जापिनाम् ।
अवन्ध्यं कुरुते कर्म समन्त्रा मन्त्रविदो जनाम् ॥ २१ ॥
निकृष्टा सर्वमन्त्राणां लौकिका ये समानुषा ।
सर्वभूतैस्तु ये प्रोक्ता मन्त्रा ये च समत्सरा ॥ २२ ॥
तेषां त्र्यक्षरा प्रोक्ता एकद्विकत्रिसंख्यकम् ।
विविधैः म्लेच्छभाषैस्तु देवभाषाप्रकीर्तितैः ॥ २३ ॥
ग्रथिता पङ्क्तियुक्ताश्च व्यतिमिश्रा शब्दतः सदा ।
सहस्रं चाष्टशतं अष्ट च यावदेकं तु वर्णतः ॥ २४ ॥
G 341 चतुःपादं पादार्धं तु गद्यपद्यं निगदितम् ।
श्लोकं दण्डकमात्रैस्तु गाधस्कन्धकपङ्क्तिम् ॥ २५ ॥
प्रतिपच्चार्थयुक्तिश्च सहस्रतार्थभूषितम् ।
अपभ्रंशसंस्कृतं शब्दं अर्थहीनं विकल्पते ॥ २६ ॥
अव्यक्तं व्यक्तहीनं तु मात्राहीनं तु युज्यते ।
गतिदेशविसंयोगान्मन्त्रसिद्धिस्तदुच्यते ॥ २७ ॥

एतत् सर्वमन्त्राणां एष लक्षणः ।

शाकारबहुला ये मन्त्रा ओंकारार्थविभूषिता ।
तकारलक्षणतन्त्रस्था सिद्धिस्तेषु ध्रुवं भवेत् ॥ २८ ॥

ओंकारा ये मन्त्रा मकारान्तविनिर्गताः ।
शकारसहसंयुक्तादवन्ध्यं शोभनं तथा ।
तकारचतुरस्राकारा प्रत्याहारान्तवर्जिता ॥ २९ ॥
तकारश्ची (?) रेफसंयुक्ता समन्त्रं साधनक्रिया ।
द्विरेफबहुलं आद्यं हुंकारगुणमुद्भवम् ॥ ३० ॥
वकारचतुरश्रान्ते वर्णा साधनक्षमा ।
ककारं रेफसंयुक्तं मकारान्तं मात्रमिश्रितम् ।
मकारं नकारमाद्यं तु स मन्त्रः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३१ ॥
तकारबहुलं यत्र सर्वतन्त्रेषु दृश्यते ।
स मन्त्रः सौम्यमित्युक्तो याम्यहुंकारभूषितम् ।
ऐन्द्रावायव्यमित्युक्तं भकारबहुलं तु यः ॥ ३२ ॥
वारुणः चकारमित्याहुः हितं लोके तु पौष्टिकम् ।
वकारबहुलो यो मन्त्रः माहेन्द्रं तत् प्रदृश्यते ॥ ३३ ॥
आद्यं त्रिरत्नगमनं यो मन्त्रः शरणं तथा ।
नमस्कारं प्रवर्तेत शान्तिहेतुं सुखावहम् ॥ ३४ ॥
तदन्यत् सर्वदेवानां नमस्कारार्थं प्रयुज्यते ।
स्वमन्त्रं मन्त्रनाथं च स मन्त्रः सर्वकर्मिकम् ॥ ३५ ॥
डकारबहुलो यो मन्त्रः फट्कारार्थहुंकृतः । G 342
एते मन्त्रा महाक्रूरा तेजवन्तो महौजसः ॥ ३६ ॥
प्राणोपरोधिनो सद्यः क्रूरसत्त्वसुयोजिता ।
तस्मान्न कुर्यात् कर्माणि पापकानि विशेषतः ॥ ३७ ॥
तं जापी वर्जयेद् यस्मात् मुनिभिर्वर्जिता सदा ।
उभयार्थेऽपि सिध्यन्ते मन्त्रा शान्तिकपौष्टिका ॥ ३८ ॥
क्षणेन कुरुते सर्वं कर्मां यावन्ति भाषिता ।
सुजप्ता मन्त्रा ह्येते तेजवन्तो महर्द्धिका ॥ ३९ ॥
शान्तिकानि च कर्माणि कुर्यात्तां जिनभाषितैः ।
पौष्टिकानि तु सर्वाणि कुर्यात् कोकनदे कुले ॥ ४० ॥
कर्मा पापका सर्वे अभिचारे प्रयुज्यते ।
अभिचारुकसर्वाणि कुर्याद् वज्रकुलेन तु ।
निषिद्धा लोकनाथैस्तु यक्षेन्द्रेण प्रकाशिता ॥ ४१ ॥
सत्त्वानां विनयार्थाय मन्त्रमाहात्म्यमुद्भवम् ।
कथितं त्रिप्रकारं तु त्रिकुलेष्वेव सर्वतः ॥ ४२ ॥

ये तु अष्ट समाख्याता कुलाग्र्या मुनिना स्वयम् ।
तेषु सिद्धिस्त्रिधा या ता त्रिप्रकाराः समोदिताः ।
उत्तमा मध्यमा नीचा तत् त्रिधा परिभिद्यते ॥ ४३ ॥
शान्तिकं पौष्टिकं चापि अभिचारुकमिष्यते ।
केवलं मन्त्रयुक्तिस्तु तन्त्रयुक्तिरुदाहृता ॥ ४४ ॥
मन्त्राणां गतिमाहात्म्यं आभिचारुक युज्यते ।
एतत्कर्म निकृष्टं तु सर्वज्ञैस्तु विगर्हितम् ॥ ४५ ॥
न कुर्यात् कृच्छ्रगतेनापि कर्म प्राणोपरोधिकम् ।
केवलं तु समासेन कर्ममाहात्म्य वर्णितः ॥ ४६ ॥
तन्त्रयुक्तविधिर्मन्त्रैः कर्मविस्तरविस्तरः ।
कर्मराजे इहोक्तं तु अन्यतन्त्रेषु दृश्यते ॥ ४७ ॥
G 343 न भेजे कर्महीनं तु सर्वमन्त्रेषु युक्तिमां ।
यावन्ति लौकिका मन्त्रा सकला निष्कलास्तथा ॥ ४८ ॥
सर्वे लोकोत्तराश्चैव तेषामेव गुणः सदा ।
असंख्यं मन्त्रसिद्धिस्त्वसंख्यं तत्परिकीर्त्यते ॥ ४९ ॥
एकसंख्यप्रभृत्यादि विंशमुक्तं तथापि तु ।
ततः त्रिंशत् समासेन चत्वारिंशं तु चापरम् ॥ ५० ॥
ततस्त्रिगुणषष्टिं तु सप्तभिः सदशं तथा ।
दशं चापरमित्याहु अशीतिसंख्या तु चापरम् ॥ ५१ ॥
सदशं नवतिमित्याहुः शतं पूर्णं दशापरम् ।
शतसंख्या तु संख्याता तद्दशं सहस्रापरम् ॥ ५२ ॥
दशसहस्रमयुतं तु दशमयुतानि लक्षितम् ।
दशलक्षाविलक्षं तु विलक्षं दशकोटिकम् ॥ ५३ ॥
× × × × × × त्यो वै दश विकोट्योऽर्बुदो भवेत् ।
दशार्बुदा निर्बुदः उक्तः तद्दशं खड्गमिष्यते ॥ ५४ ॥
दशखड्गनिखड्गं तु दशनिखर्वः सर्वमिष्यते ।
दश निखर्वां तथा पद्मः दशपद्मां महापद्मः ५५ ॥
दश पद्मानि वाहस्तु दश विवाहांस्तथापराम् ।
महाविवाहस्तथा दृष्टस्तद्दशं मायमुच्यते ॥ ५६ ॥
तद्दशमायां महामायः महामायां दशापराम् ।
समुद्रं गणितज्ञाने निर्दिष्टं लोकनायकैः ॥ ५७ ॥

महासमुद्रं ततः पश्चाद् विंशार्धं दग्मिाधिके ।
महासमुद्रस्तथा युक्तः मद्दशं सागरं ततः ॥ ५८ ॥
महासागरमित्याहुर्विंशार्धेन प्रयुज्यते ।
महासागरा दश गुणीकृत्य प्रवरा चैवमुच्यते ॥ ५९ ॥
दशप्रवरात्युक्तः वरेति तं प्रकीर्तितम् ।
दशवरे नामतोऽप्युक्ता अशेषं तु तदुच्यते ॥ ६० ॥
अशेषान्महाशेषं विंशार्धेन गुणीकृतम् । G 344
तदसंख्यं प्रमाणं तु कथितं लोकनायकैः ॥ ६१ ॥
संख्यो दश संख्यामित्याहु तदसंख्यं गुणीकृतमिति ।
ततः परेणापि तथा * * * * * * * * ॥ ६२ ॥
अमितात् सहस्रगुणितं तं लोकं परिकीर्त्यते ।
लोकात्परेण महालोकं महालोकाद् गुणीकृतम् ॥ ६३ ॥
तत संतमसमित्युक्तं तमसा ज्योतिरुच्यते ।
ज्योतिषो महाज्योत्स्ना गुणीकृत्य महाराशिस्तदुच्यते ॥ ६४ ॥
महाराश्या महाराशिरित्युक्ता राश्ये गम्भीरमुच्यते ।
गम्भीरा स्थिरमित्याहुः स्थिरात् स्थिरतरं व्रजेत् ॥ ६५ ॥
ततः परेण बहुमत्या बहुमतं स्थानमुच्यते ।
स्थानं स्थानतरं त्याहुः गणितज्ञानसूरताः ॥ ६६ ॥
महास्थानं ततो गच्छेन्महास्थान मितमिष्यते ।
मितान्मितसमं कृत्वा महार्थं तत् परिकीर्त्यते ॥ ६७ ॥
महार्था सुश्रुतस्थानं ततो गच्छेन्महार्णवम् ।
महार्णवात् प्रथममित्याहुः प्रथमात् प्रथमतरं हि तत् ॥ ६८ ॥
प्रथमे श्रेष्ठमित्याहुः श्रेष्ठाज्ज्येष्ठान्तमुच्यते ।
ज्येष्ठान्मन्दिरसो नाम तदचिन्त्यं परिकीर्त्यते ॥ ६९ ॥
अचिन्त्य अचिन्त्यार्थिन्यतमं घोरं घोरात् राष्ट्रतमिष्यते ।
राष्ट्रात् परेण निध्यस्तो निध्यस्तपरतः शुभम् ॥ ७० ॥
शुभात् परेण महाचेतः महाचेता चेतयिष्यते ।
चेतो चित्तविक्षेप अभिलाप्य तदुच्यते ॥ ७१ ॥
अभिलाप्या अनभिलाप्यास्तु विश्वरं च मुदाहृतम् ।
विश्वात् परेण महाविश्वः अखरं तु तदुच्यते ॥ ७२ ॥
अखरान्महाखरस्थानं खर्वतोऽधिगर्वितस्तथा ।
श्रेयसं शान्तिमित्युक्तं स्थानं गणितपारगैः ॥ ७३ ॥

G 345 महाधृष्टस्ततो धृष्ट. ओदकं तदिहोच्यते ।
ओदका चित्तविभ्रान्तं स्थानं चापरमुत्तमम् ॥ ७४ ॥
उत्तमात् परतो बुद्धां विषयं नाधरभूमिकाम् ।
अशक्यं मानुषाणां तु गणना लोककल्पनम् ॥ ७५ ॥
ततः परेण बुद्धानां गोचरं नापरं मतम् ।
बुद्धक्षेत्रं आसिकता गङ्गानद्यास्तु मुच्यते ॥ ७६ ॥
संभिद्य परमाणूनां कथयामास नायकः ।
दृष्टान्तं क्रियते ह्येतत् तर्कज्ञानं तु गोचरम् ॥ ७७ ॥
हेतुना साध्यते द्रव्यं न शक्यं गणनापरैः ।
एतत्प्रमाणं संबुद्धा पर्युपास्ते मया पुरा ॥ ७८ ॥
तेषामाराधयित्वा मे कल्पेऽस्मिं तदचित्तके ।
एतावत्कालपर्यन्तं बोधिसत्त्वोऽहं पुरा भवेत् ॥ ७९ ॥
सत्त्वानामर्थसंबुद्धो बुद्धत्वं च समाविशेत् ।
तत्र तत्र मया तन्त्रा भाषिता कल्पविस्तरा ॥ ८० ॥
एतत् कल्पवरं ज्येष्ठमेतद् बुद्धैस्तु भाषितम् ।
एतत्प्रमाणं संबुद्धैः कथितोऽहं पुरातनम् ॥ ८१ ॥
अधुना कुमार मया प्रोक्त अन्ते काले तु जन्मिके ।
यावन्ति लौकिका मन्त्रा कल्पराजाश्च शोभना ॥ ८२ ॥
लोकोत्तरा तथा दिव्या मानुष्या ससुरासुरा ।
सर्वेषां तु मन्त्राणां तन्त्रयुक्तिरुदाहृता ॥ ८३ ॥
संमतोऽयं तु सर्वत्र कल्पराजो महर्द्धिकः ।
तेषां कल्पविधानेन सिद्धिमायाति मञ्जुमां ॥ ८४ ॥
अनेनैव तु कल्पेन विधिना मञ्जुभाणिना ।
तेषां सिद्धिमित्युक्ता सर्वेषां प्रभविष्णुना ॥ ८५ ॥
किं पुनर्मानुषे लोके ये चान्ये मन्त्रदेवता ।
सर्वे लोकोत्तरा मन्त्राः लौकिका समहर्द्धिकाः ॥ ८६ ॥
346 अनेन विधियोगेन कल्पराजेन सिद्धिताम् ।
वसिता सर्वमन्त्राणां सर्वकल्पमुदाहृतम् ॥ ८७ ॥
संमतोऽयं तु मञ्जुश्रीः कल्पराजे इहोत्तमे ।
ये केचिच्छिल्पविज्ञाना लौकिका लोकसंमता ॥ ८८ ॥
निमित्तज्ञानशकुनाः ज्योतिषज्ञानचिह्निताः ।
निमित्तज्ञानचरिता रुता चैव शुभाशुभा ॥ ८९ ॥

सर्वभूतरुतश्चैव चरितं चित्तचिह्नितम् ।
धातुरायतमं द्रव्यं * * * * * ॥ ९० ॥
इङ्गितं शकुनमित्याहुः अन्यधातुक्रिया तथा ।
गणितं व्याकरणं शास्त्रं शस्त्रं चैव क्रमो विधिः ॥ ९१ ॥
अध्यात्मविद्या चैकित्स्यं सर्वसत्त्वहितं सुखम् ।
हेतुनीति तथा चान्यं शब्दशास्त्रं प्रवर्तितम् ॥ ९२ ॥
छन्दभेदोऽथ गान्धर्वः गन्धयुक्तिमुदाहृताः ।
ते मया बोधिसत्त्वेन सत्त्वानामर्थाय भाषिताः ॥ ९३ ॥
पुराहं बोधिसत्त्वोऽस्मिं सत्त्वानां हितकारणा ।
भाषिता ते मया पूर्वं संसारार्णववासिनाम् ॥ ९४ ॥
संसारगहने कान्तारे चिरकालं उषितो ह्यहम ।
यथा वैनेयसत्त्वानां तथा तत्र करोम्यहम् ॥ ९५ ॥
यथा यथा च सत्त्वा वै हितं कर्म समादधे ।
तथा तथा करोम्येषां हितार्थं कर्म शुभाल्यम् ॥ ९६ ॥
विचित्रकर्मनेवस्थाः सत्त्वानां हितयोनयः ।
विचित्रैव क्रियते तेषां विचित्रार्थं योनिदूषिता ॥ ९७ ॥
विचित्रकर्मसंयुक्ता विचित्रार्थां शास्त्रवर्णिताम् ।
तं तथैव करोम्येषां विचित्रां रूपसंपदन् ॥ ९८ ॥
अहं तथावेषधारी स्यां विचित्राङ्गं निजानिजाम् ।
हिताशयेन सत्त्वानां विचित्रं रूप निर्मिमे ॥ ९९ ॥
महेश्वरः शक्रब्रह्माद्यां विष्णुर्धनदनैर्ऋताम् । G 347
विचित्रां ग्रहरूपांस्तु निर्मिमेऽहं तथा पुरा ॥ १०० ॥
महाकरुणाविष्टमनसः सत्त्वानामाशयगोचरा ।
अनुपूर्व्या तु तेषां वै स्थापयामि शिवे पदे ॥ १०१ ॥
पर्यटामि संसारे दीर्घकालमवेक्षितम् ।
सत्त्वानामर्थनिष्पत्ति मन्त्ररूपेण देशितम् ॥ १०२ ॥
अनुपूर्वं मतज्ञानं मन्त्रकल्पं प्रवर्तितम् ।
चिरा मे संसरता जन्मे बुद्धगोत्रे समाश्रिता ॥ १०३ ॥
न च मे विद्यते कश्चित् कर्ता वा स्वामिनोऽपि वा ।
नियतं गोत्रमाश्रित्य बुद्धोऽहं बोधिमुत्तमां ॥ १०४ ॥
क्षेमोऽहं निर्जरं शान्तं अशोकं विमलं शिवम् ।
प्राप्तोऽहं निर्वृतिं शान्ति मुक्तोऽहं जन्मबन्धना ॥ १०५ ॥

अधुना प्रवर्तितश्चक्रः भूतकोटिसमाश्रितः ।
दर्शयामेष कल्पं वै मन्त्रवादं सविस्तरम् ॥ १०६ ॥
न वृथा कारयेज्जापी कर्मकल्प सविस्तरम् ।
यावन्ति लौकिका मन्त्राः कल्पाश्चैवमुदाहृताः ॥ १०७ ॥
पूज्या मान्याश्च सर्वे ते अवज्ञा तेषां तु वर्जिता ।
नावमन्ये ततो मन्त्री तेषां कल्पानि विस्तरम् ॥ १०८ ॥
निमित्तं ज्ञानयुक्तिं च ज्योतिषज्ञानरोदितम् ।
न वृथा कारयेदेतां मङ्गलार्थमुदाहृताः ॥ १०९ ॥
दृष्टधार्मिकमेवं तु सिद्धिद्रव्यादिमोषधम् ।
सामिषं लोभनं सिद्धिस्तस्मान्मङ्गलमुच्यते ॥ ११० ॥
प्रशस्ता जिनगाथाभिः स्वस्तिगाथाभिभूषितम् ।
प्रशस्तैर्दिवसैर्मुख्यैः सितपक्षे सुचिह्नितैः ॥ १११ ॥
शुक्लग्रहवरे युक्ते मन्त्रसाधनमारभेत् ।
एवमाद्याः शुभा युक्ता अशुभांश्चापि वर्जयेत् ॥ ११२ ॥
G 348 मयैव कथितं पूर्वं तस्माद् ग्राह्या तु जापिभिः ।
यावन्ति केचिल्लोकेऽस्मिं ज्योतिषज्ञानकौशलाः ॥ ११३ ॥
अन्ये वा तत्र कौशल्या नीतिहेतुसहेतुकाः ।
न्यायशास्त्रसुसंबद्धा सत्त्वानां हितकारया ॥ ११४ ॥
मयैव कथितं तत्सर्वं ग्राह्यते मन्त्रजापिभिः ।
सिद्धिहेतुरयं मार्गः दर्शितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ११५ ॥
सर्वं ह्यशेषसिद्धान्तं यथोक्तं मोक्षकारणम् ।
तेनैव कुर्यान्मन्त्राणां मार्गं सिद्धिकारणाः ॥ ११६ ॥
न वृथा कारयेज्जापी मन्त्रयुक्तिं ह्यशेषतः ।
सर्वे लौकिका मन्त्रा उत्तमाश्च प्रकीर्तिताः ॥ ११७ ॥
लोकोत्तरास्तथा दिव्या सर्वेष्वेव प्रयोजयेत् ।
न मिथ्यं कारये चित्तं न दूष्ये तत्र मनं कदा ॥ ११८ ॥
सर्वे पूज्यास्तु मन्त्रा वै समयज्ञप्रकीर्तिताः ।
शासनेऽस्मिं तथा शास्तुः बुद्धानां समताहिते ॥ ११९ ॥
निविष्टा जिनपुत्राणामाकृष्टाश्च प्रवेशिताः ।
मण्डले मुनिचन्द्राणां समयज्ञ इहोदिताः ॥ १२० ॥

अवन्ध्यास्ते सदा मन्त्रैरानीता त्रिशनाशया ।
न नमे परमन्त्राणां नापि सावज्ञमाचरेत् ।
अनार्या ये तु मन्त्रा वै अवन्ध्यास्ते परिकीर्तिता ॥ १२१ ॥
यावन्ति लौकिका मन्त्रा अधरा जापसंभवा ।
सक्लेशा दृष्टमार्गान्ता अवन्ध्यास्ते तु जापिभिः ॥ १२२ ॥
न वृथा कारये चित्तं कोपने रोषसंयुतम् ।
रोचनं न चैव भक्तिं न कुर्यात् कर्म वृथाफलम् ।
तदायत्तं हि चित्तस्य न दद्यात् सन्नतिं क्वचित् ॥ १२३ ॥
एकमन्त्रस्तु युक्तिस्थः जपं नित्यं समाहितः ।
लभते फलमशेषं तु यथोक्तं विधिना विधेः ॥ १२४ ॥
निश्चलं तु मनः कृत्वा एकमन्त्रं तु तं जपेत् । G 349
एकचित्तस्य सिध्यन्ते मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ॥ १२५ ॥
व्यस्तचित्तो हि मूढात्मा सिद्धिस्तस्य न दृश्यते ।
अशेषं फलनिष्पत्तिं प्राप्नुयाद् विपुलां गतिम् ॥ १२६ ॥
नित्यशुद्धं मनो यस्य स श्राद्धस्यैव शासने ।
रत्नत्रये च प्रसन्नस्य सिद्धिरिष्टा उदाहृता ॥ १२७ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात् एकत्रिंशतिमः कर्मक्रियाविधिनिमित्तज्ञाननिर्देशपटलविसरः परिसमाप्तः ॥

G 350

३४ मुद्राचोदनविधिमञ्जुश्रीपरिपृच्छानिर्देशः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि तं शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म--शृणु मञ्जुश्रीः त्वदीयमुद्रातन्त्रं सरहस्यं परमगुह्यतमं अप्रकाश्यमश्राद्धसत्त्वतथागतशासनेऽनभिप्रसन्नं असमयानुज्ञातत्रिरत्नवंशानुच्छेदनकरे अकल्याणमित्रपरिगृहीते पुण्यकामे दुष्टजनसंपर्कव्यतिमिश्रिते पापमित्रपरिगृहीते दूरीभूते बुद्धधर्माणां निष्कलीभूते कल्पेऽस्मिन्नाचार्यानुपदेशे अवभिषिक्त तव कुमार। परमगुह्यतमे मण्डले अदृष्टसमये तथागतकुले असमन्ते जने अप्रकाश्य सर्वभूतानां त्वन्मन्त्रानुवार्तिनां ॥

अश्राद्धो बुद्धधर्माणां दूरीभूतो हि बोधये ।
न तस्य दापयेन्मुद्रां तन्त्रं चैव न दर्शयेत् ॥ १ ॥
प्रमादान्मोहसंमूढः लोभाद्वा यदि दापयेत् ।
न सिध्यन्ते तन्त्रमन्त्रा वै विपरीतस्य जापिनः ॥ २ ॥
असांनिध्यं कल्पयेन्मुद्रां मन्त्राश्चैवमन्यथा ।
सिद्धिं न लभते क्षिप्रं शरीरेणापि हीयते ॥ ३ ॥
सौम्यानां श्राद्धचित्तानां समये तत्त्वदर्शिनाम् ।
तन्त्रमन्त्रप्रवृत्तानां मुद्रातन्त्रं प्रकाशयेत् ॥ ४ ॥
त्रिरत्नपूजका ये च प्रसन्ना जिनशासने ।
विधिप्रयोगदृष्टानां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥
बोधिचित्तविधिज्ञानां बोधिचित्तविभूषिताम् ।
नित्यं बोधिमार्गस्थां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥
तन्त्रमन्त्रप्रयुक्तानां समये दृष्टपरापराम् ।
महाबोधप्रतीच्छूनां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत् ॥ ७ ॥
प्रसन्नानां जिनपुत्रेषु तेषु श्रावक खड्गिणाम् ।
दृष्टधर्मफलं येषां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत् ॥ ८ ॥
G 351 अविकल्पितधर्माणां श्राद्धानां गतिमत्सराम् ।
शास्तुर्वचनयुक्तिज्ञां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत् ॥ ९ ॥
मुद्रामुद्रिता ह्येते प्रमाणस्था साष्टशतं तथा ।
न चातिरिक्ता न चोनाश्च साक्षाद् बुद्धैः प्रकाशिताः ॥ १० ॥
मञ्जुश्रियस्य कल्पे वै मन्त्राश्चैव तत्समा ।
साष्टं शतमित्युक्तं मन्त्राणां तत्समोदिताम् ।
मुद्राश्चैव शताष्टं तु कथिता मुनिवरैः पुरा ॥ ११ ॥

एतत्प्रमाणं तु कल्पस्य मुद्रामन्त्रसमुद्भवे ।
कोशं सर्वबुद्धानां मन्त्रकोशमुदाहृतम् ॥ १२ ॥
मुद्रा मन्त्रसमोपेताः संयुक्तः क्षिप्रकर्मिकः ।
न चक्रेण विना स्पन्दं युक्तिमुत्पद्यते रथे ॥ १३ ॥
तथैव सर्वमन्त्राणां मुद्रावर्जं न कर्मकृत् ।
मन्त्रा मुद्रसमोपेताः संयुक्ता क्षिप्रकार्मिका ॥ १४ ॥
सर्वमावर्तयं ह्येते त्रैलोक्यससुरासुरम् ।
किं पुनर्मानुषे लोके अन्यकर्मेषु संस्कृते ॥ १५ ॥
दृष्टधर्मफलो ह्येतां मुद्रामन्त्रेषु दृश्यते ।
संयुक्तः उभयतः शुद्धां विधियुक्तेन दर्शिता ॥ १६ ॥
आवर्तयन्ति भूतानां जिनाग्राणां तु ससूनुताम् ।
मन्त्रं मुद्रतपश्चैव त्रिधा कर्म करे स्थितम् ॥ १७ ॥
यथेष्टा संपदां कृत्स्नां प्राप्नुयाज्जपिनस्तथा ।
मन्त्राणां मुद्रिता मुद्रा मन्त्रैश्चापि सुमुद्रिता ॥ १८ ॥
न मन्त्रं मुद्रहीनं तु न मुद्रा मुद्रवर्जिता ।
मुद्रा मन्त्रसमोपेता संयुक्ता सर्वकर्मिका ॥ १९ ॥
अन्योन्यफला ह्येते अन्योन्यफलमुद्भवा ।
साधके युक्तिमायुञ्जे न सार्धं कर्म विद्यते ॥ २० ॥
सिध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै मुद्रायुक्तास्तु रूपिनाम् ।
विधिदृष्टः प्रयुक्तस्तु मन्त्रं + + समुद्रितम् ॥ २१ ॥
नासौ विद्यति तत् स्थानं यत्राकृष्टो न सिद्ध्यति । G 352
भवाग्र्या वीचिपर्यन्तं लोकधात्वगतिं तरम् ॥ २२ ॥
यत्राविष्टो न चाकृष्टः असाध्यो यो न विद्यते ।
नासौ संविद्यते कश्चित् सत्त्वो यो निवर्तितुम् ॥ २३ ॥
महर्द्धिका बोधिसत्त्वापि आकृष्यन्ते विधिवादिता ।
असमर्था बोधिसत्त्वापि दशभूमिसमाश्रिता ॥ २४ ॥
रक्षाविधानभेत्तुं वा कर्मसिद्धि निवारितुम् ।
अधृष्यः सर्वभूतानां मन्त्रमुद्रसमाश्रिताः ॥ २५ ॥
सर्वभूतानां यो हि मन्त्रे समाश्रिताः ।
मुद्रा प्रयोगयुक्ता वै एते रक्षासमुद्भवा ॥ २६ ॥
उद्भूतिः सर्वमन्त्राणां सर्वमन्त्रेषु दृश्यते ।
मन्त्रातः सर्वमुद्राणां अन्योन्यसमाश्रिताः ॥ २७ ॥

रूपजापविधिर्मार्गे होमकर्मे प्रयुज्यते ।
अतो जात तथा सिद्धिः मुद्रा मन्त्रेषु दृश्यते ॥ २८ ॥
जापिनो नित्यमुद्युक्त सदा तेषु प्रतिष्ठितः ।
सिध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै अवन्ध्यं मुनिनां वचः ॥ २९ ॥
वचनं सर्वबुद्धानां अन्यथाकारितं हितैः ।
× × × × × × × × मन्त्रतन्त्रेषु युक्तितः ॥ ३० ॥
कारितं यैर्विधिर्मुक्ता अशेषं मन्त्रमुद्रया ।
एतत् कुमार मञ्जुश्रीः कथयामि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
अशेषमन्त्रमुक्तिस्तु मुद्रा तत्र हितोदयम् ।
तां वन्दे कल्पराजेऽस्मिं नैस्तारिकं फलसंभवम् ॥ ३२ ॥
हितं गुह्यतमं लोके मुद्रातन्त्रं समुद्धृतम् ।
ततोऽसौ युक्तिमां श्रीमां सहिष्णुर्बालरूपिणः ॥ ३३ ॥
ईषस्मितमुखो भूत्वा कुमारो विश्वसंभवः ।
बोधिसत्त्वो महावीर्यः दशभूमिसमासतः ॥ ३४ ॥
G 353 प्रयच्छ मुनिनां श्रेष्ठं बुद्धमादित्यबान्धवम् ।
यदेतत्कथितं लोके भगवन्मन्त्रकारणम् ॥ ३५ ॥
पूर्वकैरपि संबुद्धैः कथितं तत्पुरा मम ।
अधुना शाक्यसिंहेन किमर्थं संप्रकाशितम् ॥ ३६ ॥
एतन्मे संशयो जातः आचक्ष्व मुनिसत्तम ।
कलविङ्करुतो धीमां ब्राह्मगर्जितसंभवः ॥ ३७ ॥
अब्रवीद् बोधिसत्त्वं तु दशभूमिप्रतिष्ठितम् ।
पुराहं बहुकल्पानि संसारे सरता मया ॥ ३८ ॥
लब्धोऽयं कल्पराजेन्द्रः मुनेः संकुसुमाह्वयात् ।
तत्र तत्र मया सत्त्वा उपकारकृतं बहु ॥ ३९ ॥
करुणावशमागत्य प्रणिधिं च कृतं तदा ।
यदाहं बुद्धमग्रो वै संभवामि युगाधमे ॥ ४० ॥
शासनार्थं करित्वा वै धर्मचक्रानुवर्तिते ।
अपश्चिमे च काले वै निर्वास्येऽहं यदा भुवि ।
एतत्तु कल्पराजेन्द्रं निर्दिशेऽहं तवान्तिके ॥ ४१ ॥
मयापि निर्वृते लोके शून्ये जम्बुसमाह्वये ।
दूरीभूते तथा शास्तुः धर्मकोशे कलौ युगे ।
नाशनार्थं तु सत्त्वानां करिष्यत्येष कल्पराट् ॥ ४२ ॥

तवैव संप्रदत्तोऽयं कल्पराजा सविस्तरः ।
सत्त्वानामर्थमुद्यक्तः तास्मिं काले भविष्यति ॥ ४३ ॥
अधर्मिष्ठास्तदा सत्त्वास्तास्मिं काले भयानके ।
अव्यवस्थस्थिता नित्यं राजानो दुष्टमानसाः ॥ ४४ ॥
मानुषामानुषाश्चापि सर्वे शासनविद्विषः ।
नाशयिष्यन्ति मे सर्वं धर्मकोशं मयोदितम् ॥ ४५ ॥
तेषां विनयार्थाय मन्त्रकोशमुदाहृतम् ।
तवैतत् कुमार प्रणिधानं पूर्वकल्पानचिन्तिताम् ॥ ४६ ॥
यावन्ति केचिद् बुद्धा वै निर्वृता लोकबान्धवा । G 354
तेषां शासनार्थाय करिष्यामि युगे युगे ॥ ४७ ॥
बालदारकरूपोऽहं विचरिष्यामि सर्वतः ।
मन्त्ररूपेण सत्त्वानां विनेष्यामि तदा तदा ॥ ४८ ॥
एतत् कुमार तुभ्यं वै प्रणिधानं पुरा कृतम् ।
तत्प्राप्तमधुना बाल निर्देक्ष्यामि तेन वै ॥ ४९ ॥
शून्ये बुद्धक्षेत्रे अशरण्ये तदा जने ।
मन्त्ररूपेण सत्त्वानां बालिशस्त्वं समादिशेद् ॥ ५० ॥
विनेष्यसि बहुं सत्त्वां सर्वसंपत्तिदायकः ।
वरदस्त्वं सर्वसत्त्वानां तस्मिं काले युगाधमे ॥ ५१ ॥
निर्वृते हि मया लोके शून्यीभूते महीतले ।
त्वयैव बालरूपेण बुद्धकृत्यं करिष्यसि ॥ ५२ ॥
महारण्ये तदा रम्ये हिमवत्कुक्षिसंभवे ।
नद्या हिरण्यवतीतीरे निर्वाणं मे भविष्यति ॥ ५३ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात्
द्वात्रिंशतिमः मुद्राचोदनविधिमञ्जुश्रीपरिपृच्छनिर्देशपरिवर्तः
पटलविसरः परिसमाप्तः ।

G 355 # ३५ मुद्राविधिपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य तथागतमहामुद्राकोशसंचोदनीं नाम समाधिं सभापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः शाक्यमुनेः ऊर्णाकोशान्महारश्मिर्निश्चचार । अनेकरश्मिकोटीनियुतशतसहस्रसंख्ययेपरिवारा सा रश्मिजाला अनेकां बुद्धक्षेत्रानवभासयित्वा सर्वबुद्धां संचोद्य पुनरपि भगवतः शाक्यमुनेः ऊर्णाकोशेऽन्तर्हिता । समनन्तरसंचोदिताश्च सर्वे वृद्धा भगवन्तः गगनस्वभावां समाधिं समापद्य शुद्धावासोपरि गगनतले प्रत्यष्ठात् । अथ भगवां शाक्यमुनिः सर्वबुद्धानभ्यर्च्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–शृणु मञ्जुश्री मुद्राकोशपटलविधानं भविष्यसर्वबुद्धैरधिष्ठितम् ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवतश्चरणयोर्निपत्य सर्वबुद्धां प्रणम्य भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमेतदवोचत्–तत्साधु भगवां निर्दिशतु सर्वतथागतमुद्राकोशपटलं परमगुह्यतमं यस्येदानीं कालं मन्यसे । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च । सर्वसत्त्वानां सुखोदयं भविष्यति सुखविपाकम् ॥

अथ भगवां शाक्यमुनिः अध्येषितो भगवता मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन सर्वबुद्धानवलोक्य सर्वसत्त्वां समन्वाहृत्य सर्वबोधिसत्त्वां संप्रहृष्य सर्वप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकां संप्रसाद्य सर्वमन्त्रमन्त्रार्थोद्युक्तमानसां समुद्युज्य सर्वदुष्टां निवार्य सर्वभीतां समाश्वास्य सर्वव्यसनस्थां क्षेमे शिवे निर्वाणे प्रतिष्ठाप्य सर्वदुःखितानां सुखार्थाय मुद्रापटलविधानं भाषते स्म–

शृणु कुमार मञ्जुश्री वक्ष्येऽहं पटलमुद्रिताम् ।
आदौ पञ्चशिखा भवति महामुद्रा तु सा मता ॥ १ ॥
त्रिशिखं द्वितीयं विन्द्या तृतीयं एकचीरकम् ।
G 356 चतुर्थं उत्पलमित्याहुः संबुद्धाः द्विपदोत्तमाः ॥ २ ॥
पञ्चमः स्वस्तिको दृष्टः षष्ठो ध्वज उच्यते ।
सप्तमं पूर्णमित्याहुः मन्त्रज्ञानसुशोभनाः ॥ ३ ॥
अष्टमं यष्टि निर्दिष्टा लोकनाथैर्जितारिभिः ।
नवमं छत्रनिर्दिष्टं दशमं शक्तिरुच्यते ॥ ४ ॥
एकादशं तु संबुद्धा संपुटं तु समादिशेत् ।
द्वादशं फरमित्युक्तो त्रयोदशं तु गदस्तथा ॥ ५ ॥
चतुर्दशं खड्गनिर्दिष्टा घटा पञ्चादशस्तथा ।
षोडशः पाशमित्युक्तः अङ्कुशः सप्तदशः स्मृतः ॥ ६ ॥
अष्टादशं भद्रपीठं तु ऊनविंशतिपीठकम् ।
विंशन्मयूरासनः प्रोक्तो एकविंशस्तु पट्टिशम् ॥ ७ ॥

एकलिङ्ग द्विविंशं तु द्विलिङ्गो विंशसत्रिकम् ।
चतुर्विंशस्तथा माला पञ्चविंश धनुस्तथा ॥ ८ ॥
विंशत्षष्ठाधिकं प्रोक्तं नाराचे तु प्रकल्पिता ।
सप्ताविंशतिमित्याहुः समलिङ्गे प्रवर्त्तिता ॥ ९ ॥
अष्टाविंशस्तथा शूलः ऊनत्रिंशश्च मुद्गरः ।
तोमरं त्रिंशमित्याहुः एकत्रिंशं तु दक्षिणम् ॥ १० ॥
द्वात्रिंशत् तथा वज्रः त्रयस्त्रिंशत् पटमुच्यते ।
चतुस्त्रिंशत्तथा कुम्भः पञ्चत्रिंशे तु खक्खरम् ॥ ११ ॥
कलशं षट्त्रिंशतिः प्रोक्तो सप्तत्रिंशे तु मौसलम् ।
अष्टत्रिंशे तु पर्यङ्कः ऊनचत्वारिंशत् पटहम् ॥ १२ ॥
चत्वारिंशतिमित्याहुः धर्मशङ्खमुदाहृतम् ।
चत्वारिंशं सएकं च सङ्कला परिकीर्तिता ॥ १३ ॥
द्वितीया बहुमता प्रोक्ता तृतीया समनोरथा ।
चतुर्थी जननी दृष्टा प्रज्ञापारमितामिता ॥ १४ ॥
पञ्चमं पात्रमित्याहुः संबुद्धा द्विपदोत्तमाः ।
तोरणं षष्ठमित्युक्तः सप्तमं तु सुतोरणम् ॥ १५ ॥
अष्टमं घोषनिर्दिष्टः जपशब्दो नवमः पुनः । G 357
पञ्चाशद् भेरिमित्युक्ता धर्मभेरिं तु साधिका ॥ १६ ॥
द्विपञ्चाशद् गजमित्याहुः वरहस्तत्रिकस्तथा ।
चतुःपञ्चाशमिति ज्ञेयं मुद्रा तद्गतचारिणी ॥ १७ ॥
पञ्चमं केतुमित्याहुः षष्ठं चापशरस्तथा ।
सप्तमं परशुनिर्दिष्टं अष्टमं लोकपूजिता ॥ १८ ॥
ऊनषष्टिस्तथा ज्ञेया भिण्डिपालं समासतः ।
षष्टिश्चैव भवेद्युक्ता लाङ्गलं तु समासतः ॥ १९ ॥
एकषष्टिस्ततः पद्मः द्विषष्टिर्वज्रमुच्यते ।
त्रिषष्टिः कथितं लोके धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ॥ २० ॥
चतुःषष्टिस्तथा ज्ञेयः पुण्डरीकं समासतः ।
पञ्चषष्टिस्तथा विन्द्याद् वरदं मुद्रमुत्तमम् ॥ २१ ॥
षट्षष्टि तथा वध्वा वज्रमुद्रा तु कीर्तिता ।
सप्तषष्टिस्तथा लोके कुन्तमाहुर्मनीषिणः ॥ २२ ॥
अष्टषष्टिस्तथा कुर्याद् वज्रमण्डलमुदाहृतम् ।
ऊनसप्ततिमेयं स्यात् शतघ्नेति प्रकीर्तिता ॥ २३ ॥

ततः सप्ततिकं विन्द्यान्नादामुद्रं समासतः ।
एकसप्ततिमित्याहुर्विमानं मुद्रवरं शुभम् ॥ २४ ॥
द्विसप्तत्या समासेन स्यन्दनं स इहोच्यते ।
शयनं लोकनाथानां त्रिसप्तान्या समासतः ॥ २५ ॥
पञ्चसप्ततिराख्यातश्चतुःसप्ततिकस्तथा ।
अर्धचन्द्रं च वीणा च उभौ मुद्रावुदाहृतौ ॥ २६ ॥
षट्सप्ततिमं लोके मुद्रा पद्मालया भवेत् ।
सप्तसप्ततिमः श्रेष्ठः मुद्रा कुवलयोद्भवा ॥ २७ ॥
अष्टसप्ततिमं मुद्रा नमस्कारेति उदाहृता ।
नवमं नवतिसंख्या तु उभौ मुद्रौ शुभोत्तमौ ॥ २८ ॥
G 358 संपुटं यमलमुद्रा च संख्या नवतिमं भवेत् ।
एकनवतिमित्याहुः पुष्पमुद्रा उदाहृता ॥ २९ ॥
द्वितीया वलयमुद्रा तु तृतीया धूपयेत् सदा ।
चतुर्थी गन्धमुद्रा तु पञ्चमी दीपना स्मृता ॥ ३० ॥
षष्ठ्या साधनं विन्द्यात् सप्तम्या आसने स्मृता ।
अष्टममाह्वाननं प्रोक्तं नवमं तु विसर्जनम् ॥ ३१ ॥
शतपूर्णस्तथा विन्द्यात् मुद्रां सर्वकर्मिकाम् ।
साधिकं शतमित्याहुर्महामुद्रा इति स्मृताः ॥ ३२ ॥
उष्णीषं लोकनाथानां चक्रवर्ति सदा गुरोः ।
तं मुद्रं प्रथमतः प्रोक्ता द्वितीया क्षितमुद्भवा ॥ ३३ ॥
तृतीया मूलमुद्रा तु मञ्जुघोषस्य दृश्यते ।
चतुर्थी धर्मकोशस्था धर्ममुद्रेति लक्ष्यते ॥ ३४ ॥
पञ्चमी संघमित्याहुर्महामुद्रापि सा भवेत् ।
षष्ठी तु भूतशमनी प्रत्येकार्हसमुद्भवा ॥ ३५ ॥
सप्तमी बोधिसत्त्वानां दशमी तु प्रवेशिनाम् ।
मुद्रा पद्ममालेति महामुद्रां तु तां विदुः ॥ ३६ ॥
वरदा सर्वमुद्राणां मन्त्राणां च स लौकिकाम् ।
महाप्रभावां महाश्रेष्ठां ज्येष्ठां त्रैलोक्यपूजिताम् ॥ ३७ ॥
अष्टमीं संप्रयुञ्जीत मुद्रां त्रिभुवनालयाम् ।
मुद्राणां कथिता संख्या अस्मिं तन्त्रे महोद्भवा ॥ ३८ ॥
शतमेक तथा चाष्टं संख्या मुद्रेषु कल्पिता ।
एतत्प्रमाणं तु संबुद्धैः पुरा गीतं महीतले ।
निर्नष्टे शासने शास्तुः प्रचरिष्यति देहिनाम् ॥ ३९ ॥

आदौ तावत् करे न्यस्तमुभयाग्रां करे स्थितौ ।
अन्योन्याङ्गुलिमावेष्ट्य सन्मिश्रां च पुनस्ततः ।
उभौ करौ समायुक्तौ पञ्चचूलासुचिह्नितौ ॥ ४० ॥
विपर्यस्तस्ततस्तेषामङ्गुलीनां तु अग्रतः । G 359
मुद्रा पञ्चशिखा ज्ञेया पञ्चचीरकमेव तु ॥ ४१ ॥
महामुद्रेति विख्याता बोधिसत्त्वशिरस्तथा ।
महाप्रभावो मुद्रोऽयं प्रयुक्तः सर्वकर्मिकः ॥ ४२ ॥
मञ्जुश्रियस्य मन्त्रेण हृदयैर्वापि योजयेत् ।
केशिन्या चैव मन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा सदा ॥ ४३ ॥
योजयेद् विधिदृष्टेन सर्वमन्त्रेषु वा पुनः ।
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि अवन्ध्येदं वचनं मुनेः ॥ ४४ ॥
तथैव हस्तौ विन्यस्तौ कुर्यात् तत्करसंपुटम् ।
तत्रैव त्रिशिखं कुर्यादङ्गुलीभिर्विमिश्रितैः ॥ ४५ ॥
उभौ हस्तौ तु यदाङ्गुष्ठौ शून्याकारौ तु निश्रितौ ।
मध्यमानामिकं चैव विपरीताकारवेणिकौ ॥ ४६ ॥
एतत् तत् त्रिशिखं ज्ञेयं त्रिचीराकार इति पुनः ।
एषा मुद्रा महामुद्रा मञ्जुघोषस्य धीमतः ॥ ४७ ॥
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि विधिदृष्टानि यानि वै ।
मञ्जुश्रियस्य ये मन्त्रास्तेषु सर्वेषु योजयेत् ।
क्षिप्रं साधयते ह्यर्थां जापिभिर्यन्मनीषितम् ॥ ४८ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ कुर्यादेकशिखं तथा ।
मध्यमाङ्गुलिसंश्लिष्टौ भवेदेकशिखा ध्रुवम् ।
एषा मुद्रा महामुद्रा संबुद्धैस्तु प्रकाशिता ॥ ४९ ॥
मन्त्रा कुमारसन्यस्ता ये चान्येऽपि सलौकिका ।
सिद्ध्यन्तेऽनेन युक्तास्तु क्षिप्रकर्मप्रसाधिका ॥ ५० ॥
अनेन साध्यास्तथा मन्त्रा उत्तमा जिनभाषिता ।
क्षिप्रं साधयते ह्यर्थां विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५१ ॥
तदेव करसंयुक्तौ विन्यस्तं अङ्गुलीचितम् ।
उभौ तर्जन्य संकोच्य सूच्यादञ्जलिसादृशम् ॥ ५२ ॥ G 360
विन्यस्ताङ्गुष्ठयुगले मध्याङ्गुल्यौ प्रसारितौ ।
अनामिकां वेष्टयित्वा तु उत्पलेति उदाहृतम् ॥ ५३ ॥

एषा बोधिसत्त्वस्य मूलमन्त्रेति लक्ष्यते ।
तदेव सर्वं यत्कर्म निर्दिष्टं पञ्चचीरके ॥ ५४ ॥
सर्वं तत्कुर्यात् क्षिप्रं उत्पलेन तु साधयेत् ।
एषा वरदा मुद्रा क्षिप्रभोगप्रसाधिका ।
संयुक्ता मूलमन्त्रेण क्षिप्रमर्थकरो भवेत् ॥ ५५ ॥
उभौ करौ तथा युक्तौ कुर्यादुत्तानकौ सदा ।
तदेव संपुटं कृत्वा अङ्गुलिभिः समन्ततः ।
विन्यस्तं शोभनाकारं स्वस्तिकाकारसंभवम् ॥ ५६ ॥
मध्यमाङ्गुलिमध्ये तु कन्यसी तु समा भवेत् ।
अङ्गुष्ठयुगलविन्यस्तं मुद्रा स्वस्तिकमुच्यते ॥ ५७ ॥
एषा सर्वार्थकरी मुद्रा शान्तिकर्मे प्रयुज्यते ।
हृदयैः षडक्षरैर्युक्ता सर्वकर्मां करोति वै ॥ ५८ ॥
तदेव हस्तौ संमिश्र अन्योन्याङ्गुलिभिश्रितम् ।
पूर्णमुद्रेति मित्याहुर्गतिज्ञानविशेषगाः ॥ ५९ ॥
आ कोशादञ्जलिं कृत्वा विरलं च समन्ततः ।
पूर्णमुद्रेति संबुद्धाः कथयामास जापिनाम् ॥ ६० ॥
एषा सर्वशमनी दुःखदारिद्रदुःखिताम् ।
धनाढ्यं कुरुते क्षिप्रं मूलमन्त्रसचोदिता ॥ ६१ ॥
अपरं मुद्रमित्याहुः लोकज्ञानसुचेष्टिताः ।
उभौ हस्तौ तथा कृत्वा वामतर्जनिमाश्रितम् ॥ ६२ ॥
दक्षिणं तु करं कृत्वा तस्य मङ्गुलितस्थितम् ।
तर्जन्या मध्यमा चैव विसृते ध्वजमुच्यते ।
ध्वजमुद्रा इति ख्याता उच्छ्रिता शक्रधारणी ॥ ६३ ॥
अनया मुद्रया कुर्याद् बलिहोमादिकं क्रमम् ।
G 361 सर्वकर्मकरा ह्येषा मूलमन्त्रप्रचोदिता ॥ ६४ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अङ्गुलीकारसंपुटौ ।
संपुटा सा भवेन्मुद्रा सर्वविघ्नप्रणाशनी ।
क्रमेण कुरुते कर्म मन्त्रज्ञानसमोदिता ॥ ६५ ॥
विधिदृष्टेन मन्त्रा वै क्षिप्रमर्थप्रसाधिका ।
मन्त्रैर्मञ्जुघोषस्य हृदयस्थानसमुद्भवैः ॥ ६६ ॥
संयुक्ता कुरुते कर्मां अशेषां लोकचिह्निताम् ।
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ वामहस्तोपरिस्थितम् ॥ ६७ ॥

दक्षिणं तर्जनीं गृह्य वामं तर्जनिमुच्छ्रिता ।
एषा यष्टिरिति ख्याता मुद्रा शक्रनिवारणी ॥ ६८ ॥
सर्वां शमयते विघ्नां दारुणानतिभैरवाम् ।
सर्वदुष्टवधार्थाय निर्दिष्टा मन्त्रजापिनाम् ।
मूलमन्त्रसमोपेता क्षिप्रमर्थकरा भवेत् ॥ ६९ ॥
तदेव हस्तं विन्यस्तं यष्ट्याकारसमुच्छ्रितम् ।
दक्षिणं तु करं कृत्वा विसृतं छत्रमुच्यते ।
अनेन मुद्रया कुर्यादात्मरक्षं तु मूर्धितः ॥ ७० ॥
सर्वमन्त्रैस्तु कुर्वीत कर्म रक्षाभिधायकम् ।
शत्रूणां छादयेद् वक्त्रं स्तम्भयेद्वा मनीषितम् ॥ ७१ ॥
यथाभिरुचितां दुष्टां कारयेद्वा समानुषाम् ।
नश्यन्ते सर्वविघ्ना वै दृष्ट्वा मुद्रां सच्छत्रकाम् ॥ ७२ ॥
तदेव हस्तौ कुर्वीत विन्यस्ताकारशोभनम् ।
अङ्गुष्ठाग्रयुक्तं तु मध्यमाङ्गुलिसारितम् ॥ ७३ ॥
अनामिकाकुञ्चिताग्रं तु मध्यपर्वे तु मध्यमम् ।
तदेव शक्ति निर्दिष्टा सर्वदुष्टनिवारणी ॥ ७४ ॥
कथिता लोकनाथैस्तु रक्षा सग्रहनाशनी ।
विन्यस्ता क्रोधराजेन यमान्तेन तु रोषिणा ॥ ७५ ॥
कुर्यात् क्षिप्रतरं लोके दारुणं पापमुद्भवम् । G 362
प्राणोपरोधिनं कर्म सर्वबुद्धैस्तु वर्जितम् ॥ ७६ ॥
न कुर्यात् कर्ममेवं तु निषिद्धं लोकमुत्तमैः ।
अतः सर्वगतैर्मन्त्रैः योजयेच्छक्तिमुत्तमम् ॥ ७७ ॥
लौकिका ये च मन्त्रा वै तथैव जिनभाषिता ।
तां प्रयुञ्जीत मुद्रेऽस्मिं शक्तिना सुसमाहितः ॥ ७८ ॥
दृष्ट्वा मुद्रवरं घोरं नश्यन्ते सर्वनैर्ऋता ।
पिशाचास्तारकप्रेता पूतना सह मातरा ॥ ७९ ॥
बालग्रहविरूपाश्च बालकानां प्रपीडना ।
नश्यन्ते सर्वदुष्टा वै ये केचित् क्रूरकर्मिणः ॥ ८० ॥
तदेव हस्तं विन्यस्तं शक्तिकाकारसंभवम् ।
विपरीतसंपुटाकारं अन्योन्याङ्गुलिमिश्रितम् ।
तदेव संपुटमित्याहुः संबुद्धा विगतद्विषः ॥ ८१ ॥

अनेन कारयेत् कर्म मन्त्रेणैकाक्षरेण तु ।
पिथयेत् सर्वविदिशां कृत्स्नां दिशाबन्धं तदुच्यते ॥ ८२ ॥
एष मुद्रा महारक्षा संपुटीकृत्य तिष्ठति ।
नश्यन्ते सर्वदुष्टा वै ये चान्ये अहितानि वै ॥ ८३ ॥
देहं रक्षयते सर्वं परिवारं चापि गोचरे ।
अशेषं रक्षते चक्रं यत्र जापी वसेत् सदा ॥ ८४ ॥
न तस्य पातकं किंचित् अहितं चापि संभवेत् ।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं परचक्रभयं कुतः ॥ ८५ ॥
उभौ करौ समाश्लिष्य विपरीतं तु कारयेत् ।
दक्षिणं तु अधः कृत्वा वाममुत्तानकः सदा ।
अन्योन्यमिश्रितौ ह्येतौ करमित्याहुर्जिनोत्तमाः ॥ ८६ ॥
निवारयति दुष्टानामरीणां पापसंभवम् ।
उपहृत्याक्षरैर्युक्ता रिद्धि * * * * ॥ ८७ ॥
G 363 एकवर्णकैः स मन्त्रैर्युक्तः क्षिप्रमर्थकरो ह्ययम् ।
विचित्रार्थां कुरुते कर्मां अरिसंभवपापकाम् ॥ ८८ ॥
भोगिनां विषनाशं च मूलमन्त्रप्रयुक्तिका ।
अन्यां वा युक्तिकृतां दोषां निर्नाशयति देहिनाम् ॥ ८९ ॥
एष मुद्रवरः प्रोक्तः संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः ।
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ संश्लिष्टावङ्गुलीभि तत् ॥ ९० ॥
गदाकारं तदा कुर्यान्मूलेनापि वेष्टितम् ।
उभयोरङ्गुष्ठयोर्मध्ये कन्यसीभि सुवेष्टितम् ॥ ९१ ॥
षड्भिरङ्गुलिभिः कुर्यात् शून्याकारं सुशोभनम् ।
एतन्मुद्रा गदा प्रोक्ता सर्वदानवनाशनी ॥ ९२ ॥
दैत्या च दुष्टचित्ताश्च सौम्यचित्ता तु दर्शने ।
नश्यन्ते उद्यते मुद्रे गदे वापि सुपूजिते ॥ ९३ ॥
मूलमन्त्रप्रयुक्तास्तु क्षिप्रमर्थकरी शिवा ।
तथैव खड्गनिर्दिष्टा अनामिकाग्रैः सुकोचितैः ॥ ९४ ॥
तथैव हस्तौ कुर्वीत प्रसारिताग्रं तु कुञ्चितम् ।
शरावाकारसमौ कृत्वा अङ्गुलिभिः समन्ततः ।
घण्टां तां विदुर्बुद्धाः प्रकाशयामास देहिनाम् ॥ ९५ ॥
तदेव हस्तौ संमिश्रा उभौ बध्वा तु संपुटम् ।
अन्योन्यं मिश्रयित्वा वै मध्यमाङ्गुलिभिस्तथा ।
कुर्यात्तन्मण्डलाकारं पाशाकारं तु तं भवेत् ॥ ९६ ॥

तर्जनीनि ततोन्यस्तं मध्यपर्वा सुमिश्रितैः ।
एष पाशमिति ख्यातः मुद्रोऽयं बुद्धनिर्मितः ॥ ९७ ॥
विनेयार्थं तु सत्त्वानां बन्धमुक्तोऽतिदारुणम् ।
ये च दुष्टा ग्रहाः क्रूरा ये वै सर्वराक्षसाः ॥ ९८ ॥
ईषित् प्रचोदिता ह्येषा बध्नातीह समातराम् ।
बन्ध बन्धेत्यदा ह्युक्ता बध्नातीह सशक्रताम् ।
किं पुनर्मानुषे लोके क्रव्यादां पिशिताशिनाम् ॥ ९९ ॥ G 364
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ उभौ कृत्वा तु तत्समौ ।
वामपाणोपरि न्यस्तौ न्यस्तं दक्षिणं तु करं तथा ॥ १०० ॥
तदेव अङ्कुशाकारं मध्यमाङ्गुलितर्जनी ।
मध्यमं पर्वमाश्लिष्य तर्जनी कारयेदङ्कुशम् ॥ १०१ ॥
मूलमन्त्रप्रयुक्तोऽयमङ्कुशोऽयं प्रचोदितः ।
क्षिप्रं कारयते कर्मां जापिभिर्यन्मनीषितम् ।
आनयेत् क्षिप्र देवेन्द्रां ब्रह्माद्यां सशक्रकाम् ॥ १०२ ॥
प्रयुक्तो मुद्रवरः श्रेष्ठः अङ्कुशाकर्षणं शुभः ।
तदेव हस्तौ संमिश्रविपरीताकारपिण्डिकाम् ॥ १०३ ॥
मध्यमानामिकौ नाम्य अङ्गुल्यौ वामकरासृतौ ।
तर्जनी कन्यसां चापि उभौ तर्जन्यदक्षिणा ॥ १०४ ॥
दक्षिणा हस्तनिर्दिष्टा मध्यमानामिकनामितौ ।
विपर्यस्तं ततो न्यस्तं श्लिष्टौ अङ्गुष्ठकारितौ ॥ १०५ ॥
तदेव भद्रपीठं तु कथिता मुद्रवरा शुभा ।
आसनं सर्वबुद्धानां क्रुद्धशक्रनिवारणम् ॥ १०६ ॥
योजिता सर्वमन्त्रैस्तु जिनाग्राणां कुलसंभवैः ।
स्थापिता सर्वबुद्धानां बोधिसत्त्वां महर्द्धिकाम् ।
सदेवकं च लोकं वै सर्वा निश्चलकारिका ॥ १०७ ॥
तदेव भद्रपीठं तु मध्यमाङ्गुलिमाश्रिताम् ।
उपरिस्थानविन्यस्तौ मध्यानामिति शारितौ ।
तदेव पीठनिर्दिष्टा मुनिसिंहैर्जितारिभिः ॥ १०८ ॥
उभौ हस्तौ तथोन्मिश्र अङ्गुलीभिर्विचेष्टयेत् ।
ततो वेणिसमाधश्च कन्यसाङ्गुलिसूचिकाम् ॥ १०९ ॥
संकोच्य मध्यमतः क्षिप्रं पद्मपत्रायतोद्भवाम् ।
उभयोरङ्गुष्ठयोन्मिश्रः स्थापयेत् स्थितकं सदा ॥ ११० ॥

G 365 एतन्मयूरासनं प्रोक्तं संबुद्धैर्विगतद्विषैः।
एतद् बोधिसत्त्वस्य मञ्जुघोषस्य धीमतः॥ १११॥
आसनं मुनिवरैर्ह्युक्तो बालक्रीडनकं सदा।
महाप्रभावा इयं मुद्रा पुरा ह्युक्ता स्वयंभुभिः॥ ११२॥
करोति कर्मवैचित्र्यं मञ्जुमन्त्रप्रचोदिता।
विनाशयति दुष्टानां क्रव्यादां पिशिताशिनां॥ ११३॥
परिपूर्णं तथा विंशन्मुद्राणां तु मतः परम्।
कथिता लोकमुख्यैस्तु संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः॥ ११४॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि मुद्राणां विधिसंभवम्।
करैः शुभैस्तथा शुद्धैः निर्मलैर्जलशोचितैः॥ ११५॥
श्वेतचन्दनकर्पूरैः कुङ्कुमैर्जलमिश्रितैः।
बहुभिर्गन्धविशेषैस्तु उपस्पृश्यानिलशोषितैः॥ ११६॥
शुचिभिः करैरभ्यङ्गैरङ्कुशैश्चापि अदद्रुलैः।
तदेव मुद्रां बध्नीयाद् वन्द्याद्यां द्विपदोत्तमाम्॥ ११७॥
शालं संकुसुमं चैव अमिताभं रत्नकेतुनम्।
अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयेन्द्रं लोकनाथं दिवंकरम्॥ ११८॥
क्षेमं लोकनाथं च सुनेत्रं धर्मकेतुनम्।
प्रभामालीति विख्यातं ज्येष्ठं श्रेष्ठमितोत्तमम्॥ ११९॥
एतेषामन्यतरं बुद्धं वन्दित्वा द्विपदोत्तमम्।
शुचिर्भूत्वा शुचिस्थाने बन्धेन्मुद्रां जपान्तिके॥ १२०॥
आचार्यां तु यं दृष्ट्वा संदेहार्थं विमुच्यते।
तं तथाचारसंपन्नो बन्धेन्मुद्रां यथासुखम्॥ १२१॥
संशोध्य च विविक्तं वै कृत्वा स्थानाभिमन्त्रितम्।
न क्रुद्धो न चोच्छिष्टो न चाक्रुष्टो परेण तु॥ १२२॥
नाङ्गारे न भस्मनिर्मध्ये बन्धेन्मुद्रां कदाचन।
न सक्तः परदारेषु परद्रव्येषु वै तदा॥ १२३॥
G 366 न स्थितो न निपन्नश्च बन्धेन्मुद्रां सुखोदयाम्।
न दक्षिणामुखमास्थाय नापि पश्चान्मुखोत्थितः॥ १२४॥
न चोर्ध्वे नाप्यधश्चैव मुद्राबन्धं तु कारयेत्।
उदङ्मुखः पूर्वतश्चापि विदिशेष्वेतेषु तेषु वै॥ १२५॥
बन्धयेन्मुद्रमन्त्रज्ञः मन्त्रं स्मृत्वा तु चक्रिणम्।
एषा विधिमतः श्रेष्ठा सर्वमुद्रेषु बन्धने॥ १२६॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मुद्रा साधिकविंशमम् ।
उभौ करौ समायुक्तौ कुर्यादङ्गुलिमिश्रितौ ॥ १२७ ॥
मध्यमं तु ततः शून्यं अङ्गुलिभिः समादिशेत् ।
मध्यपर्वविधिन्यस्तं शून्याग्रं कन्यसीमितम् ॥ १२८ ॥
कारयेन्नित्यमन्त्रज्ञो अङ्गुष्ठौ कुञ्चिताश्रितौ ।
त्रिसूच्याकारसंयुक्तौ पट्टिशं विदुर्बुधाः ॥ १२९ ॥
एष मुद्रवरः क्षिप्रं परमन्त्रांसि च्छिन्दिरे ।
परमुद्रां तथा भिन्द्यात् दुष्टसत्त्वनियोजिता ॥ १३० ॥
त्रासयेत् सर्वभूतानां ग्रहमातरपूतनाम् ।
करोति कर्म वैचित्र्यं क्षिप्रमानयते शिवम् ॥ १३१ ॥
रुद्रेण भाषिता ये मन्त्रा विष्णुना ब्रह्मणा स्वयम् ।
तां विच्छेद मन्त्रज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १३२ ॥
मुद्रेणानेनैव युक्तेन पट्टिशेन महात्मना ।
मन्त्रेण चैव युक्तस्थो जिनवक्त्रसमुद्भवैः ॥ १३३ ॥
करोति कर्मवैचित्र्यं छेदभेदक्रियां तथा ।
परसत्त्वकृतां दुष्टां नाशयेत् तामशेषतः ॥ १३४ ॥
तदेव हस्तौ संवेष्टय मध्यानामिकमुच्छ्रितौ ।
उभौ करौ समायुक्तौ लिङ्गाकारसमुद्भवौ ।
चतुरङ्गुलसंयुक्तं लिङ्गमुद्रमिति मतम् ॥ १३५ ॥
महेश्वरो देवपुत्रो वै आत्ममन्त्रं च मुद्रिणम् ।
कथयामास तन्त्रे वै आकृष्टौ मुनिना पुरा ॥ १३६ ॥ G 367
अन्येषां चात्मनो मन्त्रां मुद्रां चैव सविस्तराम् ।
प्रकाशयामास आकृष्टः समयेऽस्मिं कल्पमुत्तमे ।
एतन्मुद्रवरं ह्यग्रं लौकिकेषु प्रकथ्यते ॥ १३७ ॥
यावन्ति केचिन्मन्त्रा वै रुद्रप्रोक्ता महीतले ।
तेषामधिपतिर्ह्यग्रो मुद्रोऽयमेकलिङ्गितः ॥ १३८ ॥
बोधिसत्त्वप्रभावेन मञ्जुघोषस्य धीमतः ।
आनीतो मण्डले * * नौम कर्मप्रसाधकः ॥ १३९ ॥
यावन्ति केचिद् दुष्टा वै पर्यटन्ते महीतले ।
ग्रहाः क्रव्यादपिशिताश्च मातराः कटपूतना ॥ १४० ॥
तेषां निवारणार्थाय रुद्रविघ्नकृतेषु वै ।
पुनरेतन्मुद्रवरं ह्युक्तं बलिकर्मेषु वै निशा ॥ १४१ ॥

करोति सर्वकर्मां वा बुद्धाधिष्ठानऋध्यया ।
तथैव तद्विधं कृत्वा द्विलिङ्ग समुदाहृतः ।
तथैव मालमङ्गुल्यै स माला परिकीर्तिता ॥ १४२ ॥
तदेव मालां संकोच्य संपुटाकारसंभवम् ।
तर्जन्यावुभौ श्लिष्य कुर्याद्धनु संनिभम् ।
अङ्गुष्ठौ पीडयेन्मुष्टौ धनुर्मुद्रा स लक्ष्यते ॥ १४३ ॥
तदेवमङ्गुलिं कुर्याद् दक्षिणाकरनिसृता ।
वामं तर्जनीं मुष्टौ निष्पीड्यन्ते तु पर्वणि ॥ १४४ ॥
नाराचं मुद्रमित्युक्तः समलिङ्गं पुनर्वदे ।
उभौ हस्तौ ततः कृत्वा अन्योन्याश्रितपिण्डितौ ॥ १४५ ॥
दक्षिणाकरमङ्गुष्ठं उच्छ्रितां लिङ्गसंभवम् ।
समलिङ्गं तं विदुः कल्पे शासनेऽस्मिं विशारदाः ॥ १४६ ॥
तदेव हस्तौ उभौ कृत्वा अन्योन्याश्रितमङ्गुलम् ।
उभौ तर्जन्य संयोज्य शूलाकारं तु कारयेत् ।
G 368 एतच्छूलमिति प्रोक्तं सत्त्वदुष्टानुशासनम् ॥ १४७ ॥
तदेव हस्तौ निसृत्य मुष्टिं बध्वा उभौ पुनः ।
अङ्गुष्ठौ स्थितकां कृत्वा मुद्गरं समुदाहृतम् ॥ १४८ ॥
तदेव मुद्गरमीपचालयेत् करसंपुटे ।
तोमरं कथितं ह्यग्रं मुद्रं शत्रुनाशनम् ॥ १४९ ॥
उत्पलं तु ततो बध्वा अनामिकाङ्गुलिभिस्तदा ।
अधस्तादङ्गुष्ठयोर्मध्ये विन्यस्तं चाप्रदर्शितम् ।
एतदंष्ट्रमिति प्रोक्तं विवृते वक्रमुच्यते ॥ १५० ॥
समौ कृत्वा ततस्तेषामङ्गुलीनां समन्ततः ।
उरे दत्वापसव्यं वै क्षिपेत् त्वा पटमुच्यते ॥ १५१ ॥
उभौ संपुटौ कृत्वा हस्तौ विन्यस्तशोभनौ ।
अङ्गुलिमङ्गुलिभिश्च अन्योन्याप्रश्लेषितौ ॥ १५२ ॥
उत्थितां नाभिसंकोच्य कुम्भमुद्रमुदाहृतम् ।
तदेव मुष्टिं संयोज्य तर्जन्यौ पुनरुच्छ्रितौ ॥ १५३ ॥
कुर्यात् खखराकारं वेणिकाकारमुद्भवम् ।
एतन्मुद्रं समाख्यातं खखरेल्लरिसूदना ॥ १५४ ॥
तदेव खखरईषदवनाम्यं तु शोभनम् ।
कुर्यादङ्गुष्ठविन्यस्तं कलशं तदिहोच्यते ॥ १५५ ॥

उच्छ्रितं तु पुनः कृत्वा तर्जन्या नाभिसंभवम् ।
चतुर्भिरङ्गुलिभिः कुर्यान्मुसलाकारसंभवम् ॥ १५६ ॥
मुद्रं मुसलमित्याहुः मन्त्रज्ञानसमन्विता ।
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ मध्यमानामिकौ अधः ॥ १५७ ॥
उपरिष्ठात् तेषु वै नित्यं न्यस्तं दक्षिणावायवेष्टितम् ।
संवेष्ट्य अङ्गुष्ठयोर्न्यस्तौ कन्यसा तर्जनी तु ताम् ॥ १५८ ॥
समन्तात् पर्यङ्कमाकारं मुद्रामाहुस्तथागता ।
एतत् पर्यङ्कमुद्रेति ख्यातं लोके समन्ततः ॥ १५९ ॥
अनया मुद्रया युक्तो मन्त्रयुक्तस्तथा पुनः । G 369
सर्वैर्जिनमुक्तैस्तु वज्राब्जकुलमुद्भवैः ।
एतैर्मन्त्रैः प्रयुक्तोऽयं सर्वकर्मकरं शिवम् ॥ १६० ॥
ये च मुद्रास्तथा प्रोक्ता मुशलाद्याः शूलसंभवाः ।
सर्वे वै क्रोधराजस्य यमान्तस्येह शासने ।
उग्रा प्रहरणा ह्येते सत्त्ववैनेयनिर्मिता ॥ १६१ ॥
बोधिसत्त्वप्रभावेन ऋद्ध्या कुर्वन्ततस्तदा ।
सर्वं वैनेयदुष्टानां कुम्भाद्या मुद्र भाषिता ॥ १६२ ॥
तदेव हस्तं विन्यस्तं पटहाकारसंभवम् ।
आबन्धेदङ्गुलिभिर्युक्तं सर्वाभिश्च सवेणिकाम् ॥ १६३ ॥
वेणिकां कृत्यमङ्गुष्ठैस्ततो न्यस्य करे पुनः ।
मध्ये प्रादेशिनीं कृत्वा उच्छ्रिताग्रं तु कारयेत् ।
एतत् पटहनिर्दिष्टं मुद्रा दुष्टनिवारणी ॥ १६४ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अञ्जली सुप्रयोजितौ ।
उभौ तर्जन्य संकोच्य कुण्डलाकारशोभनौ ॥ १६५ ॥
अङ्गुष्ठं ते अधः कृत्वा अङ्गुष्ठा नामितौ उभौ ।
प्रविष्टौ मध्यपुटान्तस्थौ शङ्खं भवति शोभनम् ।
एतद्धर्म शङ्खं वै वरमुद्रं प्रकाशितम् ॥ १६६ ॥
मन्त्रैर्मुनिवरोक्तैस्तु संयुक्तः सर्वकार्मिकः ।
करोति कर्मवैचित्र्यं सर्वदंष्ट्राविषभोगिनाम् ॥ १६७ ॥
निर्नाशयति सर्वांस्तां मूलमन्त्रप्रयोजिता ।
शङ्खमापूरयेज्जप्तं विद्याराजैर्महर्द्धिकैः ।
निर्विषोऽपि भवेत् क्षिप्रं यो जन्तुर्विषमूर्च्छितः ॥ १६८ ॥

चत्वारिंशति समाख्याता मुद्रा श्रेष्ठा महर्द्धिका।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मुद्रालक्षणसंभवम् ॥ १६९ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अङ्गुल्याग्रसवेणिकौ।
G 370 भूयो दामोटयेद् यत्नादपसव्यं तु कारयेत्।
अधस्तात् सर्वतः कृत्वा शङ्कलेति उदाहृता ॥ १७० ॥
एषा मुद्रवरश्रेष्ठा सर्वदुष्टार्थबन्धनी।
मन्त्रैस्तैरेभिसंयुक्ता मुनिमुख्यार्थभाषितैः।
सर्वां बन्धयते भूतां ग्रहमातरकश्मलाम् ॥ १७१ ॥
तदेव हस्तौ संकोच्य मुक्त्वा वेणि समुच्छ्रयेत्।
तदेव विधिना बध्वा अन्येनाङ्गुष्ठमध्ययोः ॥ १७२ ॥
मध्यपर्वे समाश्लिष्य उभयाग्र्यं करं पुनः।
दत्वाभिमुखं ह्यग्नेर्वह्निमन्त्रसुयोजितः।
आवाहयेच्छिखिनं होमे अग्निकर्मेषु सर्वदा ॥ १७३ ॥
क्षिप्रमाह्वयते वह्निः मुद्रेणानेन योजिता।
विसर्जयेदनेनैव मन्त्रेण तर्जन्याग्रविमिश्रितैः ॥ १७४ ॥
अङ्गुष्ठे नित्यमाश्लिष्टे विसर्ज्यं वह्निदैवतम्।
मुद्रा बहुमता ह्येषा अग्निकर्मप्रसाधिका ॥ १७५ ॥
आह्वानयति देवानां यदृच्छं मन्त्रजापिनो।
एषा बहुमता मुद्रा बध्वाधिष्ठानवर्णिनी।
करोति कर्मवैचित्र्यं संयुक्ता मन्त्रमुत्तमैः ॥ १७६ ॥
तदेव हस्तौ एकस्थौ संपूर्णामङ्गुलिमाश्रितौ।
कुर्यादा कोशमञ्जल्यां श्लथं वर्तुलसंभवम् ॥ १७७ ॥
परिपूर्णं ततः कृत्वा कुड्मलं पद्मसंभवम्।
मनोरथं तु तं विन्द्या मुद्रां सर्वार्थसाधिकाम् ॥ १७८ ॥
एषा मुद्रा वरा श्रेष्ठा पुरा गीता तथागतैः।
सत्त्वानां हितकाम्यार्थं मञ्जुघोषे नियोजिता ॥ १७९ ॥
मनसा कांक्षते सत्त्वो यो हितार्थं मनोरथम्।
तूर्णं तत् साधयते क्षिप्रं मन्त्रैर्युक्ता महर्द्धिकैः।
एषा मुद्रावरा श्रेष्ठा मनोरथेति स उच्यते ॥ १८० ॥
एषा मुद्रवरा श्रेष्ठा सर्वकर्मप्रसाधिका।
क्षिप्रं साधयते मन्त्रां द्रव्यां चैव सविस्तराम् ॥ १८१ ॥

सा एषा मुनिचन्द्रेण चन्द्राभा सुप्रवर्तिता ।
चन्द्रा पद्मकुले मन्त्रा तेनायं सुप्रयोजिता ।
करोति कर्मवैचित्र्यं सितवर्णामृतसंभवा ॥ १८२ ॥
तदेव हस्तौ संशुद्धौ उभौ अङ्गुलिमाश्रितौ ।
षड्भिङ्गुलिमाश्लिष्टौ पुस्तकाकारसंभवौ ।
उच्छ्रितौ वर्तुलौ कृत्वा कन्यसाङ्गुष्ठ कौञ्चितौ ॥ १८३ ॥
एषा मुद्रावरा प्रोक्ता प्रज्ञापारमितामिता ।
जननी सर्वबुद्धानां मोक्षार्थं तु नियोजिता ।
साधयेत् सर्वकर्मं वै शान्तिपुष्ट्यर्थ योजिता ॥ १८४ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ दक्षिणं वामतोपरि ।
कृत्वा नाभिदेशे वै कोलस्थं निम्नमुद्भवम् ।
उभौ हस्तौ तदाश्लिष्य स मुद्रा पात्रमुच्यते ॥ १८५ ॥
पात्रंजननी मुद्रौ जिनमन्त्रैः सुयोजितौ ।
करोति कर्मवैचित्र्यं यथेष्टं मन्त्रविचक्षणैः ॥ १८६ ॥
तदेवहस्तावुद्धृत्य कुर्यात् तर्जनिमुच्छ्रितौ ।
मध्यमाङ्गुलिमग्रं तु नामितं मीषितोरणम् ॥ १८७ ॥
तदेव उच्छ्रितौ कृत्वा कथयामास सुतोरणम् ।
तदेव बध्वा तदन्योन्यं घोषनिर्दिष्टमष्टमम् ॥ १८८ ॥
उच्छ्रितोत्तमङ्गुष्ठौ जपशब्दं विदुर्बुधाः ।
तदेव उच्छ्रितौ हस्तौ अङ्गुल्याग्रौ सुकुञ्चितौ ॥ १८९ ॥
सर्वैरङ्गुलिभिर्मुक्ता विरला केशसंभवा ।
भेरी तं विदुर्बुद्धा धर्मभेरीति उच्छ्रितौ ॥ १९० ॥
तदेव हस्ततलं ऊर्ध्वं दक्षिणं वामतोच्छ्रतम् ।
अधस्तात् कारयित्वा तु गजाकारं सुयोजितम् ॥ १९१ ॥
दक्षिणं मध्यमाङ्गुल्यां कराकारं तु कारयेत् । G 372
एतद् गजमुद्रं तु निर्दिष्टं संसारपारगैः ॥ १९२ ॥
एषा मुद्रा महामुद्रा संबुद्धैस्तु प्रकाशिता ।
करोति कर्मां सर्वांस्तांस्तामशेषां लोकपूजिता ॥ १९३ ॥
दक्षिणं हस्तमुद्यम्य अभयदत्तं परिकल्पयेत् ।
गृहीत्वा मणिबन्धे तु वामहस्तेन मुद्यतम् ॥ १९४ ॥
मध्यमां तर्जनीं स्पृष्ट्वा अङ्गुष्ठं मध्यतो स्थितम् ।
मध्यपर्वाश्रितं युक्तं वरहस्तं तदुच्यते ॥ १९५ ॥

एतन्मुद्रवरं श्रेष्ठं आदिबुद्धै स्तदोदितम्।
अभयं सर्वसत्त्वानां मुद्रां बध्वा ददौ जपी।
मन्त्रैर्मुनिमतैर्युक्तः क्षिप्रमर्थप्रसाधकः ॥ १९६ ॥
तदेव हस्तौ संयुक्तौ संपुटाकारशोभनौ।
उच्छ्रुतौ मध्यमाङ्गुल्यौ मुद्रा तद्व्रतचारिणी ॥ १९७ ॥
तदेवमङ्गुलिभिर्वेष्ट्य अङ्गुष्ठौ उपरिस्थितौ।
न्यस्य पर्वतले न्यस्तं केतुमित्याहु मुद्रिणम् ॥ १९८ ॥
तदेव मूर्च्छिनाग्रे कं शुभो निर्दिष्टमुद्रिणम्।
उभौ तर्जन्यसमायुक्तौ अन्योन्याग्रविमिश्रितौ।
संकोच्य पर्वतोऽङ्गुष्ठाः कन्यसीति समुच्छ्रितौ ॥ १९९ ॥
तदेव परशुनिर्दिष्टा मुद्रा सर्वार्थसाधिका।
संकोच्य पुनः सर्वा वै सा मुद्रा लोकपूजिता ॥ २०० ॥
तदेवमुच्छ्रितं कुर्यात् तर्जन्याग्रसूचिकम्।
भिण्डिपालस्ततो मुद्रा लाङ्गलं चक्रतो गतम् ॥ २०१ ॥
तर्जन्यौ वक्रतः कृत्वा लाङ्गलो मुद्रमुत्तमम्।
एतत् षष्टिमुद्राणां कथितं विधिना पुनः ॥ २०२ ॥
सर्वे ते प्रहरणा मुद्रासंयुक्ता मन्त्रभीरिता।
सर्वां विघ्नकृतां दोषां ग्रहकूष्माण्डमातराम् ॥ २०३ ॥
G 373 सर्वराक्षसमुख्यानां बालसर्वानुत्रासिनाम्।
निर्नाशयति सर्वांस्तां मुद्रां प्रहरणोद्भवाम् ॥ २०४ ॥
षष्टिमेतं तु मुद्राणां लक्षणं समुदाहृतम्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मुद्राणां विधिसंभवम् ॥ २०५ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ पद्माकारसमुच्छ्रितौ।
प्रसारिताङ्गुलिभिः सर्वं मुद्रां पद्म इति स्मृतम् ॥ २०६ ॥
एषामुद्रवरा ख्याता संन्यस्ताब्जकुलोद्भवाम्।
यावन्त्यब्जकुले मन्त्रा संयुक्ताः तैः शुभोदया ॥ २०७ ॥
क्षिप्रकर्मकरा ख्याता बुद्धाधिष्ठानमुद्भवा।
सर्वां साधयते मन्त्रां यावन्त्यब्जकुलोदया।
मुद्राणां पद्ममुद्रेयं मध्यमे समुदाहृता ॥ २०८ ॥
उभौ हस्तौ समायुक्तौ तर्जनीभिः समुच्छ्रितौ।
मध्यमाङ्गुलिभिर्युक्तं विन्यस्ताकारसंभवम् ॥ २०९ ॥

अङ्गुष्ठौन्यस्य वैतत्र मध्यमाङ्गुलिपर्वयोः ।
तदेव कथितं वज्रं कन्यसं मुद्रमुत्तमम् ॥ २१० ॥
यावन्ति वज्रकुले मन्त्रा ते साध्यानेन मुद्रिता ।
सिद्ध्यन्ते क्षिप्रतोयुक्ता विधिना संप्रकीर्तिता ॥ २११ ॥
संयुक्तैः साधकं कर्म यः साध्यं साधयेत् सदा ।
तस्य सिद्धिर्भवेन्नित्यं उत्तमाधममध्यमा ।
सर्वेच लौकिका मन्त्राः सिद्ध्यन्ते ह्यविकल्पतः ॥ २१२ ॥
उभौ हस्तौ समायुक्तौ मध्यमाङ्गुलिमुच्छ्रितौ ।
संकोच्या नामिकाङ्गुष्ठौ कन्यसौ सूचिमाश्रितौ ॥ २१३ ॥
उभौ तर्जनिसंश्लिष्टौ मध्यपर्वाग्र कुञ्चितौ ।
मध्यमौ सूचिसमौ न्यस्तौ चक्राकार समुद्भवौ ॥ २१४ ॥
एतत्तु धर्मचक्रं वै मुद्रराज मिहोदितः ।
धर्मराजैस्तथा ह्युक्तौ धर्मचक्रश्च वर्तितुम् ॥ २१५ ॥
शान्तिचक्रं तदा वत्रे मुनिचन्द्रोऽथ सत्तमः । G
त्रिमलां त्रिच्छेदजापेन मुद्राजेन योजिता ॥ २१६ ॥
चक्रिण्यो ये च उष्णीषा लोचनाविद्यमुत्तमा ।
भ्रुकुटीपद्मकुले तारा मामकी चापि वज्रिणे ॥ २१७ ॥
सिध्यन्ते धर्मचक्रेण मुद्राराजेन योजिता ।
समस्ता लौकिका मन्त्रा विष्णुरीशान भाषिता ॥ २१८ ॥
तां विच्छेद दृष्ट्वा वै जापिनां मुद्रसंयुताम् ।
एतन्मुद्रवरं श्रेष्ठं धर्मधातुविनिःसृतम् ॥ २१९ ॥
करोति सर्वकर्मं वै सत्त्वानां च यथेप्सितम् ।
धर्मराजेन शान्त्यर्थं मुद्रेयं संप्रभाषितम् ॥ २२० ॥
अस्मि कल्पवरे श्रेष्ठे सर्वकर्म प्रसाधिका ।
मुद्रेयं धर्मचक्रेति मञ्जुघोषस्य शासने ॥ २२१ ॥
अग्रिमं सर्वमुद्राणां शान्तिकर्मसु योजयेत् ।
मन्त्रिभिर्लक्षते नित्यं शिवचक्रातु संभवम् ॥ २२२ ॥
तदेव विन्यस्तौ हस्तौ संपुटाकारमुद्भवौ ।
श्लथकोशायताङ्गुल्यः उभौ संकुचितौ शुभौ ।
पुण्डरीकमिति ज्ञेयं मुद्रा सर्वार्थसाधका ॥ २२३ ॥
तदेव हस्तं निक्षिप्य त्यज्य मुष्ट्यायताङ्गुलिम् ।
प्रसारिता कराकारं वरदं मुद्रमुच्यते ॥ २२४ ॥

उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा अङ्गुलीभिः समन्ततः।
बध्वा च वेणिकाकारं मुद्रैषा रज्जुमुच्यते ॥ २२५ ॥
पुनः प्रसारयस्तदेकं तु दक्षिणं करमुत्तमम्।
कुर्यात् सूचिकाकारं मध्यतर्जनिमङ्गुलौ ॥ २२६ ॥
ईषत् संकुचिताग्रं तु अङ्गुलीनां नतोत्तमम्।
स्थितिकां कारयेत् तत्र सुन्यस्तं तर्जनीतु तम् ॥ २२७ ॥
कुर्यात् संश्लेषिते तत्र अनामिकापर्वनिश्रिता।
G 375 मुद्रेयं कुन्त निर्दिष्टा बहुधा लोकनायकैः ॥ २२८ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ उभौ तर्जन्यसूचितौ।
उभौ मुष्टिसमं कृत्वा अङ्गुलीभिः समं पुनः।
तदेव मुद्रसमाख्याता वज्रदण्डं मनीषिभिः ॥ २२९ ॥
तदेवहस्तौ संयोज्य संपुटाकारकारितम्।
विन्यस्तामङ्गुलिमञ्जल्यमन्योन्याश्लेषगाश्रितम् ॥ २३० ॥
उभौ अङ्गुष्ठमाश्रित्य शतघ्ना मुद्रमुच्यते।
ततःकृत्वा दुभौ हस्तौ समन्तान्निम्नसंभवौ ॥ २३१ ॥
अञ्जलिं तु ततो कृत्वा नाधायानसरंभवम्।
मुद्रेयं भेरीति ख्याता त्रिषु लोके हितायिभिः।
संतारयति भूतानां महासंसारसागरात् ॥ २३२ ॥
तदेवाञ्जलिमुत्सृज्य चित्रहस्ततलावुभौ।
विमानमुद्रमित्याहुः ऊर्ध्वसत्त्वनयानुगाः ॥ २३३ ॥
तदेवहस्तौ संकोच्य स्यन्दनं तदिहोच्यते।
त्रियानगमनं श्रेष्ठं रतो ह्युक्तोनु तायिभिः ॥ २३४ ॥
नयते सर्वभूतानां जापिनां मन्त्रसंपदाम्।
उत्तमायानमाश्रित्य ययुर्बुद्धगतं तु तम् ॥ २३५ ॥
तदेव हस्तौ उत्सृज्य उभौकृत्वा पुनस्ततः।
कुर्याच्चित्रतलं शुद्धं वेदिकाकारसंभवम् ॥ २३६ ॥
एतन्मुद्रवरं श्रेष्ठं लोकनाथैः सुपूजितम्।
शयनं सर्वबुद्धानां जिनपुत्रैः समुदाहृतम् ॥ २३७ ॥
यत्रातीतास्तु संबुद्धा शान्तिं जग्मुस्तदाश्रिता।
निर्वाणधातुसंन्यस्ता यत्रारूढाशयानुगा।
स एषा मुद्रमिति ख्याता शयनं लोकनायकम् ॥ २३८ ॥

तदेवहस्तौ विन्यस्तौ संश्लिष्टयाङ्गुलिभिः समम् ।
संपुटाकोशविन्यस्तं तर्जन्येकं तु दक्षिणम् ।
कुर्याद् वक्रतो ह्यग्रे अर्धचन्द्रं स उच्यते ॥ २३९ ॥ G 376
उभौहस्तौ पुनः कृत्वादक्षिणाङ्गुष्ठमुष्टितः ।
वामहस्तासृतैः सर्वैः अङ्गुलीभिः समोच्चितैः ।
बध्वामुष्टिकराग्रे तु दक्षिणाङ्गुष्ठमिश्रितः ॥ २४० ॥
तं दक्षिणैरेव समायुक्तैरङ्गुलीभिः पुटीकृतैः ।
कन्यसां विसृतांकृत्वा वीणमुद्रा उदाहृता ॥ २४१ ॥
उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा आकाशौ विरलाङ्गुलौ ।
उभावङ्गुष्ठयोर्मध्या उभौ तर्जनिमाश्रितौ ।
एषापद्मालया मुद्रासंबुद्धैः कथिताजगे ॥ २४२ ॥
उद्धृताङ्गुष्ठकौ नित्यं पुनः कुवलयोद्भव ।
मुद्राच कथिता लोके संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः ॥ २४३ ॥
तदेवमञ्जलिं कृत्वा प्रणामाकारजगद्गुरुम् ।
सा नमस्कारमुद्रेयं सर्वलोकेषु विश्रुता ॥ २४४ ॥
तदेव मुद्रा विष्टभ्य हस्तौ यमलसंभवौ ।
एषा यमलमुद्रेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ २४५ ॥
ईषन्मूलतो हस्तौ अङ्गुष्ठौ च सुपीडितौ ।
सा भवेत् संपुटा मुद्रा शोकायासीवनाशनी ॥ २४६ ॥
एता मुद्रास्तु कथिता ये सर्वे प्रहरणोद्भवाः ।
पुष्पाख्या शयनयाश्च वाद्याद्या ग्रहनामका ।
सर्वे सर्वकरा युक्ता मन्त्रैः सर्वैस्तु भाषितम् ॥ २४७ ॥
न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते ।
संयुक्ता मुद्रमन्त्राश्च क्षिप्रं कर्माणि साधयेत् ॥ २४८ ॥
जापिनस्तपसा युक्तो जप्तमात्रो विचक्षणः ।
मुद्रा मन्त्रप्रयुक्ता च असाध्यं किंचि न विद्यते ॥ २४९ ॥
उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा अञ्जल्यान्योन्यसक्तकम् ।
कन्यसानामिकाङ्गुष्ठौ पार्श्वतो न्यस्तौ धूपमुद्रा उदाहृता ॥ २५० ॥
आधाराञ्जलियोगेन तर्जन्या वीषत् कोचयेत् । G 377
सामान्या बलिमुद्रा तु उद्भूता लोकतायिभिः ॥ २५१ ॥
मध्येषु पुष्पविन्यस्तं यथासंभवतो विविधैः ।
दत्तं भवति मन्त्राणां बलिकर्मेषु सर्वसु ॥ २५२ ॥

दक्षिणेनाभयं हस्तं कृत्वा च वामकरेण वै ।
मणिबन्धनयोगेन ग्राह्यं करदक्षिणम् ॥ २५३ ॥
एषा ते सर्वमन्त्राणां गन्धमुद्रा उदाहृता ।
दक्षिणाकरमुष्टौ तौ अङ्गुष्ठौ मध्यमौ सदा ॥ २५४ ॥
सूच्याकारं ततः कृत्वा दीपमुद्रा उदाहृता ।
अनामिकाङ्गुष्ठयोरेव अक्षसूत्रात् संस्थितम् ॥ २५५ ॥
कन्यसां प्रसार्यतो नित्यं मध्यमां तस्य पृष्ठतः ।
तर्जनीं कुञ्चितां न्यस्य अक्षमुद्रेति उच्यते ॥ २५६ ॥
गर्भाञ्जल्यास्ततो न्यस्य अक्षसूत्रं स मन्त्रवित् ।
जपेद् यथेष्टतो मन्त्रं क्षिप्रं सिद्धिवरप्रदम् ॥ २५७ ॥
शोभनं सर्वमुद्राणामेष दृष्टविधिः सदा ।
अग्नेर्दक्षिण हस्तेन अभयाग्रं तु कारयेत् ॥ २५८ ॥
अभिमुखं ज्वलने स्थाप्य तर्जनीं कुञ्चयेत् सदा ।
अङ्गुष्ठं च करे न्यस्य मध्ये कुञ्चितसंस्थितम् ॥ २५९ ॥
एतदावाहनं मुद्रं निर्दिष्टं जातवेदसे ।
कुञ्चितं तर्जन्याग्रं अङ्गुष्ठौ चैकयोजितम् ॥ २६० ॥
विसर्जनं सर्वकर्मेषु ज्वलने संप्रदृश्यते ।
कुर्यात् सर्वमन्त्राणां होमकर्मविचक्षणः ॥ २६१ ॥
मुद्रैरेतैर्भिसंयुक्तः मन्त्रमग्नौ सुयोजितः ।
प्राणामाञ्जलिरन्तरिता अङ्गुलीभिः समन्ततः ॥ २६२ ॥
कुर्यात् तं विपरीतं तु अङ्गुष्ठौ च संमिश्रितौ ।
बहिः संकोच्य तर्जन्यौ मध्यमीभिः समाश्रितौ ॥ २६३ ॥
G 378 एषा मुद्रवरा ह्युक्ता पूजाकर्मसु योजिता ।
प्रणामं सर्वमन्त्राणां मन्त्रनाथं जिनौरसाम् ॥ २६४ ॥
शोधनं सर्वमन्त्राणामासनं च प्रदापयेत् ।
असंभवेऽपि पुष्पाणां मुद्रं बध्वा तु योजयेत् ॥ २६५ ॥
पूजिता विधिना ह्येते मन्त्रा सर्वार्थसाधिका ।
मुद्राबन्धेन पूजार्थं कृतं भवति शोभनम् ॥ २६६ ॥
द्वितीया चित्तपूजा तु यादृशी पुष्पसंभवा ।
एष पूजाविधिः प्रोक्ता संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः ॥ २६७ ॥
अभावेन तु पुष्पाणां द्विविधा पूज उच्यते ।
सर्वमन्त्रप्रसिध्यर्थं सर्वकर्मेषु योजयेत् ।
सर्वकर्मकरा मुद्रा सर्वबुद्धैस्तु भाषिता ॥ २६८ ॥

आसने शयने स्नाने पानानुभोजने ।
शोभने दीपने मन्त्रे स्थाने मण्डलकारणे ॥ २६९ ॥
समयः सर्वमन्त्राणामधिष्ठानार्थं तु मन्त्रिणाम् ।
कथिता लोकनाथैस्तु मुद्रेयं सर्वकर्मिका ।
परिपूर्णं शतं प्रोक्तं मुद्राणां नियमादयम् ॥ २७० ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि मुद्रामष्टमतां गताम् ।
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ उभौ कृत्वा पुनस्ततः ॥ २७१ ॥
तथैव प्रदेशिनीं कृत्वा मध्यमा सूचिमिश्रिता ।
नखस्याधस्तात् तृतीये वै भागे संसक्तकारितौ ॥ २७२ ॥
आकोशामुद्भवावेष्ट्य सूच्याकारं तु कारयेत् ।
एतन्मन्त्राधिपतेर्मुद्रा शक्रिणस्य महात्मनः ॥ २७३ ॥
एता एव प्रदेशिन्या संचार्या सममध्यमा ।
सूच्यानखस्य विन्यस्ता संसक्ता च अनामिका ।
एष उष्णीषमुद्रा वै जिनेन्द्रैः संप्रकाशिता ॥ २७४ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ मध्यमाङ्गुलिवेष्टितौ ।
कन्यसाङ्गुलिसंयुक्तौ मुद्रेयं मितमुद्भवा ॥ २७५ ॥ G 379
मध्यसूच्या समंकृत्वा संसक्तौ च करोरुहौ ।
निर्मुक्तः कुण्डलाकारा महामुद्रा स उच्यते ॥ २७६ ॥
तामेव प्रदेशिन्याग्राधिभून्तेरल्पसतृकम् ।
मध्यसूच्यां ततो न्यस्य अधस्तात् संसक्तपाणिना ॥ २७७ ॥
पर्वतृतीययोर्न्यस्तौ अङ्गुष्ठौ नखपीडितौ ।
एषा मुद्रा वरा प्रोक्ता मञ्जुघोषस्य धीमतः ॥ २७८ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अञ्जलीकारसंस्थितौ ।
मध्यमाङ्गुलिविन्यस्तौ सूच्यग्रानामितः स्थितौ ।
अङ्गुष्ठौ मध्यमां स्पृश्य अङ्गुलीपर्वसचिकम् ॥ २७९ ॥
कन्यसाङ्गुलीभिः सूचीं कृत्वानामितमुच्छ्रितौ ।
एषा मुद्रा वरा श्रेष्ठा धर्मकोशस्थतां गताः ॥ २८० ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ विधिदृष्ट समासतौ ।
तदेवमङ्गुलिभिः सर्वैः आपूर्णं कोशसंस्थितम् ॥ २८१ ॥
उभौ हस्तौ विवृण्णीयात् अष्टानाङ्गुलिनावृताः ।
अष्टां पुरुषतत्त्वज्ञां चत्वारो युगतां गताम् ॥ २८२ ॥

तदेव संघमित्याहुः संबुद्धा द्विपदोत्तमाः ।
स एव मुद्रासंघेति कथ्यते ह भवालये ।
एषा मुद्रवरा श्रेष्ठा सर्वकर्म प्रसाधिका ॥ २८३ ॥
उभौ हस्तौ पुटीकृत्वा अञ्जल्याकारसंस्थितौ ।
प्रसार्य तर्जनीमेकां दक्षिणां करनिःसृताम् ॥ २८४ ॥
सा एष भूतशमनी निर्दिष्टा तत्त्वदर्शिभिः ।
एषा मुद्रा वरा ख्याता सर्वकर्मार्थ साधिका ॥ २८५ ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्तौ वेणिकाग्रावचिह्नितौ ।
पिण्डस्थौ संपुटाकारौ उच्छ्रिताङ्गुष्ठनामितौ ।
एषा सा पद्ममालेति आदिबुद्धैः प्रचोदिता ॥ २८६ ॥
G 380 तदेव हस्ता वुत्तानौ अङ्गुलिभिः समन्ततः ।
प्रफुल्लनिर्मिताकारौ अङ्गुष्ठाङ्गुलिसतृकौ ॥ २८७ ॥
द्वितीये पर्वतो न्यस्तौ अङ्गुष्ठौ तर्जनि चोभयौ ।
स एषा मुद्रवरा ख्याता संबुद्धैस्त्रिदशालया ॥ २८८ ॥
एते मुद्रा महामुद्रा अष्टा ते ते समकार्मिकौ ।
तुल्यप्रभा महावीर्या संबुद्धैः संप्रकाशिता ॥ २८९ ॥
षष्टिबिम्बरकोट्यस्तु अशीतिः सहमुद्भवैः ।
अतीतैर्मुनिवरासंख्यैर्मुद्रा ह्येते प्रकाशिता ।
शतमष्टाधिकं प्रोक्तं मुद्राणां विधिसंभवम् ॥ २९० ॥
एतैः सर्वैस्तु सर्वाणि मन्त्रकर्मांश्च साधयेत् ।
सर्वमन्त्रां तथा कर्मा सर्वान्येव प्रसाधयेत् ॥ २९१ ॥
एतन्मुद्रामतं प्रोक्तं सर्वबुद्धैः महर्द्धिकैः ।
विधिना योजिता ह्येते क्षिप्रमर्थप्रसाधिका ॥ २९२ ॥
इत्युक्त्वा मुनिनां मुख्यः शाक्यसिंहो नरोत्तमः ।
मञ्जुघोषं तदा वव्रे बोधिसत्त्वं महर्द्धिकं ॥ २९३ ॥
एष मञ्जुश्रियाकल्पे मुद्रासंभव संभवः ।
त्वयैव संप्रदत्तोऽयं रक्षार्थं शासने भुवि ।
युगान्ते वर्त्तमाने वै मयैव परिनिर्वृते ॥ २९४ ॥
रक्षार्थे शासने मह्यं सर्वेदं कथितं मया ।
मुद्राणां लक्षणा ह्युक्तं मन्त्राणां च सविस्तरम् ।
रहस्यं सर्वलोकानां गुह्यं चापि उदीरितम् ॥ २९५ ॥

एतत्कल्पाधिपे सूत्रे गुणविस्तारविस्तृतम् ।
अनेकधा च मन्त्राणां गुणवर्णसमोदयम् ॥ २९६ ॥
बहुधा मन्त्रयुक्तिश्च तन्त्रयुक्ति उदाहृता ।
प्रभावगुणसिद्धान्तं जापिनां हेतुसंभवम् ॥ २९७ ॥
फलोदयशुभो ह्युक्त सत्त्वानां गतियोनयः ।
कुमार त्वदीयमन्त्राणां सिद्धि-हेतुनियोजिता ॥ २९८ ॥
एवमुक्तस्तु मञ्जुश्रीः कुमारो गगनाश्रितः ।
प्रणम्य शिरसा संबुद्धं लोकनाथं प्रभाकरम् । G 381
दीर्घं निश्वस्य करुणार्द्रो रोरुरोद ततः पुनः ॥ २९९ ॥
तस्थुरे समीप बुद्धस्य आपृच्छ्य वरदां वरम् ।
निर्नष्टे भगवां लोके मन्त्रकोशे महीतले ।
सत्त्वानां गतिमाहात्म्यं कथंतस्मै भविष्यति ॥ ३०० ॥
एवमुक्तस्तु संबुद्धो मञ्जुघोषं तदालपेत् ।
शृणोहि वत्स मञ्जुश्रीः कुमार त्वंयदि पृच्छसि ॥ ३०१ ॥
मया हि निर्वृते लोके शून्यीभूते महीतले ।
निर्नष्टे धर्मकोशे च श्रावकैश्चिरनिर्वृतैः ॥ ३०२ ॥
शास्तु बिम्बस्तथा रूपं कृत्वा वै द्विपदोत्तमः ।
पूजां सत्कारतः कृत्वा धूपगन्धविलेपनैः ॥ ३०३ ॥
विविधैर्वस्त्रवरैश्चान्यैर्मणिकुण्डलभूषणैः ।
विविधैर्भोज्यभक्षैश्च सन्नियोज्य निवेदनम् ।
विविधाकारसंपन्नं यथेष्टाकारकारिणे ॥ ३०४ ॥
तथै * मन्त्रमावर्त्य सत्त्वयोनिगतिः शुभम् ।
आजहार पुरं श्रेष्ठं उत्तमां गतियोनये ।
अन्ते बोधिनिम्नस्थः शान्तिं जग्मुः स्वपश्चिमे ॥ ३०५ ॥
एवमुक्तस्तु मञ्जुश्रीस्तुष्टो संबुद्धचोदितः ।
संप्रतुष्यततो धीमां बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः ।
एतत्सर्वं पुरागीतं शुद्धावासोपरिस्थितम् ॥ ३०६ ॥
बुद्धानां संनिधौ बुद्धधर्मचक्रप्रवर्तकः ।
मन्त्रचक्रं तदा वव्रे चिरकालानुवर्त्तितम् ॥ ३०७ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद्
महायानवैपुल्यसूत्रात् त्रयस्त्रिंशतिमः
मुद्राविधिपटलविसरः परिसमाप्तमिति ॥

G 382 ## ३६ द्वितीयमुद्राविधिपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः परमगुह्यतमं त्वदीयं मूलमुद्रासभेत सपरिवारं मुद्रालक्षणं सर्वकर्मेषु चोपयोज्यं सर्वसंपत्तिदायकं सफलं सर्वमन्त्रानुवर्त्तनं सर्वकर्मार्थसाधकम्। संक्षेपतः शृणु मञ्जुश्रीः ॥

आदौ तावत् प्रसृताञ्जलिः तर्जन्यानामिकामध्यपर्वतानुप्रविष्टा पृथक् पृथक् । सा एषा मञ्जुश्रीस्त्वदीया मूलमुद्रा विख्याता सर्वकर्मिका भवति । तथैव हस्तौ संयम्य अनामिकासंहता तर्जनी मध्यमास्तथा कनिष्ठिकया ऊर्ध्वरेखास्थिताङ्गुष्ठशीर्षे । अयमपरा मञ्जुश्रीस्त्वदीया वक्रमुद्रा उदाहृता । अन्योन्यसक्ताङ्गुलिमुष्टिं कृत्वा मध्यमाङ्गुलिं विमुच्य, सूचीकृत्वा, तस्य पार्श्वयोर्वलिततर्जनीयुगलमन्तेन्यसे । एषा मञ्जुश्रीः त्वदीयमुद्रेयं दंष्ट्रा भवति । मुद्राया अङ्गुष्ठयुगलं पार्श्वयोर्न्यसेत् । एषा मुद्रा साक्षात् त्वं मञ्जुश्रीः । तस्मिंस्थाने तस्मिं करपुटे सांनिध्यं समयेनाधितिष्ठसे । अन्योन्यसक्ताङ्गुलिमुष्ट्यो. प्रदेशिनीं मुक्त्वा, अङ्गुष्ठयुगलं मध्यतः । एषा सा मञ्जश्रीः त्वदीया अपरा चीरकमुद्रा । प्रसृताञ्जलिपर्वणी कृत्वा, अनामिके तर्जनीं मध्यमान्तरस्थिताग्रे । इयमपरा मञ्जुश्रीः साक्षादेव त्वं मूलमुद्रा उदाहृता । अस्यैव मुद्रायाः प्रसृतां तर्जनीं कृत्वा एषा सा मञ्जुश्रीस्त्वदीयनेत्रमुद्रा भवति । कन्यसानामिकावेणीकृतकरपुटमध्यस्थिता मध्यमौ बहिः तः तर्जन्युपरि कुञ्चिताग्रे अङ्गुष्ठाग्रसंश्लिष्टाग्रासु । अयमपरा त्वदीया मञ्जश्रीः वक्रमुद्रा भवति सर्वकर्मिका ॥

एवमनेन क्रमेणैकैकाङ्गुलिमथ मुञ्च उभौ अङ्गुष्ठसहिता सर्वे अङ्गुलियोगेन एकैकं प्रसारये उच्चीकृतदक्षिणाङ्गुष्ठम् । त्वदीयं मञ्जुश्री एषा उष्णीषमुद्रा । दक्षिणं संकोच्य वाममुच्छ्रितं ललाटमुद्रा भवति त्वदीया मञ्जुश्रीः, यां दृष्ट्वा सर्वे दुष्टग्रहाः प्रपलायन्ते ॥

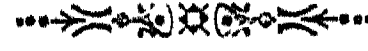
G 383 एवं श्रवणौ ग्रीवा भुजौ हृदयं करौ कण्ठ कटिं नाभिः ऊरू जंघां चरणौ नेत्रौ वक्रं जिह्वा चेति, एवं दशभिरङ्गुलीभिरनुपूर्वमुच्छ्रितौ अनुपूर्वमुद्रालक्षणं भवति । अनुपूर्वं च कर्म करोति । वक्त्रमुद्रया मुखाबन्धम्, दंष्ट्रमुद्रया दुष्टग्रहमोचनम्, जिह्वामुद्रया दुष्टवचननिवारणम्, हृदयमुद्रया नृपतिकोपनाशनम्, अन्यं वा सत्त्वं देवासुरं मानुषामानुषाणां विविधां वा गतिनिश्रितां रुपितानां क्रोधनाशनं भवति ॥

एवमनुपूर्व्या सर्वतः सर्वकर्माणि करोति । एवमसंख्येयानि अनेन क्रमेण मुद्राणि भवन्ति । असंख्येयानि च कर्माणि करोषि त्वं मञ्जुश्रीः । सर्वथा सर्वमुद्रेष्वेव सर्वकर्माणि भवन्ति ॥

बद्धा ता यैः महावीरैः संख्यातीतैः तथागतैः ।
महामुद्रा महावीरैर्महाभूमिगतैरपि ॥ १ ॥
यत्र निम्बरकोट्यानि षट्त्रिंशाशीतिनवपञ्चकैः ।
षष्टिर्नयुतसंख्याद्यैः सर्वलोकोत्तरोत्तरैः ॥ २ ॥

सर्वमुद्रान्तर्गता सर्वे ये चान्या लौकिका क्रिया ।
एभिरन्यतमैर्मुद्रैः कुर्यात् सर्वार्थसाधनम् ॥ ३ ॥
हस्तद्वयेनावबद्धा वै साधनकाले च मण्डले ।
पूर्वसेवाभियुक्तेन होमजापेषु वा पुनः ।
निषण्णः स्थितको वापि यावदिच्छं जपेद्व्रती ॥ ४ ॥
महारक्षाविधानेन आत्मनस्य परस्य वा ।
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि सर्वमुद्रेषु सर्वदा ॥ ५ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायानवैपुल्यसूत्रात् चतुःत्रिंशतिमः द्वितीयमुद्राविधिपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



[एतद् ग्रन्थान्तेऽन्तिमस्य पटलविसरस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य समाप्त्यनन्तरं महामुद्रापटलविसरो नाम कश्चिदपरश्चतुस्त्रिंशत्तम पटलविसरो लिखित उपलभ्यते । स गतस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्यैव प्रकारभेदो भवितु-मर्हतीत्यतः कारणादिहैव योज्यते ।] G 384

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—सर्वांश्च बोधिसत्त्वां सर्वसत्त्वांश्च पर्षत्संनिपतितां शृण्वन्तु भूतगणाः सर्वे देवपुत्राश्च महर्द्धिकाः । अस्ति मञ्जुश्रियः कुमारभूतस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य कल्पविसरे समुद्रापटल-साधनौपयिकं सर्वमन्त्रतन्त्र-चर्यानुप्रविष्टानां सत्त्वानां बोधिसंभारकारणम् । यथा सिध्यन्ति सर्वमन्त्राः क्षिप्रतरमाकृष्यन्ते सर्वकर्माणि सर्वेषां सर्वतः मुद्राणि भवन्ति । यैः मुद्रिताः क्षिप्रतरं वशा भवन्ति । तं शृण्वन्तु भवन्तः । भाषिष्येऽहं सर्वसत्त्वानामर्थाय । सर्वमन्त्राणां मुद्राणि भवन्ति ॥

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः सर्वबुद्धधर्माणां मुद्रालंकारतथागतगुणमाहात्म्यसमुद्रमुद्रा नाम समाधिं समापद्यते स्म । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः सर्वतथागताः सर्वमुद्रासमयं भाषते स्म । तस्मात् समाधेरुत्थाय सर्वतथागतमुद्रामुद्रितं महामुद्रापटलविसरं सर्वमन्त्राणां भाषते स्म ॥

आदौ तावत् सर्वमन्त्रकुलेषु हृदयानि भवन्ति । पूर्वमुच्चारयेद् द्विसप्त एकवाराम् । ततो मुद्राबन्धितव्या, नान्यथादिति । कतमं च तत् सर्वतथागतानां हृदयम् ? जिनजिक् । एष स मार्षाः । सर्वतथागतानां हृदयः सर्वकर्मिकः । तथागतकुले सर्वमुद्रा बन्धितव्या । ततःकर्म समारभेत् । आरोलिक् । अवलोकितस्य हृदयः सर्वकार्मिकः पद्मकुले सर्वमुद्राबन्धयता अयं जप्तव्यः सर्वसाधनोपयिकः सर्वकर्मसु । वज्रधृक् । एष समार्षा वज्रपाणेः हृदयम् । सर्ववज्रकुलेषु च जपता मुद्राबन्धितव्या । सुरारक । एष सर्वदेवानां सर्वमुद्राबन्धयता सर्वकर्मसु प्रयोक्तव्यः । सर्वदेवानां हृदयः । यक्षातक् । सर्वयक्षाणां हृदयः । पिनाधृक् । रुद्रस्य हृदयः । श्रीं । एष स मार्षा एकाक्षरं नाम हृदयम् । सर्वलौकिक
G 385 लोकोत्तराणां सर्वभूतकूष्माण्डपूतनक्रव्यादादिषु नक्षत्रग्रहमातरकुमार-कुमारिकाणां मनुष्यामनुष्यसर्वसंख्यातविद्याधरऋषिप्रभृतीनां सर्वसत्त्वानां सर्वगतिसूत्रकर्मावबद्धानां सर्वभूतानामुक्तानां च वीतरागानां महर्द्धिका महर्द्धिकाणां तृदोषशमनानां त्रिपङ्कनिमग्नानां सर्वसत्त्वानामर्थाय अयमेकाक्षरो मन्त्रः सर्वेषां हृदयं भवति । सर्वकर्माणि करोति । सर्वमुद्राश्च बन्धितव्या । जपं कुर्वाणः अनेनैव हृदयेन जपः कर्तव्याः । सततं बुद्धाधिष्ठितो भवति । महाप्रभावोऽयं महानुशंसः सर्वकर्मसु मुद्रादिकमण्डलविधानपटसाधनौपयिकेषु सत्त्वानुपूर्वं प्रयोक्तव्यः ।(सर्वं साधयति यन्मनसाभिरुचितं साधकेनेति ॥)

ततो मुद्राणि भवन्ति शतं चाष्टसाधिकम् ।
उष्णीषमुद्रा प्रथमं कुर्याच्चक्रिणे जिने ।
ततः परमलोके स पद्ममुद्रेति कथ्यते ॥ १ ॥

तृतीयं वज्रमुद्रं तु वज्रपाणिसमाविशे ।
चतुर्थं देवतामुद्रं स्वस्तिकं तु विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

पञ्चमं खड्गमुद्रा तु राक्षसानामिहोच्यते ।
षष्ठं गदमुद्रा तु यक्षाणां मे प्रकीर्तिता ॥ ३ ॥
सप्तमं असुराणां तु मन्त्राणां वज्रमुष्टिसमोदिना ।
अष्टमं शूलमुद्रा तु सर्वक्रोधेषु पष्यते ॥ ४ ॥
नवमं पुष्पमुद्रा तु यक्षयक्षीषु कीर्तिता ।
दशमं मुद्गरं विन्द्यात् फरमेकादशं परम् ॥ ५ ॥
द्वादशं शक्ति निर्दिष्टा कार्त्तिकेयस्य बालिशः ।
मञ्जुघोषस्य विख्यातमुत्पलं तु प्रयोजयेत् ।
त्रयोदशानां संख्या निर्दिष्टा मुनिभिः सत्त्वदेशिभिः ॥ ६ ॥
चतुर्दशं तु भवेच्छङ्खो भेरी पञ्चादशा स्मृता ।　G 386
पटहो षोडशा ज्ञेयो दुन्दुभिः सप्तदशो परः ॥ ७ ॥
अष्टादश तथा बद्धमूनविंशत् करणमुच्यते ।
विंशत् परशु निर्दिष्टा संख्याया तु प्रमाणतः ॥ ८ ॥
सितपत्रा तथाच्छत्रं उष्णीषाणां प्रकीर्त्तितम् ।
चीवरं पात्रनिर्दिष्टं खखरं तु मतः परम् ॥ ९ ॥
कृपा मैत्री तथा प्रज्ञा ध्यानशील तथापि च ।
क्षान्तिदानादिकं षट्कं निर्दिष्टं लोकनायकैः ॥ १० ॥
बुद्धानां कथिता ह्येते षट्पारमिताश्रवात् ।
त्रिंशच्चक्रिणे मुद्रा कथिता लोकपुङ्गवैः ॥ ११ ॥
एकाक्षरस्य वीरस्य मन्त्राणामधिपतेर्विभो ।
लोकेश्वरस्य विद्यानां कथिताष्टविंशति साधिका ॥ १२ ॥
सिताख्या महाश्वेता तथा पाण्डरवासिनी ।
भृकुटी च तथा देवी बुद्धानां हृदयोद्भवा ॥ १३ ॥
तारायाः कथ्यते मुद्रा उत्पलं तु नियोजयेत् ।
हयग्रीवस्य तु भीमस्य मुद्रा वक्र इति स्मृता ॥ १४ ॥
वज्रपाणे तथा मुद्रा त्रिंश एक भवन्ति ते ।
सर्वे प्रहरणा तस्य नानाकारा युधिष्ठिता ॥ १५ ॥
चत्वारोऽपि महामुद्रा प्रोक्ता मारमण्डले ।
रुद्रस्य शूलनिर्दिष्टो . . . . ॥ १६ ॥
ब्रह्मस्याक्षमालं तु विष्णोश्चक्रमितिस्तथा ।
. . . . यमदण्डमतः परां ॥ १७ ॥
एतत् सर्वं देवानां सर्वयक्षनराधिपां ।
सर्वभूतानां तथा मुद्रा सर्वसत्त्व समाश्रिता ॥ १८ ॥

सरागवीतरागाणां त्रिधाधातुस्थिता परां ।
सर्वलोकसमावृच्यु त्रिधा स्थावरजङ्गमा ॥ १९ ॥
G 387 धात्वाख्यामसंख्येयां ये सत्त्वा भूतवादिनः ।
सर्वेषाणां तु सर्वत्र एकमुद्रादिहोच्यते ॥ २० ॥
एवमष्टशतं प्रोक्तं शतमेकं साष्टसाधिकम् ।
तेषां च गुणविस्तारं प्रभावं च इहोच्यते ॥ २१ ॥
यथा मनुष्याणां भवेत् सिद्धिः संयुक्ता मन्त्रयोजिता ।
करोत्यन्यप्रयोगैश्च अङ्गुलीभिः सशोभिता ॥ २२ ॥
विन्यस्ता करयोर्मध्ये क्षिप्रमर्थकरा परा ।
तेषामादि वक्ष्ये शृणुध्वं भूतिकाङ्क्षिणः ॥ २३ ॥
आदौ तावच्छुचौ देशे शुक्लवस्त्रः शुचाम्बरः ।
शुचिकर्म समाचारो शुचौ देशे सदारतः ।
बन्धयेत् प्राङ्मुखो भूत्वा स्थितो स्तूपस्य चाग्रतो ॥ २४ ॥
नाशिष्याय प्रदातव्यं रौद्रकर्मान्तचारिणे ।
अभय अदाताय समयानुप्रवेशिने ॥ २५ ॥
भक्तो जिनपुत्राणां बुद्धानां चापि शासने ।
अनुत्पादितचित्तस्य नादेयं मुद्रसंपदा ॥ २६ ॥
भक्तानां जिनपुत्राणां बोधिसत्त्वानां च धीमताम् ।
प्रत्येकबुद्धानार्हतानां पूजितानां ददेत् सदा ॥ २७ ॥
सुस्थितो बोधिचर्यायामाचार्यो बहुमतः सदा ।
सर्वमन्त्रप्रयोगेषु × × × उत्कृष्ट सदा ।
तेन मुद्रा तदा देया शिष्यस्याविचिकित्सतः ॥ २८ ॥
तथा मन्त्रप्रयोगज्ञः शुचिर्दक्षः कुलान्वितः ।
आचार्यो धार्मिको धीमां अभिषिक्तो दृष्टमण्डलः ॥ २९ ॥
तेनोपदर्शिता मन्त्राः शिष्यो गृह्णेत तन्त्रवित् ।
शिष्येण कार्यस्तथा प्रेमो बुद्धस्येव गुरोस्तथा ।
अन्यथान सिद्धि मन्त्राणां सर्वमुद्रेषुवासदादिति ॥ ३० ॥

G 388 आदौ तावत् शुचिर्भूत्वा प्राङ्मुखो शुक्लचन्दनेन हस्तमुद्वर्त्य, पूर्वं तावत् समयमुद्रा बन्धितव्या भगवतो उष्णीषस्य मुद्रा । उभौ करौ कृताञ्जलिपुटौ अशुषिरौ ईषित्कुञ्चितौ कुड्मलाकारौ अकोशपद्मानानौ । अयं भगवतो बुद्धस्य समयमुद्रा । तदेव हस्तौ प्रसारितौ संपुटावस्थौ पद्मविकसिताकारा अवलोकितस्य मुद्रा । उभौ हस्तौ पूर्ववत् करमावेष्टयित्वा अभ्यन्तरस्थिताभिरङ्गुलीभिः कन्यसः तर्जन्योपरिष्ठा निष्पीडयेत् । इयं मञ्जुश्रियः कुमार-

भूतस्योत्पलमुद्रा । तदेव कन्यसौ संकोच्य पूर्ववत् तर्जन्याभिः अङ्गुष्ठसमेतौ स्थितिका एव उत्पलकुड्मलाकारं दर्शयेत् । सर्वंगमानामियं ताराया मुद्रा । तदेव संकोच्य नेत्राकारं कृत्वा, इयं मुद्रा आर्यभृकुटयाः । तदेव ललाटे योजयेत् । इयं देव्यदेव्या नेत्रमुद्रा । पुनरपि तं संकोच्योभौ मध्यमाङ्गुलिभिः संदंशाकारं कृत्वा मस्तकोपरि स्थापयेत् । इयं भगवतो चक्रवर्तिनः एकाक्षरस्य महामुद्रा सर्वकर्मिका । तदेव ललाटे स्थापयेद् बुद्धस्य भगवतः हृदयमुद्रा । अक्ष्णौ स्थापयेत् । तदेव चक्रवर्तिनः नेत्रमुद्रा । तदेव मुखे स्थापयेत् । तदेव विद्याधिपतेः चक्रवर्तिन एकाक्षरस्य वक्रमुद्रा । एवं याव मन्त्री च भुजौ जानुजङ्घाचरणादिषु विंशत्प्रकारा भवन्ति । मुद्रा अष्टौ महामुद्रा भवन्ति । सर्वकर्मसु प्रयोक्तव्या । तदेव करसंपुटं मध्यमाङ्गुल्यावेष्टितं कृत्वा कन्यसाङ्गुलिसूचीकृतां उभौ अङ्गुष्ठाग्रयवाकारस्थितौ तर्जन्या प्रसारितौ कृतसूच्या कोशीकृतावुभौ निर्नामिकौ वक्रीकृतपर्यन्तौ सुविन्यस्तौ । इयं भगवतां धर्मचक्रमहामुद्रा । तदेवाङ्गुष्ठौ विनाम्य मध्ये प्रसार्य, इयं बुद्धानां चतुर्मारपराजयमुद्रा । तदेव मुद्रां शिरस्योपरिधाय दर्शयेत् । सर्वबुद्धानां सर्वक्लेशनिषूदनं नाम महामुद्रा । तदेव ललाटे स्थापयेत् । महाकरुणा नाम सर्वबुद्धानां मुद्रा । तदेव हृदये स्थाप्य, सर्वदृष्टिशल्याभ्युद्धरणं नाम महामुद्रा । तदेव मुद्रं उभौ न्यसेत् । सर्वविद्याप्रसाधनं नाम महामुद्रा । तदेव मुद्रा ग्रीवायांसंन्यसेत् । सर्वानर्थप्रशमनकरी नाम महामुद्रा । तदेव मुद्रा सर्वतः भ्रामयेत् । महारक्षार्थ संपातनं नाम महामुद्रा । एवमनेन प्रकारेण अष्टौ महामुद्रा भवन्ति सर्वार्थसाधकाः । जयोष्णीषस्य मुद्रा भवन्ति । तदेव करपल्लवो वामहस्तप्रसारितौ दक्षिणतस्तिर्यक् । इयं सितातपत्रस्यच्छत्रमुद्रा । तदेव हस्तौ तथा G 389 विन्यस्तौ शिरसि भगवतो जयोष्णीषस्य मुद्रा । उभौ करतलौ संपुटीकृत्य मूर्ध्नि स्थापितो उष्णीषाकारो । इयं भगवतो अभ्युद्गतोष्णीषस्य मुद्रा । तदेव मुद्रां विकाषयेत् । इयं ज्वालामालिनोष्णीषमहामुद्रा सर्वकर्मिका सर्वभयेषु च प्रयोक्तव्या सर्वकर्मसु । तदेव मुद्रा उरसि स्थापयेत् । सर्वोष्णीषाणामियं महामुद्रा । तदेव हस्तौ आवेष्ट्यावस्थितौ सुदृढौ सर्वतथागतानां महाकवचमुद्रा सर्वविघ्नेषु प्रयोक्तव्या । तदेव हस्तौ उभयाग्रावस्थितौ पुस्तकाकारौ उरोमध्ये न्यसेत् । इयं सा सर्वबुद्धानां जनेत्री प्रज्ञापारमिता महामुद्रा । सर्वसत्त्वानां दर्शयेत् । सर्वविघ्नेषु सर्वानर्थां प्रशमयति । सर्वार्थां संपादयति । स्मृतिसंजननं कुरुते । तदेव हस्तौ ललाटे न्यसेत् । सर्वबुद्धानामभिषेकः धर्ममहामुद्रा । सर्वाभिषेकेषु प्रयोक्तव्यः सर्वसत्त्वानाम् । तदेव हस्तौ चित्राकारेण ललाटे न्यसेत् । सर्वमारविद्रापनं नाम महामुद्रा । तदेव हस्तौ संकुचिताकारौ अन्योन्यसंकुचितसक्तौ सूच्याकारेण व्यवस्थितौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ सूचीकृतचिह्नौ अङ्गुष्ठोद्वन्द्वपरामृष्टौ । इयं भगवतो तेजोराशेर्महामुद्रा । तदेव मुद्रं शिरसोपरि निधाय इयमपरा तथागतोष्णीषस्य तेजोराशेर्महामुद्रा । तदेव हस्तौ ललाटे स्थापयेत् तेनैवाकारेण । इयं भगवतो तृतीया नेत्रमुद्रा । तदेव हस्तौ उभयचित्रीकृतौ अन्योन्योपरिस्थितौ दक्षिणार्थमथ वामसंपुटाकारस्थितौ अन्योन्याङ्गुष्ठकन्यसावेष्टितौ । इयं

सर्वबुद्धानां महावज्रासनमूलमुद्रा । तदेव हस्तौ मूर्ध्नि दर्शितौ महाबोधिवृक्षमूलमुद्रा । तदेव हस्तौ संपुटितौ पृष्ठीकृतौ सर्वबुद्धानां सर्वमारविध्वंसनकरी नाम मुद्रा । तदेव हस्तौ अन्योन्यावसक्तौ ग्रीवायां न्यसेत् । सर्वभूतवशीकरी नाम मुद्रा । तदेव कण्ठे धारयेत् । सर्वभूतविलोकनी नाम महामुद्रा । तदेव जानुभ्यां न्यसेत् । सर्वदुर्गतिविशोधनी नाम महामुद्रा । तदेवोर्ध्वं चिक्षिपेत् । सर्वदेवोत्पत्तिसंनिचयं नाम महामुद्रा । तदेव हस्तौ अभयाकारं उभौ सर्वभोगविषयं नामाशनिर्नाग महामुद्रा । तदेवाञ्जल्यकारेण मूर्ध्नि स्थापयेत् । सर्वबुद्धक्षेत्राक्रमणी नाम महामुद्रा । तदेव हस्तौ उभौ कर्णे स्थापयेत् ।
G 390 स्फुटाकारेण सर्वनागदमनी नाम महामुद्रा । तदेव हस्तौ उभौ संपुटं कृत्वा नासाग्रे धारितव्यः । सर्वबुद्धानामालम्बनं नाम महामुद्रा । तदेव मुद्रं शिरस्योपरिन्यसेत् । सर्वबुद्धाभ्युद्गतोष्णीषो नाम महामुद्रा ॥

एवमनेनाकारेणासंख्यानि भवन्ति सर्वतथागतोष्णीषाणां मुद्राणि । असंख्येयैः बुद्धैर्भगवद्भिः असंख्येय चक्रवर्तिकु॰ं असंख्येयाश्चक्रवार्तिनः तेषामधिपतिः एकाक्षरो चक्रवर्ती मन्त्राधिपः, असंख्येयाश्च तथागतोष्णीषराजानः असंख्येयाश्च सर्वमत्रेषु कल्पविसरा । तेषां संक्षेपतः वक्ष्यते । मुद्रा चात्र भवत्येक एव । सर्वेषां हृदयः एकाक्षरः चक्रवर्ती । तस्यैव यो मूलमुद्रा सा इहैवोच्यते मन्त्रेषु निर्दिष्टा महाप्रभावामितौजसः । यस्या बन्धनादेव सर्वमन्त्राभिमुखा भवन्ति । सर्वबुद्धाश्च भगवन्तः सिद्धिमनुप्रयच्छन्ते । अधिष्ठिन्ति च विद्यासाधकं चक्रवर्तिस्मरणादेव मन्त्रनाथं एकाक्षरमद्वितीयम् । दशबुद्धकोटीकुशलमूलार्जितो भवति । चतस्रोऽपि मूलापत्तयोरापन्नस्य भिक्षा तन्महान्तं नरकोपपत्तिवेदनीयं कर्मक्षयं गच्छति स्मरणादेव । कः पुनर्वादो जपन् । पञ्चानन्तर्याणि च क्षयं गच्छन्ति । कः पुनर्वादोऽन्ये अकुशलाः स तस्मात् सर्वप्रयत्नेनायं विद्याराजाधिपो एकाक्षरः स्मर्तव्यो जप्तव्यः भावयितव्यो मनसि कर्तव्यः पूजयितव्यः सततमेवाराधयितव्यः । नमः समन्तबुद्धानाम् । भ्रूँ । एष स मार्षा सर्वोष्णीषाणां तथागतभाषितानां अयं मूलमन्त्रः । अनेनैव मन्त्राधिपतिना उष्णीषचक्रवर्तिना तथागतमूर्धजेन सर्वकर्माणि कारयेत् । मुद्रोपेतेन सर्वमन्त्रेषु लौकिकलोकोत्तरेषु कल्पविसरेषु नियतं सिध्यति । मुद्रा चात्र भवति । तदेव हस्तौ संपुटाकारौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ सर्वत्राङ्गुल्याभ्राभ्यन्तरस्थितौ कुण्डलाभोगाकारईषिदूर्ध्वावनतं उष्णीषाकारं शिरस्युपरि धारयेत् । इमं एकाक्षरचक्रवर्तिने महामूलमुद्रा । अनया सर्वकर्माणि कारयेत् । उत्तमसाधनादिषु योजयेत् । सर्वरक्षावरणगुप्तये च प्रयोक्तव्यः । नाल्पसाधनप्रयोगादिषु प्रयुञ्जानः असमयज्ञो भवति । मन्त्राचार्यस्य न सिद्ध्यन्ते अन्यत्र रक्षाविधाना ।(शान्त्यर्थे च पापक्षपणार्थं नित्यमेव जप्तव्यः शुचौ देशे पर्वतनदीसरित्पतितटेषु च । नान्यस्थानेषु जप्तव्यो यत्कारणं महाप्रभावोऽयं विद्याराजा । नान्यदेशेषु
G 391 जप्तव्यः । प्रभावोद्गतेन मनसा सर्वसत्त्वानां मैत्र्या स्फुरित्वा जप्तव्यः । मुद्राचात्र भवति । तदेव हस्तौ करसंपुटाकारौ आवेणिकाङ्गुलिभिः कृत्वा मध्यमाङ्गुलीनां पर्वभागे तृतीये ईषिदव-

नामयेत् उष्णीषाकारं कारयेत्। इमं भगवतोष्णीषराजस्य महामुद्रा। तदेव हस्तौ संपुटं कृत्वा ईषदवनामयेत् भगवतोष्णीषस्य तृतीया महामुद्रा। ॐ गोदरे वीर स्वाहा। अयं सर्वेषां तथागतानां हृदयः सर्वकर्मिकः सर्वार्थसाधकः सर्वानर्थनिवारकः। अयं स्मरणमात्रेणैव सर्वबुद्धाधिष्ठितो भवति। सर्वपापेभ्यो मुच्यते। सर्वमन्त्राणामुपरि वर्त्तते। बुद्ध एव साक्षात् द्रष्टव्यः। अनया मुद्रया सह प्रयोक्तव्या। सर्वकर्माणि क्षिप्रतर एव करोति। अनेन जप्यमानेन सर्वे एव मन्त्रा जप्ता भवन्ति। यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा कर्माणि करोति जापिनस्येच्छया। सर्वकर्मिको भवति। तदेव हस्तौ करसंपुटावस्थौ शिरसि धारयेत् त्रिसूच्याकारेण। इयं भगवतां बुद्धानां सर्वेषां द्वितीया हृदयमुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति। ॐ गेरुरे वीर स्वाहा। इमं सर्वेषां बुद्धानां भगवतां हृदयमुद्रा सर्वकर्मिका सर्वानर्थनिवारिका सर्वार्थसंपादिका महाप्रभावा सर्वमन्त्रकल्पेषु साधनीया। नात्र विचिकित्सा कार्या। यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा सिध्यतीति। पुनरपि तदेव हस्तौ संपुटाकारावस्थितौ अभ्यन्तराङ्गुलिभिः गाढमावेष्ट्य उभौ तर्जन्यौ प्रसारितौ ईषदाकुञ्चयेच्छिरस्युपरि निधाय दर्शयेत्। इमं सर्वतथागतोष्णीषाणां महामुद्रा। भवति चात्र मन्त्रः। ॐ ट्रां वन्ध स्वाहा। अयं सर्वोष्णीषाणां मूलमन्त्रः सर्वकर्मिकः दिशे दिशे सर्वबन्धेषु प्रयोक्तव्यः। सर्वकर्माणि च करोति। साधनजपकाले होमादिषु आत्मरक्षा पररक्षा वा। सर्वद्रव्येषु सर्वमन्त्रकल्पेषु च यान्युक्तानि लौकिकलोकोत्तरेषु तान्यशेषतमनेनैव रक्षा कार्या। महारक्षा कृता भवति। सर्वमन्त्रेषु प्रयोक्तव्यः। सर्वकर्मसु सिध्यति। सर्वतथागतोष्णीषाणां महाचक्रवर्तिविद्याधिपतीनां तेजोराशिसितातपत्रजयोष्णीषप्रभृतीनां यानि साधनविसरपटलानि मुद्रामन्त्राणि तान्यशेषतः विस्तरतो प्रयोक्तव्या सर्वाणि च लौकिकलोकोत्तराणि मन्त्रतन्त्रविस्तरपटलविसरां अनन्तानि च मुद्राणि। भवति चात्र मन्त्रः। ॐ ज्वलितोग्रदेह विभिन्द हुं फट्ट् स्वाहा। एष भगवतः तेजोराशेर्बुद्धस्य परमहृदयः G 392
सर्वतन्त्रेषु सर्वतः सर्वकर्मिकः प्रयोक्तव्यः इति। तदेव हस्तौ यमलिताकारौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ तर्जन्या परिवेष्टितौ कटकाकारेण पाशपरिवेष्टितौ उभौ कृतमण्डलाभोगौ। इयं च भगवतो बुद्धस्य खङ्खरमुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति। ॐ धुन जितारण हुँ। एष भगवतां बुद्धानां खङ्खरकमुद्रामन्त्रः सर्वकर्मसु प्रयोक्तव्यः यथाभिरुचितेषु। सर्वमन्त्राणां प्रबोधनः सर्वभूतानां वशंकरः सर्वसत्त्वानां समाश्वासकरः सर्वद्रव्याणां समुत्तेजकः साधकः सर्वपापानां समुच्छोषकः। यथा यथा प्रयुज्यते अयमष्टाक्षरो तथागतमन्त्रः, तथा तथा सर्वकर्माणि साधयतीति। तदेव हस्तौ आवेष्टितौ कृत्वा कृतपात्राकारौ। इयं सर्वतथागतानां पात्रमुद्रा तथागतपात्र इत्यवगन्तव्यः। नाभिदेशे धारयेत् सर्वकर्मसमर्थो भवति। भवति चात्र मन्त्रः। ॐ लोकपालाधिष्ठित धर धर धारय महानुभाव बुद्धपात्र स्वाहा। एष भगवतां बुद्धानां तथागतपात्रमुद्रामन्त्रः। अनेन संयुक्तः सर्वकर्मसमर्थकरो भवेत्॥

करोति कर्मवैचित्र्यं गतिमाहात्म्यपूजितम्।
साधयेत् सर्वकर्माणि सर्वमन्त्रेषु भाषिताम्।
साधकस्येच्छया क्षिप्रं करोतीह न संशयः॥ ३१॥

येऽपि ताथागती मन्त्रा ये चापि अवलोकिते ।
कुलिशाह्वे मन्त्रमुख्यास्तु नानादेवतपूजिता ।
ते सर्वे सिद्धिमायान्ति बुद्धपात्रसमोदिता ॥ ३२ ॥
विविधा दूतिगणा ह्यग्रा चेटचेटिगणास्तथा ।
नानाकिंकरमुख्यास्तु यक्षराक्षसकश्मला ॥ ३३ ॥
प्रेष्या सर्वमन्त्राणां सर्वकर्मकरास्तथा ।
विविधै राजमुख्यैस्तु देवगन्धर्वयोनिजैः ॥ ३४ ॥
सिद्धविद्याधरैर्मन्त्राः लोकपालाश्च महर्द्धिकाः ।
शक्राद्यैः ब्रह्ममुख्यैस्तु सुरश्रेष्ठैश्च धीमतैः ॥ ३५ ॥
मन्त्रा भाषिता ये स्युः सर्वकर्मकरा सदा ।
किन्नरैर्गरुडैश्चापि * * * * महर्द्धिकैः
G 393 सर्वे ते सिद्धिमायान्ति बुद्धपात्रसमोदिता ॥ ३६ ॥
आकृष्टा सर्वमन्त्राणां गतिभूर्तिरामाश्रिताम् ।
वशै ता मन्त्रराट् स्वामी प्रभुः श्रेष्ठो महाद्युतिः ।
अग्र च सर्वमन्त्राणां निर्दिष्टो तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३७ ॥
स मन्त्रो पात्रभूतस्थः त्रिषु चिन्तामणिस्तथा ।
करोति कर्मवैचित्र्यं ईप्सितं साधकेच्छया ॥ ३८ ॥
त्रिविधागुणमाहात्म्यं प्रभावातिशयापराम् ।
करोति ऋद्धिदुर्लङ्घ्यं * * * सर्वमन्त्रिभिः ।
अपात्रो पात्रतां याति मन्त्रस्थे मुनिवर्णिते ॥ ३९ ॥
पात्रो मन्त्रप्रयुक्तस्तु मुद्राभिश्च समन्वितः ।
करोति गुणविस्तारं विचित्रं कर्मसंभवम् ॥ ४० ॥
हन्युः सर्वतो रोगान् भोगांश्चैव सुपुष्कलाम् ।
त्रिजन्मगतसत्त्वानां देवदैत्यनराधिपाम् ।
कुर्यात् संपदां क्षिप्रं सर्वकर्मसु योजिता ॥ ४१ ॥ इति ॥

तदेव हस्तौ करसंपुटाकारौ सर्वाश्चित्रवेणिकाबद्धौ ललाटदेशे स्थापयेत् । चित्रहस्त तदेव भगवतां बुद्धानां चिन्तामणिरत्नमहामुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति । नमः सर्वबुद्धेभ्यः । ॐ तेजोज्वाल सर्वार्थसाधक सिध्य सिध्य सिद्धिचिन्तामणिरत्न हुँ ॥

चिन्तामणिरत्नमन्त्रः सर्वार्थसाधकम् ।
ईप्सितां साधयेदर्थां मन्त्राश्चापि सविस्तराम् ॥ ४२ ॥
करोति गुणमाहात्म्यं चिन्तितं चापि साधयेत् ।
संपदां सफलांश्चापि मन्त्रतन्त्रसुभाषितम् ॥ ४३ ॥

नैष्ठिकं साधयेदर्थां बुद्धत्वं नियतं तथा ।
इच्छया कर्मविन्यस्तं करो चैवमजायत ॥ ४४ ॥
विविधां संपदां सद्यः फलमुद्भवचेष्टिताम् ।
सर्वाणां मन्त्रतन्त्राणां साधयेदात्मसाधितम् ॥ ४५ ॥
देवत्वमथ शक्रत्वं ब्रह्मत्वं वापि रूपिणम् । G 394
आभास्वराणां तथा मूर्तिसदृशानां सुदर्शनाम् ॥ ४६ ॥
सुरश्रेष्ठां सुरामग्रां बृहत्फलामकनिष्ठाम् ।
देवभूयिष्ठां मूर्तिमाप्नोति साधनादिति ॥ ४७ ॥
चिन्ता मनसो ह्यग्रा कथिता मन्त्रार्थविस्तराम् ।
मुद्रासु पुष्कलाश्चैव गतिधर्मार्थसाधका ॥ ४८ ॥
सर्वधर्मार्थनिष्पत्तिं सर्वमन्त्रार्थसाधनम् ।
सर्वगुणबोध्यर्थं धर्मधातुसमाश्रयम् ॥ ४९ ॥
कथितं मन्त्ररूपेण रत्नचिन्ताग्रपूजितम् ।
विशेषात् प्राप्नुयात् स्वर्गरूपाश्चैव समाश्रयम् ।
साधनात् प्राप्नुयात् स्वर्गं गतिमन्त्रार्थविस्तरम् ॥ ५० ॥ इति ॥

तदेव हस्तौ उभौ स्कन्धावसक्तौ अर्धोपरिस्थितौ दक्षिणवामावष्टब्धौ अन्योन्यासक्तौ करमूलसुयोजितौ । इयं सर्वबुद्धानां चीवरमुद्रा । भवति चात्र मन्त्रः । ॐ रक्ष रक्ष सर्वबुद्धाधिष्ठिता मे चीवर स्वाहा । चीवरमन्त्रः । आत्मचीवरमभिमन्त्र्य प्रावरेत् । सर्वभूतानां अधृष्यो भवति । महाराजक्षत्रियेन मूर्धाभिषिक्तेन सर्वप्रश्वासकरेणात्मवस्त्रमभिमन्त्र्य सप्तवारां संग्राममवतरेत् । सर्वारयः दृष्ट्वा स्तम्भिता भवन्ति । प्रतिनिवर्तन्ते वा । सर्वभूताश्च दृष्टमात्रा वशा भवन्ति । गतमानमददर्प न चास्य काये शस्त्रं निपतति । न चास्य मनुष्यामनुष्यभयं भवति । न विषो न हुताशनः काये निपतति । न चास्य रोगभयं भवति । न चास्यापमृत्युभयं भवति । न चास्य परचक्रेण हन्यते । न डाकिनीभूतपिशाचैश्च यक्षराक्षसगन्धर्वै विचित्रैर्वा भूतगणैः ओजोहारिभिः रौद्रचित्तैः पिशिताशनैः सर्वक्रव्यादैर्वा हिंसकैः परसत्त्वविहेठकैः पापकर्मान्तचारिभिर्वा राजानैर्न शक्यते हिंसयितुं उपघातं कर्तुम् । कः पुनर्वादो विना रक्षा वा भेत्तुम्, (सर्वकर्मादिषु) सर्वद्रव्येषु जीविता व्यवरोपयितुम् । नहि तद्विद्यते सत्त्वो वा सत्त्वनिकायो वा मन्त्रो वा मुद्रो वा विषो वा स्थावरजङ्गमो वा शस्त्रो वा प्रहरणानि वा विविधानि राक्षसो वा G 395
राक्षसी वा यक्षो वा यक्षी वा यक्षमहल्लको वा यक्षमहल्लिका वा यक्षपार्षदो वा यक्षपार्षदी वा पेयालं विस्तरेण कर्तव्यं सर्वसत्त्वेभ्यः । नेदं स्थानं विद्यते । अतो न तथागतमुद्राचीवरमन्त्रेण कृतरक्षाविधानेन जापमात्रेण वा स्मरितेन वा नान्यः शक्तो भेत्तुं तथागतमन्त्रैर्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वैश्च भेत्तुम्, वर्जयित्वा तस्यैव साधकस्येच्छया । एवं महाप्रभावोऽयं मन्त्रः सर्वकर्मिकः

सर्वार्थसाधकः सर्वदुष्टविनाशकः सर्वमङ्गलसंगतः सर्वाशापरिपूरकः सर्वदुर्गतिशोधकः सर्वक्लेशनिषूदनो बुद्धधर्मां परिपूरकमिति ॥

तदेव हस्तौ पूर्ववत् मध्यमाङ्गुलिमध्योनामितौ अनामिकाग्रानस्थितौ अङ्गुष्ठपरिणामितौ तृतीयपर्वमङ्गुष्ठाविक्षेपितौ कन्यसानामितौ चक्राकारौ आराग्रोपेतौ नाभिमण्डलोपेतौ कृत्वा शिरःस्थाने स्थापयेत्। इयं सर्वबुद्धानां धर्मचक्रमुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति। ॐ छिन्द छिन्द हन हन दह दह दीप्तचक्र हूँ। एष सः सर्वबुद्धानां धर्मचक्रमुद्रः सर्वक्लेशनिषूदनः सर्वापायदुर्गतिविनिपातां छिन्दयति। सर्वबुद्धधर्मां ज्वालयति। सर्वक्लेशान्धकारां आलोकीकरोति। सर्वदुःखां विहेठयति। सर्वकर्मां साधयति। सर्वदुःखेभ्यः प्रमोचयति। सर्वद्रव्यां दीपयति। अयं भगवां धर्मचक्रः परमन्त्रकृतदुष्टसत्त्वोपदेशितप्राणोपहारिणां मन्त्रां हिंसकां रौद्रां विकृतिस्थां छिन्दयति दालयति पाचयति शोषयति उत्सादयति च सामान्यत्वा उत्कीलयति मोचयति, यथाव्यवस्थायामुपस्थापयति। यथा यथा च मन्त्री प्रयुञ्जते तथातथा कर्माणि करोति वर्जयित्वाभिचारुकम्। कामोपसंहितानां च सर्वशान्तिकर्मसु च प्रयोक्तव्यम्। महाकारुणिकैः सर्वतः सर्वसत्त्वोपकारायैव प्रयोक्तव्यः। सर्वसाधनेषु लौकिकलोकोत्तरेषु मन्त्रमुद्रेषु कल्पोक्तेषु सर्वकर्मसु शान्तिकपौष्टिकेषु महारक्षा अनेनैव प्रयोक्तव्यमिति ॥

तदेव हस्तौ प्रसारितदक्षिणाङ्गुष्ठवामहस्ततर्जन्या तर्जयमानं संकोचितकनिकाग्रन्थान्यप्रयोगावस्थित संदष्टोष्ठपुटा
G 396 जानुभागावस्थितवामचरणविक्षिप्तदक्षिणावनामित उपविष्टकिंचित् स्थितकाम्पित। इदं भगवत्यापराजिताया महामुद्रा। भवति चात्र मन्त्रः ॐ हुलु हुलु चण्डालि मातङ्गि स्वाहा। अपराजिताया

मन्त्रा सर्वबुद्धानां सर्वमारनिषूदनी।
सर्वविघ्नप्रशमनी आयुरारोग्यवर्धनी ॥ ५१ ॥
श्रेष्ठा सर्वमन्त्राणां रक्षाकर्मविधानता।
नरनारीकुमाराणां सौभाग्यजननं परम् ॥ ५२ ॥
मनुष्यामनुष्याश्च ये चान्ये दुष्टसत्त्वचेतसा।
राक्षसोस्मारका प्रेता स्कन्दापस्मारगुह्यका ॥ ५३ ॥
मातृभूतग्रहगणा योगमन्त्रकृतानि च।
रुजो रोगो व्याधयश्च नानाधातुसमुद्भवाः ॥ ५४ ॥
सर्पमूषिकलूताश्च कीटविष्फोटकानि च।
शरीरे न क्रमिष्यन्ति कर्मणान्यत्र पूर्वकात् ॥ ५५ ॥
अध्ववादविवादेषु राजचोरोदकाग्निषु।
जयं क्षेमं शिवं शान्तिं लप्स्यते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥
भूर्जपत्रेऽथवा वस्त्रे लिखित्वान्यत्र वा क्वचित्।
शिरसा ग्रीवकट्या वा बाहुना पाणिनाथ वा ॥ ५७ ॥

वस्त्रबन्धं शिखाबन्धं कृत्वा ग्रन्थिमालिकाम् ।
धारयिष्यति यो नित्यं स्वस्ति तस्य भविष्यति ॥ ५८ ॥
यश्चेमां प्रातरुत्थाय स्वपंश्च परिवर्तये ।
सुखं कालक्रियां कृत्वा सप्तजातीं स्मरिष्यति ॥ ५९ ॥
रूपवां शीलसंपन्नो मुखेनोत्पलगन्धिना ।
प्रियश्चादेयवाक्यश्च जात्यां जात्यां भविष्यति ॥ ६० ॥

भवन्ति चात्र सिद्धानि मन्त्रपदानि मन्त्रसंज्ञानि यथोक्तार्थकराणि तु । तद्यथा—

भञ्जने स्तम्भने धा धा धा धत्स या या या यते हा हा हा हते परकरणि वीर्ये वीर्ये गुणतेजभूतकरि भद्रकरि रौद्रकरि कुम्भवति विषकुम्भवति सर्वबले भूतबले रक्ष रक्ष मां सर्वविषेभ्यः G 397
सर्वविघ्नेभ्यः । तद्यथा—सिद्धकरि सिद्धार्थे सिद्धमनोरथे सिद्धकार्ये फुरुनुरूपे स्वस्ते प्रशस्ते सिद्धे सिद्धार्थे धैर्यवति समने तपने शरणे भद्रे भवति शान्ते दान्ते शिवे हुनुनु परि परित्राणं कुरु, परिग्रहं कुरु, परिपालनं कुरु, शान्तिं कुरु, स्वस्त्ययनं कुरु, मम सर्वसत्त्वानां च रक्षां कुरु स्वाहा । अयं हृदयः अपराजितायाः । पूर्वं मूलविद्या । अवश्यं साधकेन कुशलपक्षाभियुक्तेन भवितव्यम् । त्रिःकालं जप्तव्यम् । पूर्वतरमेव सकृत् पुस्तकवाचिकायां वाचयेत् । एतदेव कुशलपक्षं भवति । उपहृदयं चात्र भवति—नमः सप्तानां सम्यक्संबुद्धानां सश्रावकसंघानां सर्ववैरभयातीतानाम् ।

विपश्चिनस्तेजसा ऋद्ध्या च शिखिनस्तथा ।
विश्वभुक् प्रज्ञया चैव ऋकुच्छन्दबलेन च ॥ ६१ ॥
कनकमुनेः शिक्षायां काश्यपस्य गुणोरपि ।
शाक्यसिंहस्य वीर्येण शिवं भवतु सदा मम ॥ ६२ ॥

तद्यथा—जये विजये अपराजिते मारसैन्यप्रमर्दनीये स्वाहा । सर्वार्थसाधनीये स्वाहा । एषा भगवती सर्वार्थसाधिका यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा कर्माणि करोति । सर्वत्र च रक्षाविधानेषु प्रयोक्तव्या । अवश्यं साधकेन मनसि कर्तव्या । सर्वविघ्नां नाशयति । सर्वमारकर्माणि च विधमयति । सर्वमन्त्राणि चामुखीकरोति । सर्वबुद्धधर्मां परिपूरयति । सर्वलौकिकलोकोत्तराणि च मन्त्रं आकर्षयति । ऊनातिरिक्तं परिपूरयति । सर्वाशां संपादयति । सर्वदुष्टां निवारयति । संक्षेपतः साधकस्येच्छया सर्वां करोति । मरणकाले चास्य संमुखं दर्शनं ददाति । सर्वापायदुर्गतिं परिशोषयति । सततजापेन पञ्चानन्तर्याणि क्षपयति । चतस्रोऽपि मूलापत्तयः तन्वीकरोति । स्मरणमात्रेण जापनैवोन्मूलयति । सर्वदेवोपपत्तिमनुष्योपपत्तिभ्यो प्रतिष्ठापयति । सर्वबोधिसत्त्वचर्यां नियोजयति । सर्वबुद्धधर्मां परिपूरयति । एवमपि भगवती अपरिमितगुणानुशंसा महाप्रभावा सर्वबुद्धानां मुखोद्गीर्णा सर्वमारनिर्नाशनाय भाषिता सर्वतथागतैः सर्वक्लेशशोषणी
अप्रतिहता सर्वकर्मसु सर्वरक्षावरणगुप्तयेषु च योजयितव्या । सर्वबुद्धानां विस्फूर्जितमेतत् । C 398
महासिंहनादमेतत् । सर्वचर्यानिश्रयमेतत् । सर्वबुद्धानां बोधिमेतत् । महासमाधिनिष्पन्दित-

मेतत्। महाप्रातिहार्यऋद्धिमेतत्। सर्वातिशयमेतत्। सर्वशान्तपदमेतत्। सर्वबुद्धास्पदमेतत्। निर्वाणपदमेतत्। स्वस्त्ययनपदमेतत्। अनभिलाप्यपदमेतत्। भूतकोटिपदमेतत्। अभावस्वभावपदमेतत्। यदुत मन्त्रपदं सर्वबुद्धाधिष्ठानपदमिति।

तदेव हस्तौ करसंपुटाविन्यस्तौ उभयाङ्गुलि मध्यसूचितौ ललाटदेशे न्यसेत्। एषा अपराजिताया मुद्राद्वितीया सर्वकर्मिका मूलमन्त्रेण सह विन्यस्ता सर्वाशां परिपूरयति। हृदयस्थाने न्यस्ता हृदयमन्त्रेण संयुक्ता सर्वरक्षोघ्ना सर्वापायदुर्गतीश्च नाशयति। एषा तृतीया भगवत्यापराजितायाः हृदयमुद्रा। तदेव हस्तौ नाभिदेशावलम्बितौ अधोनामितौ करौ। एषा चतुर्थी भगवत्यपराजिताया उपहृदयमुद्रा। हृदयमन्त्रेण सर्वकर्माणि करोति सर्वमङ्गलसंमतानि च सर्वशान्तिः स्वस्त्ययनं च। उदकाभिमन्त्र्य स्नपनं परमसौभाग्यकरणं अलक्ष्म्यापहं लक्ष्मीसञ्जननं श्रिया संपत्करणम्। तदेव हस्तौ वक्त्रदेशे स्थापयेत्। इयमपरा महामुद्रा भगवत्यपराजितायाः महामुद्रा पञ्चमं भवति। एवमनेन प्रकारेण असंख्येयानि मुद्राणि भवन्ति। सर्वापराजितमन्त्रेषु च प्रयोक्तव्यमिति। तदेव हस्तं दक्षिणक्षिप्तं ईषिन्मुष्टोपश्लेषितं वामहस्तेन दृढमुष्टिकम्। एषा सर्वबुद्धानां महाशक्तिमुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति ‧ ॐ विजये महाशक्ति दुर्धरि हूं फट् विजयिने फट् मङ्गले फट् स्वाहा तथागतशक्तिमन्त्रा सर्वदुष्टसत्त्वेषु प्रयोक्तव्या महाभयेषु च प्रत्युपस्थितेषु। ग्रामे वा मुद्रोपेता प्रयोक्तव्या सर्वकर्मसु। ग्रहनक्षत्रपीडासु च सर्ववेताडग्रहगृहीतेषु सर्वयक्षराक्षसपिशाचमरुतग्रहब्रह्मराक्षसादिषु गृहीतस्य मुद्रां बध्वा मन्त्राः प्रयोक्तव्याः। तत्क्षणादेव मुच्यति। सर्वमहाश्मशानप्रवेशेषु च प्रयोक्तव्या। सर्वविघ्ना विद्रवन्ति, प्रपलायन्ते, सर्वेण सर्वं न भवन्ति। एवंप्रकारान्य[ने]कानि सर्वकर्मार्थचित्राणि मन्त्रतन्त्रमाहात्म्यानि साधयति। सर्वरक्षावरणगुप्तिं च करोति। सर्वरक्षोघ्नं च पवित्रं आयुरारोग्यवर्धनमिति॥

G 399 तदेव हस्तौ करसंपुटावस्थौ ईषन्नामितमध्यमाङ्गुलीयकौ अनामिकावेष्टितकन्यसौ नेत्राकारौ उभयाङ्गुष्ठावष्टब्धौ। एष भगवतां बुद्धानां तथागतलोचनमहामुद्रा नेत्रभागे दर्शिता। सर्वतथागुणाग्रमात्रा सर्वतथागतानां जनेत्री सर्वविद्यानां प्रभंकरी सर्वार्थपरिपूरकी सर्वकुदृष्टीनां विशोधनकरी सर्वसत्त्वसम्यदृष्टिसंजननकरी सर्वतथागतकुलमाता सर्वमन्त्रगोत्रकुलंधरी सर्वलौकिकलोकोत्तराणां मन्त्राणां परिपूरकी (सर्वार्थापरिपूरकी) समाश्वासिका। भवति चात्र मन्त्रः— ॐ रु रु स्फुरु ज्वल तिष्ठ सिद्धलोचने सर्वार्थसाधनि स्वाहा। तथागतलोचना नाम महाविद्या। वचन वचन वचन ॐ बुद्धलोचने स्वाहा। इयं सा विद्या वज्रपाणेः सर्वकर्मिका अस्यैव। तदेव हस्तौ पूर्ववत् संपुटाकारं कृत्वा मध्यमाङ्गुलिरवनामितौ कन्यसाप्रसारिताग्रौ ईषिदवनामितौ उभयाङ्गुष्ठौ तर्जन्यपरिवेष्टितौ अनामिकासंश्लिष्टौ ईषत्कुञ्चितौ। इयं भगवतो सर्वबुद्धानां ऊर्णामुद्रा। तदेव हस्तौ उभयाग्रौ ललाटदेशे स्थापयेत्। एष सर्वतथागतानां ऊर्णामुद्रा। तदेव हस्तौ उभयाग्रवेणीकृतौ ललाटदेशे मण्डलाकारेणावेशयेत्। ईष तृतीयं उर्णामणिरत्नमुद्रा। तदेव हस्तौ उभयतः कुञ्चीकृतौ कन्यसाङ्गुलिवेष्टितौ उभयाङ्गुष्ठसंश्लिष्टौ।

इयं चतुर्थी ऊर्णामुद्रा । तदेवाङ्गुष्ठावनतौ ललाटदेशे चित्राकारेण दर्शयेत् । एष सर्वतथागतानां तथागतोर्णा । एते पञ्च महामुद्रा तुल्यवीर्या तुल्यप्रभावा सर्वकर्मिकानि भवन्ति । भवति चात्र मन्त्रः सर्वेषाम्—नमः सर्वतथागतानीम्योऽर्हद्भ्यः सम्यक् संबुद्धेभ्यः । हे हे बन्ध बन्ध तिष्ठ तिष्ठ धारय धारय निरुन्ध निरुन्धोर्णामणि स्वाहा । भगमन्त्रा सर्वोर्णामणिमुद्राणां सर्वकर्मिकाणि भवन्ति । एषा तथागतोर्णामुद्रा अप्रतिहता सर्वकर्मसु सर्वप्रयोक्तव्या । गोरोचनेन तिलकं कृत्वा मन्त्रं जपता तथागतोर्णा संग्राममवतरे । सर्वशात्रवः स्तभिता भवन्ति । दृष्ट्वा तं प्रपलायन्ते । विगतक्रोधाश्च भवन्ति । मैत्रचित्ता हितचित्ता सर्वसत्त्वा समाश्वस्ताश्च भवन्ति । दृष्ट्वा तं रोचनतिलकं कृत्वा सर्वक्रव्यादादयो न शक्यन्ते । दृष्ट्वा तं महाराजमहासत्त्वमहेशाख्यमहोत्साहं ज्वलन्तमिव पश्यन्ते । सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वयक्षराक्षसप्रेतपिशाचसर्वग्रहभूतकश्मला रौद्रचित्ता मैत्रचित्ता भवन्ति । अपक्रमन्ते तस्माद् देशात् सर्वोपद्रवचर्येभ्यश्च मुच्यते । G 400
सर्वग्रहगृहीतेषु सर्वमातरबालग्रहेषु ब्रह्मराक्षसादिषु गोरोचनमभिमन्त्र्य ललाटे तिलकं कृत्वा दर्शयेत् । सर्वे दृष्टमात्रा प्रमुञ्चन्ते विद्रवन्ति च प्रपलायन्ते । सर्वेण सर्वं तस्मै न भवन्ति । न भूयो गृह्णन्ते । यदि गृह्णन्ति, सर्वेण सर्वं विनश्यन्ति । एवं सर्वग्रहेषु प्रयोक्तव्यः सर्वतः मन्त्रतन्त्राणां कल्पेषु यान्युक्तानि विविधानि साधयति । लौकिकलोकोत्तरेषु यानि विधानमण्डलपटसाधनानि तान्यनेनैव साध्यानि । क्षिप्रतरं सिध्यन्ते । गोरोचनमभिमन्त्र्य तिलकं कृत्वा शत्रुमध्ये प्रविशेत् । विगतक्रोधा भवन्ति । न शक्यन्ते अभिभवितुम् । महाजनमध्ये जपता प्रविशेत् । सर्वे मैत्रचित्ता भवन्ति । आदेयवाक्याश्च भवन्ति । परैरनभिभवनीयश्च अधृष्यश्च सर्वत्र सर्वभूतानाम् । गोरोचनेनाभिमन्त्र्य सप्तवारानेनेन मन्त्रेण तिलकं कृत्वा महाश्मशानं प्रविशेत् । सर्वक्रव्यादाशिनः प्रपलायन्ते । सर्वग्रहमातराश्च नश्यन्ते । अधृष्यो भवति सर्वमनुष्याणाम् । तेजसा तस्य ज्वलन्तमिव दृष्ट्वा ओजोहारा अपक्रमन्ते । तस्माद् देशा दर्शनमपि न समनुप्रयच्छन्ति । कः पुनर्वादो ओजो हर्तुम् । क्षणमपि नाप्रतिष्ठन्ते । महाश्मशानं परित्यज्य सर्वभूतगणा ये तत्र निवासिनः ते प्रक्रमन्ते । इतश्चेतश्च न शक्यन्ते प्रेक्षितमपि । कः पुनर्वादो ओजो हर्तुम् हिंसयितुम् वा । एवमपीयं महाप्रभावा सर्वविद्या महर्द्धिका उपपरिवर्तते महाविद्या तथागतोर्णा नाम । असंख्यैश्च बुद्धैर्भगवद्भिः भाषिता गङ्गासिकतप्रख्यैः भाषिता चाभ्यनुमोदिता च एतर्हि शाक्यमुनिना सम्यक्संबुद्धेन भाषिता चाभ्यनुमोदिता च । येऽपि ते भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि सम्यक्संबुद्धाः तेऽपि भाषिष्यन्ते । एवमतीतानागतैर्बुद्धैर्भगवद्भिः संवर्णिता संप्रशस्ता अनुमोदिता । मयाप्येतर्हि शाक्यमुनिना संवर्णिता संप्रशस्ता कृताभ्यनुज्ञाता । सर्वसत्त्वानां सर्वासां विधितः साधयिष्यन्तीति । यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा सर्वकर्माणि करोति । वर्जयित्वाभिचारुकं कामोपसंहितं चेति ॥

तदेव हस्तौ संपुटाकारौ कृत्वा अन्योन्यावावेष्ट्य चित्रीकृतौ आत्मोरसि मध्ये स्थापयेत् । एतद् भगवतः समाधिवज्रस्य महामुद्रा, यां बध्वा अवैवर्तिको भवत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ G 401

नियतस्थम् । भवति चात्र मन्त्रः नमः समन्तबुद्धानाम् । ॐ बिभिदे चूर्णय चूर्णय वज्रधृक् वज्रधृक् हुँ हुँ जः जः समाधिजः हुँ फट् स्वाहा । अल्पमस्य विस्तरेण सर्वं तं प्रयोक्तव्यम् । अपरिमितानुसंश्वायम् । भगवां समाधिवज्रः सर्वबुद्धानाम् । तदेव मुद्रां कण्ठदेशे न्यसेत् । इयं सर्वबुद्धानां पद्मपद्ममुद्रा । एतदेव वामपार्श्वे न्यसेत् । उत्पलमुद्रा । एतदेव दक्षिणभुजे न्यसेत् । इयं भगवतो बुद्धस्य कृपालम्बनमैत्री मुद्रा । एतदेव हस्तौ उभयाङ्गुल्यवेष्टितौ मध्यमाङ्गुलिसंप्रसारितौ आभोगमण्डलाकारौ हृदयमध्ये न्यस्ता । इयं द्वितीया मैत्रीमुद्रा सर्वतथागतानां सर्वकर्मिकम् । अप्रतिहता । एवमनेनैव विधिना ललाटे तृतीया, ऊर्ध्वविन्यस्ता चतुर्थी, समन्तात् परिभ्रामिता पञ्चमा भवति मैत्रीमुद्रा । ध्यानालम्बनकाले च प्रयोक्तव्या । न सर्वे मानुषा विहेठयन्ति । न चास्य काये किंचिदाबाधमुत्पादयन्ति मानुषामानुषा वा सर्वयक्षराक्षसप्रेतपिशाचकटपूतनादयः । सर्वे च मारा मारकर्माणि कुर्वन्ति । सर्वे च विघ्ना अविघ्ना भवन्ति । भवति चात्र मन्त्रः- ॐ प्रस्फुर प्रस्फुर कृतालम्बन मन्त्रात्मक हौं । एष भगवतो मैत्री प्रयोक्तव्यः । तदेव हस्तावन्योन्याववेष्ट्य नेमिकाकारौ कृत्वा मण्डलाद् न्यग्रस्थापयेत् । ज्येष्ठाङ्गुलीयकावूर्ध्वस्थितौ ललाटदेशे न्यसेत् । एष भगवतो बुद्धस्य महाकरुणामुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति ॐ विश्वे स्वाहा । सर्वकार्मिका । सत्त्वानां प्रयोक्तव्या । करुणात्मका भवन्ति । तदेव हस्तावुद्वेष्ट्य चित्रीकृतानभयावस्थितौ । एषा बुद्धस्य भगवतो महामुदिता मुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति–ॐ मुनि मुनिगगन स्वाहा । एषा भगवती सर्वकर्मिका सर्वाशां परिपूरयति । प्रमुदितेन चेतसा प्रयोक्तव्या । सर्वं करोति । सर्वमन्त्रकल्पेषु यानि कर्माणि सर्वलौकिकलोकोत्तरेषु, तान्यशेषतो साधयतीति । तदेव हस्तावुभयाङ्गुष्ठविन्यस्तौ चित्रीकृतौ ललाटे दर्शयेत् । एषा भगवतस्तथागतप्रेक्षामुद्रा सर्वकर्मिका सर्वार्थसाधिका । मन्त्रं चात्र भवति ॐ महद्रते उपेक्षय सर्वधर्मां विश्वात्मने विश्वमूर्ति ज्वल ज्वलय सर्वबुद्धधर्मां हुँ फट् स्वाहा । षट्पारमितासु च
G 402 षण्मुद्रा भवन्ति । तदेव हस्तौ वरप्रदानौ । इयं दानपारमिता महामुद्रा । तदेव हस्तौ अन्योन्यसंकुचितौ नाभिदेशे स्थापितौ । इयं शीलपारमिता महामुद्रा । तदेव हस्तौ अधः कृत्वा कक्षाभ्यां संनियोज्य स्थापयेत् । इयं क्षान्तिपारमिता महामुद्रा । तदेव हस्तौ भुजोपरि स्थापयेत् । परामृश्यमाना विपर्यस्ताकारेण । इयं वीर्यपारमिता महामुद्रा । तदेव हस्तौ पर्यङ्कं बध्वामुपरि स्थापये वामदक्षिणमुपरि निबध्य च पर्यङ्कासने सर्वसत्त्वानां करुणायमाना ध्यानालम्बनगतदृष्टिः । इयं भगवत्या ध्यानपारमिताया महामुद्रा तदेव ध्यानपारमितामुद्रं पर्यङ्कमभिन्द्यं धर्मदेशनाकारा । इयं भगवत्या प्रज्ञापारमिताया महामुद्रा । तदेव पर्यङ्कमभिन्द्यात् । वामहस्त पर्यङ्के न्यस्य दक्षिणहस्तमवलम्ब्य भूमौ स्पृशेत् वज्रासनाकारेण । इयं भगवती सर्वबुद्धानामनुत्तरायां सम्यक्संबुद्धौ महामुद्रा । सर्वबुद्धधर्माणामेषा एव महामुद्रा । सर्वेषां मन्त्राणि भवन्ति–ॐ दाने दद दद ददापय ज्वल ज्वल सर्वबुद्धाधिष्ठिते हुँ हुँ जः स्वाहा । एषा दानपारमिताया महामुद्रा । ॐ शील शीलाढ्ये शान्तिकरणि शिवे प्रशस्ते सर्वबुद्धाधिष्ठिते स्वाहा । शीलपारमिताया महामुद्रा–ॐ शान्ते श्रीकरिक्षान्ते क्षान्तिकरि स्वाहा । इयं

क्षान्तिपारमितायाः । ॐ वीर्ये वीर्यमिति सर्वबुद्धाधिष्ठिते स्वाहा । अभावस्वभावे स्वाहा । वज्राक्रमणि स्वाहा । इयं वीर्यपारमितायाः । ॐ शान्तिकरि धूधूधूर्धरि धैर्ये वीर्ये गगने रमणे ध्यानवति स्वाहा । इयं ध्यानपारमितायाः ॐ धीः धूः इयं प्रज्ञापारमितायाः । ॐ त्रायाहिं भगवति सर्वबुद्धजुष्टे अनालम्बने गगनस्वभावे धर्मधातुमनुप्रविष्टे आलोककरि विधमय विधमय । सर्वक्लेशान्धकारम् । च्छोरय तारय माम् । अमूर्तिजे हुँ हुँ दालय सर्वकर्मां हुँ फट् स्वाहा । एषा भगवती बुद्धानां भगवतां महाबोधिमन्त्रा सर्वकर्मिकसर्वार्थसंपादिकाः सर्वानर्थप्रतिघातिकाः सर्वबुद्धधर्मा पारिपूरिका सर्वक्लेशां निषूदिनी सर्वमन्त्रां परकर्मकृतां विनाशनी सर्वमारविद्रापणी सर्वलौकिकलोकोत्तराणां मन्त्राणां प्रसाधनी सर्वपापां विधमनी सर्वदुर्गतिशोषिका सर्वदेव-मनुष्येषु सर्वबुद्धधर्मेषु प्रतिष्ठापनीति । संक्षेपतो यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा कर्माणि G 403 करोति । न शक्यमस्याः कल्पकोटीभिर्गुणमाहात्म्यसंवर्णनं असंख्येयैश्च बुद्धैर्भगवद्भिः प्रभाव-विकुर्वणचर्याधिष्ठानऋद्धिबलाधानं भाषितुं वर्णयितुं वा । एवमस्या भगवत्या अपर्यन्तगुण-विस्तारमाहात्म्यस्य विकुर्वणा इति षट्पारमितामपि विस्तरेण कर्तुम् । समासतो निर्देशप्रभाव-चर्या ऋद्धि च गुणगोत्रमधिष्ठितचर्या सर्वतो ज्ञेया विशेषाधिगमोऽपि वा ॥

गगनस्वभावां धर्माख्यां भावाभावविचारताम् ।
कल्पकल्पाक्षरं प्रयोक्त * * कर्मसिद्धिषु ॥ ६३ ॥
पुष्कलं कथिता ज्ञेभिः क्षिप्रं फलाकारसमुद्भवम् ।
गगनस्वभावमन्त्रार्थं मक्षरव्यक्तिभूषितम् ॥ ६४ ॥
फलन्ति बहुधा काले युक्तिमात्रि दभिमूक्षिता ।
मुद्रातं वै सविस्तरं कथितं तत्त्वचेष्टिभिः ॥ ६५ ॥
मन्त्रतन्त्रगतिं कालो नियमश्चैव सुयोजिता ।
जपो होमादिभिर्ज्ञेयं फले तत्त्वसमुद्भवे ॥ ६६ ॥
आश्रयाय न द्रव्याणां गतिर्लक्षणसुलक्षितम् ।
मन्त्रबोध स्वमन्त्रं च कुलयोनिसमोदयाः ॥ ६७ ॥
लक्ष्यते सिद्धिकाले हि मुद्राचिह्नसमुद्भवम् ।
तत्त्वनिष्ठागतो मन्त्री जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
सिद्धयः सिद्धहेतुत्वं दर्शयेत् कुलदेवताम् ॥ ६८ ॥
एता मुद्रा वराः प्रोक्ता मन्त्राश्चैव महायशाः ।
सिध्यन्ते विधिना युक्ता यथेच्छा मानसोद्भवे ॥ ६९ ॥ इति ॥

तदेव हस्तौ परिवेष्टिताङ्गुलीयकौ दक्षिणाङ्गुष्ठावनामितौ वामाङ्गुष्ठाधःस्थितौ । एषा सर्वबुद्धानां हृदयमुद्रा सम्यक्संबुद्धैस्तु भाषिता सर्वकर्मिकास्तु । भवति चात्र मन्त्रः—ॐ त्रैलोक्यपूजिताय हूँ फट् स्वाहा । सर्वकर्मकरा भवन्ति । सर्वमण्डलविधानेषु प्रयोक्तव्या सर्वैः G 404 सत्त्वानां महारक्षादिषु । तदेव हस्तावुभयाभ्यौ संकोचितावूर्ध्वमेलमध्यमाङ्गुलीयकौ । इयं भगवतां

सर्वबुद्धानां मूलमुद्रा। भवति चात्र मन्त्रः–ॐ द ददातु दण्ड हूं। ॐ सर्वसत्त्वामृतप्रदेशिकंकराय स्वाहा। दण्डकमण्डलू उभौ मूलमन्त्रौ। अनेन सर्वकर्माणि कारयेत्। सर्वत्र च सर्वमन्त्रेषु प्रयोक्तव्यः सर्वसिद्धिददः सर्वरक्षाविधानेषु प्रयोजितव्यौ। तदेव हस्तौ उभयकरावलम्बौ अन्योन्यावसक्तवेणिकौ शिरःस्थाने स्थापयेत्। विशेषेषु प्रयोक्तव्यः। भवति चात्र मन्त्रः—ॐ ज्वल ज्वल सर्वबुद्धाधिष्ठिते स्वाहा। अनेन तथागतकुले सर्वकर्माणि कारयेत्। आर्यमञ्जुश्रियो मन्त्रेण वा रक्तेन करवीरेण माल्तीकुसुमेन वा द्रव्यस्योत्तेजनं कार्यम्। मञ्जुश्रीमूलमन्त्रेण सर्वतो योज्यम्। सर्वतश्च प्रयोजयितव्यः सर्वकर्मसु। तदेव हस्तौ उभयवेणिकाकारौ शिरःस्थाने स्थापयेत्। सर्वबुद्धानामुष्णीषमहामुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति—भ्रीं। सर्वकर्मिकोऽयमुष्णीषराजा। तदेव हस्तौ पद्माकारं कृत्वा हृदये स्थापयेत्। इयं पद्मकुलेऽवलोकितमहामुद्रा सर्वकर्मिका। मन्त्रं चात्र भवति --ध्रीः। तदेव हस्तौ कुड्मलपद्माकारौ नाभिमध्ये स्थापयेत्। इयमपरा अवलोकितस्य सर्वविघ्नप्रशमनी नाम महामुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति—जिः। अयं सर्वकार्मिकोऽवलोकित सर्वभयेभ्य. प्रयोक्तव्यः। तदेव हस्तौ सुशिराकारौ कृत्वा अन्योन्यप्रतिकुलाङ्गुलिभिर्ल्लाटदेशे न्यसेत्। इयं सर्वबुद्धानां प्रभावमानसोद्भवं नाम महामुद्रा। मन्त्राणि चात्र प्रयोक्तव्यानि। एकाक्षराणि चतस्रः—ताः। वाः। द्रोः। ह्राः। एते मन्त्रा एकाक्षराः। चतस्रश्चतुर्भिर्बुद्धकोटिभिर्भाषिता सर्वबुद्धानामुष्णीषराजानः सर्वेषां विद्यामहर्द्धिकानां प्रभावा सर्वधर्माश्रयाच्चतुऋद्धि पञ्चचरणाश्चतुरार्यसत्यमास्था बोधिप्राग्भारशिरा चतुर्विमोक्षचतुर्ध्यानसमाधिभिः सर्वैरासेवनीया अप्रकम्प्या सर्वलौकिकलोकोत्तरादिभिर्मन्त्रतन्त्रैः परमेश्वराः सर्वविद्याराजा चक्रवर्तीनां ज्येष्ठा सर्वमन्त्राणाम्, अचिन्त्या सर्वसमाधिविशेषाणां बोधिप्राप्तमिति महासत्त्वैस्त्रैलोक्याधिपतयो सर्वकुलमन्त्रतन्त्रादिषु अगम्यां सर्वबोधिसत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धैः। एवमचिन्त्या अस्वभावा अलक्षणा गगनस्वभावभूतकोटिधर्मधातुमनाविलप्रतिष्ठा इति संक्षेपतः सर्वकर्मसु
G 405 प्रयोक्तव्या इति। अनेनैव सर्वकर्माणि कारयेत्। विशेषतः आर्यमञ्जुश्रियः मूलकल्पविधानेष्वपि। तदेव हस्तौ संपुटाकारौ शिरःस्थाने मुपदर्शयेत्। इयं सर्वतथागतकुले सर्वविषनाशिनी नाम महामुद्रा सर्वविषकर्मसु प्रयोक्तव्या। ट्रूं।

अनेन मुद्रया युक्त मन्त्रोऽयं बुद्धभाषितः।
निर्विषां कुरुते क्षिप्रं सत्त्वां स्थावरजङ्गमाम्॥ ७०॥
निर्विषां कुरुते नागां उद्युक्तां विषदर्पिताम्।
सर्वदोषां तथा हन्ति * * * रागद्वेषजा॥ ७१॥
परा मोहजाश्चैव मन्त्रोऽयं मुद्रेण योजितः।
विविधां कुरुते कर्मां विषसत्त्वसमुद्भवाम्॥ ७२॥

संक्षेपत इयं मुद्रा—

विन्यस्ता मन्त्रयानेन विविधां च विषोद्भवाम्।
कर्मां करोति विषं चास्य वशो भवति यदृच्छया॥ ७३॥

इति लक्षजप्तेन । तदेव हस्तौ समयवज्राकारौ उभयत्रिसूचिकौ वामहस्तादधःस्थितः दक्षिणहस्तादूर्ध्वविपर्यस्तं कृत्वा शिरःस्थाने न्यसे । तदेव वज्राधिपतेर्हृदयमुद्रा सर्वकर्मिका । मन्त्रं चात्र भवति–हूँ । सर्वकर्मिकोऽयं सर्वार्थसाधकः सर्वक्रूरग्रहेषु प्रयोक्तव्यः । नान्यथा विचिकित्सा कार्या । ॐ भद्रे भद्रवति करटे रत्न विरत्न स्वाहा । अस्य जापः प्रथमं कार्यः अष्टशतम् । ततो मञ्जुश्रीः सिध्यतीति । तदेव हस्तौ उभयकुञ्चिताग्राङ्गुलीयकौ मूर्ध्नि स्थापयेत् ॥ इयं समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महामुद्रा । सर्वकर्मेषु प्रयोक्तव्या सर्वरक्षेषु प्रतिकृता सर्वार्थसाधनी मञ्जुश्रियसाधनेषु च पूर्वमारभेत्, पश्चात् कर्मं कुर्यात् कुलत्रयसामान्यमिति । तदेव मुद्रं आर्यसमन्तभद्रस्य ललाटे न्यसेत् । आकाशगर्भस्य महामुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति सर्वकर्मिकम्–स्वं । तदेव मुद्रं गलदेशे स्थापयेत् । इयं विमलगते महामुद्रा । मन्त्रं चात्र (भवति सर्वकर्मिकम्–लं । तदेव मुद्रां उरसिमध्ये स्थापयेत् । मैत्रेयस्य महामुद्रा । मन्त्रं चात्र) भवति–मं । तदेव हस्तौ पूर्ववन्नाभिदेशे स्थापयेत् । क्षितिगर्भस्य महामुद्रा । मन्त्रं चात्र G 406 भवति सर्वकर्मिकम्–क्षिं । तदेव मुद्रा कटिदेशे नियोज्या ऊर्ध्वं क्षिपेत् । इयं गगनगञ्जस्य मुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति सर्वकर्मिकम्—गं । तदेव मुद्रां उभौ भुजे न्यस्य शिरसि भ्रामयेत् नृत्तयोगेन । इयं सर्वबोधिसत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धानाम् । भवति चात्र मन्त्रः–ध्रुः । एषोपरिमितानुशंसकर्मप्रभावविस्तारा सर्वतः द्रष्टव्यगुणमाहात्म्ययोगेन । तदेव मुद्रं ऊर्ध्वमवलोक्यावनामयित्वा ऊर्ध्वं क्षिपेत् नृत्तयोगेन । इयं सर्वदेवानां त्रिधातुस्थितानां अनन्तलोकधातुपर्यापन्नानां ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः सर्वसत्त्वानां यक्षयक्षीराक्षसराक्षसी.... .... विस्तरेण सर्वेषां इयं महामुद्रा सर्वत्रतालया नाम सर्वकर्मसु प्रयोक्तव्या । आह्वानन विसजन मण्डलपटलविधान सर्वसाधनेष्वपि कर्मसु प्रयोक्तव्या । मन्त्रं चात्र भवति—ओष्ट्रं । तदेव हस्तौ अञ्जलिकृताकारौ मूर्ध्नि न्यसेत् । एषा सर्वमन्त्रेषु महाबन्धनान्तरावणमहामुद्रा । कटिदेशे च भ्रामयितव्या । भवति चात्र मन्त्रः—ग्यं । जये कुमारि शुक्रबन्धनि स्वाहा । अष्टशतजप्तं सूत्रकं कन्याकर्तितकं कट्यां बन्धयेत् । शुक्रबन्धः कृतोभवति । सर्वदिशांश्च व्यवलोकयेत् । सर्वविघ्नाः स्तंभिता भवन्ति । सर्वतश्च रक्षामुद्राबन्धमतः साधकेन सर्वकर्मसु । अयं प्रथमतः प्रयोगः कार्यः । पश्चात् कर्माणि कर्त्तव्यानीति । एवमष्टाविंशकं शतं भवति मुद्राणाम् । साधकेन यथेच्छयान्यतरं प्रयोक्तव्यं सर्वकर्मसु सर्वाणि वा । एवमसंख्येयानि अनेन प्रयोगेण मुद्राणि भवन्ति । असंख्येयाश्च मन्त्राः । तदेव हस्तौ करसंपुटाकारौ स्थितौ अन्योन्याङ्गुलिभिः समस्तव्यस्ताभिरुभयाङ्गुष्ठोपशोभिताभिः पञ्चसूचिकाकारेण उभौ मुष्टिकृतौ शिरःस्थाने मूर्धनि न्यसेत् । इयमार्यमञ्जुश्रियः पञ्चशिखा नाम महामुद्रा सर्वकर्माणि करोति । अङ्गुष्ठाक्षेपविक्षेपां सङ्कुचितैराह्वाननं विक्षिप्तैर्विसर्जनम् । एवं मनसा सर्वप्रयोगैः सर्वकर्माणि करोति । मञ्जुश्रीमूलमन्त्रहृदय उपहृदय सर्वमन्त्रेषु वा संयुक्तः सर्वार्थकरा भवति । तदेव मुद्रां त्रिसूच्याकारम् । एषा मञ्जुश्रियस्य त्रिशिखेति कथ्यते । तदेव कन्यसाङ्गुलिभिः सूच्याकारं एकचीरेति अवगन्तव्यम् । उभौ करसंपुटावस्थितौ सर्वतो नामितौ अङ्गुलिभिः सुरचितविन्यस्ता G 407

गाढावसक्तं मूर्ध्नि स्थापितम् । एषा मञ्जुश्रियस्य सर्वशिरोभ हस्तौ ततोच्यवाग्र उत्तानकावस्थितौ वक्त्रमध्ये धारयेत् । इयं म वतार्य हृदयमध्ये न्यसेत् । इयमपरा मञ्जुश्रियः हृदयमुद्रा । तदे न्नामितललाटस्थौ । इयमपरा हृदयमुद्रा । तदेव हस्तौ उद्धृत्य मिका अवनामितदर्शिताग्रौ तर्जन्या कृतवेष्टितौ अङ्गुष्ठपार्श्वासु महामूलमुद्रा सर्वमहाभयेषु प्रयोक्तव्या । द्वौ मृसृतौ तदेव इ तदेव बद्धौ अवनाम्य संवेष्टितौ । मञ्जुश्रियः मयूरासनमुद्रा । उभयपार्श्वयोः तिर्यकं पीठाकारेण । इयमपरा भद्रपीठमुद्रा । च्छ्रिता । इयमपरा यष्टिमुद्रा । द्विरुच्छ्रितौ ध्वजमुद्रा । त्रिरुच्छ्रि घण्टा । तदेव हस्तं तर्जन्योपरिस्थितौ तं छत्रमुद्रा । सर्वेष्ववनते ङ्गुले तर्जन्यावस्थितं अङ्कुशमुद्रा । तदेव तर्जनीं दृढमुष्टावसि ग्रस्थितौ तिर्यक् शूलमुद्रा । उभयतर्जन्योपेतं महाशूलमुद्रा । तदेव मुद्रा हृदये स्थापयेत् । मनोरथमुद्रा भवति । तदेव ह उपर्युपरि यमलमुद्रा । तदेव कुड्मलाकारं विकाश्य मूर्ध्नि क्षिपेत शाकारं पूर्णमुद्रा । मूर्ध्नि स्थिता तदेवाधो मुष्ट्योपरचितं मञ्जुश्रि करौ स्वस्तिकं मञ्जुश्रियस्योर्ध्वगं माल्ती कुसुमानुरक्तं सर्वं बन्धि वेष्ट्य मध्यमाङ्गुलिप्रसारिताग्रम । इयमपरा कार्त्तिकेयस्य म पताका च पूर्ववद् ज्ञेया । तदेव हस्तौ संपुटीकृत्य विकासयेत तदेव हस्तौ तिर्यगवस्थितौ सुनेत्रीकृतौ स्वस्तिकाकारं कारयेत् वस्थितौ सुप्रसारितौ मध्यसुविन्यस्तैः । इयमपरा मञ्जुश्रियः स्वस्ति
408 वाकारौ अन्योन्यविश्लिष्टौ अङ्गुलीभिः । इयमपरा पल्लवमुद्रा । सर्वबुद्धास्पदमुद्रा । मञ्जुश्रियः तदेव धर्मभेरीमुद्रा । (तदेव हस्तौ) परिवेष्ट्य मूलाङ्गुष्ठतलविन्यस्तौ अङ्गुष्ठावनतौ शङ्खाकारकृतचिह्नौ मुद्रा । चक्रं पूर्ववत् धर्मचक्राकारम् । इयमपरा मञ्जुश्रियः ध न्यस्तं नृत्ययोगं कृत्वा क्षिपेदपसव्ययोगेन । इयमपरा महाक्री महाभयेभ्यो प्रयोक्तव्या । नश्यन्ते अविकल्पत इति ॥

एवमनेन प्रयोगेणासंख्येयानि मुद्राणि भवन्ति । असंख्ये असंख्येयानि च द्रष्टव्यानि । महाप्रभावोद्गतस्वयंभुवोद्भवाः । त कल्पविसरे सर्वाणि च शुचिवस्त्रान्तरावनद्धेन प्रयोक्तव्यानि । यथा महाप्रभावानि । अन्यथा समयव्यतिक्रम इति । एता साधनौपयि नृत्तगीतप्रयोगैश्चानेकानि भवन्ति । रुतविशेषैश्च सत्त्वानां मण्डलसाधनोपयिकानि महामुद्राणि भवन्ति ॥

नाम महामुद्रा । तदेव ः महावक्त्रमुद्रा । तदेवा- स्तौ अधोवस्थितौ किंचि- ङ्गुलिमवनमनामितौ अना- तौ । इयमपरा वक्त्रदंष्ट्र- । मञ्जुश्रियः उत्पलमुद्रा । तर्जन्या कन्यसावष्टब्धौ ङ्गुलिमुष्टीकृतौ तर्जन्येको- ताकामुद्रा । चतुरुच्छ्रितौ क्रमुद्रा । हुं । अङ्कुशाग्रा- ष्टिमुद्रा । तदेव सूच्या- ग्रोच्छ्रितं एकलिङ्गमुद्रा । संपुटाकारौ यमलं कृत्वा समुद्रा । तदेव पूर्णमाका- ष्टमुद्रा। पुनः चित्रीकृतौ । तदेव हस्तौ विपरीतं ः शक्तिमुद्रा । घण्टा परा पद्ममुद्रा मञ्जुश्रियः । ङ्गुलीभिश्चतुर्भिश्चतुर्दिश्य- ग । तदेव हस्तौ करपल्ल- मुष्ट्यौ कृतौ । इयमपरा कृतौ मध्ये सुषिरौ तर्जन्या मपरा मञ्जुश्रियः धर्मशङ्ख- मुद्रा । तदेव मुद्रं ललाटे र्वाणमुद्रा । मूलमन्त्रेणैव

(मुद्राकल्पमन्त्रतन्त्राश्च) । सर्वप्रयोक्तव्यानि । इह यद्भिः सत्त्वैर्न दृश्यन्ते । एवं करमुद्राणि हस्तविन्यस्ता : कथितः । एवमधुना

सर्वबुद्धानां तथा स्तूपा भुवि धातुपरं पटे ।
बोधिसत्त्वानां तथा पद्मश्रावकाणां परिमण्डलम् ॥ ७४ ॥
चतुरस्रः प्रत्येकबुद्धानां कथितां त्रिमण्डलो ।
नानावाहननाना विविधाभरणविभूषणा ॥ ७५ ॥
नानाप्रहरणाश्चैव देवयक्षग्रहापराम् ।
नृणां पुरुषमतः स्यात् ऋषीणां दण्डकमण्डलुः ॥ ७६ ॥
यस्य यो प्रहरणं नित्यं यो वा वाहनभूषणा ।
तस्य कुर्यान्मुद्रा संक्षेपान्मण्डलेष्विह ॥ ७७ ॥
आदित्यचन्द्रौ तदा कुर्यान्मण्डलोपरिमण्डलौ ।
संक्षेपाद् यस्य यो भूमि तदेव मनसाह्वये ॥
विविधाः प्राणिनो प्रोक्ता तेषां तेषां तदा न्यसेत् ॥ ७८ ॥
बहुप्रकारा सत्त्वाख्या बहुमुद्राश्च प्रकीर्तिता ।
तेषां कर्मतो कुर्याद् विधानेन मण्डले ॥ ७९ ॥ G 409

ब्रह्मस्य पद्मं शक्रस्य वज्रं वरुणस्य पाशं रुद्रस्य शूलं दुर्गस्य पट्टिशं ऋषिस्य कमण्डलु यमस्य दण्डं धनदस्य गदा कुबेरस्य खड्गं हुताशनस्याग्निकुण्डं पृथिव्या कलशः । एवमादयो यथा यस्य प्रहरणानि आभरणानि च लोकेऽद्य दृष्टानि, तानि सर्वत्र यथानुस्मरतः विधिना तानि सर्वाणि सर्वमण्डलेषु प्रयोक्तव्यानि । कल्पोक्तेन वा विधानेनालिखितव्यानि सर्वमण्डलानि सर्वसत्त्वानां अर्थाय हिताध्याशयेन चेतसा सर्वसत्त्वानां करुणायमानेन उत्पादितबोधिचित्तेन सर्वसत्त्वाननुकम्पयमानेन सर्वमण्डलान्यभिलिखितव्यानि सर्वमण्डलाभिषेकाभिषिक्तैः महामण्डला (भिषिक्तैर्वा । आर्यमञ्जुश्रियः दृष्टमण्डला) भिषिक्तेन । अन्यवश्यं सर्वमण्डलं लिखेत । आर्यमञ्जश्रीः मनसि कर्तव्यः । यत्कारणम् (अभिषिक्तोमया) सर्वबुद्धैश्च गङ्गासिकताप्रख्यैः सर्वमन्त्राणां गम्भीरतत्त्वार्थनयधर्मदेशना कुमारबालरूपिणा मन्त्ररूपेण सत्त्वानामर्थं करिष्यसीति ॥

न मन्त्रमुद्रसंयुक्तं न कुर्याद् धर्मसमाहितम् ।
अहितं कुर्यान्नात्र नाहितं हितमीप्सितम् ॥ ८० ॥
मुद्रामन्त्रसमायुक्तो अहितं चैव निवारयेत् ।
हिताहितं सदा सर्वं अहितं चैव निवारणम् ॥ ८१ ॥
हितैव सर्वमन्त्रो कुर्यान्मन्त्रमुद्रितो ।
न मुद्रमन्त्र तत्कुर्यान्न मन्त्रं मुद्रितं तथा ॥ ८२ ॥
मुद्रार्थसंयुक्तो सफलार्था साधयिष्यते ।
सफलं मुद्रसंयुक्तो मन्त्रो मुद्रफलोदयः ॥ ८३ ॥

साधयेत् कर्मविस्तारं मुद्रसमं चिन्तया ।
शान्तिका ये तु मुद्रा ये मन्त्रा चैव शान्तिके ॥ ८४ ॥
मन्त्रमुद्रसमायोगा शान्तिकं कर्ममारभे ।
पौष्टिकेषु च मन्त्रेषु बध्नीयान्मुद्रसंभवम् ॥ ८५ ॥
पौष्टिकं मुद्रमित्याहुः कथिता मन्त्रयोजिता ।
शान्तिके शान्तिकं कुर्यात् मुद्रमन्त्रैर्विहोदितैः ॥ ८६ ॥
G 410 जिनैः जिनमन्त्रमुख्यैस्तु मुद्रैश्चापि विभागतः ।
शीतलेषु च सर्वर्तुसर्वकर्मांश्च साधयेत् ॥ ८७ ॥
पुष्ट्यर्थं कथिता मन्त्राः अब्जकुले तु समुद्भवा ।
मन्त्रतन्त्राणि तीक्ष्णैः मुद्रैश्चापि तथोदितैः ॥ ८८ ॥
विख्यातैः कथितैर्मन्त्रैः मुद्रैश्चापि महर्द्धिकैः ।
अब्जकेतुसमादिष्टैः शुचिभिश्चैव दीपितैः ॥ ८९ ॥
प्रशस्तैर्मङ्गलैश्चापि आरोग्यार्थसुपुष्कलैः ।
क्रोधयुक्तैस्तथा मन्त्रैः मुद्रैश्चापि वर्णितैः ॥ ९० ॥
भोगार्थसंपदोद्दिष्टैः निर्मलैश्चापि शोभनैः ।
शुक्लैः सितमुद्रैस्तु मन्त्रमुद्रसमोदितैः ॥ ९१ ॥
साधयेत् संपदां मन्त्रां भोगकारा जन्मनि ।
तथाविधैः मन्त्रमुद्रैस्तु साधिता सफलोदया ॥ ९२ ॥
क्रोधमन्त्रा तथा प्रोक्ता मन्त्राद्या प्राणोपरोधिका ।
कथिता वज्रिणे तन्त्रे जिनाब्जे च समुद्भवे ॥ ९३ ॥
तेजिनो बहुधा उग्रा दुष्टसत्त्वदमापहा ।
नियुक्ता प्राणहिंसायां न कुर्यात् तां तु धीमता ॥ ९४ ॥
मुद्रा च दण्डदमनवज्रशूलाभिपट्टिशा ।
विविधा प्रहरणाश्चैव महाशूलास्तु यमान्तके ॥ ९५ ॥
संयुक्ता मन्त्रिभिः क्षिप्रं कृत्वा प्राणापहं ध्रुवम् ।
तन्न कुर्याच्च तं धीमां सर्वप्राणोपरोधिनम् ॥ ९६ ॥
भजेन्मन्त्रतन्त्रज्ञः क्रूरं क्रूरसमुद्गितम् ।
मुद्रा क्रूरतरः प्रोक्ता क्रूरमन्त्रेषु योजिता ॥ ९७ ॥
क्रूरसत्त्वैः यथा सिद्धा क्रूरकर्मान्तचारिभिः ।
विविधां नारकां दुःखां प्राप्नोतीह स दुर्मतिः ॥ ९८ ॥
न कुर्यात् क्रूरमन्त्रेभ्यो दुःशीलानां चाभिचारुकम् ।
क्रूरमन्त्र तथा मुद्रं न दद्युः सर्वतो जनाः ॥ ९९ ॥

यस्मात् फलमनिष्टं वै रनुभूये पुनः पुनः । G 411
न विद्या सुखं तदा मन्त्री क्रूरक * * ॥ १०० ॥
* * * * * * * * समोदिता ।
त्रिधा * * * * * * सिद्धिषु दृश्यते ॥ १०१ ॥
इष्टं इष्टफलायत्तं * * * * * * ।
होमं क्रूरकर्मेषु तस्माद्धर्मां विवर्जयेत् ॥ १०२ ॥
मुनिश्रेष्ठो सयोगा * * * * * * ।
* * * * अब्जिनो गीता हीना क्रूरकर्मभिः ॥ १०३ ॥
गीता वज्रकुले मन्त्रा त्रिधा ते परिकीर्तिता ।
हीनोत्कृष्टम * * * * * * * * ॥ १०४ ॥
* * मुद्रसमुद्देशं बहुमन्त्रार्थविस्तरम् ।
कथिता जिनवरैः पूर्वं अधुना ये इहोदिताः ॥ इति ॥ १०५ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात्
चतुस्त्रिंशतिमः महामुद्रापटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥



G 412 ## ३७ मन्त्रमुद्रानियमकर्मविधिपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म--अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये मूलकल्पे अपरमपि मुद्रा परमगुह्यतमम् । सर्वेषां मुद्रातन्त्र विधानं सर्वमन्त्राणां संमतं सर्वमन्त्रैश्च सह संयोज्य सर्वकर्मप्रसाधकं सम्यक्संबोधिमार्गविशोधकं सर्वभवमार्गविनाशकं सर्वसत्त्वोपजीव्यं आयुरारोग्यैश्वर्यसर्वाशापारिपूरकं सर्वबोधिपक्षधर्मपरिपूरकं सर्वसत्त्वसंतोषणकरं सर्वसत्त्वमनाशाभिरुचितसफलाभिकरणं सर्वकर्मकरं सर्वमन्त्रानुप्रसाधकं सर्वमुद्रामन्त्रसमेतम् । शृणु कुमार । मञ्जुश्रीः ॥

आदावेवोष्णीषलक्षणं भवति । प्रसृतसमोहानोभयपाणिना जिह्वा आनामिकाङ्गुल्यौ करमध्ये नखे नखं परिधाय अङ्गुष्ठाग्रेणोपगूढाः कन्यसौ सूच्याकारेण संहताग्रा तथैव मध्यमा समनखशिखासंसक्तमध्यगौ प्रदेशिन्यौ सूच्याकारसमन्तात्वभासोष्णीषमहालक्षणं नाम महामुद्रा । भवति चात्र मन्त्रः--आः मः हं । तदेव प्रदेशिन्यौ संचार्य नखेन नखमालभेत् । मण्डलाकारसूच्याभिः कुदृष्टिशल्यविपर्यासदाहनं नाम महाधर्मचक्रमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति-- ॐ धुन पातय छिन्द चक्रे वज्रिणि हूं समयिरवो भागे प्रदेशिन्यो निर्गुगुगुल्याकातृकं चतुर्मारारिशयनी । वज्रवीरा चलाचलमहा महीक्लेशासनी नाम महामुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति---- ॐ वज्राननि हूँ फट् ।

पर्यङ्क तु मुद्रामन्त्रा च संयुक्ता सर्वकर्मसु ।
नश्यन्ते सर्वविघ्ना वै शरदीव यथाम्बुदा ॥ १ ॥
चतुर्मारकृता ये च विघ्ना ससुरासुराः ।
नश्यन्ते दृष्टमात्रं वै मुद्रं पर्यमुत्तमम् ॥ २ ॥
परतस्तुल्यमुद्दिश्य तृतीया मुक्तप्रदेशिनी ।
संकुचिताग्र्या शुभा चैव मुष्टिस्ताथागती स्मृता ॥ ३ ॥

त्रैलोक्येन महामहेश्वरगभस्तिमालिनी नाम महामुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति--ॐ विजये
G 413 हः । तथागतमुष्टिमुद्रा च । एभिरन्यतमैर्मुद्रैः हस्तद्वयेनावबध्वा साधनकाले पूर्वसेवाकाले वा सकृदुच्चार्य यावदिच्छं जपेत् निषण्णो स्थितो वा । एवं सर्वविघ्नविनायकाः अवतारं न लभन्ते । सिद्धिश्चाभिमुखीभवति ॥

ता एव प्रदेशिन्यः संचार्य मध्यमयोपरि संसक्ताग्रां कारयेत् । उद्गतोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति- ॐ ज्वलोज्ज्वल दीप्तोद्गतोष्णीष धुन धुन हूँ ॥

ता एव प्रदेशिन्यो संचार्य मध्यमसूच्या सदा नखशिखरसंसक्ता निर्भुग्नगुल्फकुण्डलाकारमुद्रा सितातपत्रोष्णीष । मन्त्रं चात्र भवति---ॐ म म म म हूं निः ॥

ता एव प्रदेशिन्यो परतस्तुल्यमुत्तम्य आश्लेष्य मध्यमसूच्ये तेजोराशिमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति---ओं तथागतोष्णीष अनवलोकितमूर्ध्नि तेजोराशि हूँ ज्वल ज्वल एक एक दर विदर छिन्द भिन्द हूँ हूँ स्फट् स्फट् स्वाहा ॥

ता एव प्रदेशिन्याग्रसंसक्तमध्यमसूच्ये मण्डलाकारो जयोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति–ओं जयोष्णीष ज्वल ज्वल बन्ध बन्ध दम दम हूँ. हूँ. हूँ. हः हन हूं जयोष्णीष मन्त्रा ॥

तथैव प्रदेशिन्याग्रा संचार्य मध्यमध्यमसूच्या नखस्योपरि तृतीयभागे श्लिष्टा चक्रवर्तिमुद्रा । ओं नमो अप्रतिहत तथागतोष्णीषाय अनवलोकितमूर्ध्नि चक्रवर्ति हूँ ज्वल ज्वल धक धक धुन धुन विधुन त्रासय मारयोत्सादय हन हन अं अं अः अः कः कः प्रोंखिनि प्रोंखिनि कुण्डलिन्ति अपरोजितास्त्रधारिणि हूँ फट् । चक्रवर्ति ता एव प्रदेशिन्याग्रा संचार्य मध्यमसूच्या नखस्याधस्तात् तृतीयभागे संयुक्ता मन्त्राधिपस्य चक्रवर्तिने मुद्रा । ता एव प्रदेशिन्याग्रा संचार्य सूच्या नखस्याधस्तात् संसक्ता मन्त्राधिपस्य मुद्रा । ता एव प्रदेशिन्याग्रा संचार्य मध्यमसूच्या नखपर्वयोरन्तरे संसक्ता महाचक्रवर्तिने मुद्रा । ता एव प्रदेशिन्याग्रा संचार्य मध्यमसूच्य तृतीये पूर्वे अधस्तात् संसक्ता कुण्डलाकारेण महाचक्रवर्तिने मुद्रा । ता एव G 414
प्रदेशिन्याग्रा संचार्य तृतीये पर्वे मध्यमसूच्या पर्वयोरन्तरे संसक्ता मन्त्राधिपस्य महाचक्रवर्तिने मुद्रा । ता एव प्रदेशिन्याग्रा निर्मुग्नगुल्फसत्रिकं मध्यमसूच्या मध्यमपर्वयोरधस्तात् संसक्ता पर्वतृतीयेन अपराजितोष्णीषचक्रवर्तिन हृदयमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति–ॐ अपराजिता धिक् ॥

ता एवोष्णीषमूलमुद्रायान्यतमेन वा सोपचारविन्यास सर्वकर्माणि कारयेत् । अङ्गुष्ठाग्रैश्चलितैरनामिका परामृज्योत्कर्षयेदावाहनम् । मन्त्रंचात्र भवति–नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय । एहि एहि भगवं । धर्मराज । प्रतीच्छेयं अर्घ्यं गन्धं पुष्पं धूपं बल्यं दीपं च । मां चाभिरक्षाप्रतिहतबलपराक्रमाय स्वाहा । आवाहनं शुक्लपुष्पैः स्वरूपेणार्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनोपविशने तदानेनैव दिशि विदिशि अध ऊर्ध्वं च बन्धयेत् ॥

ता एवानामिकौ अङ्गुष्ठाग्रैरपमृज्याथ नामयेत् । मध्यमे पर्वे स्पृश्योत्क्षिपेत् । विसर्जनार्घेण स्वदेवताया अपसव्येन भ्रामयेत् । मुद्रा दिशा बन्धा मुक्ता भवन्ति । मन्त्रं चात्र भवति– नमोऽप्रतिहतोष्णीषाय । गच्छ गच्छ भगवं । धर्मराज प्रतीच्छ मयार्घ्यं गन्धं पुष्पं धूपम् । मां च रक्षाप्रतिहतबलपराक्रमाय । मुद्रा मन्त्रविसर्जनार्घेण ॥

ता एव प्रदेशिन्यौ अधस्तात् तृतीये पर्वे मध्यमसूच्ये संसक्तावन्योन्य अङ्गुष्ठौ सहकन्यसैः निःपीडितमुष्टिः मध्यमसूच्यौ । मन्त्रं चात्र भवति–नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय । ॐ ॐ ह्रौं बन्ध हूँ फट् । अप्रतिहतोष्णीष तेजोराशे । मुद्रामन्त्रा सर्वबन्धादिषूपयुज्यन्ते सर्वकर्मिकाः ॥

ता एव प्रदेशिन्यौ आकुञ्चिताग्रा मध्यमसूच्या तृतीयपर्वे द्विपिदसंसक्ता विकरणोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति–नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय विकरण धुन धुन हूँ । विकरणोष्णीषः भगवतो विद्याधिपते महाविद्याराजा उष्णीषतन्त्रे सर्वविघ्नविनायकोपघातेष्वभिषेकमात्मरक्षादिशा (बन्धमण्डल) बन्धादिषु सर्वकर्मेषु प्रयुज्यते ॥

ता एव प्रदेशिन्यौ विकसिताकुञ्चिताग्रा चलिताङ्गुष्ठौ अग्नेरावाहनं पश्चाद्धोमगामीति । G 415

एष एव विसर्जनं विक्षिप्तैः प्रदेशिन्यौ ज्वालामालिन्योष्णीषमुद्रा । अप्रतिहतः सर्वकर्मसु । मन्त्रं चात्र भवति—नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय एह्येहि तेजोमालिने अग्नये स्वाहा ॥

ता एव प्रदेशिन्यौ आकुञ्चिताग्रा मध्यमसूच्या तृतीये पर्वे मध्यमपर्वयोरन्तरे संसक्ता बलोत्कटोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय इमं गन्धं पुष्पं धूपं बलिं दीपं च प्रतीच्छ । हर हर सर्वबुद्धाधिष्ठिते धर्मराजाप्रतिहताय स्वाहा ॥

गन्धादिषु मन्त्रः—विपर्यस्तानामिके तृतीये तर्वाङ्गुष्ठे संसक्ता प्रदेशिन्यः सूच्याकारः वज्रतेजोष्णीषमुद्रा । अप्रतिहतः सर्वविनायकानाम् । अनेन निग्रहं कुर्यात् सहायानां दिक्कालानां च । एवमेभिर्मन्त्रमुद्रैः रक्षा । जपकाले साधनकाले मण्डलेऽपि सर्वकर्मणि कर्तव्यानि । मन्त्रं चात्र भवति—नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय सर्वविघ्नविध्वंसनकराय त्रोटय स्वाहा ॥

अनामिकयोरङ्गुष्ठमूले कुण्डलाकारस्तथैव च प्रदेशिन्यौ सूच्याकारः सर्वत्राप्रतिहतोऽपराजितोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय सर्वत्रापराजिताय समये शान्ते दान्ते धर्मराजभाषिते महाविद्ये सर्वार्थसाधनि । घृतहोमादिषु शान्तिकपौष्टिकानि कर्माणि कुर्यात् ॥

एतावनामिकायाः कुण्डलयोः प्रदेशिन्यौ कुञ्चिताग्रा प्रतिहतेत शंकरोष्णीषमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीष ओं शंकरे स्वाहा । रक्षा सर्वकर्मसु ॥

अङ्गुष्ठाग्रौ अनामिकयोस्तृतीये पर्वेनाक्रान्ता तथैव प्रदेशिन्यौ सूच्या वज्राप्रतिहतसमयोष्णीषमुद्रा सर्वत्र समयसाधारणः । मन्त्रं चात्र भवति नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय । ओम् शंकरे समयं स्वाहा ॥

416 अङ्गुष्ठाग्रौ अनामिकयोर्मध्ये पर्वेणाक्रान्ता प्रदेशिन्यौ कुञ्चिताग्रा मध्यमसूच्या मध्यमपर्वसंसक्ताप्रतिहतमहासमयोष्णीषमुद्रा देवासुरेषु युज्यते समये स्थापिता । मन्त्रं चात्र भवति—नमो भगवते अप्रतिहतोष्णीषाय ओं शंकरे महासमयं स्वाहा । अनया मण्डलबन्धं कृत्वा जपेच्चक्रवर्तिनमपि समये तिष्ठ तिष्ठ । अन्यांश्चक्रवर्तिनांश्चाभिभवति । तत्रैव स्थाने जपं कुर्वं सर्वलौकिकलोकोत्तराणां मन्त्राणां अशक्ता अन्योन्यं विद्याप्रभावबलविनाशं कर्तुम् । एकस्मिं स्थाने सर्वजापिनाम् । एवमाद्या उष्णीषराजानः असंख्येयानि भवन्ति । विस्तरेण कर्तव्यं सर्वतथागतकुलम् ॥

इह हि मञ्जुश्रीः कल्पराजे अपरिमाणानि मन्त्राणि भवन्ति । मुद्राश्चैव विविधाकारा । संक्षेपतोऽहं वक्ष्ये । यदि विस्तरशो कथयेयम्, अशक्यं सर्वमानुष्यैः अमानुष्यैश्च कल्पसहस्रेणापि कालप्रमाणेनोद्गृहीतुं धारयितुं वा । तस्मात् तर्हि मञ्जुश्रीः संक्षेपतः कथयिष्यामि । समासेनोपधारय—

हृदयस्य मुने मुद्रा कथ्यते प्रवरा इह ।
ततो देवातिदेवस्य मुद्रा वै चक्रवर्तिनः ॥ ४ ॥

अवलोकितचन्द्रस्य बोधिसत्त्वस्य धीमतः।
वज्रपाणेस्ततो मुद्रा यक्षेन्द्रस्य प्रकीर्तितः॥ ५॥
ततोऽन्येषां तु मुद्राणां महतामिमतौजसाम्।
दूतदूतीगणां सर्वां चेटश्चेटी तथा पराम्॥ ६॥
यक्षा यक्षीस्तथा देवां नागनागी तथापराम्।
किंकरः किंकरीणां च पिशाच पिशाचीनां च॥ ७॥
महर्द्धिका राक्षसीनां तथान्यां सुरयोषित्।
दैत्यमङ्गनां सिद्धविद्याधराणां च सर्वेषां च॥ ८॥
अमानुपाणां नामानुष्यांश्चापि सर्वेषां त्रिभवे जन्मनिःसृताम्।
सर्वेषां तु जन्तूनां मुद्रा ह्युक्ता पृथक् पृथक्॥ ९॥
मन्त्रास्तु विविधाकारा नानाकर्मसमाधिका।
राजकुले मानिकुले चापि तेषां मुद्रा पृथक् पृथक्॥ १०॥
अर्हं प्रत्येकबुद्धानां उभौ मुद्रौ शुभोदयौ।
सर्वेषां बोधिसत्त्वानां दशभूमिप्रतिष्ठिताम्॥ ११॥
मुद्राहृदयमन्त्रा च एकैकः परिकीर्तिता। G 417
दिव्ययक्षकुले चापि ऋषिगन्धर्वपूजिते॥ १२॥
कुले सप्तमके प्रोक्ता मुद्रा गन्धर्वमाश्रिता।
तथाष्टमके मुद्रा कुलेभ्यो परिकीर्तिता॥ १३॥
सर्वे मुद्रा समाख्याता अपराश्च सुगताह्वया।
पृथक् पृथक् मन्त्रेषु लौकिकेषु ससौगते॥ १४॥
मुद्रासहितो मन्त्रः दीप्तो भवति कर्मसु।
मुद्राक्षेपादिकुशलं नानुयान्ति विनायकाः॥ १५॥

अथ खल्वेषां महामुद्रादीनां लक्षणं भवति। बुद्धानां भगवतां हृदयमुद्रालक्षणं भवति। हस्तद्वयेनान्योन्यमङ्गुलीः संनियम्याङ्गुष्ठौ दर्शयेत्। सैषा तथागतानां हृदयमुद्रा। एषैव दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन एकैकदर्शितेन पद्मधरस्य मुद्रा भवति। वामेतरस्य पूर्वमुष्टिं कृत्वा मध्यमाङ्गुलियुगलं प्रमुञ्च प्रसृतं कृत्वैकतः वज्राकारम्। एषा वज्रधरस्य मुद्रा। एकसूचीमवनाम्य एषा गन्धहस्तिने बोधिसत्त्वस्य मुद्रा। पुनरेवोत्क्षिप्य मण्डलाकारं कुर्यात्। एष गजगन्धस्य मुद्रा। उभयोरप्येकं पर्वं कुञ्चयेत्। एषा मणिकुले मुद्रा। सर्वेषां मणिचराणां जम्भले जलेन्द्रादीनां मन्त्रैः तैरेव योजयेत्। तर्जनीयुगलं द्विपर्वं कुञ्चितान्योन्यनखसंयुक्तम्। एषा यक्षकुले मुद्रा पञ्चकादीनां यक्षमहर्द्धिकानाम्। अन्योन्यनखसंयुक्तं अङ्गुष्ठं नखोपरि धारयेत्। तथैव हस्तौ पूर्ववत् कारयित्वा मध्यमाङ्गुलियुगलं उत्थाय सूचिकाकारं कारयित्वा। एषा सर्वदेवानां मुद्रा

दिव्यकुले अकनिष्ठादीनां दिवौकसाम् । भूयस्तथैव हस्तौ संयम्य मुष्टिं बध्वा अङ्गुष्ठौ दर्शयेत् । सैषा प्रत्येकबुद्धार्यश्रावकानां मुद्रा ॥

इत्येतामष्टौ मुद्रासु कुला चाष्टसमावृता ।
सर्वेषां जिनपुत्राणां मुद्रामेकं तु वक्ष्यते ॥ १६ ॥
प्रसृताञ्जलिविन्यस्तं ईषित्संकुचितं पुनः ।
स एषा कथिता मुद्रा बोधिसत्त्वां महीयसाम् ॥ १७ ॥
G 418 चिन्तामणिः खखरकं संघाटी पात्रचीवरम् ।
दंष्ट्राभयहस्तं च मुद्रैताः सप्तकं मुनेः ॥ १८ ॥
दृष्टिमैत्री प्रभाजालदशनतोर्ण सुगतः स्थितिः ।
इमाप्यसा परा मुद्रा जिनस्यात्मशरीरजा ॥ १९ ॥
द्वौ सप्तकौ गणावेतौ मुद्रा पञ्च मया स्मृता ।
हृदयस्य मुनेः सहितानि विंशत्युक्तादिस्वयंभुवैः ॥ २० ॥
पुरा कथिता ह्येते मुद्रा आदिजिनैः तदा ।
परिवारः रामाख्यातो विंशकश्चक्रवर्तिनः ।
परमं परसंख्याता मुद्रा मन्त्राश्च निश्रिता ॥ २१ ॥

उद्गतं कुण्डलीकृत्य चिन्तामणिमुद्रा । पर्यङ्के वामदक्षिणे मुष्टिमंसदेशे धारये । खखरकमुद्रा भवति । हस्तसंपुटेनान्योन्यमभिमुखं संघाटीमुद्रा भवति । पात्रं संपुटाधारः चीवरं वामहस्तेन दंष्ट्रा हृदयमुद्राया वाममेकमङ्गुष्ठमुन्नतम् । अभयहस्तमभयावनतः वामचीवरावलम्बतः अभयहस्तः संपुटे मध्यमाङ्गुलियुगले तर्जन्यौ बहिः कुञ्चितौ निवेशयेत् मध्याङ्गुष्ठौ । एषा बुद्धलोचनमुद्रा भवति । एषैव एवा पर्वकुञ्चिते तर्जनी एकतः कुर्याद् बुद्धमैत्री । अञ्जलि विरलाङ्गुलिं कृत्वा तर्जन्यनामिका गोपयेत् सूचीत्रयेण । मामकी मुद्रा भवति । अञ्जलिं कृत्वा तर्जनीमध्यमाङ्गुलिर्बहिः तृतीयपर्वे कुञ्चिते संदध्यादङ्गुष्ठौ पृथक् अङ्गुल्याकारेण भोगवतीमुद्रा । वामहस्तेन तर्जन्या मध्यमया च विजया । दक्षिणया त्र्यङ्गुले वज्रं कटिदेशे धारयेत् ॥

एवमेवाष्टौ महामुद्रा आत्मना शिरसि विद्याराजमुद्रा बध्वा सर्वकर्माणि कारयेत् । समये वा मण्डले पुष्पाणि क्षिपेत् । पूर्वनिर्दिष्टेन वा विधिनानेन वा कुर्यात् । यथेप्सतः सर्वकर्माणि कारयेत् । विद्यामन्त्राभिहितानि समयानि भवन्ति मुद्रैः समुद्रितानि मुद्राप्रभावानि । यन्मुद्रं सहसा अस्थाने बध्नीयात् स एवास्य समयभङ्गो भवति । यद् वज्रं तच्छूलम् ।
G 419 त्रिशूलवज्रयोर्विशेषो नास्ति । यदूर्ध्वं तद् वज्रधरस्य मुद्रा भवति । अधरस्ताच्च महेश्वरस्य । मध्ये आचार्यगुरुदक्षिणीयां सर्वेषा च मनुष्याणां एकाङ्गुलिमुच्छ्रिते सर्वेषा मनुष्याणां द्विपदचतुष्पदबहुपदापदविभक्तसंस्थितानां सत्त्वानां मुद्रा भवति । द्विरुच्छ्रितैः सर्वेषां यक्षयक्षीणां मुद्रा भवति त्रिमुच्छ्रितैः सर्वविद्याधरविद्याधरीणां मुद्रा भवति । चतुरुच्छ्रितैः समपाणितलविन्यस्तैः ससुरासुराङ्गनानां मुद्रा भवति । कृताञ्जलिविधिन्यस्तौ हस्तौ शोभनाकारसंस्थितौ सर्वेषां रूपाव-

चराणां देवानां मुद्रा भवति । तदेव हस्तौ आरूप्यावचराणां देवानां मुद्रा भवति । तदेव हस्तौ सुषिरसंपुटाकारौ मुष्टिनिबन्धनौ कामधात्वेश्वरप्रभृतीनां सर्वेषां कामधातुस्थितानां सनरतिर्यत्रप्रेतयामलौकिकानां सत्त्वानां मुद्रा भवति । तामेव मुद्रामेकमङ्गुलिमुत्सृज्य सर्वेषां पिशाचपिशाचीनां मुद्रा भवति । द्विमुत्सृतै राक्षसराक्षसीनां । त्रिमुत्सृतैः सर्वक्रव्यादादीनां ग्रहमातरकूष्माण्डादीनां पिशिताशिनां सर्वेषां च डाकिनीनां व्यन्तरादीनां च । सकश्मलां चतुर्भिरङ्गुलीभिः संकुचितैः सर्वकश्मलां मुद्रा भवति । मुद्रैराकृष्टैराकर्षणं मुद्रैरुत्क्षिप्तैर्विसर्जनम् । स्वचित्तेन सर्वकर्माणि कारयेत् ॥

एभिरेव मुद्रैः यथेष्टतः स्वकं स्वकं मन्त्रं नियोजयेत् । नान्येषां नान्यकर्माणि कारयेत् । तस्मिं तस्मिं नियुञ्ज्याद् यस्मिं यस्मिं मन्त्रा भवन्ति ।

अनुल्लङ्घ्या ह्येते मुद्रा सर्वबुद्धैरधिष्ठिता ।
अशक्ता सर्वसत्त्वा वै मुद्रां दृष्ट्वापि कोपितुम् ॥ २२ ॥

मुद्रोल्लङ्घनाद् विनाशमाप्नुवन्ति । मुद्राणां विनाशात् समयभ्रंशः सर्वविद्याव्यतिक्रमश्च । निष्ठायां रौरवे गतिः अवीच्यायां वा महानरकोपपत्तिः गाढतरमेवाप्नुवन्ति विघ्नकर्तारो । ये च मुद्रासमयमधितिष्ठन्ते तेषां चिरसौख्यमनल्पकं भवति महादिवौकसोपपत्तिश्च । गतिनिष्ठायां नियतं बोधिपरायणो भवति । संक्षेपतो मुद्रा बहुप्रकारा प्रकाशिता आदिबुद्धैः बोधिसत्त्वैश्च महर्द्धिकैः । न शक्यमस्य पर्यन्तं गन्तुं संख्यागणनां वा कर्तुम्, सर्वसत्त्वैश्च उद्ग्रहीतुम् । संक्षेपतः जिनकुले विद्याराजचक्रवर्ति एकमक्षरं रक्षार्थं तस्य मुद्रा भवति ॥

वामेतरस्य पूर्वं मुष्टिं कृत्वा मध्यमाङ्गुलियुगलं प्रमुचे प्रसृतं कृत्वैकतः । उभयोरप्येकं G 420
पर्व कुञ्चये । तर्जनीयुगलं द्विपर्वं कुञ्चितः अन्योन्यनखसंयुक्तं अङ्गुष्ठनखोपरि धारयेत् । एष चक्रवर्तिमुद्रा सर्वकर्मिका प्रवरा सर्वमन्त्राणां निर्दिष्टा लोकतायिभिः । पूर्वनिर्दिष्टेन एकाक्षरचक्रवर्तिना संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । अनेन साधितेन सर्वं तथागतकुलं सर्वाश्च लौकिकलोकोत्तराः मन्त्राः सिद्धा भवन्ति । अनेन जप्यमानेन सर्वमन्त्रा जप्ता भवन्ति ॥

अन्यदवश्यं साधकेन पूर्वतः अस्मिं कल्पराजे प्रचोदिते मन्त्रवरे अष्टसहस्रं जापः कर्तव्यः । एवमेते सर्वविद्याः आमुखीभवन्ति । आशु सिद्धिं प्रयच्छन्ति । क्षिप्रं च वरदा भवन्ति । नियतं बोधिपरायणः । पद्मधरमुद्रायाः एकाक्षरावलोकितेश्वरहृदयेन संयुक्तः सर्वकर्मां करोति । पण्डरवासिन्या वा विद्यामुद्रेण वा संयुक्ता तथैव सर्वकर्मां करोति । वज्रधरस्य मुद्रया तस्यैव एकाक्षरहृदयेन संयुक्तः तथैव सर्वकर्मां करोति । मामक्या वा महाविद्यया ॥

एवं राजकुले एकाक्षरराजगन्धबोधिसत्त्वहृदयेन एवं तेनैव मुद्रया मणिकुले यक्षकुले दिव्ये आर्ये तेष्विह एकाक्षरहृदयैः तेष्वेव मुद्रैः सर्वकर्माणि कर्तव्यानि । एवं सर्वत्र सर्वमुद्रैः सर्वमन्त्रैश्च सर्वकर्माणि कर्तव्यानि । यथायुक्तितः विद्यामन्त्रबलाधाना न्यसेत् । नान्यतः कर्माणि कर्तव्यानि ॥

एवं दक्षिणकरविन्यस्तं खस्तोद्यतः खस्त्योद्यतः ब्रह्मणस्य सहांपतेः एकलिङ्गमुद्राया महेश्वरस्य चक्रमुद्राया विष्णोः अञ्जलिराकोशाविरलविन्यस्तः गरुत्मनः एवं ऋषीणां शापोद्यतहस्तमुद्रं एवं गन्धर्वाणां ससुरासुराणां वामहस्तमङ्गुष्ठमभ्यन्तरीकृतमुखमुपदर्शनमष्टिस्थितं चतुःकुमार्यमुद्रा तेनैव मन्त्रेण। एवं कार्तिकेयस्य शक्तिमुद्रया। एवं यमवरुणकुबेरयक्षराक्षसपिशाचमहोरगादीनां सर्वेषां त्रिभवसंस्थितानां सत्त्वानां सर्वगतिपर्यापन्नानां सत्त्वधातुसंनिःश्रितानां सर्वेषां ग्रहमातरक्रव्यादकश्मलादीनां सत्त्वानां सर्वतः सर्वेषां मुद्रान्युक्तानि। मन्त्राश्चैव सर्वतः नियुज्यानुपूर्वशः क्रमशः सर्वतः सर्वं भवति नान्यतः॥

G 421 आदौ तावत् साधकेन अस्मिन् कल्पराजे तथागतगतिः शुभा महामुद्रा मन्त्राश्च तदङ्गा निश्रिता आर्यसमन्तभद्रमहास्थानप्राप्तविमलगतेः त्वदीया मञ्जुश्री उत्पलमुद्रा। एतेषां च बोधिसत्त्वानां च मुद्रा अवश्यं साधकेन पूर्वाभिमुखस्थितेन आदित्याभिमुखेन प्रातरुत्थाय शुचिना शुचिस्थानस्थितेन एतेषां मुद्राणामन्यतरं बध्वा आत्मशिरस्योपरि क्षिपेदूर्ध्वम्। एतेषामन्यतमं च मन्त्रं जपेदष्टशतम्। सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो भवति। दीर्घायुषः सर्वविघ्नैश्च नाभिभूयते। सर्वसत्त्वानामधृष्यो भवति। सर्वमन्त्राश्चाभिमुखीभवन्ति। आशु सिद्धिं प्रयच्छन्ति। सर्वबुद्धैश्चाधिष्ठितो भवति। नियतं बोधिपरायणो भवति। मञ्जुश्रीः कुमारभूतश्चास्य कल्याणमित्रो भवति यावदाबोधिमण्डात्। कतमा च ते मुद्रा मन्त्राश्च भवन्ति?

आदौ तावन्महावीरमुद्रा वक्ष्यते। हस्तद्वयसंपुटं कृत्वा अन्तरिताङ्गुलिमङ्गुष्ठमुन्नतौ पर्वतृतीयभागाकुञ्चितौ। एषा महावीरमुद्रा सर्वतथागतैर्भाषिता। मन्त्रं चात्र भवति- आः वीर हूं खं। अनेन मंत्रेण संयुक्तः मुद्रोऽयं सर्वकर्मकृत्॥

तदेव हस्तद्वयं संपुटं कृत्वा भूयो विकासितमङ्गुलिभिः समन्ततो विकसितां वज्राकारम्। एषा विकासिनी नाम मुद्रा वरा आदिबुद्धैः प्रकाशिता। मन्त्रं चात्र भवति -ॐ गगनसंभवे दीप्त दीप्त ज्वालय ज्वालय बुद्धाधिष्ठिते विकाशय विकाशय सर्वबुद्धान्। हूं हूं विकासिनि फट् फट् स्वाहा। एषा विकासिनी मुद्रा। अनेन मुद्रेण संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति। ग्रहाविष्टानां प्रज्ञापयति जल्पापयति। ग्रहगृहीतां क्रव्यादकश्मलगृहीतानां विषमूर्छितानां वा यथा यथा प्रयुज्यते, तथा तथा तत्सर्वं करोति। एष संक्षेपतः सर्वार्थसंसाधनी विद्याविकासिन्या मुद्रया युक्ता असिद्धा च क्षिप्रमर्थं करोति॥

हस्तद्वयसंपुटं कृत्वा अन्तरिताङ्गुलिसमं कारयेत्। हृदयमुद्रा। हृदयं सप्तवारां हृदयमभिमन्त्र्य मोक्तव्या। एवं सर्वत्र। मन्त्रं चात्र भवति -ॐ गोदरे वीर स्वाहा। तथागतहृदय॥

G 422 तदेव हस्तसंपुटं विच्छुरिताङ्गुलिमन्योन्यसर्वाग्राङ्गुलिमध्ये सुषिरा उष्णीषमुद्रा मन्त्रं चात्र भवति ॐ द्रौँ बन्ध स्वाहा। एष सर्वकर्मिकः॥

दक्षिणहस्तेनाङ्गुष्ठं मुक्तं मुष्टिं बध्वा खक्खरकमुद्रा। मन्त्रं चात्र भवति -ॐ धुनाजितरण हूँ। खक्खरकमन्त्रा सर्वकर्मिकः॥

अनेनैव मुद्रया संयुक्तवामं चीवरसंसक्तं कृत्वा चीवरमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ रक्ष रक्ष सर्वबुद्धाधिष्ठितात्मचीवर स्वाहा । तथागतचीवरः । अनेनैव मुद्रेण सर्वकर्मां करोति । चीवरं चास्याभिमन्त्र्य प्रावरेत्, सुभगो भवति । महारक्षा कृता भवति । सर्वग्रहमातरपिशिताशिनक्रव्यादसकश्मला सर्वविघ्नाश्च दृष्टमात्रा प्रपलायन्ते ॥

वामाङ्गुष्ठदक्षिणकनिष्ठिकान्योन्यासक्तौ कृत्वा अधः हस्तसंपुटाधारः पात्रमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ लोकपालाधिष्ठित धर धारय महानुभाव बुद्धपात्र स्वाहा । अनेनैव मुद्रेणायं मन्त्रः संयुक्ता सर्वकर्मिकाः भोजनकाले स्मर्तव्यः । सर्वगरविषा न प्रभवन्ति ॥

करयुगावनद्धमुष्टौ तर्जन्यौ मध्यकुञ्चितौ । एषा सा चिन्तामणिमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ तेजो ज्वल सर्वार्थसाधक सिध्य सिध्य चिन्तामणिरत्न हूँ । चिन्तामणिरत्नम् । अनेनैव मुद्रेण संयुक्तो सर्वकर्मकरं शुभम् । अनेन चाभिमन्त्र्य सर्वाभरणालंकारविशेषां आबन्धीत चात्मनो महारक्षा कृता भवति । परमसुभगश्च भवति । स्वयमलंकृत्य धर्मं चाभिमन्त्र्य संग्राममवतरेत् । न चास्य काये शस्त्रं निपतति । अधृष्यो भवति सर्वशत्रूणाम् । स्वसैन्यं पालयते । परसैन्यं चाक्रामति ॥

एवमादीनि कर्माणि अपरिमाणानि असिद्ध एव करोति । पद्मरागमरकतादीनामन्यतमरत्नविशेषं गृहीत्वा अष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा ध्वजाग्रे आत्मनो शिरसि वा हस्तिस्कन्धे वा संग्रामशीर्षेणावतीर्णेनाबन्धयितव्यम् । नियतं परसैन्यमयुद्धेनैव दृष्ट्वा भङ्गमुपजायते । महांस्तम्भितत्वं वा भवति । भग्नसैन्या वा प्रपलायन्तेऽधिपतिस्तेषाम् ॥

अन्योन्यासक्ताङ्गुलिमुष्टिं कृत्वा मध्यमाङ्गुलिस्थाने तयोस्तृतीयपर्वभागे मध्यकुञ्चिते G 42 3
तर्जन्योन्य स एषा धर्मचक्रमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ छिन्द भिन्द हन दह दीप्त चक्र हूँ । धर्मचक्र ॥

वामपादमुक्तटक्कदक्षिणजानुभूमिस्थं वामेन पृष्ठतः प्रसारिते प्रहारहस्तेन दक्षिणेनाङ्कुशेन सावष्टम्भः । एषा अपराजितमुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ हुलु हुलु चण्डालि मातङ्गि स्वाहा । अपराजिता धर्मचक्रापराजितमन्त्रः । एभिरेव मुद्रैः संयुक्तैः सर्वकर्मिका भवति । संक्षेपतः सर्वदुःखानि छिन्दति । यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा सर्वकर्माणि कुर्वन्ति ॥

वेण्योत्सङ्गे तथैव हस्तं कृत्वा दक्षिणेन धर्मदेशनाहस्तेन तथागतशक्तिमुद्रा भवति । मन्त्रं चात्र भवति—ॐ विजये महाशक्ति दुर्धरि हूँ फट् विजयिनि फट् मङ्गले फट् । तथागतशक्तिः । अनेनैव मुद्रेण संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । सर्वविघ्नां सर्वदुष्टां सर्वशत्रूं सर्वदेवांश्च स्तम्भयति । एषा अपर्यन्तगुणा यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा सर्वकर्माणि करोति ।

तथैव हस्तौ परस्पराङ्गुलिरुत्तानौ करौ तर्जन्याग्रौ सूच्याकारेण मीलितौ विपर्यस्तमधोमुखं ललाटे न्यसेत् । एषा ऊर्णामुद्रा बुद्धानां भगवतामादिबुद्धैः प्रकाशिता । मन्त्रं चात्र भवति—नमः सर्वतथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यः । हे हे बन्ध बन्ध तिष्ठ तिष्ठ धारय

धारय निरुन्ध निरुन्ध ऊर्णामणि स्वाहा । तथागतोर्णामन्त्रः । अनेनैव मुद्रेण संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । गोरोचनया ललाटे तिलकं कृत्वा जपता शत्रुमध्येऽवतरेत् । अधृष्यो भवति । सर्वदुष्टैश्च न हिंसते । संग्राममध्यं वा अवतरेत् । परसेनाभङ्गं दृष्ट्वा करोति । नादृष्ट्वा अपरिमाणां कर्मां करोति । अपरिमाणैश्च बुद्धैर्भगवद्भिर्भाषिता ॥

अञ्जलिं निरन्तरमन्योन्यासक्तां कृत्वा तर्जन्या अन्योन्यमध्यकुञ्चितौ अङ्गुष्ठोङ्गुष्ठौ । एषा G 424 तथागतलोचना मुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति --ॐ रु रु स्फुरु ज्वल तिष्ठ सिद्धलोचने सर्वार्थसाधनि स्वाहा । एषा तथागतलोचना मन्त्रा अनेनैव मुद्रेण संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । अक्षीण्यभिमन्त्र्य शत्रुमध्यमवतरेत् । दृष्टमात्रा विगतरोषा भवन्ति । मैत्रचित्ता हितैषिणो भवन्ति । मित्रत्वमधिगच्छन्ति । संग्रामशीर्षे वा अक्षिणीमभिमन्त्र्य परसेनां निरीक्षयेत् । सौम्यचित्ता भवन्ति न प्रतिप्रहारसमर्थाः । अयुद्धेनैव निवर्तन्ति । साहाय्यं तावत् प्रतिपद्यन्ते ॥

उभौ हस्तौ तथैव पुस्तकाकाराङ्गुलिरचितौ अन्योन्याश्लिष्टौ तिर्यक् स्थितौ । एषा प्रज्ञापारमिता मुद्रा । मन्त्रं चात्र भवति नमो भगवति चारुदर्शने ॐ थ । एषा भगवती प्रज्ञापारमिता अनेनैव मुद्रेण संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । मन्त्रं जपता हृदयं परामृशेत् । स्मृतिमां भवति । दुष्टारिमध्ये जपं कुर्वन् तेषां चित्तमपहरति । संग्राममध्ये वा द्विपदचतुष्पदादीं सत्त्वां प्रत्यर्थिकां विमोहयति, चित्तविक्षेपं वा करोति । संक्षेपतः एषा भगवती यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा सर्वं कर्माणि करोति । संक्षेपतः अपर्यन्तगुणा । अपर्यन्तं चास्य कल्पं भवति । अपर्यन्तास्तथागतानां मुद्रा मन्त्राश्च भवन्ति । यथा संनिपातपरिवर्ते चोक्तं तथागतानां परिवाराः तेऽत्र सर्वे मुद्रा मन्त्राश्च प्रयोक्तव्या । अन्यत्र चासंख्येयानि कल्पानि भवन्ति, मुद्रा मन्त्राश्च तेऽस्मिं कल्पराजे नियोक्तव्या ॥

एवं पद्मकुले पद्ममुद्रेण सहिता । मन्त्रं भवति ॐ जिः जिः जिनाङ्गभृद्भयभेदिने स्वाहा । एष मन्त्रः, अवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य पद्ममुद्रया संयुक्तं सर्वकर्मिकं भवति । अनेन जप्तेन सर्वं पद्मकुलं जप्तं भवति । अनेन सिद्धेन सर्वं पद्मकुलं सिद्धं भवति । पण्डरवासिन्या वा महाविद्यया । मन्त्रं चात्र भवति ॐ कटे विकटे निकटे कटंकटे कटविकटकटंकटे स्वाहा । मुद्रेणैव योजयेत पद्ममुद्रेण वा । सर्वकर्मिका भवति । रक्षा च कर्तव्या सर्वश्मशानगतेन ॥

एवं तारा भृकुटी चन्द्रा हयग्रीवस्येति विद्याराजसन्निपात परिवर्ते वा ये कथिताः सर्वमसंख्यं च पद्मकुलं प्रयोक्तव्यम् । मुद्रा मन्त्रैश्च कल्पविस्तरैः ॥

एवं वज्रकुल उभयवज्रमुद्रसहितम् । मन्त्रंचात्र भवति हूँ । एष वज्रपाणेः । साक्षादनेन साधितेन सर्वं वज्रकुलं सिद्धं भवति । अनेन जप्तेन सर्वं जप्तं भवति । G 425 उभयवज्रमुद्रा संयुक्तेन पूर्वनिर्दिष्टेन साधकेच्छया सर्वकर्माणि करोति । विरुद्धान्यपि जिनवरैः सत्त्ववैनेयवशात् । अतिक्रूरतरोऽयं महायक्ष माणिभद्रो वा कुबेरो वा महाराजाः सर्वकर्माणि करोति ।

मन्त्रं चात्र भवति—ॐ कुलंधरि बन्ध बन्ध हुं फट् । एषा सर्वकर्मिका मामकी नाम महाविद्या सर्वबुद्धैर्निर्दिष्टा । पूर्वप्रयुक्तेन मुद्रेण मामक्याया महाविद्यया संयुक्ता सर्वकर्मिका भवति । साधकेच्छाया निदानपरिवर्ति पूर्वनिर्दिष्टे वज्रपाणिपरिवारेण सर्वं वा अशेषं वज्रिकुलं मुद्रामन्त्रमन्त्रसंयोगैश्चात्र प्रयोक्तव्यम् ॥

एवं राजकुले गजगन्धस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्रं भवति—ॐ गजाह्वये हूँ खचरे स्वाहा । पूर्वनिर्दिष्टेन मुद्रेण संयुक्तः सर्वकर्मिकः । एवं पूर्ववत् सर्वं गजकुलः सिद्धो भवति ॥

एवं समन्तभद्रस्य मन्त्रः—ॐ समासमजिनसुत मा विलम्ब हूं फट् ॥

महास्थानप्राप्तस्य मन्त्रः—तिष्ठ तिष्ठ महास्थाने गतबोधः समयमनुस्मर । हूँ फट् फट् स्वाहा ॥

विमलगते मन्त्रः—ॐ विमले विमले विमलमुहूर्तं धक धक समयमनुस्मर स्वाहा ॥

गगनगञ्जस्य मन्त्रः सर्वबोधिसत्त्वस्य मुद्रसंयुक्तः सर्वकर्मिको भवति । एषमपायजहसदाप्ररुदितक्षितिगर्भरत्नपाणिमैत्रेयप्रभृतीनां दशभूमिमनुप्राप्तानां सर्वमहाबोधिसत्त्वानामसंख्येयानां मुद्रा मन्त्राश्चासंख्येया भवन्ति । तस्मिं कल्पराजे नियोक्तव्यानि भवन्ति । सविस्तरता सर्वलौकिकलोकोत्तरोत्तरता सर्वलौकिकाश्च सर्वमन्त्रमुद्रा कल्पविस्तरो महासमयासमयमनुप्रविष्टा सर्वकल्पविकल्पाः, त इह कथितानि साध्याश्च ते इह सर्वमन्त्राः ॥

एवं मणिकुलयक्षकुलदिव्यार्यकुलेष्वपि प्रयोक्तव्यानि । सर्वतन्त्रमन्त्रमुद्राश्च त्र्यध्वाश्रिताः । एक एव कुलं भवति नान्यं यदुत तथागतकुलम् । त्वं च मञ्जुश्रीः कुमार, तथागतकुले द्रष्टव्यः । सर्वबुद्धबोधिसत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धाः सर्वाश्च लौकिकलोकोत्तराः सास्रवानास्रवमन्त्रा मुद्राविकल्पास्तथागतकुलानि प्रविष्टा इति धारय । न तद् विद्यते मञ्जुश्रीः सर्वविमुद्रातन्त्रमन्त्र- G 426
रहस्यं यस्तथागतकुले तथागतसमये अनुप्रविष्टः । प्रविष्टमेव मञ्जुश्रीः कुमार धारय । यस्मात् तथागत अग्रमाख्यायते तस्मात् तथागतकुलं अग्रमाख्यायते । एवं तर्हि मञ्जुश्रीः अयं कल्पराजा अयं च कुलाग्ररत्नः आदिमद्भिर्बुद्धैः प्रकाशितं देशितं प्रस्थापितं विवृण्वीकृतम् । भगवां संकुसुमितराजेन भगवता शालराजेन्द्रेण भगवता संकुसुमितगन्धोत्तमराजेन भगवता रत्नकेतुना भगवता अमिताभेन भगवता पुण्याभेन कुसुमोत्तमेन संकुसुमेन सुपुष्पेण अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजेन्द्रेण कनकमुनिना काश्यपेन क्रकुच्छन्देन शिखिना विश्वभुवा भगवता कोनाकमुनिना । मयाप्येतर्हि शाक्यमुनिना प्रकाशितवां प्रकाशिष्यन्ते च ॥

एवमेतद् बुद्धपरं परायातं । अयं तव मञ्जुश्रीः कुमार कल्पराजा तथागतकुलाग्ररत्नभूतं महानुशंसं नियतं धर्मधातुनिश्रितम् । न शक्यमस्यानुशंसं कल्पसहस्रेणापि कथयितुं महागुणविस्तारा विस्तरशः कथयितुम् । दृष्टधर्मवेदनीयाः सांपरायिकबोधिपरायणाश्च वक्तुं सर्वसत्त्वैर्वा श्रोतुं त्वत्सदृशैः । एवमस्यापरिमाणा महागुणविस्तारफलोदया दृष्टधार्मिकसांपरायिकाश्च भवन्ति । यः कश्चित् श्राद्धे । अविचिकित्सः धारयेद् वाचयेत् स्मि तन्त्रेऽभियुक्तो विकल्पतः

मन्त्रं साधये जपेद् वापि, मुद्रां वापि बध्नीयात्, सतताभियुक्तश्च भवेत् । स दृष्ट एव धर्मैरष्टौ गुणानुशंसां प्रतिलभते। अस्खलितश्च भवति सर्वप्रत्यर्थिकैः । अपि तु भयं चास्य न भवति । विषं चास्य काये नाक्रामति । शस्त्रं चास्य काये न पतति । बुद्धबोधिसत्त्वैश्चाधिष्ठितो भवति । दीर्घायुः सुखमेधावी भवति । मञ्जुश्रियश्चास्य कुमारभूतः कल्याणमित्रो भवति । रात्रौ वास्य प्रत्ययं स्वप्ने दर्शनं ददाति । सर्वमन्त्राश्चैनं रक्षन्ते । मुद्रां चास्य स्वप्ने कथयन्ति । दुष्टराष्ट्रं दुष्टसत्त्वानां चाहितैषिणामवध्यो भवति । नियतं बोधिपरायणः ॥

इमेऽष्टानुशंसा श्राद्धस्याविचिकित्सतोऽभियुक्तस्य द्रष्टव्याः गृहिणो वा प्रव्रजितस्य वा स्त्रियस्य वा पुरुषस्य वा महासत्त्वानां शासनोपकारिणाम् । नान्येषां पापकर्मप्रवृत्तानाम् ।

G 427 [अ]धस्ताद् भवति रौरवादिषु । यदुक्तं पूर्वाह्णे मुद्राबन्धः दीर्घायुष्यता जयेति । [म]न्त्रपरिवारेण हृदयोष्णीषाद्या लोचनाद्याः मुद्राः सत्कर्तव्यम् । मञ्जुश्रियः कुमार[भूत]नामभिर्वा तुल्यवीर्या ह्येते तुल्यप्रभावाः । यदुक्तं शुचिना शुचिवस्त्रस्थानस्थितेनेति । [रम]्यं भूप्रदेशं अशल्योपरुद्धं अपतितगोमयोपलिप्तं सुगन्धशुक्लपुष्पाभिकीर्णम् । तत्र [म]न्त्रं जपे । मुद्रां बध्नीयात् । नान्यत्र नान्येषामन्यतरमेकं जपेन्मुद्रसहितम् ॥

यदुक्तं शुचिनेति अस्तं गते भानोः स्नायीत शुचिना जलेन निःप्राणकेन ।

प्रत्यग्राम्बरनिवासी उष्णीषकृतरक्षः ।
ग्राम्यधर्मविवर्जी शुचिचौक्षरतः शुभ ॥ २३ ॥
उष्णीषकृतरक्षा वै चक्रबन्धानुवर्तिनः ।
ध्यात्वा तथागतां तत्र स्वप्ने यामविनिर्गते ॥ २४ ॥

कन्याकर्तितसूत्रेण ब्राह्मण्या वा अरतिसम्भवाया गृहीत्वा अष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा [म]न्त्रेण—ॐ हर हर बन्ध बन्ध शुक्रधारणि सिद्धार्थे स्वाहा—मामक्यया मुद्रासंयुक्ता मन्त्र जपत् । ततः सूत्रकं कट्यां बन्धयेत् त्रिगुणपरिवेष्टितं कृत्वा । शुक्रबन्धः कृतो भवति । कामधात्वेश्वरोऽपि [न] शक्तः स्वप्ने मनोविघातमुत्पादयितुम्, किं पुनः स्वप्नविनायकाः । विधिना नाविधिना सरागस्य न वीतरागस्य कामधात्वेश्वरस्यापि ऋषिणो दुहितरश्च अशक्ता मनोविघातमुत्पादयितुं विविधरूपधारिण्यः रागिणाम् । किं पुनः तदन्याः स्त्रियः मानुषामानुषोद्भवाः ॥

एवं विधिना प्रातरुत्थाय विसर्ज्य दन्तधावनं मुखं प्रक्षाल्य शुचिना जलेन स्नात्वा निष्प्राणके विमलोदकेन पूर्ववद् विधिना पूर्वाभिमुखस्थितेन मुद्रां बन्धीयात् । मन्त्रांश्च जपेत् । दीर्घायुषो भवति सर्वकर्मसमर्थः । महाव्याधिभिर्मुच्यते सर्वजनप्रियो भवति । अमित्राणां प्रत्यङ्गिरमुपजायते । दृष्टमात्राश्च सर्वग्रहक्रव्यादकस्मलादयः प्रपलायन्ते । परबलं स्तम्भयति । दर्शनमात्रेणैव सर्वकर्मां करोति शुचिनाशुचिना विधानेनाविधानेन ॥

428 एवमस्य असंख्येयो मुद्रामन्त्रगणपरिवृतोऽयं कल्पराजा । असंख्येयैश्च बुद्धैर्भगवद्भिर्भाषिता भाषिष्यन्ते च । मयाप्येतर्हि शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन भाषितो

महता पर्षन्मण्डलमध्ये । त्वमपि कुमार मञ्जुश्रीः, संनियुक्तोऽयं शासनपरिसंरक्षणार्थं धर्मधातुचिरसंरक्षणार्थं च मयि परिनिर्वृते धर्मकोटिनिश्रिते भूतकोटिपर्यवसाने शान्तीभूते महाकरुणावर्जितमानसेन सत्त्वानां हितार्थाय । भाषितोऽयं मया युगान्ते महाभैरवे काले वर्तमाने रत्नत्रयापकारिणां दुष्टराज्ञां दुष्टसत्त्वानां च निवारणार्थाय विनयनार्थाय च । भाषितोऽयं कल्पराजा विस्तरविभागशः सर्वसत्त्वानामर्थायेति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात्
महायानवैपुल्यसूत्रात् पञ्चत्रिंशातिमः
मन्त्रमुद्रानियमकर्मविधिपटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥



G 429 ## ३८ मुद्रामण्डलतन्त्रसर्वकर्मविधिपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—शृणु मञ्जुश्रीः

संक्षेपतः मुद्राणां लक्षणं मन्त्राणां च सविस्तरम् ।
संक्षेपतश्च मण्डलानां विधिः समग्रानुवर्तनम् ॥ १ ॥
* * * * * * मुद्रास्थानं च तेषु वै ।
सरहस्यं सर्वमन्त्राणां सर्वमन्त्रेषु मण्डलम् ॥ २ ॥
एतत्सर्वं पुरा प्रोक्तं सर्वबुद्धैर्महर्द्धिकैः ।
मन्त्राणां गतिमाहात्म्यं कथितं सर्वकुलेष्वपि ॥ ३ ॥
आदिमद्भिः पुरा बुद्धैः सत्त्वानां हितकारणात् ।
प्रवर्त्य मन्त्रचक्रश्च धर्मचक्रमनुत्तरम् ॥ ४ ॥
शान्तिचक्रानुगा याता भूतकोटिं समाश्रिताः ।
शान्तिं जगाम सर्वे ते बुद्धा लोकमहर्द्धिकाः ॥ ५ ॥
एतत् सर्वं पुरा ख्यातमादिमद्भिस्तथागतैः ।
अहमप्यपश्चिमे लोके देशेयं त्वयि मञ्जुश्रधीः ॥ ६ ॥
एतत् कृत्वा तदा वाच्यं बुद्धस्येदं महाद्युतेः ।
कुमारो मञ्जुघोषो वै प्राञ्जलिं कृतमग्रतः ॥ ७ ॥
उवाच वदतां श्रेष्ठं संबुद्धं द्विपदोत्तमम् ।
वदस्व धर्मं महाप्राज्ञ लोकानां हितकारणम् ॥ ८ ॥
संक्षेपार्थमविस्तारं गुणमाहात्म्यफलोदयम् ।
एवमुक्तस्तु मञ्जुश्रीस्तूष्णींभूतस्तस्थुरे ॥ ९ ॥
अथ ब्रह्मेश्वरः श्रीमां कलविङ्करुतस्वनः ।
कथयामास तत् सर्वं मुद्रामण्डलसंस्थितम् ॥ १० ॥
मन्त्रं तन्त्रं तदा काले शुद्धावासोपरि स्थितो ।
कथयामास संबुद्धः शाक्यसिंहो नरोत्तमः ॥ ११ ॥
शृणु त्वं कुमार मञ्जुश्रीः मुद्राणां विधिसंभवम् ।
मन्त्राणां तन्त्रयुक्तीनां गुणमाहात्म्यविस्तरम् ॥ १२ ॥
G 430 आदौ सर्वतथाचिह्नं सत्त्वासत्त्व यथा च तम् ।
आकारं चरितं चेष्टा सर्वमिङ्गितभाषितम् ॥ १३ ॥
द्विहस्तपादयोर्मूर्ध्ना एकहस्ताङ्गुल्योजना ।
सर्वं तं मुद्रमिति प्रोक्तं आदिबुद्धैः पुरातनैः ॥ १४ ॥

कलशं छत्रं तथा पद्मं ध्वज पताकं तथैव च ।
मत्स्य वज्र तथा शङ्खः कुम्भश्चक्रस्तथैव च ॥ १५ ॥
विविधा प्रहरणा लोके यावन्तस्ते परिकीर्तिता ।
उत्पलाकारमुद्रं च सर्वे ते मुद्रानुमण्डले ॥ १६ ॥
अनुपूर्वमिह स्थिता तथैते विधियुक्तमुदाहृता ।
सदृशाकारस्वरूपेण सर्वासां चैव लिखेत् सदा ॥ १७ ॥
मण्डले मुद्रमित्युक्त्वा सामान्येष्वेव सर्वतः ।
यथास्थानसुविन्यस्तं मुद्रास्ते परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥
मण्डलेष्वेव सर्वेषु स्वाकारं चैव योजयेत् ।
चक्रवर्ती तथा चक्रं उष्णीषे सितमुद्भवे ॥ १९ ॥
सितातपत्रं मुख्येन मण्डले तु समालिखेत् ।
बुद्धानां धर्मचक्रं वै पद्मं पद्मकुले तथा ॥ २० ॥
वज्रं वज्रकुले प्रोक्तं गजं गजकुलोद्भवे ।
तथा मणिकुले कुम्भं नियुज्यात् सर्वमण्डले ॥ २१ ॥
दिव्यार्यौ च कुलौ मुख्यौ श्रीवत्सस्वस्तिकौ लिखेत् ।
आलिखेत् यक्षकुले श्रेष्ठे फलं फलजसंभवम् ॥ २२ ॥
महाब्रह्मे हंसमालिख्य शक्रस्यापि सवज्रकम् ।
महेश्वरस्य लिखेच्छूलं वृषं चापि समालिखेत् ॥ २३ ॥
त्रिशूलं पट्टिशं चापि स्कन्दस्यापि सशक्तिकम् ।
विष्णोश्चक्रमालिख्य गदां चापि सदानवाम् ॥ २४ ॥
नानाप्रहरणा देवा विविधासनसंभवाम् ।
याना च विविधाश्चापि तेषां मध्यं लिखेत् सदा ॥ २५ ॥
सरूपसंक्रान्तिप्रतिबिम्बं यथास्थितम् । G 431
एषामन्यतरं ह्येकं लिखेत् सर्वत्र मण्डले ॥ २६ ॥
एकद्विकसमायुक्ता तृप्रभृत्यमसंख्यका ।
मण्डला जिनवरैः प्रोक्ता वेदिकापङ्क्तितत्समा ॥ २७ ॥
यदोद्दिश्य मण्डलं प्रोक्तं तं मध्ये तु निवेशयेत् ।
आलिखेज्जिनकुले गर्भे बुद्धं वापि सुमध्यमे ॥ २८ ॥
अभ्यन्तरस्थं तदा बिम्बं शास्तुनो चापि मालिखेत् ।
द्वितीयं पद्मकुले न्यस्तं तृतीयं वज्रकुलं लिखेत् ॥ २९ ॥
एवं सर्व तदालिख्य अनुपूर्व्या सुरासुरम् ।
सर्वभूम्यां ततः पश्चाद् यक्षराक्षसमानुषाम् ॥ ३० ॥

तीर्थिकानां ततो लिख्य अनुपूर्व्या यथास्थितम् ।
दिक्पालां च तथालिख्य सर्वांश्चैव विविधागताम् ॥ ३१ ॥
संक्षेपादेकबिन्दुस्तु द्वि।भृत्यमसंख्यकाम् ।
आलिखेन्मण्डलं यावद्दुपर्यन्तं दिशमाश्रितम् ॥ ३२ ॥
अप्रमेय तदा प्रोक्ता क्ष्मातले मण्डलेऽस्य वै ।
एकबिन्दुप्रभृत्यादि अपर्यन्ते वसुधातले ॥ ३३ ॥
मण्डलस्य विधिः प्रोक्तो निर्दिष्टं त्रिविधस्य तु ।
उत्तमं मध्यमं चैव कन्यसं चैव कीर्तितम् ॥ ३४ ॥
उत्तमे उत्तमा सिद्धिर्मध्यमे मध्य उदाहृतम् ।
कन्यसे क्षुद्रसिद्धिस्तु कथितं जिनवरैः पुरा ॥ ३५ ॥
त्रिधा सर्वे मनोभिश्च सिद्धिरुक्ता जिनोत्तमैः ।
महासत्त्वैर्महासिद्धिर्मध्यसत्त्वे तु मध्यमा ॥ ३६ ॥
तृतीया क्षुद्रजन्तूनां क्षुद्रकर्म उदाहृतम् ।
चित्तं प्रसादे बुद्धत्वं उत्तमे सफलोदयम् ॥ ३७ ॥
नियतं प्राप्यते सत्त्वो मण्डलादर्शनेन वै ।
मध्यचित्तस्तदा काले प्रत्येकं बोधिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
G 432 इतरे नियतं प्रोक्तां श्रावकत्वमनादरात् ।
अवन्ध्यं फलमाहात्म्यं गतिशान्ति उदाहृतम् ॥ ३९ ॥
मण्डलादर्शनस्वर्गं नियतं तस्य भविष्यति ।
एव मुद्रवरां सर्वां मन्त्राश्चैव सविस्तराम् ॥ ४० ॥
नियुक्तास्त्रिविधाश्चैव त्रिःप्रकारा सुखावहा ।
मुद्रा मण्डला प्रोक्ता मन्त्राणां कथ्यते हितम् ॥ ४१ ॥
एकाक्षरप्रभृत्यादि यावत्संख्यं प्रमाणतः ।
कथिता वचना मन्त्रे यावन्त्यस्ता प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
वाक्प्रलापां रुदितं हसितं क्रन्दितं तथा ।
सर्वजल्पप्रजल्पं वा सर्वमन्त्रहितं भवेत् ॥ ४३ ॥
त्रिविधा ते च मन्त्राश्च त्रिप्रकारा समोदिता ।
यथैव मण्डले ख्यातः मुद्रामन्त्रेषु वै तथा ॥ ४४ ॥
विधिरेषा समायुक्ता निर्दिष्टा लोकनायकैः ।
तथैव तत् त्रिधा याति अनेकधा चापि सहस्रधा ॥ ४५ ॥
त्रिविधं त्रिप्रकारं तु त्रिधा चैवमसंख्यकाः ।
चित्तायतं हि मन्त्रं वै न मन्त्रं चित्तवर्जितम् ॥ ४६ ॥

चित्तमन्त्रसमायुक्तः संयुक्तः साधयिष्यति ।
तथागतकुले ये मन्त्रा यं च पद्मकुले तथा ॥ ४७ ॥
ये च पद्मकुले गीता कुलेष्वेव च मापरैः ।
सलौकिका सर्वमन्त्रा वै सर्वे त इह निःसृताः ॥ ४८ ॥
जिनैर्जिनसुतैर्यो मन्त्रो भाषितः सत्त्वकारणात् ।
तां जपेद् योऽभियुक्तश्च नियतं बुद्धो हि सो भवेत् ॥ ४९ ॥
मध्यस्था ये तु मन्त्रा वै तं जपेद् योऽभिजापिनः ।
प्रत्येकबुद्ध आख्यातो नियतं तस्य गोत्रतः ॥ ५० ॥
येऽन्यमन्त्रे प्रवृत्ता वै प्रत्येकार्हभाषितैः ।
सलौकिकैश्च सत्त्वैर्वै अभियुक्तो मन्त्रजापिनः ॥ ५१ ॥
स भवेन्नियतगोत्रस्थो श्रावकाणां महर्द्धिकाम् । G 433
तत्रापि कर्म प्रयोक्तव्यः उत्कृष्टेऽधममध्यमे ॥ ५२ ॥
शान्तिके बुद्धबोधिः स्यात् पौष्टिके वापि खड्गिनाम् ।
इतरैः क्षुद्रमन्त्रैस्तु श्रावको बोधिमुच्यते ॥ ५३ ॥
तत्रापि चित्तं द्रष्टव्यं तत् त्रिधा परिभिद्यते ।
पुनश्च भिद्यते बहुधा असंख्यं चापि भेदतः ॥ ५४ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकाद् महायान-
वैपुल्यसूत्रात् षट्त्रिंशतिमः मुद्रामण्डल-
तन्त्रसर्वकर्मविधिपटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥

G 434

३९ ध्यानपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य सर्वां च लोकधातुं बुद्धचक्षुषा सर्वसत्त्वानामवलोक्य पुनरपि मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीयमन्त्रतन्त्रमुद्रापटलविसरे सर्वलौकिकलोकोत्तरसमयमण्डलानुप्रविष्टे सामान्यविधानचर्या-निर्हारे समनुप्रवेशसत्त्वामाश्रये अचिन्त्याचेष्टितसर्वमन्त्राणां सर्वमुद्राणां सर्वमण्डलानां सर्वसत्त्वानां सर्वमन्त्रानुप्रविष्टानां निधाननिर्देशचर्या समासतो व्याचक्षते । तच्छ्रूयताम् ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः भगवतश्चरणयोर्निपत्य अध्येषयति स्म—अध्येषयतु मे सुगतः अस्माकमनुकम्पार्थं लोकस्यानुग्रहाय । तद् भविष्यति महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय लोकानुकम्पायै । तद् वदतु मे सुगत । सर्वमन्त्राणां जपहोम-आप्यायनपूजननियमसर्वतन्त्रमुद्रेषु समग्रप्रवेशानुनिगमसाधनौपयिकविधानं सर्वमण्डलेषु सर्वलौकिकलोकोत्तरविधिविशेषणौपयिकपटलविसरम् ॥

एवमुक्ते भगवां मञ्जुभाणी तदन्तरामभूत् सर्वज्ञ वान्यं (?) तूष्णीं तस्थौ । तदन्तरम्—

तुष्टः मञ्जुरवो धीरः सुगतज्ञ प्रतीच्छयम् ।
सर्वबुद्धाश्च सर्वत्र सर्वधातुरागागता ॥ १ ॥
बोधिसत्त्वास्तु सर्वे वै सर्वश्रावकखड्गिणः ।
सर्वसत्त्वा त्रिधा ये च अनादिभवचक्रके ॥ २ ॥
निबद्धा योनिजा ये च गतिपञ्चसुयोजिता ।
सर्वभूतगणाध्यक्षा राक्षसोरगमानुषा ॥ ३ ॥
दैत्यदानवयक्षाश्च कूष्माण्डकटपूतना ।
देवमुख्या गणाध्यक्षा मातराश्च महर्द्धिकाः ॥ ४ ॥
सर्वे ग्रहगणा लोके चन्द्रसूर्या परे तथा ।
ब्रह्मेन्द्रधनदा रुद्रा विष्णुस्कन्दविरूढका ॥ ५ ॥
G 435 धृतराष्ट्रकुबेराश्च सर्वे वै वसवस्तथा ।
सर्वभूताश्च सर्वत्र सत्त्वानुगताश्रिताः ॥ ६ ॥
शुभाशुभफले कर्मैः निबद्धा गतिमूर्तने ।
मुक्तामुक्तश्च सर्वत्र आगता रागे स्थिताः ॥ ७ ॥
बुद्धाधिष्ठानबला ऋद्ध्या शृण्वन्तेह त्रिधा स्थिताः ।
शुभयोनिजसंभूता अशुभैश्चैव स्वकर्मभिः ॥ ८ ॥
शृण्वन्ते सर्वबुद्धा वै शुद्धावासपुरे तदा ।
तदा धर्मं सौगतं चार्गं अग्रगर्भशुभोदयम् ॥ ९ ॥
मन्त्रमुद्रत्रिधायुक्तं नियतं चाग्रि कीर्तितम् ।
क्षेमं शिवतमं मार्गं आर्याष्टाङ्गिकं तदा ॥ १० ॥

त्रिधा कर्मपथं श्रेष्ठं निर्वाणपुरगामिनम् ।
दान शीलतदाध्यानं तृधा मार्गोपदेशितम् ॥ ११ ॥
भगवानुवाच सर्वज्ञ मन्त्रमार्गाङ्गप्रवर्तनम् ।
ईषत्स्मितमुखो धीर मञ्जुघोषं निरीक्ष्य च ॥ १२ ॥
वाक्यं च शुभया युक्तं इदं ब्रह्मरवो तदा ।
शृण्वन्तो भूतगणाः सर्वे स्थिता सौम्या विशारदाः ॥ १३ ॥
मा वो समयाद् भ्रंशो भविष्यति अनर्थकम् ।
अहितं दीर्घरात्रं वो बुद्धवाक्यमजानकाः ॥ १४ ॥
पतिष्यथ तमस्यन्धे वत्स दूरीभविष्यथ ।
इदं वः श्रेयसे युक्ता मन्त्रमुद्रा समीरिताः ॥ १५ ॥
करिष्यथा सदा लोका सदानुग्रहनिग्रहम् ।
मन्यथा मत्क्रियायुक्तं क्रोधो वै च यमान्तकः ॥ १६ ॥
करिष्यति न संदेहः सदा निग्रहतां युगे ।
आदौ पुष्पाभिकीर्णे वै विविक्ते विजने सदा ॥ १७ ॥
कर्तव्ये मण्डले बुद्ध्या ध्यानेनावर्ज्य सर्वतः ।
आदौ च सर्वबुद्धानां पद्मं ध्यायीत बुद्धिमां ॥ १८ ॥
द्वितीयं पद्ममुद्यन्तं अर्कस्यैव महाद्युतिम् । G 436
तत्रस्थो मञ्जुवरः श्रीमां कुमाराकारचिह्नितः ॥ १९ ॥
पञ्चचीरकमूर्धानो जानुकर्णककोर्परः ।
फलितः कृताञ्जलिपुटो बालो पृच्छन्तं सुगतं विदुम् ॥ २० ॥
वाचं च शुभया युक्तां वदन्तो सुगतालये ।
यो वै सर्वबुद्धानां महापद्मं स्फटिकोद्भवम् ॥ २१ ॥
वैदूर्यमयं पद्मं किञ्जल्कं हेमजोद्भवम् ।
महामरकतीनालां कर्णिकां सह हेमजम् ॥ २२ ॥
महाविटपसंघातं महारत्नविभूषितम् ।
पद्मरागमयैः कलिकैः अनेकाकारसुभूषितैः ॥ २३ ॥
अश्मगर्भमयैर्दिव्यैः अङ्कुरैश्च विभूषितम् ।
पद्मं मुनिवरे ध्यात्वा महोच्चं गगनाश्रितम् ॥ २४ ॥
तस्मान्न्यूनतरं पद्मं समचिह्नं सुशोभनम् ।
तन्मनः धामतो ध्यायेन्मन्त्री प्रत्येकार्हश्रावकाम् ॥ २५ ॥
तस्मान्न्यूनतरं पद्मं तृतीयं चित्तेन यत्नधीः ।
चतुर्थं पद्ममावर्तं तस्माद्भ्रस्वतमं विदुः ॥ २६ ॥

ध्यायीत पञ्चमं पद्मं ह्रस्वाह्रस्वतमं सदा।
समाकारसमोद्योतं व्योमं संस्थितसर्वतम्॥ २७॥
कुर्यात् तस्य विदो पद्मं चित्तया सप्तगे स्थितम्।
वज्रपाणेः तथा पद्मं उदयन्तं रवेर्यथा॥ २८॥
दक्षिणेन विदोः पद्मे तथा मञ्जुरवः सदा।
ततो ह्रस्वतरं पद्मं लोकेशस्य महात्मनः॥ २९॥
तृतीयं पद्ममित्येव समन्तद्योतिलाभिने।
चतुर्थं पद्ममित्येव अक्षयप्रतिभानता॥ ३०॥
ईषिद् विमलगते ह्रस्वं कमलं पञ्चमतत्त्विते।
तस्मात् षष्ठतमो यो पद्मः आर्यं चाधर्मसंज्ञितम्॥ ३१॥
G 437 अधश्चैव समन्ताद् वै उदधिं चापि चिन्तयेत्।
महानागेऽर्धनिर्यान्तोऽनन्तः नन्दोपनन्दकौ॥ ३२॥
सर्वश्वेता महानागाः सर्वालंकारभूषिताः।
अब्धेर्जाता स्मितमुखो गगनालम्बनदृष्टयः॥ ३३॥
सप्तशीर्षमहाभोगो मणिकुण्डलभूषिता।
पुरुषाकारदिव्यास्तु अर्धभोगोरगस्तथा॥ ३४॥
सप्तस्फटा ससौम्यास्तु अर्धचक्षुर्गतोर्ध्वगामी।
वामतो मुनिवरा पद्मे पञ्चमुष्णीषसंस्थिताम्॥ ३५॥
चक्रवर्ति तथायन्तां शस्त्रायुधसुतेजिताम्।
एकाक्षरश्चक्रवर्तिस्तेजोराशिः सितोन्नतः॥ ३६॥
अभ्युन्नतो जयोष्णीषविद्याराजमहर्द्धिकः।
वज्रपाणिश्च यक्षेशः अधश्चैव सुचिन्तयेत्॥ ३७॥
एतेषु चित्तं धीमां रूपिभिः सर्वदा सदा।
आत्मनश्च धियो युक्तो मध्ये न्मिमन्त्रराड् जपे॥ ३८॥
तत्रस्थं नियमस्थं वै पद्मपत्रोपविष्ट वै।
ध्यायीत अधश्चात्मानं पर्यङ्केनोपविष्ट वै॥ ३९॥
सर्वपापांश्च देशी मुनिनामन्तिके सदा।
तत्रस्थो नियमजो रूपी अध्येष्य मुनिवरां वराम्॥ ४०॥
धर्मचक्रानुवर्तन्तां तिष्ठन्तां सुगतात्मजाम्।
तेषां पुण्यमतुलम् अनुमोदेव जापधीः॥ ४१॥
सुशुक्लमालतीकुसुमां पुन्नागं नागकेसराम्।
चम्पकाशोकतिलकां तगर्यांश्चैव समल्लिकाम्॥ ४२॥

क्षिपेत् पुष्पाञ्जलिं दिव्यां सव्यांश्चैव सुशोभनाम् ।
सभूतामप्यभूतां वा धिया युक्तां सुशोभनाम् ॥ ४३ ॥
विविधां पूजावरां कुर्युर्विद्या चैव मनोरमाम् ।
विविधां धूपवरांश्चैव तथा गन्धानुलेपनाम् ॥ ४४ ॥
चित्तेनैव तु तत् कुर्यात् सभूता मध्यभावतः ।
निवेद्य बलिमन्नैर्वै प्रदीपांश्चैव तदान्यसेत् ॥ ४५ ॥ G 438
विविधाकारसंपन्ना विचित्रश्चित्रभोजनाम् ।
अनेकाकारसंपन्तां दध्योदनमशालिकाम् ॥ ४६ ॥
यवगोधूममुद्गैश्च खाद्यभोज्यसुभूषितैः ।
निवेद्य सुगते भक्त्या दद्याच्चात्मानमेव तु ॥ ४७ ॥
तथ्येन नान्यथा चापि चित्त येनापि शिष्यते ।
एषा श्रद्धा मया पूजा सर्वपूजेषु शिष्यते ॥ ४८ ॥
मां ध्यात्वा जापिनः सर्वे नियतं बोधिमवाप्नुयात् ।
सफला मन्त्रसिद्धिश्च जायते च न संशयः ॥ ४९ ॥
इहैव जन्मनि सत्त्वा सिध्यन्ते मन्त्रदेवता ।
अन्यजन्मान्तरे वापि केचित् सिद्ध्यन्ति मानवाः ॥ ५० ॥
विचित्रां भोगसंपत्तिं विशेषांश्चापि पुष्कलाम् ।
विविधा कालमनोवाग् ध्यानं चापि त्रिधा पुरा ॥ ५१ ॥
बुद्धैर्बुद्धशतैश्चापि प्रत्येकार्हश्रावकैः ।
त्रिप्रकारा तथा बोधिः प्राप्नुवन्तो यशस्विनः ॥ ५२ ॥
एतैस्त्रिप्रकारैस्तु मन्त्रसिद्धिरिहोदिता ।
त्रिप्रकारैस्तु सत्त्वाख्यै उत्तमाधममध्यमे ॥ ५३ ॥
त्रिधा कर्म समुद्दिष्टम्.... .... ।
प्रणीतं ध्यानतां प्रोक्तं मध्यमं शीलजं स्मृतम् ॥ ५४ ॥
कन्यसं दानजं मुख्यं तच्चैव तु पुनस्त्रिधा ।
प्रणीतं धर्मदानं तु मध्यमं तु गतं तथा ॥ ५५ ॥
वाक्यमामिषदानं तु कन्यसे व तु कीर्त्यते ।
शीलं चापि त्रिधा प्रोक्तमित्युवाच मुनिः पुरा ॥ ५६ ॥
बुद्धत्वपरिणामाख्यं अग्र्यं शीलमिति स्मृतम् ।
प्रत्येकबोधौ मध्यं तु कन्यसं श्रावकोद्भवम् ॥ ५७ ॥
एतल्लोकोत्तरं शीलं लौकिकं तु प्रकथ्यते । G 439
तच्चापि त्रिविधा ज्ञेयं सास्रवोत्पत्तिकारणम् ॥ ५८ ॥

मुमुक्षुबुद्धिभिर्भक्त्याधिज्ञप्त्या अभिज्ञसंभवा।
श्रेष्ठा ज्येष्ठतमा लोके कथ्यन्ते ऋषिवरैः सदा ॥ ५९ ॥
एतदग्रमयं लोके शीलमाहुर्मनीषिणः।
मध्यमं देवजं ज्ञेयं कन्यसं तु नृपद्वराम् ॥ ६० ॥
तच्चापि त्रिप्रकारैस्तु त्रिधा कर्मेषु योजितैः।
त्रिधा च त्रिविधैश्चैव पुनर्मुक्तं त्रिद्विसप्तपञ्चशः ॥ ६१ ॥
त्रिसप्तं सप्ततिं तच्चापि त्रिधा भिन्नम्।
प्रादुर्भूतोऽङ्कुरोऽङ्कुरात् ध्यानजं चैवमत्यन्तो ॥ ६२ ॥
सुरेश्वरौ पुनः त्रीणि पुनरष्टाष्टभूषितम्।
यथैव पूर्वनिर्दिष्टं ध्यानेष्वेव च कथ्यते ॥ ६३ ॥
एवं तरंगवद् भिन्नं पुनर्ज्वालेव गच्छति।
बुद्बुदाकारवद् ज्ञेयं क्षणोत्पत्तिप्रभङ्गुरम् ॥ ६४ ॥
एवमेवाद्यप्रयोगेन शतधा भिद्यते पुनः।
सहस्रशश्च सदा ज्ञेयमसंख्येयाद्यलक्षितम् ॥ ६५ ॥
साध्यते ध्यानजं कर्म अग्र्यं मानसोद्भवम्।
तस्माद् ध्यानवतं मन्त्रं चित्तं बोधाय नामितम् ॥ ६६ ॥
अयनेनैव ते सिद्धिं लप्स्यन्ते मन्त्रदेवताम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जापिभिः सिद्धिलिप्सुभिः ॥ ६७ ॥
कर्तव्या मानसी पूजा बुद्धानां सर्वतः सदा।
इहैव जन्मनि सिद्धिं नित्यं ध्यानरतस्य तु ॥ ६८ ॥
सर्वत्राप्रतिहतो ह्येष ध्यानजो शीलसंवरः।
दानतो विभवो धर्मः शीलतो सुरवरोदयम् ॥ ६९ ॥
उत्पत्तिध्यानादाना श्रवे.... .... ।
एतत् संक्षेपतो ह्युक्तं जापिनां मन्त्रसिद्धये ॥ ७० ॥
G 440 यं बुध्वा मन्त्रिणः सर्वे क्षिप्रमन्त्रेषु सिद्धये।
क्षिप्रं चानुत्तरां बोधिं प्राप्नुवन्ति न संशयम् ॥ ७१ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात् आर्यमञ्जुश्रिय-
मूलकल्पात् सप्तत्रिंशतिमः महाकल्पराजपटलविसराद्
उत्तमसाधनौपयिकसर्वकर्मार्थसाधनतत्त्वेषु
प्रथमः ध्यानपटलविसरः
परिसमाप्त इति ॥



४० सर्वकर्मध्यानपटलनिर्देशः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते G 441 स्म—अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये महाकल्पराजे पटलविसरे ध्यानजेऽनास्रवे परमशिवशान्तीभूते अत्यन्तभूतकोटिधर्मधातुप्रविष्टे सर्वतथागतधर्मनेत्रीमनुगते परमनिर्वाणमार्गां सानुप्रविष्टे आर्यपथक्षेमशान्तीभूते महाधर्मनैरात्म्यशून्यताखभावमनुप्रविष्टे सर्वलौकिकलोकोत्तर-तत्त्वावतारध्यानानुगतमनुप्रविष्टे सर्वमन्त्रचर्यासाधनविधिसमासक्रीडानाटकबालचर्याविस्फूर्या-नानुगतसंतोषणसत्त्वचर्यानुगतैः । कतमं च तत्?

शृणु त्वं मञ्जुरव ! श्रीमां सर्वसत्त्वानुवर्तनम् ।
ध्यानं सर्वज्ञतो ज्ञेयं सर्वमन्त्रार्थसाधनम् ॥ १ ॥
पूरणं सर्वमन्त्राणां शोधनं पापकर्मिणाम् ।
यं ध्यात्वा च जनाः सर्वे सिद्धिं प्राप्स्यन्त्यनाविलाम् ।
सर्वाकारवरोपेतां ध्यानसौख्यमचिन्तिताम् ॥ २ ॥
बोधित्वं त्रिविधं प्राप्य उत्तमाधममध्यमाः ।
अतुलां मन्त्रसिद्धिं च अस्तुवन्ति जना भवेत् ।
सर्वार्थसाधनं लोके यशःकीर्तिसुखोदयम् ॥ ३ ॥
दीर्घायुष्कतां लोकेऽस्मिं देवानां च महद्गतिम् ।
सर्वाशावाप्तितां क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ ४ ॥
द्विप्रपञ्चानुत्तरां बोधिं लप्स्यन्ते ध्यानचिन्तकाः ।
सर्वसत्त्वाहितह्यग्रं सर्वमन्त्रेषु कीर्त्यते ॥ ५ ॥
स्मरणादेव मन्त्रेषु सर्वतन्त्रेषु च पुनः ।
सिद्धयः सिद्धिहेतूनां क्षिप्रमाशानिबन्धनम् ॥ ६ ॥
आशास्यं भुवि तां मर्त्या पुनर्गच्छन्ति देवता ।
आजहार पुरं दिव्यं देवतामन्दिरेष्विह ॥ ७ ॥
तिष्ठन्ते मन्त्रराट् सर्वे तन्मुखापिध्यायिने ।
आगत्य च पुनः सर्वं देवतामन्त्ररूपिणाम् ॥ ८ ॥
कथयन्ति यथातथ्यं शुभाशुभफलोद्भवम् । G 442
वाचां प्रबुद्धः स्वप्ने प्रत्यक्षं वाथ जापिने ॥ ९ ॥
शुभोदयं फलं कर्म प्रत्यक्षं वापि देवताम् ।
पश्यन्ते स्वप्नगताः सर्वे मन्त्रिणा वापि तदन्तरे ॥ १० ॥
इतरां चापि न पश्यन्ते जापिनो मन्त्रलौकिका ।
ध्यानेन पापं क्षीयेत जपे चापि सुपुष्कले ॥ ११ ॥

सिध्यन्ते मन्त्रराट् सर्वे अचिरात् तस्य मन्त्रिणः।
प्रभावा ध्यानयोगस्य अचिन्त्याद्भुतचेष्टिता ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तु धीरेण शाक्यसिंहेन तायिना।
अभून्मञ्जुरवस्तूष्णीं शुद्धावासपुरे तदा ॥ १३ ॥
सर्वे देवगणा मुख्या त्रिधा धातुसमाश्रिता।
अमुचद् वाक्यवरं शुद्धं सर्वमन्त्रेश्वरं गुरुम् ॥ १४ ॥
साधु साधु महावीर साधु धर्मेश्वरो विभोः।
यस्त्वं हि सर्वसत्त्वानां हितार्थं मन्त्रजापिनाम् ॥ १५ ॥
ध्यानां च तत्त्वनिर्दिष्टं पूर्वनिर्दिष्टतामिति।
इदानीं तु महावीर * * * * * * * * ॥ १६ ॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे अग्रा ह्यग्रतमे हिताः।
तूष्णींभूतास्ततस्तस्मिन् शुद्धावासपुरे पुरे ॥ १७ ॥
इत्युवाच महाधीरो मुनिस्तेजो * * * *।
शुभया वाचया दिव्या लोकतत्त्वार्थदर्शनम् ॥ १८ ॥
कथायामास संबुद्धः मधुराक्षरयोपजम्।
शृणोथ भूतगणाः सर्वे स्थिता त्रिविधालया ॥ १९ ॥
ध्यानं च भवनिर्देशं कथयन्तः समाहिताः।
अनेकार्थमनानात्वं नैरात्म्यं तत्त्वदर्शनम् ॥ २० ॥
सर्वमन्त्रार्थविधिं सार्थं विविधार्थं तु लौकिके।
सर्वधर्मेश्वरा लोके येनायान्ति सुचिन्तिता।
G 443 क्षिप्रं च जापिनां सर्वे आशु मन्त्रार्थसिद्धये ॥ २१ ॥
आदौ ध्यायीत महावीरं रत्नकेतुं तथागतम्।
रत्नशैलनिषण्णं तु गुहायां रत्नजोद्यते।
पद्मरागमयं दिव्यं महापद्मं महोन्नतम् ॥ २२ ॥
भगवां तत्र निषण्णस्थं पर्यङ्के धर्मदेशितम्।
ध्यायन्तं महावीरं पद्मसंभवमेव तु ॥ २३ ॥
पद्मोत्तरं च संबुद्धं पद्माभं चैव बुद्धिमां।
ध्यायीत मुनिवरां पञ्च रत्नाभं च तथागतम् ॥ २४ ॥
समतः सुप्रतिष्ठिता ज्ञेया गुहेष्वेव पञ्चसु।
सर्वां शैलमयां सादि पद्मरागमयं क्वचित् ॥ २५ ॥
भिन्नेन्द्रनीलमाभासं क्वचित् स्फटिकसंनिभम्।
उच्छ्रयं मरकताभासं प्रमाणं चापि शताष्टकम् ॥ २६ ॥

योजनानां सहस्रं तु लक्षषोडशविस्तरम्।
उपरिष्टात्तु संबुद्धा अपर्यन्ता नरोत्तमा ॥ २७ ॥
इत्यूर्ध्वमधः सर्वदिग्विदिशश्चापि सर्वतो।
प्राप्तं मुनिवरैः सर्वं संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः ॥ २८ ॥
चन्द्राभासं च निर्भासैः श्वेतपुण्डरिकासनैः।
हंसगोक्षीरनिर्भासैः शङ्खकुन्देन्दुहिमप्रभैः ॥ २९ ॥
संबुद्धैः सर्वमिदं व्याप्तं इत्यूर्ध्वमधस्सप्ततिर्यकम्।
सव्योम्नि पुष्पवर्षाद्यैः सुरमुख्यैः समन्ततः ॥ ३० ॥
अदृश्यकायसारूप्यैः उपरिष्टात् खसमागतैः।
अधश्चात्मानं सदा चिन्तेत् पर्यङ्केनोपविष्टकम् ॥ ३१ ॥
पद्मपत्रे स्थितं मुख्यं शरीरं चापि निर्मलम्।
अभिषिञ्चन्तं सदा पश्यन्तं तोयधाराभि सर्वतः ॥ ३२ ॥
असंख्येयैर्मुनिमुख्यैः संबुद्धैः द्विपदोत्तमैः।
प्रसृतैर्दक्षिणाग्रकरैः समन्तादङ्गुलिभिः सदा ॥ ३३ ॥
शुक्लतोयबहुभिः बहुधाराभिरूर्ध्वतः। G 444
समन्तात् सर्वतश्चैव मूर्तिं चात्मान एव तु ॥ ३४ ॥
अष्टाङ्गसलिलधाराभिः सुगन्धैर्लयशीतलैः।
अच्छैरनाविलैश्चैव सर्वव्याधिहरैस्तथा ॥ ३५ ॥
जरामृत्युविनाशिन्यैः भिन्नस्फटिकसंनिभैः।
तादृशैस्तोयधाराभिः आत्मानं चापि चिन्तयेत् ॥ ३६ ॥
अभिषिच्यात्मतो चिन्त्या तैश्चाप्यायितमानसः।
समन्ताद् वारिधाराभिस्ततो ध्यायी सुखी भवेत् ॥ ३७ ॥
संतुष्टमनसो धीमां पश्येद्ध्यानं तदासनम्।
चित्ते समाधितां लिप्स्ये पञ्चाभिज्ञासु चिन्त्यधीः ॥ ३८ ॥
एवं युक्तः सदा योगी पश्येद् धर्मां तदा स्वयम्।
दिव्यं श्रोत्रं तथा ज्ञानं पूर्वजातिमनुस्मरम् ॥ ३९ ॥
ऋद्धिविक्रीडितं ज्योतिर्दिव्यं चक्षुरनावृतम्।
परचित्तगतिं चिन्तां सर्वसत्त्वाश्रयं तम् ॥ ४० ॥
सर्वं ज्ञास्यति योगीशो तदा युक्ते समाहितः।
अनिवर्त्त्यः सदा बोधो अनुत्तरायां न संशयः ॥ ४१ ॥
बुद्धभूमिगतां धर्मां प्रथमायामविकल्पतः।
प्राप्स्यतेऽसौ सदा जापी अनिवर्त्योऽमृते पदे ॥ ४२ ॥

अनाभोगेनैव सम्यङ् मन्त्राः सिध्यन्ति सर्वतः।
ये च लोकोत्तराः सर्वे आभिमुख्यैः प्रभाषिताः॥ ४३॥
बोधिसत्त्वैस्तु सर्वत्र अब्जा वज्रोद्भवाश्च ये।
लौकिका ये च मन्त्रा वै ब्रह्मरुद्रेन्द्रभाषिता॥ ४४॥
यक्षमुख्यगणैः सर्वैः.........।
मातृभूतग्रहगणैः यक्षराक्षसकिन्नरैः॥ ४५॥
देवैर्नागगरुडैश्च सिद्धविद्याधरैस्तदा।
कूष्माण्डैर्व्यन्तरैश्चापि कश्मलैः पिशिताशनैः॥ ४६॥
G 445 परप्राणहरैश्चापि राक्षसैः प्रेतदुःखपैः।
पिशाचैर्भूतयक्षैश्च अनेकाकारजातिजैः॥ ४७॥
ये मन्त्रा भाषिता लोके * * ....।
ते तस्य योगिनो यान्ति ईषद् बोधाय बोधिता॥ ४८॥
क्षिप्रं सिद्धितां यान्ति मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः।
वचनं तस्य वै मन्त्रः क्षिप्रं तत्त्वार्थदर्शिने॥ ४९॥
ऋषयो ये च वै देवाः....मानुषोद्भवाः।
प्रसह्य वृत्ता मुख्याश्च स्त्रीपुंसाश्चापुंसकाः॥ ५०॥
सर्वे महर्द्धिकाश्चापि उत्तमाधममध्यमाः।
सर्वे लौकिका चापि ये मन्त्रा लोकपूजिता॥ ५१॥
तैश्चाप्यथ मनैश्च मन्त्रैश्चापि मन्त्रजाः।
भाषिता मुनिमुख्यैश्च सर्वे सिद्ध्यन्ति योगिने॥ ५२॥
तन्त्रमन्त्रगताश्चापि ओषध्यो मणिभूषणाः।
सर्वे मन्त्रवरा तस्य उत्तमाधममध्यमाः॥ ५३॥
सर्वाशावाप्तये वापि अक्षरे क्षरते यदा।
सिध्यते तस्य वै युक्तस्य एवं युक्तस्य मन्त्रिणे॥ ५४॥
एवमुक्तस्य मन्त्रस्य धीमन्तस्य विशेषतः।
प्रथमं चिह्नलिङ्गस्तु मन्त्राणां सिद्धिहेतवः॥ ५५॥
शरीरं जायते श्रेष्ठं पद्माभासं सुखोदयम्।
गात्रस्य शैत्यता चापि चन्दनेन्दीवरगन्धिता॥ ५६॥
कर्पूरागरुसौगन्ध्यं पद्मकिञ्जल्कवर्णता।
वक्त्राद् रोमकूपेभ्यः गन्धो वाति सचाम्पकम्॥ ५७॥
जातीयूथिकपुन्नागं नागकेसरबकुलम्।
धानुष्कारी ससौगन्धी जातिमल्लिकक्कोलजम्॥ ५८॥

विविधां धूपमुख्या वा (विविधा पुष्पजातयः ।
विविधा गन्धमुख्याश्च) विविधा द्रव्यजातयः ।
विविधाः सर्वगता गन्धाः शुभकर्मसमोचिताः ॥ ५९ ॥ G 446
तेषां गन्धवरं द्रव्यं अभिभूयोभिप्रवर्तते ।
दिव्यं मान्दारवं गन्धं सकिञ्जल्कं सकोकणम् ।
सकस्तूर्यकं लोके अभिभूय तां प्रवायते ॥ ६० ॥
ततश्चिह्नमिमां ज्ञात्वा गात्रे वै चापि शैल्यताम् ।
चित्तैकाग्रतां चैव सुखं चैव विवेकजम् ॥ ६१ ॥
प्रथमं ध्यानजं चैव चित्तं ज्ञात्वा तु तीरितम् ।
सुखदुःखमुपेक्षाय निर्वृते चापि विरागताम् ॥ ६२ ॥
उपेक्षं स्मृतिपरिशुद्धिं द्वितीये प्रेरयते जपी ।
तृतीयं चित्ततो ध्यानं चतुर्थं अश्रयतो व्रती ॥ ६३ ॥
यथा मुनिवरोद्दिष्टं ध्यानं सर्वतो शुभम् ।
तथा मन्त्रगतो जापी ध्यायेदेकाग्रमनोमयम् ॥ ६४ ॥
ये निर्दिष्टाद्यबुद्धैस्तु वर्तमानमनागतैः ।
संबुद्धैः श्रावकैश्चापि सूत्रान्ताश्चापि कीर्तिताः ॥ ६५ ॥
तेषु योगेषु मन्त्रज्ञाः अनुपूर्व्या ध्यानमाचरेत् ।
निवर्त्यं श्रावकी बोधि प्रत्येकजिनमुद्भवाम् ॥ ६६ ॥
महाकरुणानुभावीत महामैत्रीं चापि यत्नतः ।
यद् यद् गोत्रागतं चित्तं तथा चित्तं तु भावयेत् ॥ ६७ ॥
परहितचित्तान्मैत्री परदुःखकृपालुता करुणा ।
परतुष्टिमुदिता परदोषमुपेक्षणमुपेक्षा ॥ ६८ ॥
इत्युवाच महाभागा संबुद्धा द्विपदोत्तमा ।
अनित्यदुःखमनात्माशून्यतत्त्वं शिवं पदम् ॥ ६९ ॥
क्षेमं शिवं परं स्थानं निर्दिष्टं लोकनायकैः ।
क्षणिकाः सर्वसंस्काराः त्रिविधास्तत्त्वेष्वचेष्टिता ॥ ७० ॥
त एवासंस्कृता धर्मास्त्रिविधा बोधिसंस्थिता ।
त एव शिवतमा लोके कथिता बोधिपरायणैः ॥ ७१ ॥
पुद्गलाभावनैरात्म्यं तीक्ष्णपतनवर्णितम् । G 447
तं नास्ति शिवे मार्गे क्षेमे बुद्धोपदेशिते ॥ ७२ ॥
अत्यन्तनिष्ठे धर्मेऽस्मिं भूतकोटिसमाश्रिते ।
धर्मधातुसमानं ते अस्तिनास्तिविवर्जिते ॥ ७३ ॥

शुभे धर्मोदये बोधौ त्रिप्रकारसमोदिते ।
अत्यन्तनिष्ठे मोक्षे च बहुधा भेदमाश्रिते ॥ ७४ ॥
सुप्रयुक्ते सुनिर्दिष्टे सर्वबुद्धैः सुदेशिते ।
मार्गे स्थितेऽथ मन्त्रज्ञः सर्वपापहरे शिवे ॥ ७५ ॥
ये धर्मा मुनिवरैः सर्वैः प्रतीत्योत्पन्नाः शुभाशुभाः ।
सर्वे ते जातिभिर्योगे ध्यातव्या मुनिहेतुभिः ॥ ७६ ॥
श्रावकानां तु या शिक्षा अधिशीलानुप्रवर्तते ।
अधिचित्तं च यद् ज्ञानं श्रामण्यफलहेतुकम् ॥ ७७ ॥
अनास्रवं सास्रवं ज्ञेयं जापिभिः सर्वदा स्वयम् ।
ज्ञातव्यं खड्गिणा शिक्षा प्रत्येकार्हसंभवाम् ॥ ७८ ॥
सर्वसत्त्वाख्यसत्त्वैवं सुस्वरं त्रिदिवोदितम् ।
यथाजिनैश्च निर्दिष्टं मार्गतत्त्वानुगामिनम् ॥ ७९ ॥
सास्रवानास्रवं ध्यानं संवरं च शुभोदयम् ।
यथावृत्ति यथालिङ्गं तथा शिक्षासु व्यवस्थितम् ॥ ८० ॥
तद्धर्मासेवतो जापी मन्त्रसिद्धिं समश्नुते ।
ध्येयं च ध्यानजं पुण्यं पुण्यं ब्रह्म शुभोदयम् ॥ ८१ ॥
तस्य सिद्धिः सदा ज्ञेया ध्यानैः पुण्यैश्च बृंहितैः ।
उपोह्य सर्वतो मन्त्री जपहोमरतो व्रती ॥ ८२ ॥
ध्यातव्यः सर्वतो मुख्यः जिनपुत्रो महर्द्धिकः ।
मञ्जुघोषो महावीरः कुङ्कुमाकारसमत्विषः ॥ ८३ ॥
ईषित्स्मितमुखो देवो सव्यामाभोगमण्डलः ।
प्रसन्नमूर्तिः पद्मस्थः समन्तरश्म्यावभासितः ॥ ८४ ॥
पूर्वनिर्दिष्टजे स्थाने स्वमूर्त्याभिषेकसेविते ।
G 448 उपरिष्टात् तोयताराणां मध्ये जिनवरालये ॥ ८५ ॥
तत्रस्थं तु सुखासीनं ध्यायीत मञ्जुरवं शुभम् ।
सर्वबुद्धोर्ध्वकं दृष्टिं सनमस्कारं शुभं प्रभुम् ॥ ८६ ॥
वामे करविन्यस्तं नीलोत्पलं शुभम् ।
दक्षिणेन करे युक्तं शुचिस्थाने सदा शुभे ॥ ८७ ॥
सनमस्कारं सदावृद्धं ईषच्छीलासबालिशम् ।
तं ध्यात्वा मुनिपुत्रे वै सदामन्त्री पुनः पुनः ॥ ८८ ॥
तत्रस्थो ध्यानजो धीमां आतुरायां तु पश्यति ।
सर्वे ते व्याधिनिर्मुक्ता दृष्टमात्रेण मन्त्रिणा ॥ ८९ ॥

अधश्च पश्यत्पातालं सर्वे भूमिगता धना ।
वशिता सर्वमन्त्रज्ञः नित्योच्चाटनमन्त्रिणाम् ॥ ९० ॥
यदूर्ध्वं समपश्येत् सिद्धां व्योम्नानुगामिनाम् ।
सर्वं वशयिता लोके सिद्धद्रव्याणि सर्वतः ॥ ९१ ॥
अथोत्तरां दिशां पश्येद् यक्षाध्यक्षांश्च सर्वदा ।
कूष्माण्डा वित्तदाश्चैव वित्तेशश्च महर्द्धिका ॥ ९२ ॥
ईशानो भूतपतिश्चैव ....।
औषध्यो हेमजाः सर्वे रुद्रश्चैव सहोमया ॥ ९३ ॥
किन्नरा मरुगन्धर्वा ऋषयो गरुडस्तथा ।
सर्वसत्त्वाश्रया ये च तथोत्तरा विदिशे ॥ ९४ ॥
विदिक्षु चैव सर्वत्र तथा स्थावरजङ्गमाः ।
सर्वे स्युर्वशमायान्ति दृष्टमात्रेण जापिने ॥ ९५ ॥
एवं पश्चिमतो ज्ञेयं वरुण महर्द्धिकः ।
महानागैः सदा सर्वं दृष्ट्वा यान्ति संमूर्च्छिता ॥ ९६ ॥
एवं वैवस्वतां लोकां यमश्चैव महर्द्धिकः ।
सर्वे ये राक्षसा दुष्टा घोररूपा महर्द्धिका ॥ ९७ ॥
ससुताभृत्यवर्गैश्च परप्राणहराः खगाः । G 449
पिशिताशनरूपाश्च भीमरूपानुगाः सदा ॥ ९८ ॥
व्यन्तरा कश्मलाश्चैव प्रेताप्रेतमहर्द्धिका ।
पिशाचा भूतक्रव्यादा व्यालाश्चैव महर्द्धिकाः ॥ ९९ ॥
अनेकाकाररूपास्तु अनेकाकारयोनिजाः ।
रूपा मनोजवाश्चैव सत्त्वा हिण्डन्ति मेदिनीम् ॥ १०० ॥
दारुणा रुधिरगन्धेन समन्ताद् योजनं शतम् ।
सहस्रं पुनरायान्ति सप्तसप्तेऽनुगे सदा ।
मानुषाणां विहेठन्तां पर्यटन्ति महीतले ॥ १०१ ॥
आहारार्थिनः केचित् केचित् क्रीडानुगामिनः ।
सर्वे स्युर्वशमायान्ति दृष्टमात्रेण जापिने ।
एवं पूर्वायां तथा दिक्षु पूर्वाध्यक्षादिशानुगः ॥ १०२ ॥
सवितुः सर्वनक्षत्रा सज्योतिग्रहचन्द्रमा ।
महोत्पादोपग्रहां सत्त्वे विराजांश्चैव दिशां पतिः ॥ १०३ ॥
ससुतो सपरिवारो वै शक्री वा चापि सर्वतः ।
सर्वे ते वशमायान्ति ध्यानेनावर्जिते जिता ॥ १०४ ॥

विदिक्षुश्चैव सर्वत्र सर्वं सर्वासु दिक्षुषु ।
सुरश्रेष्ठासुराश्चैव स्त्रीपुंसादयें भुवि ॥ १०५ ॥
सर्वसत्त्वा तथा लोके मानुषा अमानुषोद्भवा ।
सर्वे ते वशमायान्ति ये सत्त्वा त्रिषु स्थावरा ॥ १०६ ॥
ये तु धातुजा मुख्या तथा मध्यमकन्यसाः ।
सर्वे ते वशमायान्ति अदृश्यादृश्याश्च ध्यायिने ॥ १०७ ॥
त्रिविधं ध्यानजं कर्म ज्येष्ठमध्यमकन्यसम् ।
ज्येष्ठे उत्तमां बोधिं प्राप्य ध्यायी निवर्तते ॥ १०८ ॥
अनुत्तरं च पदं शान्तं प्रत्येकं मार्गखड्गिणाम् ।
कन्यसा श्रावकी बोधिः प्राप्यते परनिश्रिता ॥ १०९ ॥
G 450 प्रतीत्योत्पत्तिकधर्माणां हेतुसंभूतलक्षणम्।
तेषां निरोधधर्माणां एवंवादी नरोत्तमः ॥ ११० ॥
साक्षात्क्रियेनमर्हत्त्वं चतुरो पटलसंभवाम् ।
हेत्वाभासविदज्ञानं शून्यता दुःखसंभवम् ॥ १११ ॥
नैरात्म्यधर्मतो निष्ठं अत्यन्तं भूतकोटिजम् ।
निरोधमार्गवद् ज्ञेयमर्हत्त्वं चापि कन्यसम् ॥ ११२ ॥
आलयोद्घातनो वर्त्मापच्छेदो वदनात्मताम् ।
पिपासा प्रतिपच्छोषावर्त्मोपच्छेदोऽथ देहिनाम् ॥ ११३ ॥
कामनद्यां सहतृष्णां शोकशल्योऽथ देहिनाम् ।
रुध्यन्ते सर्वतो ध्याने मार्गेऽस्मिं ध्यानजे हिते ॥ ११४ ॥
त्रिप्रकारं तथा कर्म अनेकाकारचिह्नितम् ।
त्रिधा चैव समुख्याणां त्रिविधा बोधि कीर्तिता ॥ ११५ ॥
कन्यसं श्रावके बोधिः प्रत्येकार्हखड्गिणाम् ।
मध्यमे च सदा लोके निर्दिष्टा जिनवरैः पुरा ॥ ११६ ॥
उत्तमं तु सदा बोधिं सम्यक्संबुद्धतां गतिम् ।
एवमाद्यप्रयोगेन त्रिधा कर्मक्रियाक्रमम् ॥ ११७ ॥
शतधा भिद्यते तत्र सहस्रोऽथ मसंख्यकम् ।
व्रीह्यङ्कुरवद् ज्ञेयं पुनः क्षेत्राङ्कुरवत् सदा ॥ ११८ ॥
ततोऽङ्कुराङ्कुरवन्नित्यं संतत्या संप्रकीर्तिताम् ।
बीजौषधवत् कर्म शुक्लधर्मसमन्वितः ॥ ११९ ॥
सत्त्वविज्ञानसंतत्या पुनस्तोयतरंगवत् ।
प्रवर्तते ध्यानजा धर्मा पुनर्ध्यायीत बुद्धिमां ॥ १२० ॥

यथा ध्यानगतो योगी शुद्धिं पश्येत सर्वतः ।
त्रिविधं त्रिप्रकारं तु अनेकाकारसंभवाम् ॥ १२१ ॥
सिद्धिं मन्त्रयुक्तिं च समाधिं चैव कीर्तितम् ।
धारण्या बोधिसत्त्वानां त्रिविधैव समोदिता ॥ १२२ ॥
अनेकाकारवरोपेता मन्त्राश्चैव सुपूजिता । G 451
लौकिका लोकमुख्याश्च तथा लोकोत्तरा सदा ॥ १२३ ॥
सौगतीवर्त्ममास्थाय ध्यानं ध्यानपरंपरा ।
सिध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै सर्वसत्त्वार्थदर्शनाम् ॥ १२४ ॥
प्राप्नुवंस्तं जनाः सर्वे ध्यायतां सर्वतो हिताम् ।
यशः कीर्तियथायुष्यं सर्वव्याधिप्रणाशनम् ॥ १२५ ॥
मार्गतत्त्वार्थदं ज्ञानं जीवितं चापि सुपुष्कलम् ।
प्राप्नुवध्वं नराः श्रेष्ठाः नित्यं ध्याने समाहिताः ॥ १२६ ॥
एष योगः समासेन निर्दिष्टो मुनिवरैः पुरा ।
अधुना च मयोक्तेदं विधियोगं समाहितम् ॥ १२७ ॥
मयाप्यनुत्तरां बोधिं संप्राप्ते मेऽमृते पदे ।
एभिरेव समायोगैः मन्त्रैश्चापि सुपूजिताः ॥ १२८ ॥
ध्यानकर्मगतैः दिव्यैः शुभैश्चापि समाधिभिः ।
प्राप्यमनुत्तरं ज्ञानं बुद्धत्वं भगवानाह ॥ १२९ ॥
अपरं तु प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।
क्रीडार्थं सर्वमन्त्राणां क्रीडाशतकर्मजम् ॥ १३० ॥
ध्यानजेनैव प्रयोगेण शृणु मञ्जुरवो जनाः ।
सदा हिताहितं ज्ञेयं मन्त्रिणां च विकुर्वणम् ॥ १३१ ॥
ध्यानजेनैव योगेन कुर्याद् बालिशबुद्धिनाम् ।
आदौ तावत् सदा ध्यायेन्महानागोच्छ्रयं जले ॥ १३२ ॥
महोदधिः समन्ताद् वै शैलराजविभूषितम् ।
रत्नशृङ्गं महोच्चं वै चतुरन्तमयं शुभम् ॥ १३३ ॥
तत्रासीनं महात्मानं बुद्धं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
सुनेत्रं धर्मभूयिष्ठं अमिताभं च जिनोत्तमम् ॥ १३४ ॥
जिनपुत्रं सदा श्वेतं लोकेशं च यशस्विनम् ।
पद्मकेतुं महासत्त्वं महाकरुणजोद्भवम् ॥ १३५ ॥
सुनेत्रे मुनिवरे स्थाने कुमारं बालरूपिणम् । G 452
सदा मञ्जुरवं विन्द्याद् विचित्रो भूतिलक्षणम् ॥ १३६ ॥

इन्दीवरकरं वामे दक्षिणे सुगतानभम् ।
जलेयोऽत्र महानागो अनन्तो नाम नामतः ॥ १३७ ॥
सर्वश्वेतस्तथा नित्यं सप्तशीर्षजैः स्फटैः ।
तं ध्यात्वा चिन्तयेज्जापी विचित्रालंकारभूषितम् ॥ १३८ ॥
सुगतात् संप्रतीच्छन्तं तन्मुखं चापि चिन्तयेत् ।
एवं नन्दोपनन्दौ च नागराजौ महर्द्धिकौ ॥ १३९ ॥
तत्प्रमाणोच्छ्रितौ वृद्ध्या द्विगुणं चापि सर्वतः ।
अनन्तकर्कोटकस्तुल्यैः पद्मश्चापि महर्द्धिकः ॥ १४० ॥
कुलिकः शङ्खपालश्च कपिलश्चापि वर्णतः ।
महापद्मोऽथ नागेन्द्रः पद्माभश्चलते सदा ॥ १४१ ॥
वासुकिस्तक्षकश्चैव ईषित्किञ्जल्कवर्णतः ।
पद्माभौ सर्वतो ज्ञेयौ विचित्राकारभूषणौ ॥ १४२ ॥
शङ्खश्चैव महानागो शुक्लाभो वर्णतः शुभौ ।
शङ्खपालो मणिर्नागः श्वेताभो ईषि वर्णतः ।
सागरश्च महानागः मुचिलिन्दश्चैव विश्रुतः ॥ १४३ ॥
कृष्णनागोऽथ सर्वत्र कृष्णवर्णाः प्रकीर्तिताः ।
सर्वे तुल्यप्रमाणास्तु नन्दोपनन्दोऽथ सूच्छ्रितौ ॥ १४४ ॥
एलपत्रोऽथ नागेन्द्रो भोगवां लोकविश्रुतः ।
सागरो ह्युरगाध्यक्षः अचिन्त्याद्भुतचेष्टितः ॥ १४५ ॥
करोति विविधां कर्मां शुक्लांश्चैव निबोध ताम् ।
मृतकं विषसुप्तां वा सागरे नैव कारयेत् ॥ १४६ ॥
वस्त्रेनावृतकृत्वा वै ध्यानयोगेन धीमता ।
आकृत्य सागरे स्थाने शीघ्रमुत्तिष्ठते मृतः ॥ १४७ ॥
विषसुप्तस्य सदा नागो पादेनाक्रम्य चालयेत् ।
G 453 तं न्यसेत् सागरे स्थाने निर्विषो भवति तत्क्षणात् ।
एवं ज्वरपिशाचांश्च कृत्यादां व्यन्तरां शुभाम् ॥ १४८ ॥
रक्षसां प्रेतकूष्भाण्डां पिशाचोरगमातराम् ।
ग्रहश्चैव सदा लोके परप्राणहरां नराम् ॥ १४९ ॥
.............विचित्रा श्रममाश्रिता ।
मानुषिं तनुमाश्रित्य तिष्ठन्ते भुवि मानुषाम् ॥ १५० ॥
गृह्णन्ते बालिनां सत्त्वां तेषां ध्यानेनानेन चिन्तयेत् ।
सागरस्य तु नागेन्द्रा चिन्त्यादग्रतोत्थितम् ।
ध्यायीत मातरं सत्त्वं क्षिप्रं मुञ्चति बालिसम् ॥ १५१ ॥

एवं दष्टमदष्टानां कीटलूतोत्थितां नृणाम् ।
दद्रुकिटिमकुष्ठानां पामाकण्डूविचर्चिकाम् ।
अन्यां चोत्थितां चैव नित्यं भगंदररोहिताम् ॥ १५२ ॥
प्लीहमेदोदरां चैव तथा पद्मं सुपद्मकम् ।
यक्षाणां सपद्मकं चैव तथा पद्मोत्तरं कृशम् ॥ १५३ ॥
ज्वररोगगतां सर्वां बाध्यन्तां नृजबालिशाम् ।
सर्वां सागरे स्थाने संन्यसेत् पन्नगोत्तमे ॥ १५४ ॥
विविधायासदुःखानां सर्वव्याधिगदार्तिनाम् ।
संन्यसेत् सागरे स्थाने ध्यानचिन्त्याहितेन वै ।
क्षिप्रं मोचयते नागः सुगताज्ञां प्रतीच्छकः ॥ १५५ ॥
एवं च मुरगैः सर्वैः सर्वकर्मकरैः शिवैः ।
उरगाध्यक्षैस्तदा सर्वं व्याप्तमम्भोदतिर्यगम् ॥ १५६ ॥
समन्तात् सर्वतो श्रेष्ठा उरगाध्यक्षा महर्द्धिकाः ।
समयज्ञा मञ्जुघोषस्य आज्ञे दीक्षणतत्पराः ।
दैवयक्षाश्रिता नित्यं मानुषाणां शुभोदयाः ॥ १५७ ॥
व्यतिमिश्रैस्तु कर्मज्ञैर्व्यतिमिश्रफलोदया ।
काले वर्षधरा नित्यं धार्मिकां वृत्तिमाश्रिताम् ॥ १५८ ॥
समन्तात् तोयधाराभिः............। G 454
सस्यौषध्ये तथा व्रीह्यां निष्पन्ने फलतिं हैतुकम् ॥ १५९ ॥
मेघरूपेण माश्लिष्टा पर्यटन्ति महीतले ।
महर्द्धिका महेशाख्या कल्पस्था महोदया ।
तेषां भोगवती नाम पुरी अम्भोदमाश्रिता ॥ १६० ॥
यदा धर्मपरा मर्त्या जम्बूद्वीपेषु सर्वतः ।
ततो तिष्ठन्ते महानागाः परिवाराश्च तेषु वै ॥ १६१ ॥
तदा देवासुरे युद्धे अनुभूय जयैषिणः ।
जम्बूवृक्षगता तस्थुः जम्बूद्वीपं च मध्यतः ॥ १६२ ॥
पुनः पुनर्नरां भेजे सर्वत्राप्रतिगोचराः ।
सर्वशुक्लगतां कर्मां तेषु नागेषु योजयेत् ॥ १६३ ॥
कुर्वन्ति समये भ्रष्टा ये नागा जलमाश्रिता ।
कीटवोपद्रुतां सर्वां विषां स्थावरजङ्गमाम् ।
मुमुचुः सर्वतो नागा आसुरं पक्षमाश्रिताः ॥ १६४ ॥
प्रमाथी झलुझलुश्चैव कपर्दी चापि महोदधिः ।
भीमो भीषणश्चैव दुर्मुखो बहुमुखस्तथा ॥ १६५ ॥

एतें चान्ये महानागा अतिदर्पाभिमानिनः।
कृष्णकर्मे स्थिता नित्यं व्यतिमिश्रेण वा परे ॥ १६६ ॥
महेशाख्या भीमरूपाश्च विषोग्रथिजनाजने।
अधर्मिष्ठा यदा मर्त्या जम्बूद्वीपनिवासिनः ॥ १६७ ॥
तदा महाभयं कुर्युर्विषमूर्च्छातिदारुणम्।
छर्दिर्भ्रमिश्च जायेत महामार्योपद्रवां बहूम् ॥ १६८ ॥
दुष्टसरीसृपां लोके विसृजन्त्यहितोदया।
एवं ते च महानागा बहुप्रकारोपद्रवाशुभा ॥ १६९ ॥
अनावृष्टि अनावृष्टिं विसृजन्त्यहिते रता।
तेषां च दर्पनाशाय इदं ध्यानं समारभेत् ॥ १७० ॥
मञ्जुघोषं महावीरं बोधिसत्त्वं महर्द्धिकम्।
G 455 वामोत्पलकरं सव्यं दक्षिणेन वरप्रदम्।
भिन्नगोरोचनाभासं हेमकुङ्कुमविद्विपम् ॥ १७१ ॥
गरुडं पक्षिराजानं आरूढं सुगतात्मजम्।
ध्यायीत मस्तके तेषां दंष्ट्रिणां सर्वविषोत्कटाम् ॥ १७२ ॥
ततस्ते भिन्नहृदयाः त्रस्तोद्विग्नमानसाः।
पुनर्निवर्त्य गच्छन्ते प्रविशन्ते च रुषालयम् ॥ १७३ ॥
उत्पातां बहुविधां दृष्ट्वा अशुभांश्चैव सशब्दकाम्।
एवं ध्यायीत मन्त्रज्ञ मञ्जुघोषं समाहितः ॥ १७४ ॥
बहुप्रकारा मन्त्रज्ञ नागदंष्ट्रां प्रकल्पयेत्।
अनेकाकाररूपास्तु अण्डजांश्च प्रदंशिनाम् ॥ १७५ ॥
वक्ष्ये सम्यग्बुद्ध्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
तद्गोत्रजश्च उरगा वै दशन्ते भुवि मानुषाम् ॥ १७६ ॥
तेषां विधिदृष्टेन शास्त्रेणैव गरुत्मना।
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि पक्षिराजेन देहिनाम् ॥ १७७ ॥
कृष्णशुक्लादयो नागा ये नागा भुवि मण्डले।
विचरन्ति महीं कृत्स्नां सूर्यरूपेण देहिनाम् ॥ १७८ ॥
साध्यासाध्ये ततो ज्ञात्वा विषं च चतुरो हिताम्।
पित्तश्लेष्मगतं चैव वायुव्यतिविमिश्रिताम् ॥ १७९ ॥
श्लेष्मणा वारुणेत्याहुः शुक्लवर्णोऽथ मण्डलः।
पित्तमग्नेयजं नाम तृकोणाकारसंभवाम् ॥ १८० ॥

अग्निवर्णं सदा रक्तमीषद् बाहुभपिङ्गलम् ।
कुलस्थमिव बन्धान्तं चतुरस्रं व्यतिमिश्रितम् ॥ १८१ ॥
माहेन्द्रमिति तं ज्ञेयं कृष्णवर्णं महोन्नतम् ।
श्लेष्माणां च गजेत्याहुः पित्तजं द्वेषसंभवम् ॥ १८२ ॥
मोहं वायुजं ज्ञेयं व्यतिमिश्रं कृष्णवर्णितम् ।
तदेव सात्त्विकं विन्द्याच्छ्लेष्मणं शुक्लवर्णितम् ॥ १८३ ॥
राजतं पैत्तिकं ज्ञेयं पीतरक्तावभासितम् । G 456
तामसं वातिकं ज्ञेयं व्यतिमिश्रहितोत्वताम् ॥ १८४ ॥
व्यन्तरेष्वपि सर्वेषु कीटविस्फोटकादिषु ।
सरीसृपेषु च सर्वत्र व्यतिमिश्रं लिङ्गमीक्षयेत् ॥ १८५ ॥
कृष्णाभं तत्रमुद्यन्तं मञ्जुघोषं सुचिन्तयेत् ।
गरुत्मस्थं सुखासीनं बालरूपं सुखोदयम् ।
चिन्तयेद् व्यन्तरैर्दुष्टं मानुषेषादसंधिषु ॥ १८६ ॥
ततोऽर्धं चिन्तयेद् दिव्यं कुमारं बालरूपिणम् ।
विश्वरूपं महात्मानं गरुत्मत्तोपरिस्थितम् ॥ १८७ ॥
तदासीनं महाभागं शरत्काण्डाकारविद्विषम् ।
ऊरुभ्यां चिन्तयेद् धीमान् नाभिस्याद्ध्योमगम् ॥ १८८ ॥
पीताभं चिन्तयेद् ध्यायी उरःस्थाने सुसुप्तिगम् ।
मञ्जुघोषं महावीर्यं पक्षिराजाग्रवाहनम् ॥ १८९ ॥
शिरःस्थाने तथाचिन्त्यः ध्यायीत गरुडध्वजम् ।
शुक्लाभं वैनतेयस्थं बहिःस्थं चाथ चिन्तयेद् ॥ १९० ॥
सात्त्विके विषमूर्च्छा तु श्लेष्मं वमन्ति सर्वतः ।
लाला च स्रवतेऽजस्रं निमज्जते च मुहुर्मुहुः ।
तं विद्यात् सात्त्विकं दष्टं शुक्लपक्षाहितो भवेत् ॥ १९१ ॥
भ्रमते कम्पते चैव स्तब्धे क्षोभे सर्वेश्वरः ।
विषे च पित्तजे मूर्च्छा दाहो जायति दारुणम् ॥ १९२ ॥
राजसे दंष्ट्रिणे दष्टो एतद् भवति चेष्टितम् ।
तामसे तमसं मोहः मूर्च्छा निद्रा च जायते ॥ १९३ ॥
व्यतिमिश्रैर्व्यतिमिश्रं तु चेष्टा भवति दारुणम् ।
सत्त्वे भवति शुक्लाभः दंष्ट्रे भवति मानुषे ॥ १९४ ॥
राजसी पीतवज्ज्ञेयः छविवर्णाश्च किंचन ।
कृष्णवर्णाथ मोहात्मा छविवर्णाथ जायते ॥ १९५ ॥

व्यतिमिश्रे धूम्रवर्णस्तु आपाण्डुश्चापि कचित्तथा ।
G 457 सात्त्विको राजसश्चैव शुक्लपक्षाहिजोद्भवा ॥ १९६ ॥
तामसो मिश्रिणश्चैव अहिजा कृष्णवर्णिनाम् ।
तत्कुलाकुलिनो ह्येते उरगाध्यक्षेश्वरो सु वे ।
आसुरं पक्षमाश्लिष्टा विचरन्ति महीतले ॥ १९७ ॥
दंशतेषां मानुषां लोके अधर्मिष्ठा नागजातयः ।
क्रूराः क्रूरतरा लोके आहारार्थपरा सदा ॥ १९८ ॥
केचिद् विहेठनार्थाय दंष्ट्रिणो प्राणहरा परे ।
विषनिर्नाशनार्थाय सर्वदंष्ट्रोपजीविनाम् ॥ १९९ ॥
इदं ध्यानवरं मुख्यं यथालिङ्गानुवर्णिनम् ।
संन्यसेत् प्राणिनां चिन्त्या क्षिप्रं मुञ्चति तद्विषम् ॥ २०० ॥
सर्वदा सर्वकालं तु सर्वव्याधिषु योजयेत् ।
सर्वोपद्रवां हन्ति ध्यानेष्वेव प्रतिष्ठिता ॥ २०१ ॥
यथा नागा तथा सत्त्वा राक्षसा ग्रहमातरा ।
परप्राणहराश्चैव दुष्टचित्ताथ मानुषाः ।
सर्वव्याधिमता लोके लिङ्गेष्वेव तु योजयेत् ॥ २०२ ॥
ध्यानं ध्येयं तथा मुक्ति कर्मं चापि सदा न्यसेत् ।
कुमाररूपं माङ्गल्यं पवित्रमघनाशनम् ॥ २०३ ॥
मञ्जुघोषं महावीरं जिनपुत्रं महर्द्धिकम् ।
सगरुत्मन्ते सुखासीनं उदयन्ते रविमण्डले ॥ २०४ ॥
ध्यायीत सर्वतो मुख्यं मन्त्रनाथेश्वरं विभुम् ।
सर्वत्र चिन्तितो ध्यानसर्वव्याधिप्रणाशनः ॥ २०५ ॥
सर्वकर्माणि कुर्वीत सर्वसत्त्वेषु सर्वदा ।
सर्वं स्तम्भयते ह्येष सर्वं शोभयते शुभम् ॥ २०६ ॥
सर्वमन्त्राश्च लोकानां अस्मिन् ध्याने निबोधिता ।
सिद्धिं गच्छन्ति ते क्षिप्रं परकल्पेऽपीहोदिता ॥ २०७ ॥
ये च ताथागता मन्त्रा वज्राब्जकुलयोरपि ।
G 458 ....शक्रेन्द्रब्रह्मरुद्रयोः ॥ २०८ ॥
आदित्यवसवेन्द्राणां नक्षत्रग्रहज्योतिषाम् ।
गरुडोरगयक्षाणां ऋषिमुख्या सपूतनाम् ।
सर्वमन्त्राश्च सिध्यन्ते अस्मिं कल्पे तु ध्यायिने ॥ २०९ ॥

परतन्त्रविधानेऽपि स्वतन्त्रेणाभ्यन्तरेण वा ॥
कुर्यात् कर्मसिद्धिं च क्षिप्रं ध्यानगतेन वै ।
आदित्यमण्डले ध्यात्वा उदयन्ते विश्वरूपिणम् ॥ २१० ॥
कुमारं बालिशाकारं शिशुभूषणभूषितम् ।
आरूढ मण्डले दीप्तं गरुत्मन्तेऽथ वैनते ॥ २११ ॥
मीदृशाकारमव्यक्तं मूर्जे चापि सुचिन्तिते ।
दृष्ट्वा परबलस्तम्भं जायते च मनीषितम् ॥ २१२ ॥
सर्वे च दष्टाः स्तम्भ्यन्ते नृत्यन्ते च परस्परम् ।
हसन्ते आतुराः सर्वे ग्रहाविष्टाश्च देहिनाम् ॥ २१३ ॥
ज्वरार्ता मूर्च्छिता ये च उत्तिष्ठन्ते द्रुतं ततः ।
क्रन्दन्ते विविधा आर्ता भीमनादं करोति वै ॥ २१४ ॥
ग्रहमातरकूष्माण्डैः गृहीतानां भुवि मानुषाम् ।
एभिर्लिङ्गैस्तदा मन्त्री लक्षयेदेतां समाहितः ॥ २१५ ॥
इच्छया मोचयेत् क्षिप्रं विषसंक्रमणं तु वै ।
क्रीडापयति भूतानां तदा योगी रिरिंसया ॥ २१६ ॥
आदित्यमण्डले नाडी प्रयोक्तव्या विषमूर्च्छिते ।
रविनाडीप्रयोगेण सर्वप्राणि स चालयेत् ॥ २१७ ॥
निर्विषो भवते सुप्तः विषस्थावरजङ्गमः ।
ततोत्तिष्ठते क्षिप्रं विषसुप्तो न संशयः ॥ २१८ ॥
(अन्यश्च वर्धते क्षिप्रं विषार्तो भुवि भूतले ।
पुनरन्यो पुनश्चापि अन्यादन्यतरोऽपि वा ॥ २१९ ॥)
एवंप्रकारैः सर्वत्र शतशोऽथ सहस्रशः । G 459
यावन्नाडीप्रयोगेण तावद् भूतानि पाचयेत् ॥ २२० ॥
वस्त्रकुड्यस्तथा कुम्भे अश्मतोयहुताशने ।
क्षणेन चालयेन्नाडीं तत्रस्थो विषमाविषे ॥ २२१ ॥
सर्वे ह्यातुराः स्वस्थास्तत्क्षणादेव भूतले ।
एवमाद्यप्रयोगेण कुर्यात् कर्म शताष्टकम् ।
असंख्यं च विधिं कुर्यात् परमन्त्रासृतेन वा ॥ २२२ ॥
एष प्रयोगः समासेन ध्यानो ह्युक्तोऽथ जापिनाम् ।
प्रयोक्तव्यः कल्पनिखिलः परतन्त्रो गरुत्मनः ॥ २२३ ॥

मतं संकल्पजं प्रोक्तं शैवं चापि विशेषतः ।
सर्वे च लौकिका मन्त्रा प्रयोक्तव्या ध्यानविस्तरे ॥ २२४ ॥

इह मन्त्ररवे कल्पे ध्यानेनैव विशेषतः ।
सर्वतन्त्रप्रयोगैश्च मन्त्रैश्चापि सुपूजिते ।
मतयो येऽपि कल्पार्थाः प्रयोक्तव्या इह ते सदा ॥ २२५ ॥

योगेऽस्मिन् ध्यानये दिव्ये कल्पराजोदिते इह ।
ध्यानेन सर्वे नियोक्तव्या युक्तिहेतुनिरञ्जने ॥ २२६ ॥

सूक्ष्मश्चित्तविषये मन्त्रसिद्धिनिबन्धने ।
मुनिपुत्रोदिते शुद्धे सर्वबुद्धार्थमोदिते ।
जापिनो ध्यायते नित्यं सर्वसिद्धि सुपुष्कला ॥ २२७ ॥

इति बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद्
आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् अष्टत्रिंशतिमः
महाकल्पराजपटलविसराद् द्वितीयसर्व-
लोकतत्त्वार्थतारक्रीडाविधिसाधनौ-
पयिकसर्वकर्मध्यानपटलनिर्देशः
परिवर्तः समाप्तः



४१ गरुडपटलपरिवर्तः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभू- G 460
तमामन्त्रयते स्म–अस्ति मञ्जुश्रीः सर्वबुद्धानुमोदिते त्वदीयमहाकल्पराजमहाविसेर महामन्त्रचर्यानुवर्तके सर्वसमयानुप्रविष्टे महामूलकल्पप्रविष्टास्पदभूते पञ्चमसर्वभूतरुतज्ञानाभिज्ञानं सर्वभूतरुतज्ञानाचिन्त्यगोचरम् । एष ते पक्षिराट् गरुत्मा स्वमन्त्रचर्यानुवर्तनरुतज्ञानाभिज्ञानां सर्वमन्त्राणां सर्वकल्पानां स्वसमयमनुप्रविष्टसर्वलौकिकानाम् । एष एव ते भाषिष्यति सर्वतिर्यग्योनिगतानां सर्वपक्षिराजगरुत्मनां सर्वमन्त्रकल्पगोचररुतज्ञानं च चरितं चेति ॥

अथ खलु तस्मात् पर्षन्मण्डलाद् वैनतेयो गरुत्मां बोधिसत्त्वाधिष्ठानेन अनेकैर्गरुडशतसहस्रैः परिवृतः उत्थायासनात् पर्षन्मण्डलं प्रदक्षिणीकृत्य येन मञ्जुश्रीः तेनोपसंक्रम्य महाबोधिसत्त्वस्य पादौ कृताञ्जलिपुटः मञ्जुश्रियमेतदवोचत्–अहं महाबोधिसत्त्व अस्मि महाकल्पराजे सत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय कर्मान्तरशतं सरहस्यं भाषिष्ये । तत् साधु महाबोधिसत्त्व । अनुमोदतु ॥ अथ मञ्जुश्रीर्वैनतेयमेतदवोचत्—भाष भाष महासत्त्व । सत्त्वानुकम्पया ।

अथ वैनतेयो बुद्धाधिष्ठानेन स्वकीये आसने निषद्य, प्रहृष्टमनसि कर्मोत्तरशतं सरहस्यं भाषति स्म–

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—ओम् शकुन, महाशकुन, विततपक्ष । सर्वपन्नगनाशक, ख ख खाहि खाहि, समयमनुस्मर । हुम् तिष्ठ बोधिसत्त्वो ज्ञापयति स्वाहा । कर्मोत्तरशतं भाषते स्म–

नागाकर्षणं नागदमनं नागनिग्रहणं दष्टमदष्टावेशनं वाचया सर्पमावाहानं, सर्पनिग्रहकरणं विषक्रीडनं सर्वविषक्रामणं वाचा मनसा बुद्ध्या वा, पोषधिको त्रिरात्रोषितः, शुक्लद्वादश्यां नदीतीरे शुचौ देशे पञ्चरङ्गिकसूत्रेणाष्टहस्तं मण्डलकं कृत्वा अष्टपद्मप्रतिष्ठितं, तत्र मध्ये भगवां धर्मं देशयमानः लिखेत् । तस्य दक्षिणेनार्यमञ्जुश्रियं कृताञ्जलिपुटो भगवतो मुखमवलोकयमानं लिखेत् । भगवतो बुद्धस्य वामे नारायणं चतुर्भुजं लिखेत् सर्वप्रहरणहस्तम् । तत्समीपे गरुडं विकृतरूपम् । तदनन्तरं विनताभरणं च लिखेत् । आर्यमञ्जुश्रियस्य पृष्ठतः आर्याक्षयमतिं सुधनं सुभूतिं च लिखेत् कृताञ्जलिपुटा । एवमभ्यन्तरमण्डले लेख्य, पूर्वद्वारे बाह्यतः शुक्लभस्मना वज्रं समालिखेत् दक्षिणेन कृष्णवर्णिकया खड्गम् उत्तरेण पीतवर्णिकया गदं लिखेत् । पश्चिमेन रक्तवर्णं पाशं समालिखेत् ॥

एवं बाह्यमण्डलेभ्यः मूलमन्त्रेण सर्वदेवाह्वाननं कृत्वा, सर्वपुष्पैः सर्वगन्धैरभ्यर्च्य, गुगुलुधूपं, त्रिमधुरेण च बलिं दत्त्वा, तेषामग्रतः खदिरसमिद्भिरग्निमुपसमाधाय सर्वसत्त्वेभ्यः कारुण्यचित्तमुपस्थाप्य, नागासनोपविष्टः सर्पकण्टकानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । ततः सिद्धिनिमित्तं सर्पा आगच्छन्ति । अर्घ्यो देयः । एवं सिद्धिर्भवति ।

स्वमन्त्रमावर्त्य वदेत्—'मम सिद्धिं विधाय गच्छत'। ततो गच्छन्ति ततो विसर्ज्य मूलमन्त्रेणैव समभ्युक्षयेत्। ततः कर्म समारभेत्। सर्वं च बलिद्रव्यमप्सु क्षिपेत्। पश्चाद् वाचामात्रेण सर्वविषकर्माणि करोति॥

विद्वेषणं कर्तुकामः सर्पास्थीनि विषा(क्ता)मेकविंशत्याहुतिं जुहुयात्। विद्वेषो भवति॥

उत्सादयितुकामः सर्पनिर्मोकखण्डानामेकविंशत्याहुतिं जुहुयादुत्सद्यति। काकपक्षाणामेकविंशत्याहुतिं जुहुयात्, सद्यः काकवद् भ्रमति। स्त्रीपुरुषवशी करणे सर्षपाणां घृताक्तानामेकविंशत्याहुतिं जुहुयात्, वश्या भवन्ति। राजानं राजमात्रं वशीकरणे परमान्नस्य घृताक्तस्य एकविंशत्याहुतिं जुहुयाद् वशो भवति। लोष्टकमभिमन्त्र्य अग्नौ प्रक्षिपेत्, न तपति। तृणेन मोक्षः। उक्तेन मत्स्या न बध्यन्ति। चेतनमचेतनं वा सत्त्वं छोटिकया आकर्षयति। सर्वव्याधिने उदकाभिषेचनेन स्वस्थो भवति।
G 462 दण्डमभिमन्त्र्य द्वारमाहरेत्, अपावृतं भवति। तमेव दण्डं नीलपटप्रावृतं गृह्य संग्रामे गच्छेत्, परसैन्यं दर्शनाद् भिद्यति। स्वशाटके ग्रन्थिबन्धनेन सर्वमन्त्राः स्तम्भिता भवन्ति मुक्ते मोक्षः। सर्पवदनं भस्मना पूरयेत्। यस्य नामं गृह्य करोति, स मूको भवति। गण्डविषं सकृज्जप्तेन उदकेन हनेत्। गण्डं संकुचति। पतति च परविद्या। अनेन बध्नीत। तथैव मोक्षयति। इष्टकमभिमन्त्र्य मावर्त्य जपेत्। परबद्धग्रन्थिं स्तोभयति। एवं वर्षापयितुकामः पूर्वोक्तं मण्डलकं लेख्य, पूजां कृत्वा, अग्निमुपसमाधाय, वरुणसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात्; आढकं वर्षति। एवं यावद्दशाढकं वर्षति। पिप्पलामभिमन्त्र्य हस्तेन गृह्य, यावद्दिशं क्षिपति; तत्र अशनं संक्रामति। अग्निदाहेष्वेष एव विधिः। उदकमवतरणमेवं कर्तव्यम्। नागानुत्सारयति। मृन्मयं सर्पं कृत्वा यमिच्छति तं दशापयति। अङ्गारसर्पस्य एष एव विधिः। पुनरपि मोक्षयति। सर्षपान् सप्तजप्तान् चतुर्दिशं क्षिपेत्। सर्पा आगच्छन्ति। मण्डलबन्धः कार्यः। पानीयेनाभ्युक्ष्य विसर्जयेत्। उदकेन मोक्षणं लेष्टुना नागाकर्षणं पांसु परिजप्य उदके क्षिपेत्, निर्विष भवन्ति। धनुं गृह्य अलोहाश्चत्वारः शराः चतुर्दिशं क्षेप्तव्याः। सर्पं शरचलितं गृह्य आगच्छन्ति। स च नागो वक्तव्यः विषं प्रतिपिबेति। पिबति, दष्टकोत्तिष्ठति। अथ सर्पाणि शल्ययितुं पानीये पानीयेनाभ्युक्ष्य तस्य तस्य शराः पतन्ति। सर्पश्चाक्षतो भवति। वल्मीकमृत्तिकया चत्वारो नकुला कर्तव्या। पानीयमभिमन्त्र्याभ्युक्षयेद्, गत्वा सर्पापहाया गच्छन्ति। आगता वक्तव्याः—विषं प्रतिपिबस्वेति। पिबन्ति, मृत्तक उत्तिष्ठति। अङ्गारमभिमन्त्र्य, रेखां कृत्वा, अर्कलतया ताडयेत्; ततः सर्पो बध्यैराकृष्यमाणो आगच्छति। विषं प्रतिपिबेति। पिबति। दष्टको निर्विषो भवति। ध्वजं छत्रं वाभिमन्त्रयेत्। यावन्तो मृतकाः विषपीतकाश्च, सर्वे निरीक्ष्य निर्विषा भवन्ति। वादित्रमभिमन्त्र्य वादयेत्। श्रुत्वा निर्विषा भवन्ति। पांसुना पञ्चरङ्गिकेण मण्डलमालिख्य तालशब्दं दातव्यम्। ततो नागाः सर्पाश्चतुर्दिशमागच्छन्ति। ते मण्डलं प्रविशन्ति। न भेतव्यम्। शिखाबन्धमात्मरक्षां च
G 463 कारयेत्। अक्षिण्यभिमन्त्र्य क्रुद्धौ निरीक्ष्य वामाङ्गुष्ठं निपीडयेत्। तत्क्षणादेव पतति। सर्प

इव रूपेण कुरुते । मुक्ते मोक्षः । एवं वाचया दष्टमदष्टं वा वेशयति, मोक्षयति । विष्णुनिर्माल्यमभिमन्त्र्य यत्र रथ्यायां गृहे वा क्षिपति, तत्क्षणादेव सर्पो मानुषं दशति । पानीयेनाभ्युक्षिता निर्विषा भवन्ति । हस्तोत्क्षेपेण षण्मासिकमुपस्तोभम् । आत्मान अभिमन्त्र्य सर्पैर्यथेष्टं दंशापयेत् । विषोऽस्य न क्रमते । कटककेयूरकुण्डलैरात्मानमलंकरोति । पांसुमभिमन्त्र्य कर्णे जपेत् । उदकेनापि व्यजनेनापि मनसा सिद्धिः । मन्त्रमावर्त्य भूमौ पांसुं दद्यात् । मृतक उत्तिष्ठति । महामांसघृतेन सह धूपः पुष्टिकरणम् । मानुषास्थिचूर्णं काकोलूकपक्षाणि च धूपः मारणम् । मदनं तुषबीजानि उत्सादनो धूपः । सर्षपराजिकाधूपं ज्वरकरणं, कोद्रवबिडालबिष्टं विद्वेषणं, कपालचूर्णमधूकचूर्णं चैकतः कृत्वा मधुना सह धूपः उत्सादने । मोरङ्गी एरण्डनालं उत्सादने धूपः । गोपित्तं मानुषास्थि च घृतेन शत्रोर्मारणे धूपः ॥

मत्स्याण्डं प्रसन्ना च कर्पासास्थिसमन्वितम् ।
देशान्तरगतस्य धूपः शीघ्रमानयति नरम् ॥ १ ॥
विदलानि मसूराणां मांसं कुक्कुटाण्डस्य तु ।
एष प्रविशतस्य धूपो देयः अकार्षणमतः परम् ॥ २ ॥
भल्लातकस्य बीजानि तिलतैलेन योजयेत् ।
एषाकर्षण धूपः दद्यादाकर्षणस्य ॥ ३ ॥

घृतगुग्गुलुं दद्यात् । धूपो रोगनाशनम् । तिलसर्षपैर्धूपं दत्वा तान्येव जुहुयात् । सप्तरात्रं त्रिसंध्यं यस्य नाम्ना वशः । लवणं राजिकाहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । महापुरुषवशीकरणम् । कपालचूर्णं सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यमिच्छति तं चूर्णेन संस्पृश्य वशमानयति । श्मशानभस्मसहितेन यं चूर्णयति, तं ज्वरेण गृह्णापयति मोक्षयति । नकुलरोमाणि सर्षपाणि च सर्पनिर्मोकं यस्य नाम्ना धूपो दहति, स सर्वलोकविद्विष्टो भवति । तिलैर्वशीकरणं, अर्थोत्पादनानि च कुरुते । तिलतण्डुलैर्घृताक्तैर्नारीं वशमानयति । यवतिलमण्डूकवसां नागस्थाने त्रिरात्रं जुहुयात् । देवां वर्षापयति । मृण्मयं गरुडं कृत्वा करसंपुटेन गृह्य अंसमात्रमुदकमवतीर्य अर्धरात्रं जपेत् यस्य नाम्ना, स वशो भवति । श्मशाने तण्डुनां प्रकीर्य देवहृदयं स्थाप्य प्रहरणं जपेत्, वृत्तिं कल्पयति सपरिवारस्य । नकुलमूषकरोमाणिकर्पासास्थिधूपः सर्वभूतवशंकरः । विषं भल्लातकं मधुना सहधूपः वशीकरणम् । कुक्कुटाण्डकपालानि कटुतैलेन सह धूपं वशीकरणम् । पलाशं सुरसबीजानि मदनपुष्पाणि धूपो वशीकरणे । शतपुष्पा देवदारु पुरीषं मण्डूकं चटकस्य धूपो वश्यार्थः । यवास्तिला दूर्वा च गोमूत्रेण धूपो वशीकरणे । हरितालं काकजिह्वा च शोणितेन धूपः मूकीकरणे । मानुषरोमाणि गोमांसेनैकतस्तैलेन संयुक्तो धूपो रोगकरणे । काकपक्षोलूकपक्षाणि च निम्बतैलेन उच्चाटने । गुग्गुलुघृतं सीधुसहितं धूपोऽयं सर्वसत्त्वप्रियंकरः । पत्रकं त्वचं तुरुष्कं धूपं सर्वसत्त्वानुबन्धनकरम् । आज्ञाकरो भवति । तुरुष्कं

G 464

चन्दनं कर्पूरेण सह अञ्जनं राजवशीकरणम् । पूजाबलिविधानं कृत्वा विष्णुप्रतिमायाअग्रतः उपरिष्टान्महामांसाहुतीनष्टौ हुत्वाऽष्टसहस्रं जपेत् त्रिरात्रम्, द्रव्यं यमिच्छति····। श्मशानभस्मना प्रतिकृतिं कृत्वा महामांसधूपं दत्त्वा कुशपिण्डकोपविष्टः अष्टसहस्रं जपेत् रात्रौ श्मशाने, यमिच्छति तमानयति । आज्ञां करोति । उच्चाटने कर्पासतुषां जुहुयात् काकपक्षैः, क्षणादुच्चाटनो भवति । श्मशान उदुम्बरसमिधाभिरग्निं प्रज्वाल्य कपालोपविष्टः सर्पकञ्चुकं जुहुयात् । अन्नमक्षयं भवति । श्मशानास्थिचूर्णं सर्षपसहितमष्टसहस्रं जुहुयात् यस्य नाम्ना, स योजनशतादागच्छति । सर्वकामेषु कर्तव्यः । देवो श्वेतचन्दनेन विततपक्ष सर्वनागाभरणं तीक्ष्णघोरं विकृताननं विकृतनखं पद्मोपविष्टं अधोदत्तदृष्टिं निम्नतरं काष्ठे कुड्ये भित्तौ वा पोषधिकेन कर्मकारेण कारापयेत् । वितस्तिमात्रं कृत्वा तस्याग्रतः सर्वकर्माणि कुर्यात् । पलाशे पुष्टिकामेन, बैल्वं वश्यार्थहेतुना, उदुम्बरं च पुत्रकामाय, गोकामः शिरीषमयं, मधुकं वा द्रव्यकामः कारयेद् विधिवत् । सूकरमांसेन फलकामम् । अश्वमांसेनापत्यं
G 465 भवति । कृष्णसारमांसेन श्रियार्थी, पृथुतमानुकीर्तिकामो वा स्त्रीकामः पृथिवीकामो वा, व्याघ्रमांसं व्यवहारादिविजयार्थी । महामांसं वस्त्रार्थी । हस्तिबला राजवशिकरणे अतिबला राजामात्यवशीकरणे अश्वगन्धां जुहुयात् । उत्सादे हस्तिरोमाणि, पिचुमर्दमभिचारे तु एते काष्ठा प्रोक्ताः ॥

पटकरणं भवति । धातुसौवर्णपौष्टिके प्रक्तिः । रजतादीं कीर्तिवृद्ध्ये । काकपक्षहोमेनोत्सादयति । गृध्रपक्षैर्मारयति । कौशिकपक्षैर्विद्वेषयति । मयूरपक्षैर्विद्वेषयति । मयूरपक्षैर्धनानि दद्यात् । तित्तिरिपक्षैः स्त्रीं मगुलिपक्षैः पुत्रां, काकपक्षैः सुवर्णम्, टिट्टिभिपक्षैर्मोहनम् । श्वमांसेनोत्सादयति, महिषमांसेनाकर्षयति, आभिचारुके महामांसेन, शान्तिके मृगरोमाणि, कन्यार्थी उलूकरोमाणि, देशघातेच्छा गलरोमाणि, विद्वेषणे मानुषरोमाणि, आभिचारुके मानुष्यरोमाणि, शत्रुनाशने । सर्वेष्वेव तेषु त्रिसन्ध्यं सप्ताहिकोहोमः । स्मरणमात्रेणाहं सर्वविपत्कर्माणि करोमि । सततजपेन सर्वकर्माणि करोमि । यो मम भगवं अस्मिं कल्पराजे मन्त्रं साधयमानः त्रिसंध्यमुदरिष्यति, तस्याहं सर्वविषोपद्रवचिकित्सां करिष्यामि । पृष्ठतोऽनुबद्धो भविष्यामि ॥

अथ तस्मिन् समये स्वरूपमुद्रां भावयति स्म । अङ्गुष्ठौ परस्परवेष्टितौ कृत्वा शेषाङ्गुल्यो पक्षवत् संस्थिता स्याद् । गरुडरूपमेव मम प्रोक्तं पिनाकिना मुद्रा ॥

अस्य संदर्शनान्नागा विद्रवन्ति भयार्दिता ।
अधोमुखास्तु अङ्गुल्यः मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ४ ॥

ॐ जः ॥

नागदमनीति विख्याता नागानां दर्पनाशनी ।
पद्मकोशप्रतीकाशौ अङ्गुल्यः पार्श्वतः स्थितौ ॥ ५ ॥

अङ्गुष्ठौ मध्यतः स्थाप्य निष्पीड्याङ्गुल्यं तु यत्नतः ।
नागदमनीति विख्याता दिव्या दिव्येषु कर्मसु ॥ ६ ॥
अनामिका तर्जनी चैव मध्यमेन सुसंस्थितम् ।
अङ्गुष्ठौ वक्त्रसंस्थानं शेषा पार्श्वतः स्थिता ॥ ७ ॥
गरुडनादेति विख्याता सर्वनागानुत्रासिनी ।
यानि च मयोक्तानि सर्वमन्त्रेषु साधने ॥ ८ ॥ G 466
लौकिके गारुडे शास्त्रे * * * * * * * * ।
सर्वे तेऽनेनैव कर्तव्या सर्वसत्त्वानुकम्पया ॥ ९ ॥
किंचित्कार्या अशेषास्तु मूलकल्पार्थसाधका ।
अस्मि कल्पवरे नित्यं सर्वसत्त्वानुवर्णिते ॥ १० ॥
प्रसिद्धाः सर्वकर्मार्थाः सर्वसत्त्वार्थपुष्कलाः ।
ते वै मन्त्रमुख्ये तु प्रयोक्तव्याः कर्मविस्तरे ॥ ११ ॥
इह कल्पवरे मूले प्रतिष्ठा क्ष्मातलेन ते ।
समुषत्सर्वभूतानामिह मन्त्राश्रितैर्गुणैः ॥ १२ ॥
विस्तरेज्ञः सर्वतो दृष्ट्या सर्वसत्त्वानुकम्पने ।
प्रसिद्धं सिद्धिकामानां हेतुयुक्तिसमाश्रिताम् ॥ १३ ॥
कुर्युः सर्वतः सिद्धिः सर्वमन्त्रेषु देहिनाम् ।
सर्वसत्त्वाश्च सांनिध्यं कल्पेषु मनसेप्सितम् ॥ १४ ॥
इतिहासपुरावृत्तं वर्तमानमनागतम् ।
कथयन्त्येष संयोगान्मन्त्रमुद्रसमीरणात् ॥ १५ ॥
आकृष्टा एष भूतानां मन्त्रोऽयमपराजितः ।
ईशानः सर्वभूतानां रुद्रोऽयं सुरपूजितः ॥ १६ ॥
तुम्बको त्र्यक्षराज्ञेयो कल्पस्थोऽथ महीतले ।
हिमाद्रिनिलयो नित्यं उमापतिमहेश्वरः ॥ १७ ॥
तृशूली खड्गधृग् ज्ञेयः पिनाकी वृषभध्वजः ।
गणाध्यक्षः शूलिनश्चैव महेशाख्योऽथ महर्द्धिकः ॥ १८ ॥
अक्षरोऽक्षरमित्याहुः कपर्दी तु गदायुधः ।
एष मन्त्रो महार्थस्तु सर्वभूतार्थकम्पकः ।
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि सर्वकर्मेषु साधनम् ॥ १९ ॥
एष देवो महात्मा वै महादेवेति कीर्त्यते ।
प्रसिद्धः सर्वकर्मार्थे फलहेतुसदाप्रदे ।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं भूतिकाङ्क्षिणः ॥ २० ॥

ॐ स्थः नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानां त्रैलोक्यगुरूणामचिन्त्याद्भुतरूपिणाम्।
G 467 शिवोद्भवोद्भवभुवनत्रयपूजिताय हूँ हूँ फट् फट् ॥

एष मन्त्रो महामन्त्रः सर्वशत्रुभयप्रदः।
आयुष्मत् सर्वभूतानां कर्म शान्तिकपौष्टिके।
सर्वेष्वेव हि कर्मेषु प्रयोक्तव्यो मनसोद्भवे ॥ २१ ॥
सर्वभूतरुतज्ञानं अभिज्ञज्ञानचेष्टितम्।
अभिज्ञवशिता चैवं सर्वशास्त्रज्ञतां समम्।
प्राप्नुयात् पुष्कलां चार्थां फलहेतुरामुद्भवाम् ॥ २२ ॥
यावन्त्यो लौकिका मन्त्रा सर्वाश्च सुपुष्कला।
तां सर्वां प्राप्नुयान्मन्त्री सिद्धमन्त्रस्तु बुद्धिमां ॥ २३ ॥
यावन्त्यो लौकिका मन्त्रा शैवाश्चापि सुपूजिता।
मन्त्रा गरुत्मने चापि सिद्धिहोमफलोन्मुखम् ॥ २४ ॥
सर्वलौकिकमन्त्रास्तु इन्द्ररुद्रोद्भवोद्भवा।
ते स्युर्मन्त्रराट् सर्वे निबद्धा विधिहेतुतः ॥ २५ ॥
याम्याग्निवायुतोयानां कुबेरो मातरो दया।
संख्या द्वादशका ह्येषा ब्रह्मेशानपूरकाः।
सवितुः शक्रदेवानां पितामहसुपूजका ॥ २६ ॥
कामधात्वेश्वरा ख्याता ये मन्त्रामरचारिणाम्।
सर्वे ते वशमायान्ति मन्त्रे नामीरिताधिप ॥ २७ ॥
* * * खयाम्यदग्निनां दिवौकसजलौकसाम्।
दिङ्मन्दिराश्रया ये च विदिक्षुश्चापि चारिणः ॥ २८ ॥
तदोर्ध्वं नभस्तले चापि अधः पातालधामकाः।
पयोश्रयसमापन्ना फणिनो ये महर्द्धिका ॥ २९ ॥
हिमाद्रिकुक्षिसंविष्टा विन्ध्यकुक्षौ समाश्रिता।
महाधातुवरे चित्रे महाशैलेऽथ विश्रुते ॥ ३० ॥
G 468 नानादेवगणाकीर्णे सिद्धचारणसेविते।
अप्सरोगणसंगीते सुमेरो रविरिवोज्ज्वले ॥ ३१ ॥
यत्रस्था येऽत्र नागा वै ये तु भूतगणाश्रया।
विचित्ररूपिणो ये वा ततःस्था ये समागता।
सर्वे ते वशमायान्ति मन्त्रेणानेन योजिता ॥ ३२ ॥
ये च दिव्यगणा मन्त्रा सर्वभूतभयप्रदा।
सर्वे ते वशमायान्ति मन्त्रेणानेन योजिता ॥ ३३ ॥

गिरिगह्वरदुर्गेषु विचित्रैः कन्दरोदरैः ।
मन्दिरैर्हेमसंकाशैर्निवसन्ति महीतले ॥ ३४ ॥
सर्वभूतगणाध्यक्षा विविधा हारिणो जनाः ।
* * * * * * * * निवासेष्वभिकीर्तितैः ॥ ३५ ॥
दिव्यभूतगणाध्यक्षा विचित्राश्चैव रूपिणः ।
सर्वभूतगणाश्चैव विचरन्ति महीतले ॥ ३६ ॥
विविधाकारमुख्यास्तु विचित्रा रूपगताश्रया ।
विविधाकारविचारस्थौ विविधाम्बरभूषणा ॥ ३७ ॥
ते सर्वे मन्त्रमुख्येन पथेवारपश्यता ।
अनेता सर्वमन्त्राणां लौकिकानां महर्द्धिकाम् ॥ ३८ ॥
सर्वभूतवशं कर्ता प्रभ्रमन्तेश्वरो वरः ।
सर्वमन्त्रेश्वरां मुख्यां यमरुद्रेन्द्रवासवाम् ॥ ३९ ॥
मन्त्रनाथोऽथ मुख्यस्तु सर्वलौकिकमग्रजी ।
बिभर्ति सर्वतो मन्त्रां कल्पांश्चैव सुपुष्कलाम् ॥ ४० ॥
एष मन्त्रेश्वरो देव अधिपतिः सर्वमन्त्रराट् ।
सर्वविघ्नेश्वरो मन्त्री स्मर्तव्यः सर्वजापिभिः ।
उग्रमुग्रेऽथ मन्त्राणां प्रभुरेव प्रगीयते ॥ ४१ ॥
सर्वस्मि शैवतन्त्रे वै सर्वलौकिकचेष्टितैः ।
चरितं चापि भूतानां रुतं चापि जपेत् सदा ।
मन्त्रिभिः सर्वकालं वै प्रयोक्तव्यः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ ४२ ॥ G 469
वैनतेयस्तदा पक्षी प्रणम्य जिनवरात्मजम् ।
मञ्जुश्रियं तथा नित्यं सर्वां बुद्धसुतान् तथा ।
उवाच मधुरां वाणीं पक्षिराट् स महाबलः ॥ ४३ ॥
भाष भाष महासत्त्व, गम्भीरार्थसुनिश्चित ।
धर्मनैरात्म्यतत्त्वस्य अग्रधर्मप्रतिष्ठित ॥ ४४ ॥
मयोक्तं कल्पविस्तारं मूलमन्त्रार्थगोचरम् ।
अभिसंक्षेपतो ज्ञेयं सर्वमन्त्रेश्वराधिकम् ॥ ४५ ॥
लौकिकेष्वेव मन्त्रेषु प्रयोज्यः सर्वसाधने ।
नाभ्यन्तरपदं मन्त्रं मयोक्तं यं प्रशस्यते ॥ ४६ ॥

जिनपुत्रैस्तु महावीरैः सर्वश्रावकखड्गिभिः ।
नान्योत्कृष्टतमं मन्त्रं मयि बुद्धिः प्रयुज्यते ॥ ४७ ॥
ईषिस्मितमुखो धीर मञ्जुघोषमथाब्रवीत् ।
अथाह मधुरं वाक्यं शब्दार्थास्पदभूषणम् ॥ ४८ ॥
एष ते सुवर्णमाख्यातः धर्मस्वामी नरोत्तमः ।
विसृक्षुः सर्वमन्त्राणां धर्मनैरात्म्यदेशकः ॥ ४९ ॥
जगद्गुरुर्महावीरो बुद्ध आदित्यबान्धवः ।
प्रणेता सर्वमन्त्राणामग्रमन्त्रेश्वरो वरः ॥ ५० ॥
प्रभुरेकमनार्थो धर्मधात्वीश्वरो गुरुः ।
सर्वसत्त्वानुकम्पार्थं अस्माकं च सुखोदयः ॥ ५१ ॥
धर्मकोटिगतो निष्ठो भूतकोटिमनालयः ।
एष ते सर्वमन्त्राणां कथयन्त्याशु महाद्युतिः ॥ ५२ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान् महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रिय-
मूलकल्पाद् एकूनचत्वारिंशतिमो गरुडपटलपरिवर्तः ।



४२ सर्वकर्मसाधनौपयिकः पटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य, मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म–अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीय सर्वसाधनौपयिकमण्डलविधाने सर्वमन्त्रतन्त्रेषु मुद्रापटलसमयरहस्यम्, यैः सर्वसंत्रासभयं नातिक्रमन्ति, समयसंचोदितमनुप्रविष्टा भवन्ति सर्वलौकिकलोकोत्तरमण्डलेषु सामान्यसाधनोपयिकसर्वमन्त्रतन्त्रेषु । सर्वे सुदह्येते परमरहस्यतमा परमसौभाग्यतमा परमाश्चर्याद्भुततमाः । यैर्विना न शक्यन्ते सर्वमन्त्रा आराधयितुं साधयितुम् । पूर्वं सर्वतथागतैर्भाषितवन्तः । एतर्हि अहंच भाषिष्ये सर्वसत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय । सर्वमन्त्रजापिनां महामन्त्रकोशनिर्त्यौत्सुक्यधर्मधात्वचिन्त्यमहायाननैरात्म्यंधर्ममेघमनुप्रवेशनतायै । कतमं च तत् ? भाषिष्येऽहम्— G 470

शृणु मञ्जुरव, सर्वगुह्यमुद्रासमोदिताम् ।
यथा तथा स्वयं वाच्यं पुरा गीतमृषिसत्तमैः ॥ १ ॥
कृत्स्नमुद्रागणं ह्यग्रं गुह्यमन्त्रार्थिनां सदा ।
सर्वकालेषु योज्येदं सर्वकर्मेषु मण्डले ॥ २ ॥
अथ मञ्जुरवः श्रीमां विहसन् पङ्कजेक्षणः ।
निरीक्ष्य सुगतं श्रेष्ठं सर्वधर्मीश्वरं प्रभुम् ॥ ३ ॥
कृताञ्जलिपुटो वीरः जिनपुत्रो महर्द्धिकः ।
उवाच मधुरां वाणीं दिव्यशब्दार्थभूषिताम् ॥ ४ ॥
साधु साधु महाप्राज्ञ धर्मचक्रानुवर्तकम् ।
धर्मतत्त्वार्थमन्त्रत्वं यस्त्वं भाषयसे विभोः ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा तु सुगतं शाक्यसिंहं नरोत्तमम् ।
अथ मञ्जुरवः श्रीमां तूष्णीं तस्थुस्तदन्तरे ॥ ६ ॥
इत्याह भगवां बुद्धो धर्मधात्वेश्वरस्तदा ।
शृणोथ भूतगणाः सर्वे देवसंघा महर्द्धिका ॥ ७ ॥
मण्डले भुवि मर्त्यानां दरिद्रा वाथ दुःखिताम् । G 471
आलिखन्तानां भुवि मुद्राणां सांनिध्यं वो भविष्यथ ॥ ८ ॥
ये च वै सर्वबुद्धानां प्रत्येकार्हथखड्गिणाम् ।
श्रावकाणां तु ये मुद्राः कथिता मुनिवरैः ॥ ९ ॥
सर्वलौकिकमुद्रास्तु जिनाब्जकुलवज्रिणः ।
सर्वमुद्रास्तु सर्वत्र सर्वकर्मेषु योजिता ।
तानहमभिसंक्षेपाद् वक्ष्येऽहं सर्वमन्त्रिणाम् ॥ १० ॥

यत्पूर्वं कथितं मन्त्रं सर्वं मण्डले च कर्मसु ।
स्थानं होमो जपः कर्म तं तथैव प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥
मण्डले आदितो लेख्य मुद्रोऽयं बुद्धनिर्मितः ।
सितं छत्रोऽथ बुद्धानां समन्तज्वालोऽथ भूषणम् ॥ १२ ॥
पञ्चरङ्गिकचूर्णैस्तु समन्तान्मणिराजितम् ।
विचित्ररङ्गोज्ज्वलं श्रेष्ठं इन्द्रायुधसमप्रभम् ॥ १३ ॥
एष मुद्रो महामुद्रो बुद्धानां मूर्द्धजो वरः ।
तस्य दक्षिणतः पात्रं समन्ताज्ज्योतिमालिनम् ॥ १४ ॥
तदनन्तरे खखवरकः दंष्ट्रा जीवरजो पर ।
श्रीवत्सस्वस्तिकश्चक्रकरकं चापि वर्णितम् ॥ १५ ॥
पुस्तको ध्वजमित्याहुः पताकं च तदन्तरे ।
घण्टा पश्चिमजो मुद्रः कथितं लोकपुंगवैः ॥ १६ ॥
छत्रे वामतः पद्मं मणिमुद्रो तदन्तरे ।
तदन्तरे वज्रमित्याहुस्त्रिसूच्याकारसंभवम् ॥ १७ ॥
उत्पलं तु गतामुद्रः सलिलः सलिलाश्रितः ।
तोयश्च तदन्त्ये वै तोयधाराभिनिदश्रितः ॥ १८ ॥
तदन्ते कुण्डलौ ज्ञेयौ भूपालौ शोभनौ तथा ।
तदन्तेऽथ महाशैलः चतुरत्नोऽथ उज्ज्वलः ॥ १९ ॥
G 472 तदन्ते महोदधिर्लेख्यः विचित्रो रङ्गोज्ज्वलः ।
तदन्तेऽथ महावृक्षः सफलो दलभूषितः ॥ २० ॥
एष वृक्षो महामुद्रो वामपार्श्वे जान्तजाम् ।
सितातपत्रोऽथ बुद्धानां मुद्रो ह्युक्तो वरोग्रजः ॥ २१ ॥
मन्त्रेऽथ खड्गिनां ज्ञेयः प्रत्येकजिनयो वरः ।
चीवरं मुद्रवरो ह्युक्तः सर्वश्रावकसंभवः ॥ २२ ॥
आर्याणामर्हतां लोके दंष्ट्रा चैव प्रगीयते ।
तत्फलोदधिगतां लोके श्रीवत्सो मुद्रमिष्यते ॥ २३ ॥
खखरकश्च महामुद्रः प्रत्येकजिनजोऽपरः ।
धर्मचक्रोऽथ मुद्रो वै सर्वदृष्टिविदालकः ।
कथितं धर्ममुद्रं तु कारकाक्षेपजः स्मृतः ॥ २४ ॥
प्रज्ञापारमितां लोके जिनधातुर्मुद्रोऽथ पुस्तकः ।
ध्वजपताका महामुद्रौ विघुष्टौ लोकपूजितौ ॥ २५ ॥

सर्वोत्कृष्टौ महावीर्यौ सर्वमुष्णीषसंभवौ ।
घण्टापश्चिमो मुद्रः प्रत्येकार्हमूर्धजः ॥ २६ ॥
बुद्धमुद्रे तु वामे वै पद्मो लोकेशसंभवः ।
मुनिमुद्रस्तथा ज्ञेयः समन्त ज्योतिर्लाभिने ॥ २७ ॥
वज्रं वज्रिणे मुद्रा बोधिसत्त्वस्य धीमतः ।
उत्पलं मञ्जुघोषस्य कुण्डलः क्षितिगर्भिण्ये ॥ २८ ॥
महातोयतो मुद्रः कथितो गगनालये ।
महाशैलोऽथ मुद्रेयं सर्वदृष्टिविदालिने ॥ २९ ॥
महोदधि तथा मुद्र सुगतात्मज सागरे ।
महावृक्षस्तथा मुद्र उद्घुष्टो लोकविश्रुतः ॥ ३० ॥
सर्वांश्च जिनपुत्रांस्तु मुद्रोऽयं त्रिभवालये ।
घण्टासमीपजे स्थाने आलिखेज्जिनवर्णितम् ॥ ३१ ॥
मुद्रं सर्वमुद्राणां चतुरस्राकारसंभवम् ।
विचित्रं रङ्गजोपेतं चारुवर्णं विराजकम् ॥ ३२ ॥
. . . . समन्तान्मणिविभूषितम् । G 473
ज्वालामालिनं दीप्तं पञ्चरङ्गोज्ज्वलं शुभम् ॥ ३३ ॥
पिण्डिकाकारमुद्यन्तं इन्दुमर्कनिभं शुभम् ।
. . . . विराजन्तं महाद्युतिम् ।
एष मुद्रो महावीर्यः सर्वमन्त्रालयः शुभः ॥ ३४ ॥
त्रिविधानां तु मन्त्राणां ज्येष्ठमध्यमकन्यसाम् ।
स्थानोऽयं मुद्रमुख्योक्तः सर्वकर्मार्थसाधकः ।
एतदभ्यन्तरं लेख्यो महामुद्रागर्भमण्डले ॥ ३५ ॥
यो यस्य मण्डले मन्त्रः संयोक्ता लोकविश्रुते ।
तदेव मध्ये आलेख्यं छत्रस्येव महीतले ॥ ३६ ॥
तन्मध्ये मण्डले चापि रूपकं मुद्रमेव वा ।
वरदा रूपका लेख्या मञ्जुघोषोदयस्तथा ॥ ३७ ॥
सर्वे वै मन्त्रनाथास्तु सर्वमन्त्रार्थवा सदा ।
न चेद् भुवि मुद्राणामालिखेद् विधिचेष्टिताम् ॥ ३८ ॥
तन्यस्तौ पूर्णकुम्भस्तु विजयेत्याहुर्मनीषिणः ।
बहिःस्था मण्डले चापि मुद्रामालिखेद् व्रती ॥ ३९ ॥
यथोक्तैः पूर्वनिर्दिष्टैर्द्वितीये मण्डले जपी ।
—स्थानेष्वेव सर्वत्र दिग्विदिशश्चापि सर्वतः ॥ ४० ॥

आलिखेत् सर्वदेवानामृषियक्षगरुत्मनाम् ।
मुद्रामालिखेद् धीमां पिशाचोरगराक्षसाम् ॥ ४१ ॥
परतीर्थ्ये मतां सिद्धां किन्नरा कटपूतनाम् ।
क्रव्यादव्यन्तरांश्चैव सकूष्माण्डं दूषकोनारकोत्सहाम् ।
सर्वसत्त्वां भूवांश्चैव रूपारूप्यकामजाम् ॥ ४२ ॥
द्वितीये मण्डले नित्यं आरूप्यं सुरजोद्भवम् ।
आलिखेन्मुद्रनित्याग्रं त्रिकोणाकारसंभवम् ॥ ४३ ॥
पूर्वायां दिशि मासृत्य रेखमाश्लिष्टमुज्ज्वलम् ।
एतत् सुरमुख्यानामारूप्यानां महर्द्धिकाम् ।
G 474 मुद्रा समाधिजेत्याहुरादिबुद्धैस्तु वर्णितम् ॥ ४४ ॥
ततोत्तरे तु तथा रेखे ब्रह्मणः पद्मजोद्भव ।
रूपावचरमित्याहुर्मन्त्रं त्रिभुवनालये ॥ ४५ ॥
तदेव दक्षिणा रेखा गर्भमण्डलतो बहिः ।
दक्षिणं दिशमाश्रित्य मुद्रेः कामजो वरः ॥ ४६ ॥
निर्दिष्टो मुनिमुख्यैस्तु कामधात्वेश्वरे परे ।
मुद्रोऽयं निर्मितो लोके सर्वदेवसमन्दिरे ॥ ४७ ॥
रुद्रेन्द्रवसुमुख्यानां विष्णुतीर्थ्यां दिगम्बराम् ।
अर्कवासवमौषध्यां विवश्वयमचिह्निताम् ॥ ४८ ॥
लोकपालां बहिस्तां तां यथामन्दिरदिक्षु ताम् ।
तथा चालिखेत् सर्वांस्तथा मुद्रांस्तु योजयेत् ॥ ४९ ॥
यो यस्य वाहनः ख्यातः प्रहरणावेषधारिणम् ।
तं तथैव तथा मुद्रो निर्दिष्टो लोकपूजितैः ॥ ५० ॥
एष मुद्रगणो ह्युक्तः सर्वलोकोत्तरः शुभः ।
लौकिकामथ सर्वत्र सर्वकर्मेषु साधकः ॥ ५१ ॥
निर्दिष्टा मुद्रमुख्याश्च सर्वमुद्रोऽथ मन्त्रिणाम् ।
आलेख्य तु भुवि मर्त्यैस्तु जापिभिः सिद्धिकामदैः ।
—बोधितत्त्वलिप्सुरिति ॥ ५२ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात् आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात्
चत्वारिंशतिमः महाकल्पराजविसरात् सर्वकर्मसाधनौपयिकः
परिसमाप्त इति ॥



४३ महामुद्रपटलविसरः ।

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य, मञ्जुश्रियं कुमारभूत- G 475
मामन्त्रयते स्म–अस्ति मञ्जुश्रीः त्वदीये मण्डलविधाने सर्वकर्मेषु सर्वतन्त्रमन्त्रेषु आह्वानन-विसर्जन-जप-नियम-होम-साधन-रक्षाविधानादिषु सर्वकर्मेषु महामुद्रं एक एव महावीरमसंख्येयेषु सबुद्धकोटिभाषितं चाभ्यनुमोदितं च । कतमं च तत् ?

शृणुष्व मञ्जुरव श्रीमां गम्भीरार्थसुतत्वधीः ।
यं बध्वा जापिनः सर्वे . . . . ॥ १ ॥
महामुद्रां महापुण्यां महामङ्गलसंमतम् ।
महाब्रह्मसमं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ २ ॥
महाक्षेमंगमं श्रेष्ठं निर्वाणपदमच्युतम् ।
शिवं शान्तं तथा ज्येष्ठं शीतीभूतं परायणम ॥ ३ ॥
सर्वमुद्रेश्वरं ख्यातं सर्वमुद्रेषु मूर्धजम् ।
सर्वतन्त्रेश्वरं नाथं ख्यातं त्रिभवालये ॥ ४ ॥
ऊर्जितं च त्रिधा दिव्यं भौमदिव्या येष्वपि ।
साक्षाद् बुद्धमिव चिह्नं सर्वसत्त्वाश्रयं विभुम् ॥ ५ ॥
प्रपुष्ट त्रिभवे नित्यं सर्वमुद्रैस्तु मुद्रराट् ।
रक्षार्थं जापिनां नित्यं सर्वकर्मेषु मन्त्रिणाम् ॥ ६ ॥
रक्षोघ्नमगदं ख्यातं मङ्गल्यमघनाशनम् ।
उत्कृष्टं सर्वकर्मेषु दुष्टसत्त्वनिवारणम् ॥ ७ ॥
दुर्दान्तदमको लोके महामुद्रोऽयं प्रगीयते ।
सर्वमन्त्रेषु युक्तो वै त्रिजन्मगतमन्त्रिणाम् ॥ ८ ॥
हन्युर्विघ्नान् स सर्वत्र सर्वकर्मेषु मन्त्रिणाम् ।
त्रिधायोनिगतां मन्त्रामावाहयति तत्क्षणाम् ॥ ९ ॥
पुनर्नयति तां लोकं पुनर्नाशयते हि ताम् ।
पातयत्येव सर्वत्र कृत्स्नां चैव महीतले ॥ १० ॥
पुनः कीलयते (मुद्रां बन्धनोरुन्धनादिभिः क्रियैः । G 476
पीडनोत्सादनो) मुद्रः शोषणो विध्वंसनस्तथा ।
पुनर्जीवादनः ख्यातो मन्त्रिणां त्रिवभुनालये ॥ ११ ॥
शान्तिकेषु च कर्मेषु महामुद्रोऽयं प्रयुज्यते ।
शुभोऽथ सर्वमन्त्राणां शुद्धो निर्मलपापहा ।
सर्वार्थसाधनो लोके प्रसिद्धः सर्वमन्त्रतः ॥ १२ ॥

लौकिकानां च मन्त्राणामग्र्या लोकोत्तरास्तथा ।
श्रेष्ठाः सर्वकर्मार्थे तथा शान्तिकपौष्टिके ॥ १३ ॥
नित्यं क्षेमंगमो मुद्रः प्रयुक्तः सर्वमन्त्रिभिः ।
नित्योऽयमपराजितो ह्युक्तोऽग्रः सर्वमन्त्रैस्तु योजितः ॥ १४ ॥
परंपरास्थो भूतकोटिस्थः धर्मधात्वेश्वरो निजौ ।
अनक्षरोऽभिलाप्यश्च अक्षरो नित्यमक्षरो ॥ १५ ॥
धर्मनैरात्म्यभूतस्थः अभूतो भूतमुद्भवः ।
विरजस्कोऽनेञ्जयश्च निष्ठो शून्यः स्वभावतः ॥ १६ ॥
अकनिष्ठस्तथा ज्येष्ठः शुभो निर्वाणगामिनः ।
पन्थानोऽनुत्तरां बोधौ प्रत्येकार्हसंभवो ॥ १७ ॥
धर्ममेघस्तथा शान्तः निःसृता सैन्यवारिजः ।
तत्त्वार्थपरमार्थज्ञ उभयार्थार्थपूरकः ॥ १८ ॥
महामुद्रो महौजस्कः सर्वबुद्धैः समुद्रितो ।
महार्थो महावीर्य एकवीरो महर्द्धिकः ॥ १९ ॥
* * * * * * सर्वकर्मार्थसाधकः ।
अनेकाकारवरोपेत अनेकाकारसंभवम् ॥ २० ॥
सर्वज्ञपदविदं ज्ञेयमशेषो शेषनैष्ठिकम् ।
ज्ञानं ज्ञेयं महोच्छ्रेयं विधुद्धं मुनिवराजितम् ॥ २१ ॥
सर्वभूतसुराभ्यर्च्य प्रत्येकार्हथ पूजितम् ।
महामुद्रोत्तमं धर्मं अच्युतं पदमुत्तमम् ॥ २२ ॥
आदौ तावच्छुचौ देशे एकवृक्षे महानगे ।
महोदधितटे रम्ये मेध्यस्थण्डिल्यमाश्रिते ॥ २३ ॥
G 477 सरित्कूपे पुलिने वा देवमन्दिरशोभने ।
मारारेर्भवने चापि विहारावसथमन्दिरे ॥ २४ ॥
विजने सिक्तसंसृष्टे पुष्पप्रकरभूषिते ।
सुगन्धगन्धोदकासिक्ते सुधूपे धूपधूपिते ॥ २५ ॥
प्राङ्मुखः उदङ्मुखो वापि शान्तिकपौष्टिकयोश्चापि ।
दक्षिणे रौद्रकर्मार्थे तं जिनैर्वर्जितं सदा ॥ २६ ॥
श्रीसौभाग्यवश्यार्थमाजश्चाहेतुतः सदा ।
पश्चान्मुखं तु बध्नीयान्महामुद्रवरं परम् ॥ २७ ॥
उच्चदृष्टि यदा बुद्धे उत्तिष्ठं देहसिद्धये ।
अधः पातालं गच्छेदसुरेश्वरतां व्रती ॥ २८ ॥

शुचिदेहसमाचारः शुचिमन्त्रसमन्त्रवित् ।
तदा मुद्रवरं युञ्ज्य स्नातोपस्पृश्य जप्तधीः ॥ २९ ॥
उभौ च हस्तौ प्रक्षाल्यौ मृद्गगोमयसुगन्धिनम् ।
शुचितोय सदा शुद्धे कृमिजन्तुविवर्जिते ॥ ३० ॥
नवारिस्नुते शुचे शौचे उभे हस्तेऽथ पूजिते ।
संयोज्येथ मुष्टिस्थौ संपुटाकारचेष्टितौ ॥ ३१ ॥
ईषिच्छुषिरौ समन्तात् षडङ्गुलौ उच्छ्रितौ ।
उभयाङ्गुष्ठमध्यस्थौ कन्यष्ठाङ्गुलिनामितौ ॥ ३२ ॥
कृत्वाथ हृदयोद्देशे शुक्लवस्त्रावगुण्ठिते ।
दर्शयेत् सर्वकर्मेषु साधने . . . . ॥ ३३ ॥
सर्वभूते वै क्षिप्रं कृष्टमात्रेण ईप्सितम् ।
एष मञ्जुरवो मुद्रः सर्वकर्मार्थसाधकः ॥ ३४ ॥ इति ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् आर्यमञ्जुश्रिमूलकल्पाद्
एकचत्वारिंशत्तमपटलविसराद् द्वितीयः सर्वकर्मोत्तमसाधनोपयिकः
महामुद्रपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



४४ महामुद्रापटलविसरः ।

G 478 अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य सर्वतथागतधर्मवरोत्थचिन्त्यगुणव्यूहालंकारभूतकोटिनिष्ठासंख्येयजिनमुद्रामुद्रितं सर्वसत्त्वचिह्नभूतं मुद्रापटलपरमगुह्यतमं सर्वलौकिकलोकोत्तरश्रेयसमन्त्रतन्त्रकल्पविकल्पितं सर्वसत्त्वैः परमार्थदर्शनपथप्रवृत्तिभूतं सर्वमन्त्रसर्वसंज्ञासाधारणभूतमिहैव जन्मनि सर्वसत्त्वानां सर्वाशापारिपूरकं सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानामाराधनपरसुखहेतुकबोधिसंभारपरिपूरणनिमित्तम् आह्वानन विसर्जनगन्धपुष्पधूपसर्वमाल्योपहारविद्याविद्यावेशनदर्शनसर्वकार्यार्थसाधनसर्वदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगयक्षराक्षसपिशाचकूष्माण्डरौद्रसौम्यभावदमकाध्यक्षभूताधिपतिसर्वकार्यसंदर्शनज्वलनाकाशगमनान्तर्धानवशीकरणबोधिसंभारनिमित्ताश्चर्याद्भुतं सर्वमन्त्रतन्त्रार्थानुनीतं सर्वविद्याराजनमस्कृतं सर्वविद्यासाधकं सर्वबुद्धमात्रामन्त्रितं यथेप्सितार्थसत्त्वमनोरथपरिपूरकं सर्वासां सर्वमन्त्राणां दृष्टधार्मिकहेतुनिष्पादकं संक्षेपतो यथा यथा युज्यते, यथा यथा साध्यते, तथा तथा साधयते । एषा मञ्जुश्रीः परमार्थपटलसर्वबुद्धानां परमार्थगुह्यतमं भाषिष्ये । पूर्वं भाषितवां सर्वबुद्धैः । भाषिष्यन्तेऽनागता बुद्धा भगवन्तः । एतर्ह्यहं भाषिष्ये, तच्छ्रूयतां महासत्त्व । भाषिष्ये । तच्छ्रूयतां महासत्त्व । भाषिष्ये । साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु मञ्जुरव । मनोज्ञप्रतिभानवां वक्ष्येऽहं वक्ष्येऽहमिति ॥

शाक्यसिंह नरश्रेष्ठो संबुद्धो ऋषिसत्तमः ।
सत्त्वमर्थमभिज्ञाय परमार्थार्थदर्शनम् ॥ १ ॥
गुह्यमात्रार्थमुद्रा वै भाषसे मुनिपुंगव ।
शुद्धावासपुरे रम्ये शुद्धसत्त्वसमाश्रिते ॥ २ ॥
महापर्षद्वरे श्रेष्ठे वीतरागालये तदा ।
भाषिते कल्पराजे तु मञ्जुभागीततत्त्विते ॥ ३ ॥
G 479 बुद्धपुत्रैस्तदामात्यैः परमार्थविदैर्विदैः ।
शाक्यसिंहस्तदा आह शृणुध्वं पर्षत् कथे ॥ ४ ॥
बुद्धपुत्रस्तथा ज्येष्ठ महायानाग्रधर्मिणः ।
नाम्ना समन्तभद्रो वै इत्युवाच गिरां वराम् ॥ ५ ॥
बालरूपी महारूपी कुमारस्त्वं वर्ण्यसे जिनैः ।
शाक्यस्य कुलजो दक्षः श्रीमां बुद्धो निरीक्ष्यते ॥ ६ ॥
त्वं हि विश्वमहाराज्ञो लोकानुग्रहकाम्यया ।
त्वदीयं कल्पविसरं मुद्रामुद्रितं त्विदम् ॥ ७ ॥
अध्येषय महावीर बुद्धपुत्र महर्द्धिक ।
सारभूतं कल्पस्यास्य... महर्द्धिकम् ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तु वीरेण बुद्धपुत्रेण धीमता ।
मञ्जुमां त्वरितो जात बालक्रीडाभिनिर्मित ॥ ९ ॥
प्रणम्य सुगतं नाथं जगदेकान्तचक्षुषम् ।
उवाच मधुरां वाणीं करुणार्द्राम्रेडितेन तु ॥ १० ॥
कथयेयु भगवां बुद्धः प्रज्ञाबलतत्त्ववित् ।
कथं तुं सर्वमन्त्रा वै सिध्यन्ति जपिनां ध्रुवम् ॥ ११ ॥
कथं वै ह्यविकल्पेन अमोघान् गच्छन्ति प्राणिनाम् ।
सिध्येयुः क्षिप्तजप्ताभिः सवार्त्थेषु न योजिता ॥ १२ ॥
आ भवाग्राच्च संसारादा वीच्यान्ताश्च नारकाः ।
एतेष्वाश्रिता ये च प्राणिनोऽर्धत्रिधातुका ॥ १३ ॥
आहूयन्ते निगृह्यन्ते आवेश्यन्ते च पश्यताम् ।
सर्वकर्मार्थयुक्ते च तुष्टिपुष्ट्यर्थकारणैः ॥ १४ ॥
दशभूम्याश्रिता ये च सौगते वर्त्मनि स्थिता ।
बोधिसत्त्वा विबुद्धाश्च प्रत्येकां वा बोधिमाश्रिताः ॥ १५ ॥
वीतराग महात्मान आहूयन्ते सुपूजिता ।
समयैर्मन्त्रिभिर्युक्ता इमैर्मुद्रैः समुद्रिता ॥ १६ ॥
कथयन्ति यथाभूतं स्वतन्त्रा चापि दर्शिनम् । G 480
पूर्ववृत्तमवृत्तं वा वर्तमाने च योगिनः ॥ १७ ॥
स्वर्गलोककथाचिन्त्या परदेहाश्रितापि वा ।
अनागतं च यथातथ्यं निदर्शनं चापि वर्णितम् ॥ १८ ॥
कथयन्ति यथान्यायं मन्त्रमुद्रसमीरिता ।
सिद्धिं चापि तथा क्षिप्रं दद्यान्मुद्रैश्च पूजिताः ॥ १९ ॥
मन्त्रज्ञैः मन्त्रिभिर्युक्तः बलिहोमसुपूजिताः ।
कुर्यात् क्षिप्रतरं सिद्धिं बुद्धा बुद्धसुतास्तथा ॥ २० ॥
अर्हन्तोऽपि महात्मानः खड्गिणः सिद्धिदाः सदा ।
लौकिका ये च मन्त्रा वै तथा लोकोत्तरा परे ॥ २१ ॥
ये च सिद्धास्तथा यक्षा गन्धर्वामथ किन्नरा ।
असुरा सुरा सदा सत्त्वा सर्वसत्त्वा त्रिधा स्थिता ॥ २२ ॥
अपर्यन्तेषु दिक्वेषु लोकधात्वन्तरेषु च ।
गतिपञ्चसु ये सत्त्वा युक्तायुक्ताश्च सर्वदा ॥ २३ ॥
सिद्धिं गच्छेयु तत्क्षिप्रं इमैर्मुद्रैः सुमुद्रिता ।
एष विख्यातः सुगतैर्मन्त्रज्ञैस्तु मुनिभिर्विमलम् ॥ २४ ॥

विटकं विधिवेदं ज्ञेयं विसरं पटलोत्तमम्।
सर्वबुद्धैस्तथा लोके श्रेयसार्थमुदाहृता ॥ २५ ॥
मुद्रा पञ्चशिखेत्याहुः सर्वबुद्धैः प्रकाशिता।
श्रेयसार्थं हि भूतानां मञ्जुघोषस्य धीमते ॥ २६ ॥
सर्वतः शिरजा ज्ञेया मूर्ध्नजास्तु तथागताम्।
सा तु सर्वार्थदा ज्ञेया धर्मकोशप्रपूरणी ॥ २७ ॥
पूरणार्थं तु मन्त्राणां मुद्राणां च महर्द्धिकम्।
सर्वेषां लोकोत्तरां श्रेष्ठां लौकिकानां च सर्वदा ॥ २८ ॥
मञ्जुघोषस्य तन्त्रे तु अग्रा ह्यग्रतमा मता।
प्रभावतः सर्वकर्माणि क्षिप्रं कुर्यार्थनामतः ॥ २९ ॥
G 481 शुचिर्भूत्वा शुचौ देशे बध्नीयान्मुद्रवरं प्रभुम्।
आदौ हस्तौ थ कृत्वा वै सुषिराकारसंपुटौ ॥ ३० ॥
आकोशविरलाङ्गुष्ठौ न्यस्ताङ्गुष्ठौ थ सूचितौ।
पञ्चसूचिकविन्यस्तौ मुद्रा पञ्चशिखा भवेत् ॥ ३१ ॥
शिरःस्थाने सदान्यस्ता एकसूच्या थ अङ्गुलैः।
मुद्रा एकचीरा तु मूर्ध्नि स्थानेषु योजिता ॥ ३२ ॥
कन्यसाङ्गुलिविन्यस्ता सुश्लिष्टा मध्यमौ तथा।
............अङ्गुष्ठौ सूचितावुभौ ॥ ३३ ॥
त्रिसूच्याकारसमायोगा तृशिखा मुद्रमुदाहृता।
सर्वैरङ्गुलिभिर्युक्तैराकोषात्सुषिरसंभवैः।
शिरःस्थाने सदान्यस्ता मुद्रा शिखवरा भवेत् ॥ ३४ ॥
स एव उच्छ्रिताङ्गुल्यौ ईषित् संकुचिताग्रकौ।
महावीरा तु सा ज्ञेया महामुद्रा महर्द्धिका ॥ ३५ ॥
एते पञ्च महामुद्रा पूर्वं जिनवरैस्तदा।
निर्दिष्टा सर्वमुद्राणां कथयन्ति मनीषिणौ ॥ ३६ ॥
ज्येष्ठा मुद्रमुख्यानां * * * * * मुद्रिताम्।
लोकोत्तरां तु सर्वा वै लौकिकानां च सर्वतः ॥ ३७ ॥
एता पञ्च महामुद्राप्रयोगा सिद्धिहेतवः।
सुसिद्धा सिद्धतमा ह्येता अग्रा ज्येष्ठाश्च भाषिता।
मञ्जुघोषस्य मूर्धजा प्रभावात्यद्भुतचेष्टिता ॥ ३८ ॥
यावन्ति सौगता मुद्रा सर्वेषां सिद्धिहेतवः।
मुद्रा मुद्रेति विख्याता श्रीमन्तं किसलयोद्भवम् ॥ ३९ ॥

मञ्जुघोषस्य मूर्धजं महापुण्यतमं शिवम् ।
यं बध्वा महासत्त्वा नियतं बोधिमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥
महामुख्यावतंसं तं श्राद्धमविकलेन्द्रियम् ।
सदा यज्ञं प्राज्ञयुक्तं च विधिवत् कर्ममाचरेत् ॥ ४१ ॥
तादृशेन तु युक्तेन सत्त्वेनैव सुयोजिता । G 482
मुद्रेयं कुरुते ह्यर्थां यथेष्टां चापि पुष्कलाम् ॥ ४२ ॥
उपदेशात्तु विद्वांसः मतिमन्तोऽर्थसाधकाः ।
आचार्यसंमता लोके शिष्या ग्राह्यास्तु सर्वदा ॥ ४३ ॥
विधिवत् कर्मदृष्टेन पुरुषेणेह भक्तितः ।
महायानगतैर्नित्यं मुद्रेयं संप्रयुज्यते ॥ ४४ ॥
सर्वेषां तु मुद्राणां त्रिधा मन्त्रेषु योजिताम् ।
अग्राह्यप्रतमा लोके एते मुद्रा प्रभावतः ॥ ४५ ॥
सिद्ध्यर्थं सिद्धिकामानां तथा मन्त्रैः सुयोजिताम् ।
क्षिप्रमर्थकरा ह्येते सर्वसौख्यफलप्रदाः ॥ ४६ ॥
मञ्जुघोषः स्वयं तिष्ठेन्मुद्रैरेतैः समाहितः ।
यस्मि स्थाने तु वश्चैताः स्वयं मञ्जुरवः सदा ॥ ४७ ॥
रक्षां ह्यग्रां प्रकल्पीत जिनपुत्रो महर्द्धिकः ।
बालरूपी महात्मा वै विश्वरूपी महर्द्धिकः ॥ ४८ ॥
बहुरूपी च सत्त्वानां मुद्रारूपी थ देहिनाम् ।
बालिशानां तु सत्त्वानां संसारार्णवचारिणाम् ॥ ४९ ॥
तेषामर्थकरः क्षिप्रं मुद्रारूपेण तिष्ठते ।
मञ्जुघोषस्य शिरजाः सर्वमूर्ध्नि प्रतिष्ठिताः ॥ ५० ॥
सर्वार्थसंपदा ह्येते जप्तमात्रैस्तु योजिता ।
मूलमन्त्रेण संयुक्ता हृदयस्यानुगतेन वा ॥ ५१ ॥
सर्वे सौगतिभिश्च मन्त्रैभिश्च सुयोजिता ।
ये तु अब्जकुले मन्त्रा वज्रिणे चापि कपर्दिने ॥ ५२ ॥
सर्वैश्च लौकिकैश्चापि मुद्रैर्युक्तार्थफलप्रदा ।
एते पञ्च महामुद्रा मन्त्रयुक्तार्थफलप्रदा ॥ ५३ ॥
विकल्प्या मन्त्रगतां त्यज्य मुद्रैर्वाथ फलप्रदा ।
महारक्षा महापुण्या बद्धमात्रेण देहिनाम् ॥ ५४ ॥
स्मरितैर्ह्येभिर्महामुद्रैर्महारक्षा विधीयते । G 483
कः पुनर्जप्तमात्रैस्तु मन्त्रमुद्रासमाश्रितैः ॥ ५५ ॥

यावद् वा जापिनः सर्वे नियतं बोधिमाप्नुयात् ।
अपरे तु महामुद्राः शूलपट्टिशसंभवाः ॥ ५६ ॥
महाशूलोऽथ मुद्राणां घोरदारुणमुच्यते ।
क्रोधराजेन मुख्येन यमान्तेनेह योजिता ॥ ५७ ॥
करोति विविधां कर्मां दारुणां प्राणरोधिनाम् ।
महाभयप्रदां मुद्रां विपस्यस्यापि महात्मने ॥ ५८ ॥
दुष्टसत्त्वां विनाशाय सृष्टास्तृभवालये ।
तैरेव योजिता मन्त्रा विविधां मुद्रमाश्रिता ॥ ५९ ॥
तेषां विनाशनार्थैव सृष्टा जिनवैरः सदा ।
मन्त्रचर्यार्थयुक्तायाः शासनार्थाय कल्पिता ॥ ६० ॥
विहिता लोकनाथैस्तु मुद्रा तन्त्रार्थदर्शना ।
दुष्टसत्त्वप्रयुक्तानां गरकिल्बिषरोगदाम् ॥ ६१ ॥
तेषां निर्नाशनार्थैव उक्तां सर्वार्थकर्मिकाम् ।
यमशासननाशाय मृत्युपाशाय मोक्षणाः ॥ ६२ ॥
नित्यं प्राणहरा मुद्रा प्रयुक्ता मन्त्रयोजिता ।
यमदूतहरा पुण्या मृत्युनाशनी स्मृता ॥ ६३ ॥
यमशासननीतानामानेता प्राणदा स्मृता ।
सर्वरोगविनाशार्थं यमस्यापि भयप्रदा ॥ ६४ ॥
मुनिमुख्यैस्तथा युक्ता प्राणसंधारणी हिता ।
शासनेऽस्मिन् प्रसन्नानां हिता रक्षा विधीयते ॥ ६५ ॥
सफला नाशनी दुष्टा गीता मञ्जुरवे हिता ।
सर्वार्थप्रापणी देवी महामुद्रा प्रगीयते ॥ ६६ ॥
महाप्रहरणे त्वाहुः अपरा मुद्र परावरा ।
तथैव हस्तौ संन्यस्य तर्जन्यौ पाशसंभवौ ॥ ६७ ॥
G 484 कन्यसौ सूचयेन्नित्यं मुष्टियोगेन योजितौ ।
हस्तौ संपुटितौ नित्यौ अङ्गुष्ठावुच्छ्रितावुभौ ॥ ६८ ॥
एष मुद्रा महापुण्या महाशूले समागता ।
विविधा लोकनाथैस्तु विचित्रप्रहरणोद्भवा ॥ ६९
यो यस्य चिन्तयेज्जापी शत्रोः प्रहरणानि वै ।
तेनैव च्छिन्दयेद् गात्रं चित्तोत्पादाच्च तद् भवेत् ॥ ७० ॥
नियतं नाशयेच्छत्रुं मुद्रा मन्त्राश्च योजिता ।
निहन्याच्छत्रुगणां सर्वां मन्त्राश्चापि महर्द्धिकाम् ॥ ७१ ॥

यमदूतगणां विघ्नां ग्रहांश्चापि समातराम् ।
पूतनास्कन्दरुद्रांश्च प्रेतांश्चापि महर्द्धिकाम् ॥ ७२ ॥
जप्ता वैववस्तां लोकां कृत्स्नां चैव सवासवाम् ।
यमान्तकक्रोधराजेन नान्यं मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥ ७३ ॥
मुद्रैरेतैः प्रयुञ्जीत महाशूलसमैस्तदा ।
सद्यं वैवस्वतं हन्यात् कः पुनर्भुवि मानुषाम् ॥ ७४ ॥

सर्वप्रहरणीं मुद्रां सर्वदुष्टां विनाशिनीम् ।
विहिता लोकमुख्यैस्तु संबुद्धैर्द्विपदोत्तमैः ॥ ७५ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य मध्यमां शूल्य कारयेत् ।
तथैव हस्तौ कृत्वेह मुष्टियोगेन कारयेत् ॥ ७६ ॥
................अङ्गुष्ठाग्रौ तु पीडितौ ।
सुषिरावाङ्गुलिसंयुक्तौ मध्याङ्गुल्यसमुच्छ्रितौ ॥ ७७ ॥
सूचिकाग्रौ तथा नित्यौ तर्जन्याङ्गुलिमाश्रितौ ।
एषा मुद्रा वरा घोरा शूलेत्याहुर्मुनिवराः ॥ ७८ ॥

महाशूला भवेत् साधुः तर्जन्याकुञ्चितावुभौ ।
विसृतैः पट्टिशा ज्ञेया महामुद्रवरा परा ॥ ७९ ॥
तदेव संकुचाग्रौ तु अङ्गुल्यास्त्रिभिरुच्छ्रिता ।
एषा सा त्रिशूलमुद्रेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ८० ॥

विचित्रप्रहरणा ज्ञेया अङ्गुष्ठावुभयोच्छ्रितौ । G 485
महाशूलसमा ह्येते महावीर्या भयानकाः ॥ ८१ ॥
पापसत्त्वविनाशाय तन्त्रेऽस्मिं मञ्जुरवे वरे ।
दुर्दान्तदमिता ह्येता महामुद्राद्भुतचेष्टिता ॥ ८२ ॥
रौद्रप्राणहरा ते विकृताकारसंभवा ।
महाघोरतमा रौद्रा महाक्रूरतमाहिता ॥ ८३ ॥

महाघोरवरा ज्येष्ठा बहुरूपिण्यः प्रकाशिता ।
सर्वत्र जापिनो बुद्धा जराव्याधिविवर्जिता ॥ ८४ ॥
विचरन्ति इमां लोकां संसिद्धा जापिनः सदा ।
विहिता मृत्युनाशाय संबुद्धैर्मुनिपुंगवैः ॥ ८५ ॥
जराव्याधिविनाशिन्यः मृत्युनाशाय संसृजेत् ।
योजिता मन्त्रिभिः क्षिप्रं कृतान्तस्यापि भयानका ॥ ८६ ॥

सृजेत् प्रभुवरः श्रीमां शुद्धावासपुरे वरे ।
मुनिसत्तमजे मुद्रा शाक्यसिंहे नरोत्तमे ॥ ८७ ॥
न बुद्धा मन्त्र भाषन्ते न मुद्रा क्रूरकर्मिणाम् ।
सत्त्वकारणवात्सल्यात् सर्वज्ञार्थप्रपूरणी ॥ ८८ ॥
ऋद्धिविक्रीडनार्था वा बोधिसंभारकारणा ।
उपायसत्त्ववैनेया महायानाग्रनियोजना ॥ ८९ ॥
महासंसारपूरणा.....................।
अधिमुक्तिवशां सत्त्वां मन्त्रमुद्रामुदाहृताम् ॥ ९० ॥
आकाश चेति या बुद्धा न बुद्धा वाचाय कल्पिता ।
निःप्रपञ्चार्थयुक्तानां कुतः संकल्पगोचरम् ॥ ९१ ॥
धर्मधातुसमा निष्ठा भूतकोटिसमा च या ।
मन्त्रयुक्तानां निष्ठा मुद्रा....समुद्रिता ॥ ९२ ॥
कथयन्ति भवाज्ञानां मुक्त्यर्थं हेतवां सदा ।
सर्वज्ञमुद्रमाख्याता सर्वज्ञानार्थप्रपूरणा ॥ ९३ ॥
G 486 युक्तियुक्तार्थपूजार्थं मुद्रामुद्रमुदाहृता ।
बुद्धैश्च बुद्धपुत्रैश्च अचिन्त्याचिन्त्यगोचरैः ॥ ९४ ॥
सर्वज्ञदर्शिनो मुद्रा उष्णीषाद्याः प्रभाविताः ।
अवलोकितमुद्रा तु वज्रपाणे थ लौकिकाः ॥ ९५ ॥
कथिताः कथयिष्यन्ति श्रेयसार्थं हि देहिनाम् ।
यावद् बुद्धसुतैर्मुद्रा मुनिश्रेष्ठैश्च भाषिताः ॥ ९६ ॥
सर्वार्थपूरणा मुद्रा प्रभावाचिन्तचिन्तिता ।
विकल्पार्थं हि भूतानां त्रिधा मन्त्रास्तु भाषिता ॥ ९७ ॥
एक एव भवेन्मन्त्रः यो बुद्धैस्तु भाषितः ।
सौगतार्थं तु मन्त्राणां मन्त्रो ह्येकः प्रगीयते ॥ ९८ ॥
उष्णीषाधिपतिः श्रीमां एकवर्णोथ वि सदा ।
चक्रवर्ती भवेन्नित्यं तकारो रेफसंयुतः ॥ ९९ ॥
ऊकारसहितो नित्यं युक्तोऽथ प्रगीयते ।
स भवेच्चक्रिणः श्रीमां बुद्धानां मूर्धजो वरः ॥ १०० ॥
भापरं मन्त्रमित्याहुर्बुद्धपुत्रस्य धीमतः ।
प्रभावात् तत्समो ज्ञेयः मकारोऽन्त्यार्थ गीयते ॥ १०१ ॥

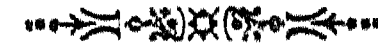
मञ्जुघोषस्य विख्यातः हृदयोऽयं बुद्धमूर्ध्नजः ।
प्रभावातिशयो ज्ञेयः महापुण्य महर्द्धिकः ॥ १०२ ॥
सर्वार्थपूरणो मन्त्रः............।
मुद्रा पञ्चशिखोपेतौ उभयार्थार्थपूरणौ ॥ १०३ ॥
मुद्रा पञ्चशिखा वापि मकारे चापि योजितौ ।
परमार्थं बोधयेच्चार्थं इहैवार्थं तु भोगदौ ॥ १०४ ॥
अपरं मन्त्रमित्याहुः............।
जकारं रेफसंयुक्तं अवोध्मार्थ पूजितम् ॥ १०५ ॥
एष मन्त्रवरो ह्यग्रः अब्जकेतोऽथ मूर्ध्नजः ।
मुद्रे पद्मवेर युक्तो आर्या पुष्यार्थजन्मिनाम् ॥ १०६ ॥
जापिनां कर्मसिद्धिं तु कुर्यात् सर्वार्थसंपदाम् । G 437
अपरं वज्रिणे मन्त्रां हूंकारं बाहुमूर्धजम् ॥ १०७ ॥
एष मन्त्रवरो ह्यग्रः चण्डोऽथ गीयते ।
प्रयुक्तो वज्रालये मुद्रे कुर्यात् प्रायार्थकर्मिणाम् ॥ १०८ ॥
दुर्दान्तदमको घोरो मन्त्रोऽयं नाशहेतवः ।
उक्तार्थं शासनार्थं च यथोक्तं विधिमाचरेत् ॥ १०९ ॥
न कुर्यात् पापकर्माणि सत्त्वनिग्रहमादरात् ।
न योजयेन्मन्त्रवरं नित्यं सौम्यसत्त्वेषु नित्यशः ॥ ११० ॥
नापराध्येऽल्पदोषेण सत्त्व नाशयतोत्सृजेत् ।
न कुर्यादादरान्मोहादल्पदोषेषु जन्तुषु ॥ १११ ॥
शासने दुष्टचित्तानां अप्रसन्नां प्रसादनाम् ।
विनयार्थं तु सत्त्वानां दमनार्थं पिशिताशिनाम् ॥ ११२ ॥
निग्रहार्थं तु दुष्टानां सौम्यसत्त्वप्रसादनाम् ।
उक्तो मन्त्रवरो ह्यग्रः न कुर्यात् प्राणान्तिकं कदा ॥ ११३ ॥
सर्वलौकिकमन्त्राणां वज्रिणे च महर्द्धिकाम् ।
अग्रो मन्त्रवरो ह्युक्तः सर्वलौकिकदेवताम् ॥ ११४ ॥
अपरो मन्त्रवरो ह्येष सर्वलौकिकदेवताम् ।
मन्त्राणां मूर्ध्नजो ज्ञेयः शिव एकाक्षरो ह्यतः ॥ ११५ ॥
ईश्वरः सर्वलोकानां मन्त्राणां तु लौकिकां प्रभुः ।
परमेश्वरमित्याहुः खकारो ता विदुर्बुधाः ॥ ११६ ॥

सर्वमन्त्रास्तु गीयन्ते यावन्त्यो लौकिकाः स्मृताः।
सर्वे ते यत्र वै मन्त्रे निबद्धा सर्वत्र पूजिता ॥ ११७ ॥
विहिता मुनिवरै ह्येता मुद्रा सर्वत्र योजिता।
मता शिवतमा श्रेष्ठा लौकिकाग्रा समाहिता ॥ ११८ ॥
ईश्वराद्यान्तर्भूता वै विपश्यग्रहमातराम्।
कटपूतनयक्षाद्यां राक्षसां पिशिताशिनाम् ॥ ११९ ॥
G 488 गरुडध्वजविष्णोश्च ब्रह्मणश्चापि कीर्तिता।
मुद्रा ह्येताः समादिष्टा दुर्दान्तदमने हिता ॥ १२० ॥
प्रशस्ता मङ्गला ह्येता मुद्रा ह्युक्ता मनीषिभिः।
वश्यावेषणभूतानां आकृष्टा हेतवोहिताम् ॥ १२१ ॥
विविक्ते तु सदा देशे शुक्लपुष्पैः सुशोभिते।
सुमृष्टे सिद्धगन्धैस्तु श्वेतचन्दनकुङ्कुमैः ॥ १२२ ॥
जातीकुसुममालाभिः अभ्यर्च्य सुगतं प्रभुम्।
शाक्यसिंहं महापुण्यं सर्वमन्त्रेश्वरं विभुम् ॥ १२३ ॥
सर्वज्ञं सर्वदाभक्त्या प्रणिपत्य तथागतम्।
मन्त्रनाथं च लोकेशं वज्रिणं चापि शक्तितः ॥ १२४ ॥
मञ्जुश्रियं महात्मानं धर्मधात्वेश्वरं गुरुम्।
सर्वां बुद्धसुतां बुद्धां अनुपूर्व्या समाहितः ॥ १२५ ॥
कुशपिण्डे पल्लवे चैव सक्षीरे सार्द्रे सुशोभने।
उपविष्टः प्राङ्मुखः शुचिः ॥ १२६ ॥
उदङ्मुखः शान्तिकर्मे तु पश्चादाह्वानने मुखे।
न कुर्युः सर्वकर्माणि यथा दैवतमन्दिराम् ॥ १२७ ॥
प्रवृत्तः सर्वभूतेषु दयावां मुद्रकर्मणि।
सर्वत्र योजिता मुद्रा कुर्यात् सर्वसाधनम् ॥ १२८ ॥
पूर्वाभिमुखे पौष्टिकं कर्म मन्त्राणामानयने ध्रुवम्।
पश्चान्मुखे तु कुर्वीत वश्यार्थं सर्वभौतिकम् ॥ १२९ ॥
उदङ्मुखे शान्तिकं विन्द्यात् सर्वव्याधिप्रणाशने।
दक्षिणे पापकर्मं तु न कुर्यात् प्राणान्तिकं सदा ॥ १३० ॥
ऊर्ध्वं विघ्ननाशं तु उत्तिष्ठोत्तमसिद्धिदः।
असुरपुरे कर्म पातालाधिपतेस्तदा ॥ १३१ ॥

अधोमुखश्च कुर्वीत सर्वत्राप्रतिपूजिता ।
विदिक्षु च सर्वत्र यथा यथा च समासृता ॥ १३२ ॥
तेषु तेषु च कुर्वीत सिध्यन्ते सर्वदेहिनाम् । G 489
कुर्याद् सर्वत्र मुद्राणां विधिहोमसमाजपी ॥ १३३ ॥
तत्रस्थां सिद्धिमायान्ति तन्मुखाश्चापि मुद्रिता ।
विधिः श्रेष्ठः कथ्यतां तां निबोधताम् ॥ १३४ ॥
शुचिर्वस्त्रशुचिर्भूत्वा सुखशौचसमाहितः ।
इमां मुद्रां प्रयुञ्जीत सर्वार्थां च सुसमाधिकाम् ॥ १३५ ॥
हस्तावुद्वृत्य गन्धैश्च श्वेतचन्दनकुङ्कुमैः ।
सुधूपैः प्राण्यङ्गरहितैः कर्पूरागरुचन्दनैः ॥ १३६ ॥
युक्तिकुङ्कुममुख्यैश्च कुर्याद्धूमवरं विदू ।
निवेद्य विविधा कर्मां आचरेद् विधिवद् सदा ॥ १३७ ॥
आचरेत् पूर्वनिर्दिष्टं कर्मं सर्वत्र कल्पभाषितम् ।
प्राङ्मुखोऽथ ततो भूत्वा उभौ हस्तौ सुसंपुटौ ॥ १३८ ॥
मिश्रीकृतां ततोऽन्योन्यां अङ्गुल्या वेणितः स्थितौ ।
मध्यमौ कन्यसौ ज्येष्ठौ अनामिकाग्रौ च योजितौ ॥ १३९ ॥
अङ्गुष्ठौ निश्चलौ ज्ञेयौ समौ चापि प्रतिष्ठितौ ।
शिरःस्थाने तदा कुर्या ललाटदेशे तु भक्तितः ॥ १४० ॥
नमस्कारं तथा मन्त्रं षड्वर्णोथ योजिताम् ।
ॐ वाक्येद नमः वाक्यं स्वाहाकारवर्जितम् ॥ १४१ ॥
हुङ्कारापगतं श्रेष्ठं फट्कारापगतं सदा ।
पवित्रं मङ्गलं ज्येष्ठं हृदयं तु सदा जपेत् ॥ १४२ ॥
एष मञ्जुवर श्रेष्ठ बालरूपि सुरूपिणे ।
पश्चान्मे विश्वरूपे तु हृदयोऽयं प्रकीर्त्तते ॥ १४३ ॥
षडेते षडक्षरा ज्ञेया मन्त्रा श्रेष्ठा हृदयोत्तमा ।
तेषामग्रतरा ह्येषा प्रवृत्तः सर्वकर्मसु ॥ १४४ ॥
इदं मुद्रोत्तमं मन्त्रं कुर्यात् सर्वकर्मसु ।
मूर्ध्नि स्थाने ततो दत्त्वा ललाटोद्देशे तु युक्तितः ॥ १४५ ॥
मध्यमाङ्गुल्यं तु चालेद् वश्यार्थं सार्वभौतिकम् । G 490
अङ्गुष्ठाग्रावुभौ नाम्यौ आकृष्टार्थं च देवताम् ॥ १४६ ॥

तैरेव विसृतौ नित्यं विसर्ज्यं मन्त्रदेवताम्।
मध्यज्येष्ठौ तथा श्रावकांश्च मुनिवरम् १४७ ॥
तर्जन्यौ कुञ्चितौ नित्यौ बोधिसत्त्वां कुलिशोद्भवाम्।
दशभूम्येश्वरा ये च आह्वयन्ते न संशयम् ॥ १४८ ॥
कन्यसाङ्गुलिसंयुक्ता आकुञ्च्यात् सराह्वये।
यक्षराक्षसप्रेतांश्च कूष्माण्डा कटपूतनाम् ॥ १४९ ॥
दैत्यदानवसंघांश्च यक्षिण्याश्च धनदप्रिया।
मातृवत् कुरुते ह्येतां मुद्रेयं संप्रपूजिता ॥ १५० ॥
अर्थानर्था तथा नित्यमिष्टानिष्टां फलप्रदाम्।
महामुद्रेति विख्याता गीयते तृभवालये ॥ १५१ ॥
एष गुह्य महामुद्रा बद्धा मूर्धसु पण्डितः।
अधृष्यः सर्वभूतानां भवते नात्र संशयः ॥ १५२ ॥
दूराद्दूरं नमस्यन्ति सर्वविघ्नविनायका।
महाब्रह्मसमं पुण्यं नियतं बोधिमवाप्नुयात् ॥ इति ॥ १५३ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात्
आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् द्विचत्वारिंशतिमः
महामुद्रापटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



४५ सर्वतथागताचिन्त्यधर्मधातुमुद्रापटलविसरः । G 491

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—सर्वां च शुद्धावासभवनसन्निपतितां देवगणानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तो देवसंघाः मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य महाऋद्धिविकुर्वणप्रातिहार्यविक्रीडितचेष्टितबालरूप स्वरूपनिदर्शनयथाशयत्व-संतोषणमहायानाग्रधर्मप्रापणं सत्त्वपाकसंयोजनमुद्रा मन्त्रप्रभावतन्त्रसत्त्वयोजनमभिप्रायसंपूरणार्थं मुद्रापटलं परमगुह्यतमं सर्वमन्त्रतन्त्रकल्पेषु बीजभूतं सारभूतं परमरहस्यं महागुह्यतमं परमोत्तर-तन्त्रेषु सर्वलौकिकलोकोत्तरेषु अप्रकाश्यं परमगोप्यं नाशिष्याणां च देयम् अश्राद्धानामनुत्पादित-बोधिचित्तानां मत्सरिणामन्यतीर्थायतनभक्त्यानां महायानाग्रधर्मविद्वेषिणां सर्वमन्त्रतन्त्रेषु अगौर-वजातानाम् । एतेषां प्रकाश्य अन्येषां प्रकाश्यमिति समयज्ञानां बुद्धशासने प्रतिपन्नानां सुरूप-सुवेषश्राद्धमविकलचित्तसंधानमहोत्साहा सर्वमन्त्रेषु च सगौरवसर्वबुद्धबोधिसत्त्वेषु प्रत्येक-बुद्धार्यश्रावक सर्वदेव सब्रह्मचारी सप्रतीशादरजातेषु सत्त्वेषु महासंनाह संनद्धेषु सकलसत्त्व-धात्वोत्तारणाभ्युद्यमोद्यतेषु महाकारुणिकेषु क्षान्तिसौरभ्यसुवचस्केषु सत्त्वेष्वेतेषां देयमन्ये-षामदेयमित्याह च ॥

एष मुद्रागणः श्रेष्ठः प्रयुक्तो मन्त्रयोजितः ।
करोति कर्म विविधा मनेष्टा मनुयोजिता ॥ १ ॥

जापिभिः सर्वकालं तु प्रयोक्तव्यः सिद्धिमिच्छता ।
नाम्ना त्रैलोक्यविख्यातः बुद्धैः अजितः सदा ॥ २ ॥

श्रीसंपत्करो ह्येष प्रथितः सर्वजन्तुभिः ।
श्रीवत्सो नाम मुद्रोऽयं प्रमुखोऽष्टशते भुवि ॥ ३ ॥

मुद्राणामष्टशतं ज्ञेयं मञ्जुघोष शृणोहि मे ।
पुरा जिनवरैर्गीतं बुद्धपुत्रैश्च धारितम् ॥ ४ ॥

अहं वक्ष्ये प्रत्यहं वर्तमानमनागतम् ।
अर्थार्थं समनुमोद्ये रक्ष्येऽहं भुवनत्रये ॥ ५ ॥

मञ्जुघोषस्तथा हृष्टः उवाच वदतां वरम् । G 492
देशयन्तु महात्मानो बुद्धाः सर्वत्र पूजिताः ॥ ६ ॥

यं श्रुत्वा पुरुषाः प्राज्ञाः नियतं बोधिमाश्रये ।
सर्वेषां तु प्रवृत्तानां जपहोमव्रते स्थिताम् ॥ ७ ॥

ध्रुवं मन्त्रास्तु सिध्येयुरिमैर्मुद्रैस्तु मुद्रिताः ।
अध्येष्येऽहं महावीरं शाक्यसिंहं नरोत्तमम् ॥ ८ ॥

अस्माकं सत्त्वमर्थाय धर्मकोशार्थपूरणम् ।
महायानाग्रधर्मार्थं मन्त्रचर्यार्थसाधकम् ॥ ९ ॥

दुर्दान्तदमकं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
देशयन्तु महावीरा पटलं मुद्रसंभवम्॥ १० ॥
पूरणार्थं तु मुद्राणां सूचनार्थं तु देवताम्।
.... अनुकंपार्थं तु जापिनाम्॥ ११ ॥
एवमुक्त्वा तु मञ्जुश्रीः कुमारो बालरूपिणः।
निरीक्ष्य सुगतश्रेष्ठं सुखो मञ्जुरवस्तादा॥ १२ ॥
उवाच मधुरां वाणीं मुनिश्रेष्ठो विनायक।
कलविङ्करुतः श्रीमां मेघदुन्दुभिनिस्वनः॥ १३ ॥
ब्रह्मस्वरेण वचसा वाचो मभ्यानचक्ष सः।
शृणोथ भूतगणाः सर्वे कल्पार्थं मन्त्रदेवनाम्॥ १४ ॥
समयं सर्वदैवानां मुख्यं मुद्राश्च दैवतम्।
समतिक्रान्त बुद्धैस्तु प्रत्येकार्हतसाधकैः॥ १५ ॥
कः पुनरन्यसत्त्वैस्तु विद्यादेवतलौकिकैः।
एष मुद्रागणःज्येष्ठः सर्वमुद्रेषु कथ्यते॥ १६ ॥
यं तथाजापिनः सर्वे नियतं सिध्यन्ति देवता।
आदौ किसलयं नाम्ना द्वितीयं भवति मेखला॥ १७ ॥
तृतीयं सुमेखला चैव चतुर्थी सुमनसोद्भवा।
पञ्चमी संकलेत्याहुः षष्ठी रेखा प्रघुष्यते॥ १८ ॥
G 493 सुवर्णा सप्तमी ज्ञेया माला भवति चाष्टमी।
नवमी अङ्कुशी ख्याता दशमी सप्तदशाच्छदा॥ १९ ॥
एकादशी भवेत् कुन्ता सुकुन्ता द्वादशी भवेत्।
कर्दमी त्रयोदशी चात्र पटही पञ्चदशी भवेत्॥ २० ॥
षोडशी तु भवेद् यष्टिः मुष्टिः सप्तदशी विदुः।
अष्टादश समाख्याता वज्रमाला प्रगीयते॥ २१ ॥
हेममालोनविंशा तु पद्ममाला थ विंशति।
नागी नागमुखी चैव तृतीया भवति महामुखी॥ २२ ॥
वक्रा च वक्रसहिता छत्री भवति लोहिता।
लोहिता चाष्टविंशा तु नीललोहितिका सिनी॥ २३ ॥
जोत्स्ना जनि तामसी द्वात्रिंशा कथिता भुवि।
तारा सुतारा तारावर्ता सुमुद्रजापि॥ २४ ॥
घोररूपिणी विख्याता रात्री भयदा सदा।
महाप्रभावेति विख्याता या मुद्रा भुवि लोचना॥ २५ ॥

सप्तत्रिंशतिमुद्रास्तु संख्या ह्येषा प्रगीयते ।
श्वेता पाण्डरा चैव एवला मामकी च या ॥ २६ ॥
महाभयहरी देवी भ्रुकुटी तु प्रगीयते ।
अजिता अपराजिता ख्याता जया विजया पराजिता ॥ २७ ॥
साधकी साधनी चैव तारा श्वेतेति गीयते ।
घटकर्परमित्याहुः सुगती गतिशोधिका ॥ २८ ॥
पद्मी पद्मसुता चैव वज्री वज्रमनोद्भवा ।
स्त्रीसंख्या गणो मुद्रैः पुरुषाणां तु प्रगीयते ॥ २९ ॥
भद्रं मुद्रपीठं तु आसनं शयनं भुवि ।
स्वयंभू शंभुचक्रश्च कुलिशो मुसलस्तथा ॥ ३० ॥
स्वस्तिको लिङ्गमुद्रश्च पक्षिराड्गरुत्मनः ।
मुद्रो गरुडध्वजो ज्ञेयः विष्णुरुद्रसवासवः ॥ ३१ ॥
ब्रह्मा पद्मोद्भवः श्रीमां श्रीसंपुट एव च । G 49
तथ्यं यमलमुद्रं च मयूरासनमेव तु ॥ ३२ ॥
विदितं सर्वदिग् धीमां कार्त्तिकेयार्थदः सदा ।
कुमारस्यानुचरो ज्ञेयो मञ्जुघोषस्य.... ॥ ३३ ॥
तस्य मुद्रं महावीर्यं ताताः शक्तिधरः सदा ।
मयूरासनमुद्रं तु तस्यैवैतत् प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥
अनेन बद्ध्वा मन्त्रेण कार्त्तिकेयस्य युक्तितः ।
यावन्तो लौकिका मुद्रा शैवाश्चैव सवासवाः ॥ ३५ ॥
सर्वे भवन्ति बद्ध्वा वै वश्यार्थं हि प्रयुज्यते ।
एष मुद्रा करो ह्यर्थां पुष्कलां साधु चेष्टिताम् ॥ ३६ ॥
प्रसन्नो बुद्धपुत्रस्य मञ्जुघोषस्य धीमतः ।
बुद्धशासनमवतीर्णो बालरूपी महर्द्धिकः ॥ ३७ ॥
कार्तिकेयोऽथ विख्यातः मन्त्रमुख्येऽथ लौकिके ।
सर्वेषां च प्रयोक्तव्यो बालिशानां विशेषतः ॥ ३८ ॥
ग्रहमातरकूष्माण्डैः गृहीता कटपूतनैः ।
दैत्यदानवयक्षैश्च पिशाचोरगराक्षसैः ॥ ३९ ॥
क्रव्यादैर्मानुषैश्चापि नित्यं चापि विमोक्षकः ।
रौद्रसत्त्वेऽथ दुष्टेभिः पिशिताशनव्यन्तरैः ॥ ४० ॥
मुद्रितेभिश्च मनुजैर्मुद्रोऽयं संप्रमोक्षकः ।
सर्वसत्त्वार्थयुक्तश्च प्रयुक्तः सुखदः सदा ॥ ४१ ॥

संक्षेपेण तु उक्तोऽयं विस्तरश्चैव संज्ञकम् ।
अपरं मुद्रं प्रवक्ष्यामि यं बद्‌ध्वा सुखी भवेत् ॥ ४२ ॥
जापिनः सर्वकर्मेषु प्रयुक्तस्याप्यमोघवाम् ।
नाम्ना बुद्धासनो नाम महामुद्रा प्रकथ्यते ।
विस्तरः सर्वतन्त्रेषु पठ्यते तां निबोधत ॥ ४३ ॥
यं बद्‌ध्वा जापिनः सर्वे नियतं बोधिपरायणाः ।
G 495 कः पुनः सिद्धिकामानां भोगालिप्सपरायणम् ॥ ४४ ॥
पूर्ववत् चौक्षसमाचारः स्थित्वा च प्राङ्मुखः शुचिः ।
उभौ हस्तौ समौ कृत्वा अञ्जल्याकारमाश्रितौ ।
कुर्याद् विकासितौ चाग्रे उभावङ्गुष्ठनामितौ ॥ ४५ ॥
मध्यमाङ्गुलिमाश्लिष्टौ कुण्डलाकारचिह्नितौ ।
पर्यङ्केनोपविष्टे तु नाभिदेशे तदा न्यसेत् ॥ ४६ ॥
एष मुद्रावरः श्रेष्ठः सर्वकर्मेषु योजितः ।
उत्तमेषु च उत्तिष्ठे नाधमे मध्यमेऽपि वा ॥ ४७ ॥
क्षिप्रमर्थकरो ह्येष सिद्धः सर्वत्र युज्यते ।
महापुण्यो पवित्रोऽयं मङ्गल्यमघनाशनः ॥ ४८ ॥
सर्वपापहरः पुण्यः मुद्रोऽयं सिद्धिहेतवः ।
द्वितीयमपरं मुद्रा महामुद्रा प्रकथ्यते ॥ ४९ ॥
नाम्ना शत्रुंजयी नाम सर्वविघ्नविनाशिनी ।
यं बद्ध्वा शत्रवः सर्वां वशां कुर्यान्न संशयः ॥ ५० ॥
सर्वे च्छोषमायान्ति गच्छन्ते वाथ दासताम् ।
रागो द्वेषश्च मोहश्च स्वपक्षः सगणैः सह ॥ ५१ ॥
लोभमात्सर्यमानश्च विचिकित्सा कथंकथा ।
प्रमादो माया कौसीद्यं साध्येष्या कुमार्गता ॥ ५२ ॥
मिथ्यादृष्टिदशे माने दन्ते स्तम्भे च लुब्धता ।
दशाकुशलपथा कर्मा सर्वे ते शत्रवः स्मृताः ॥ ५३ ॥
एष शत्रुगणः प्रोक्तो बुद्धैर्बुद्धसुतैस्तथा ।
एष मार्गेष्ववस्थाभिः प्राणिनो यं च माश्रिता ।
बुद्धशासनहन्तारः तेषां मुद्रा प्रयुज्यते ॥ ५४ ॥
इयं मुद्रा महामुद्रा गीतं बुद्धैः पुरा सदा ।
प्रयोक्तव्या प्राणिनां ह्येषा दमनार्थं पापनाशनी ॥ ५५ ॥

तथैव पुरतः स्थित्वा उभौ पाणिसमाश्रये ।
समाश्लिष्टौ थ तौ कृत्वा अञ्जल्याकारमाश्रितौ । G 496
अङ्गुष्ठयुगले क्षिप्रं तर्जन्यौ संन्यसेदुभौ ॥ ५६ ॥
कुण्डलाकारसंश्लिष्टौ तृतीये पर्वमाश्रयेत् ।
एषा अर्थकरी मुद्रा द्वितीया कथिता जिनैः ।
शत्रूणां नाशयेत् क्षिप्रं हृदयांसि प्रदोषिणाम् ॥ ५७ ॥
तृतीयं मुद्रं प्रवक्ष्यामि मञ्जुघोष शृणोहि ताम् ।
नाम्ना शल्यहरी दिव्या सर्वशल्यविनाशिनी ।
सर्वत्र योजिता मुद्रा सर्वव्याधिचिकित्सकी ॥ ५८ ॥
विषशस्त्रकृतां दोषां जलपावकसंभवाम् ।
अनिलोद्भवदोषांश्च दुष्टसत्त्वगरप्रदाम् ॥ ५९ ॥
क्रव्यादां मानुषांश्चापि सविषां स्थावरजङ्गमाम् ।
यच्च देहगतां शल्यां नारीणां प्रसवात्मिनाम् ॥ ६० ॥
संसाराभिरतां चान्यां प्रणिनां दोषपीडिताम् ।
सर्वनेतास्तथा शल्याः विशल्यकरणी ह्ययम् ॥ ६१ ॥
एष मुद्रा महामुद्रा स्मरिता सर्वजन्तुभिः ।
विशल्या सुखिता क्षिप्रं भवते नात्र संशयः ॥ ६२ ॥
नाममात्रेण ते मर्त्या मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्ता विचरन्ते महीतले ॥ ६३ ॥
पूर्ववच्चौक्षसमाचारो शुचिर्वस्त्रशुची तदा ।
बध्नीयान्मुद्रवरं श्रेष्ठं तृतीयं पापनाशनम् ॥ ६४ ॥
उभौ हस्तौ समायोज्य विपरीताकारसंभवाम् ।
समौ व्यक्तौ अञ्जल्याकारौ हृदयस्थाने तु तं न्यसेत् ॥ ६५ ॥
एष मुद्रा महामुद्रा सर्वानर्थनिवारणी ।
यं बद्ध्वा जापिनः सर्वे नियतं बोधिपरायणाः ॥ ६६ ॥
चतुर्थी तु महामुद्रां महायक्षीं तमादिशेत् ।
महाप्रभावा विज्ञेया सर्वमन्त्रेषु जापिनाम् ॥ ६७ ॥
अत्र यक्षगणाः सर्वे यक्षिण्यश्च महर्द्धिकाः । G 497
मन्त्रदेवत सर्वेषु उत्तमाधममध्यमाः ।
सर्वसत्त्वैस्तु संपूज्या मुद्रेयं संप्रगीयते ॥ ६८ ॥
आदौ बद्ध्वा जपेन्मन्त्रं होमसाधनकर्मसु ।
सर्वत्र योजिता पुण्या सर्वमन्त्राणि साधयेत् ॥ ६९ ॥

वज्रपाणिस्तथा मान्त्रः सर्वमुद्रेश्वरी ह्ययम् ।
पठिता लोकनाथैस्तु पुरा ज्येष्ठैर्ह्यतीतकैः ॥ ७० ॥

तथैव शुचिनो भूत्वा स्थित्वा उदङ्मुखस्तदा ।
बध्नीयान्मुद्रवरे श्रेष्ठे सर्वकर्मेषु जापिनः ।
दमनार्थं सर्वभूतानाम् .... ॥ ७१ ॥

यथायं कुरुते क्षिप्रं यः सत्त्वाचेष्टितं भुवि ।
उभौ हस्तौ तदा न्यस्य संपुटाकारवेष्टितौ ॥ ७२ ॥

कुर्यात् त्रिसूचिकाकारं अङ्गुष्ठौ कन्यसमध्यमौ ।
अन्योन्यसंश्लिष्टौ चतुर्भिश्चाप्यथ नामितौ ॥ ७३ ॥

कुर्यान्मुद्रवरं ह्युक्तं शिरःस्थाने तु संस्थितम् ।
यं दृष्ट्वा सर्वभूता वै विद्रवन्ति न संशयः ॥ ७४ ॥

पञ्चमी तु महामुद्रा शृणु त्वं मञ्जुरवः सदा ।
नाम्ना त्रिसमया चैव महापुण्यतमा शिवा ॥ ७५ ॥

दुर्दान्तदमनी नित्यं सर्वसत्त्वार्थसाधनी ।
घोररूपी महेशाक्षा कालरात्रिसमप्रभा ॥ ७६ ॥

कृतान्तरूपिणी भीमा यमस्यापि भयानिका ।
चण्डा च चण्डरूपीति दुःप्रेक्षा दुःसहा सदा ॥ ७७ ॥

रुद्रवासवयक्षेषां राक्षसग्रहमातराम् ।
देवाननुसरांश्चैव मन्त्रमुख्यां महर्द्धिकाम् ॥ ७८ ॥

सर्वसत्त्वां तथा नित्यं दुर्दान्तदमकी हिता ।
अकालमृत्युविनाशाय मृत्युनाशाय वै हिता ॥ ७९ ॥

G 498 सृष्टा सर्वबुद्धैस्तु कृतान्तस्यापि भयावहा ।
यं बद्ध्वा पुरुषा नित्यं समयज्ञा भवन्ति ह ॥ ८० ॥

ये च मन्त्राश्रिता नित्यं तेऽपि मुक्ता जपे रता ।
तेषां सिध्यन्ति मन्त्रा वै अयत्नेनैव देहिनाम् ॥ ८१ ॥

अजापिनोऽपि भवेज्जापी अशुचिः शुचिनो भवेत् ।
संयुक्तः क्रोधराजेन यमान्तेनेह मुद्रया ॥ ८२ ॥

सर्वकर्मकरा ह्येषा संयुक्ता तत्त्वदर्शिभिः ।
सर्वविघ्नविनाशार्थं सर्वव्याधिचिकित्सना ॥ ८३ ॥

सर्वसत्त्वार्थसंभारा सर्वदुष्टनिवारणा ।
सर्वासां पूरणार्थाय विहिता मुनिवरैः पुरा ॥ ८४ ॥

एष मुद्रा हिता लोके समयभ्रंशाच्च पूरणी ।
बद्ध्वा तु मुद्रवरं श्रेष्ठं समयज्ञस्तत्क्षणाद् भवेत् ॥ ८५ ॥
सर्वेषां चैव मन्त्राणां लौकिकानां च ततोत्तमात् ।
प्रविष्टो मण्डलो ज्ञेयः मुद्रा मन्त्रेण ईरितः ॥ ८६ ॥
तथैव शुचिनो भूत्वा पूर्ववत् सर्वकर्मसु ।
त्रिसूच्याकार तथा वज्रं अङ्गुलीभिः समाचरेत् ॥ ८७ ॥
ज्येष्ठमध्यम अङ्गुल्यौ अङ्गुष्ठैश्च सता न्यसेत् ।
मूर्ध्नि स्थाने ततः कृत्वा अपसव्येन भ्रामयेत् ।
एष मुद्रवरा श्रेष्ठा प्रयुक्तः सर्वकर्मसु ॥ ८८ ॥
एता पञ्च महामुद्रा लोकनाथैस्तु भाषिता ।
नियतं पुरुषवरा बद्ध्वा संबोध्यग्रं स्पृशन्ति ह ॥ ८९ ॥
सर्वासां पूरयत्येते जापिनां मनसोद्भवाम् ।
सर्वतथ्यं यथाभूतं दर्शयन्ति यथेप्सितम् ॥ ९० ॥
अपरे मुद्रवरा श्रेष्ठा पञ्च चैव प्रकाशिता ।
शिरः वक्त्रोऽथ गात्रं च उत्पलं कवचं तथा ।
एते मुद्रवरा दिव्या मञ्जुघोषस्य धीमतः ॥ ९१ ॥
पुरा लोकवरैर्मुख्यैः कथिता तत्त्वदर्शिभिः । G 499
अहं च मञ्जुरवं वक्ष्ये कथ्यमानं निबोध्यताम् ॥ ९२ ॥
शृणुष्वैकमना नित्यं मुद्रा मुद्रवरोत्तमाम् ।
पूर्ववच्चौक्षसमाचारः स्थित्वा धातुवराग्रतः ॥ ९३ ॥
बध्नीयात् करपुटे नित्यं मुद्रां पञ्चार्थसंज्ञिकाम् ।
उभे करपुटाग्रे तु कुड्मलाकारकारिते ॥ ९४ ॥
दद्युः शिरवरे नित्यं शिरमुद्रेति संज्ञितम् ।
यथैवोत्पलमुद्रा तु न्यस्तः दूरवरे सदा ॥ ९५ ॥
सा च सर्वतः क्षिप्ता गात्रमुद्रा विधीयते ।
स चैव कुतो ज्ञेया वक्त्रमुद्रा तु सा भवेत् ॥ ९६ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य नाभिस्थाने तु संन्यसेत् ।
ईषि तर्जन्याङ्गुल्यनाभिमात्मनः संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥
सा भवेत् कवचमुद्रा तु आत्मरक्षा तु सा भवेत् ।
सर्वत्र योजिता ह्येते सफला सर्वार्थसाधिका ॥ ९८ ॥
एते मुद्रा महामुद्रा मङ्गल्या अघनाशना ।
जापिभिः सर्वकालं तु प्रयोक्तव्याः सफला हिताः ॥ ९९ ॥

महावीर्या महापुण्या सर्वानर्थनिवारिकाः ।
ये बद्धा पुरुषा नित्यं नियतं बोधिपरायणाः ॥ १०० ॥
अपरे पञ्च महामुद्रा लोकनाथस्य तायिनः ।
मुनिने शाक्यसिंहाय तथा रत्नशिखे गुरौ ॥ १०१ ॥
सुपुष्पाय सुकेशाय तथा सुमनसोरवे ।
संकुसुमाय च बुद्धाय तथा पद्मोत्तरे वरे ॥ १०२ ॥
संपूर्णाय सुनेत्राय शुद्धा चैव जगद्गुरोः ।
पितामहाय चैव मुक्ताय जगद्वराम्बरमुक्तये ॥ १०३ ॥
एतेषानां च बुद्धानामन्येषां च महात्मनाम् ।
अतीतानागता सत्त्वां वर्तमानां स्वयंभुवाम् ॥ १०४ ॥
G 500 सर्वेषानां च बुद्धानां मूर्ध्नि संभूतिलक्षणा ।
महाप्रभावा महामुद्रा समन्ताज्ज्वालमालिनः ॥ १०५ ॥
उष्णीषा इति विख्याता धातुसगाल्ये ।
चक्रवर्ती महापुण्यो मङ्गल्यो मघनाशना ॥ १०६ ॥
सर्वेषां च विद्यानां विद्याराजः स्मृतः प्रभुः ।
एकाक्षरसंयुक्तः मन्त्रो सुगतमूर्धजः ॥ १०७ ॥
मुद्रो तस्य विदो ज्ञेयो प्रभुरेकाक्षरस्य तु ।
चक्रवर्ती जिनकुले जात मुद्रः परमेश्वरः ॥ १०८ ॥
उभौ हस्तौ समाश्लिष्य संपुटाकारचिह्नितौ ।
मुष्टियोगेन बद्धा वै मध्याङ्गुल्यौ सुसूचितौ ॥ १०९ ॥
ईषित संकोच्यवत्कृत्वा कुण्डलाकारदर्शितौ ।
एष सर्वत्रगे मुद्रा सर्वमन्त्रेश्वरो विदो ॥ ११० ॥
मूर्धानं देवतं कृत्वा सुषिराकारकुड्मलम् ।
ईषिन्नामिततर्जन्यौ कन्यसं तु सुपूजितौ ॥ १११
एष मुद्रवरः श्रेष्ठः तेजोराशे तु कथ्यते ।
तदेव संपुटं चाग्रया छत्राकारसंज्ञकम् ॥ ११२ ॥
विकास्याङ्गुली सर्वां सितातपत्रेति संज्ञितम् ।
जयोष्णीषं हितं देवं हि मध्याङ्गुल्यौ सुसूचितौ ॥ ११३ ॥
तदेव विसारितौ चाग्रे पाणिभिः सर्वतोगतैः ।
उष्णीषसंभवा ज्ञेया सर्वत्रार्थदर्शिभिः ॥ ११४ ॥
मुनिमूर्धजसंभूता मुद्रा अग्रा प्रगीयते ।
पञ्चमा तु भवेत् सा तु सर्वमुष्णीषसंभवा ॥ ११५ ॥

अनेन वै सर्वबुद्धानां यावन्तमुष्णीषमूर्धजाम् ।
सर्वे ते च समायान्ति सर्वकर्मेषु योजिता ॥ ११६ ॥
सर्वे मुनिवरैर्मुद्रा ये गीता भुवनत्रये ।
सर्वेषां तु मुद्राणां मुद्रेयं परमेश्वरी ॥ ११७ ॥
अनेनावाहयेन्मन्त्रां अनेनैव विसर्जयेत् । G 501
अनेन सर्वकर्माणि कुर्यात् सर्वत्र जापिनः ॥ ११८ ॥
एते पञ्च महामुद्रा पुरा गीता मुनिवरैः ।
सर्वकर्मार्थयुक्ता वै सर्वमुष्णीषसाधिका ॥ ११९ ॥
यावन्तो मुनिवरैः गीता उष्णीषा भुवनत्रये ।
सर्वेषां तु सर्वत्र इमे पञ्चार्थपूरणा ॥ १२० ॥
सर्वमुष्णीषतो ज्ञेया मुद्रा वै च असंख्यका ।
तेषां पञ्च वरा प्रोक्ता सर्वमुष्णीषसाधनी ॥ १२१ ॥
अवलोकितमुद्रस्य पञ्च वैते सुमुद्रकाः ।
प्रकृष्टा पद्मकुले श्रेष्ठा मुद्रे ते भुवि मण्डले ॥ १२२ ॥
उष्णीषं च शिरोवक्त्रपद्ममुद्रा च कथ्यते ।
महाकरुणजा देवी तारा भवति पञ्चमी ॥ १२३ ॥
पूर्वं चौक्षसमाचारः धौतवस्त्रः सुजप्तधीः ।
पाणिना शिरसा मृश्य ऊर्ध्वहस्तो भवेन्नरः ॥ १२४ ॥
वामपाणितले लेख्यां मुष्टियोगेन वेष्टयेत् ।
एष उष्णीषमुद्रोऽयं अवलोकितमूर्धजाम् ॥ १२५ ॥
तदेव शिखरे दत्त्वा शिरमुद्रा प्रगीयते ।
तदेव संकुचितौ चापि नाभिदेशे प्रतिष्ठितौ ॥ १२६ ॥
विकास्य अङ्गुली सर्वां पद्ममुद्रेति सा विदोः ।
उपरिष्टादेव वक्त्रान्ते हस्तौ तौ न समाश्रिते ॥ १२७ ॥
अन्योन्यमिश्रितौ हस्तौ विरलाङ्गुलिमाश्रितौ ।
तदेव वक्त्रमुद्रा तु पद्मकेतोऽथ गीयते ॥ १२८ ॥
या तु पद्मध्वजे मुद्रा नागलोके प्रकथ्यते ।
स भवेन्मुष्टियोगेन उभौ हस्तौ समाश्रितौ ॥ १२९ ॥
उभौ तर्जन्यतां चोर्ध्वौ सूचीभूतौ सुचिह्नितौ ।
अङ्गुष्ठपीडितौ श्रेष्ठौ तारामुद्रेति कथ्यते ॥ १३० ॥
एषा मुद्रवरा श्रेष्ठा करुणा पद्मध्वजे विदोः । G 502
इत्येवं पञ्च महामुद्रा कथिता पद्मालये सदा ॥ १३१ ॥

बोधिसत्त्वस्य मुख्ये ता लोकेशस्य महात्मने ।
अत्र पद्मकुले भवन्ति बन्धं सर्वकर्मसु ॥ १३२ ॥
मन्त्रनाथेश्वरो ये च विद्या देवतलौकिका ।
सर्वे ते अत्र वै मुद्रे मुद्रा यान्ति सुमुद्रिता ॥ १३३ ॥
ये च यक्षेश्वरा गीता वज्रपाणिमहर्द्धिका ।
महामन्त्रार्थरौद्राश्च क्रोधप्राणहरा तथा ॥ १३४ ॥
ये चान्ये लौकिका मुख्या मन्त्रयुक्ताश्च देवता ।
सर्वे ते च समायान्ति मुद्रैरेतैः सुमुद्रिता ॥ १३५ ॥
एते मुद्रा महामुद्रा पवित्रा पापनाशना ।
यं बद्ध्वा जापिनः सर्वे क्षिप्रमायान्ति क्षिप्रतः ॥ १३६ ॥
मुक्ता ताथागती मुद्रा अन्येषां परमेश्वरी ।
अवलोकितनाथस्य सर्वव्याधिचिकित्सने ॥ १३७ ॥
मुद्रैतौ पञ्च महाभोगा विचरन्ति महीतले ।
स्त्रीरूपधारिणो भूत्वा सर्वसत्त्वार्थयोजिता ॥ १३८ ॥
यं बद्ध्वा पुरुषा प्राज्ञ नियतं बोधिपरायणा ।
अपरा पञ्च महामुद्रा वज्रपाणि महर्द्धिका ॥ १३९ ॥
य एष वज्रेश्वरः श्रीमां सर्वमन्त्रेश्वरः प्रभुः ।
दशभूम्यपतिः श्रीमां सर्वानर्थनिवारकः ॥ १४० ॥
महाभयप्रदो चण्डः दुष्टसत्त्वनिवारणः ।
दुर्दान्तदमको धीमां दक्षः सत्त्वार्थसिद्धिषु ॥ १४१ ॥
यक्षरूपेण सत्त्वानां आत्मना चेष्टिते भुवि ।
सत्त्वार्थक्रियायुक्तः धर्मार्थमवतारयेद् ॥ १४२ ॥
बोधिसंभारमर्थाय विचेरुर्यक्षरूपिणः ।
ये ते सत्त्वा हितालोके यक्षिण्या सह मोहिता ॥ १४३ ॥
G 503 तेषां सिद्धिर्न भवेन्मन्त्रां वाचादुश्चरितैरिताम् ।
बोधिसत्त्वो महापुण्यः बहुरूपी महर्द्धिकः ॥ १४४ ॥
प्रदोष्य चित्तं मन्त्रेशो कुतः सिध्यन्ति मानवाः ।
मुद्रैता पञ्च वरा प्रोक्ता बुद्धैश्चापि महर्द्धिका ॥ १४५ ॥
वज्रपाणिर्महापुण्या तां च क्षिप्रं सुयोजयेत् ।
तथैव हस्तावुद्वर्त्य श्वेतचन्दनकुङ्कुमैः ॥ १४६ ॥
तथैव संपुटाकारौ कुड्मलाकारवेष्टितौ ।
शिरःस्थाने तथान्यस्तौ....चापि सुस्थितौ ॥ १४७ ॥

सा तु वज्रशिरा ज्ञेया महामुद्रा हिता विदोः ।
यक्षसेनापतेर्मुद्रा द्वितीया भवति मूर्धजा ॥ १४८ ॥
उष्णीषमुद्रा हिताल्लोके उष्णीषं यक्षपतेर्हितम् ।
तदेव वज्रं शिरामुद्रा ऊर्ध्वमञ्जलिस्थापिताम् ।
एष मुद्रा महामुद्रा उष्णीषेति प्रगीयते ॥ १४९ ॥
तृतीया वज्रोद्भवा नाम ललाटस्थाने तु सा भवेत् ।
संन्यस्ताञ्जलिसंपूर्णा भ्रुवौ मध्येष्वनामिकौ ।
एषा वज्रोद्भवा नाम वज्रपाणेऽर्थसाधिका ॥ १५० ॥
चतुर्थी तु महामुद्रा वज्रवक्रेति गीयते ।
उत्तानौ हस्ततलौ न्यस्य वेणिकाकारसंभवौ ॥ १५१ ॥
वक्षःस्थाने तथान्यस्य मध्याङ्गुल्यां सुसूचितौ ।
एषा मुद्रा महामुद्रा वरायक्षवरे हिता ॥ १५२ ॥
सर्ववज्रालया च सा ।........
पञ्च मात्रा महामुद्रा वज्रपाणि महर्द्धिका ॥ १५३ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य नाभिस्थाने तु कारयेत् ।
तर्जन्यां कुञ्चितौ कृत्वा अङ्गुष्ठाग्रे तु नामयेत् ॥ १५४ ॥
तृतीये पर्वमाश्लिष्य कन्यसौ च सुसंस्थितौ ।
बद्ध्वा च वेणिकाकारां शेषैरङ्गुलिभिस्तदा ॥ १५५ ॥
एषा वज्रालया नाम महामुद्रा प्रगीयते । G 504
अत्रैव सर्वमुद्रा तु लौकिका ये च वज्रिणे ॥ १५६ ॥
शैवाः शाक्रकाश्चापि रिषीणां च महर्द्धिका हिता ।
सा वरा मतङ्गिनो ह्यग्रा मुद्रा प्रोक्ता महात्मभिः ॥ १५७ ॥
यक्षराक्षसप्रेतैश्च कूष्माण्डैः कटपूतनैः ।
ये तु मुद्रा वरा प्रोक्ता विष्ण्वीन्द्रैश्च वनाह्वयैः ॥ १५८ ॥
ईशानमातरैर्लोकग्रहैश्चापि........।
भास्करेन्दुविवस्वाक्षैर्वसवश्चापि सुपूजितैः रक्षात्मकैः ॥ १५९ ॥
सृष्टा मुद्रवरा ये तु सर्वभूतगणैः सदा ।
सर्वे चैव समायान्ति मुद्रेऽस्मिं वज्रमालये ॥ १६० ॥
प्रथिता मुद्रवरा ह्यग्रा कुलेऽस्मिं वज्रमाह्वये ।
मुक्ता तथागतीं मुद्रां अवलोकीशस्यापि महात्मनः ॥ १६१ ॥
मुद्रा ह्येके तु मुक्ता वै अन्येषां प्रभुरिष्यते ।
एषा मुद्रा महामुद्रा यक्षसेनापतेर्विदोः ॥ १६२ ॥

यं बद्ध्वा पुरुषा नियतं सर्वे बोधिपरायणाः ।
एषा मुद्रा वरः श्रेष्ठः परमाहुस्तथागताः ॥ १६३ ॥
इत्येता पञ्च महामुद्रा वज्रपाणेर्यशस्विनः ।
जापिभिः सर्वकालं तु स्मर्तव्या च महाभये ॥ १६४ ॥
आशु नश्यन्ति भूता वै क्रव्यादा पिशिताशिना ।
यक्षराक्षसप्रेतांसि कूष्माण्डाः कटपूतना ॥ १६५ ॥
देवगन्धर्वमनुजाः किन्नराश्च ससिद्धकाः ।
ग्रहमुख्यवरा गरुडा मातराश्च महर्द्धिकाः ॥ १६६ ॥
येऽपि ते लोकमुख्याश्च ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
सर्वसत्त्वाश्च वै लोके येषु सर्वत्र माश्रिताः ॥ १६७ ॥
सर्वे ते दृष्टमात्रं वै विद्रवन्ति न संशयः ।
एते मुद्रा जिनैर्ह्यासी वज्रभृते प्रभोः ।
G 505 मन्त्रनाथस्य यक्षेशे लोकीशस्यापि महात्मने ॥ १६८ ॥
तस्माच्च जापिभिः सर्वैः नियतं सिद्धिलिप्सुभिः ।
स्मर्तव्या जपकाले तु सर्वमन्त्रेषु सिद्धिदा ।
योऽसौ किसलयेत्याहुः मुद्रामादौ प्रगीतवाम् ॥ १६९ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य उरःस्थाने न्यसेद् बुधः ।
तामादौ वेणिकां कृत्वा अङ्गुलीभिः समन्ततः ॥ १७० ॥
सा विद्या किसलये मुद्रा लौकिकां मन्त्रदेवताम् ।
तामादौ योजयेत् क्षिप्रं क्षुद्रकर्मेषु धीमताम् ॥ १७१ ॥
ज्वररोगगता सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ।
सैव सुमनसा ज्ञेया कन्यसाङ्गुलिनामितौ ॥ १७२ ॥
पटही तु भवेत् सा तु मध्यमाङ्गुलिनामितौ ।
कन्दर्पी च भवेत् सा च उभौ अङ्गुष्ठमुच्छ्रितौ ।
घटखर्परिका ज्ञेया अनामिकाग्रसुनामितौ ॥ १७३ ॥
तथैव कुड्मलं कृत्वा हस्ताग्रौ च सुभूषितौ ।
उत्पलाकारचिह्नं तु मुद्रमुत्पलमुच्यते ॥ १७४ ॥
विकासितोभयौ हस्तौ अङ्गुलीभिः समन्ततः ।
एषा वै पद्ममुद्रा तु भवे ज्योत्स्ना सनामितौ ॥ १७५ ॥
तथैव योजितां सर्वां अङ्गुल्याग्राग्रकारिता ।
एषा सुपर्णिने मुद्रा सुपर्णीति प्रगीयते ॥ १७६ ॥

तदेव लं(सं)पुटाकारं विपर्यस्ताकारचेष्टितम् ।
सा भवेद् यमलमुद्रा तु गरुत्मस्यापि महात्मने ॥ १७७ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य मुष्टियोगेन योजितौ ।
उभयाङ्गुष्ठमध्यस्थौ लिङ्गमुद्रेति गीयते ॥ १७८ ॥
उत्थिताङ्गुष्ठमध्यस्थौ लिङ्गमुद्रेति गीयते ।
उत्थिताङ्गुष्ठमध्यस्थौ तदेवं शंखमिष्यते ॥ १७९ ॥
तदेव हस्तौ विस्रज्य जया भवति विश्रुता ।
विजया भवते मुद्रा कन्यसाङ्गुलिवेष्टितौ ।
अनामिकाभिः समायुक्ता अजिता भवति पूरणी ॥ १८० ॥ G 506
विसृज्य हस्तौ संयुक्तौ वामहस्तेन मीलयेत् ।
अङ्गुष्ठाग्रमधो नाम्य मुष्टिं बद्ध्वेह पण्डितः ।
एषापराजिता ज्ञेया मुद्रेयं च सुपूजिता ॥ १८१ ॥
चतुः कुमार्यो विधि ज्ञेया भगिन्येषु प्रकीर्तिता ।
तुम्बरुस्त्वेष विख्यातः ज्येष्ठभ्राता प्रकल्प्यते ॥ १८२ ॥
नौयानसमाश्रिता ह्येते अम्भोधेस्तु निवासिनः ।
विचरन्ति इमं स्थाने महापुण्यमहर्द्धिकाः ॥ १८३ ॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां सृष्टा ब्रह्मविदो विदे ।
सर्वत्र पूजिता ह्येता गुह्यमन्त्रैस्तु योजिता ॥ १८४ ॥
अमोघा सिद्धिमेतांसि सर्वकर्मेषु योजिता ।
क्षिप्रमर्थकराः सिद्धा मङ्गल्या मघनाशनाः ॥ १८५ ॥
शुचिना शुचिकर्मेषु साधनीया तयोत्तमैः ।
उत्थितं ज्वलनं शान्तं खचरं कायि सिद्धये ।
मध्यं समध्यकर्मेषु अशौचं कश्मलादिषु ॥ १८६ ॥
ये चापि पापकर्मा वै नित्योच्छिष्टाश्च देहिनाम् ।
तेषां सिद्ध्यन्त्ययत्नेन क्षुद्रकर्माणि वै सदा ॥ १८७ ॥
तथैव हस्तौ संयम्य नाभिदेशे समानयेत् ।
मध्यमाङ्गुल्यतः सूच्या वेणिकाकार वेष्टयेत् ।
सुमेखला च सा मुद्रा उद्वेष्टा भवति मेखला ॥ १८८ ॥
तमेव मधतलौ न्यस्तौ मुद्रा भवति संपुटा ।
सैवमुच्छ्रिता ग्रीवे श्रीसंपुटमुच्यते ॥ १८९ ॥
नाभिस्थाने तदा न्यस्य अपसव्येन भ्रामयेद् ।
रजनी मुद्रवरा ह्येषा दुष्टसत्त्वनिवारणी ॥ १९० ॥

दक्षिणे करमुद्यम्य मुष्टियोगेन माश्रयेत् ।
मुद्रा मुष्टिवरेत्याहुः सर्वमन्त्राणि चूर्णनी ॥ १९१ ॥
G 507 सैवाङ्गुलिमुत्सृज्य उभौ हस्तौ प्रयोजिता ।
मुष्टिमुद्रा वरेत्याहुः पिशिताशननाशनी ॥ १९२ ॥
सा तु संकुचिता ज्ञेया अङ्गुल्याग्रौ सुकुञ्चितौ ।
मुद्रा सुकुन्ता विज्ञेया कुन्ता चैव प्रसारितैः ॥ १९३ ॥
तारा सुतारा विधिज्ञेया एकरूपौ उभौ भवेत् ।
उत्पलाकारसंन्यस्ता तर्जनीभिः सुसंहता ॥ १९४ ॥
एकसूचिकमित्येव संपुटाकारवेष्टितौ ।
तदेव प्रसारिता हस्तौ तारा भवति घुष्यते ॥ १९५ ॥
तदेव हस्तौ संन्यस्य अञ्जल्याकारकारितौ ।
तर्जन्या मिश्रितौ श्रेष्ठौ तृतीये पर्वणि स्थिते ॥ १९६ ॥
अङ्गुष्ठौ चान्ते मुद्रा भवति लोचना ।
तदेवाङ्गुलिमुत्सृज्य तर्जन्यौ संप्रयोजितौ ॥ १९७ ॥
तदेव विहिता मुद्रा मुद्रा मामक्या संप्रयोजिता ।
एवला मुद्रवरेत्याहु मध्यमाङ्गुल्यैः सुनामितैः ॥ १९८ ॥
श्वेता या अभ्रमुद्रा वै करैश्चात्र प्रसारितैः ।
पण्डरा तु भवेन्मुद्रा मुष्टिभिः संप्रपीडितैः ।
महाप्रभावा महापुण्या तर्जन्यावुत्क्षिप्तावुभौ ॥ १९९ ॥
तदेव हस्तौ संमिश्र संपुटाकारवेष्टितौ ।
तर्जनीभिः ततो कृत्वा नेत्राकारं तु पीडयेत् ।
भृकुटी मुद्रवरा ख्याता महाभयहरी सदा ॥ २०० ॥
इत्येते चाष्ट मुद्रा वै कथिता जिनवरैः पुरा ।
महाप्रभावा महापुण्या महेशाख्या महर्द्धिका ॥ २०१ ॥
सर्वमुद्रेषु सर्वत्र मन्त्रैश्चापि विशेषतः ।
सर्वत्र पूजिता ह्येते स्मर्तव्यार्थफलप्रदा ॥ २०२ ॥
महारक्षा पवित्राश्च मङ्गल्य मघनाशनाः ।
सर्वत्र पूजिता बुद्धैः सर्वमन्त्रांश्च साधयेत् ॥ २०३ ॥
G 508 तारा भृकुटी चैव श्वेता पण्डरवासिनी ।
मामकी लोचना चैव सुतारा तारवर्तिनी ॥ २०४ ॥
इत्येते च महामुद्रा पठिता लोकतत्त्विभिः ।
एष रक्षाविधिः प्रोक्तः महारक्षेषु कथ्यते ॥ २०५ ॥

महापापहरी श्वेता महामुद्रा स्वयंभुवे ।
लोकीशस्य च वीरस्य महायक्षपतेस्तथा ॥ २०६ ॥
एते मुद्रा महापुण्या नियता सिद्धिहेतवः ।
कथिता लोकमुख्यैश्च संबुद्धैश्च यशस्विभिः ॥ २०७ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य वेणिकाकारसंभवौ ।
संपीडितौ विपर्यस्तौ मुद्रा भवति संकुला ॥ २०८ ॥
तथैव सूचिकाग्रं तु अङ्कुशस्याहु वर्णितः ।
तथैव करपुटोऽग्रं वै उन्ननाम्यो शिरःस्थितौ ॥ २०९ ॥
विकास्य अङ्गुलीं सर्वां छत्रा भवति शोभना ।
संयम्य मुष्टिमाकारौ रात्री भवति देवता ॥ २१० ॥
तामसी विसृतैर्नित्यं मुद्रा भवति तत्त्वतः ।
तथैव अङ्गुलां वेष्टौ ऊर्ध्वमङ्गुष्ठनामितौ ॥ २११ ॥
विपनिनीशाना सृष्टा रेखमुद्रा यशस्विभिः ।
मनसा नामितौ ज्ञेया महामानसमुद्रितैः ॥ २१२ ॥
तथैव हस्तावुत्सृज्य एकहस्तेन मीलयेत् ।
तर्जन्यौ वेष्टयेन्मध्यां एषा सा गरुडध्वजा ॥ २१३ ॥
उभौ हस्तौ समायुक्तौ वेणिमाश्रित्य मध्यजौ ।
हंसमालेति मुद्रेयं नाम्ना सर्वत्र गीयते ॥ २१४ ॥
तदेव विसृतौ हस्तौ तृसूच्याकारवेष्टितौ ।
सा भवेत् वज्रमुद्रा तु मुद्रा श्रेष्ठतमा हिता ॥ २१५ ॥
प्रकृष्टा सर्वमुद्राणां वज्रपाणेः समाहिता ।
तदेव विसृताङ्गुल्यौ पद्ममाला तु सा भवेत् ।
ज्येष्ठा मुद्रवरा ख्याता पद्मकेतोः समा भवेत् ॥ २१६ ॥ G 509
एषा मुद्रवरा दिव्या महापुण्या महोद्भवा ।
प्रयुक्ता सर्वकर्मेषु सिद्धिमायान्ति देहिनाम् ।
भुवि मण्डलविख्याता प्रसिद्धा सर्वकर्मसु ॥ २१७ ॥
वक्रार्थवक्रिता ज्ञेया उभौ पाणितले समे ।
संन्यस्ताङ्गुलिमग्रे तु तर्जन्याङ्गुलिमुच्छ्रिता ॥ २१८ ॥
मुद्रा वक्रमिति ज्ञेया अर्द्धवक्रा तु कन्यसैः ।
समौ मुष्टितलौ ज्ञेयौ अङ्गुष्ठोत्तमनामितौ ॥ २१९ ॥
लोहितामुद्रमित्याहुः मध्यमानामितसुलोहिता ।
नीललोहितिका ज्ञेया मुद्रा रुद्रस्य मूर्धजा ॥ २२० ॥

महाप्रभावा विख्याता या मुद्रा भुवि मण्डले ।
सर्वविघ्नहरी देवी दुष्टसत्त्वनिवारणी ॥ २२१ ॥
सा मुद्रा कथ्यते लोके शृणुध्वं भूतिकांक्षिणः ।
तथैव हस्तौ संयम्य मुष्टिमादौ प्रकल्पयेत् ॥ २२२ ॥
विसृतौ मध्यमौ ज्ञेयौ ईषित् सङ्कुचिताथ सूचितौ ।
महामुद्रा इति ख्याता मुद्रा सा भयसूदनी ॥ २२३ ॥
तथैव सूच्याग्रौ तौ हस्तौ सुव्यक्तमीलितौ ।
एषा विष्णुमिति ख्याता मुद्रा सर्वत्र पूजिता ॥ २२४ ॥
ब्राह्मी तु भवे मुद्रा उभौ अङ्गुष्ठमिश्रितौ ।
तथैव कुड्मलाकारा मुद्रा वैन्द्रीति उच्यते ॥ २२५ ॥
सा भवेन्माहेश्वरी मुद्रा उभौ कन्यसमुच्छ्रितौ ।
तदेव हस्तावुत्सृज्य नृत्ययोगेन नामयेत् ॥ २२६ ॥
वामबाहुस्तदा नित्यं अग्रभागं प्रकल्प्यते ।
दक्षिणं भुजमाश्लिष्य तर्जन्याकारवेष्टितम् ॥ २२७ ॥
एषा वज्रधरा नित्यं वराहीति प्रकल्प्यते ।
तदेव विसृतौ बाहू नृत्ययोगेन कल्पितौ ॥ २२८ ॥
G 510 उभौ तर्जन्याकारतः क्षिप्तौ चर्चामुण्डि मुच्यते ।
स एव विसृताकारो उभौ पाणौ समाश्रितौ ॥ २२९ ॥
ऊर्ध्वमाश्रित्य गता दृष्टिः घोरा चामुण्डि मुच्यते ।
कौमारी तु भवेन्मुद्रा कार्त्तिकेयस्य महामही ॥ २३० ॥
तदेव हस्तौ विन्यस्य सूच्याग्रं तु मीलयेत् ।
विसृतैरङ्गुलीभिश्च इयं मुद्रा सर्वमातरी ॥ २३१ ॥
एषा सर्वमुद्राणां मातराणां तु महर्द्धिका ।
एतेन सर्वकर्मा वै बालिशानां तु कल्पयेत् ॥ २३२ ॥
सूतिकानां च नारिणां गर्भस्थानं च देहिनाम् ।
रक्षमोक्षणमुद्रेषु प्रेतव्यन्तरकश्मलैः ॥ २३३ ॥
मोक्षणार्थं तु कल्पीत ग्रहमातरनैर्ऋताम् ।
हितार्थं प्राणिनां लोके मुद्रा भवति सुखावहा ॥ २३४ ॥
श्रेयसः सर्वमन्त्राणां भूतानां प्रयुक्ता सुखदा हिता ।
क्षुद्रकर्मेषु सर्वत्र योजयेत् सर्वत्र जापिनः ॥ २३५ ॥
एते मुद्रा सदा मन्त्रैरेतैरेव प्रयोजयेत् ।
तथैव हस्तौ संन्यस्य खकुण्डलाभोगवेष्टितौ ॥ २३६ ॥

अङ्गुलीभिः समन्ताद् वै मुद्रा नागीति गीयते।
तथैव मङ्गुलिमध्यस्थौ सूच्याग्रं तु मीलितौ ॥ २३७ ॥
भवेन्नागमुखी मुद्रा प्रकृष्टा सर्वकर्मसु।
या सा मुद्रवरा ज्ञेया माला लोके प्रकल्पते ॥ २३८ ॥
तथैव हस्तौ संन्यस्य अङ्गुलीभिः समन्ततः।
वेणिकाकार बद्धा वै मुष्ट्याकारं तु कारयेत् ॥ २३९ ॥
तथैव संपुटाकारौ अङ्गुष्ठौ मध्यनामितौ।
सा भवेन्मालमुद्रा तु सर्वकर्मार्थसाधनी ॥ २४० ॥
तथैव मङ्गुलिभिर्नित्यं उच्छ्रितैः सप्तभिः सदा।
सा तु सप्तच्छदा मुद्रा त्रिषु लोकेषु गीयते ॥ २४१ ॥
एते मुद्रवरा ह्यग्रा यथोक्तास्ते दर्शिता पुरा। G 511
एतेषानां तु मुद्राणां निर्दिष्टा पूर्वविस्तराम् ॥ २४२ ॥
सर्वा ह्येकतमा ज्ञेया विधिनिर्दिष्टदर्शिता।
विस्तरार्थगता ह्येते विकल्पार्थाः सविस्तराः ॥ २४३ ॥
स्मृताः सर्वे भवेन्मुद्रा सर्वमुद्रैस्तु मुद्रिता।
मुद्रा चाष्टशता ज्ञेया उक्ता सर्वार्थसाधिका ॥ २४४ ॥
एक एव भवेत् तेषां यथासंख्यार्थपूरणी।
नृत्ययोगेन स्थित्वा वै ऊर्ध्वं पश्येज्जापिनः ॥ २४५ ॥
ललाटमङ्गुली न्यस्य तर्जन्या कन्यसान्विताम्।
कृत्वा वै नेत्रयोगेन स्थितकोऽञ्जलिना न्यसेत् ॥ २४६ ॥
सर्वत्रादर्शनी नाम मुद्रा चाष्टशतात्मिका।
अनेन मन्त्रा सिध्यन्ते यथोक्ता सर्वज्ञदर्शिना ॥ २४७ ॥
सर्वमुद्रास्तु अत्रैव प्रयोक्तव्या ह्यविकल्पतः।
यथोक्तमुद्रागणा ह्येष उक्तोऽयं मन्त्र समासतः ॥ २४८ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात्
सर्वतथागताचिन्त्यधर्मधातुमुद्रामुद्रिता त्रिचत्वारिंशतिमः
स्वचतुर्थो मुद्रापटलविसरः।

G 512

४६ महामुद्रापटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म--शृणु त्वं मञ्जुश्रीः पञ्चमसुद्रापटलविसरं त्वदीयं सर्वतथागतधर्मकोशानुप्रविष्टं परमगुह्यतमं धर्मधात्वसंख्येयाचिन्त्यमुद्रामुद्रितं सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टं परमरहस्यतमं सर्वलोकोत्तरोत्कृष्टतमं सर्वलौकिकानुचरितां मोक्षतमम् । कतमं च तत् ? भाषिष्येऽहम् । पूर्वं तथागतैः भाषितवन्तः ॥

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः पुनरपि उत्थायासनाद् भगवतः चरणयोर्निपत्य भगवन्तमेतदवोचत्--तत् साधु भगवां देशयतु सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टां सर्वसत्त्वानामर्थाय अस्माकं चानुकम्पामुपादाय महाप्रणिधानमहाभिहारमहाबोधिमण्डोपसंक्रमणचर्यापरिपूरणताय पञ्चमं महामुद्रापटलविसरम् । संक्षेपतः पञ्च चैव महामुद्राः । अपर्यन्ता च स्थितमुद्रां आह्वाननविसर्जनसर्वकर्मार्थसर्वमनोरथमाशापरिपूरणतायै सर्वमन्त्रतन्त्रमहामुद्रानुप्रवेशनतायै सर्वसत्त्वसंतोषणमहासमयसर्वमुद्रानुप्रवेशनतायै यस्येदानीं कालं मन्यसे इति ॥

एवमुक्तस्तु भगवता शाक्यसिंह नरोत्तम ।
मञ्जुप्रतिभो धीमां तूष्णीं तस्थौ तदान्तरे ॥ १ ॥
इयं वसुमती कृत्स्ना षड्विकारं प्रकम्पिरे ।
सर्वभूतगणा त्रस्ता क्षुभितं चापि क्षपालयाः ॥ २ ॥
तृधातुगतयः सत्त्वास्तत्क्षणादेव मागताः ।
दृष्ट्वा आगतां सत्त्वां चैव वाणि भाषितवान् परमः ॥ ३ ॥
शाक्यकुलजो दक्षः मुद्रां देशे तु तत्क्षणात् ।
यं बद्ध्वा पुरुषा प्राज्ञा नियतं बोधिपरायणाः ॥ ४ ॥
सर्वमन्त्राश्च सिद्ध्येयु सौगता ये च लौकिका ।
पञ्च चैव महामुद्रा बद्धा मुनिवरैः पुरा ॥ ५ ॥

G 513

अधुना शाक्यमुद्देक्ष्यः बद्ध्वैता तृभवालये ।
स्वयमेव भगवां शास्तु हस्तोत्तानतां कृथा ॥ ६ ॥
वेणिकाकारमावेष्ट्य मध्यमाङ्गुलि नामयेत् ।
कन्यसौ संस्पर्शयेद् धीमां उभा अङ्गुष्ठ उच्छ्रये ॥ ७ ॥
अङ्कुशमञ्जल्याकारं दर्शयेन्मञ्जुरवे हिताम् ।
एषा मुद्रा महामुद्रा सर्वबुद्धानुवर्णिनी ।
सर्वथा साधिता देवी पूर्णेति च गीयते ॥ ८ ॥
तदेव हस्तौ भ्रामयित्वा तु नाभिदेशे तु संन्यसेत् ।
आशासंपादिनीं क्षिप्रं महापुण्या हिता हि सा ।
मनोरथेति समाख्याता दुर्दान्तदमनी सदा ॥ ९ ॥

तदेव हस्तौ संन्यस्य मुष्टियोगेन वेष्टयेत् ।
उरःस्थाने सदा न्यस्या तृतीया भवति सुनिर्मला ॥ १० ॥
चतुर्थी तु भवेत् सा तु शिरःस्थाने सुमुद्रया ।
पञ्चमी तु भवे ज्येष्ठा मुक्ता सर्वगतां नु गुणान् ॥ ११ ॥
लोकधात्री तु सा ज्ञेया प्रसिद्धा सर्वकर्मसु ।
एष एव सदायोगः प्रयोक्तव्यः सर्वकर्मसु ॥ १२ ॥
आकृष्टावङ्गुलितर्जन्यौ आकृष्य वश्यता हिता ।
विक्षिप्तैर्विसर्जनं कुर्यात् मनसा मोक्ष एव तु ।
सर्वं दर्शयेत् क्षिप्रं सर्वकर्मार्थसाधयेदिति ॥ १३ ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात्
महायानवैपुल्यसूत्रात् चतुःचत्वारिंशतिमः
महामुद्रापटलविसरः परिसमात इति ॥



G 514

४७ चतुर्भगिनीमण्डलमनुप्रवेशसमयगुह्यतमपटलविसरः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य तं च महापर्षन्मण्डलं अनन्तव्यूहालंकारसर्वज्योतिप्रभास्वर विकुर्वाणानन्तगुह्यतमं सर्वगुह्यतमं सर्वमन्त्रानुचरितं नाम समाधिं समापद्यते । समनन्तरसमापन्नस्य भगवतः ऊर्णाकोशाद् रश्मयो निश्चरन्ति स्म । सर्वतश्च समन्ता दशसु दिक्षुरित्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् महतावभासेनावभास्य सर्वमन्त्रां संचोद्य पुनरपि भगवतः ऊर्णाकोशान्तर्हिता । समनन्तरान्तर्हिते रश्मिभिः चतुर्दिक्षु च अधश्चोर्ध्वं चत्वारः कुमार्यो भ्रातृसहिता तस्मिन्नेव महापर्षन्मण्डले अधः सुमेरुपर्वतराजसमीपे बुद्धाधिष्ठानेनाधिष्ठितोऽभूत् । संनिपतिता संनिषण्णा महाबोधिसत्त्वकुमारभूतं रिद्ध्या विक्रीडनसंदर्शनार्थं महामन्त्रचर्यानिर्हारार्थं सर्वलोकोत्तरलौकिकमंत्रचर्याक्रीडासमनुप्रवेशवशमाकर्षसमाश्वासनचर्यासमनुप्रवेशनार्थम् ॥

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिर्वज्रपाणिं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं तस्मिन्नेव पर्षदि संनिपतितम्, ईषिन्निरीक्ष्य सर्वं च बोधिसत्त्वगणम् ॥

अथ सा सर्वावती पर्षदिह महापृथिवी च देवतागणपरिवृता महाभूतैकमन्त्रालयं ओषध्यो महाज्योतींषि नागां संचाल्य प्रचलिता रणिता प्ररणिता क्षुभिता संप्रक्षुभिता । दक्षिणा दिगुन्नमति, उत्तरा दिगवनमति, पश्चिमदिगुन्नमति, पूर्वा दिगवनमति, अन्तादवनमति, मध्यादुन्नमति, मध्यादवनमति, अन्तादुन्नमति, महतस्य चावभासस्य लोके प्रादुर्भावोऽभूत् । अन्यानि चाप्रमेयानि असंख्येयाश्चर्याद्भुतानि प्रातिहार्याणि संदृश्यन्ते स्म । ताश्च देवसंघा निःप्रपंचमहतालम्बनज्ञानशान्तिपदं नाम समाधिं समापद्यते स्म यत्र शक्यं सर्वप्रत्येकबुद्धार्हत्त्वमहाबोधिसत्त्वैरपि ज्ञातुम् । कः पुनर्वादः समापद्येतुं अन्येषां सर्वलौकिकलोकोत्तराणां तीर्थायतनानां अभिभवनार्थं सर्वमन्त्रतन्त्रानुप्रवेशनार्थं सर्वविमोक्षधर्मपरिपूरणार्थं सर्वसत्त्वानां च

G 515

शान्तिपदमनुप्रापणार्थं सर्वभूतमनुकम्पाभूतकोटितथताचिन्त्यबोधिमण्डआसनमाक्रमणतिष्ठपदमनुप्रापणार्थं च भगवां शाक्यमुनिः ध्यायन्तः स्थितोऽभूत् ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो वज्रपाणिं बोधिसत्त्वं महायक्षसेनापति आमन्त्रयते स्म—भाष भाष त्वं भो जिनपुत्र सर्वमन्त्रचर्यानुप्रवेशं सर्वलौकिकमन्त्राणां सारभूततमं परमरहस्यं सर्वभूतसत्त्वानां समयानुप्रवेशं यथाशयमनोरथसर्वपरिपूरकम् । अनुज्ञातस्त्वं भो जिनपुत्र । सर्वबुद्धैर्भगवद्भिः अतीतानागतप्रत्युत्पन्नैस्तथागतमन्त्रकोशसर्वज्ञतापरिपूरणार्थं इह कल्पराजपटलविसरे सर्वविक्रीडालीलाचिन्त्याश्चर्याद्भुतविकुर्वणसंदर्शनार्थं सर्वज्ञज्ञानमुद्भावनार्थम् ॥

अथ खलु वज्रपाणिः बोधिसत्त्वो महासत्त्वः मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भो । धर्मधर सर्वतथागतानां समतानुरक्षणदक्षकथायास्यहं चतुःकुमारीणां भ्रातृसहितानां सरहस्यं पटविधान होमजापकालक्रियानियमः प्रतिमाविधानमण्डलसमय आह्वाननविसर्जनापूजनार्घदीपगन्धधूपमाल्य विलेपनचूर्णवस्त्र निवेदनध्वजपताकघण्टामालप्रदीपस्रग् विधि साधन

साध्योपायनियमक्रमः शान्तिकपौष्टिकाभिचारुक अन्तर्धानाकाशगमनपादप्रचारिकवशीकरणावेशनविद्वेषणोत्सादनशोषणमोहनस्तम्भनमारणविविधसत्त्वाकारकरणपीडनतर्जनभर्त्सनबहुपदापदकरणक्रियो मार्गसंदर्शनयथेष्टकर्मफलः बन्धनरोहणावन्ध्यकरणसर्वकर्ममन्त्रतन्त्रसाधनौपयिकेषु स्थानेषु नियोजनः सिद्धिपरिपूरणा । तच्छ्रूयतां भो जिनपुत्र ॥

अथ वज्रपाणिः श्रीमां प्रणिपत्य सुगतं विभुम् ।
उवाच मधुरां वाणीं···· शब्दार्थभूषिताम् ॥ १ ॥
अनेलां कर्णसुखां चैव मधुरार्थसुकूजिताम् ।
बह्वार्थकरीमिष्टां सर्वमन्त्रास्पदकरीं ब्रह्मस्वरनिनादिनीम् ॥ २ ॥
कलविङ्करुता घोषा रपष्टगम्भीरसंयमी ।
* * * * सूक्ष्मार्थतत्त्वावचोदनीम् ॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रेश्वरीं चैव वाचं भाषेऽथ वज्रधृक् ।
शृणोथ भूतगणाः सर्वे देवसंघा महर्द्धिका ॥ ४ ॥
वक्ष्यमाणां तथाकल्प सविस्तरं सर्वकर्मिकम् ।
चतुर्मूर्तिर्महौजस्कश्चतुर्दिक्षु समागमम् । G 516
चतुर्वर्णसमायुक्तं चतुरक्षरभूषितम् ॥ ५ ॥
चतुर्मन्त्रसमोपेतं स पुमां पञ्चमाश्रिताम् ।
चतुर्थगतिमाहात्म्यं चतुर्भूतसमागमम् ॥ ६ ॥
सभ्रातृपञ्चमं ज्येष्ठं महाभूताकाशमुद्भवम् ।
सर्वत्राप्रतिहतं श्रेष्ठ सर्वमन्त्रार्थसाधनम् ॥ ७ ॥
सर्वकर्मकरं पूज्यं ज्येष्ठं मङ्गल्यमघनाशनम् ।
प्रवृत्तं सर्वभूतानां मन्त्ररूपेण श्रेयसाम् ॥ ८ ॥
चतुःकुमार्येति विख्याता कुमारा पञ्चमात्मका ।
वाय्वम्बु ज्योतिषिं पृथिवीं खपञ्चमात्मकाम् ॥ ९ ॥
तेषां मन्त्ररूपिण्यां विपाको भवति देहिनाम् ।
पञ्चमो श्रेयसो मुख्यो भ्रातृरूपेण मन्त्रराट् ।
तेषां मन्त्रं प्रवक्ष्यामि अपराख्य शृणोथ मे ॥ १० ॥
अथ ते सर्वभूता वै प्रहृष्टमनसा अभूत् ।
निषण्णा धर्मतां ज्ञात्वा सौम्यचित्ता समाहिता ।
श्रोतुकामा हि वै सर्वो निश्चलायतलोचना ॥ ११ ॥
अथ मञ्जुवरः श्रीमां ऊर्ध्वेक्ष सुगतात्मजम् ।
वज्रपाणिं महायक्षं सर्वमन्त्रेश्वरालयम् ॥ १२ ॥

कृपावकृष्टहृदयो अपरोऽभूत् तदन्तरे ।
....सर्वबुद्धा वै प्रत्येकार्हश्श्रावका ॥ १३ ॥
बोधिसत्त्वा महासत्त्वा दशभूमिसमाश्रिता ।
सर्वसत्त्वा तथा लोके मुख्या अग्रतमाश्च ये ॥ १४ ॥
निषण्णा सर्वतः सर्वे गतिपश्च सुयोजिताः ।
जन्मिनो वरमुख्याश्च पराः परपूजिता ॥ १५ ॥
भवाग्रा ह्यावीचिपर्यन्तां अनन्तां धातुमाश्रिताम् ।
त्रिजन्माध्यक्षपर्यन्ता दशभूमाधिपा परा ।
G 517 श्रोतुकामा हि वै सर्वे निपेतुस्तं समागमम् ॥ १६ ॥
अथ वज्रधराध्यक्षो विदित्वा सर्वमागतम् ।
सत्त्वां बोधिसत्त्वांश्च सर्वमन्त्रेश्वरालयाम् ।
सुरज्येष्ठां तथा देवां दशभूम्येश्वराम् ॥ १७ ॥
सर्वसत्त्वां विदित्वैनां प्रसन्नां बुद्धशासने ।
मन्त्रं प्रत्याहरेद्धीमां मन्त्रनाथेश्वरस्तदा ॥ १८ ॥

नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् अचिन्त्याद्भुतरूपिणाम् । ॐ तुरु तुरु हुलु हुलु मा विलम्ब समयमनुस्मर मम कार्यं साधय हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा ॥ सर्वकर्मिकोऽयं मन्त्रः । हृदयोऽयं सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां सर्वलौकिकलोकोत्तराणाम् । सर्वव्याधिराजाधिपतीनां च मूलमन्त्रोऽयम्, अनेन सर्वकर्माणि कारयेत् ॥

सर्वद्रव्याणि साधयेत् सर्वकर्मकरो विभुः ।
अनेन तु सदा कर्म कुर्यात् क्षिप्रार्थसाधने ।
तत्र मन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवसंघा शृणोथ मे ॥ १९ ॥

ॐ देव स्वाहा । सार्थवाहायस्तुम्बुरेर्मन्त्रः । ॐ जये स्वाहा । ॐ अजिते स्वाहा । ॐ अपराजिते स्वाहा । एते मूलमन्त्रा सभ्रातृसहितानां चतुर्भगिनीनां लोकपूजितानां हृदयानि भवन्ति । तासाम् ॐ रूपिणि ॐ विरूपिणि विश्वात्मने । एते हृदयोद्भवा मन्त्रास्तुम्बुरेर्हृदये मन्त्रा भवन्ति । ॐ देवेशाय स्वाहा । उपहृदयानि भवन्ति । ॐ वामनि पिशाचि ॐ महाराक्षसि स्वाहा । ॐ विकृतरूपिणि स्वाहा । ॐ प्रकीर्णकेशी कृतान्तरूपिणि स्वाहा । ॐ वज्ररूपिणि कृतान्तरात्रि भयानकि स्वाहा । तुम्बुरेः सार्थवाहस्योपहृदयं भवति । ॐ चतुर्वक्त्रविभूषितमूर्तित्रिनेत्रालम्बोदर बहुरूपि स्वाहा । ॐ धु धु ज्वलय सर्वदिशां स्वाहा । सर्वेषां भगिनीनां भ्रातृसहितानां दिव्यस्तु मन्त्रोऽयम् । ॐ हूँ सर्वेषां शिखा । ॐ ह्रीः जः सर्वेषां शिरः । ॐ ध्यायिनि स्वाहा । सर्वेषां मन्त्रः । ॐ दृक् सर्वेषां नेत्रः । ॐ भगिनीनां
G 518 भ्रातृसहितानां चन्दनकुंकुमानुलिप्तानां समयाच रक्षितानां हिमवन्तससागरचारिणां दृढव्रतानां बुद्धधर्मसंघानुज्ञातानाम् श्रीः । ह्रीः । रीम् । व्रीः । भुजः । एष सर्वभगिनीनां

सर्वभ्रातृसहितानां गात्रे महामन्त्रः सर्वकार्मिकः प्रसिद्धः सर्वकर्मसु परमगुह्यतमः । ॐ आयाहि महादेव विश्वरूपिणे स्वाहा । ॐ तुम्बरे सार्थवाहस्याह्वाननमन्त्राः ॐ गच्छगच्छ महादेव विश्वात्मने स्वाहा । तुम्बुरेः सार्थवाहस्य विसर्जनमन्त्राः ॐ आयाहि देवि कुमारिके किं चिरायसि समयमनुस्मर । मम कार्यं संपादय स्वाहा । जयायाह्वाननमन्त्राः ॐ आयाहि महाभोगिनि कार्यं मे साधय समयमनुस्मर स्वाहा । ॐ महायोगान्धरिविस्तीर्णधनप्रिये स्वाहा । अजिताया आह्वाननमन्त्राः—ॐ श्मशानवासिनि रूपपरिवर्तिनि देहानुचरे स्वाहा । अपराजिताया आह्वाननमन्त्राः पुनरेव सर्वमण्डलं लौकिकलोकोत्तरामालिखेत् । सर्वकर्मेषु च योजयेत् । परकल्पविधानेनापि ईप्सितमर्थं साधयेत् । अस्मिन्नेव कल्पविसरे मूलकल्पराजपटलसंमतासंमतश्चतुःकुमारिणां कुमारसहितानामादिमाख्यायते मन्त्रोऽयं बुद्धात्मजो यमिच्छति ॥

सर्वकार्मिकमित्याहुः बुद्धपुत्रा महर्द्धिका ।
कुलाग्रा मन्त्रमुख्याश्च सर्वमन्त्रेश्वरो विभुः ॥ २० ॥
करोति विविधां कर्मां विचित्रां साधुवर्णिताम् ।
प्रसह्यं चापि भूतानां चित्तं हरति तृजन्मिनाम् ॥ २१ ॥
गत्यर्थवश्यताहेतु नापत्यार्थसमुद्भवम् ।
प्रसह्यं कुरुते कर्म गतियोनिविनिर्गतः ॥ २२ ॥
चतुर्भगिन्येति विख्याता .... ।
सभ्रातृसहिता नित्यं महोदधिनिवासिनः ॥ २३ ॥
नौयानसमारूढा सभ्रातृसहपञ्चमा ।
कर्णधारोऽथ चित्तासां तुम्बुरुर्नाम संज्ञितः ॥ २४ ॥
विचरन्ति महीं कृत्स्नां सत्त्वानुग्रहतत्पराम् ।
विचित्ररूपधारिण्यो विचित्राभरणभूषिताः ॥ २५ ॥
विचित्रैव फलं तासां विचित्रोपकरणपूजिताम् ।
पर्यटन्ति महीं सर्वां सशैलसहसागराम् ॥ २६ ॥
तासां मन्त्रो महाज्येष्ठः तुम्बुरुर्नाम इष्यते । G 519
सार्थवाहस्य मन्त्रो वै त्र्यम्बकस्य जनाधिपे ।
चतुरक्षरसंयोगा ओङ्कारसपञ्जकः ॥ २७ ॥

प्रथमः सर्वमन्त्राणां चार्चनं कुर्यात् गन्धधूपदीपमाल्योपहारविशेषैः । बलिविधानं दत्त्वा जपं कुर्यात् अनाकुलपदाक्षरैः गुह्यप्रदेशे । एषामन्यतमं श्रेष्ठं मन्त्रं गृहीत्वा त्रिःकालमष्टसहस्रं जपेत् । आगताया अर्घं दत्त्वा सर्वकर्माणि कारयेत् । अर्घमन्त्रं चात्र भवति—ॐ प्रविगृह्णतु भगिन्यः सभ्रातृसहिता चार्घम् । समयमधितिष्ठन्तु स्वाहा । अर्घमन्त्रा सर्वेषां भ्रातृसहितानां सर्वोपचारमन्त्राणि भवन्ति—ॐ ज्वल ज्वल महाहुताशार्चि महाद्युतीनां

स्वाहा । सर्वेषां प्रदीपमन्त्राः–ॐ धूँ धूँ । भरितवासिनि धूपशिखे सुरभिगन्धमनोहरे प्रतिगृह्णतु देव्यः भ्रातृसहिताः ध्यायन्तां स्वाहा । धूपमन्त्रः सर्वेषाम्–ॐ कुसुमवासिनि कुसुमाढ्ये सुरभिमाले सुगन्धिमनोहरे वने कुसुमा जाताः सुकुमाराः सुगन्धिनः । तां निवेदितो भक्त्या प्रतिगृह्णध्वं मनोजवा स्वाहा । पुष्पमन्त्राः- अनेन पूजां कुर्वीत । ॐ गन्धगन्धाधिवासे स्वाहा । गन्धमन्त्राः–ॐ बलिने बलिनि स्वाहा । बलिमन्त्राः– ॐ लालावति स्वाहा । निवेद्यमन्त्राः– ॐ सू । वस्त्रमन्त्राः–ॐ फट् । घण्टामन्त्राः– ॐ स्वरव्यञ्जनमन्त्राः–ॐ छादय छत्रमन्त्राः । ॐ दोधूयते धूयते स्वाहा । चमरमन्त्रा । ॐ केलिमहाकेलि हृदयंगमे स्वाहा । सर्वद्रव्योपकरणाञ्जनरोचनादर्शप्रसाधनमन्त्राः– ॐ समस्तव्यापिनि स्वाहा । सर्वदिग्बन्धवज्रप्राकारमन्त्राः–ॐ मण्डलिने स्वाहा । इत्यूर्ध्वमधः बन्धमन्त्राः । सर्वतश्च समन्ताशेपबन्धं भवति ॐ नमः सर्वबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् ॐ हूँ हः । सर्वकर्मिकोऽयं महाविद्याराजा शासनो नाम वशिता सर्वभूतानां चतुःकुमारीणां सभ्रातृसहितानां पीडनो शोषणो रोधनो बन्धनः नाशिता निग्रहानुग्रहे रतः सर्वभूतग्रह- मातर सर्वकर्मेषु अप्रतिहतशासनः गुह्यप्रदेशे अवरके वा जप्यमानश्चतुर्भगिनीनां सभ्रातृ-
G 520 सहितानां यं रोचते तं कारयति । याच्यमानस्तु यं वरं रोचते, तं वरं याचयितव्या । शीघ्रं वरमनुप्रयच्छति । एवं बन्धनताडनतर्जनतर्जनमारणादीनि कर्माणि कुर्वन्ति । अनेनैव विद्याराजेनोपतप्यमाना सहजप्यमाना सर्वकर्माणि कुर्वन्ति । आसां मन्त्राणि भवन्ति । विसर्जनाध्येपणादीनि कार्याणि कुर्वन्ति ॥ ॐ रूपिणि गच्छ गच्छ समयमनुस्मर स्वाहा । जयाया विसर्जनमन्त्राः । ॐ वामने पिशाचि प्रकीर्णकेशि विश्वरूपिणि गच्छ गच्छ मम कार्यं साधय स्वाहा । विजयाया विसर्जनमन्त्राः- ॐ लहु लहु रूपिणि गच्छ गच्छ समयमनुस्मर मम कार्यं समादाय स्वाहा । अजिताया विसर्जनमन्त्राः -ॐ विश्वरूपिणि विकृते विकृतानने सर्वदुष्टनिवारणि गच्छ गच्छ ममार्थं साधय स्वाहा । अपराजिताया विसर्जनमन्त्राः । एते विसर्जनाध्येषणमन्त्राः । यन्मनीषितं कार्यं । विचित्रकुसुमैरञ्जलिं पूरयित्वा याचयित्वा प्रसाद्य च देवीनामग्रतः सभ्रातृसहितानां क्षेप्तव्याः । ततस्ता मुक्ता भवन्ति । सभ्रातृसहिता सांनिध्यं च कल्पयन्ते । यथेष्टं च वरमनुप्रयच्छन्ति विचरन्ति यथासुखमिति । वाचा वक्तव्या प्रतिदिनं च कर्तव्यमेवमुपरुध्यमाना मोक्षणाच्च सांनिध्यं न परित्यजन्ति । सततक्रिया अन्यथा उपरुध्यमाना नावतिष्ठन्ते कर्तव्यम् ॥

अथ ते भगिन्यः सभ्रातृसहिताः थरथरायमानाः पीड्यमानाश्च वेपथुरुपजातशङ्का बोधिसत्त्वानुभावेन चतुर्दिक्षुरागत्य एवं वाचमुदीरयन्ते - परित्रायस्व भगवं वज्रपाणि परित्रायस्व । पीडिताः स्म भगवं सुपीडिताः स्म । गतिरन्या न विद्यते । त्वमेव भगवं शरणम् । त्वमेव त्राणमिति ॥

अत्रान्तरे विद्याराजेन शासने सुशासिता सर्वदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या सर्वसत्त्वाश्च सर्वगतिसंगृहीताश्च सुविनीताश्च सुशासिता महाविद्या-

राजेन वज्राधिपतिनानुभावेन ताः भगिन्यः भ्रातृसहिताः भीताः सुविनीता आर्तस्वरं क्रन्दमानाः अवतिष्ठन्ते । अथ खलु मञ्जुश्रीः बोधिसत्त्वो महासत्त्वः तां देवतां भ्रातृसहितानामन्त्रयते स्म—मा भैष्टत भगिन्यः मा भैष्टथा । बुद्धं शरणं गच्छध्वम्, द्विपदानामग्रम् । धर्मं G 521 शरणं गच्छध्वम् । विरागाणामग्रम् । संघं शरणं गच्छध्वं गणानामग्र्यम् ॥

अथ ता भगिन्यः सभ्रातृपञ्चमाः बुद्धं शरणं गच्छन्ति । धर्मं शरणं गच्छन्ति । संघं शरणं गच्छन्ति स्म । ततस्ताः सुखसौमनस्याः परमेण सुखसौमनस्येन समन्वागता अभूवन् । मुक्तगाढबन्धनात्मानं संजानते स्म । प्रीतीसुखसमर्पिताः लब्धप्रसादपरमसंजातहृष्टरोमकूपाः इदमुदानमुदानयन्ति स्म—

अहो आश्चर्यमिदं प्राप्तो रत्नत्रयोद्भवे ।
सुखिताः स्म क्षणाल्लब्धात् सर्वदुर्गतिघट्टिताः ।
सुगतौ स्वर्गमोक्षौ च सदा बुद्धिनिवेशिता ॥ २८ ॥
ततस्तां तुष्टमनसो मञ्जुघोषं निरीक्ष च ।
प्रणिपत्य चरणौ मूर्ध्ना इदं वाचमुदीरयम् ।
त्रातस्त्वं सर्वदुःखेभ्यः गतिस्त्वं भो महाद्युतेः ॥ २९ ॥
यस्त्वं सर्वधर्माणां गभीरपदमक्षरा ।
त्वं देशयसे नाथ बन्धुभूत नमोऽस्तु ते ॥ ३० ॥
आज्ञापय महावीर मन्त्रनाथं जिनात्मजम् ।
किमानीताः स्म देवेन आज्ञां किंकरवाणि ह ॥ ३१ ॥
एवमुक्तस्तु वीरो वै सर्वबुद्धात्मजो विभुः ।
उवाच मधुरां वाणीं देवताभिः स चोदितः ॥ ३२ ॥
गच्छ त्वं शरणं भूयः वज्रपाणिजिनात्मजे ।
अवैवर्तिकसंघो वै बोधिसत्त्वाग्रजो भवेत् ॥ ३३ ॥
तृरत्नमादौ कृत्वा वै वंशजं जिनवरात्मजम् ।
चित्रं च बोधो ईर्ष्वं मैत्रचित्ता भवोत्सुका ।
ततो वा सर्वतः कृत्वा जग्मुः स्वस्थतास्पदम् ॥ ३४ ॥
ततस्ता देवताः सर्वे प्रणिपत्य जिनात्मजम् ।
आज्ञां संपाद्य सर्वं वै येन वज्री तदोन्मुखा ॥ ३५ ॥ G 522
नमस्कृत्वा तु तां क्षिप्रं वज्रपाणिं महाद्युतिम् ।
अभिष्टुत्य ततः सर्वे स्थिताः तन्मुखोद्भवाः ॥ ३६ ॥
प्रसमीक्ष्य तदा कन्या सभ्रातृसहपञ्चमा ।
वज्रपाणिं च यक्षेशं निरीक्षमाणाः स्थिताः ।
अभूवं नित्यर्थमास्पदा देव्यः अनित्यार्थार्थभूषिताः ॥ ३७ ॥

प्रणाममधुरां वाचामात्ममन्त्रार्थशोभनाम् ।
नमस्ते सर्वबुद्धानां बोधिसत्त्वां महर्द्धिकाम् ॥ ३८ ॥
प्रत्येकार्हसंघं च असतांश्चैव योगिनाम् ।
आत्ममन्त्रार्थविस्तारं कथयामो महाद्युते ॥ ३९ ॥
यथातत्त्वावबोधार्थं जनानां तु महीतले ।
सरहस्यं गुह्यमन्त्राणां त्वद्वक्त्रान्निसृतात्मनाम् ।
अनुरक्षार्थमन्त्राणां आस्पदार्थार्थभूपणाम् ॥ ४० ॥
एवमुक्ते तु मन्त्रेशः वज्रपाणिर्महाद्युतिः ।
ईषिस्मितमुखो भूत्वा विलोक्य विकसन्मुखः ॥ ४१ ॥
पूजयामास तां कन्यां सभ्रातृसखीजनाम् ।
अनुज्ञातं मया यूयं निर्विशङ्का भविष्यथ ॥ ४२ ॥
संश्राव्य कल्पविस्तारं सरहस्यं समण्डलम् ।
जन्तुभिः पूजिता नित्यं वरं वो दास्यथ सर्वदा ॥ ४३ ॥
ऋषिभिः पूजिता यूयं यक्षराक्षसकिन्नरैः ।
गरुडैर्देवगन्धर्वैः असुरैश्चापि महर्द्धिकैः ॥ ४४ ॥
कूष्माण्डैः मातरैश्चापि समग्रैः सोमभास्करैः ।
लोकपालैः धनाध्यक्षैः पतद्भिः वसवैस्तथा ॥ ४५ ॥
तैरिवेयं सुराध्यक्षैः पिशाचोरगमानुषैः ।
भूताध्यक्षैः निशाध्यक्षैः पिशिताशनव्यन्तरैः ।
राक्षसाधिपमुख्यैश्च रौद्रचित्तैर्विहेठकैः ॥ ४६ ॥
G 523 दैत्यदानवसंघैश्च यमैः प्रेतमहर्द्धिकैः ।
मानुषामानुषैश्चापि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ४७ ॥
सुरमुख्यैर्महाज्येष्ठैः सिद्धचारणपूतनैः ।
योगिभिर्जिनपुत्रैश्च पूजिता वो भविष्यथ ॥ ४८ ॥
........न संदेहो प्रभावा वरक्रमा ।
जयाया मन्त्रमित्याहुः कल्पविस्तारविस्तरा ॥ ४९ ॥
नवकोट्यस्तु मन्त्राणां तन्त्रकल्पसविस्तरा ।
विजया चैव मन्त्राणां षष्टिर्लब्धा प्रकीर्तिता ॥ ५० ॥
अजिताया तु भवेन्मात्र लक्षषोडशकोद्भवा ।
अपराजिताया तु कन्याया चतुःकोट्यः उदाहृताः ॥ ५१ ॥
तुम्बुरेः सार्थवाहस्य नवकोट्योऽथ गायतः ।
तत्प्रमाणा भवेत् कन्या नृसुरासुरपूजिताः ॥ ५२ ॥

सर्वं शैवमिति ख्यातं सर्वैर्भूतलवासिभिः ।
मयैव निगदितं पूर्वं कल्पे मस्मिं सविस्तरे ॥ ५३ ॥
पश्चादन्यो जनः प्राहुः कल्पमन्त्रां पृथक् पृथक् ।
तुम्बुरुः सार्थवाहस्य त्र्यम्बकस्य तु धीमतेः ॥ ५४ ॥
अनन्ता कल्पविस्तारा शर्वस्यास्य कपर्दिने ।
यत्प्रभावार्थं मन्त्राणां सिद्धिं यास्यन्ति भूतले ॥ ५५ ॥
अनुज्ञाताथ वै यूयं कल्पराजेऽथ वै सदा ।
भाषध्वं मन्त्रतन्त्राणां सरहस्यं सविस्तरम् ।
सगुह्यं गुह्यतमं चापि सर्वसत्त्वसुखोदयम् ॥ ५६ ॥
इत्युक्त्वा वज्रधृक् श्रीमां वज्रमाश्रित्य लीलया ।
तूष्णींभूत तदा तस्थौ रत्नपङ्कजमुच्छ्रते ॥ ५७ ॥
अथ ताः कन्यकाः क्षिप्रं सम्रातृमथ पञ्चमाः ।
प्रणिपत्य मन्त्रनाथं वै यक्षेशं जिनवरात्मजम् ॥ ५८ ॥
वज्रपाणिं महावीरं मन्त्रनाथेश्वरं विभुम् ।
उवाच मधुरां वाचां एकैकामनुपूर्वतः ॥ ५९ ॥ G 524
मण्डलं तु समासेन वक्ष्येऽहं भुजयोदयम् ।
ज्येष्ठमण्डलमित्याहुः जया ज्येष्ठमगायत ॥ ६० ॥
विजने रहसि संपाते विगते चैव महाजने ।
प्रच्छन्नेऽग्रप्रसंबाधे सरित्तीरे शिलोच्चये ॥ ६१ ॥
विविक्ते कानने रम्ये बुद्धाध्युषितमन्दिरे ।
शून्ये देवकुले चापि शून्ये वेश्मसु शोधिते ॥ ६२ ॥
एकवृक्षे शुभे रम्ये महोदधिसमाश्रये ।
एकलिङ्गे श्मशाने च विगते धूमपांसुभिः ।
वज्रासनमहापुण्ये धर्मचक्रे सुशोभने ॥ ६३ ॥
यत्र शान्तिं गतो बुद्धः यत्र जातो महामुनिः ।
एते स्थाना भवेन्मुख्या मण्डलालिखने शुभा ।
गङ्गातीरेऽथ सर्वत्र सद्वीपपुलिनाश्रये ॥ ६४ ॥
सरिद्वराश्च मुख्या ये कीर्तिता लोकविश्रुता ।
तेषु तीरेषु सर्वत्र नित्यं मण्डलमालिखेत् ॥ ६५ ॥
समन्तात् सर्वतोयान्ता महोदधिसमप्लवा ।
हिमवन्तविन्ध्या तोयान्ता प्रस्थिता निम्नगाम्बुधेः ।
सरिद्वरिष्ठेषु तीरेषु युक्तो मण्डलमालिखेत् ॥ ६६ ॥

अन्ये वा रहसि भूभागे उडये वा सुशोभिते ।
देवायतनरम्येषु स्तूपे चापि महोच्छ्रिते ।
धातुगर्भे तथा चैत्ये वापीकूपासु वीथिकैः ॥ ६७ ॥
तेषु तीरेषु सर्वत्र मध्ये चापि सुशोभितैः ।
गोष्ठे पद्मसरत्सर्वां क्वचित् तोयाश्रयोद्भवैः ।
अन्यैर्वा स्थानाग्रैर्नित्यं विहारारामभूषितैः ॥ ६८ ॥
यथेष्टमनसो तुष्टिः मुनिजुष्टे महीतले ।
पर्वताग्रैर्ग्रहैश्चापि कन्दरैः सानुचिह्नितः ॥ ६९ ॥
G 525 शान्तैरावसथैर्दिव्यैः ग्रहैश्चापि विजन्तुभिः ।
ध्यानानुकूलैः प्रशस्तैश्च ऋषिमुख्यैर्निषेवितैः ॥ ७० ॥
यत्र वा मनसो तुष्टिः तत्र मण्डलमालिखेत् ।
एषु स्थानेषु वै नित्यं यथोद्दिष्टैः सुपूजितैः ॥ ७१ ॥
निपेतुर्देवताः क्षिप्रं सांनिध्यं चापि कल्पयेत् ।
तत्र स्थाने तदा नित्यं जपहोमक्रमो विधिः ॥ ७२ ॥
ये साध्या मन्त्रमुख्याश्च उत्तमाधममध्यमाः ।
सिध्यन्ति मन्त्राः सर्वे वै सिद्धक्षेत्रेष्विहोदिते ॥ ७३ ॥
सिध्यन्ति सर्वमन्त्रा सर्वे वै ज्येष्ठमध्यमकन्यसा ।
त्रिविधा हि भवे सिद्धिः त्रिविधैव क्रियाविधिः ॥ ७४ ॥
त्रिप्रकारस्तु मन्त्राणां त्रिधा कालप्रभेदतः ।
त्रिसंध्यं सर्वमन्त्राणां त्रिधा कर्मफलोन्मुखाः ॥ ७५ ॥
शान्तिकं कर्म निर्दिष्टं जयाख्ये मण्डले शुभे ।
विजयाख्ये तु पौष्ट्यर्थं अजिताख्ये चाभिचारुकम् ॥ ७६ ॥
अपराजिताख्ये तथा नित्यं निर्दिष्टं क्षुद्रकर्मसु ।
सर्वकर्मसु मन्त्रज्ञः तुम्बुराख्यं समालिखेत् ॥ ७७ ॥
पञ्चैव मण्डला ज्ञेया अम्भोधे तु निवासिनाम् ।
समन्ताच्चतुरस्रं वै उक्तिमात्रं खनेद् भुवि ॥ ७८ ॥
चतुर्हस्ताष्टहस्तं वा संशोध्य पाणिना पुनः ।
कठण्णः शर्कराङ्गारः तुषकेशमवस्कराम् ॥ ७९ ॥
कपालास्थिशाक्दुष्टां संशोध्य पाणिना ततः ।
स्वयं चापि परैस्तत्र सर्वावस्करतां जपेत् ॥ ८० ॥
कृमिजन्तुसमाकीर्णाः संशोध्यः यत्नतो व्रती ।
आपूर्यारण्यमृत्तिकैः शुचिभिश्च सुगन्धिभिः ॥ ८१ ॥

नदीकूलोद्भवैर्मध्यैस्तथा वल्मीकाग्रसंभवैः ।
गोष्ठभूतलयोर्मध्ये तदन्यैर्वा पार्थिवोद्भवैः ॥ ८२ ॥
सिकताभिः समन्ताद् वै संछाद्य प्रसन्नधीः । G 526
अथवा गोमयमिश्रैर्वा मृत्तिकाभिः समन्ततः ॥ ८३ ॥
समन्तमालेपयेत् क्षिप्रं पञ्चगव्यसमाश्रितैः ।
कुङ्कुमाक्तैस्तथा स्निग्धैः विविधैः गन्धमिश्रितैः ॥ ८४ ॥
मृत्तिकाभिः समन्ताद् वै मण्डलं तु समन्ततः ।
आलेप्य भुवि यत्ना वै मन्त्रविन्मन्त्रतन्त्रवित् ॥ ८५ ॥
पञ्चाङ्गिकचूर्णैस्तु विविधैः धूपवासितैः ।
आलिखेन्मण्डलं दिव्यं समन्ता चतुर्हस्तकम् ॥ ८६ ॥
अष्टहस्तप्रमाणं वा ज्येष्ठं मण्डलमुच्यते ।
चतुर्हस्तोऽथ कनिष्ठं मध्यमं परिकीर्त्यते ॥ ८७ ॥
पञ्चहस्तोऽथ विख्यातः षट् हस्तोऽथमुक्तवान् ।
सर्वेषां तु देवीनां सभ्रातृसहितात्मनाम् ।
मण्डलप्रमाणमित्युक्तः समन्ताचतुरश्रितम् ॥ ८८ ॥
चतुर्द्वारं चतुःकोणं चतुस्तोरणभूषितम् ।
आलिखेन्मण्डलं दिव्यं प्रशस्तं चारुरूपिणम् ॥ ८९ ॥
मध्ये कुमारमालिख्य बालरूपसुभूषणम् ।
कुङ्कुमाकारवर्णाभं वाममध्येऽथ संस्थितम् ।
नीलोत्पलं समन्ताद्यकरलग्नोपशोभितम् ॥ ९० ॥
दक्षिणे करविन्यस्तं श्रीमालं फलमायतम् ।
किंचिद्वरदं देवं मञ्जुघोषं महाप्रभुम् ॥ ९१ ॥
किंचिदुन्मीलिताक्षं तु ईषित् प्रेक्षणदेवताम् ।
दक्षिणेन समन्ताद् वै महोदधि समालिखेत् ॥ ९२ ॥
तत्रस्था नावारूढं देव्यां भ्रातृपञ्चमाम् ।
आलिखेन्मन्त्रविद्यानां सुवेषां चारुरूपिणाम् ॥ ९३ ॥
विचित्राभरणविन्यस्तां विचित्रप्रहरणोद्यताम् ।
कुमार्याकारचेष्टानां सभ्रातृकुमारविक्रमाम् ॥ ९४ ॥
नौयानसमारूढां सभ्रातृसहपञ्चमाम् । G 527
कर्णधारसमोपेतां तुम्बुरुः सार्थवाहिकाम् ॥ ९५ ॥
महोदधि समन्ताद् वै मण्डलाभ्यन्तरं स्थितम् ।
झषाद्यै प्राणिभिर्युक्तं स्फोटकं वारिपूजितम् ॥ ९६ ॥

आलिखेन्मण्डलं धीमां गुप्ते रहसि सर्वतः ।
यथा हि विधिनिर्दिष्टं तत्त्वं चापि कीर्तितम् ॥ ९७ ॥
तत् सर्वं कारयेत् क्षिप्रं लौकिकेष्वेव योजयेत् ।
यावन्ति शैवतन्त्रेऽस्मिं ये तन्त्रे चापि गारुडे ॥ ९८ ॥
ब्रह्माद्यैर्ऋषिमुख्यैश्च भृग्वङ्गिरसकाश्यपैः ।
मार्कण्डमुनिवरैश्चापि पुलस्त्यागस्तिसंभवैः ॥ ९९ ॥
वासवैः शक्रदेवैश्च रुद्रेन्द्रसभारकैः ।
विविधैः सत्त्वमुख्यैश्च यमाद्यैः प्रेतमहर्द्धिकैः ॥ १०० ॥
ग्रहमातरकूष्माण्डैः यक्षराक्षसपूजितैः ।
मानुषामानुषे लोके चिन्तनार्थैर्महर्द्धिकैः ॥ १०१ ॥
पूजिता कल्पविस्तारा विष्णुरुद्रसवासवैः ।
कथिता कल्पमाहात्म्यं निखिलाश्चैव भूतले ॥ १०२ ॥
तस्मिं मण्डले योज्या सिध्यन्तीह न संशयः ।
विविधा योनिमुख्यैस्तु विविधाकारचेष्टितैः ॥ १०३ ॥
कथिता कथयिष्यन्ति देवीनां कल्पविस्तराम् ।
तस्मिं समये नियोक्तव्या जयाख्ये मण्डले भुवि ॥ इति ॥ १०४ ॥

बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रादार्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात् पञ्चचत्वारिंशतमः पटलविसरात् प्रथमः चतुर्भगिनीमण्डलमनुप्रवेशसमयगुह्यतमपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

---

४८ चतुःकुमार्यपटलविसरः । G 528

अथ खलु विजया नाम देवी तत्रैव पर्षदि संनिपतिता संनिषण्णाभूवम् । स स्वकं मण्डलोपचर्यासाधनविधिं भाषयति स्म—

आदौ तावद् विविक्ते देशे प्रच्छन्ने रहसि पञ्चरङ्गिकचूर्णेन शुक्लकृष्णपीतरक्तहरितैः चूर्णैः पञ्चम्यां शुभे सितकृष्णयोः पक्षे चतुर्थ्यां वा मण्डलमालिखेत् । चतुर्हस्तप्रमाणं समन्ताच्चतुरश्रं चतुःकोणं चतुस्तोरणभूषितम् । समन्तान्मण्डलमध्ये महोदधिं समालिखेत्, चतुर्मुद्रालंकृतम् । मध्ये सार्थवाहश्च मुद्रामण्डलाकारं इन्दुवर्णाभं पूर्वोत्तरे कोणे जया मुद्रा अर्धचन्द्राकारसितं दक्षिणपूर्वकोणे विजया मुद्रा तृकोणाकारं पीतनिर्भासम्, पश्चिमदक्षिणकोणे अजिताया मुद्रं बन्धाकारं रक्तावभासम् । उत्तरपश्चिमकोणे अपराजिताया मुद्रं वज्राकारं कृष्णनिर्भासम् । सर्वतश्च मुद्राणां ज्वालामालिनः कर्तव्याः ॥

पूर्ववच्चौक्षसमाचारेण भूत्वा चतुःकोणे चत्वारः पूर्णकलशाः स्थापयितव्याः, आम्रपल्लवप्रच्छादितमुखाः सर्वव्रीहिरत्नपरिपूर्णगर्भाः । मध्ये तु सार्थवाहस्य तुम्बुरेः पञ्चमं कलशं तथैवाम्रपल्लवप्रच्छादितमुखं प्रत्यग्रवस्त्रावकुण्ठिताश्च कार्याः । तच्च तथैव बलिनिवेद्यपुष्पादयो यथा मुद्रास्तथैव कार्या । तद्वर्णाश्च पुष्पधूपगन्धादयः तत् सर्वं तथैव कार्यम् । चतुर्दिशं च बलिः क्षेप्तव्या । अर्धरात्रे मध्याह्ने चाभिचारुके प्रत्यूषे पौष्टिके अपराह्ने शान्तिकमस्तंगते वा सवितरि कर्मत्रयं चापि यथाकालोपदिष्टमण्डलहोमजपसाधनेषु प्रयोक्तव्यम् ॥

शुचिनो दक्षशीलाश्च स्त्रीपुरुषादयः अव्यथिताश्च प्रवेशयितव्याः सरदारिकाश्च गुह्यमन्त्रधारिणो आदौ प्रवेशयितव्याः । प्राङ्मुखं स्थापयित्वा विजयाया मूलमन्त्रेणोदकमभिमन्त्र्य सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा सर्वेषामभ्यषिञ्चेत् । सकृदहोरात्रोषितानां शुचिवस्त्रप्रावृतानामष्टौ प्रभृति यावदेकं प्राङ्मुखं पश्चाद् द्वारेण प्रवेशयेत् । प्रत्यग्रमुखप्रच्छादितां कृत्वा एकैकं विजयाया मुद्रं बद्ध्वा अञ्जलिं कृत्वा पीतपुष्पं दत्त्वा क्षिपापयेत् । विजयाया मन्त्रं कृत्वा मुखमुत्साद्य मण्डलं दर्शापयेत् । प्रदक्षिणं च कारापयेत् । सर्वेषां मुद्रां दर्शयेत् । ततोऽनुपूर्वतः सर्वे प्रवेशयित्वा यावदष्टाविति ॥ G 529

पूर्वं तावद् देवीनामाह्वाननमन्त्रेण भ्रातृसहितानां मूलमन्त्रेण यथोचितैः पुष्पैरावाहयेत् । पूर्वं पश्चाद् धूपं दत्वा यथोचितं नमस्कारं कृत्वा यत्रोत्सहते शिष्यः स्त्रीपुरुषदारकदारिका वा, स तस्मिं मण्डले बहिरभिषेचयितव्यः राजवत् सर्वोपकरणैः यथाभिरुचितैर्वा मन्त्रं मण्डलाचार्यस्य तुष्टिर्येन वा तुष्येत तयाभिषेचयेत् । अभिषिच्य च एक वा त्रयो वा अभिषेचनीयः आर्याभिषेकेण एवं च वक्तव्यम्—शृणु कुलपुत्रकुलदुहितुर्वा लब्धाभिषेकस्त्वमनुज्ञातः, सर्वदेवताभिश्च सभ्रातृसहितैश्च । स्वमन्त्रतन्त्रेषु यथेष्टं मण्डलमालिख्य स्वमन्त्राणां विधिनियमचर्याकल्पविस्तरां ददस्वेति वक्तव्यः । तदन्ये विद्याभिषेकेणाभिषेचयितव्या द्वित्रयो वा जनाः । शेषास्तु स्वमन्त्रचर्यायाः शिक्षापयित्वा विसर्जयितव्या ॥

ततो मण्डलाचार्येण चन्दनोदकेनाभ्युक्ष्य अर्घं दत्त्वा स्वमन्त्रेणैव धूपपुष्पादिभिः देवता विसर्जयितव्या। सर्वं चोपकरणं आत्मना ग्रहेतव्यम्। गृह्य च स्वं प्रत्यंशं त्रितीयभागं सर्वमनाथेभ्यो दातव्यम्। शेषमुदके प्लावयितव्यम्। तं पृथिवीप्रदेशं सुलिप्तं कृत्वा सुशोभितं विगतरजस्कं यथेष्टतो गन्तव्यम्। यथाख्यं मन्त्रचर्यासु च तथा शिक्षापयितव्याः। सर्वे शिष्याः प्रच्छन्ने रहसि विगतजनसंपाते स्वदेवतामुद्रांश्च बन्धापयितव्याः। तैरेव मन्त्रैः पूर्वनिर्दिष्टैर्मन्त्रैः सुविशेषतः सर्वमन्त्रा सिद्धिं गच्छन्तीति ॥

आशु सिद्धिक्रियायुक्तिमन्त्राणां च विशेषतः।
जयाख्ये मण्डले युक्तं पूर्वनिर्दिष्टहेतुभिः ॥ १ ॥
तत्कर्मविधिनिर्दिष्टः विजयाख्ये मण्डले शुभे।
द्वितीयं मण्डलमित्याहुः निर्दिष्टं तत्त्वार्थमन्त्रिभिः ॥ २ ॥
G 530 विजया नामतो ज्ञेया सर्वकर्मार्थसाधिका।
ईप्सितां साधयेदर्थां सर्वमन्त्रेषु मन्त्रवित् ॥ ३ ॥
पूर्वं जप्तो मन्त्रस्तु सर्वकर्मेषु मानवी।
तयात्मदेवता रक्षा विजयाया तु कीर्त्यते ॥ ४ ॥
पराभवश्च विघ्नानां आरम्भश्च फलोन्मुखः।
मण्डले विजयाख्ये तु द्वितीये सर्वार्थसाधने ॥ ५ ॥
दर्शनान्मुच्यते पुंसः सर्वकिल्बिषमायतैः।
जपाद् योगाच्च मन्त्रज्ञः पापशुद्धिश्च जायते ॥ ६ ॥
पराभवश्चान्येषां मन्त्राणां तु भूतले।
परिपक्षगतां दोषां स्वदृष्टादुष्टयोनिजाग् ॥ ७ ॥
नाशये तत्क्षणान्मन्त्री विजयाख्ये मण्डलावृतोः।
सर्वकर्मिकमित्याहुः वश्याकर्षणभूतिकम् ॥ ८ ॥
सफलं कर्मजं लोके पुष्टिशान्त्यर्थसाधकम्।
सर्वार्थसाधको ह्येष मण्डलोदधिसंभवो ॥ ९ ॥
विजयाख्ये बहुमतः पुण्यः प्रशस्तः सोमपूजितो।
नित्यं नित्यतमो पुण्यो मङ्गलो मवनाशनः ॥ १० ॥
सरूपो रूपमन्तश्च धन्यः सर्वार्थसाधकः।
लिखनान्मन्त्रिभिः क्षिप्रं ऊर्ध्वगामर्थसाधकम् ॥ ११ ॥ इति ॥
अजितादेवमित्याहुः प्रसन्ना बुद्धशासने।
मण्डलं त्रयमेकं वै कथितं लोकपूजितम् ॥ १२ ॥
पूर्वं रिषिवरैर्मुख्यैः कथितं लोकचिह्नितैः।
अधुना च प्रवक्ष्येऽहं अजिताख्यं मण्डलम् ॥ १३ ॥

यद् तत् तथैव नियोजयेत् ।
किंतु वर्णवरं रक्तं रक्तैश्चापि चूर्णकैः ॥ १४ ॥
तथैव बलिपुष्पाद्यां गन्धधूपादिभिः क्रमैः ।
सर्वरक्तमयं बाह्यमसृग्ग्रस्ताङ्गशोभनम् ॥ १५ ॥
तथैव मुद्रां सर्वत्र भीमां चैव वियोजयेत् । G 531
बलिहोमक्रियायुक्तिः रक्तैश्चापि नियोजयेत् ॥ १६ ॥
कलशाश्चैव रक्ताभां रक्तवस्त्रांश्च दापयेत् ।
तथैव मुखवेष्टं वा रक्तच्छत्रं तथैव च ॥ १७ ॥
आसनं शयनं यानं रक्तं चैव समालभेत् ।
तथैव रक्तमन्त्राणां स्त्रीपुंसार्थकारणम् ॥ १८ ॥
रागार्थं आवृते मन्त्रां रागिणस्यैव युज्यते ।
नान्यमन्त्रेषु मन्त्रज्ञो मतिं कारेथ कर्तृणाम् ॥ १९ ॥
बुद्धिमन्तः सदायोगी मन्त्रज्ञो मन्त्रमीरयेत् ।
कामार्थं संपदं प्राप्ता वश्याकर्षणहेतुकम् ॥ २० ॥
प्राप्नुयात् संपदां सर्वां अजिताख्ये मण्डलेऽद्भुताम् ।
सर्वभूतवशार्थाय मण्डलं भुवि मुच्यते ॥ २१ ॥
कथितं मन्त्रिभिर्नित्यं चित्तविक्षेपकारणात् ।
आकृष्य महोजं कर्म वश्याभौतिकचेष्टितम् ॥ २२ ॥
विक्षिप्तचित्तो मर्त्यो वै आविष्टाविरलेक्षिताम् ।
दासभूतं समायातं सर्वज्ञासंप्रतीच्छकम् ॥ २३ ॥
विवशं वशमायातं किंकरानुवशवर्तिनम् ।
तादृशं मानुषं दृष्ट्वा पुनरेव संप्रमोक्षयेत् ॥ २४ ॥
स्त्रियं वा यदि वा पुंसं दारकं वाथ दारिकाम् ।
भूयोऽपि मूलमन्त्रेण अजितेनैव मोक्षयेत् ॥ २५ ॥
पूर्वनिर्दिष्टकर्मैश्च विधियुक्तैर्महीतले ।
आलिखेन्मण्डलं धीमां सर्वदैव प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥
सफलं कर्म निर्दिष्टं समन्त्रं मन्त्रकर्मणि ।
पूर्वमन्यप्रयोगैस्तु साधयेद् विधिमुत्तमाम् ॥ २७ ॥
साध्यमाना हि सिध्यन्ते सर्वे माहेश्वरा गणाः ।
विधानज्ञापतो रूपं मुद्रं मन्त्रार्थतन्त्रता ॥ २८ ॥
क्रियायोगप्रमाणं तु कथ्यमानातिविस्तरा । G 532
एतत् प्रमाणतो ज्ञेयं मण्डलेऽस्मिन् निबोधताम् ॥ २९ ॥

हस्ता च दुष्टसप्ता वा षट्पञ्चचतुरस्तथा ।
द्विहस्तहस्तमात्रं वा वृता मण्डलमुद्भवेत् ॥ ३० ॥
ज्येष्ठमष्टस्तथा हस्तं सप्त षट् पञ्च मध्यमाः ।
चतुर्हस्त द्विहस्तं वा हस्तमात्रं तु कन्यसम् ॥ ३१ ॥
ज्येष्ठे शान्तिकं कुर्या तथा मध्ये तु पौष्टिकम् ।
आभिचारुकमन्त्रेषु कुर्यात् कन्यसमण्डले ॥ ३२ ॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां नित्यं जम्भनमोहने ।
कुर्यात् सर्वकर्माणि जापी मन्त्ररतः सदा ॥ ३३ ॥
अजिताख्यं मण्डलनिर्दिष्टं सर्वग्रहविमोक्षणम् ।
यत्र भूताः पिशाचाश्च ग्रहमातरपूतनाः ॥ ३४ ॥
दृष्टमात्रा वशमायान्ति नित्यं जम्भितमोहिताः ।
दर्शनान्मण्डले नित्यं क्षिप्रं गच्छन्ति वश्यताम् ॥ ३५ ॥ इति ॥
अपराजिता तु देव्या च प्रणम्य जिनवरात्मजम् ।
वज्रकं गुह्यकेन्द्रं तु मञ्जुघोषं सुभूषणम् ॥ ३६ ॥
सर्वां बुद्धसुतांश्चैव........ महौजसाम् ।
सभ्रातृपञ्चमां देवीमिमां वाचमुदीरयेत् ॥ ३७ ॥
अहमप्येवंविधं कार्यं मण्डलार्थेतिशुक्तिजम् ।
वज्रे च शुभसंगीनं ....कार्याक्षरसंसृष्टिरेपग्र ॥ ३८ ॥
महाप्रभावं महौजस्कं दुर्दान्तदमकं मतम् ।
सकृष्णं कृष्णवर्णाभं कालरात्रिसमप्रभम् ॥ ३९ ॥
यमदूताख्यवर्णाभं................ ।
साक्षाद् विवस्वतं घोरं परप्राणहरं भयम् ॥ ४० ॥
यथावत् पूर्वनिर्दिष्टं देवीनां तु मण्डले ।
तथैव तत् कुर्यात् सर्वं वर्जयित्वा तु वर्णतो ॥ ४१ ॥
G 533 श्मशाने नित्यमालेख्यं पुरे दक्षिणतः सदा ।
सधूमे ज्वालामालीढे अस्थिकङ्कालवेष्टिते ॥ ४२ ॥
मध्यस्थे सवसृजे देशे तत्रस्थे तु महीतले ।
श्मशानभस्मना लेख्यं कृष्णवर्णे तु भूतले ॥ ४३ ॥
यथैवं पूर्वनिर्दिष्टं मन्त्रैरर्चविधिक्रमम् ।
तत् सर्वं क्षिप्रतो मन्त्री सर्वं चैव नियोजयेत् ॥ ४४ ॥
स्वमन्त्रं मन्त्रनाथं च तुम्बुरुं सार्थवाहकम् ।
........महोदधिसमावृताम् ॥ ४५ ॥

अजितायामाशु निर्दिष्टा विजया खड्गपाणिनी ।
धनुर्हस्तां सदा देवी जया तामभिनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥
विचित्रप्रहरणा ह्येता विचित्राभरणभूषिता ।
विचित्रगतिसत्त्वाख्या विचित्रवेषचेष्टिता ॥ ४७ ॥
आलिख्य मण्डले ह्यत्र कृष्णवर्णा तु भूतले ।
परप्राणहरं ह्येतत् मण्डलं भुवि चेष्टितम् ॥ ४८ ॥
विविधार्थक्रिया मन्त्रा विविधा कर्ममुद्भवा ।
तत् सर्वं पूर्ववत् कृत्वा पश्चात् कर्म समारभेत् ॥ ४९ ॥
जपहोमक्षया मन्त्रा मण्डलांश्चैव दर्शनम् ।
प्रवेशं मण्डले ह्यस्मिन् तत्पूर्वं विधिमुद्भवैः ॥ ५० ॥
एष संक्षेपतो ह्युक्तः कथ्यमानोऽतिविस्तरम् ।
मण्डलं देविमुख्यायाः कन्यसाया तु कीर्तितम् ॥ ५१ ॥
अपराजिताख्यनामतः ज्ञेयो मण्डलं भुवि विश्रुतम् ।
अजितं सर्वतः पूर्वं राक्षसेश्वरकिन्नरैः ॥ ५२ ॥
भूतैर्दैत्यमुख्यैस्तु यममातरसग्रहैः ।
कूष्माण्डैर्व्यन्तरैश्चापि पिशिताशैः सपूतनैः ॥ ५३ ॥
तन्त्रे तु सर्वतो मन्त्रैः क्रव्यादैस्तु सकश्मलैः ।
असुराध्यक्षैः महाघोरैः सर्वभूतमहोदयैः ॥ ५४ ॥ इति ॥
अथ तुम्बुरुः सार्थवाहो वैस्वं मण्डलमभापयम् । G 534
तुम्बुराख्यं वामतो मर्त्यां वज्रधृक् तं निबोधताम् ॥ ५५ ॥
पूर्वनिर्दिष्टमित्याहुः पुनरेव महीतले ।
प्रणम्य वज्रिणं मूर्ध्ना इमां वाचमुशिक्षिरे ॥ ५६ ॥
सर्वं पूर्वनिर्दिष्टं मण्डलं चतुरोदयम् ।
प्रथमं सर्वकर्मान्तं द्वितीयं तु इहोच्यते ॥ ५७ ॥
व्यतिमिश्रं तथा युक्त्या अनुपूर्वमिहागतम् ।
मण्डलं चतुराख्यं तु सर्वभूतप्रसाधकम् ॥ ५८ ॥
शून्यवेश्म तथा नित्यं शून्यदेवकुले सदा ।
प्रच्छन्ने रहसि विस्रब्धे स्वगृहे वावरकेऽपि च ॥ ५९ ॥
विचित्रैरङ्गनेपथ्यै विचित्रैश्चारुपूर्णकैः ।
पञ्चरङ्गिकचूर्णैस्तु विविधैर्वा फलोद्भवैः ॥ ६० ॥
शालितण्डुलपिष्टैस्तु विचित्रैरङ्गमुज्वलैः ।
शुक्लचूर्णैस्तथायुक्तैः चन्दनागरुधूपितैः ॥ ६१ ॥

विमिश्रैश्चन्दनचूर्णैस्तु कुङ्कुमागरुयोजितैः ।
कर्पूरकस्तूरिकासक्तैः प्रियङ्गुकेशरादिभिः ॥ ६२ ॥
स्पृक्कासीरसमायुक्तैः कृष्णागरुसुधूपितैः ।
चूर्णैर्विविधगन्धैर्वा नित्यं मण्डलमालिखेत् ॥ ६३ ॥
त्रिःस्नायी जपहोमी च त्रिचेलपरिवर्तिनः ।
व्यतिमिश्रपक्षे तथा मन्त्री सितासितसुचिह्निते ॥ ६४ ॥
यथेष्टं तिथिनक्षत्रे नित्यं मण्डलमालिखेत् ।
चतुर्हस्तप्रमाणं वै यथोक्तं विधिपूर्वके ॥ ६५ ॥
तत् सर्वमालिखेद् धीमां मन्त्रं यत्नाद्धि चेलसा ।
चतुःकोणं चतुर्द्वारं चतुस्तोरणसंयुतम् ॥ ६६ ॥
मध्ये सरिपतिर्नित्यं मण्डलेऽस्मिं समालिखेत् ।
मध्यस्थं पद्ममारूढं धर्मचक्रानुवर्तिनम् ॥ ६७ ॥
शाक्यसिंहं महावीरं मन्त्री बुद्धं समालिखेत् ।
G 535 शेषं मुद्रवरैः क्षिप्रं सभ्रातृसहपञ्चमम् ॥ ६८ ॥
आलिखेत् सर्वतो मन्त्री चतुःकोणे तु सर्वतः ।
ज्येष्ठात् पद्मवरे तस्थौ अधस्ताद् बुद्धस्याम्बुधेः ।
तुम्बुरे मुद्रमालेख्यं सितवर्णोऽथ सर्वतः ॥ ६९ ॥
सर्वे शुक्लवर्णाभा कुन्देन्दु शशिप्रभा ।
कुमुदाकारसंकाशा सर्ववस्त्रसुशुक्लका ॥ ७० ॥
पूर्वनिर्दिष्टयोगेन देवीनां तु विधानवित् ।
तत् सर्वं कुर्यान्मन्त्री सर्वकर्मार्थसाधनम् ॥ ७१ ॥ ॥ इति ॥
यथैव मण्डलं सर्वपटे स्मितप्रयोजयेत् ।
त्रिविधं पटनिर्दिष्टं मण्डलेऽस्मिं यथाविधि ॥ ७२ ॥
शेषं यथेष्टवत् कुर्यात् पटमण्डले भूतले ।
आलेख्यं मन्त्रतन्त्रेऽस्मिं यथाविहिते मंत ॥ ७३ ॥
फलके पट्टके वापि यथाकाष्ठसमुद्भवैः ।
आलेख्याः देवताः सर्वे सभ्रातृसहपञ्चमाः ॥ ७४ ॥
यथैव मण्डले सर्वं तत् सर्वं आलिखेत् पटे ।
अम्बेर वापि निर्दिष्टं यथोचितसमुद्भवे ।
निर्दिष्टं पटमन्त्रज्ञैः प्रतिमानां तु कीर्त्यते ॥ ७५ ॥
चन्दनं मलयमित्याहु रागं चापि सकेसरम् ।
पुन्नागं चैव मन्त्रज्ञैः नित्यं प्रतिमासु योजयेत् ॥ ७६ ॥

पियालं पद्मकं विन्द्यात् रोध्रकाष्ठं महीतले ।
सरलं देवदारुं च कास्मीरं चैव सवण्टकम् ॥ ७७ ॥
कुटजार्जुनजम्बूकं प्रियङ्गुष्टोमकोद्भवम् ।
रक्तचन्दनकाष्ठं तु विशेषात् पटमुच्यते ॥ ७८ ॥
प्लक्षोदुम्बरकाष्ठं च सहकारं विशेषतः ।
पुण्डरीकं ससर्जं वै सिन्दुवारं सिद्धोद्भवम् ॥ ७९ ॥
वकुलं तिलकं चैव काष्ठं सप्तच्छदं तथा । G 536
विविधा वृक्षजातीनां पुंसस्त्रीनपुंसकाम् ॥ ८० ॥
सर्वेषां ग्रहणं काष्ठे मूलगण्डे ततोर्ध्वगम् ।
शाखासु सर्वतो ग्राह्या मधुकस्तिक्तकाष्ठयोः ॥ ८१ ॥
पिचुमन्दं तथा काष्ठेऽरिष्टे भूततरौ तथा ।
पुत्रंजीवककाष्ठेषु नित्यं चैवाभिचारुके ।
अश्वत्थे शान्तिकं विन्द्यात् काष्ठे चापि महीतले ॥ ८२ ॥
पौष्ट्यर्थं काष्ठमित्युक्तं अशोकं शीर्षमेव वा ।
सर्वकर्माणि सर्वत्र सर्वकाष्ठेषु योजयेत् ॥ ८३ ॥
मूलकाष्ठेन प्रतिमाया मूलनक्षत्रयोजिता ।
ततस्तम्भकृते काष्ठे ज्येष्ठनक्षत्र योजयेत् ।
ततः शाखाकृतं काष्ठं सर्वनक्षत्र योजयेत् ॥ ८४ ॥
ततोर्ध्वनक्षत्ररेवत्या इन्दुवारेण कारयेत् ।
मूल आदित्यवारे वै स्तम्भः शुक्राद्यमीक्ष्यते ॥ ८५ ॥
सर्ववारैस्तथा मुख्यैः सर्वग्रहगणादृते ।
मूले रसातलं गच्छेत् आसुरिं तनुमाविशेत् ॥ ८६ ॥
ततः स्तम्भकृतैः काष्ठैः गण्डैश्चापि समुद्भवैः ।
वश्याकर्षणभूतानां जम्भस्तम्भनमोहनाम् ॥ ८७ ॥
कुर्यादाभिचारं वै तेषु प्रतिमा समाविशेत् ।
ततोर्ध्वं नभस्तलं गच्छेदूर्ध्वकाष्ठसमुद्भवैः ॥ ८८ ॥
प्रतिमां देव्य समायुक्ते सुरयान समाश्रयाम् ।
शाखासु सर्वतो गच्छेदन्तर्धानसुखोदयाम् ॥ ८९ ॥
दिशां च सर्वतो मन्त्री यथेष्टं वा कर्म समारभेत् ।
काष्ठाः सर्वे तु निर्दिष्टाः प्रतिमालक्षणमिष्यते ॥ ९० ॥
नौयान च समारूढा देव्याकारसुभूषिताः ।
कुमार्याकारचिह्नास्तु पञ्चचीरकमूर्धजाः ॥ ९१ ॥

G 537 तथैव करविन्यस्तौ मण्डलेऽस्मि हि बोधिताः ॥ ९२ ॥
तुम्बुरुः सार्थवाहो वै कर्णधारो महाद्युतिः ।
करवालकरन्यस्तो वाहमन्तोऽथ सव्यके ।
तिर्यग्नावगता गन्त्रा त्र्यङ्गुलद्व्यङ्गुलोद्भवा ॥ ९३ ॥
दीर्घशो वितस्तिमात्रं वा नावं चैव सुकारयेत् ।
सुसृष्टं श्वेतसंकाशं शङ्खेन्दुधवलसंनिभम् ॥ ९४ ॥
जया कारयेद् धीमान् तुम्बुरुं च विशेषतः ।
विजयां पीतनिर्भासामजितां चैव सुरक्तिकाम् ॥ ९५ ॥
अपराजिता कृष्णवर्णा वै शुक्लां चैव अनामिकाम् ।
प्रसन्नां तुम्बुरुमूर्त्या जयां चैव विनिर्दिशेत् ॥ ९६ ॥
ईषिद्भ्रुकुटिनो देव्या विजया चापराजिता ।
अजिता सौम्यवेशा तु कर्तव्याथ सर्वतः ॥ ९७ ॥
अङ्गुष्ठपर्वमात्रं वा कन्यसाङ्गुलिमात्रता ।
सर्वाः प्रमाणवेषाख्या कथिता सर्वमन्त्रिणैः ॥ ९८ ॥
दन्ती भोगगदा ख्याता सौवर्णपार्थिवोद्भवाः ।
पृथिव्यामधिपत्योर्वा कुर्यामेतां सुशोभनाम् ॥ ९९ ॥
रौप्यं ताम्रमयीं वापि प्रतिमा ख्याता वशावहा ।
आकर्षणं च भूतानां कांसी ह्युक्ता महीतले ॥ १०० ॥
त्रपुसीसकलोहैश्च प्रतिमा ह्युक्ताभिचारुके ।
समारै रत्नविशेषैश्च प्रवालस्फटिकसंभवैः ॥ १०१ ॥
कुर्यात् प्रतिमां सौम्यां आशु सिद्धिलिप्सुभिः ।
कपालास्थिमयै प्रतिमैः कर्म कश्मलजोद्भवम् ॥ १०२ ॥
शृङ्गैः विविधमुख्याद्यैः यथान्यस्तार्थलाभिनाम् ।
सिद्ध्यन्ते सर्वमन्त्रा वै क्षुद्रमन्त्राश्च भूतले ॥ १०३ ॥
यथासंभवतो लाभा यथाप्राप्तार्थसंभवा ।
सिद्ध्यन्ते सर्वतः कृत्वा प्रतिमाभिश्च योजिताः ॥ १०४ ॥ इति ॥

G 538 अथ तुम्बुरुः सार्थवाहः सर्वेषां साधनविधानं समाचक्षते सामान्यतः—दन्तमयीं प्रतिमां कृत्वा देवीनां कन्यसाङ्गुलिप्रमाणामतिगुप्ते प्रदेशे आहूय मूलमन्त्रैः वामहस्तेन धूपं दत्त्वा जयाया मूलमन्त्रं जपेत् । अष्टसहस्रमष्टशतं वा जपं कृत्वा यन्मनीषितं तत् सर्वं स्वप्ने कथयति । त्रिसंध्यं सप्तदिवसानि जपः कर्तव्यः । यथेप्सितं तत् सर्वं संपादयन्ते । वश्याकर्षणग्रहविमोक्षणादीनि सर्वाणि क्षुद्रकर्माणि कुर्वन्ति यथेष्टं वा सत्त्ववशीकरणे । उत्तमसाधनादिषु कर्माणि निमित्तानि दर्शयति । जातीकुसुमैर्देवीनां प्रतिमां ताडयेत् । राजा वश्यो भवति ।

जातीकलिकैः देवीनां प्रतिमां ताडयेत् । अष्टशतवारां पञ्चकलिकाभिः त्रिसंध्यं सप्त दिवसानि । यामिच्छति राजकन्यां महाधनोपेतां वराङ्गरूपिणीं तां लभते । जातीपुष्पैः पञ्चभिः कुसुमैः प्रतिमा एकैका आहन्तव्या त्रिसंध्यं सप्तदिवसानि अष्टशति । यामिच्छति वराङ्गनां तां लभते । तामेव प्रतिमामादाय मूर्धनि धारयेत् केशावृतं कृत्वा । भर्ता चास्य दासत्वेनोपतिष्ठति । ऊरुमध्ये संन्यसेत् । परमसौभाग्यं लभते । गृहीत्वाध्वानं व्रजेत् । चोरैर्न मुष्यते । परबलं दृष्ट्वा स्तम्भयति । संग्राममवतरेत् । शस्त्रैर्न हन्यते । अरिं मोहयति । परसैन्यं हस्त्यश्वरथपर्यटतीं स्तम्भयति । अञ्जनमभिमन्त्र्याक्षीणां जपेत् । यं प्रेक्षति सोऽस्य दासभूतो भवति । गोरोचनामभिमन्त्र्य आत्मवक्त्रे तिलकं कृत्वा यं प्रेक्षति सोऽस्य वशो भवति । यावत् तिलकस्तिष्ठते तावन्मैथुनेऽव्यवच्छिन्नरतो भवति । एवं वस्त्रधूपगन्धमाल्यपुष्पोपकरणविशेषांश्च यज्ञोपवीतदण्डकमण्डलुकाष्ठोपानहाशयनयानासनभोजनादिषु सर्वोपकरणविशेषां सप्ताभिमन्त्रितां कृत्वा आत्मना परैर्वा कारापयेत् । सर्वसत्त्वा वश्या भवन्ति किंकरानुवर्तिनः । माषजम्बुलिकां सप्ताभिमन्त्रितां कृत्वा प्रच्छन्ने स्थाने देवीनामग्रतः अग्नौ अष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्त दिवसानि सर्वे रण्डाः सर्वे डाकिन्यः सर्वे भूतग्रहाः सर्वे च कश्मलाः वशा भवन्ति किंकरानुवर्तिनः । योजनशतगमनागमने च गोमूत्रेण पिष्ट्वा पूर्वाह्णे पिण्डारकवन्दकं आम्रवन्दकं च गृह्य सहस्रसंपादितं कृत्वा पादं लेपयेत् । दिव्योदकेन ज्येष्ठोदकेन वा सर्वकर्मसु योज्य सर्व- G 539
पूजितेषु च कल्पेषु परमन्त्रविधानेनापि । किं त्वयं विशेषः । यत्र मण्डले सार्थवाहस्य तुम्बुरुर्भगवां धर्मस्वामी बुद्धः सर्वसत्त्वानामग्रः शाक्यमुनिरभिलिखितः, तस्मिं मण्डले दृष्टसमयस्य कर्माणि कर्तव्यानि । आशुसर्वकर्माणि सिद्ध्यन्तीति । दशसहस्राणि पूर्वसेवाजापः कार्य इति ॥

जया स्वकल्पं भाषते । मरकतेन्द्रनीलपद्मरागस्फटिकादिभिः प्रवालाङ्कुराश्मवैदूर्यरत्नविशेषैः सुवर्णरूप्यमयैर्वा प्रतिमां कृत्वा देवीनां कन्यसाङ्गुलप्रमाणा यवफलमात्रं वा मुक्ताफलं वा प्रतिमां कृत्वा नौयानसमारूढा चतुर्भगिनीनां सभ्रातृसहितानामन्तशः प्रतिमां कृत्वा पूर्ववद् यथाभरणप्रहरणविशेषाणां देवीनां शुचौ देशे चन्दनकुङ्कुमकर्पूरोदकाभिषिक्ते तैरेव मण्डलं कृत्वा अतिगुप्ते स्थाने मार्गशीर्षमासे कार्तिकपूर्णमास्यां वा अन्ये वा सितपक्षे प्रतिहारककुसुमागमे अन्ये वा शुक्लेऽहनि प्रशस्ते तिथौ चन्द्रभार्गववारे रोहिणीरेवत्यनुराधा ज्येष्ठनक्षत्रा भिक्षाहारेण उदकसक्तवाहारेण वा हविः फलभक्षणे वा मोचाम्रफलसनालिकेरैः पूर्वं जयायाः अक्षरलक्षं जपेत् । जप्ता कृतपुरश्चरणः तथागतबिम्बोदयमण्डलं तुम्बुरुर्दृष्ट्वा कृतरक्षः शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी मालतीकुसुमावबद्धशिरस्कः अहोरात्रोषितो भूत्वा साधनमाविशेत् । पूर्ववदर्घं कृत्वा जातीकुसुमौघं महाकृपापिण्डीतगरनागकेसरपुन्नागैर्वा एतेषामन्यतमेन नवैर्वा महतीं पूजां कृत्वा मालतीकुसुमानां पञ्च पञ्च गृहीत्वा देवीनां ताडयेत् । सभ्रातृसहितानां लक्षत्रयेण । षड्भिः मासैः विद्याधरो भवति । क्षणेन ब्रह्मलोकमपि गच्छति दिव्यरूपी । यथेष्टगतिरन्तरकल्पं जीवति । अन्यकल्पविधानेनापि सर्वलौकिकैः मन्त्रैः सिध्यतीति ॥

अजिता स्वकल्पं भाषते विजया चैव मन्त्रिणी । उभावप्येतौ महादेव्यौ स्वमन्त्रयोनिजौ सर्वकर्माणि कुर्वन्ति पूर्ववत् । किंतु एतेषामयं विशेषः—विजयायाः पीतपुष्पैः अजितायाः रक्त-

पुष्पैः तद्वर्णैश्चोपकरणविशेषैः सर्वकर्माणि साधयेत् । विजयाप्येवमाहुः । प्रतिमा पीतरक्ता
G 540 कार्या । पूर्ववत् तथागत मण्डलं कृत्वा तुम्बुरोः सार्थवाहस्य अजितायास्ताम्रमयी रक्तचन्दनमयी वा । मम कल्पे तु रूप्यरागमयी पीतनिर्भासा गोरोचनकुङ्कुमाक्ता च कार्या । तथैव सर्वं पूर्वनिर्दिष्टम् । उभौ परस्परतः देव्यावेवमाहुः । विजया अजिता च । यथाभिलषितमनसेप्सितं सर्वकर्माणि साधय इति ॥

अपराजिता एवमाह-अहमपि कल्पं भाषे । यन्मयोदितं मण्डलेऽस्मिं सर्वं तथैव कर्तव्यं स्वमन्त्रेणैव श्मशानाङ्गारेण श्मशानभस्मेन वा देवीनां प्रतिमां लिख्य कृष्णपुष्पैरभ्यर्च्य शत्रोर्नाम गृह्य जपेत् गुह्ये प्रदेशे श्मशाने वा । तत्क्षणान्म्रियते । उन्मत्तको वा भवति । अपस्मारेण वा गृह्यति । गोत्रोत्सादनं वा करोति साधकस्येच्छया । तत्रैव श्मशाने महामांसं जुहुयात् । अरीन् नाशयति स्तम्भयति शोषयति महाराक्षसेन गृह्णापयति गोत्रोत्सादं वा करोति साधकस्येच्छया । सर्वविषयजनपदं महामार्योपसर्गेण गृह्णापयति । पुनः स्वस्थीकरोति । एवं सर्वकर्माणि क्रूराणि परप्राणहराणि सद्योपघातानि । कृष्णपक्षे चतुर्दशीनवम्यष्टमीषष्ठीचतुर्थ्यादिभिस्तिथौ कार्याणि । आदित्याङ्गारकशनैश्चरवारैरहोभिः सर्वकर्माणि सिध्यन्ति अयत्नेनैव । श्मशानाङ्गारं गृह्य चण्डालकपाले नाममालिखेत् प्रतिबिम्बं वा स्त्रियः पुरुषस्य वा लिखेत् । तत्क्षणादेव सिध्यन्ति । भगेऽङ्गुलिं दत्वा च प्रतिबिम्बे कपालस्थे तत्क्षणाद् दह्यमाना स्त्री आगच्छति योजनशतादपि । कपालं गृह्य जपेद् अदृश्यो भवति । कज्जलं गृह्य अक्षीण्यञ्जयेत् । मदनाग्निना दह्यमाना स्त्री आगच्छति । सर्वकर्माणि कर्तव्यानीति ॥

एवमुक्ता देव्यो भगवन्तं याचयन्ति स्म—तद् वदतु भगवां धर्मस्वामी बुद्धो स्वमन्त्रं च । या चास्माकमनुकम्पार्थं सर्वसत्त्वानां च हिताय सुखाय स्वमन्त्रचर्याम् ॥

अथ भगवां तथागतः शाक्याधिराजतनयः तां कन्यामीषदवलोक्य भ्रातृसहितामिमां वाचमुदीरयन्ति स्म—न यूयं कन्यका भ्रातृपञ्चमा तथागतस्य गुणमाहात्म्यं मन्त्रचर्याप्रभावं श्रोतुं चर्यां वा प्रतिपद्येतुम् । कोऽन्यः सदेवके लोके सश्रमणब्राह्मणिकायां पूजायां श्रोतुं चर्यां
G 541 वा प्रतिपद्येतुम् । वर्जयित्वा उत्पादितबोधिचित्तानां दशभूमिप्रतिष्ठितेश्वराणां बोधिसत्त्वानां सर्वमन्त्रचर्यानिर्हारसमनुप्रवेशसर्वतथागतज्ञानमायाप्रतिविशिष्टमूर्धजः कोऽन्यः शक्तः श्रोतुं ज्ञातुं वा निर्देशं मन्त्रचर्यासमनुप्रवेशमाचक्षितुं सर्वसत्त्वानां च प्रकाशयितुम् । वर्जयित्वा तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां तत्प्रतिपन्नानां च सत्त्वानामुत्पादितबोधिचित्तानाम् । न यूयं कन्यकाः शक्यथ । तेन हि बोधिचित्तमुत्पादयध्वम् । सर्वसत्त्वानामन्तिके मैत्रचित्ता हितचित्ता भवथेति ॥

एवमुक्त्वा ताः कन्यकाः त्रिशरणपरिगृहीताः उत्पादितबोधिचित्ताश्च निषण्णा धर्मश्रवणाय तूष्णींभूता इति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात्
षट्चत्वारिंशतिमपटलविसराद् द्वितीयसाधनौपयिकमण्डल-
प्रवेशानुविधिश्चतुःकुमार्यपटलविसरः परिसमाप्तमिति ॥



४९ जपनियमादिसर्वकर्मपटलविसरः । G 542

अथ ता देवता भगवन्तं शाक्यमुनिं सर्वांश्च बोधिसत्त्वां सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धांश्च त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य शिरसा प्रणम्य बुद्धं भगवन्तं निरीक्षमाणाः स्थिताः अभूवं निरीक्षमाणाः समन्त्रतन्त्रकल्पविस्तराणि च भाषन्ते स्म–स्वमुद्राणां चौषध्यो यथाभिमतं भाषन्ते स्म । अनुज्ञाता तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन सत्त्वानामर्थाय सर्वमुद्रामन्त्रपटलविसरं भाषते स्म स्वकं स्वकं मुद्रापटलमोषधीनां च कल्पं भाषन्ते स्म ॥

तुम्बुरुः सार्थवाहो एवमाह–आदौ तावद् गन्धेन हस्तावुद्वर्त्य चन्दनमिश्रेण वान्यैर्वा सुगन्धजातिभिर्देवीनामग्रतः प्राङ्मुखः स्थित्वोदङ्मुखो वा वामहस्तेन दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठं मुष्टियोगेन गृहीत्वा अपसव्येन भ्रामयित्वा नाभिदेशे स्थापयेत् । मुष्टियोगेन शिरःस्थाने वा न्यसेत् । एष भगवं तुम्बुरेः सार्थवाहस्य समयमुद्रा मम । तदेव हस्तौ कर्मार्थसाधका वामहस्तेनाङ्गुष्ठमभ्यन्तरे प्रक्षिप्य दृढं प्रगृह्य मुष्टियोगेन नाभिदेशे न्यसेत् । एष भगवं मम जयाया मुद्रा सर्वकर्मकरा । तदेव मुष्टिं तर्जन्यां विकास्य तर्जयेत् । दक्षिणां दिशि । सर्वाविघ्ना प्रनश्यन्ते । एष द्वितीयो महामुद्रः द्वितीयमङ्गुलिमुत्क्षिप्य पश्चिमां दिशि मावर्जयेत् । एष द्वितीयो महामुद्रः सर्वदुष्टा नागां स्तम्भयति । निर्विषीकरणे च प्रयोक्तव्यः । तृतीयमङ्गुलिमुत्क्षिप्य उत्तरायां दिशि आवर्जयेत् । सर्वयक्षयक्षीकिन्नरमहोरगकूष्माण्डाश्च वश्या भवन्ति आकृष्टाः । एषा तृतीया महामुद्रा भवति सर्वाशापारिपूरिका । सर्वकर्माश्चाभिमुखा भवन्ति । चतुर्थमङ्गुलिं विकास्य अभ्यन्तरस्थितमङ्गुष्ठं संकोच्य हस्ततले पूर्वायां दिशि आवर्जयेत् । सर्वे देवा वश्या भवन्ति । देवानामग्रतः प्राङ्मुखो भूत्वा दर्शयेत् । सर्वभूता वश्या भवन्ति । सर्वसत्त्वानां च प्रियो भवति । एषा चतुर्थी महामुद्रा सर्वकामफलप्रदा । द्वौ हस्तौ संयम्य सर्वमङ्गुलिं विकास्य अञ्जल्याकारेण मूर्धन्या स्पृशेत् । ऊर्ध्वमधश्चावलोकयेत् आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तात् अधश्च रसातलम् । सर्वदेवदानवां वशमानयति । एष पञ्चमो महामुद्रः सर्वकर्मार्थसाधकः । एतदेव C 543 भगवं पञ्च महामुद्रा सर्वकामफलप्रदा भवतीति ॥

विजया एवमाह--पञ्च एव भगवं मम महामुद्रा भवन्ति । वामहस्तेनाङ्गुष्ठाभ्यन्तरं कृत्वा यथा नखा न दृश्यन्ते तथा कार्यम् । दृढं मुष्टिं कृत्वा प्रहारमार्जनयोगेनाधः अवलोकयेत् । एष प्रथमा महामुद्रा । द्वितीयमपि ऊर्ध्वमवलोकने तृतीयं दिग्दक्षिणमवलोकने । चतुर्थं सर्वदिग्ग्रहणे । पञ्चमं शिरसि न्यस्तम् । एत एव पञ्चमहामुद्रा सर्वकामफलप्रदा भवन्ति इति ॥

अजिता एवमाह–उभौ हस्तौ संयम्य उभौ अङ्गुष्ठमध्ये प्रक्षिप्य सुषिरञ्जल्याकारं कृत्वा मध्यमाङ्गुलिसूचिकौ कन्यसाङ्गुलिमुच्छ्रितौ पाशाकारं कृत्वा उभौ तर्जन्यौ तथैव चानामिकामवष्टभ्य अजिता नाम महामुद्रा भवति दुर्दान्तदमका पुण्या । सर्वकर्मार्थसाधकः । तदेव मुद्रं दक्षिणां दिशिमावर्जयेत् । द्वितीया महामुद्रा विजया नाम भवति । एवं पश्चिमायां दिशिमावर्जयेत् । जया नाम महामुद्रा भवति । एवमुत्तरायां दिशिमार्जयेत् । अपराजिता

नाम भवति महामुद्रा । एवं पूर्वायां दिशिमावर्जयेत् । महासार्थवाहो नाम महामुद्रा भवति । एत एव पञ्च महामुद्राः सर्वाशापारिपूरका भवन्ति इति ॥

अपराजिता एवमाह—पञ्च एव भगवं मम महामुद्रा भवन्ति । पूर्ववत् हस्तौ प्रक्षाल्य कृष्णपक्षे बन्धयितव्याः । तेनैव विधिना यथा साधनेऽस्मिं तथा योज्याः । दक्षिणाभिमुखं स्थित्वा देवीनामग्रतः उभौ हस्तौ संश्लिष्य मध्यमानामिकातर्जन्यादिभिः त्रिसूच्याकारं तृशूलं कृत्वा कनिष्ठिकाङ्गुलिमध्यमङ्गुष्ठौ च मध्ये प्रक्षिप्य हस्ततलेऽस्मिं मूर्ध्नि स्थाने तदा न्यसेत् । प्रथमं महामुद्रः अपराजिता नाम । एवं सर्वे प्रयोक्तव्याः यथा अजितायाः । यन्नामिका भगिन्यः भ्रातृसहिताः, तन्नामकाः सर्वेषां महामुद्रा भवन्ति । यदेष हस्ततले, एतत् सागरम् । यदेतदङ्गुष्ठं यद् भ्रातुस्तुम्बुरोः । यदेतदङ्गुल्यः सर्वे भगिन्यः अनुपूर्वसंज्ञकाः । तर्जनी जया मध्यमा विजया अनामिका अजिता कन्यसा अपराजिता । एतदनुपूर्वक्रमेण पञ्चामेव योज्यः । G 544 ध्याताः नमस्कृताश्च सांनिध्यं कल्पयन्ति । चिन्तिता नाचिन्तिता मुद्रा भवन्ति सर्वकर्मकराः सर्वाशापरिपूरकाः । विषमस्थे चिन्तयितव्या महामुद्राः । भयं न भवति इति ॥

तुम्बुरुः सार्थवाह एवमाह—अथेषां सामान्यतः अगदाभिधानं भवति । अस्माकं च ओषधीनां प्रभावो येन वश्या भवन्ति सर्वभूताः । कतमं च तत् ? अश्वत्थन्यग्रोधशृङ्गां गृहीत्वा क्षीरेण पोषयित्वा गोक्षीरेणालोड्य सितपक्षे अश्विनिनक्षत्रेण इन्दुवारे तिथौ सप्तम्यां पूर्वाह्णे ऋतुमत्याः स्त्रियाया अप्रसवधर्मिण्याः सार्थवाहमन्त्रेण परिजप्य सप्तवारां तथैव मुद्रां बध्वा पाययेत् पूर्वाभिमुखां कृत्वा । नारी गर्भं ग्रहेष्यते । पुत्रं जनयते दीर्घायुष्यम् । सुपतिना च सह स्वप्तव्यम् । तेषामेव मूलं गृहीत्वा मूलनक्षत्रेणोत्तरायां दिशि गतायां शिलायामादित्यवारेण सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यस्य ददाति स वशो भवति । आहारपानभोजनादिषु गन्धमाल्यताम्बूलादिषु प्रयोक्तव्यम् । यथा शरीरेषु विशति तथा कार्यम् । स्पृशति वाचा सत्त्वेनोपतिष्ठति । तदेव शृङ्गौ तेनैव विधिना यथा स्त्रिया तथात्मना पिबेत् । स्त्रीशतमपि गच्छति अव्यवच्छिन्नरेतः । तथा स्त्रियामपि बृहल्लिङ्गतामभिनिर्वर्तयति । गोर्जरुकः शतपादी वा नरशाकफलानि तथैव चूर्णमिदं पयसा सह पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति । एवमनेन प्रकारेण पूर्वमूलां स्वमुद्रां मन्त्रेणोपताः वर्जयित्वा विषमुपविषं च सर्वं योज्यम् । सर्वकर्मिषु च सर्वभूतानां वशीकरणमुत्तमं साधनीयाश्चेति ॥

जया एवमाह—जयन्तीमूलं गृह्य तथैव कर्तव्यं यथा तुम्बुरेः । सर्वकर्माणि साधयति । अथाकाशगमनमिच्छेत् जयन्तीमूलं तृलोहपरिवेष्टितं कृत्वा पुष्ययोगेन सोमवारेण शुक्लपक्षसप्तम्यां सपूर्णमास्यां चतुर्दश्याष्टम्यां त्रिरात्रोपितेन शुचिना कुङ्कुमभिश्रं कृत्वा मुखे प्रक्षेप्तव्याः । चन्द्रग्रहे मुक्ते अन्तर्हितो भवति । स्वमन्त्रं अक्षरलक्षं जप्त्वा गुडिकां प्रक्षिप्य चन्द्रग्रहे मुक्ते विद्याधरो भवति कामरूपी यथेष्टगतिः । विंशतिवर्षसहस्राणि जीवति । उद्गीर्णे पुनर्दश्यति । मानुषे पुनः एवं सर्वकर्माणि करोतीति ॥

विजया एवमाह—किंतु अयं विशेषः । अगस्तिवन्दाकं गृह्य ज्येष्ठोदकेन दिव्य- G 545
वारिणा वा पिष्ठ्वा स्वमन्त्रेणाभिमन्त्र्य पादौ म्रक्षयेद्योजनशतं गमनागमनं करोति अखिन्नं यावन्न त्यजते । विजयामूलं गृह्य तथैव कर्तव्यम् । तथा जयायाः सर्वं करोति इति ॥

अजिता एवमाह—अजितमूलं संगृह्य तथैव कर्तव्यम् । सर्वं साधयति इति ।

अपराजिता एवमाह—अपराजितामूलं गृह्य शुक्लकृष्णौ सपत्रफलमूलौ सर्वं तथैव कर्तव्यं यथा सार्थवाहस्येति । किंत्वयं विशेषः-आशुकारि क्षिप्रं सिध्यतीति ।

पुत्रञ्जरी कृताञ्जली सहा च सहदेवा च महोषधी ।
छत्राधिच्छत्रा तथा देवी महाकालश्च विश्रुतः ।
नाकुली गन्धनाकुल्यौ तथा संकुचितकर्णिका ॥ १ ॥
एतेषां मूलमादाय शूर्जचूर्णानि कारयेत् ।
अनेन पृष्टमात्रास्तु वशमायान्ति देहिनः ॥ २ ॥
रक्तशालितुषं चैव कुङ्कुमं सहचन्दनम् ।
कस्तूरिकासमायुक्तं दिव्यवारिसमप्लुतम् ॥ ३ ॥
त्रिलोहाकारयेवेष्टं वै गुटिकां कुर्वीत मन्त्रवित् ।
अक्षमात्रं ततः कृत्वा गुटिकां वक्त्रे तु तां न्यसेत् ॥ ४ ॥
चन्द्रग्रहेऽथ रात्रौ वा जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
प्रभाते सिद्धमन्त्रस्तु यथेष्टं याति देहजः ॥ ५ ॥
परिवर्तयते जापं वक्त्रस्था गुटिका सदा ।
यथेष्टपशुरूपी वा समन्ताद्धिण्डति मेदिनीम् ॥ ६ ॥
उद्गीर्णे तथा युक्तिः स्वदेही भवति जापधीः ।
अन्यथा यदि वक्त्रस्था विश्वरूपा भवेत् सदा ॥ ७ ॥
स्वमन्त्रेणात्मरक्षं तु कृतजापी विशिष्यते ।
अन्यथाह्वयते गुटिका यदि रक्षां न करोति जापी ॥ ८ ॥
सर्वमन्त्रास्तु सिध्यन्ते मन्त्रराट् सर्वलौकिकाः । G 546
पूजनात् सर्वकल्पानां सर्वसर्वैश्च भाषिताम् ।
तेऽस्मिं सिद्धिमायान्ति मन्त्रतन्त्राभिभाषिताम् ॥ ९ ॥
विचरन्ति महीं कृत्स्नां विचित्रा वेषधारिणो ।
गतियोनिविदेहस्थाः श्वानवायसरूपिणः ।
मार्जार तथोलूकाः मूषमण्डूकवृश्चिकाः ॥ १० ॥
सर्वयोनिसमाकीर्णाः विदेहा देहविस्थिताः ।
पर्यटन्ति महीं कृत्स्नां सर्वभूतरुताविनः ॥ ११ ॥

सर्वसत्त्वे वशा वेषा सर्वभूते प्रियोदया ।
कुर्वन्ति च सदा मर्त्या तदा तेषां नियोजयेत् ॥ १२ ॥
नान्येषां कथ्यते लोके पूजिताश्चैव देवतैः ।
सर्वं च सर्वतो ज्ञेयं सर्वमन्त्रप्रसाधकम् ॥ १३ ॥
कथितं कथयिष्यन्ति ये चान्ये भुवि मानवाः ।
तत् सर्वं कल्पविसरं इह चोक्तं लोकमातरैः ॥ १४ ॥
एवमुक्तास्तु देवा वै सूत्रान्तसहपञ्चमाः ।
तूर्ष्णींभूता ततस्तस्थु प्रणम्य जिनपुंगवम् ॥ १५ ॥
निषण्णो धर्मश्रवणाय तस्मिं पर्षद्वरेद्वरे ।
अधिष्ठानां च बुद्धानां अशेषाणां च जिनात्मजाम् ॥ १६ ॥
अध्येष्य च महावीरं तूष्णीं भूतास्तदनन्तरे ।
अथ वज्रधृक् श्रीमां पूजयामास देवताः ॥ १७ ॥
साधुकारमदात् तेषां सत्त्वानुग्रहकाम्यया ।
साधु साधु ततः कन्य समये तिष्ठध्व यत्नताम् ॥ १८ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पात् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात् सप्तचत्वारिंशतिमपटलविसरात् तृतीयः चतुःकुमार्योपयिकसर्वसाधनजपनियममुद्राओषधितन्त्रमन्त्रसर्वकर्मपटलविसरं परिसमाप्त इति ॥

५० यमान्तकक्रोधराजपरिवर्णनम् । G 547

अथ खलु भगवां वज्रपाणिर्यक्षसेनापतिः तस्यां पर्षदि संनिपतितोऽभूत् संनिषण्णः । उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य स येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमेतदवोचत्-यो हि भगवं मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन क्रोधराजा यमान्तको नाम भाषितः, तस्य कल्पं विस्तरशो भगवता न प्रकाशितम्, नापि मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन । अहं भगवं पश्चिमतां जनतामवेक्ष्य भगवति परिनिर्वृते शासनान्तर्धानकालसमये वर्तमाने महाभैरवकाले युगाधमे सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धविनिर्मुक्ते बुद्धक्षेत्रे तथागतशासनसंरक्षणार्थं धर्मधातुचिरस्थित्यर्थं सर्वदुष्टराज्ञां निवारणार्थं रत्नत्रयापकारिणां निग्रहार्थं वैनेयसत्त्वकौशलाचिन्त्यबोधिसत्त्वचर्यापरिपूरणार्थं अचिन्त्यसत्त्वपाकमभिनिर्हरणार्थं च पश्चिमे भगवं काले पश्चिमे सुगतसमये शासनविप्रलोपे वर्तमाने य इमं यमान्तकं नाम क्रोधराजानं यथाविधिकल्पविनिर्दिष्टं प्रयोक्ष्यति, तस्य सिद्धिर्भविष्यति । नियतं च दुष्टराज्ञां शासनापकारिणां च सत्त्वानां महायक्षाणां महोत्साहिनां निग्रहानुग्रहप्रवृत्तानां महाकरुणाविरहितानां तेषामयं क्रोधराजा प्रयोक्तव्यः नान्येषाम् ॥

अथ भगवांतूर्णीं भावेन बुद्धविकुर्वणाधिष्ठानं नाम समाधिं समापद्यते स्म । मञ्जुश्रीः कुमारभूतोऽपि तूर्णींभावेन स्थितोऽभूत् । सर्वावन्तश्च पर्षन्मण्डलं षड्विकारं प्रकम्पमजायत ।

भीताश्च देवसंघा उत्रस्ताः सर्वबालिशाः । G 548
सर्वदेवाश्च नागाश्च दानवेन्द्राः समातराः ॥ १ ॥
सर्वे च ग्रहमुख्याद्या देवसंघाः प्रकम्पिरे ।
मानुषाः प्रकम्पे भिन्नमनसो दुष्टचित्ताश्च पूतनाः ॥ २ ॥
आर्ता भीताः ततस्ते वै रौद्रचित्ता नराधिपाः ।
शरणं ते तदा जग्मुः धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३ ॥
गुह्यकेन्द्रस्य यक्षस्य वज्रपाणिमहाद्युतेः ।
मञ्जुघोषस्य ते भीताः कुमारस्यैव मन्त्रराट् ।
समयं च तदा चक्रे मञ्जुघोषस्य अन्तिके ॥ ४ ॥
परित्रायस्व भो बाल सर्वसत्त्वानुकम्पक ।
निर्दहिष्यामि नो अद्य क्रूरमन्त्रैः सुदारुणैः ॥
क्रोधेन मूर्च्छिता ह्यद्य प्रतिष्ठाम महीतले ॥ ५ ॥
ततस्तां बोधिसत्त्वा वै बालरूपी महाद्युतिः ।
मा भैष्ठथ सुराः सर्वे यक्षराक्षसदानवाः ॥ ६ ॥
समयं वो मया ह्युक्तः अलङ्घ्यः सर्वदैवतैः ।
मानुषामानुषाश्चापि सर्वभूतैस्तु केवलैः ॥ ७ ॥

मैत्रचित्त सदाभूत्वा तन्मन्त्रं स्मरते सदा ।
संबुद्धं द्विपदामग्र्यं शाक्यसिंहं नरोत्तमम् ॥ ८ ॥
तेनैव भाषितं मन्त्रं उष्णीषाद्याः सलोचनाः ।
त्रैलोक्यगुरवश्चक्री तेजोराशिं जयोद्भवम् ॥ ९ ॥
विजयोष्णीषमन्त्राद्यां पद्मपाणिं सलोकितम् ।
अवलोकितनाथं च भृकुटी तारां यशस्विनीम् ॥ १० ॥
देवीं च सितवासिन्यां महाश्वेता यशोवतीम् ।
विद्यां भोगवतीं चापि हयग्रीवश्च मन्त्रराट् ॥ ११ ॥
एते ह्यब्जकुले मन्त्रा प्रधाना जिननिःसृता ।
एकाक्षरश्चक्रवर्ती वा मन्त्राणामधिपतिं प्रभुम् ॥ १२ ॥
G 549 स्मृत्वा देवदेवं च मन्त्रनाथं महाद्युतिम् ।
क्रोधमप्रभवो तस्य यमान्तो नाम नामतः ॥ १३ ॥
अवलोकितनाथस्य चेतांसि करुणोदयाः ।
महाकरुणाकृष्टमनसो पूर्वबुद्धैः प्रकाशिता ॥ १४ ॥
सा तारा तारयते जन्तूं अवलोकितभाषिता ।
विद्या समाधिजा आर्या ख्याख्या संज्ञारूपिणी ॥ १५ ॥
बोधिसत्त्वोऽथ चरते बोधिचारिकमुत्तमाम् ।
लोकधातुसहस्राणि असंख्या बहुधा पुनः ॥ १६ ॥
पर्यटन्त तदा देवी सत्त्वानां हितकारणा ।
स्त्रीरूपधारिणी भूत्वा मन्त्ररूपेण देहिनाम् ॥ १७ ॥
विधिनेयतदां सत्वां बोधियानेति योजयेत् ।
चर्या बोधिसत्त्वानां अचिन्त्येयं प्रकाशिता ॥ १८ ॥
वज्रपाणिं तथा वीरं मन्त्राणामधिपतिं स्मरेत् ।
मामकीं कुलंदरीं देवीं त्रैलोक्यप्रतिपूजिताम् ॥ १९ ॥
शङ्कुला मेखलां चैव वज्रमुष्टिं यशस्विनीम् ।
क्रोधेन्द्रतिलकं शत्रुं नीलदण्डं सभैरवम् ॥ २० ॥
एते दूतगणाः क्रोधाः विद्याध्यक्षाः प्रकीर्तिताः ।
प्रधाना वज्रकुले सर्वे अस्मद्रक्षिता हि ते ॥ २१ ॥
गजगन्धं तथा लोके बोधिसत्त्वं महर्द्धिकम् ।
महास्थानगतं धीमं बोधिसत्त्वं महर्द्धिकम् ॥ २२ ॥
ज्येष्ठं तनयमुख्यं तु समन्तभद्रं सुशोभनम् ।
यः स्मरेत् तदा काले भयं तेषां न विद्यते ॥ २३ ॥

मणिभद्रं तथा नित्यं जम्भलं यक्षमुत्तमम् ।
सर्वश्रावकप्रत्येकं बुद्धानां च कुतो भयम् ॥ २४ ॥
स्मरणात् पूजनात् तेषां महारक्षा प्रकीर्तिता ।
बृहत् फलं तदा देवां पुण्याभां च असंज्ञका ॥ २५ ॥
स्त्रीरूपधारिणीं देवीं वीतरागां महर्द्धिकाम् । G 550
रत्नत्रये च पूजां वै प्रसन्ना जिनशासने ॥ २६ ॥
तेषां न विद्यते किंचित् मित्रामित्रभयं यदा ।
समयं तत्र इत्युक्तः अलङ्घ्यं सर्वमन्त्रिभिः ॥ २७ ॥
एतत् क्रोधवरे ख्यातं यमान्तस्यैव वर्णिते ।
समये च स्थितां सत्त्वां अभक्षाः सर्वमानुषाः ॥ २८ ॥
ततस्ते हृष्टमनसः सर्वे देवा ह्यमानुषाः ।
समये तस्थिरे सर्वे जिनपुत्रानुबुद्धिना ॥ २९ ॥
यक्षसेनापतिः क्रुद्धः वचनं चेत् पराभवम् ।
संप्रकम्प्य तदा सर्वां लोकधातुमसंख्यकाम् ॥ ३० ॥
निरर्थं क्रोधराजं तु किमर्थमिदं प्रकाशितम् ।
जिनपुत्रैस्तदा पूर्वं सत्त्वानां विनयकारणात् ॥ ३१ ॥
प्रभावं क्रोधराजस्य उद्यष्टं च पुरातनम् ।
एवमुक्तास्ततो वज्री वज्रं निक्षिप्य तस्थुरे ॥ ३२ ॥
ततः प्रहस्य मतिमां बालरूपी महर्द्धिकः ।
कुमारो मञ्जुघोषो वै इमां वाचमुदीरयेत् ॥ ३३ ॥
मा प्रदुष्य महायक्ष वज्रपाणि महर्द्धिक ।
मया प्रकाशितो ह्येष क्रोधराजो महर्द्धिकः ॥ ३४ ॥
तवैव मन्त्रं दास्यामि यथेच्छं संप्रकाशय ।
त्वया न शक्यं क्रोधस्य प्रभावं परिकीर्तितम् ॥ ३५ ॥
तयैव संस्थितो ह्येषं देहस्थ इह दृश्यते ।
आकृष्टः तेन वै तुभ्यं हृदयं ते यदि पृच्छसि ॥ ३६ ॥
न शक्यं निवर्तितुं ह्यत्र क्रोधाविष्टो हि वै प्रभो ।
यथेच्छं संप्रकाशयस्व समयं त्यक्त्वानुमन्यतः ॥ ३७ ॥
अस्नाते प्रसुप्ते च ग्राम्यधर्मानुवर्तिते ।
तैलाभ्यक्ते अरक्षे च दुष्टचित्तेषु वा सदा ॥ ३८ ॥
त्यक्तो मन्त्रवरैः सर्वैः अप्रसन्नेषु शासने । G 551
वैचिकित्सो तथा मर्त्यो अश्राद्धेषु दुःस्थिते ॥ ३९ ॥

सद्धर्मरत्नसंघे च प्रतिक्षेप्तव्याः समाहिते ।
नग्नके च सदोच्छिष्टे अशुच्याचारगोचरे ॥ ४० ॥
अगुप्ते ह्यमन्त्रयुक्ते च नित्योच्छिष्टे हि निर्घृणे ।
देवावसथचैत्येषु विहाराङ्गणमण्डले ॥ ४१ ॥
मैथुनाभिरता तत्र तेषां क्रोधो विनाशयेत् ।
समयभ्रष्टा प्रसन्नाश्च मन्त्रयुक्तिमजानकाः ॥ ४२ ॥
इषिस्खलितगताचारा तेषां क्रोधो निपातयेत् ।
सर्वेषां मानुषां लोके अप्रमादो न विद्यते ॥ ४३ ॥
प्रमादमभिरागिन्यः समयभ्रंशानुच्छिद्रिणे ।
हन्यन्ते क्रोधराजेन अप्रयुक्तैस्तु मन्त्रिभिः ॥ ४४ ॥
सर्वथा बालिशाः सर्वे प्रमादा वशगामिनः ।
वीतरागां सदा मुक्त्वा प्रत्येकार्हश्रावकाम् ॥ ४५ ॥
सर्वे वै क्रोधराजस्य वध्या दण्ड्याश्च सर्वतः ।
एवमुक्तस्तु मञ्जुश्री करुणाविष्टेन चेतसा ॥ ४६ ॥
अचिन्त्यं चर्य बुद्धानां बोधिसत्त्वां महर्द्धिकाम् ।
एवमुक्त्वा ततः सर्वां तूष्णीं भूतो हि तस्थुरे ॥ ४७ ॥
अथ वज्रधरः श्रीमां भूयो वज्रं परामृशेत् ।
गृह्य वज्रं तदा तुष्टो लब्ध्वानुज्ञां प्रभाषते ॥ ४८ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद् अष्टचत्वारिंशतमः यमान्तकक्रोधराजपरिवर्णनमन्त्रमाहात्म्य-नियमपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



५१ यमान्तकक्रोधराजाभिचारुकपटलः । G 552

अथ खलु वज्रपाणिर्गुह्यकाधिपतिः सर्वावन्तं महापर्षन्मण्डलमवलोक्य **सर्वांस्तां शुद्धावासोपरिनिषण्णां** भूतसंघानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तो मार्षा यमान्तकस्य **क्रोधराजस्यापरिमितबलपराक्रमस्य** दुर्दान्तदमकस्य वैवस्वतजीवितान्तकरस्य दुष्टसत्त्वनिग्रहतत्परस्य **महाबोधिसत्त्वस्य मञ्जुश्रियभाषितस्य** महाबोधिसत्त्वस्यादौ तावत् पटविधानं भवति ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते ।
अरीणां भयमुत्पन्ने पटमेतं लिखापयेत् ॥ १ ॥
गृह्य कृष्णे निशापक्षे चतुर्दश्याष्टमौ तिथौ ।
श्मशाने मृतकं प्राप्य ब्राह्मणस्य अम्बरं तम् ॥ २ ॥
गृह्य ततो रात्रौ असृणां रञ्जयेत् ततः ।
भूयो जलशौचं तु सुशुष्कं कारयेत्ततः ॥ ३ ॥
क्रूरं चित्रकरं क्रुद्धं भीषणे चापि लेखयेत् ।
श्मशाने कृष्णपक्षे च त्रिरात्रेणैव समापयेत् ॥ ४ ॥
अष्टमीं चतुर्दशीरात्रौ महावसादीपदीपितः ।
तत्र स्थितः चित्रकरः दक्षिणाभिमुखः सदा ॥ ५ ॥
कपाले मानुषासीने कृतरक्षः समाहिते ।
स्वयं वा आलिखेन्मन्त्री अरिदुःखभयार्दितः ॥ ६ ॥
प्रथमे रात्रिमारब्धे अरीणोऽपि महद्भयम् ।
द्वितीये महाज्वरेणापि आविष्टः शत्रुमूर्च्छितः ॥ ७ ॥
तृतीये मुञ्चते प्राणां परलोकगतो भवेत् ।
कृतस्तस्य भवेच्छान्ति अप्रसन्नेन मन्त्रिणा ॥ ८ ॥
देहं शुष्यति शत्रोर्वै गृहभङ्गोपजायते ।
लिखनाद् पटमेवं तु यमान्तस्य महाभये ॥ ९ ॥
षण्मुखं षट्चरणं लेख्यं कृष्णवर्णं वृकोदरम् ।
...... क्रुद्धं व्याघ्रचर्मनिवसनम् ॥ १० ॥ G 553
नानाप्रहरणं घोरं दण्डहस्तं भयानकम् ।
रक्तनेत्रं सरोषं च त्रिनेत्रगतिचिह्नितम् ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वकेशं सजालं वै धूम्रवर्णं क्वचित् तथा ।
कृष्णाञ्जननिभं घोरं प्रावृण्मेघसमप्रभम् ॥ १२ ॥
कृतान्तरूपसंकाशं महिषारूढं तु आलिखेत् ।
क्रूरकर्मं महाभीमं रौद्रं रुद्रघातकम् ॥ १३ ॥

यमजीवितनाशं वै उचन्तं सत्त्वघातकम् ।
क्रूरं भृशं सर्वकर्माणं भीषणापतिदारुणम् ॥ १४ ॥
भयस्यापि भयत्रासं मारकं सर्वदेहिनाम् ।
एतत् क्रुद्धवरं लिख्य आत्मशोणितवर्णकैः ॥ १५ ॥
व्यतिमिश्रमुज्ज्वलैर्लेख्य महावसागव्यमिश्रितैः ।
कपालभाजनैश्चापि मानुषास्थिसुसंभवैः ॥ १६ ॥
कूर्चकैर्वार्किकैर्मुक्तो मृतकेशसुसंभवैः ।
अभुञ्जानस्तथालिख्य स्वयं वा चित्रकरेण वा ॥ १७ ॥
प्रभूतबलिपुष्पाद्यैः रक्तमाल्यैर्वरचन्दनैः ।
महामांसवसाधूपैर्वसादीपैश्च भूषितम् ।
कारयेत् पटवरमादौ अन्ते मध्ये च पूजना ॥ १८ ॥
परिस्फुटं तु पटं कृत्वा वित्तं दत्त्वा तु शिल्पिने ।
प्रभूतं चापि मूल्यं वै येन वा तुष्यते सदा ।
अवध्यं तस्य कर्तव्यं धर्मं चापि सहाभयम् ॥ १९ ॥
यथेप्सितं तस्य कुर्वीत वीरमूल्यं समासतः ।
सफलं शिल्पिने कर्म निरामिषं चापि वर्जयेत् ॥ २० ॥
तथा तथा प्रयुञ्जीत यथासौ संप्रतुष्यते ।
महारक्षा च कर्तव्या अन्यथा मृयते ह्यसौ ॥ २१ ॥
सकुटुम्बो नश्यते कर्मी आत्मनश्चापि रक्षयेत् ।
जप्तविधेन कर्तव्यं नान्येषां विधिरुच्यते ॥ २२ ॥
G 554 परिस्फुटं तु पटं कृत्वा दृष्ट्वा वा मनसेप्सितम् ।
सर्वां च कारयेत् कर्मां रौद्रां शत्रूपघातकाम् ॥ २३ ॥
गृह्य पटवरं गच्छेद् यथेष्टं यत्र वाञ्छितम् ।
महायक्षां महाराज्ञां महावित्तसगर्वितनाम् ॥ २४ ॥
महामानातिमानानां क्रूरां क्रूरकर्मिणाम् ।
रत्नत्रयापकारीणां नास्तिक्यां मन्त्रवर्जिताम् ।
अपूजकानां तु मन्त्राणां तद्भक्तासूतनिन्दकाम् ॥ २५ ॥
जापिनां निन्दका ये च तेषां चैव पराभवा ।
तेषां प्रयोगः कर्तव्यः विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ २६ ॥
अधर्मिष्ठां तथा नित्यां सर्वसत्त्वानुतापिनाम् ।
तेषां तु कर्म प्रयुञ्जीत सद्यः प्राणोपरोधिनम् ॥ २७ ॥

गृह्यारिष्टफलं पत्रं त्वचं चापि समूलतः ।
काञ्जिकं आम्लसंयुक्तं मानुषास्थिसचूर्णितम् ॥ २८ ॥
कटुतैलविषं चैव अम्लवेतसमार्द्रकम् ।
राजिकं रुधिरं चैव मानुषोद्भवसंभवम् ॥ २९ ॥
गृह्य सर्वं समायुक्तं पटं स्थाप्य विवेकतः ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पटश्चापि उदङ्मुखः ॥ ३० ॥
कृत्वाग्निकुण्डं यथेष्टं वै शुष्ककाष्ठैः कटुमुद्भवैः ।
ज्वालयं कटकैश्चापि तस्मिं कुण्डे समाहितः ।
गृह्यात् सर्वसमायुक्तं विधिनिर्दिष्टहौमिकम् ॥ ३१ ॥
अग्निराहूय मन्त्रैस्तु क्रोधराजस्य वै पुनः ।
बद्ध्वा शूलमुद्रं तु सर्वकर्मेषु वा इह ॥ ३२ ॥
सहस्राष्टमाहुतिं दद्यादग्निकुण्डे सरोषतः ।
प्रथमे पुत्रमरणं सत्त्वे प्राप्ते तु तं भवेत् ॥ ३३ ॥
द्वितीये चापि भार्या वै पार्ष्वद्याः सनायकाः ।
तृतीये मरणं तस्य यस्योद्दिश्यं हि तत् कृतम् ॥ ३४ ॥
अर्धरात्रे यदा जापः क्रियते पटसंनिधौ । G 555
शत्रूणां च वधार्थाय तत् तथैवानुवर्तते ॥ ३५ ॥
राष्ट्रभङ्गं भवेत् तस्य सेनायां मारिसंभवम् ।
अग्निदाहं महावातं महावृष्टिश्च जायते ॥ ३६ ॥
समस्तं सर्वतश्चकं परचक्रेण हन्यते ।
विविधोपद्रवा तस्य महाव्याधिसमाकुलम् ॥ ३७ ॥
देहं शुष्यति सर्वं वै तस्य राज्ञो न संशयः ।
अमानुषाकीर्णं सर्वन्तं गृहं तस्य समाकुलम् ॥ ३८ ॥
धृतिं न लभते शय्यां आवर्तं च महीतले ।
राक्षसैः प्रेतक्रव्यादैः गृहं तस्य समावृतम् ॥ ३९ ॥
आर्तो बिभेति सर्वत्र तीव्रदुःखैः सुदुःखितः ।
अशक्ता रक्षितुं तस्य महेश्वराद्या भुवि देवता ॥ ४० ॥
ब्रह्माद्या लोकपालाश्च शक्राद्या त्रिदशेश्वराः ।
सर्वमन्त्राः सर्वदेवाश्च सर्वलौकिकसंभवा ॥ ४१ ॥
दुष्टारे मानिने क्रुद्धे तदन्तं तस्य जीवितम् ।
अर्धरात्रे तु मध्याह्ने भाषिते यत्र जापिनः ।
क्रुद्धो वैवस्वतः साक्षाद् यमराजावकल्पते ॥ ४२ ॥

यथेष्टं कृष्णपक्षे च पटं संस्थाप्य महीतले।
महतिं पूजां बलिं कृत्वा श्मशानारण्यसंभवे ॥ ४३ ॥

एकवृक्षे तथा लिङ्गे शैले प्रान्ते गुहासु वा।
एकाकी अद्वितीयश्च सदा कर्म समारभेत् ॥ ४४ ॥

महारण्ये विविक्ते च शून्ये देवकुलेषु च।
शून्ये मन्दिरे नद्यां अम्बुधेः तटमाश्रिते ॥ ४५ ॥

तत्र देशे समीपे वा तत्रस्थे वा यथेप्सितम्।
योजनाशतमभ्यन्तर सदा कर्माणि कारयेत् ॥ ४६ ॥

एतत् प्रमाणकर्माणि कारयेच्छुचिना सदा।
556 अप्रमेयस्थितो वापि गतदेशामितः शुचिः ॥ ४७ ॥

अचिन्त्यमन्त्रविषये अचिन्त्यं मन्त्रगोचरम्।
अचिन्त्यो ऋद्धिमन्त्राणां अचिन्त्यं सिद्धि जापिनाम्।
अचिन्त्यं दृश्यते कर्म फलं चापि अचिन्त्यकम् ॥ ४८ ॥

क्रोधराजस्य यमान्तकस्य महात्मने।
कर्मं ऋद्धिविषयं विकुर्वणं च महोदयम्।
अचिन्त्यं रूपिणां सिद्धि दृश्यते ह महीतले ॥ ४९ ॥

अशक्ता रक्षयितुं सर्वे बोधिसत्त्वा महर्द्धिकाः।
किं पुनर्लौकिका मन्त्राः सग्रहा मातराश्च ताः ॥ ५० ॥

ईशानश्च सविष्णुर्वा स च स्कन्दो पुरंदरः।
समये धारिता तेऽपि सजिना जिनपुत्रकाः ॥ ५१ ॥

बोधिसत्त्वा महात्मानो दशभूमिसमासृताः।
प्रत्येकबुद्धा ह्यर्हन्त वीतरागा महर्द्धिकाः।
अशक्ता रक्षयितुं तेऽपि समयं तैः पुरा कृतम् ॥ ५२ ॥

संक्षेपेण तु वक्ष्यामि शृणुध्वं भूतकाङ्क्षिणा।
नान्यो निवर्तने शक्तः अप्रसन्नेन जापिने।
कुतस्तस्य भवेच्छान्तिरतुष्टे मन्त्रवरे इह ॥ ५३ ॥

यदा प्रसन्नमनसः करुणार्द्रा वा भवेत् कदा।
जापिनः क्रोधराजस्य यमान्तस्य महात्मने।
तदादौ लभते शान्तिं धृतिं वा जीवधारणम् ॥ ५४ ॥

पिचुमन्दं कटुतैलं च काञ्जिकं विषपञ्चमम्।
रुधिरं मानुषं मांसं लवणं त्रिकटुकं पुनः ॥ ५५ ॥

राजिकं शङ्खचूर्णं च अम्लवेतसमार्द्रकम् ।
धुर्धूरकस्य तु मूलानि कोशातक्या तथैव च ॥ ५६ ॥
एरण्डमूलं यवक्षारं कुसुम्भं चापि कण्टकम् ।
मदनोद्भवमूलं च लशुनं गृञ्जनकं तथा ॥ ५७ ॥
पलाशशाखोटकं चैव पलाण्डुं ससुरासवा । G 557
सर्वान्येतानि समं कृत्वा जुहुयात् अग्नौ पटसंनिधौ ॥ ५८ ॥
हुते सहस्रमष्टे तु शत्रुनाशः समूलतः ।
सर्वां वा राजिकां हन्या पारिषद्यां शुभाशुभाम् ॥ ५९ ॥
समूलोद्धरणं तस्य द्वितीये संध्ये तु जुह्वता ।
तृतीये समनुप्राप्ते संध्ये जुह्वत जापिना ॥ ६० ॥
दुर्भिक्षं भवते तस्य जने चापि सनैगमे ।
अनावृष्टिमहामार्यः राक्षसाकीर्णसर्वतः ॥ ६१ ॥
अग्निदाहं शिलापातं वज्रनिर्घातसाशनिः ।
जनपदं देशविषयं वा यवाः तस्य नराधिपे ॥ ६२ ॥
बह्वोपद्रवसंपातं परचक्रागमं तथा ।
अनेकधा बहुधाश्चापि तस्य देशे उपद्रवाः ।
जायन्ते विविधाकाराः महालक्ष्मीप्रणाशनैः ॥ ६३ ॥
धूर्धूरकमूलं जुहुयादेकं उन्मत्तिस्तस्य जायते ।
कटुकं जुह्वतो नित्यं महादाहेन गृह्यते ।
अल्यम्लं जुह्वतो मग्नौ महाज्वरं शीतसंभवम् ॥ ६४ ॥
संभवेत् तस्य देहस्थः दुष्टराज्ञां बलगर्विताम् ।
महायक्षां धनिनां क्रूरां महासैन्यसमाश्रिताम् ।
द्विरात्रे सप्तरात्रे वा मरणं तस्य जीवितम् ॥ ६५ ॥
यो यस्य देवताभक्तः नक्षत्रो वा नामतो लिखेत् ।
श्मशानाङ्गारैः कृतिं कृत्वा पटस्याग्रतभूसृतम् ।
आक्रम्य पादतो मूर्ध्ना संक्रुद्धो जपमाचरेत् ॥ ६६ ॥
अकस्माद् विविधैः शूलैः गृह्यतेऽसौ नराधिपः ।
महाव्याधिसमाक्रान्तः मृयते वापि तत्क्षणात् ॥ ६७ ॥
पशुना हन्यते चापि व्यङ्गो वा भवते पुनः ।
भक्ष्यते राक्षसैः क्रूरैः कश्मलामानुषोद्भवैः ॥ ६८ ॥
क्रव्यादैः पूतनैश्चापि पिशाचैः प्रेतमातरैः । G 558
तत्क्षणाद्धन्यते चापि आत्मनश्चापि सेवकैः ॥ ६९ ॥

अथ वज्रधरः श्रीमां इत्युक्त्वा परिषेत्तदा ।
सर्वबुद्धां नमस्कृत्य तूष्णीं भूतो ततः स्थिरे ॥ ७० ॥
लोकानां हितकाम्यार्थं पुनरेवमूमुचत् ।
सर्वां यक्षगणां मन्त्रः यक्षीणां च स सर्वतः ॥ ७१ ॥
उवाच बोधिसत्त्वो वै यक्षसेनापतिस्तदा ।
यक्षीणां पटलं वज्रे सर्वकर्मोपसंहितम् ।
सर्वाकर्षं वशं चैव सर्वशल्यानन्नुद्धरम् ॥ ७२ ॥
मैथुनार्थी यदा मन्त्री रागान्धो वाथ मूढधीः ।
न शक्य प्रतिपक्षेण सुगताज्ञैर्निवारितुम् ॥ ७३ ॥
अनादिमति संसारे पुराभ्यस्तं सुदुःखितैः ।
दुःखा दुःखतरं तेषां गतिरुक्ता तथागतैः ॥ ७४ ॥
शोभनां गतिमाप्नोति ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
भद्रं शिवं च निर्दिष्टमन्ते शान्तिमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥
त्रियानसमतारूढः माप्नुयान्ते सुनिर्वृतिम् ।
विपरीताः कुगतिग्रस्ता ये रागान्धा तपस्विनाम् ।
संसारगहने घोरे भ्रमन्ति गतिपञ्चके ॥ ७६ ॥
तेषां दुःखितामर्थे कामभोगं तु वर्ण्यते ।
ते निर्वृता सर्वपापा तु त्रिधा दोषनिवर्तिता ।
शास्तुराज्ञासमाविष्टा मुच्यन्ते सर्वबन्धना ॥ ७७ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्राद्
एकूनपञ्चाशतिमः यमान्तकक्रोधराजाभिचारुकनियमः
द्वितीयः पटलविसरः परिसमाप्तः ॥



५२ यमान्तकक्रोधराजसर्वविधिनियमपटलः । G 559

अथ खलु शान्तमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः तस्मिन्नेव पर्षत्संनिपाते संनिपतितः संनिषण्णोऽभूत् । उत्थायासनात् सर्वबुद्धं प्रणम्य पर्षन्मण्डलमध्ये स्थित्वा भगवन्तं शाक्यमुनिं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चरणयोर्निपत्य स येन वज्रपाणिः महायक्षसेनापतिः तेन व्यवलोक्य वाचमुदीरयति स्म—अति क्रूरस्त्वं वज्रपाणे यस्त्वं सर्वसत्त्वानां सत्त्वोपघातिकं कामोपसंहितं च मन्त्रतन्त्रां भाषयसे । न खलु भो जिनपुत्र बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामेष धर्मः । महाकरुणाप्रभाविता हि महाबोधिसत्त्वा बोधिसत्त्वचारिकां चरन्ते सर्वसत्त्वानामर्थाय हिताध्याशयेन प्रतिपन्ना भवबन्धनान्न मुच्यन्ते । न च पुनर्भो जिनपुत्र सत्त्वोपघातिकां धर्मदेशनां तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धाः सर्वसत्त्वानुद्दिश्य भाषन्ते महाकरुणासमन्वागतत्वात् । सर्वसत्त्वानां हिताध्याशयेन प्रतिपन्ना भवन्ति ॥

अथ खलु वज्रपाणिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः शान्तमतिं बोधिसत्त्वमामन्त्रयते स्म—एवं हि शान्तमते बोधिसत्त्वेन शिक्षितव्यम्, एवं प्रतिपत्तव्यम् । यथा त्वं वदसि, यथा त्वं प्रकाशयसि तथा सर्वबुद्धाः बोधिसत्त्वाश्च महर्द्धिकाः । तथाहं निर्देक्ष्यामि परमार्थतो ॥

भूतकोटिं समाश्रित्य धर्मकोटिं तु मुच्यते ।
अचिन्त्यं सत्त्वकोटिं वै परिपाकमचिन्तितम् ॥ १ ॥
अचिन्त्या बुद्धधर्मास्तु चर्या बोधिमचिन्तिका ।
वैनेयसत्त्वमागम्य अचिन्त्यं चरितं हि तैः ॥ २ ॥
चर्या बोधिसत्त्वानां अचिन्त्या परिकीर्तिता ।
सर्वमन्त्रेषु तन्त्रोऽयं अचिन्त्य तत्प्रभावतः ॥ ३ ॥
क्रोधराजस्य मन्त्रस्य यमान्तस्य महात्मनः ।
अचिन्त्यं ऋद्धिविषयं गतिमाहात्म्यमचिन्त्यकम् ॥ ४ ॥

अचिन्त्या हि शान्तमते बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां चर्यानिष्पन्दितसत्त्वधातुनिर्हारम् ।
एवं हि शान्तमते बोधिसत्त्वेन मन्त्रजापिना चित्तमुत्पादयितव्यम् । काममस्य सत्त्वस्यार्थाय G 560
बह्वपुण्यं प्रसुनुयात् । महानरकोपपत्तिश्च । न त्वेवायं सत्त्वः बहुतरमपुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् । मा नामायं सत्त्वो त्रयाणां बोधीनामभव्यो भवेत् । एवं हि शान्तमते बोधिसत्त्वेन मन्त्रजापिना चित्तमुपस्थाप्य उपायकौशल्यं चाभिचारुकं च कर्म प्रयोक्तव्यम् । सर्वकर्मेषु च निमित्तग्राहिणा भवितव्यम् । नाकुशलग्राहिणा । सत्त्ववैनेयमुपादाय च शिक्षितव्यम् । करुणाविष्टेन चेतसा ॥

अपि च भो जिनपुत्र धर्माधर्मशुभाशुभं कुशलाकुशलगतिमाहात्म्यसत्त्वोपायविनयनिर्हारतां धर्मधातुनिर्हारतां च प्रतिपद्यन्ते बुद्धा भगवन्तः सर्व एव धर्मदेशनासत्त्वोपायपायकां च प्रतिपद्यन्ते । तथैव भो जिनपुत्रास्माभिः शिक्षितव्यम्—यदुत त्वविनयनाय सत्त्वपाकानुशासनाय च । तत्र भवन्तो जिनपुत्राः योऽयं पर्षन्मण्डलमहासमयोपविष्टाः तत्र सर्वैः समग्रैः श्रोतव्यं श्रद्धातव्यं य एव कुशलाकुशलगवेषणैर्भवितव्यम् । यदुत तथागतधर्मदेशनाभिरतैर्भवितव्यम् ॥

अथ शान्तमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः वज्रपाणिं यक्षसेनापतिं व्यवलोक्य तूष्णीं भूतः स्वके आसने निषण्णोऽभूत् अचिन्त्या बुद्धधर्मा इति मनसिकृत्य बुद्धं भगवन्तं व्यवलोकयमानः॥

अथ वज्रपाणिर्गुह्यकाधिपतिः सर्वं तत् पर्षन्मण्डलमवलोक्य भूयः क्रोधराजस्य कल्पं भाषते स्म शृण्वन्तु भवन्तो देवसंघाः ये सत्त्वधातुनिसृताश्च सर्वे भूतगणाः। आदौ तावत् कृतरक्षः तं पटं क्रोधराजस्य परिगृह्य विविक्ते स्थाने गत्वा एकलिङ्गे महेश्वरस्यायतने तं लिङ्गं विषरुधिरराजिकाकाञ्जिकेनाभ्यज्य पिचुमर्दपत्रैरर्चयित्वा मानुषान्त्रनालीभि आत्मना यज्ञोपवीतं कृत्वा मानुषशिरकपालेन दक्षिणहस्तेन सप्रहारो भूत्वा वामहस्तेन तर्जन्या लिङ्गं तर्जयमानः परमक्रोधाभिभूतः अवमानितदुष्टराजानैः महापरिभवगतमानसः अन्यैर्वा धूर्तपुरुषैः महायक्षैर्महाधनैर्महाप्रचण्डैः महानायकैः शुद्धारं पिथयित्वा नग्नको मुक्तशिखः महेश्वरलिङ्गं वामपादेना-
G 561 क्रम्य क्रोधमन्त्रं तावज्जपेत् यावन्महेश्वरलिङ्गो मध्ये स्फुटित इति द्विविदलीभूतम्। महांश्च हुङ्कारः श्रूयते। ततो न भेतव्यम्। तदहो एव दुष्टराज्ञः अन्यो वा यः कश्चिन्महायक्षः अरिस्तत्क्षणादेव ज्वरेण गृह्यते। अमानुषेण वा गृह्यते राक्षसादिभिः। तत्रैव मुहूर्तं जपेद् यावत् क्षणादेव शत्रोर्जीवितं मरणपर्यवसानं भवति। यदि रात्र्यन्तं जपे तत्सर्वकुटुम्बो नश्यति॥

अपरमपि कर्म भवति- मध्याह्ने तथैव महेश्वरायतनं गत्वा निम्बपत्रैरभ्यर्च्य महामांसधूपं दत्त्वा मन्त्रं जपेत् यावच्छत्रोर्भवनमग्निना दह्यते, शत्रोश्च महाज्वरकम्पो भवति। यदि जापं न त्यजते क्रुद्धो वा दक्षिणमूर्तैस्तिष्ठते स शत्रुर्म्रियते। गोत्रोत्सादो भवति। अथ प्रत्यायनं करोति, भूयो लिङ्गमुदकेन प्रक्षाल्य सुशीतलेन क्षीरेण स्नापयेत्। गव्येन भूयः। स्वस्थो भवति॥

अपरमपि कर्म भवति महेश्वरलिङ्गस्य दक्षिणामूर्तौ मदनकण्टककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य वैकङ्कतसमिधानां विषरुधिरराजिकाभ्यक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। सर्वे शत्रवो महाव्याधिना गृह्यन्ते। अशक्ता भवन्ति सर्वकर्मेषु। द्वितीये दिवसे महाज्वरेण महाशूलेन वा गृह्यन्ते विविधैर्वा रोगैः अमानुषैर्वा मरणान्तिकैः। तृतीये दिवसे तृभिः संध्यैः सर्वेण सर्वं जीवितं त्यजन्ते। प्रत्यायने क्षीरं जुहुयात्। शान्तिर्भवति। सर्वजनपदेषु सर्वशत्रवश्च स्वस्था भवन्ति। एवं सर्वदेवानां सर्वभूतानाम्। यो यस्य देवताभक्तः तमाक्रम्य कुर्यात्। तस्य नक्षत्रमन्त्रसंज्ञितां पादेनाक्रम्य वामेन कर्म कुर्यात् वर्जयित्वा तु ताथागतीं विद्याम्। सर्वेषां च पादाङ्गुष्ठं वामेन गृहीत्वा कर्म कुर्यात्। न चाक्रमेणापि चलयेत्कदा सर्वलौकिकमन्त्रांश्चाक्रम्य कुर्यात्। असिद्ध एव क्रोधराजा जापमात्रेणैव कर्माणि करोति। सर्वमन्त्रां विनाशयति। सर्वशत्रूं घातयति सर्वयन्त्रां पातयति। संक्षेपतो यथा यथा प्रयुज्यते सर्वलौकिकलोकोत्तरमन्त्रविधानेनापि तत् सर्वं करोति। सर्वं साधयति। जापमात्रेण सर्वाशां परिपूरयति। पठितसिद्धा एष क्रोधराजा उत्तमां सिद्धिमनुप्रयच्छति। मनसेच्छया शत्रुं घातयति। महाशूलमुद्रया सयुंक्तः सर्वकर्माणि करोति॥

G 562 अपरमपि कर्म भवति—मध्याह्ने श्मशानं चितावेकरात्रोपितः कृष्णचतुर्दश्यां श्मशानकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य विषरुधिराक्तां राजिकां जुहुयात्। ततो हाहाकारं कुर्वन्तः सर्वप्रेता आग-

च्छन्ति । न भेतव्यम् । ततो वक्तव्यम्—शत्रुं मे घातयेति । एवमस्त्विति कृत्वान्तर्धीयन्ते । ततो मुहूर्तमात्रेण योजनसहस्रमपि गत्वा शत्रुं घातयन्ति । कुलानुत्सादयन्ति । एवमादीनि कर्माणि कुर्वन्ति ॥

अपरमपि कर्म भवति—विवेके शुचौ देशे शुचिवस्त्रप्रावृतेन शून्यगृहं प्रविश्य कर्पासास्थ्याहुतीनां अष्टसहस्रं जुहुयात् । ततो तं भस्म उभाभ्यां हस्ताभ्यां गृह्य शुचौ वस्त्रखण्डे बध्नीया पृथक् पृथक् । द्वौ पोङ्कलिकां कृत्वा शरावसंपुटे स्थाप्य महाकृतरक्षाश्चात्मनो द्रव्यं च गृहमप्रविश्य महाश्मशानं गत्वा रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां वा चितौ स्थित्वा दक्षिणाभिमुखः शरावसंपुटं गृहीत्वा स्थितको नग्नको मुक्तशिखः । स क्रुद्धो निर्भयो भूत्वा विद्यादशसहस्राणि जपेत् । सिद्धो भवति। तद् भस्म यदि कश्चिदमानुषो द्रव्यं प्रार्थयते, न दातव्यम्। हठं करोति, क्रोधराजं स्मृत्वा हुंकारः प्रयोक्तव्यः । तत्क्षणादेव नश्यते । सर्वविघ्नानामेष एव विधिः । वामदक्षिणकरगृहीतं भस्मचिह्नं कारयेत् । अप्रमत्तेन रक्षां कारयित्वा आगन्तव्यम् । प्रभाते सूर्योदये स्नात्वा शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन स्वगृहं प्रवेष्टव्यम् । अस्थाने वा यथाभिमते गन्तव्यम् । ततो यो दक्षिणहस्तेन गृहीतं भस्म तेन मनुष्याद्विपदचतुष्पदां सर्वप्राणिभूतां सदेवनागयक्षां मूर्ध्ना ताडयेत्, वशा भवन्ति । यद् वामेन हस्तेन गृहीतं भस्म तेन सर्वेषां मनुष्यामनुष्याणां सर्वासां स्त्रीणां मूर्ध्नि ताडयेत्, वश्या भवन्ति । दक्षिणेन यद् गृहीतं भस्म तेन मनुष्याणां नाभिदेशे ताडयेत्, नपुंसका भवन्ति । अङ्गजातदेशेन च चूर्णयेत्, असमर्थो भवति । ग्राम्यधर्मनिषेविणो यस्या स्त्रियायां अभिषक्तो भवति तस्याङ्गजाते गुह्यप्रदेशे भस्मनावचूर्णयेत् । असमर्था सा भवति अन्यपुरुषातिसेवने । नष्टव्रणा भवति यावन्तं तदेव पुरुषं प्राप्नुयात् । पुनरेव तस्याः तद्व्रणमुखं प्रादुर्भवति । काममिथ्याचारमशक्तो निसेवितुम् । G 563 एवं पुरुषस्यापि । पुरुषेन्द्रियं दक्षिणहस्तभस्मनावचूर्णयेत् । सोऽपि असमर्थो भवति परदाराभिगमने । परिम्लानमिव तिष्ठते । तस्य तदङ्गजातं यावद् दात्रवंशात् तस्यैव तत् पुनः प्रादुर्भवति । स्त्रियस्य वा पुरुषस्य वा येन वा तद् भस्म पुनर्दत्तं भवति, तस्य वशेन वर्तति वा न वर्तति वा यथेष्टं वा तं करोति । यदि बलात् कुर्वन्ति, येषां तु तद् दत्तं तेषां गुह्यप्रदेशानि क्रिमयः प्रादुर्भवन्ते । यैर्भक्षमाना जीविताद् व्यपरोप्यन्ते । मासाभ्यन्तरेण पूतिका वा भवन्ति दुर्गन्धकुणपसदृशाः महाप्रदररोगादिभिः पुरुषव्याधिभिः पुरुपा गृह्यन्ते । महाश्वयथुश्चोपजायते । येन तेषां तेनैवाबाधेन कालक्रिया भवति । अशक्ता वा भवन्ति प्रतिसेवितुं दासस्येच्छया । यथाभिरुचितं तत् सर्वं कारयति । स्पृष्टमात्रो यदि न प्राप्नोति स्पर्शनं दर्शनपथे स्थिता अदर्शने वा अनुवाते च भस्ममुत्सृजेत् यथा तस्य भस्मना ईषिदवधूलितः । मनसा च चिन्तयित्वा दाता भस्ममुत्सृजेत् । यत् तेन चिन्तितं भवति तत् सर्वाणि कर्माणि करोति । परहस्तेन वा आत्मना वा यथाभिलषितं तत् सर्वाणि कर्माणि करोति । नान्यथा चावन्ध्यं भवति ॥

अथ शयनासनादीनां आस्तरणप्रावरणादीनां विविधानि वालंकरणविशेषाणि नानावस्त्राणि वा वाहनयानोपानहच्छत्रादीनां सर्वाण्युपकरणविशेषाणि भोजनपानभक्षणादीनां सर्वाणि शरीरोपयोज्यानि भाण्डोपकरणानि पुष्पताम्बूलफलगन्धधूपादीनां सर्वेषु तैस्तं भस्मनावचूर्णयेत्। अरीणां यूकमत्कुणक्रिमिभिः समन्तात्तच्छरीरमाकीर्णं भवति। भक्षते च। विविधदुःखविहतो भवति। सप्तरात्रेण म्रियते। अशक्ताः सर्ववैद्याः सर्वदेवाश्च निवारयितुम्। अशक्ताः सर्वमन्त्राः रक्षयितुम्, वर्जयित्वा तु तेन दत्तं भवति॥

अथ प्रत्यायनं भवति। यष्टीमधुं नीलोत्पलं श्वेतचन्दनं चैकीकृत्य शीतलेनाम्भसा पीषयित्वा तच्छरीरं म्रक्षयेत् मूर्ध्नो प्रभृति यावत् पादतलम् आर्यमञ्जुश्रियमूलमन्त्रं जपता। स्वस्थो भवति॥

अपरमपि कर्म भवति स्त्रीणामनुवातं गत्वा यत्रेप्सता सर्वदुष्टडाकिनिस्त्रीणां गर्वितानां च प्रयोक्तव्यं नान्येषाम्। तमेनमनुवाते स्थित्वा भस्ममुत्सृजेत्। मनसा चिन्तयित्वा सर्वभगस्तनान्यपहृतानि भवन्ति। पुरुषस्यापि पुरुषेन्द्रियं श्मश्रुरोमाणि च स्तनानि च प्रादुर्भवन्ते॥

एवं विविधविचित्राण्यनेकानि कर्माणि करोति, परेण वा कारापयति। यत्र वा प्रीतिरुत्पद्यते, तेन वा कारापयति स्त्रिया वा पुरुषेण वा। यत्र वा चित्तस्य निर्वृत्तिरुत्पद्यते तस्य तद् भस्मं दत्त्वा यथेष्टं कारापयति। प्रयोगतश्च शिक्षापयेत्। एवं महाव्याधिभिः गृह्णापयति मनसा चिन्तयित्वा मूर्ध्नि स्पर्शनान्मस्तकशूलः मुखस्पर्शनान्मुखपाकः एवमनुपूर्व्या यावद् हृदयं हृच्छूलकुक्षिशूलं वा उपजायते। एवं पद्भ्यां जङ्घाभिश्चासृगुद्भवै रोगैर्दुष्टशोणितादिषु रोगैर्गृह्णापयति। संक्षेपतो मारयति शोषयति पाचयति आकर्षयति वशयति। यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा तत् सर्वं करोति चोपघातिकं आकर्षणवशीकरणं च। सुदूरेऽपि स्थितः कर्माणि करोति। सुदुर्गं कुड्यसमीपं गत्वा, अनुवाते स्थित्वा, तदेव भस्मोत्सृजेत्। उभौ पाणिगृहीतं प्राकारं प्रतोली अट्टालाश्च प्रपतन्ते। तदाध्यक्षं भवनं च महाग्निदाहमुपजायते। सेनाभङ्गं च भवति। महोपद्रवैश्चोपद्रुतो भवति। सर्वमवमुच्य प्रपलायति वा, ग्रहणं वाधिगच्छति। एवं परबलेऽपि अनुवाते भस्ममुत्सृजेत्। महाबलसेनाया भङ्गो भवति। दाहज्वरेण वा गृह्यते। हस्त्यश्वरथपताकादयः सेनापतिश्च भङ्गमुपजायते। ग्रहणं वा अभिगच्छति। एवमनेकप्रकाराणि यथेष्टानि शत्रुनाशाय कर्माणि करोति। आत्मनो महारक्षा। ये च स्वसेनायां वा सखायानाम्। अथ प्रत्ययनं करोति। सर्वतः सर्वेषां पटस्याग्रतः क्षीराहुतिसहस्रं जुहुयात्। स्वस्था भवन्ति अधृष्याश्च॥

अथ यक्षिणीं साधयितुकामः -

नटी नट तथा भद्र रेवती चापि विश्रुता।
तमसुरी थ लोका मेखला चापि सुमेखला॥
इत्येता अष्ट यक्षिण्यः सर्वकामप्रसाधिका॥ १॥

नटिकाया मन्त्रः—ॐ नटि महानटि आगच्छागच्छ दिव्यरूपिणि स्वाहा । अस्यो- G 565
पचारः—फलके पट्टके वा अभिलिख्य मांसाहारेण वा क्षीराहारेण वा विद्या अष्टसहस्रं जप्तव्या । आलेख्या च सर्वालंकारभूषणी श्यामावदाता वृक्षाश्रिता एकवस्त्रा मुक्तकेशा, संरक्तनयना ईषिस्मितमुखा साधकं तर्जायमाना । दक्षिणहस्तेन वामेन पाणिना वृक्षशाखामवलग्ना सर्वाङ्गशोभना विचित्रपट्टनिवस्ता । तस्यैव क्रोधराजस्य पटस्याग्रतः उन्मना उत्तरामुखं स्थित्वा पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य गुग्गुलुगुटिकानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं यावत् सप्त दिवसानि । ततः सप्तमे दिवसे उदारां बलिं कृत्वा घृतप्रदीपांश्च प्रज्वाल्य मन्त्रं जपता तावत् तिष्ठेत् यावदर्धरात्रम् । ततः सा यक्षिणी स्वयमेव महावभासं कृत्वा स्वरूपेणागच्छति । आगता च ब्रवीति–किं मया कर्तव्यम् इति । ततः साधकेन वक्तव्यम्–भार्या मे भवस्व इति । एवमस्त्विति कृत्वान्तर्धीयते । ततःप्रभृति भार्या भवति सर्वकामदा । स्वभवनं नयति । रसायनं प्रयच्छते यत् पीत्वा दिव्यरूपी भवति महायक्षप्रतिस्पर्धी । यदि नागच्छति, द्वितीये वारे क्रोधराजसहितं जपेन्नियतमागच्छति । न चेदुच्छुष्यं मृयते ॥

नट्टाया मन्त्रः—ॐ नट्टे शुक्लाम्बरमाल्यधारिणि मैथुनप्रिये स्वाहा । एतस्यैष एव विधिः ।

भट्टाया मन्त्रः—ॐ भट्टे भट्टे आलोकिनि किं चिरायसि? एह्येहि आगच्छागच्छ । मम कार्यं कुरु स्वाहा । एषा विनापि पटेन सिध्यते । शिरः स्थाने मण्डलकं कृत्वा गुग्गुलुधूपं दहता विद्यामष्टसहस्रं जपेत् मौनिना एकाकिना शुचिना द्वारं पिधाय । मासेन रात्रौ नियतमागच्छति । आगता च कामयितव्या भार्या भवति सर्वकामदा । यद्यसौ भवनं प्रविशते पञ्चवर्षसहस्राणि जीवति । न चेदत्रैव जम्बूद्वीपे विचरति । पञ्चवर्षशतानि जीवति । तया सार्धं क्रीडति । सर्वाज्ञां संपादयति । तेन सह यत्रेष्टं तत्र गच्छति । रसायनमनुप्रयच्छते । इष्टभार्यैवाव्रहिताध्याशयं करोति ॥

रेवत्या मन्त्रः—नमः सर्वयक्षीणाम् । ॐ रक्ते रक्तावभासे रक्तानुलेपने स्वाहा । G 566

रेवत्या यक्षिणी श्रेष्ठा ललन्त्या मैथुनप्रिया ।
ईषिद् रक्तेन वस्त्रेण नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥ १ ॥
सर्वाङ्गशोभना यक्षी कामभोगरता सदा ।
कामदा भोगदा नित्यं वरदां तामभिनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

पूर्ववत् पटमभिलिख्य एतस्या अयं विशेषः—रक्तपट्टनिवस्ता रक्तपट्टांशुकोत्तरीया रक्तावभासा च वर्णतः ॥

मेखलायाः मन्त्रः—ॐ मेखले महायक्षिणि मम कार्यं संपादय स्वाहा ॥

सुमेखलाया मन्त्रः—ॐ मेखले सुमेखले महायक्षिणि सर्वार्थसाधनि ॐ समयमनुस्मर स्वाहा ॥

आलोकिन्या मन्त्रः ॐ लोकिनि लोकवति स्वाहा ॥ एतेषामेव एव विधिः ॥

तमसुन्दर्याया मन्त्रः ॐ धुणु गुह्यके धुणु धुणु गुह्ये एहोहि गुह्यके स्वाहा । अस्योपचारः न । एताया पटविधानोऽस्ति आदौ तावत् शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन पूर्णमास्यां विविक्ते स्थाने द्वारं पिधायित्वा अन्धकारे आलोकवर्जिते त्रिंशां दशसहस्राणि जपेत् । पूर्वसेवा कृता भवति । ततः साधनमारभेत् । पूर्णमास्यादारभ्य यावदपरा पूर्णमासी अत्रान्तरे कर्म भवति । रात्रौ शयनकाले शय्यामारूढः प्रच्छन्ने गुप्तप्रदेशे एकाकिना द्वारं पिधयित्वा संकुचितकर्णिकां वानपुष्पं च कटुतैलेन मिश्रयित्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्यित्वा दक्षिणं बाहुमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा स्वपेत् मौनी । एवं प्रत्यहं यावत् पौर्णमास्यात् । ततोऽर्धरात्रे नियतमागच्छति । आगता च न मन्त्रापयितव्या । तूष्णीभावेन कामयितव्या षड्भिः मासैः । यदा मन्त्रापयति तदा मन्त्रयितव्यम् । ततः प्रभृति सिद्धा भवति । भार्या भवति सर्वकामदा ।
G 567 दिव्यं चास्य सुखसंस्पर्शम् । अदर्शनेनैव सर्वकार्याणि संपादयति । रसरसायनानि संप्रयच्छति । पृष्ठमारोप्य सुमेरुमपि नयति । रात्रौ जम्बूद्वीपं भ्रामयति । योजनशतास्थितमपि शत्रुं घातयते । यथाज्ञप्ता तत् सर्वं संपादयति वर्जयित्वा परस्त्रियाभिगमनम् । सर्वेषामयं विधानम् । परस्त्रीं नाभिगच्छेत् । तेनैव सह संवसेत् । यदि गच्छेत् मरणोन्मासिं वा प्रयच्छन्ते । एषा अन्धारसुन्दरी नाम यक्षिणी अनेकयक्षीशतसहस्रपरिवृता । दिने दिने एकैकां यक्षिणीं क्षविटिं? प्रेषयति । सिद्धा सती सर्वसाधकानां अनेकमन्त्रपरिवारां च सर्वयक्षीणां च महर्द्धिका तमावृता । सर्वेषामेव एष विधिः । किं तर्हि तेषां दर्शनं भवति । एतस्या दर्शनं न भवति ॥

अन्धारवासिनीनाम यक्षीणां महर्द्धिका ।
गुहावासिनी नरवीरा कुमारी लोकविश्रुता ॥ १ ॥
मधुयक्षी मनोज्ञा च सप्तमा सुरसुन्दरी ।
इत्येताः सप्त यक्षिण्यः सत्त्वानुग्रहकारिकाः ॥ २ ॥
पर्यटन्ति इमं लोकं कृत्स्नां चैव मेदिनीम् ।
ईषित् क्षणमात्रेण उत्पतन्ति सुरालयम् ॥ ३ ॥
संग्रामं देवदैत्यानां युध्यन्ते च महर्द्धिकाः ।
धर्मिष्ठा करुणाविष्टाः सत्त्वकामाः सुवत्सलाः ॥ ४ ॥
सत्त्वानां हितकाम्यर्थं पर्यटन्ति महीतले ।
न तासां किञ्चि दुःसाध्यं सर्वकर्मकराः शुभाः ।
सत्त्वानामुपभोगार्थं बोधिसत्त्वेन भाषिता ॥ ५ ॥

गुह्यवासिन्या मन्त्रः—ॐ गुहिले गुहमति गुहवासि आनय भगवति ममान्तिकं समयमनुस्मर स्वाहा । खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य प्रियङ्गुपुष्पाणां घृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात त्रिसंध्यं मासमेकम् । पूर्वसेवा कृता भवति । ततः पश्चात् साधनमारभेत् । फलके वा पट्टके वा कुड्यायां वा अश्लेषकैर्वर्णकैः नवभाजनकूर्चकैः । आदौ तावत् पर्वतराजा सुमेरुर्लिखापयितव्यः

चतुरस्रः चतुःशृङ्गोच्छ्रितः सप्तपर्वतपङ्क्तिपरिवेष्टितः । तेषां पर्वतानामन्ते गुहः पर्वतनिःश्रितः आलिखितव्यम् । तत्रस्था दिव्यरूपिणी सर्वालंकारभूषिता एकाकिनी यक्षिणी गुहवासिनी G 568 नाम लिखापयितव्या पट्टवस्त्रनिवस्ता पट्टांशुकोत्तरीया कनकवर्णा विचित्रचारुरूपी । तं तादृशं पटमभिलिख्य शुचौ प्रदेशे शुचिना क्षीराहारेण विद्यां दशसहस्राणि जपेत् । महापूजां कृत्वा यथाशक्तितो वा । ततो जपान्ते महावभासं कृत्वा दिव्यरूपी यक्षिणी स्वयमेवागच्छति । आगताया जातीकुसुमैः श्वेतचन्दनोदकव्यतिमिश्रैः अर्घो देयः । ततः सा ब्रवीति—वत्स किं कर्तव्यम् । वक्तव्यम् –मात मे भवस्वेति । कृत्वान्तर्धीयते । न च तत्र चित्तं दूषयितव्यम् । नापि कामोपसंहितं प्रार्थयितव्यम् । आर्या सा महर्द्धिका च । कामं प्रार्थयति न सिद्ध्यते । ततःप्रभृति मातृवत् सर्वकार्याणि करोति । अष्टशतपरिवारस्य भक्ताच्छादं प्रयच्छते । विषमस्थस्य त्रायते महावन्यपर्वतस्योपरिस्थितस्यापि सर्वकार्याणि संपादयति । कामितं च भोजनमनुप्रयच्छते । रसरसायनादीन् सर्वमनुप्रयच्छति । यथेष्टं चानुवर्तते । कुटीकुटादींमभिनिर्मिणोति । सुवर्णसहस्रमनुप्रयच्छति दिने दिने । सर्वं व्ययीकर्तव्यं तदह एव । यदि न करोति, च्छिन्नो भवति । सर्वेण सर्वं भवति ॥

अपरमपि कर्म अस्याः—अस्यैव पटस्याग्रतः खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य विगतार्चिधूमविगतैः अङ्गारैः दक्षिणहस्ततले मनशिलया प्रतिकृतिमभिलिख्य नाम च पुरुषस्य स्त्रिया वामहस्ततले तत्रैवाङ्गारराशौ तापयेत् मन्त्रं जपता । योजनशतादपि स्त्रियमानयति । यदुच्यते तत् सर्वं कारयति । रात्रौ एतत् कर्म, न दिवा ॥

नरवीराया मन्त्रः—ॐ नरवीरे स्वाहा । तथैव एतस्या पटमभिलिख्य वर्जयित्वा गुहालयं अशोकवृक्षाश्रिता लिखापयितव्या । एतस्याः अयं विशेषः—सर्वं तथैव कर्म यथा गुहवासिन्या । अयं च वक्तव्या—भगिन्यास्वेति ॥

एतस्यापरोऽस्ति कर्म—चन्द्रग्रहे सुवर्णगैरिकां भूर्जपत्रेण वेष्टयित्वा मुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावच्चन्द्रो मुक्त इति । ततः सुवर्णगैरिकया यस्या नाम लिखति स्त्रियस्य वा आयोजन- G 569 शतास्थिता अप्यानयति । प्रभाते तत्रैव नयति । भगिनीव कार्याणि करोति । आपत्सु महारक्षां करोति । सर्वाण्येव स्त्रियां जापमात्रेण वशीकरोति । नरवीराया एष विधिः ॥

यक्षकुमारिकाया मन्त्रः—ॐ यक्षकुमारिके स्वाहा । अस्या अयमुपचारः—गोरोचनेन भूर्जपत्रे लिखापयितव्या कुमारी अर्धबर्बराशिरा सर्वालंकारभूषिता एकवस्त्रा दक्षिणहस्तेन बीजपूर्णावसक्तफला वामहस्तेनाशोकवृक्षशाखावलम्ना । तादृशं भूर्जपत्रं शिरःस्थाने उपरि स्थापयितव्यम् । गुह्ये प्रदेशे एकाकिना च स्वप्तव्यम् । श्वेतचन्दनेन च मण्डलकं कृत्वा त्रिसंध्यं जातीकुसुमैरभ्यवकीर्य गुग्गुलुधूपं दहता विद्यामष्टसहस्रकं जपेत् यावन्मासमेकम् । ततो पूर्णमास्यां जातीकुसुमैः महतीं पूजां कारयित्वा घृतप्रदीपांश्च निवेद्यांश्च दत्त्वा कुशपिण्डकोपविष्टेन रात्रौ तावज्जपेद् यावत् स्वरूपेणैव कुमारी पञ्चशतपरिवारा वैश्रवणस्य दुहिता आगच्छति । सर्वं तं दिशाभागमवलोकयित्वा स्वरूपेणान्तरिक्षे तिष्ठति । सा एवमाह—किं

मया कर्तव्यम्? ततः साधकेन वक्तव्यम् - त्रयाणां वराणामन्यतममेकं वरं प्रार्थयितव्या। मातृत्वे भगिनीत्वे भार्यात्वे च। यदि माता भवति, न चित्तं दूषयितव्यम्। दूषयतो विनाश उपजायते। मातृवद् वर्तयितव्या। सा च माता पञ्चशतपरिवारस्य भक्ताच्छादनमलंकरणविशेषाणि च सर्वत्र चिन्तितमात्रेणैव संपादयति। दिने दिने दीनारसहस्रं ददाति। अत्रैव जम्बूद्वीपे विचरतः सर्वं संपादयति। भगिनी भवति, तदा योजनशतादपि स्त्रीयमानयति। तत्रैव नयते। भगिनीवत् सर्वकार्याणि संपादयति। अथ भार्या भवति, स्वभवनं नयते। दिव्यं वर्षसहस्रं जीवति। यदा मृयते, तदा आढ्यकुलोपपत्तिः। सर्वाशां भार्येव संपादयति॥

वधूयक्षिण्या मन्त्रः—ॐ निः। एषा वधूयक्षिणी। अस्यामुपचारः - श्वेतचन्दनेन दक्षिणं बाहुमुपलिप्य वामतः कुङ्कुमेन सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा रात्रौ एकाकिना मौनिना प्रच्छन्ने G 570 प्रदेशे द्वारं पिधाय पञ्चाष्टौ विभीतकफलानि तिलतैले प्रक्षिप्य पचेत्। तं तैलं गृहीत्वा विभीतकफलां परित्यज्य नवे भाण्डे सौवर्णे राजते ताम्रे मृन्मये वा स्थाप्य पादान्ते शय्यायां सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा अनेनैव मन्त्रेण एकाक्षरयक्षिण्या अन्धकारे विविक्ते शयने पुष्पाभिकीर्णे स्वप्तव्यम्। आगत्य चामानुषी पादौ म्रक्षयति दिव्यसुखं स्पर्शकोमलहस्ततला यस्याः स्पर्शनादेव दिव्यं सुखसंस्पर्शनिद्रामुपजायते। येन सूर्योदयेऽपि रात्र्यन्ते दुःखेन प्रतिबुध्यते। प्रतिबुद्धापि सन् तदेव चिन्तयेत्। न च कामयितव्या, नापि मन्त्रापयितव्या। षड्भिर्मासैः सिद्धा भवति। ततः सा दिव्यरूपी अभिनववध्वा वयात् समाना परिचारिकैः परिवारिता प्रदीपहस्ता स्वप्रभोद्योतितालोका शयनासनपरिगृहीता विचित्राभरणोज्ज्वला आगत्य च मन्त्रापयते कामभोगोपकरणपरिगृहीता। आगत्य च साधकं कण्ठे परिष्वजते। ततः प्रभृति इष्टभार्येव मनुवर्तते। आगता च कामयितव्या। रात्रौ परिचर्य प्रभातेऽन्तर्धीयते शय्यायां मुक्ताहारं त्यज्य सुवर्णसहस्रमूल्यम्। दिने दिने परित्यज्य गच्छति च। सर्वं निरवशेषं व्ययीकर्तव्यम्। यदि किंचित् स्थापयति भूयो न भवति। न कस्यचित् कथितव्यम्। यदि कथयति भूयो नागच्छति। अनर्थं वा कुरुते मारणान्तम्। परमगुह्यका ह्येते परमगोप्या न द्वितीयसत्त्वमारोचनं क्षमन्ते। मातापितृसुहृत्स्वामिबान्धवानामपि नारोचयितव्यम्। अन्तशः पशुस्यापि तिर्यग्गतानां प्राणिनां नारोचयितव्यम्। परमगुह्यमेतत्। सर्वगुह्यकानां सर्वयक्षिणीनां च एष एव विधाना। सिद्धा अपि असिद्धा भवन्ति यद्यारोचयते। अन्यस्त्री मैथुनाभिगमनं च भार्याया च वर्जयेत् सदा॥

मनोज्ञाया मन्त्रः—ॐ मनोहरे मदोन्मादकरि विचित्ररूपिणि मैथुनप्रिये स्वाहा। अस्यामुपचारः—उद्यानवाटिकायां अशोकवृक्षस्याधस्तात् सविभक्तां कुटिं कारयित्वा अगुप्ततरां कृतकवाटार्गलप्राकारोच्छ्रितां शुचिना लक्षमेकं जपेत्। ततः कर्ममारभेत्। महावसां संगृह्य श्मशानवाटकेन वर्तिं कृत्वा द्वारं पिधयित्वा प्रदीपं प्रज्वालयेत्। सदशं च वस्त्रं केशापगतं
G 571 बहिर्द्वारं स्थापयेत्। प्रत्यग्रं रात्रौ सा नग्निकागत्य तं वस्त्रं निवास्य प्रविशते मानुषस्त्रीरूपिणी भूत्वा। ततः साधकः तेन सार्धं रमते यावत् प्रदीपं ज्वलते। निर्वृते प्रदीपेऽन्तर्धीयते। तस्मिं

वस्त्रे सुवर्णमेकं बद्ध्वा वस्त्रं परित्यज्य शय्यायामपक्रामति । अथ साधकस्तां हस्ते गृह्णाति । अङ्गुलेयिकैकावमुच्यावक्रमते । अथ कण्ठा दिव्यमुक्ताहारां अथ बाहात् कटकं कट्यां मेखलां पद्भयां नूपुरं शीर्षे मणिं एवमन्यतरं दिव्यमाभरणमेकं यत्र यत्र गृह्यते तत्र तत्रानुप्रयच्छति । अवध्यां गच्छति चागच्छति च । एवं प्रत्यहं निरवशेषं व्ययीकर्तव्यम् । एवं यावद्भिर्मासैः मन्त्रापयंति, तदा मन्त्रयितव्यम् । भार्या भवति नित्यस्था । रसायनं प्रयच्छति यं पीत्वा दीर्घकालं जीवति । मनसा ध्यात्वा खदिरकीलकं भूमौ निखानयेत् । दिव्यं विमानमुपपद्यते । उद्धृतेऽन्तर्धीयते । अस्या या मन्त्रः द्वितीयमस्ति । ॐ महानग्नि नग्निजे स्वाहा । तेनैव दीपं प्रज्वाल्य अनेन मन्त्रेणाष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा कारयेत् । नियतमागच्छति । कीलकं चाभिमन्त्र्य निखानयेत् । उद्धृते दीपे निर्वृते चान्तर्धानं कीलकं मानुषं वसाकीलं च । सो शृङ्गे गवलम-हिषशृङ्गे वा श्मशाने चैलवर्तिना वोढव्यम् । देशान्तरे यत्रेष्टं तत्र ददाति । स्वयं वा करोति न च मन्त्रा दातव्या । अथ ददाति, छिन्नविद्यो भवति । यस्य ददाति तस्यैव तत् संपद्यते । यत्र वाभिरुचितं यत्र वा स्थाने गुप्ते करोति । एषा सिद्धिः आवर्त्य नापगच्छति । अन्यां वा रमापयते । किंतु तैः सार्धं न मन्त्रयति । अन्यस्त्रीदर्शनाभिरुचितं मनसेप्सितं तदानुरूपी तस्योपसंक्रमतो ह्यपूर्वस्य साधकवशादिति ॥

सुरसुन्दर्याया मन्त्रः—ॐ सुरसुन्दरि स्वाहा । अस्यामुपचारः—खदिरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य घृताहुतीनां अष्टसहस्रं जुहुयात् । त्रिसंध्यं मासमेकं, शुक्लपूर्णमास्यां कुशपिण्डकोपविष्टः शुचिना शुचौ देशे मन्त्रं तावज्जपेद्रहसि यावदर्धरात्रे नियतमागच्छति । ततो माता भगिनी भार्या यथैव पूर्वं तत् सर्वं करोति । सर्वं च विस्तरतो वक्तव्यम् ॥

इत्येताः सप्त यक्षिण्यः वज्रपाणिसमाज्ञया ।　　G 572
पर्यटन्ति महीं कृत्स्नां त्रैलोक्यं च सुरासुरम् ॥ १ ॥
विचेरुः कृपालुभ्यो मर्त्यानां मैथुनप्रियाः ।
केऽपि दार्यास्तथा बाला मूढाश्चापरयक्षिका ॥ २ ॥
पर्यटन्ति तथा रात्रौ सिंहकाम्यपरा हिता ।
बालानां जीवनाशाय लोलुपा मांसभोजिका ॥ ३ ॥
तथा रुधिरगन्धेन जम्बूद्वीपं हि मागताः ।
प्राणापरोधिका यक्षी नित्यं सा शोणितप्रिया ॥ ४ ॥
पर्यटन्ति गृह्यं सर्वां आरक्षामृतकसूतकाम् ।
तेषां निग्रहमित्युक्तः समयोऽयं संप्रकाशितः ॥ ५ ॥
यथा संग्रहरागं च निबन्ध्यं चेह बालिशाम् ।
तथा सर्वमिदं प्रोक्तं सत्त्वानां हितकारणात् ॥ ६ ॥

मैथुनार्थी यथा मन्त्री रागान्धो मूढचेतसः।
मन्त्रैराकृष्य भुञ्जीत यक्षीं वा अथ राक्षसीम्।
नागी च मथ गन्धर्वी दैत्ययोषिमथ किन्नरीम्॥ ७॥
पातालभवनं रम्य असुराणां पुरोत्तमम्।
प्रविशेत् तत्र मन्त्रज्ञः यत्र स्त्रीणामसंख्यकम्।
तत्र गत्वा वसेत् कल्पं मन्त्रज्ञो मन्त्रजापिनः॥ ८॥
मैत्रेयो नाम संबुद्धः यदा बुद्धो भविष्यति।
तदासौ श्रोष्यति सद्धर्मं श्रुत्वा मुक्तो भविष्यति॥ ९॥
सुरकन्यासुरीं चैव विद्याधरवराङ्गनाम्।
मन्त्रैराकृष्य भुञ्जीत दिव्यसौख्यरतिं तदा॥ १०॥
जम्बूद्वीपगतो मन्त्री तत्रैवानयते सदा।
शुचिस्थाने तदा गुप्ते शौचाचाररतः सदा॥ ११॥
मूढानामुत्तमा सिद्धिः कदाचित् तेन जायते।
विन्मूत्रमशुचिस्थानं सदा दुर्गन्धि पूतिकम्॥ १२॥
G 573 व्याधि दुःख तथा शोकं मरणान्तं दुःखभाजनम्।
वियोगं रतिसंपृक्तं न स्पृशेन्मानुषीं स्त्रियम्॥ १३॥
अनित्यदुःख तथाशून्यरिक्तस्तुच्छमशाश्वतम्।
बालमुल्लापनं चापि संकल्पजनितोद्भवेत्॥ १४॥
न गच्छेत् कामतो मन्त्री सर्वकामामनादिजाम्।
तेषां विरतिमित्युक्तो विमुक्तिः तेषु सिद्धिताम्॥ १५॥
सिध्यन्ते तस्य मन्त्रा वै ये विरक्ता तु कामतः।
विण्मूत्ररुधिरासिक्तां + + + चैव पूजिताम्॥ १६॥
जरामृत्युसुशोकां च न स्पृशेन्मानुषीं तनुम्।
न भजेन्मैथुनं तत्र मोहान्धा रागचेतसाम्॥ १७॥
न सिद्धिर्लभते मन्त्रां तेषु सेवी सदाशुची।
मन्त्रज्ञो मन्त्रजापी च सप्रज्ञोऽथ जितेन्द्रियः।
शौचाचाररतो धीरः सर्वमन्त्रोऽपि हि सदा॥ १८॥
पद्मोच्चा समोदा च अजिता चापि जया सदा।
श्यामावर्त तथा यक्षी इत्येता यक्षिमहर्द्धिका॥ १९॥

पद्मोच्चाया मन्त्रः—ॐ पद्मोच्चे स्वाहा॥ अस्याः कल्पः—गङ्गाकूले समुद्रतटे वा उद्यानपुष्पवाटिकायां मध्ये उडयं कृत्वा शुचितरं आत्मना च शुचिर्भूत्वा शिलापट्टकाकारं मृण्मये कृत्वा तत्रैव रात्रौ द्वारं पिधयित्वा सर्वकामभोग्याद्युपकरणान्युपहृत्य तत्रैवात्मसमीपे यक्षिण्याः

शय्यां कल्पयेत् । ततो विद्यां दश सहस्राणि जपेत् । एवं यावन्मासाभ्यन्तरेण नियतमागच्छतीति । आगता च कामोपभोग्या भवति भार्या । दिव्यं च मुक्ताहारं शय्यायां परित्यज्य प्रभाते गच्छति । एवं यावद् दिने दिने षड्भिर्मासैः नित्यस्था भवति तन्मुक्ताहारं न ग्रहेतव्यम् । यदि गृह्णाति तन्मात्र एवमुपपद्यते दीनारलक्षमूल्यं तत् हारं मणिरत्नोपशोभितं षड्भिर्मासैरतिक्रान्तैः । नित्यस्था भवति भार्या सर्वकामदा । यथा रूपमभिलषितं तथा रूपं कृत्वा G 574 उपतिष्ठते । यथाभिरुचितमात्मानमभिनिर्मिणोति । साधकस्येच्छया सर्वेषां यक्षीणामयं विधानः यथा निर्दिष्टानां अत्र अन्यत्र ॥

जयाया मन्त्रः—ॐ जये सुजये । जापयति सर्वकार्याणि कुरु मे स्वाहा ॥

कनकाभा चित्राङ्गी-नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
सर्वाङ्गशोभना देवी भोम्या च सुभगा शुभा ॥ १ ॥
प्रियंवदा प्रमदा श्रेष्ठा सुरूपा चारुदर्शना ।
प्रशस्ता काररुः शुक्रः सर्वलोकसुपूजिता ।
ईषिद्रक्तेन वस्त्रेण जयां तामभिनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

अस्याः कल्पः—आदौ लक्षमेकं जपेत् । पूर्वसेवा कृता भवति । ततो महारण्यं प्रविश्य फलाहारः तावज्जपेद्यावत् स्वरूपेणोपतिष्ठते । आगता च ब्रवीति—किं करोमीति । यदि माता भवति, मातृवत् सर्वाशां परिपूरयते । राज्यं ददाति । महाधनपतिं करोति । दीर्घायुष्कतामधितिष्ठते । अथ भगिनी, यथेप्सितं स्त्रीमानयति योजनसहस्रस्थितामपि । दीनारलक्षं दिने दिने ददाति । स च व्ययीकर्तव्यः । अथ भार्या भवति, स्वभवनं नयते । दिव्यविमानाभिरूढो तया सार्धं रमते दीर्घकालं त्रिंशद् वर्षसहस्राणि । यथेष्टं विचरते । महायक्षप्रतिरूपो भवति ॥

प्रमोदाया मन्त्रः—ॐ ष्ट्रीः । ह्रीँः महानग्नि हूं फट् स्वाहा । अस्याः कल्पः—अर्धरात्रे अपरिमाणो जापः कर्तव्यः । भूयो निद्रां गच्छेत् । मासाभ्यन्तरेण नियतमागच्छति । भार्या भवति सर्वकामदा । दिने दिने पञ्चविंशतिदीनारामनुप्रयच्छति । आत्मना च संकोशं दीर्घकालं च जीवापयति ॥

एवमपरिमाणानि यक्षिणीशतसहस्राणि भवन्ति । एवं पिशाचाः पिशाचमहर्द्धिकाः नागकन्याः असुरकन्याः अप्सरा सुरयोषिद् दैत्यकन्या । एवं विद्याधरीणां सर्वेषां सर्वतः मानुषीणा- G 575 ममानुषीणां च मन्त्राणि भवन्ति असंख्येयानि । तथैव यक्षाणां देवानां नागानां ऋषीणां गन्धर्वाणां असुराणां प्रेतानां राक्षसानां च महाब्रह्मणः महेश्वरस्य महाविष्णोः मातराणां ऐन्द्राणि चामुण्डिवाराहिप्रमुखानां मन्त्राणि भवन्ति पृथक् पृथक् । सर्वे च समये आकृष्टाः इह क्रोधराजेन यमान्तकेन आनीता ग्रस्ता समये स्थापिता मञ्जुघोषस्योपनामिता अनुपरिवारा अनुपूर्वस्थिता परिचारिका । सर्वेषां संक्षेपतः यत्र प्रतिमा स्वयं वा प्रतिकृतिं कृत्वा क्रोधराजानं यमान्तकं तावज्जपेद्यावत् प्रतिबिम्बं प्रकम्प्य प्रचलते प्रस्विद्यति वा । अयं स्वरूपेणागच्छन्ते । यदुच्यते तत् सर्वं संपादयन्ते ॥

एवं यापि ताः चतुः कुमार्यः महायक्षिण्यः भ्रातुः तुम्बुरुसमेता दिव्यरूपिण्यः अम्बुराशिसमाश्रिताः नौयानसमारूढाः सर्वलो(क)सुपूजिताः सत्त्वानुग्रहकारिकाः तेषामप्येष एव विधिः । यदुत --

पटभित्तिफलके समाकीर्णो लिखितापि वा ।
नौयानसमारूढा भ्रातुर्ज्येष्ठानुनेयिका ॥ १ ॥
अम्बुधे अन्तर्गता कन्या चतुरेव समानुगा ।
तेषां प्रच्छन्नतः स्थाप्य क्रोधं जाप्य समारभेत् ॥ २ ॥
चलः कम्पः तथा स्वेदः जायतेषु च सर्वतः ।
ततः सिद्धा इति ज्ञात्वा मन्त्रजापी जपं त्यजेत् ॥ ३ ॥
स्वरूपेणैव रात्र्यन्ते कथयन्ति शुभाशुभम् ।
सर्वथा साधका ते वै भवन्ते ह सजापिने ॥ ४ ॥
सर्वं कुर्वन्ति आज्ञप्ताः क्रोधमाकृष्टमूर्च्छिताः ।
सोमाद्यैर्ग्रहवरैर्नित्यं ऋषिभिः राक्षसैस्तथा ॥ ५ ॥
पिशाचैर्गरुडैश्चापि सुपूजिता ते महर्द्धिकाः ।
महेश्वराद्यैस्तथाभूतैः पूजिता ते महर्द्धिकाः ॥ ६ ॥
एतैश्च भाषिता कल्पा मन्त्रतन्त्राः सविस्तराः ।
ते तु सर्वे प्रयोक्तव्या सकल्पा कल्पविस्तराः ॥ ७ ॥
सर्वे ते क्रोधराजस्य वशे तिष्ठन्त्ययत्नतः ॥ ८ ॥
यावन्ति केचिन्मन्त्रा वै उच्छुष्या कश्मलोद्भवाः ।
G 576 सर्वे ते क्रोधराजस्य नियुक्ता ते प्रकाशिता ॥ ९ ॥
आर्या ये च मन्त्रा वै विशिष्टा सर्वतोगताः ।
उत्कृष्टाः प्रवरा ह्यग्राः भाषिता जिनवरैस्तथा ।
तथा मन्त्रधरे मन्त्रा मया चैव प्रभाषिता ॥ १० ॥
ये चान्ये मन्त्रमुख्यास्तु कुलेष्वेव हि पञ्चसु ।
भाषिता जिनपुत्रैस्तु लौकिकाश्चापि महर्द्धिका ॥ ११ ॥
सर्वांस्तां समाकृष्य क्रोधराजो महर्द्धिकः ।
सर्वेषां मन्त्रतन्त्राख्यनिबद्धास्ते इह शासने ॥ १२ ॥
यो येषां विधिराख्यातः तेनैवायं नियोजितः ।
क्रोधराजा यमान्तस्तु उत्कृष्टः सर्वकर्मिकः ॥ १३ ॥
तारां च भृकुटीं चैव तथा पण्डरवासिनीम् ।
महाश्वेतां तथा विद्यां मामक्यां कुलिशोद्भवाम् ॥ १४ ॥

उष्णीषप्रभां सर्वलोचनां चैव देवताम् ।
सर्वां तथागतिं विद्यां मञ्जुघोषं च धीमतम् ॥ १५ ॥
महास्थामं समन्तं च तथा पद्मवरं प्रभुम् ।
यथापि लोके यक्षेशं बोधिसत्त्वं महर्द्धिकम् ॥ १६ ॥
यदुक्तं जिनपुत्रं तु सर्वाङ्गं लोकविश्रुतम् ।
वज्रसेनं सुषेणं च मत्सुतां चापि धीमताम् ॥ १७ ॥
मया ये भाषिता मन्त्रा नावज्ञां कारयेज्जपी ।
ते सर्वां पूजयेन्नित्यं अलङ्घ्यास्तेषु भाषिता ॥ १८ ॥
न जपी योजयेत् तत्र क्रोधराजं सुपूजितम् ।
विद्याच्छेदं न कुर्वीत तेषु मन्त्रेषु सर्वदा ॥ १९ ॥
सर्वांश्चैव यथा कर्मां लौकिकां मन्त्रदेवताम् ।
उमाशंकरब्रह्माद्यां हरिं चापि सुपूजितम् ॥ २० ॥
यथा तन्त्रेषु मन्त्राणां सर्वेष्वेव तथा कृता ।
सर्वं च सर्वतो मन्त्रां सर्वं चैव समारभेत् ।
सर्वमन्त्रप्रवृत्तिस्तु दृश्यते क्रोधसंभवा ॥ २१ ॥ G 577
एष मन्त्रो महाक्रोधः यमान्तो नाम नामतः ।
आकृष्य घातयेत् क्षिप्रं यमस्यापि महात्मने ॥ २२ ॥
वैवस्वतं कृतान्तं वै शक्रश्चापि महात्मनः ।
आकृष्टा वसिता घोरा दुर्दान्तदमको प्रभुः ॥ २३ ॥
एष मन्त्रो महामन्त्रः कथितो मञ्जुभाणिना ।
सर्वकर्मकरः क्रूरः सर्वमन्त्रप्रसाधकः ॥ २४ ॥
इत्येवमुक्त्वा ततः श्रीमां वज्रपाणिर्महर्द्धिकः ।
प्रणम्य बुद्धं महावीरं शाक्यसिंहं नरोत्तमम् ।
मन्त्रं च काश्रितो वज्री मन्त्रं भाषे महर्द्धिकम् ॥ २५ ॥
शृण्वन्तु सर्वे सत्त्वा वै सर्वभूतगणाः शुभाः ।
सर्वमैत्रगणाध्यक्षा भाषेऽहं मन्त्रमुत्तमम् ॥ २६ ॥
भाषितं बोधिसत्त्वेन मञ्जुघोषेण धीमता ।
दुर्दान्तदमकं घोरं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ २७ ॥
विनेयार्थं तु सत्त्वानां बोधिसत्त्वेन भाषितम् ।
अहं च भाषहे ह्यत्र पर्षन्मध्ये सुदारुणम् ॥ २८ ॥

नमः समन्तबुद्धानां अभावस्वभावसमुद्गतानाम् । नमः प्रत्येकबुद्धार्यश्रावकाणाम् । नमो बोधिसत्त्वानां दशभूमिप्रतिष्ठितेश्वराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । तद्यथा—ॐ ख

ख खाहि खाहि दुष्टसत्त्वदमक असिमुसलपाशपरशुहस्त चतुर्भुज चतुर्मुख षट्चरण गच्छ गच्छ महाविघ्नघातक विकृतानन सर्वभूतभयंकर अट्टहासनादिने व्याघ्रचर्मनिवसन कुरु कुरु सर्वकर्मां । च्छिन्द च्छिन्द सर्वमन्त्रां । आकर्षाकर्षय सर्वभूतां । निर्मथ निर्मथ सर्वदुष्यं । प्रवेशय प्रवेशय मण्डलमध्ये । वैवस्वतजीवितान्तकर कुरु कुरु मम कार्यं दह दह पच पच मा विलम्ब मा विलम्ब समयमनुस्मर हूं हूं फट् फट् स्फोटय स्फोटय सर्वाशापारिपूरक हे भगवं किं चिरायसि मम सर्वार्थं साधय स्वाहा ॥

G 578 एष सः मार्षाः सर्वदेवगणाः यमान्तको नाम क्रोधराजा यमराजानमप्यानयति घातयति शोषयति पाचयति दमयति । एवं सर्वमन्त्रां सर्वदेवां किंपुनर्मानुषं प्रति दुःखितम् । दशभूमिप्रतिष्ठितामपि बोधिसत्त्वानानयति । किं पुनर्लौकिकां मन्त्राम् । एवमपरिमितबलपराक्रमोऽयं क्रोधराजा । एवं सर्वमन्त्रतन्त्रभाषितेष्वपि सर्वकर्माणि कुरुते । सर्वमन्त्राणां यथा यथा प्रयुज्यते तथा तथा करोति । पठितसिद्ध एष क्रोधराज यमान्तको नाम परिसमाप्त इति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात्
पञ्चाशतिमः यमान्तकक्रोधराजासर्वविधिनियमः
तृतीयः पटलविसरः परिसमाप्त इति ॥



५३ राजव्याकरणपरिवर्तः ।

अथ खलु भगवां शाक्यमुनिः तस्मात् समाधेर्व्युत्थाय महासागरोपमायां पर्षन्मण्डलं G 579
धर्मं देशयमानः सर्वसत्त्वानां सर्वभूतगणानामग्रतः संनिषण्णः । तत्र वज्रपाणि प्रमुखानामनेकबोधिसत्त्वसंख्येयसहस्रां शारिपुत्रप्रमुखां अनेकासंख्येयार्हत्सहस्रां वैश्रवणप्रमुखां असंख्येयार्चचातुर्महाराजिकदेवपुत्रां शक्रप्रमुखां त्रायस्त्रिशां असंख्येयदेवपुत्रां सुयामसंतुषितनिर्माणरतिपरनिर्मितवशवर्तिब्रह्मकायिकब्रह्मपुरोहितमहाब्रह्मपरीत्ताभाप्रमाणाभास्वरैर्यावत् पुण्यप्रसवा बृहत्फला बृहातपाकनिष्ठा देवानामन्त्रयते स्म—शृण्वन्तु भवन्तो देवसंघाः । सर्वबोधिसत्त्वार्यश्रावकाः

अनित्याः सर्वसंस्कारौ उत्पादव्ययधर्मिणः ।
उत्पद्य हि निरुद्ध्यन्ते तेषां व्युपशमः सुखम् ॥ १ ॥
अविद्याप्रभवाः सर्वे उत्पद्यन्ते सहेतुकाः ।
सहेतुं दुःखमूलं तु स्कन्धा ह्युक्ताः समोदयाः ॥ २ ॥
तेषां निरोधिनी विद्या सुखहेतुसुखक्रियाम् ।
दुःखप्रहाणमित्युक्तं संक्षेपेण निवारणा ॥ ३ ॥
तदेव त्रिविधं यानं निर्दिष्टं च मया इह ।
अनित्यदुःखमनात्मनो क्षणिकं सर्वसंस्कृतम् ॥ ४ ॥
शून्यं सदा सर्वदा सर्वं निर्दिष्टं भवबन्धनम् ।
तद्विरागा त्रिधा यान्ति ये सत्त्वा गोत्रनिसृता ॥ ५ ॥
बोधिसत्त्वास्तदा बुद्धा प्रत्येकां बोधिनिश्रिताम् ।
तथा परे ह्यहरहन्तो वीतरागा महर्द्धिका ॥ ६ ॥
श्रावकीं बोधि निसृत्य त्रिधा शान्तिगता हि ते ।
एष धर्मो समासेन निर्दिष्टो मे शुभाशुभम् ॥ ७ ॥
अशुभं वर्जयेन्नित्यं सर्वदा शुभमाचरेत् ।
अहिंसां सर्वभूतानां यथा धर्मो प्रकाशितः ॥ ८ ॥
एक एव भवेन्मार्ग धर्माणां गतिपश्चके ।
अनाश्रवश्च यो धर्मो भूतकोटिसमाश्रितः ॥ ९ ॥
स एष कथितो मार्गः आदिबुद्धैः पुरातनैः । G 580
मयापि कथितं सर्वं शान्तनिर्वाणगामिनम् ॥ १० ॥
धर्मकोटिं समासृत्य भूतकोटिं तु लभ्यते ।
अकोटी सर्वधर्माणां भूतकोटिमुदाहृता ॥ ११ ॥
एष धर्मः समासेन द्विविधैव प्रकाशितम् ।
शृण्वन्तु सर्वे देवा वै बोधिसत्त्वा महर्द्धिकाः ॥ १२ ॥

अर्हन्तः श्रावका मह्यं निर्वाणं मे यदा भुवि ।
अभूत् सालवने मध्ये हिमवत्कुक्षिसंभवे ॥ १३ ॥
नद्यां हिरण्यवत्यायां मल्लानामुपवर्तने ।
यमकशालकवने मध्ये निर्वाणं मे भविष्यति ॥ १४ ॥
यावत् संज्ञी तथा नगरे चैत्ये मकुटवर्धने ।
नदीतीरे सदा रम्ये निर्वाणं मे तदा भुवि ॥ १५ ॥
सर्वे वै बोधिसत्त्वास्तु श्रावकाश्च महर्द्धिकाः ।
देवा नागा तथा यक्षा लोकपाला महर्द्धिका ॥ १६ ॥
शक्रब्रह्मसुयामाश्च अकनिष्ठाद्यास्तथा परे ।
सर्वेषां संनिपातो वै तस्मिं स्थाने भविष्यति ॥ १७ ॥
यमकशालकवने तत्र मल्लानामुपवर्तने ।
गङ्गायामुत्तरे तीरे महानद्यास्तथा परे ॥ १८ ॥
हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे अभूत् सालवने वने ।
अपश्चिमे मे तथा शय्या तस्मिं स्थाने भविष्यति ॥ १९ ॥
नद्या तीरे तथा रम्ये हिरण्याख्ये शुभे तटे ।
सर्वदेवसंघाद्यां संनिपातो भविष्यति ॥ २० ॥
मनुजैः नृपवरैः सर्वै मनुष्यामनुष्यसंभवैः ।
सर्वभूतैस्तथा मर्त्यै बालिशाबालिशैस्तदा ॥ २१ ॥
महोत्सवमहोत्साहं तस्मिं स्थाने समागमम् ।
कृतमन्नमहं दिव्यं मच्छरीरे तु सामिषे ॥ २२ ॥
G 581 निरामिषं तदा स्थाप्य शान्तिमाप्नोति निर्वृतिम् ।
धर्मकोटिं परित्यज्य भूतकोटिं तु संविशेत् ॥ २३ ॥
अपश्चिमा मे तथा जातिः नगरे कपिलवास्तुके ।
शाक्यानां च कुले मुख्ये जातोऽहं भवचारके ॥ २४ ॥
ततोऽहं त्यज दुःखाल्यं निर्यातोऽहं गृहात्तथा ।
बहुतीर्थ्यां तथा सेव्य न च प्राप्तो मृतः पुनः ॥ २५ ॥
दुष्करं च मया चीर्णं कायं संताप्यतश्चैनम् ।
षडाब्दमुषितः भ्रष्टदेहं वापि विशुष्कतः ॥ २६ ॥
न च किंचिन्मया लब्धं येन ज्ञानमवावृतम् ।
ततोत्थाय मया तत्र आहारं कृथ शुभोदनम् ॥ २७ ॥
देवतासूचितं मार्गं गतोऽहं तत्र भूतलम् ।
नद्या नैरञ्जनातीरे वृक्षराजे सुशोभने ॥ २८ ॥

नानापुष्पसमाकीर्णे तथारण्येऽथ भूतले ।
महावनफलोपेते नानावृक्षसमुद्भवे ॥ २९ ॥
महानदीपरिवेष्ट्यान्ते तरुमूले ततो ह्ययम् ।
यो स्वकं दृष्टमात्रं तु भूभागं धृतिसंलभे ॥ ३० ॥
तथैवाहं तं तरुं दृष्ट्वा पर्णशाखोपशोभितम् ।
महावृक्षं महाच्छायं मूलगूढोपशोभितम् ॥ ३१ ॥
अश्वत्थेऽश्वत्थतां गच्छेत् तरुमूले निषद्य वै ।
धृतिं तत्राभिविन्दामि ध्यानं चापि समाधिकम् ।
प्राप्तं तत्र अनाशां वै रात्र्यन्ते जातिरन्तकम् ॥ ३२ ॥
मोरण बहुधा विघ्ना अनेकाकारसुयोजिताः ।
भग्नसैन्यपरावृत्य गतोसौ स्वभवनं पुनः ॥ ३३ ॥
तदर्थे मन्त्रतन्त्रा वै भाषिता बहुधा पुनः ।
अनेकाकारप्रयोगाश्च ध्याना ज्ञानाश्च भाषिताः ॥ ३४ ॥
त्रिधा यानं पुनस्तत्र चरितं सर्वसेवितम् ।
प्रतिपक्षा हि दोषाणां त्रिधा चैव प्रकाशितः ॥ ३५ ॥ G 582
ततोत्थाय पुनर्गत्वा उरुबिल्वां शुभोदकाम् ।
स्नात्वाम्भसे तत्र ऋषिं प्रव्रज्य सशिष्यकाम् ॥ ३६ ॥
सत्त्वार्थं बहुधा कृत्वा प्रक्रान्तोऽहं ततः पुनः ।
पुनः काशिपुरीरम्यां अनुपूर्व्या समाविशेत् ॥ ३७ ॥
तत्र स्थाने तु गत्वा वै परा बुद्धा महर्द्धिकाः ।
तत्राहं स्थितो देशे जने काशिजने स्वयम् ।
प्रवर्त्य चक्रं साधर्म्यशान्तिं निर्वाणकारकम् ॥ ३८ ॥
ससुरासुरलोकानां गतिं पञ्चासुनिसृताम् ।
सर्वभूतसुखार्थाय तत्र धर्मः प्रकाशितः ॥ ३९ ॥
आदिबुद्धैः पुरा तत्र धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ।
मयापि दिशि तत्र धर्मचक्रो ह्यनुत्तरः ॥ ४० ॥
भवमुक्तिसुखार्थाय सत्त्वदोषनिवारणा ।
प्रवर्त्य चक्रं ब्राह्मं वै क्षेमं शान्तपरायणम् ॥ ४१ ॥
भवमार्गविनाशार्थं चतुः सत्यसमाधिजम् ।
आर्याष्टाङ्गिकं मार्गं चतुर्ब्राह्मविभूषितम् ॥ ४२ ॥
सप्रतीत्यसमुत्पादं द्वादशाकारकारितम् ।
अविद्यानिरोधसंयुक्तं विद्यामुत्पादनेमिजम् ॥ ४३ ॥

भ्रामिता कोटितथ्यं वै भूतकोटिसुकोटिजम् ।
अनुलोमविलोमाभ्यां गतिमाहात्म्यनेमिजम् ॥ ४४ ॥
संप्रदेशशिवं चक्रं बहुसत्त्वा धिमोक्ष च ।
विमुच्य काशिपुरीं रम्यां श्रावस्त्याहं तदा गमे ॥ ४५ ॥
तीर्थिकानां तथा वर्ज्या प्रातिहार्यैर्विकुर्वनैः ।
सांकाश्ये तथा कृत्वा ऋद्धिर्जनपदे तदा ॥ ४६ ॥
बहुतीर्थायतनां स्थानां संप्रतोष्य तदा पुनः ।
अग्निभाण्डे जने कृत्वा देवावतरणं शुभम् ॥ ४७ ॥
G 583 त्रायस्त्रिंशेषु देवेषु शक्र संयोज्य धर्मताम् ।
अकनिष्ठावां तथा देवां ब्रह्मादीशपुरंदराम् ॥ ४८ ॥
सवैश्रवणयक्षेन्द्रां चतुर्महाराजकायिकां सदा ।
मत्ताकरोपमाणाश्च त्रिंशीणां गालवारिणाम् ॥ ४९ ॥
देवां यक्षगणां सर्वां भौमां दिव्यान्तरीक्षकाम् ।
आर्यां यक्षगणाध्यक्षां सर्वांश्चैव सुरासुराम् ॥ ५० ॥
कृत्वा धर्मफले युक्तां निर्वाणानुगसंविवाभ् ।
श्रेयसैव तदा योग्या बहुप्राणामचिन्तकाम् ॥ ५१ ॥
असंख्या गणना तेषां संसारान्तादनन्तकाम् ।
महासाहस्रलोकानां धात्वाध्यामचिन्तकाम् ॥ ५२ ॥
बहु सर्वं सदा सत्ये भूतार्थे संनियोज्य वै ।
इहाहमागतस्तत्र शुद्धावासोपरि स्थितः ॥ ५३ ॥
प्रवर्त्स्ये मन्त्रसद्धर्मंत्रियानसमानुगम् ।
सत्त्वानां विनयमागम्य कल्पराजमिदं पुनः ।
प्रकाश्ये बहुधा लोके मञ्जुघोषस्य दत्तवां ॥ ५४ ॥
निर्वृते तु मया लोके शून्यीभूते महीतले ।
मञ्जुश्रियोऽथ सत्त्वानां बुद्धकृत्यं करिष्यति ॥ ५५ ॥
आरक्षणार्थं सद्धर्मा जिनेन्द्राणां परिनिर्वृता ।
सतता रक्षणा नित्यं मञ्जुघोषो भविष्यति ॥ ५६ ॥
मन्त्रप्रभावनार्थं तु कथितं कल्पविस्तरम् ।
तस्मिं काले युगान्ते वै महाघोरे सुदारुणे ॥ ५७ ॥
नराधिपा महाक्रूरा परस्परवधे रताः ।
पापकर्मा दुराचारा अल्पभोगा तदायुगे ।
भविष्यन्ति न संदेहो तस्मिं काले युगाधमे ॥ ५८ ॥

ममागम्य च पूजार्थं अभूत् साल्वने वने ।
नदीहिरण्यावतीतीरे चैत्ये मकुटबन्धने ॥ ५९ ॥
परिनिर्वृते शयानं मे शान्तधातुसमासृते । G 584
चितामरोपिते देहे संभोगे भोगवर्जिते ॥ ६० ॥
दृष्ट्वेव तत् पुरा कर्म मामेवाद्भुतचेष्टितम् ।
मयैव विनयतागम्ये बुद्धवैनेयचेष्टिते ॥ ६१ ॥
चरितं तं शुभं चित्रं स्मृत्वा सर्वे नराधिपाः ।
सर्वे पूजां करिष्यन्ति सदेवासुरमानुषाः ॥ ६२ ॥
समागत्यथ भूपालाः सर्वे पूजामहोत्सवाम् ।
करिष्यन्ति न संदेहः तस्मि काले ममान्तिके ॥ ६३ ॥
चितामारोपिते देहे सामिषे गुणमुद्भवे ।
अशुभान्ते शुभे चैव सर्वे पुण्यविवर्जिते ।
भूतकोट्योऽथ शून्यास्ते पञ्चस्कन्धसमोदये ॥ ६४ ॥
बहुसत्त्वा तु तं दृष्ट्वा महापुण्यार्थे तु योजित[1] ।
महाश्रावका महात्मानः वीतरागा महर्द्धिका ।
बोधिसत्त्वास्तु सर्वे वै दशभूमिसमाश्रिता ॥ ६५
परिवार्य स्थिता सर्वे सर्वे चैवानुकम्पका ।
सर्वे वै देवसंघास्तु आर्या सपृथग्जना ॥ ६६ ॥
सर्वे चैतं महापुण्यं स्थानं चैकत्र माश्रितम् ।
चित्तप्रसादं प्रतिलेभेऽनित्यदुःखार्थमाश्रयम् ॥ ६७ ॥
सर्वे भूतगणात्तस्थुः चैत्यान्तेऽपि समीपतः ।
पूजां च महतीं चक्रे चुचुक्रोश रुरोदनम् ॥ ६८ ॥
मुमुचुः साश्रुबिन्दूनि सबाष्पाणि करुणेरिताम् ।
एवं च क्रोशिरे सर्वे अनित्यं दुःख शून्यताम् ।
धर्मं दिदेशितवां बुद्धः सांप्रतेऽथ महीतले ॥ ६९ ॥
सैवाद्य मुनिवराः श्रेष्ठः सप्तमो ऋषिपुंगवः ।
शाक्यजः सर्वसत्त्वाग्र्यो दर्शनं तस्य अपश्चिमम् ॥ ७० ॥
स एष भगवां शेते अनित्यदुःखाभिभाषिणः ।
शून्यपरमार्थमाख्यायी आदिशान्तार्थभाषिणः । G 585
किमर्थं देवसंघा भो न प्रबोधयत तं प्रभुम् ॥ ७१ ॥
आगता इह सर्वे वै बुद्धपुत्रा महर्द्धिका ।
धर्मार्थिका महावीरा श्रावकाश्च महर्द्धिका ॥ ७२ ॥

सर्वे वै दुःखिता सत्त्वा मानुषाश्च सुरासुराः ।
समयो वर्तते ह्यत्र धर्मचक्रानुवर्तने ॥ ७३ ॥
उत्थातु भगवां क्षिप्रं बुद्धवेलानुवर्तनेः ।
महासागरे चले वोलघ्या मुनितद्गतेः ॥ ७४ ॥
न चावमन्यां बहूं सत्त्वां चिरकालं समोभिजे ।
ध्यानं विमोक्ष संसेस्तु शान्तनिर्वाणमार्गे ॥ ७५ ॥
निषेधुं वा भूततो मुनिः । ....
एवं प्रकारं ह्यनेकां बहुप्रलापां प्रलपवंचूरे ॥ ७६ ॥
तूष्णींभूताथ सर्वे वै देवसंघा महर्द्धिका ।
आक्रन्दमतुलं कृत्वा सप्रणामा ततस्थिरं ॥ ७७ ॥
चुकूशु चिरमुत्कोश्य साश्रुकण्ठा सगद्गदा ।
सशोकाचित्तमनसो ब्रह्माद्याः ससुरासुरा ः ।
मनुजा नराधिपाः सर्वे निषण्णास्तत्र महीतले ॥ ७८ ॥
अपरः शाक्यजो मुक्तः वीतरागो महर्द्धिकः ।
ज्ञानिनो देवदेवस्य बुद्धस्यैव महात्मने ॥ ७९ ॥
अनिरुद्धो नामतो भिक्षुः अनुजोऽसौ मनुजः शुभः ।
सुसूक्ष्म निपुणो व्यक्तः गीतनीतिविशारदः ।
परिवारितो रहमुख्यैस्तु अनेकैश्चापि नराधिपैः ॥ ८० ॥
स भाषे मधुरां वाचां निःश्वसन्तः सुचेरिताम् ।
करुणार्द्रचेतसां क्षिप्तां मल्लानां सनराधिपाम् ॥ ८१ ॥
मा तावन्मार्षा ह्यत्र चितावग्निं प्रदायथ ।
यावद् भगवतः पुत्रः अग्रतो धर्मतोद्भवः ॥ ८२ ॥
G 586 महाकाश्यपनामेन श्रावकोऽसौ महर्द्धिकः ।
महामुने ह्यग्रधीजात ब्राह्मणोऽसौ निरामिषः ॥ ८३ ॥
मगधानां जने जातः पर्वते तत्र समाहितः ।
तिष्ठते ग्रहपिप्पले नगरे राजगृहे वरे ॥ ८४ ॥
स एवागमनं क्षिप्रं करिष्यति न चान्यथा ।
या तत्र देवताभक्ता स चेहोल्कां निवारयेत् ॥ ८५ ॥
मा तावच्चितिसंदीपं करिष्यथ वृथा श्रमम् ।
यावत् सो महार्द्धिको ह्यग्रः श्रावको मुनिनौरसः ॥ ८६ ॥
प्रदक्षिणीकृत्य गुरवे बुद्धस्त्रैलोक्यपूजिते ।
मूर्ध्ना प्रणम्य पादौ शास्तुनो लोकपूजितौ ॥ ८७ ॥

तदायं चितिदीपार्थं सर्वे तत्र करिष्यथ ।
आदीप्ता चैत्यभूताद् भविष्यति तदा इमा ॥ ८८ ॥
सर्वे मा वृथा कुर्वं श्रमं केवल भो इह ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे अनिरुद्धेन धीमता ।
निषण्णा सर्वमल्लास्तु मानुषास्ते सनराधिपाः ॥ ८९ ॥
मानुषाणामुत्पन्नोऽहं मानुषैश्चापि वर्धितः ।
भोगैर्बहुविधा चान्यैः कलाशिल्पशुभोदयैः ॥ ९० ॥
मनुष्याणां बोधिलब्धा मे तरुमूले महीतले ।
मनुष्याणां धर्मनिर्दिष्टः सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ ९१ ॥
अत एव मनुष्याणां चिता दीपार्थयोजिता ।
मनुष्योऽहं सर्वभूतानां अग्र्यत्वं च समागतः ।
मनुष्यलोके च शान्ति मे परिनिर्वाणं तु कल्पितम् ॥ ९२ ॥
ये केचित् सर्वबुद्धा वै अतीतानागतवर्तिना ।
सर्वे वै मनुष्यलोकेऽस्मिं मनुष्या देहमुद्भवा ॥ ९३ ॥
जाति बोधि तथा चक्रं साधर्म्यं चरितुं शुभम् ।
शान्तिं समाविशेत् सर्वे प्रत्येकामर्हतस्त्रिधा ।
मानुषीं तनुमाश्रित्य गता शान्तिमनुत्तराम् ॥ ९४ ॥ G 587
उपकारं मया तेषु कृतं कल्पामचिन्तिकाम् ।
आपश्चिमं मया शान्ते शीतीभूते निरोदये ।
स्थापिता धातवस्तत्र शून्यीभूते महीतले ॥ ९५ ॥
मनुष्याणां हितार्थाय पूजानुग्रहकाम्यया ।
ससुरासुरलोकानां ऋषियक्षगरुत्मताम् ॥ ९६ ॥
राक्षसां प्रेतकूष्माण्डां पिशाचां प्रेतमहर्द्धिकाम् ।
सर्वांश्चैव भूतानां सग्रहाश्चैव मातरान् ॥ ९७ ॥
सर्वांश्चैव तथा लोकां धात्वाचिन्त्यामसंख्यकाम् ।
सर्वप्राणिभूतांश्चैव पूजनार्थाय धातवः ।
स्थापिता ते तदा काले शून्यीभूते महीतले ॥ ९८ ॥
केचिद्रव्यागतैः मर्त्यैः देवराजैश्च चापरैः ।
पातालवासिभिश्चान्यैः दानवेन्द्रैर्महर्द्धिकैः ।
नागराजैस्तथा दैत्यैः धातवो मे पृथक् पृथक् ॥ ९९ ॥
अपहृत्य हृतार्था ये गुणवन्तोऽथ महर्द्धिकाः ।
करिष्यन्ति तदा पूजां नीत्वा स्वभवनं पुनः ॥ १०० ॥

भविष्यन्ति न संदेहः सर्वबुद्धा महर्द्धिकाः।
उत्तमाधममध्यस्था त्रिधा चित्तप्रसादतः॥ १०१॥
भविष्यन्ति ते त्रिधा लोके बुद्धखड्गर्हद्गता।
त्रिधा यानं तथा लोके त्रिप्रकारं समोदितम्॥ १०२॥
महायानानुवर्णिनं मार्गं तत्कर्माश्रितनिर्गता।
भविष्यन्ति तदा लोके प्रत्येकां बोधिनिःश्रिताम्॥ १०३॥
श्रावकाश्च परे तत्र वीतरागमहर्द्धिका।
भविष्यन्ति तदा लोके त्रिधा गोत्रविभूषिता॥ १०४॥
महीपाला महाभोगा महासौम्याथ चक्रिणाः।
दिव्यां मानुषसंपत्तीः अनुभूय चिरं तदा।
कालमासाद्य अन्ते वै त्रिधा शान्तिं गता हि ते॥ १०५॥
आदिमद्भिः पुराबुद्धैः वर्त्तमानैर्ह्यनागतैः।
सर्वेषां एष मार्गो वै यथायं संप्रकाशितः॥ १०६॥
तत्र निर्वाणभूमा वै निषण्णाः सर्वदेवता।
विभिन्नमनसोद्विग्नाः सहगद्गदभाषिणः॥ १०७॥
एवमाह तदा सर्वे अहो कष्टं ह्यनित्यता।
बुद्धमहर्द्धिका लोके परिनिर्वाणासृतापि ते॥ १०८॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवराजा महर्द्धिका।
.....................तूर्ष्णींभूताय तस्थिरे॥ १०९॥
G 588 मागधानां जने श्रेष्ठे कुशाग्रपुरिवासिनाम्।
पर्वतं तत्समीपं तु वाराहं नाम नामतः।
तत्रासौ ध्यायते भिक्षुः गुहालीनोऽथ पैपले॥ ११०॥
श्रावको मे सुतो ह्यग्रः औरसो धर्मतोद्भवः।
महाकाश्यपनामासौ निषण्णो गुहवरे तदा॥ १११॥
पिण्डपातं तदा भुक्त्वा निषण्णश्चिन्तयेत् स्वयम्।
बहुकालं मया बुद्धो वन्दितोऽसौ महामुनिः।
सांप्रतं गन्तुमिच्छामि स्वयंभुवं तं नरोत्तमम्॥ ११२॥
कुत्र वा तिष्ठते भगवां शाक्यतो मुनिसत्तमः।
समन्वाहरति तत्रस्थः महाकाश्यपविप्रराट्॥ ११३॥
एवं समन्वाहृतवां नुं चित्तेनैव मुनिना मुनिम्।
दिव्येन चक्षुषा लोकं सर्वलोकांश्चावलोकयेत्॥ ११४॥

अकनिष्ठाद्यं तथा लोकां अवभास्या लोकधातवः ।
सर्वां समग्रसत्त्वाख्यां महासाहस्रोद्भवोद्भवाम् ॥ ११५ ॥
श्रावकानां गोचरं यावत् पश्यते दिव्यचक्षुषा ।
शासनं निर्वृतं शान्तं शीतीभूतं निरामिषम् ॥ ११६ ॥
परिवारितं समन्ताद् वै देवसंघैः महर्द्धिकैः ।
मनुजैर्नराधिपैश्चापि असुरैर्यक्षराक्षसैः । G 589
सर्वभूतगणैश्चापि बोधिसत्त्वैर्महर्द्धिकैः ॥ ११७ ॥
महायशैः श्रावकैश्चापि प्राज्ञधूर्धरतां गतैः ।
सरागैर्वीतरागैश्च दिव्यार्यैर्मनुजैस्तदा ॥ ११८ ॥
चितामारोपितं वीरं बुद्धमादित्यबान्धवम् ।
देवदेवं तदा श्रेष्ठं मुनीनां सत्तमं प्रभुम् ॥ ११९ ॥
परिवारितं समन्ताद् वै भूपालैर्द्वीपवासिभिः ।
तृणोल्कैर्गृहीतसंहस्तैः मल्लैश्चापि मनुजेश्वरैः ॥ १२० ॥
नादीपयितुं समर्था ते देवताभिर्निवारिता ।
व्रतिना चैवमुक्तेन अनिरुद्धेनैव भिक्षुणा ॥ १२१ ॥
साश्रुकण्ठं स चोत्क्रुष्टां विघुष्टांश्चैव मेदिनीम् ।
हाहाकाररवं घोरं दुन्दुभीनां च नादितम् ॥ १२२ ॥
दिव्यं ऋषिगणाकीर्णं अप्सरागणसंस्तुतम् ।
सिद्धविद्याधरीगीतं किन्नरोद्गीतं च तद् वनम् ॥ १२३ ॥
मधुराकूजितोद्घुष्टं पक्षिणां रुदितं शुभम् ।
चित्रं मनोज्ञवादित्रं दिव्यमानुष्यनादितम् ॥ १२४ ॥
अप्सरागणसंगीतं सिद्धविद्याधरोचितम् ।
योगिभिः सर्वतः कीर्णं अभूत् साल्वनं वनम् ॥ १२५ ॥
समन्तात् परिवृतं श्रेष्ठं शयानं मुनिपुंगवम् ।
ततोऽर्ध्वं निःश्वस्य सशोको वै वीतशोको ॥ १२६ ॥
अश्रुबिन्दुं प्रमुञ्चं वै श्रमणः काश्यपस्तदा ।
अग्रश्रावको मह्यां पृथिव्यामावर्तते तदा ॥ १२७ ॥
वाचं चाभाषते क्षिप्रं अहो कष्टं प्रवर्तते ।
यत्र नाम तथाबुद्धाः परिनिर्वृत्यनाश्रवाः ॥ १२८ ॥
अनित्यं दुःखशून्यं तु इह तेनैव भाषितम् ।
न दृष्टो मे शाश्वतो विश्वं अन्यजन्मानुवर्तिनम् ॥ १२९ ॥

G 590 ततोत्थाय ततः क्षिप्रं मगधानां नृपतिं व्रजेत् ।
अजातशत्रुं दुःखार्तं पितृशोकसमर्पितम् ॥ १३० ॥
गृहं तस्य तदा गत्वा तमुवाच नराधिपम् ।
निर्वृतोऽसौ महाराज संबुद्धो द्विपदोत्तमः ॥ १३१ ॥
क्षिप्र योजय मानं तु गच्छामो शास्तुमन्तिकम् ।
धरणिस्थं शयानं वै निर्ज्वरं गतचेतसम् ।
सर्ववैरभयातीतं संभोग्यं कायसत्तमम् ॥ १३२ ॥
श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरं सुदुःखी सौ नृपतिः पुनः ।
अन्तःप्रलापं क्रन्दन्तः वाचां भाषे तदा, नृपः ॥ १३३ ॥
उभाभ्यामपि भ्रष्टोऽहं शास्तुनो पितरस्य च ।
सर्वैर्बान्धवै त्यक्त्वा अविश्वास्योऽहं तथाजने ।
पतितोऽहं घोरनरकं कः शरण्यं वृणोम्यहम् ॥ १३४ ॥
परित्रायस्व महावीर श्रावकः शास्तुमग्रकः ।
महाकाश्यपो महातेजा नास्ति मे जीवितं इह ॥ १३५ ॥
इत्येवमुक्त्वा तु नृपो मुख्यो मागधानां नराधिपः ।
प्रपतितः तत्क्षणामुर्व्यां अग्रश्रावकपादयोः ।
निश्चेष्टो मूर्च्छितस्तत्र सहसा शयते महीम् ॥ १३६ ॥
त्वं कुमार तदा कालं मञ्जुघोष महर्द्धिक ।
समन्ताद् विचरसे लोकां सत्त्वानुग्रहकाम्यया ॥ १३७ ॥
चितामारोपिते देहे मम स्थाने वने तदा ।*
मन्न त्वं निषण्णोऽभूद् बोधिसत्त्वगणावृतः ॥ १३८ ॥
मच्छरीरं हि पूजार्थं त्वया कृत्वेह महीतले ।
समन्तादालोकयसे भूतां को हि दुःखी कमुद्धरेत् ॥ १३९ ॥
इत्यहं पतितो भूमौ कुमारो गम्भीरतथ्यधीः ।
मञ्जुश्रिया थ त्वयावश्य भूपालस्यातिदुःखिते ॥ १४० ॥
तत्रस्थोऽपि त्वया तस्य त्वयैव विनयिनोऽसौ ।
G 591 बोधिसत्त्वावगम्यो यो न तच्छक्यं महर्द्धिकैः ।
दैवतै ऋषिभिश्चान्यैः प्रत्येकार्हश्रावकैः ।
तत्रस्थः स्वप्नवत्पश्येन्मञ्जुघोषं नराधिपम् ॥ १४१ ॥
त्वयैव ऋद्धिमाविष्टः स राजा शोकमूर्च्छितः ।
पश्यतेऽसौ तदा स्वप्ने प्रत्यक्षं च बालिनम् ।
कुमारं विश्वमात्मानं मञ्जुघोष महर्द्धिकम् ॥ १४२ ॥

विकुर्वन्तं तथा धर्मं बोधिसत्त्वं सबालकम् ।
विचित्रं अचिन्त्यतां ऋद्धिं मञ्जुश्रीः त्वत्प्रसादतः ॥ १४३ ॥
अवीचिगमनं नृपतेः उत्थानं च सत्त्वरम् ।
विविधां धर्मतांश्चैव अपायं नाशशोभनम् ॥ १४४ ॥
गतिमाहात्म्यगुणांश्चैव सर्वश्रावकवर्जिताम् ।
विस्तरेण ततः कृत्वा सूत्रकौ कृत्यनाशनम् ॥ १४५ ॥
अजातशत्रोर्नृपतेः विनोदं चातिविस्तरम् ।
समासेन इदं प्रोक्तं विस्तरार्थार्थभूषितम् ॥ १४६ ॥
वचनं सर्वबुद्धानां आदिमध्यावसायिनाम् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय भाषितः कल्पविस्तरः ॥ १४७ ॥
त्वं कुमार तदा काले मञ्जुश्रीर्वच सर्वतः ।
विनेष्यसि महीपालं पापकर्मानुवर्तिनाम् ॥ १४८ ॥
अचिन्त्यं ते ऋद्धिविषयं वापि अचिन्तितम् ।
सर्वभूतगणांश्चैव त्वं विनेता भविष्यसि ॥ १४९ ॥
इत्येवमुक्त्वा महावीरो बुद्धानां च महाद्युतिम् ।
मञ्जुघोषं तदा काले शुद्धावासोपरिस्थितम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठः संबुद्धो द्विपदोत्तमः ॥ १५० ॥
भविष्यसि त्वं संबुद्धः बहुकल्पाभिनिर्गतैः ।
अचिन्त्यैर्गणनासंख्यैर्मानुषैर्गणनासमैः ।
मञ्जुध्वजोऽथ नामो वै बुद्धो लोके भविष्यसि ॥ १५१ ॥
बुद्धकृत्यं तदा कृत्वा अनुपूर्वेण वो सदा ।　　G 592
विमोच्यथ बहुं सत्त्वां परिनिर्वाणं ते भविष्यति ॥ १५२ ॥
इत्युक्तः कुमारो वै बालरूपी महर्द्धिकः ।
स दीर्घं निःश्वस्य संविग्नः करुणाविष्ट चेतसा ॥ १५३ ॥
चिरमालोक्य संबुद्धं साश्रुबिन्दून् मुमूच्य च ।
सप्रणामाञ्जलिपुटः निषसाद ततः पुनः ॥ १५४ ॥
ततो क्ष्मातलाधस्थः अजाताख्यो नृपोत्तमः ।
प्रणम्य शिरसा विप्रं महाकाश्यपमद्भुतम् ॥ १५५ ॥
विबुद्धश्चेतनायातं पादौ वन्द्य अग्रणीः ।
निःश्वस्य च चिरं कालं विस्तरार्थं निवेद्य च ॥ १५६ ॥
निषण्णो नृपतेः पुत्रः अजाताख्यो मगधेश्वरः ।
महाकश्यपं ततो वव्रे गच्छामोस्तं चितालयम् ॥ १५७ ॥

पूजितं चैत्यबिम्बस्थं उपकारार्हमानुषम् ।
तत्रस्थः श्रावको ह्यग्रः ऋद्ध्या चैवमुपागमम् ॥ १५८ ॥
तस्योत्वह्नते चित्तं अयुक्तं मम ऋद्धिये ।
पद्भ्यां गन्तुमिच्छामि महाचैत्यं समागमम् ॥ १५९ ॥
अपश्चिमे गतिः शास्तुः दर्शनार्थं तु मागमम् ।
ततोऽर्धपथे तस्थुः संघरामे तु स व्रती ॥ १६० ॥
यावत्पश्यते तत्र संघरामनिवासिनम् ।
महल्लं भिक्षुनवकमुमायसत्त्वं विमोहितम् ॥ १६१ ॥
स दृष्ट्वा उपसंक्रान्त महल्लो तं चिरोपिणम् ।
महेशाख्यं महाभागं शुद्धसत्त्वनिरामयम् ॥ १६२ ॥
उपसंक्रम्य तं विप्रं वन्दित्वा पादयोस्तदा ।
उवाच तं महाभागं स्वागतं ते किमागतम् ॥ १६३ ॥
कुत्र वा यास्यते क्षिप्रं उद्विग्नो वा किं वतिष्ठसे ।
उवाच सो तं ऋषिं तं बालं आयुष्यं न श्रुतं त्वया ॥ १६४ ॥
G 593 शास्ता वै सर्वलोकस्य संबुद्धो द्विपदोत्तमः ।
पिता मे अग्रधीः बुद्धः प्रदीपार्चिरिव निर्वृतः ॥ १६५ ॥
अस्तं गतो महावीरः शून्यीभूता हि मेदिनी ।
सर्वशून्यास्तथा लोकाः शून्या भूताश्च मे दिशाः ॥ १६६ ॥
ततः प्रहृष्टो महल्लोऽसौ विपरीतो बालचेतनः ।
प्रसह्य वचनं चाह निर्वृतोऽसौ प्रदीर्घकः ॥ १६७ ॥
प्रलम्बबाहुरत्युच्चच्छत्राकारसमशिरः ।
अस्माकं नायको ह्यग्रः शिक्षाशिक्षसुवर्तिनः ॥ १६८ ॥
यथेष्टं विचरिष्यामि सांप्रतं तेन निर्वृते ।
इत्येवमुक्तो महल्लेन प्रहृष्टोऽसौ महर्द्धिकः ॥ १६९ ॥
भृकुटिं कृत्वा ततो वक्त्रे हुंकारोऽसौ प्रयोजयेत् ।
रुरुष्य तत्क्षणाद् विप्रः वासनाभावितो यतिः ॥ १७० ॥
हन्यान्महीतले तत्र पादाङ्गुष्ठेन तत्क्षणात् ।
सर्वं प्रचलिता उर्वी पर्वतोच्चाः समो रवः ॥ १७१ ॥
क्षुभिताः सागराः सर्वे सर्वे वृक्षाश्च पर्वताः ।
कन्दरा गुहविन्यस्ता नागराजाश्च देवता ॥ १७२ ॥
नष्टा लोका मही तस्मिं काले चन्द्रभास्करौ ।
निवात वा ततस्तस्थुः उल्काश्चापि पपेतुरे ॥ १७३ ॥

ततोऽसौ मन्त्रमिति ख्यातः श्रावकाणां कुलोद्भवम् ।
एकाक्षरः सहुंकारः सर्वकर्मकरः शुभः ॥ १७४ ॥
असाधितोऽपि करोत्येष जापमात्रेण मन्त्रराट् ।
सर्वशस्त्रांस्तथा स्तम्भं विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १७५ ॥
सर्वेषां दुष्टसत्त्वानां जापमात्रेण स्तम्भनः ।
करोति कर्मवैचित्र्यं अन्यांश्चैव विशेषतः ॥ १७६ ॥
प्रपलानो महल्लकस्तत्र तूष्णींभूतो ह्यतो गतः ।
ऋद्ध्या चावर्जितस्तेन विनयित्वा च तत्क्षणात् ॥ १७७ ॥
श्रावकेण तदाग्रेण नीतोऽसौ चितिसंनिधौ । G 594
पद्भ्यां गतो हि सो भिक्षुः वीतरागो महर्द्धिकः ॥ १७८ ॥
गत्वासौ पश्यते तत्र मुनिनो देहचिताश्रिताम् ।
अनेकधा दैवसंघैस्तु महापूजां प्रवर्तिताम् ।
विविधाकारवरोपेतां सर्वाकारसुभूषिताम् ॥ १७९ ॥
चितामारोपितं देहं मुनिनो गौतमस्य वै ।
दृष्ट्वा तु तं महाभागं महाकाश्यपमद्भुतम् ॥ १८० ॥
सर्वे ते वीतदोषा वै भिक्षवश्च महर्द्धिकाः ।
सर्वे देवगणा भूताः हाहाकारं प्रमुञ्च्य च ।
आक्रन्द्य च महच्छब्दं रवं चापि सुशोकजम् ॥ १८१ ॥
प्रत्युद्गम्य ततः सर्वे देवनागा महर्द्धिकाः ।
उवाच तं महाभागं वन्दस्व द्विपदोत्तमम् ॥ १८२ ॥
तवैचोदीक्षणं तं विश्वा देवसंघा समानुषाः ।
सर्वे भूतगणाश्चैव ऋषियक्षनराधिपाः ।
चितादीपनतं निष्ठा अशक्ता दीपयितुं चिताम् ॥ १८३ ॥
ततोऽसौ वीतदोषस्तु महाभोगो महर्द्धिकः ।
कृत्वा प्रदक्षिणं बाहु बहुधानुस्मृत्य तथागतम् ।
चितान्ते अन्तिमे भागे वन्दतेऽसौ महर्द्धिकः ॥ १८४ ॥
आयसीं च तदा द्रोणीं भित्त्वा पादौ विनिर्गतौ ।
वन्दित्वा पादयोर्मूर्ध्ना परामृश्य पुनः पुनः ॥ १८५ ॥
उद्वीक्ष्य बहुधा तत्र चरणौ मुनिवरे वरौ ।
प्रविष्टा भूयसस्तत्र आयसीं द्रोणिमाश्रितौ ॥ १८६ ॥
निषण्णोऽसौ ततोत्थाय वीतरागौ महर्द्धिकः ।
परिवारोऽथ अर्हन्तैः वीतरागैर्महर्द्धिभिः ॥ १८७ ॥

राजा मागधो मुख्यः आगतोऽसौ चितान्तिके।
अनुपूर्व्या तथा यानैः हस्त्यश्वरथवाहनैः ॥ १८८ ॥
G 595 महासैन्या थ भूपालाः सर्वे सबलवाहनाः।
आगता वन्दितुं तत्र मुनिं शाक्यमुनिं तदा ॥ १८९ ॥
शयानं भूतले शान्ते प्रान्तेऽरण्ये........।
नद्या हिरण्यवतीतीरे चैत्ये मकुटबन्धने ॥ १९० ॥
शान्तधातुसमाविष्टे भूतकोटिसमासृते।
मागधो नृपतिस्तत्र महासैन्यसमागतः ॥ १९१ ॥
सोऽपि पश्यति तं दिव्यं विविधाकारचेष्टितम्।
महानुशंसं प्रभावं च आश्चर्यं भुवि मण्डनम् ॥ १९२ ॥
चैत्तदेहजं तत्र चितामारोपितं मुनिम्।
आनन्दो नामतो भिक्षुः सुशैक्षे परिचारकः ॥ १९३ ॥
यमेवं मनुजं श्रेष्ठं वत्सलो मे सदा रतः।
भविष्यति तदा काले आर्ते विक्लवमानसः ॥ १९४ ॥
महाकाश्यपं ततो गत्य पादयोर्निपतितो भुवि।
एवं चोवाच दुःखार्तः वेपथुं ते सगद्गदः ॥ १९५ ॥
अद्य मे निर्वृतः शास्ता अनाथोऽहं स सांप्रतम्।
सतिमेलयनं त्राणं त्वमेव परिकीर्तितः ॥ १९६ ॥
तेनैव मुनिचन्द्रेण व्याकृतोऽहं तवान्तिके।
सर्वक्लेशप्रहाणां तु अर्हत्त्वं त्वमन्तिके ॥ १९७ ॥
रात्र्यां पश्चिमे यामे निर्दिष्टं तेन जिनेन वै।
म्रियते तुभ्य नित्यं वै मयैव परिनिर्वृतः ॥ १९८ ॥
बुद्धकृत्यार्थं तुभ्यं वै कृतं तेन हितैषिणा।
मयापि दुःखितः त्यक्त्वा शान्तियातो महामुनिः ॥ १९९ ॥
अनिरुद्धो नामतो धीमां समाश्वासयति तं यतिम्।
मा रोदं तथा शोचं मा शोकं च समाविश।
मा व्रज कुत्र वस्थानं एतमेव समाश्रय ॥ २०० ॥
एष एव भवेच्छास्ता निर्वृते लोकचक्षुषे।
G 596 मुनिना व्याकृते ह्यत्र बुद्धकृत्यं करिष्यति ॥ २०१ ॥
वयं च भवसा सार्धं अनुयास्याम काश्यपम्।
ऋद्धिमात्रं महाभागं तेजवन्तं महाद्युतिम्।
द्वितीयमिव शास्तारं प्रतिबिम्बं महीतले ॥ २०२ ॥

महाकाश्यपमुख्यं तु श्रावकाणां महर्द्धिकम् ।
तिष्ठन्तं ध्रियमाणं वै मा शोकं चेतु वै कृया ॥ २०३ ॥
एवमालापिनः सर्वे करुणाविष्टा महर्द्धिका ।
वीतरागा महायोगा मुनिपुत्रा निषण्णवां ॥ २०४ ॥
चितामादीपितो तैस्तु मल्लैश्चापि नराधिपैः ।
आदीप्ते तु समन्ता वै भस्मीभूतं तु तं चितम् ॥ २०५ ॥
तं दृष्ट्वा देवसंघा तु भोगवन्तो महोरगाः ।
शान्तये तच्चितास्थानं चन्दनोदकवारिणा ॥ २०६ ॥
महावर्षं प्रमुञ्चन्ता स्थिता भूयोऽथ तत्क्षणात् ।
महापुष्पौघमुत्सृज्य पुनरेव महीतले ॥ २०७ ॥
आगता तत्क्षणात् सर्वे जिनधातुं सुपूजना ।
सर्वे परस्परं युद्धं कर्तुमारब्ध तत्क्षणात् ॥ २०८ ॥
ब्रह्माद्या शक्रयामाश्च सर्वदेवगणास्तथा ।
निवारिता वीतरागैस्तु श्रावकैश्च महर्द्धिकैः ॥ २०९ ॥
महाकाश्यपेन विभज्य वै धातवो जिनमूर्तिजा ।
स्तोकस्तोकानि दत्तानि पूजनार्थाय सर्वतः ।
त्रिधा यानपरावृत्तिं निष्ठाशान्ति च कारणात् ॥ २१० ॥
महाकाश्यपस्तदा योगी वीतरागो महर्द्धिकः ।
चिन्तयामास तं बोध्यं महल्लकस्य अभाषितम् ।
माहैव प्रवचनं कृत्स्नं द्वादशाङ्गं सुखोदयम् ॥ २११ ॥
सूत्रविनयाभिधर्मं वै धूमकालिकतां व्रजेत् ।
अस्तं याते महावीरे विप्रलोपो भविष्यति ॥ २१२ ॥
संगातव्यमिमं कृत्स्नं वचनं बुद्धभाषितम् । G 597
गच्छामः सहिताः सर्वे वीतरागा महर्द्धिकाः ।
मागधानां पुरं श्रेष्ठं राजाख्यं नगरं शुभम् ॥ २१३ ॥
कुशाग्रपुरे रम्ये पर्वते सुशिलोच्चये ।
वैशाल्यां च शुभे देशे चैतस्थाने सुशोभने ॥ २१४ ॥
एवंप्रकारा ह्यनेकांश्च शासनार्थं तु कारणात् ।
मल्ला पलायिनः सर्वे चक्रिरे स महर्द्धिका ॥ २१५ ॥
तस्मिं काले युगान्ते वै अस्तं याते मया तु वै ।
महीपाला भविष्यन्ति परस्परविधे रता ॥ २१६ ॥

भिक्षवो बहुकर्मान्ता सत्त्वा लोभमूर्च्छिता।
अश्राद्धा युगान्ते वै उपासकोपासिकास्तथा।
परस्परवधासक्ताः परस्परगवेषिणः ॥ २१७ ॥
छिद्रप्रहारिणो नित्यं सव्रणा दोषदस्तथा।
भिक्षवो ह्यसंयतास्तत्र मुनिरस्तं गते युगे ॥ २१८ ॥
स्थापिता रक्षणार्थाय शासनं भुवि मे तदा।
अष्टौ महर्द्धिका लोके वीतरागा निरास्रवाः ॥ २१९ ॥
अर्हन्तः तदा ज्येष्ठा राहुलाद्या प्रकीर्तिता।
तेषां दर्शनं नास्ति तस्मिं काले युगाधमे ॥ २२० ॥
अमोघं दर्शनं तेषां रिद्धिकाले तु मन्त्रिणाम्।
मयात्र स्थापिताः सर्वे ऋद्धिमन्त्रो महर्द्धिकाः ॥ २२१ ॥
प्रणिहितं मया तेषां दण्डकर्म महायशाम्।
आज्ञोल्लङ्घनं तेषां किंचिच्छिष्या व्यतिक्रमे ॥ २२२ ॥
तिष्ठध्वं यावत् सद्धर्मं भूतकोटिं निरामिषम्।
मम वाक्यमिदं पुण्यं यावद् घुष्यते तले ॥ २२३ ॥
ततः शान्ता निरात्मनः परिनिर्वाथ निरास्रवाः।
भविष्यति तदाकाले शासनान्तर्हिते मुनौ ॥ २२४ ॥

G

५ ॥

॥

भविष्यन्ति तदा काले द्विजवर्णरता जना ॥ २२८ ॥
मिथ्याचारा तथा मूढा प्राणिहिंसारता नरा।
मया तु परिनिर्वाणो व्याकृतोऽयं कलौ युगे ॥ २२९ ॥
बहुनार्या नराश्चैव परदाररताः सदा।
अकुशलेषु रताः सर्वे कुशलार्थविवर्जिताः।
बहुसत्त्वा भविष्यन्ति मयि शान्तगते भुवि ॥ २३० ॥

ममैतच्छरीर पूजा तु देवसंघा महोजसा ।
मनुष्याश्चैव महात्मानो यक्षभूतगणास्तथा ।
असुरा अथ गन्धर्वा किन्नराश्च महर्द्धिकाः ॥ २३१ ॥
गरुडा अथ गन्धर्वा राक्षसा ऋषयस्तथा ।
सिद्धा योगिनश्चैव....महोजसा ॥ २३२ ॥
विविधाकारसत्त्वास्तु विविधां गतियोनिजाः ।
भवसूत्रनिबद्धास्तु च्छिन्नबन्धनधीमता ॥ २३३ ॥
करिष्यति तदा पूजां शरीरेऽस्मिं गतिज्वरे ।
नदीहिरण्यवतीतीरे यमकशालवने वने ॥ २३४ ॥
चैत्ये मकुटबन्धे तु मल्लानामुपवर्तने ।
परिनिर्वृते च तत्राहं शान्तिं गच्छेद् भयवर्जिताम् ॥ २३५ ॥
ममैतद् धातु संगृह्य ह्रियमाणैः पैरैस्तदा ।
देवैश्च रसुरैश्चापि सर्वभूतगणैस्तथा ।
विभज्य स पृथग् भागेषु व्यस्तं कारिता अभूत् ॥ २३६ ॥ G 59
मनुष्यराजा महासैन्यः अजाताख्यो मागधस्तदा ।
प्रार्थयामास सर्वेषां श्रावकां सुमहर्द्धिकाम् ॥ २३७ ॥
ममाप्यकृतपुण्यस्य पितुर्मरणकारिणः ।
अभ्युद्धरथ महात्मानं दुःखितं पतितं तु माम् ॥ २३८ ॥
ततोऽग्र्यः श्रावको धीमां बुद्धस्य सुतमौरसः ।
महाकाश्यपेति विख्यातः प्रजानां हितकारकः ॥ २३९ ॥
तं तु दृष्ट्वाथ वैक्लव्यं अजाताख्यास्य धीमतः ।
समन्वाहरति तत्कालं ऋद्ध्या चैवमधिष्ठयेत् ॥ २४० ॥
भागैकं गृह्ययामास सधातूनां जिननिःश्रिताम् ।
अन्यैदपहृतादन्यैः भोगिभिश्च महाबलैः ॥ २४१ ॥
अन्योन्यरभसात् क्षोभं कृत्वा चैव परस्परम् ।
नीत्वा धातुं तदाकारैः स्वगृहं चापि तस्थुरे ॥ २४२ ॥
महाकाश्यपो तदा भिक्षुः अग्रश्रावकः तदा मुनिः ।
चिन्तयामास.................. ॥ २४३ ॥
अहो कष्टं मनुष्येषु शून्योऽयं भुवि मण्डले ।
बुद्धैः प्रत्येकबुद्धैस्तु श्रावकैश्च महर्द्धिकैः ॥ २४४ ॥
आलोकहीना सत्त्वा वै भवचारकचारिणा ।
ते दुःखां विविधां तीव्रां अनुभविष्यति ते चिरम् ॥ २४५ ॥

धातुं पूजयित्वा तु लोकनाथस्य तायिने ।
अनुभविष्यन्ति ते सौख्यं देवलोकमनुत्तमम् ॥ २४६ ॥
राज्यं च मथ भोगांश्च मनुरिद्धिसुदुर्लभाम् ।
प्राप्स्यन्ति विविधाकारां विचित्रगतिचेष्टिताम् ॥ २४७ ॥
लोकस्याग्रां संपदामिष्टां त्रिधा मोक्षभूषिताम् ।
पूजयित्वा तु धातूनां प्राप्नुयात् सिद्धिमुत्तमाम् ॥ २४८ ॥
एवं चिन्तयित्वा तु ब्राह्मणो लोकविश्रुतः ।
G 600 श्रावको मुनिवरे ज्येष्ठः काश्यपो नाम नामतः ॥ २४९ ॥
संगृह्य च तदा धातुं संबिभर्ति तदा भुवि ।
स्तोकं दत्वा अजाताख्ये मागधस्यैव यत्नतः ॥ २५० ॥
एवं नराधिपेषु सर्वेषु अग्रेष्वपि महाद्युतिः ।
सर्वेभ्यः सर्वतो दत्वा श्रावकोऽसौ महात्मनः ॥ २५१ ॥
पुनरेव भवस्तस्थौ अनित्यंसमभावत ।
शोकमागमास सत्त्वानां करुणाविष्ट चेतसा ॥ २५२ ॥
रोदिष्यन्ति चिरं सत्त्वा कल्पां बहुविधां तथा ।
सद्धर्मिन्तर्धिते लोके शास्तुनो शाक्यपुंगवे ।
संगातव्यमिमं वाक्यं गाहेवं धूमकालिनाम् ॥ २५३ ॥
ततोऽभ्युत्थितत्वां वीरः प्रभावामृतचेतसः ।
आमन्त्रयामास मन्त्रजेन्द्रं अजाताख्यं नराधिपम् ॥ २५४ ॥
गच्छामो राजगृहं नगरं शास्तु शासनसत्कृता ।
गाथकुम्भसुविन्यस्तां धातुं प्रक्षिप्य यत्नतः ॥ २५५ ॥
तेऽत्र पूर्वेण आयाता क्षिप्रं राजगृहं तदा ।
स्थानं वेणुवनं प्राप्य स्थापयामास जिनोद्भवाम् ॥ २५६ ॥
स्तूपं महाद्भुतं कृत्वासौ लोकनाथस्य तायिने ।
पूजयामास तं स्तूपं विविधाकारभूषणैः ॥ २५७ ॥
माल्यचीवरच्छत्रैश्च चूर्णगन्धैस्तु धूपनैः ।
छत्रैः पताकैर्विचित्रैश्च गन्धमाल्यविलेपनैः ।
अनेकाकारविचित्रैस्तु दीपमालाभि स्रग्मिभिः ॥ २५८ ॥
पूजां कृत्वा महीपाल प्रणामगतचेतसः ।
मूर्ध्ना प्रणम्य तं स्तूपं प्रणिधिं चक्रिरे तदा ॥ २६९ ॥
लोकाग्रं पूजयित्वा तु यन्मया कुशलं बहु ।
अनेकताथागतीपूजां प्राप्नुयाहमचिन्तिया ॥ २६० ॥

उत्थाय ततो राजा महाकाश्यपमब्रवीत् ।
अश्रु संपरामृज्य बाष्पाकुलितलोचनः । G 601
कृपाविष्टहृदयः पितरं संस्मरेत् तदा ॥ २६१ ॥
आर्यो मे महाप्राज्ञः साक्षिभूतो भवस्व माम् ।
यन्मया कारितं पापं नियतावीचिपरायणम् ॥ २६२ ॥
तादृशं धर्मराजं तु शास्तुर्वचनपथे स्थितम् ।
घातयित्वा तु तं पितरं न शक्नोमि विनोदितुम् ॥ २६३ ॥
कल्याणमित्र आर्यो मे धर्मार्थं देष्टुमर्हति ।
एवमुक्तो महात्मासौ अग्रश्रावको जिने ।
काश्यपो नामतः धीमां इमं वाचमुदीरयेत् ॥ २६४ ॥
मा भैष्ट महाराज कृतं ते कुशलं बहु ।
अस्ति ते जन्मिनोऽभ्यासः अनेकशतधा पुरा ।
बुद्धानामनुत्पादा प्रत्येकजिनसंभवः ॥ २६५ ॥
नगर्यां वाराणस्यां श्रेष्ठिपुत्र अभूत् तदा ।
अज्ञानाद् बालचापल्याद् रथ्यायां निर्ययौ तदा ॥ २६६ ॥
स एव भगवं तत्र प्रत्येकजिनमागतः ।
भिक्षार्थी हिण्डते तत्र लोकानुग्रहकाम्यया ॥ २६७ ॥
बालस्य दृष्ट्वा तं प्रसन्नगतमानसम् ।
पादयोर्निपत्य पप्रच्छ किं करिष्यसि तैर्भिक्षु ॥ २६८ ॥
तूष्णीमेव स्थितो भगवां खड्गकल्पमसंभव ।
तदा तेन तु बालेन चीवरे गृह्यमस्थित ॥ २६९ ॥
गच्छ गच्छ इमं श्रेष्ठं मन्दिरं ध्वजभूषितम् ।
अस्माकमेतदावासं पादौ प्रक्षाल्य भोक्ष्यसे ।
भुंक्ष्व क्षिप्रं यथाकामं क्रीडिष्यामो यथेष्टतः ॥ २७० ॥
ततोऽसौ वीतदोषस्तु त्रिमलान्तकघातकः ।
अनुपूर्वेण ययौ तत्र परानुग्रहतत्परः ।
गत्वा द्वारमूलेऽस्मिं स्थित एव महाद्युतिः ॥ २७१ ॥
ततस्तेन तु बालेन प्रविशित्वा अम्ब उच्यते । G 602
देहि भक्ष मया अम्ब भिक्षांश्च विविधां बहूम् ॥ २७२ ॥
मित्रो मे ह्यागतो ह्यत्र पांसुक्रीडनकश्चिरात् ।
मोदिष्यसि चिरं तेन तिष्ठते द्वारमागतः ॥ २७३ ॥

तदा स त्वरमाना तु द्वारं निर्गत्य तत्क्षणात् ।
पश्यते तं महाभागं शान्तवेषं महर्द्धिकम् ॥ २७४ ॥
तदा सा क्षिप्रमागत्य गृहीत्वा भाजनं शुभम् ।
सुप्रक्षाल्य ततो हस्तौ................॥ २७५ ॥
गृहीत्वा ओदनं चौक्षमनेकरसभूषितम् ।
विविधाकारभक्षांश्च भाजने न्यस्य राजते ॥ २७६ ॥
आगम्य च तदा क्षिप्रं पात्रे....निवेद्य च ।
पादयोर्निपतिता सा तु ससुता धर्मवत्सला ॥ २७७ ॥
गृहीत्वासौ पिण्डपातं तु आकाशे अभ्यगच्छत ।
ततोऽसौ ज्वलमानस्तु दीपमालेव दृश्यते ॥ २७८ ॥
तेन तेषां वाचिको धर्म विद्यते खड्गचारिणाम् ।
प्रभावं ऋद्धिसत्त्वानां दर्शयन्ति महात्मनः ॥ २७९ ॥
अतिकारुणिका तेऽपि सत्त्वेभ्यो गतमत्सराः ।
परलोकार्थं तु सत्त्वेभ्यः ऋद्धिं संदर्शयन्ति ते ॥ २८० ॥
तेन कर्मविपाकेन मात्रया सह बालकः ।
पञ्चजन्मसहस्राणि देवत्वमथ कारयेत् ॥ २८१ ॥
देवानां देवराजासौ सा एव जननी अभूत् ।
अमनुष्याणां चक्रवर्तित्वं मनुजेश अभूत् तदा ॥ २८२ ॥
अनुभूय चिरं सौख्यं बिम्बिसारसुतो इह ।
यस्ते आकर्षितो भगवां चीवरान्तेऽथ गृह्य च ॥ २८३ ॥
वाचा दुर्भाषिता उक्ता भिक्षुवादेन चोदितः ।
पांसुक्रीडनको मह्यं भवस्वेति पुरा तदा ॥ २८४ ॥
G 603 वाचो गतस्य कर्मस्य अनिष्टस्य कटुकस्य च ।
तीव्रं प्रतापनाद्दुःखं अनुभूय चिरं बहु ।
नरके पतितो घोरे अनीप्सको दुःखदुःसहम् ॥ २८५ ॥
कर्मपाशानुबद्धास्तु सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ।
हसद्भिः क्रियते कर्म रुदद्भिरनुभूयते ॥ २८६ ॥
पूर्वं बालिशभावेन प्रत्येकजिनतायिने ।
वाचा निश्चारिता दुष्टा तस्य कर्मस्य ईदृशम् ॥ २८७ ॥
नरकेभ्यः व्यसित्वा तु मनुष्यत्वमिहागतः ।
नारके चेतना ह्यासीद् विपाकजाते नराधिप ॥ २८८ ॥

तेन तीव्रेण रोषेण जीविता ते द्रुतपूर्विकाम् ।
पूर्विकां वासनां स्मृत्वा प्रत्येकजिनचारिणीम् ।
संमुखं दर्शितो बुद्धः पूज्यश्चैवमकारिता ॥ २८९ ॥
तेनैव हेतुना ह्यासीद् राज्यत्वमिह कारय ।
एवं वेणुवने तेषां अन्योन्या संल्पेद् भुवि ॥ २९० ॥
एकश्च अग्रशिष्यो मे द्वितीयः स नराधिप ।
प्रणम्य शतधा स्तूपं स्वगृहेणैव ययौ तदा ॥ २९१ ॥
ततोऽसौ शिष्यमुख्यैर्मे पिप्पलगुहवासिनः ।
संनिपात्य मुनिं सर्वां वीतरागां महर्द्धिकाम् ॥ २९२ ॥
द्वादशाङ्गं प्रवचनं कृत्स्नं विनयं चैवमगायत ।
तन्मया कथितो धर्मः पूर्वं जिनवरैस्तथा ॥ २९३ ॥
स तेन शिष्यवराग्रेण त्रिप्रकारं समादिशेत् ।
ग्रथनं सूत्रभेदेन विनये वाभिधर्मतः ॥ २९४ ॥
तृबन्धान्मोचयेत् सत्त्वां त्रिदोषां चापि शोषयेत् ।
तृदुःखान्मुक्तवां धीरः त्रियानं स्थापयेत् तदा ॥ २९५ ॥
शासनार्थं तु बुद्धानां कारयिष्यति अग्रधीः ।
महाराजाजातविख्यातो मागधेयो नराधिपः ॥ २९६ ॥
यावदा ...ङ्गपर्यन्तं वाराणस्यामतत्परम् । G 604
उत्तरेण तु वैशाल्यां राजा सोऽथ महाबलः ॥ २९७ ॥
भविष्यति न संदेहः शासनार्थं करिष्यति ।
त्वया कुमार निर्दिष्टः व्याकृतः शान्तिमुत्तमे ॥ २९८ ॥
तस्यापि सुतो राजा उकाराख्यः प्रकीर्तितः ।
भविष्यति तदा क्षिप्रं शासनार्थं च उद्यतः ॥ २९९ ॥
तदेतत् प्रवचनं शास्तु लिखापयिष्यति विस्तरम् ।
पूजां च महतीं कृत्वा दिवसमन्तान्नयिष्यति ॥ ३०० ॥
न चास्य दुर्गतिं चास्य देवेषूपपत्स्यते ।
विंशद् वर्षाणि त्रिंशच्च पितृणा सहजन्मिनः ३०१ ॥
वेलायामर्धरात्रे तु पञ्चत्वं यास्यते तदा ।
गोत्रजेनैव रोगेण अभिभूतोऽसौ भविष्यति ॥ ३०२ ॥
महारोगेण दुःखार्तः दिवसानि षड्विंशति ।
समस्तव्याधिग्रस्तोऽसौ विविधाकारमूर्छितः ॥ ३०३ ॥

च्युतोऽसौ नरपतिः क्षिप्रं देशेषूपपत्स्यते ।
नियतं प्राप्स्यते बोधिं सोऽनुपूर्वेण यत्नतः ॥ २०४ ॥
एते चान्ये च बहवः अतीता येऽप्यनागता ।
कृत्वा तु विविधां कारां प्रत्येकजिनतामिषु ॥ २०५ ॥
इष्टां विशिष्टां संपत्तिं दिव्यामानुषिकांस्तथा ।
तेऽनुपूर्वेण गच्छन्ति शान्तिं निर्जरसंपदम् ॥ २०६ ॥
हीनोत्कृष्टराजानो मध्यमाश्च नराधिपाः ।
आद्ये तु युगे कथिता नहुषाद्या पार्थिवादयः ॥ २०७ ॥
बुधशुक्रोदयो नित्यं मन्त्रसिद्धा नराधिपाः ।
शांतनुश्चित्रसुचित्रश्च पाण्डवा रानराधिपाः ॥ २०८ ॥
यातवा वारयत्याश्च रिपिशापास्तमित्रा तदा ।
कार्तिकः कार्त्तवीर्योऽसौ दशरथदाशरथी पुरा ॥ २०९ ॥
अर्जुनः सिद्धमन्त्रस्तु द्वि[ज]द्रोणसुतोऽपरः ।
अश्वत्थामा परो मन्त्री साधयमास मन्त्रराट् ॥ २१० ॥
G 605 शास्तुमूर्जितमन्त्राख्यैः क्ष्मापत्यं कारयेत् तदा ।
समन्तात् त्रिषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपगता तदा ॥ २११ ॥
देवकारांश्चैव मन्त्राणि....पार्थिवादयः ।
तेऽपि ताथागतिं पूजां अनुमोद्या दिवं गताः ॥ २१२ ॥
बुद्धत्वनियता तेऽपि केचित् प्रत्येकयानिका ।
श्रावकत्वनियता केचित् सर्वे मोक्षपरायणाः ॥ २१३ ॥
कालव्यस्थानुरूपेण आयुषश्च विकल्पते ।
उत्तमा दीर्घमानुष्ये मध्या मध्यमके तथा ॥ २१४ ॥
अन्तिमे तु युगे कष्टे कलिप्राप्ते युगाधमे ।
* * * * * पार्थिवा तु कलिप्रभाः ॥ २१५ ॥
अन्योऽन्यवैरसंसक्ता पर परां लिप्सवाः ।
नीचोत्पत्तिमायाताः शस्त्रसंपातभूरवः ॥ २१६ ॥
शस्त्रप्रवृत्तिरसमुत्साहा परदाराभिरतास्तदा ।
भविष्यन्ति न संदेहः भूपाला लोककुत्सिताः ॥ २१७ ॥
धूर्ता निकृष्टकर्माणः अनार्या मत्सरिणस्तथा ।
भविष्यन्ति तदा काले मध्ये द्वापरयो कलौ ॥ २१८ ॥
संक्षेपेण तु वक्ष्यामि कुमारस्तं निबोधत ।
वर्तमाने तु यत्काले पार्थिवा भुवि मण्डले ॥ २१९ ॥

तेषां तु रूपचिह्नानि वर्णतश्च निबोधताम् ।
प्रसेनजित् कोसलो राजा बिम्बिसारस्तथापरः ॥ ३२० ॥
उदयनः क्षत्रियश्रेष्ठः शतानीकसमुद्भवः ।
सुबाहुः सुधनः ख्यातो महेन्द्रचन्द्रसमस्तथा ॥ ३२१ ॥
लिच्छवीनां तथा जातः सिंहो वैशाल्यमुद्भव ।
उदाविद्योतमुद्योतमहासेनश्च कथ्यते ॥ ३२२ ॥
उज्जयन्यां तथा चण्डः कपिलाह्वे पुरे नृपः ।
राजा शुद्धोदनश्चैव वैराटाख्यो महाबलः ॥ ३२३ ॥
इत्येते क्षत्रिया प्रोक्ता महीपालाः शास्तु पूजकाः । G 606
संमुखं बुद्ध पश्यन्ति शाक्यसिंहे नरोत्तमम् ॥ ३२४ ॥
धर्मं श्रुत्वा ततस्तेऽपि चिरं प्राप्स्यन्ति संपदाम् ।
नियतं मोक्षकामास्तु शान्तिं प्राप्स्यन्ति तेऽपि ताम् ॥ ३२५ ॥
इत्येते लोकविख्याता भूपाला क्षितिमण्डले ।
वर्णतः क्षत्रियः प्रोक्तः चिह्नतो नाम संज्ञितः ॥ ३२६ ॥
पूजयिष्यति ते वाक्यं मयैव कथितं भुवि ।
त्वयैव व्याकृतो लोके कुमारो बालरूपिणः ॥ ३२७ ॥
अजाताख्यो नामसौ नियतं बोधिपरायणः ।
मयि वर्षशते परिनिर्वृते भुवि मण्डले ॥ ३२८ ॥
निरालोके निरानन्दे अज्ञानतमसावृते ।
भविष्यति तदा शून्या मेदिनी जिनवर्जिता ॥ ३२९ ॥
तस्मिं काले महाघोरे कुसुमाह्वे नगरे तदा ।
अशोको नाम विख्यातः पार्थिवो भुवि पालकः ।
तीव्रकारी सरोषी च निर्घृणोऽसौ भवेत् तदा ॥ ३३० ॥
कल्याणमित्रमागम्य वीतरागं महर्द्धिकम् ।
भिक्षुं शीलसंपन्नं निज्वरं गतचेतसम् ।
पूर्ववासनहेतुं च पांशुदानं महर्द्धिकम् ॥ ३३१ ॥
नियतं क्षेत्रसंपन्नं पार्थिवोऽसौ महाधनः ।
धर्माधर्मविचारी च सघृणी कारुणिको हि सौ ॥ ३३२ ॥
हेतुमुद्घाटयामास वीतरागो महर्द्धिकः ।
त्वया हि नृपतेः पूर्वं अज्ञानाद् बालचापलात् ॥ ३३३ ॥
जिने शाक्यसिंहस्य पांसु अञ्जलिना तदा ।
पात्रे भस्मे प्रतिष्ठाप्य प्राप्ता संपत्तयो दिवि ॥ ३३४ ॥

देवलोकं च्यवित्वा तु पितृलोकमिहागतम् ।
भुङ्क्ष्व राज्यं महीपाल जम्बूद्वीपं सकाननम् ॥ ३३५ ॥
G 607 आराध्य मन्त्रं यक्षस्य जम्भलस्य महात्मने ।
ततो भूतरथः सिद्धः क्षितिपश्च महात्मनः ॥ ३३६ ॥
यक्षास्तस्य तिष्ठन्ते आज्ञो दीक्षितमानसाः ।
नागाश्चैव तिष्ठन्ते भव्याः किंकरहेतवः ॥ ३३७ ॥
एवं महर्द्धिका धर्मात्मा बलचक्री अभूत् तदा ।
यथेष्टगमनं तस्य निषेद्धा न क्वचित् भवेत् ॥ ३३८ ॥
पूर्वस्थापितकार्ये तु जिनानां धातुवरा भुवि ।
नगरे राजमुख्ये तु वने वेणुवने तदा ॥ ३३९ ॥
गृह्य शातु घरे धातुं कुशलालम्बनमानसः ।
पूजयामास तं स्तूपं यथापौराणमकारयत् ॥ ३४० ॥
गृह्यन्तं धातुकुम्भं तु विभज्य शतधा पुनः ।
क्षणेनैकेन मेधावी यक्षाणामाज्ञा विनिर्दिशेत् ॥ ३४१ ॥
जम्बूद्वीप इमं कृत्स्नं स्तूपालंकृतभूषणम् ।
कारयन्तु भवन्तो वै धातुगर्भां वसुंधराम् ॥ ३४२ ॥
आज्ञा प्रतीच्छते यक्षाः अर्धरात्रे तु यत्नतः ।
अमानुषेयां कृतिं कृत्वा शिलायष्ट्योच्छ्रितां भुवि ॥ ३४३ ॥
अनेकस्तम्भसहस्राणि रोपयामास ते तदा ।
पूजनार्थं तु चैत्यानां चिह्नभूतं च देहिनाम् ॥ ३४४ ॥
कृत्वा तु विविधां स्तूपां लोकनाथेभ्य तायिषु ।
क्षणेनैकेन ते यक्षा नृपतेऽन्तिकमागताः ॥ ३४५ ॥
प्रणिपत्य ततो मूर्ध्ना वाचा निश्चार गुह्यकाम् ।
यथाज्ञप्तं कृतं सर्वं किं न पश्यसि भूतले ॥ ३४६ ॥
ततोऽसौ पार्थिवः क्षिप्रं आरुरोह रथं तदा ।
विविधाकारपूजार्थं अनेकाकारशोभनाम् ॥ ३४७ ॥
काञ्चनं राजतं ताम्रं विविधां स्तूपभूषणाम् ।
ततो भूतरथं क्षिप्रं पूरयामास पार्थिवः ॥ ३४८ ॥
G 608 क्षणेनैकेन तं देशं यत्र ते धातुधरा जिना ।
विचित्राकारपूजाभिः पूजयेत नराधिपः ॥ ३४९ ॥

शोभने मेदिनीं कृत्स्नां जिनधातुधरैस्तदा ।
प्रणिधिं चक्रिरे राजा धर्माशोको महात्मवान् ।
अनेन कुशलार्थेन बुद्धो भूमामनुत्तरः ॥ ३५० ॥
एवं विदित्वा महात्मासौ धर्माशोको नराधिपः ।
मृतोऽसौ देवतां याति नियतं बोधिपरायणः ॥ ३५१ ॥
अशीतिवर्षाणि सप्तं च पूजये धातुवरां भुवि ।
जीवेद् वर्षशतं सार्धं कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥ ३५२ ॥
स्वकर्मजनितास्तस्य व्याधिरुत्पन्नदेहजे ।
तेनैव व्याधितो दुःखी मृतः स्वर्गोपगो भवेत् ॥ ३५३ ॥
महतीं संपदं प्राप्य अनुभूय दिवौकसाम् ।
अनुपूर्वेण मेधावी बोधिं प्राप्स्यति दुर्लभाम् ।
मन्त्रा सिद्ध्यन्ति तत्काले वज्राब्जकुलयोरपि ॥ ३५४ ॥
जम्भलाद्यास्तथा यक्षा अस्मिं शासनवर्तिनः ।
यक्षिण्यश्च समाख्याता हारित्याद्या महर्द्धिकाः ॥ ३५५ ॥
चक्रवर्तिसमुत्पादे मन्त्रा सिद्ध्यन्ति चक्रिणः ।
जिनैस्तु कथिता ये मन्त्रा विद्याराजा महर्द्धिकाः ॥ ३५६ ॥
उष्णीषप्रभृतयः सर्वे ये चान्ये जिनभाषिताः ।
उत्तमां साधनां कुर्यात् तस्मिं काले सुशोभने ॥ ३५७ ॥
उत्तमैर्नाधमाः साध्या उत्तमां गतिमाश्रितैः ।
दिलीपो नहुषश्चैव मांधाता सगरस्तथा ॥ ३५८ ॥
साधयित्वा तु ते मन्त्रां चक्रिणां जिनभाषिताम् ।
तेजोराशिस्तदा सिद्धः नहुषस्य महात्मनः ॥ ३५९ ॥
राजा सितातपत्रस्तु सिद्धस्तु सगरस्य वै ।
दिलीपस्य तथा मन्त्रं सिद्धमेकमक्षरम् ॥ ३६० ॥
मांधातस्य तथा लोके सिद्ध उष्णीषमुन्नतः । G 609
जयोष्णीषस्तथा सिद्धो धुंधुमारे नृपोत्तमे ॥ ३६१ ॥
कन्दर्पस्य तथा राज्ञो विजयोष्णीष कथ्यते ।
प्रजापतिस्तस्य पुत्रो वै तस्यापि लोचना भुवि ॥ ३६२ ॥
प्रजापतेः सुतो नाभिः तस्यापि ऊर्णमुच्यति ।
लाभिनो ऋषभपुत्रो वै स सिद्धकर्म दृढव्रतः ॥ ३६३ ॥
तस्यापि माणिचरो यक्षः सिद्धो हैमवते गिरौ ।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मन्त्रान् तदा जपेत् ॥ ३६४ ॥

सोऽनुपूर्वेण सिद्धस्तु महावीरं भुविस्तदा ।
एते चाऽन्ये च बहवः पार्थिवा लोकविश्रुताः ।
साधयित्वा तु मन्त्राणां राज्यं कृत्वा दिवंगताः ॥ ३६५ ॥
जिनेन्द्रैर्ये तु उक्तानि विद्याराजा महर्द्धिकाः ।
ते सर्वे शोभने काले युगेऽशीतिसहस्रगे ।
सिद्धाः साधयिष्यन्ति मन्त्रतन्त्रार्थकोविदाः ॥ ३६६ ॥
एते चान्ये च बहवः पार्थिवा लोकविश्रुताः ।
ततोऽशीतिसहस्राणि वर्षाणां शतमेव वा ।
राज्यं कृत्वा ततः स्वर्गं नियतं बोधिपरायणाः ॥ ३६७ ॥
मध्यमे तु तदा काले दिव्यामाश्चर्यमहर्द्धिकाः ।
मन्त्राः सिद्धिमेवासुरब्जपाणिसमोदिताः ।
मन्त्रिभिर्नरमुख्यैस्तु भूपालैः सार्धभूमिकैः ॥ ३६८ ॥
राजा च ब्रह्मदत्तो वै वाराणस्यां महापुरे ।
सिद्धः अब्जपाणिस्तु लोकीशो लोकविश्रुतः ॥ ३६९ ॥
महावीर्यो महात्मासौ अतिकारुणिको महान् ।
सत्त्वानां मन्त्ररूपेण दिदेश धर्मदेशनाम् ॥ ३७० ॥
राजा ब्रह्मदत्तेन अनुभूतं मानुषं सुखम् ।
ततोऽसौ सिद्धमन्त्रस्तु सदेहः स्वर्गमाविशेत् ॥ ३७१ ॥
G 610 तस्यापि च सुतो धीमान् पुण्यकर्मा दृढव्रतः ।
तस्यापि सिद्धो महावीर्यो हयाख्येति विश्रुतः ॥ ३७२ ॥
तेन मन्त्रप्रभावेन जितः शक्र अभूत् तदा ।
तस्यापि सुतः श्वेताख्यो राजाभूत् सर्वदस्तदा ॥ ३७३ ॥
तस्यापि वरदा मन्त्रा महाश्वेता नाम नामतः ।
साधयित्वा तु तां मन्त्रां जीवेद् वर्षशतत्रयम् ॥ ३७४ ॥
तेन मन्त्रप्रभावेन सुखावत्या स गच्छति ।
नियतं बोधिमेवास्य ये चान्ये व्याहृता मया ॥ ३७५ ॥
मध्यमे तु तदा काले मध्यमन्त्रांस्तु साधयेत् ।
अधमेऽलियुगे कष्टे मयि बुद्धत्वमागते ।
मन्त्राः सिद्धिं प्रयास्यन्ति वज्राब्जकुलयोरपि ॥ ३७६ ॥
त्वया कुमार मन्त्रा वै ये पूर्वं कथिता भुवि ।
तेऽपि सिद्धिं प्रयास्यन्ति मन्त्रा वै भागहेतुताम् ।
इतराणि तु मन्त्राणि लौकिकां विविधां तथा ॥ ३७७ ॥

कश्मला विकृतरूपाश्च अन्तरिक्षा तु खेचरा ।
भौम्या च मथ यक्षिण्यः पिशाच्या विविधास्तथा ।
गरुडाः किन्नराश्चैव प्रेता राक्षसभाषिता ॥ ३७८ ॥
पिशाचोरगरक्षाणां नागीनां च महर्द्धिका ।
मन्त्रा सिद्धिं प्रयास्यन्ति युगे कष्टे युगाधमे ॥ ३७९ ॥
कुमाररूपास्तु मन्त्रा वै कुमारिरूपास्तु सर्वदा ।
तेऽपि सिद्धिं प्रयास्यन्ति तस्मिं काले भयानके ॥ ३८० ॥
त्रिविधास्तु तथा मन्त्रा त्रिप्रकारास्तु साधना ।
त्रिविधेनैव कालेन त्रिविधा सिद्धिरिष्यते ।
संक्षेपेण तु वक्ष्यामि कथ्यमानमतिविस्तरम् ॥ ३८१ ॥
राज्ञेसौ शोकमुख्यस्य पृष्ठते त भवे नृपः ।
विशोक इति विख्यातो लोके धर्मानुचारिणः ॥ ३८२ ॥
तस्य सिद्धा इमा मन्त्रा देवी पण्डरवासिनी । G 611
विशोकः साधयित्वा तु आजहार दिवौकसाम् ॥ ३८३ ॥
नाकपृष्ठे चिरं सौख्यमनुभूय स महानृपः ।
पुनरेव गच्छन्मानुष्यं धर्मशीलो हि बुद्धिमान् ॥ ३८४ ॥
राज्यं विविधसंपत्तिं अनुभूय महाद्युतिः ।
पूजयेद् धातुवरां श्रीमां वर्षाणि षट्सप्तति ।
ततो ज्वरेणाभिभूतोऽसौ भिन्नदेहो दिवं गतः ॥ ३८५ ॥
तस्याप्यनन्तरे राजा शूरसेनः प्रकथ्यते ।
विघुष्टो धर्मचारी च शासनेऽस्मिं सदा हितः ॥ ३८६ ॥
तेनापि साधिता मन्त्रा देवी तूपमहाश्रिया ।
तेनापि कारिता शास्तुः कारा सुमहती तदा ।
स्तूपैरलङ्कृता सर्वा समुद्रान्ता वसुंधरा ॥ ३८७ ॥
तस्य कर्मविपाकेन व्याधिरुत्पन्न देहजा ।
पक्षमेकं क्षयित्वासौ च्युतदेहो भविष्यति ॥ ३८८ ॥
कृत्वा राज्यं वर्षाणि दश सप्त च मानवीः ।
च्युतोऽसौ स्वर्गमाविष्टो नियतं बोधिपरायणः ॥ ३८९ ॥
तस्याप्यनन्तरो राजा नन्दनामा भविष्यति ।
पुष्पाख्ये नगरे श्रीमां महासैन्यो महाबलः ॥ ३९० ॥
तेनापि साधितो मन्त्रः पिशाचो पीलुनामतः ।
तस्य मन्त्रप्रभावं तु महाभोगो भविष्यति ॥ ३९१ ॥

नीचमुख्यसमाख्यातो ततो लोके भविष्यति ।
तद्धनं प्राप्य मन्त्री सौ लोके पार्थिवतां गतः ॥ ३९२ ॥
भविष्यति तदा काले ब्राह्मणास्तार्किका भुवि ।
सिद्ध्याभिमानलुब्धा वै नगरे मगधवासिनः ।
भविष्यन्ति न संदेहो मिथ्यागर्वितमानिनः ॥ ३९३ ॥
तेभिः परिवारितो राजा वै...........।
G 612 धर्मशीलोऽपि धर्मात्मा तेषां दास्यति तं धनम् ।
कल्याणमित्रमागम्य पूजे धातुवरानसौ ॥ ३९४ ॥
केवलं तु तदाभ्यासाद् दानाविक्लवहेतुना ।
विहारा कारिता तेन षोडशाष्टौ च धीमता ॥ ३९५ ॥
भविष्यति तदा काले नगरे पुष्पसाह्वये ।
मन्त्रिमुख्यो महात्मा वै घृणी साधु तथा द्विजः ॥ ३९६ ॥
स भविष्यति धर्मात्मा तस्या राज्ञोऽतिशाक्यिनः ।
सोऽपि सिद्धमन्त्रस्तु यक्षिणी वीरमती भुवि ॥ ३९७ ॥
तेनापि कारितं श्रेष्ठं जिनानां धातुवरो भुवि ।
अतिप्राज्ञो हि संवृत्तो यक्षिण्यास्तु प्रभावतः ॥ ३९८ ॥
तेन वासनकर्मेण पूर्ववासनचोदितः ।
अनुपूर्वेण मेधावी बोधिं प्राप्स्यति दुर्लभाम् ॥ ३९९ ॥
स्त्रीकृतेन दोषेण मृत्युं प्राप्स्यन्ति मानवाः ।
वररुचिर्नाम विख्यात अतिरागी अभूत् तदा ॥ ४०० ॥
नन्दोऽपि नृपतिः श्रीमां पूर्वकर्मापराधतः ।
विरागयामास मन्त्रीणां नगरे पाटलाह्वये ॥ ४०१ ॥
विरक्तमन्त्रवर्गैस्तु सत्यसंधो महाबलः ।
पूर्वकर्मापराधेन महारोगी भविष्यति ॥ ४०२ ॥
महाज्वरेण दुःखार्तः अर्धरात्रे भविष्यति ।
आयुस्तस्य च वै राज्ञः षट्पष्टिवर्षाँ तथा ।
नियतं श्रावके बोधौ तस्य राज्ञो भविष्यति ॥ ४०३ ॥
तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः ।
नियतं श्रावकत्वेन व्याकृतो मे भविष्यति ॥ ४०४ ॥
सोऽपि सिद्धमन्त्रस्तु लोकीशस्य महात्मनः ।
साधयेत् प्रज्ञाकामस्तु क्रोधं हालहलं द्विजः ॥ ४०५ ॥

तस्य राज्ञोऽपरः ख्याता चन्द्रगुप्तो भविष्यति ।
जपेन्द्रयक्षसिद्धस्तु कारयेद् राज्यमकण्टकम् ॥ ४०६ ॥ G 613
महायोगी सत्यसंधश्च धर्मात्मा स महीपतिः ।
अकल्याणमित्रमागम्य कृतं प्राणिवधं बहु ।
तेन कर्मविपाकेन विषस्फोटैः स मूर्छितः ॥ ४०७ ॥
अर्धरात्रे रुदित्वासौ पुत्रं स्थापयेद् भुवि ।
बिन्दुवारसमाख्यातं बालं दुष्टमन्त्रिणम् ॥ ४०८ ॥
ततोऽसौ चन्द्रगुप्तस्य च्युतः कालगतो भुवि ।
प्रेतलोकं तदा लेभे गतिं मानुषवर्जिताम् ।
मन्त्राभ्यासात् तदा युक्तो गतिं त्यक्त्वा दिवि गतम् ॥ ४०९ ॥
मन्त्रहेतुसमुत्पादात् कुशलालम्बनचेतनाम् ।
प्रत्येकं बोधिमायाति सोऽनुपूर्वेण नराधिपः ॥ ४१० ॥
राज्ञाथ बिम्बसारेण बालेनाव्यक्तचेतसा ।
पुरा कारितं चैत्यं सिंहदत्तेन भवान्तरे ॥ ४११ ॥
तस्य कर्मप्रभावेन दिवं यातो ह्यनिन्दितः ।
पञ्च जन्मसहस्राणि अमरेभ्यो भुक्तवान् सुखम् ॥ ४१२ ॥
स्वर्गलोकाच्च्यवित्वा तु मनुष्येन्द्रोपपद्यते ।
जातो राजकुले चन्द्रगुप्तस्य धीमतः ॥ ४१३ ॥
बाल एव ततो राजा प्राप्तः सौख्यमनल्पकम् ।
प्रौढो धृष्टश्च संवृत्तः प्रगल्भश्चापि प्रियवादिनम् ।
स्वाधीन एव तद् राज्यं कुर्याद् वर्षाणि सप्तति ॥ ४१४ ॥
मन्त्रा केशिनी नाम सिद्धा तस्य नराधिपे ।
कुमार त्वदीयमन्त्रे तु सिद्धिं गच्छेयु ते तदा ॥ ४१५ ॥
भविष्यति तदा काले मन्त्रसिद्धिस्त्वयोदिता ।
कुमाररूपी विश्वात्मा लोकानां प्रभविष्णवः ॥ ४१६ ॥
भविष्यति न संदेहो मन्त्ररूपेण देहिनाम् ।
................हितकाम्यया ॥ ४१७ ॥
तस्मिं काले सदा सिद्धिर्भविष्यन्ति पठिता भुवि । G 614
मन्त्री तस्य राज्ञस्य बिन्दुसारस्य धीमतः ॥ ४१८ ॥
चाणक्य इति विख्यातः क्रोधसिद्धस्तु मानवः ।
यमान्तको नाम वै क्रोधः सिद्धस्तस्य च दुर्मतेः ॥ ४१९ ॥

तेन क्रोधाभिभूतेन प्राणिनो जीविताद्धता ।
कृत्वा तु पापकं तीव्रं त्रीणि राज्यानि वै तदा ॥ ४२० ॥
दीर्घकालाभिजीवी सौ भविता द्विजकुत्सितः ।
तेन मन्त्रप्रभावेन स देहमासुरीं भजेत् ।
आसुरीं तनुमाविष्ट दीर्घकालं स जीवयेत् ॥ ४२१ ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु नरकेभ्यो विगच्छतः ।
ततोऽसौ नारकं दुःखं अनुभूयेह दुर्गतिः ॥ ४२२ ॥
विविधा नारकां दुःखां अनिष्टां कर्मजां तदा ।
कल्पमेकं क्षयित्वासौ क्रोधमन्त्रप्रचोदितम् ।
च्युतोऽसौ नरकाद् दुःखात् तिर्यग्भ्योपपद्यते ॥ ४२३ ॥
नागयोनिं समापद्य भीमरूपी भविष्यति ।
नागराजो महाक्रोधी महाभोगी विषदर्पितः ॥ ४२४ ॥
दारुणं कर्मचारी च................।
च्युतोऽसौ दुष्टकर्मा तु यमलोकमगच्छत ॥ ४२५ ॥
सुनिदा यमराजासौ प्रेतराजो महर्द्धिकः ।
एवं दुःखसहस्राणि अनुभूय पुनः पुनः ॥ ४२६ ॥
सोऽनुपूर्वेण दुर्मेधा भुविमायात माणवः ।
मानुष्यं जन्ममायातः भीमरूपी भविष्यति ।
दरिद्रः क्रोधनश्चैव अल्पेशाख्यो भविष्यति ॥ ४२७ ॥
प्रत्येकबुद्धा ये लोके निराशाः खड्गचारिणः ।
हीनदीनानुकम्प्यास्तु विचरन्ति महीतले ।
सत्त्वानां हितकाम्यर्थं प्रविष्टा पिण्डचारिकाम् ॥ ४२८ ॥
G 615 ते तं दुर्मतिं दृष्ट्वा वै परचित्तविदोस्तदा ।
ते तत्र मनुबद्धास्तु कारुण्यान्नान्यहेतवः ॥ ४२९ ॥
तेन कुल्माषखण्डास्तु गृहीता भक्षहेतुना ।
क्रोधमन्त्राभिभूतेन हेतुमुद्धाटिता तदा ॥ ४३० ॥
तेषां निर्यातयेद् भिक्षं तत्रैकस्य महात्मनः ।
इदं भोः प्रव्रजिताः सर्वे भक्षयध्वं यथासुखम् ।
तस्यानुकम्पा बुद्धेभ्यः ऋद्धिं दर्शितवां तदा ॥ ४३१ ॥
ततोऽसौ विस्मयाविष्टः प्रभावोद्गतमानसः ।
प्रपतेत् सर्वतो मूर्ध्ना बुद्धेभ्यः खड्गकल्पिषु ।
आकाशेन गताः सर्वे वीतदोषा यथेष्टतः ॥ ४३२ ॥

तेनापि कुशलार्थेन प्रत्येकां बोधिचिन्तिताम् ।
यादृशा हि महात्मानः शान्तवेषा महर्द्धिकाः ।
तादृशोऽहं भवेल्लोके मा दुःखी मा च दुर्गतिः ॥ ४३३ ॥
क्षीणकर्मावशेषस्तु च्युतः स्वर्गोपगः सदा ।
सोऽनुपूर्वेण धर्मात्मा प्रत्येकं बोधि लप्स्यते ।
तस्मान्न कुर्यान्मन्त्रेभ्यः साधनमाभिचारुकम् ॥ ४३४ ॥
बुद्धैर्बोधिसत्त्वैश्च प्रतिषिद्धमाभिचारुकम् ।
अतिकारुणिका बुद्धा बोधिसत्त्वास्तु महर्द्धिकाः ।
प्रभावार्थं तु मन्त्राणां दर्शितं सर्वकर्मिणः ॥ ४३५ ॥
चिन्तामणयो मन्त्रा भाषितास्तु तथागतैः ।
बालरूपा मूढचित्तास्तु क्रोधलोभाभिभूतयः ।
परस्परं प्रयोज्यन्ते ये मन्त्रा आभिचारुके ॥ ४३६ ॥
प्रतिषिद्धं तथा बुद्धैर्बोधिसत्त्वैस्तु धीमतैः ।
सर्वप्रकार तु मन्त्राणां सत्त्वेभ्यो भोगवर्धनम् ॥ ४३७ ॥
उत्तिष्ठमथ राज्यं वै मदारक्षां धन्यहेतवः ।
आकर्षणं तु सत्त्वानां विविधां योनिमाश्रिताम् ।
साधनीयास्तु मन्त्रा वै न जीवमुपरोधतः ॥ ४३८ ॥ G 616
तस्मिं काले भविष्यन्ति भिक्षवो मे बहुश्रुताः ।
मातृचीनाख्यनामास्तु स्तोत्रं कृत्वा ममैव तु ।
यथाभूतगुणोद्देशैः यथाकारमभाषत ॥ ४३९ ॥
प्रसाद्य सर्वतश्चित्तं बुद्धानां शासने रतः ।
मन्त्रसिद्धस्तु दुर्लक्ष्यः मञ्जुघोषस्तवैव तु ॥ ४४० ॥
गुणवां शीलसंपन्नः धर्मवादी बहुश्रुतः ।
पुरा तिर्यग् गतेनैव इमां स्तोत्रमभाषत ॥ ४४१ ॥
नृपाख्ये नगरे रम्ये खण्डाख्ये च वनेव तु ।
सार्धं शिष्यगणेनैव विहरामि यथासुखम् ॥ ४४२ ॥
तत्रस्थो वायस आसी मां चित्तं संप्रसादयेत् ।
प्रसाद्य च मयि चित्तं भिन्नदेहो दिवं गतः ॥ ४४३ ॥
देवेभ्यश्च च्यवित्वा तु मनुष्येभ्योपपत्स्यते ।
मनुष्येभ्योपपन्नस्तु प्रव्रजेच्छासने मम ॥ ४४४ ॥
प्रव्रजित्वा महात्मासौ यथाभूतं हि मां तदा ।
स्तविष्यति तदा काले मातृचीनाख्य सव्रती ॥ ४४५ ॥

स्तोत्रोपहारं यथार्थं च नानालङ्कारहेतुभिः ।
प्रकर्ता सर्वभूतानां हितायैव शुभाशितम् ॥ ४४६ ॥
अनुग्रहार्थं तु सत्त्वानां स्तोत्रचोदनतत्परः ।
भविष्यति तदा काले युगान्ते लोकानन्दिते ।
तेन कर्मविपाकेन भिन्नदेहो दिवि गतः ॥ ४४७ ॥
सोऽनुपूर्वेण मेधावी अनुभूय विविधां सुखाम् ।
बोधिं प्राप्स्यति सर्वज्ञिं उत्तमार्थमचिन्तियाम् ॥ ४४८ ॥
चतुर्थे वर्षशते प्राप्ते निर्वृते मयि तथागते ।
नागाह्वयो नाम सौ भिक्षुः शासनेऽस्मिं हिते रतः ।
मुदितां भूमिलब्धस्तु जीवेद् वर्षशतानि षट् ॥ ४४९ ॥
G 617 मायूरी नामतो विद्या सिद्धा तस्य महात्मनः ।
नानाशास्त्रार्थधात्वर्थं निःस्वभावार्थतत्त्ववित् ॥ ४५० ॥
सुखावत्यां चोपपद्येत यदासौ त्यक्तकलेवरः ।
सोऽनुपूर्वेण बुद्धत्वं नियतं संप्रपत्स्यते ॥ ४५१ ॥
सङ्गनामा तदा भिक्षुः शास्त्रतत्त्वार्थकोविदः ।
सूत्रनीतार्थनेयानां विभज्य बहुधा पुनः ॥ ४५२ ॥
लोकाभिधायी युक्तात्मानुच्छशीलो भविष्यति ।
तस्य सिद्धा....शालदूतीति कथ्यते ॥ ४५३ ॥
तस्य मन्त्रप्रभावेन बुद्धिरुत्पन्नश्रेयसी ।
संग्रहे सूत्रतत्त्वार्थं शासनस्य चिरस्थिते ।
जीवेद् वर्षशतं सार्धं त्यक्तदेहो दिविं गतः ॥ ४५४ ॥
अनुभूय चिरं सौख्यं दीर्घसंसारसंसरम् ।
अनुपूर्वेण चात्मासौ बोधिप्राप्तो भविष्यति ॥ ४५५ ॥
एवं बहुविधाकारो भिक्षवो मयि शासने ।
प्रज्ञा धर्मशीलास्तु भविताभूत् तदा युगे ॥ ४५६ ॥
अपश्चिमे तु तदा काले....नन्दनामतः ।
सोऽपि मन्त्रार्थयुक्तात्मा तन्त्रज्ञोऽथ बहुश्रुतः ।
तस्य भद्रघटः सिद्धः यक्षमन्त्रप्रचोदितः ॥ ४५७ ॥
महायानाग्रसूत्रे तु मया च कथिता पुरा ।
तस्मिं काले घटे तस्मिं उज्जहार महातपा ॥ ४५८ ॥
तस्य दृष्टः सदा तत्र पुस्तकेऽस्मिं मन्त्ररूपिणे ।
रक्षा न कारिता तत्र घटेऽस्मिं यक्षसाधिते ॥ ४५९ ॥

अप्रमादात् स्मृतिभ्रंशा घटो मूर्धटके हृतः ।
ततोऽसौ सिद्धमन्त्रस्तु भिक्षुर्मन्त्रतपी अभूत् ॥ ४६० ॥
घटं निरीक्षयामास नाभिपश्येत तत्र वै ।
ततोऽसौ क्रोधरक्ताङ्गः विस्फूर्जन अभाषत ॥ ४६१ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं शक्राद्यां समहेश्वराम् । G 61
मन्त्रेनाकृष्यमानेयं नाहं मन्त्री न मन्त्रराट् ॥ ४६२ ॥
ये मन्त्रा बुद्धपुत्रैस्तु मन्त्रा जिनवरैस्तथा ।
भाषिता निग्रहार्थाय दुर्दान्तदमकापि वा ॥ ४६३ ॥
ते तु सर्वे भुविर्नास्ति यदि नाकृष्यामि चोरीणाम् ।
ततोत्थाय ततो मन्त्री सिद्धकर्मदृढव्रतः ॥ ४६४ ॥
यथा तु विहिते मन्त्रे प्रयोगाकृष्टहेतवः ।
प्रयोजयामास तं दिक्षु क्षिप्राकर्षणतत्परः ॥ ४६५ ॥
क्षणेन स्मृतमात्रेण क्षिप्रकर्मा यतिर्ह्यसौ ।
हुङ्कारेकेण मात्रेण ब्रह्माद्यामानयेद् भुवि ॥ ४६६ ॥
आकृष्टा सर्वदेवास्तु ब्रह्माद्याः सशक्रकाः ।
हाहाकारं प्रमुञ्चाना आर्ता भैरवनादिनः ।
किं करोम किमानीता नाम यं मन्त्रापराधिनः ॥ ४६७ ॥
शीघ्रं च त्वरमाणस्तु भिक्षुर्धीमां विशारदः ।
दिवौकसां मन्त्रयामास घटं प्रत्यर्पयथ इतो इह ॥ ४६८ ॥
अन्योन्यं वै सुराः सर्वे स भिक्षुः संप्रभाषत ।
क्षिप्रं वदत भद्रं वो ये नेनापहृतो घटः ।
निरीक्षयामास ते देवाः न दास्यन्तेऽथ समन्ततः ॥ ४६९ ॥
समन्वाहरति देवेशः केनायं घटकोऽपहृतः ।
पश्यते वज्रिणः श्रीमां बोधिसत्त्वो महाद्युतिः ॥ ४७० ॥
तस्यास्ति सुतो घोरः महारोषी सुदारुणः ।
निर्मितो विघ्नरूपेण विचेरुः सर्वतो जगत् ॥ ४७१ ॥
तेनासौ घटो नीत देवेशः संप्रभाषितम् ।
अस्ति वज्रकुले विघ्नः क्रीडते लीलया भुवि ॥ ४७२ ॥
पूजितोऽहमिमेनेति तेनासौ घटको हृतः ।
एवमुक्त्वा तु देवेशः पुनरेव दिविं गतः ॥ ४७३ ॥
सर्वे विसर्जिता देवाः स्वमन्त्रेणैव ते तदा । G 619
क्षणेनैव तु तत्रैकः मुहूर्तस्तुतरानपि ॥ ४७४ ॥

आनयामास तं भिक्षुमन्तिकात् सघटं तदा ।
ततस्तेन तु भिक्षेन प्रेतानां घटमाददे ॥ ४७५ ॥
ततो नीतेन तु भिक्षेन इमां वाचामभाषिता ।
प्रेतलोके घटो नीतः न नष्टं तत्र दोषिणः ॥ ४७६ ॥
रुष्टो सोऽपि महायक्षी तं भिक्षुमभ्यभाषत ।
गच्छ गच्छ महाभिक्षु मा भूयो एवमाचरेत् ॥ ४७७ ॥
ततस्तेन तु ते प्रेता आनीतास्तत्क्षणादपि ।
क्षुभिताक्रान्तमनसः दीनाः सूचीमुखा हि ते ॥ ४७८ ॥
आर्तस्वरं च क्रन्देयुर्महाघोरतमा हि ते ।
चुक्रुतुः करुणां वाणीं परित्रायस्व महात्मन ॥ ४७९ ॥
घटं वो इह आनीता यथेष्टं कुरुते नयम् ।
महाकारुणिको भिक्षी येनाशु संप्रजायताम् ॥ ४८० ॥
करुणार्द्रेण मनसा इमां वाचामभाषत ।
किं दुःखं भवतां लोके संप्रभाषथ माचिरम् ॥ ४८१ ॥
ते ऊचुर्दीनमनसा दुःखाभ्यासात् संप्रबाधते ।
त्रिषिताः प्रेतलोकेऽस्मिं चिरं कालं महात्मनः ॥ ४८२ ॥
महाकारुणिको भिक्षुस्तेषामेव प्रददौ घटम् ।
ततस्ते तुष्टमनसः स्वमालयं गताः ।
तेषां चिन्तितमात्रेण अन्नपानं भवेद् घटे ॥ ४८३ ॥
भविता नन्दनमालेऽस्मिं भिक्षुर्नन्दको भुवि ।
तस्मिं कालाधमे प्राप्ते जीवेद् वर्षशतत्रयम् ।
महात्मा बोधिनिम्नस्तु क्षिप्रं प्राप्स्यति दुर्लभाम् ॥ ४८४ ॥
भविष्यति न संदेहः तस्मिं काले युगाधमे ।
राजा गोमिमुख्यस्तु शासनान्तर्धापको मम ॥ ४८५ ॥
G 620 प्राचीं दिशिमुपादाय कश्मीरे द्वारमेव तु ।
नाशयिष्यति तदा मूढः विहारां धातुवरांस्तथा ॥ ४८६ ॥
भिक्षवः शीलसंपन्नां घातयिष्यति दुर्मतिः ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य मृत्युस्तस्य भविष्यति ॥ ४८७ ॥
अमानुषेणैव क्रुद्धेन सराष्ट्रा पशुबान्धवः ।
आक्रान्तोऽद्रिखण्डेन पातालं यास्यति दुर्मतिः ॥ ४८८ ॥
अधो अथ गतिस्तस्य नरकान्नरकतरं भृशम् ।
दुःखा दुःखतरं तीव्रं संप्रपत्स्यति दारुणम् ॥ ४८९ ॥

अवीचिर्नाम विख्यातं नरकं पापकर्मिणा ।
मुच्यतेऽसौ महाकल्पं गोमिषण्डो दुरात्मनः ।
अकल्याणमित्रमागम्य कृतं पाप सुदारुणम् ॥ ४९० ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनेऽस्मिं तथागते ।
प्रसाद्यमखिलं चित्तं संप्रभोक्ष्यथ संपदाम् ॥ ४९१ ॥
बुद्धत्वनियतं मार्गम् अष्टाङ्गपथयायिनम् ।
गमिष्यथ सदा सर्वे अशोकं निर्जरसं पुरम् ॥ ४९२ ॥
तस्यानन्तरे महीपालः बुद्धपक्ष इति श्रुतः ।
महायक्षो महात्यागी बुद्धानां शासने रतः ॥ ४९३ ॥
भविष्यति न संदेहः तस्मिं काले युगाधमे ।
अतिप्रीतो हि नृपतिः शास्तुः शासनतत्परः ।
विहारारामचैत्यांश्च शास्तुर्बिम्बाननुत्तमाम् ॥ ४९४ ॥
वाप्यः कूपाश्च.......................अनेकधाः ।
कारयित्वा महाराजा दिवं गच्छेद् गतायुषः ॥ ४९५ ॥
तस्य सिद्धो महावीर्यः अब्जकेतुर्महीतले ।
पृथिव्यां पालनां प्रार्थे बोधिसत्त्वस्य महात्मने ॥ ४९६ ॥
तस्य मन्त्रप्रभावेन जीवेद् वर्षशतत्रयम् ।
तेन कर्मावशेषेण क्षिप्रं बोधिमवाप्नुयात् ॥ ४९७ ॥
तस्यापि च सुतो राजा महासैन्यो महाबलः । G 621
गम्भीरयक्षो विख्यातः पृथिवीमखिलोदिताम् ॥ ४९८ ॥
सोऽपि राजाथ युक्तात्मा तस्मिं काले भविष्यति ।
विहारावसथ चैत्यांश्च वापीकूपांश्च नैकधा ।
कारयिष्यति न संदेहो भूपतिः स महाद्युतिः ॥ ४९९ ॥
तेनापि साधितं मन्त्रं मञ्जुघोषस्य धीमतः ।
षडक्षरं नाम यद् वाक्यं महार्थं भोगवर्धनम् ॥ ५०० ॥
तस्य मन्त्रप्रभावेन महाभोगी भवे ह्यसौ ।
अनुपूर्वेण मेधावी क्षिप्रं बोधिपरायणः ।
विविधाकारकारांस्तु शासनेऽस्मिं तथागते ॥ ५०१ ॥
भविष्यति तदा काले उत्तरां दिशिमाश्रृतः ।
नेपालमण्डले ख्याते हिमाद्रेः कुक्षिमाश्रिते ॥ ५०२ ॥
राजा मानवेन्द्रस्तु लिच्छवीनां कुलोद्भवः ।
सोऽपि मन्त्रार्थसिद्धस्तु महाभोगी भविष्यति ॥ ५०३ ॥

विद्या भोगवती नाम तस्य सिद्धा नराधिपे ।
अशीतिवर्षाणि कृत्वासौ राज्यं तस्करवर्जितम् ॥ ५०४ ॥
ततः प्राणात्यये नृपतौ स्वर्गलोके जजग्मसु ।
तत्र मन्त्राशु सिध्यन्ति शीतला शान्तिकर्मणि ॥ ५०५ ॥
तारा च लोकविख्याता देवी पण्डरवासिनी ।
महाश्वेता परहितोत्सुका अखिन्नमनसां सदा ॥ ५०६ ॥
इत्येवमादयो प्रोक्ता बहुधा नृपतयोस्तदा ।
अनेकधा बहुधाश्चैव नानारूप विवर्णिताः ॥ ५०७ ॥
शास्तुपूजकास्तेऽपि म्लेच्छराजा न हे...,. ।
ववियः सुवृपश्चैव भावसु शुभसुस्तथा ॥ ५०८ ॥
भाक्रमः पदक्रमश्चैव कमलश्चैव कीर्त्यते ।
भागुप्तो वत्सकश्चैव................पश्चिमः ॥ ५०९ ॥
G 22 उदयः जिह्णुनो ह्यन्ते म्लेच्छानां त्रिविधास्तथा ।
अम्भोधेर्भ्रष्टमर्यादा बहिः प्राज्ञोपभोजिनः ॥ ५१० ॥
शस्त्रसंपातविध्वस्ता नेपालाधिपतिस्तदा ।
विद्यालुप्ता लुप्तराजानो म्लेच्छतस्करसेविनः ॥ ५११ ॥
अनेका भूपतयो प्रोक्ता नाना चैव द्विजप्रिया ।
भविष्यन्ति तदा काले चीनं प्राप्य समन्ततः ॥ ५१२ ॥
राजा हिरण्यगर्भस्तु महासैन्यो महाबलः ।
विस्तीर्णश्च तन्त्रश्च प्रभूतजनबान्धवः ॥ ५१३ ॥
म्लेच्छप्रणतो विजयी च शास्तुः शासनतत्परः ।
तेनापि साधितो मन्त्रः कुमारस्यैव महाद्युतेः ॥ ५१४ ॥
....................विद्याराजामष्ट अक्षरम् ।
महावीरं नाम विख्यातं संपदानां महास्पदम् ॥ ५१५ ॥
तेन बालधियो राजा राज्यहेतोः समाहितः ।
यस्य स्मारितमात्रेण बुद्धत्वं नियतं पदम् ॥ ५१६ ॥
सोऽल्पकार्यनियुञ्जानः राज्यहेतोर्नराधिपः ।
आकाङ्क्षमानयथेवं वरदानमनुत्तमम् ॥ ५१७ ॥
ब्रह्माद्या देवतां कृत्स्नामाज्ञापयति सर्वदा ।
किं पुनर्मानुषां लोके इतरां भावकुत्सिताम् ॥ ५१८ ॥
जीवित्वा वर्षशतं सार्धं दिवं गच्छन्महानृपः ।
सोऽनुपूर्वेण धर्मात्मा उत्तमां बोधिमाप्नुयात् ॥ ५१९ ॥

तस्मिं देश इमा विद्या ये कुमारेण भाषिता ।
सत्वरा तेऽपि सिध्यन्ते नान्ये विद्या कदाचन ॥ ५२० ॥
बोधिसत्त्वो महाधीरः मञ्जुघोषो महाद्युतिः ।
तस्मिं देशे तु साक्षाद् वै तिष्ठते बालरूपिणः ॥ ५२१ ॥
सिद्धिक्षेत्राथ परं दिव्यं मानुष्यैः साधयिष्यति ।
तुरुष्कनामा वै राजा उत्तरापथमाश्रितः ॥ ५२२ ॥
महासैन्यो महावीर्यः तस्मिं स्थाने भविष्यति । G 623
कश्मीरद्वारपर्यन्तं बष्कलोद्यं सकाविशम् ॥ ५२३ ॥
योजनशतसप्तं तु राजा भुङ्क्तेऽथ भूतलम् ।
सप्तसप्ततिसहस्राणि लक्षौ द्वौ तस्य भूपतेः ।
भविष्यति न संदेहो तस्मिं काले युगाधमे ॥ ५२४ ॥
सोऽपि सिद्धमन्त्रस्तु जीवेद् वर्षशतत्रयम् ।
साधिता केशिनी विद्या नराध्यक्षेण धीमता ॥ ५२५ ॥
आत्मना श्रेयसार्थं तु विहारां कारयेद् बहून् ।
षडाशीतिसहस्राणि कुर्यात् स्तूपवरांस्तथा ॥ ५२६ ॥
महायानाग्रधर्मं तु बुद्धानां जननीस्तथा ।
प्रज्ञापारमिता लोके तस्मिं देशे प्रतिष्ठिता ॥ ५२७ ॥
स राजा भिन्नदेहस्तु स्वर्गलोकं गमिष्यति ।
सोऽनुपूर्वेण क्षितीपेशः बोधिं प्राप्स्यति मुत्तमाम् ॥ ५२८ ॥
तस्यान्तरे क्षितिपतेः महातुरुष्को नाम नामतः ।
धीमतः बहुमतः ख्यातो गुरुपूजकतत्परः ।
सदा सोऽपि साधे स मन्त्रं वै तारादेवीं महर्द्धिकाम् ॥ ५२९ ॥
सोऽपि प्रसिद्धमन्त्रस्तु राज्यहेतो थ भूतले ।
महायक्षा महासैन्यः महेशाक्षोऽथ भूपतिः ॥ ५३० ॥
संमतो बन्धुवर्गाणां राजा सोऽपि भविष्यति ।
अष्टौ सहस्रविहाराणां तस्मिं काले भविष्यति ॥ ५३१ ॥
तस्य मन्त्रप्रभावेन जीवेद् वर्षशतद्वयम् ।
यदासौ भिन्नदेहस्तु तुषितेभ्योपपद्यते ।
सोन्मत्तो देवपुत्राणां बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः ॥ ५३२ ॥
सोऽनुपूर्वेण धर्मात्मा बोध्यङ्गसमभिपूरतः ।
प्राप्नुयामतुलां बोधिं सोऽनुपूर्वेण यत्नतः ॥ ५३३ ॥

तत्र देशे तदा काले तिष्ठते अक्षरं मम ।
G 624 जिनैस्तु कथितं पूर्वं अधुना वर्णितं मया ।
वीतरागैः समाक्रान्तं नागैश्चापि महर्द्धिकैः ॥ ५३४ ॥

लोकपालास्तथा यक्षाः शास्तुः शासनरक्षकाः ।
भविष्यन्ति तदा काले सद्धर्मरक्षणा भुवि ॥ ५३५ ॥

एवं बहुविधाः प्रोक्ता भूपाला लोकविश्रुताः ।
कथिताः कथयिष्यन्ति तस्मिं काले सुदारुणे ॥ ५३६ ॥

पश्चाद्देशपर्यन्तं उज्जयन्यामतः परे ।
समुद्रतीरपर्यन्तं लाडानां जनपदे तथा ॥ ५३७ ॥

शीलाह्वो नाम नृपतिः बुद्धानां शासने रतः ।
पुरीं वलभ्य संप्राप्तो धर्मराजा भविष्यति ॥ ५३८ ॥

विहारां धातुवरां चित्रां श्रेयसा प्राणिनां तथा ।
कारयिष्यति युक्तात्मा भूपतिर्मितकालः ॥ ५३९ ॥

पूजां च विविधाकारां जिनबिम्बां मनोरमाम् ।
पूजयेद्धातुवरां अग्र्यां लोकनाथेभ्यो नराधिपः ।
नासौ मन्त्रसिद्धस्तु केवलं धर्मलोलुपः ॥ ५४० ॥

तत्र देशे समाख्यातो भिक्षुः पिण्डचारिकः ।
शीलवां बुद्धिसंपन्नो बुद्धानां शासने रतः ॥ ५४१ ॥

कालचारी महात्मासौ प्रविष्टो पिण्डचारिकाम् ।
पश्यते राजकुलं श्रेष्ठं निर्गतां च जनाकुलम् ॥ ५४२ ॥

प्रविष्टो तत्र भिक्षार्थी क्षुधया च समन्वितः ।
तृषितो क्लान्तमनसो न लेभे पिण्डकं तदा ॥ ५४३ ॥

गृहीत्वासौ पुरुषैः क्षिप्रं निर्धावुः तत्कुलात् परम् ।
ततोऽसौ उद्विग्नमनसो रोदन्तो राजमन्दिरात् ॥ ५४४ ॥

निर्ययुर्नगरात् तस्मात् स्वालयं तत्क्षणाद् गतः ।
क्षुधितो तृषितश्चैव दुःखी च दुर्गतिं गतः ॥ ५४५ ॥

ततोऽसौ भक्तच्छिन्नस्तु अर्धरात्रे आयुर्नश्यते ।
G 625 प्राणत्यागं तदा चक्रुः यतो सौ लब्धचेतसः ।
प्रणिधिं च तदा चक्रे लाडानामधिपतिर्भवेत् ॥ ५४६ ॥

ततोऽसौ कालगतो भिक्षुर्धराख्ये नृपतौ कुले ।
उत्पद्येत महात्मासौ शास्तुः शासनपूजकः ॥ ५४७ ॥

दशवर्षाणि विंशं च राज्यं कृत्वामकण्टकम् ।
लुब्धः स्वजनप्रयोगेण अजीर्णयति मूर्छितः ॥ ५४८ ॥
भिन्नदेहो ततो राजा कालं कृत्वा दिविं गतः ।
देवा तुषितवरा नाम मैत्रेयो यत्र तिष्ठति ॥ ५४९ ॥
धर्मश्रावी महात्मासौ तत्रासौ उपपत्स्यते ।
धर्मं शृण्वन्ति सत्कृत्य मैत्रेयस्य महाद्युतेः ॥ ५५० ॥
सोऽनुपूर्वेण बोधिं च....प्राप्स्यति दुर्लभाम् ।
शीलाख्ये नृपतौ वृत्ते चपलस्तत्र भविष्यति ॥ ५५१ ॥
वर्षार्धपक्षमेकं तु पञ्च मासां तथैव तु ।
राज्यं कृत्वा विभिन्नोऽसौ शस्त्रिभिः शस्त्रजीविभिः ॥ ५५२ ॥
स्त्रीकृतेनैव तु दोषेण शस्त्रभिन्नो अधो गतः ।
तस्याप्यनुजो ध्रुवाख्यस्तु ध्रुवः स्थावरतां गतः ॥ ५५३ ॥
सेवककृपणो मूर्खः लाडानामधिपतिर्भवेत् ।
शेषा नराधिपाः सर्वे मूर्धान्तास्तु सेवकाः ॥ ५५४ ॥
तेषां च पूर्वजा वंशाः शीलाह्वोपरते तदा ।
भविता भूपतयः सर्वे अम्भोजे तीरपर्षगाः ॥ ५५५ ॥
नृपः इन्द्रो सुचन्द्रश्च धनुः केतुस्तथैव च ।
पुष्पनामो ततः प्रोक्ता द्वारवत्यां पुरोद्भवः ॥ ५५६ ॥
वलभ्यां पुरिमागम्य आद्यमस्यानुपूर्वका ।
प्रभानामा सहस्राणि विष्णुनामा तथैव च ॥ ५५७ ॥
अनन्ता नृपतयो प्रोक्ता यादवानां कुलोद्भवाः ।
तेषामपश्चिमो राजा विष्णुनामा भविष्यति ॥ ५५८ ॥
ऋषिशापाभिभूतस्तु सपौरजनबान्धवः । G 626
अस्तं गते नृपो धीमां उदके प्लाविता पुरी ॥ ५५९ ॥
द्वारवत्या तदा तस्य महोदधिसमाश्रिता ।
उत्तरां दिशि सर्वत्र नानारम्भनितःवप्रोः ॥ ५६० ॥
अनन्ता नृपतयः प्रोक्ता नानाजातिसमाश्रिताः ।
शकवंश तदा त्रिंशत् मनुजेशा निबोधिता ॥ ५६१ ॥
दशाष्ट भूपतयः ख्याता सार्धभूतिकमध्यमा ।
अन्ते नागसेना तु विलुप्ता ते परे तदा ॥ ५६२ ॥
ततो विष्णुहरश्चैव कुन्तनामाजितः परः ।
ईशानसर्वपङ्क्तिश्च ग्रहसुत्र तथापरः ॥ ५६३ ॥

ततस्ते विलुप्तराजानः अपमर्यादा सर्वदा ।
विष्णुप्रभवौ तत्र महाभोगौ धनिनौ तदा ॥ ५६४ ॥
मध्यमात् तौ मकाराद्यौ मधुमुख्यौ उभौ तदा ।
धनिनौ श्रीमतौ ख्यातौ शासनेऽस्मिं हिते रतौ ।
जप्तमन्त्रौ तथा मन्त्रे कुमारस्यापि मन्त्रराट् ॥ ५६५ ॥
ततः परेण भूपालो जातानामनुजेश्वरौ ।
रामाप्तशता त्रीणि श्रीमन्त्रासिनस्तदा ॥ ५६६ ॥
आदित्यनामा वैश्यास्तु ज्ञानमीशरशासिनः ।
भविष्यति न संदेहो अन्ते सर्वत्र भूपतिः ।
हकाराख्यो नामतः प्रोक्तो सार्वभूमिनराधिपः ॥ ५६७ ॥
तत्र देशे इमे मन्त्रा सिद्धिं गच्छेयु वै तदा ।
धर्मराजेन ये प्रोक्ता विना शान्तिकपौष्टिका ॥ ५६८ ॥
विविधां भोगविपदां संपदां विविधांस्तथा ।
नाना च रूपधारिण्यो यक्षिण्यश्च महर्द्धिकाः ॥ ५६९ ॥
भविष्यन्ति तत्र वै सिद्धा तस्मिं काले युगाधमे ।
दक्षिणां दिशिमाश्रित्य सागरान्तां वसुंधराम् ॥ ५७० ॥
G 627 राजाश्वेतसुचन्द्रश्च सातवाहन एव तु ।
महेन्द्रं शंकरश्चैव पद्मगोऽथ महीपतिः ॥ ५७१ ॥
सुकेशिनेशिश्च विख्याताः....दक्षिणां दिशि ।
मङ्गलो वल्लभः प्रोक्तो गोविन्द. सुन्दरेश्वरः ॥ ५७२ ॥
मुत्पातः पोतश्चैव महेन्द्रः चन्द्र एव तु ।
गोपेन्द्रो इन्द्रसेनश्च प्रद्युम्नो माधवस्तदा ॥ ५७३ ॥
गणशंकरश्चैव व्याघ्रं सिंहो तथा बुधः ।
बुधः शुक्रस्तथा शुभः निकुम्भश्चैव कीर्तितौ ॥ ५७४ ॥
मथितः सुगिलश्चैव.................... ।
बलः पुलिनश्चैव सुकेशिः नेमिनामना ॥ ५७५ ॥
अनन्ता बहवो ख्याता भूपाला दक्षिणां दिशि ।
अतीतानागता चापि वर्तमाना निबोधता ॥ ५७६ ॥
नानामृत्युमवे ह्येते नानाव्याधिसमाकुला ।
शस्त्रसंपातदुर्भिक्षैः मृताः केचिद् दिवि गताः ॥ ५७७ ॥
इत्येते नृपतयः सर्वे कथिता विपुरस्तथा ।
महेन्द्रान्त नृपोताख्यातः तथासकलिस्तथा ॥ ५७८ ॥

................भविष्यन्ति तदा अभूत् ।
तस्मिं काले तदा देशे मन्त्राणां सिद्धिमिच्छताम् ॥ ५७९ ॥
साधनीया इमा मन्त्राः क्रोधाद्याः कुलिशोचिताः ।
आभिचारुककर्मेषु वश्यार्थे च तथा हितम् ॥ ५८० ॥
मञ्जुश्रियोऽथ माहात्मा वै कुमारो बालरूपिणः ।
सिध्यते च तदा देशे कलिप्राप्ते च तदा युगे ॥ ५८१ ॥
पर्वतविन्ध्यमाश्रितं सागरे लवणोदके ।
कार्तिकेयेति समाख्यातः सत्त्वानां वरदायकः ॥ ५८२ ॥
आज्ञां भो बोधिसत्त्वेन मञ्जुघोषेण धीमता ।
सत्त्वानां हितकाम्यर्थं निवसेद् दक्षिणां दिशि ॥ ५८३ ॥
कार्तिकेयस्य ये मन्त्राः कथिता मञ्जुभाणिना । G 628
तस्मिं देशे तदा सिद्धिः भविष्यति न संशयः ॥ ५८४ ॥
श्रीपर्वते तदा देशे विन्ध्यकुक्षिनितम्बयोः ।
द्वीपेष्वेव च सर्वत्र कलिङ्गोद्रेषु कीर्त्यते ॥ ५८५ ॥
त्रैगुण्या म्लेच्छदेशेषु........समन्ततः ।
अम्भोधेः कुक्षितीरान्ताः नृपा ख्याता अनन्तकाः ॥ ५८६ ॥
कामरूपकलाख्या हि हिमाद्रेः कुक्षिमाश्रिताः ।
बहवो नृपतयो प्रोक्ता उद्रसंधिषु सर्वदा ॥ ५८७ ॥
नानाम्लेच्छगणाध्यक्षा शास्तुपूजनतत्पराः ।
इन्द्रो सुचन्द्रमहेन्द्रश्च भूपालम्लेच्छवासिनः ॥ ५८८ ॥
क्षमापालौ उभौ तत्र षोडशाब्दा शासने रता ।
पूजकाः शास्तुबिम्बानां त्वत्प्रसादा........॥ ५८९ ॥
भविष्यन्ति न संदेहो प्रसन्ना शासने जिने ।
बहवो नृपवराः प्रोक्ताः पूर्वायां दिशिमाश्रिताः ।
अतीतानागता ये तु वर्तमानाश्च सर्वदा ॥ ५९० ॥
आद्यं नृपवरं वक्ष्ये गौडानां वंशजो भुवि ।
जातोऽसौ नगरे रम्ये वर्धमाने यशस्विनः ॥ ५९१ ॥
लोकाख्यो नाम सौ राजा भवति गौडवर्द्धनः ।
मामानुत्पन्नलोकेऽस्मिं भवितासौ धर्मचिन्तकः ॥ ५९२ ॥
बहवः क्षितिपाः क्रान्ता विविधा जीवकर्मिणः ।
मध्यकाले समास्वासा मध्यमा मध्यधर्मिणः ।
अनन्ते च युगे नृपेन्द्रा शृणु तत्त्वतः ॥ ५९३ ॥

ततस्ते विलुप्तराजानः भ्रष्टमर्याद सर्वदा ।
विष्णुप्रभवौ तत्र महाभोगो धनिनो तदा ॥ ५६४ ॥
मध्यमात् तौ भकाराद्यौ मन्त्रिमुख्यौ उभौ तदा ।
धनिनौ श्रीमतौ ख्यातौ शासनेऽस्मिं हिते रतौ ।
जप्तमन्त्रौ तथा मन्त्रे कुमारस्त्वयि मन्त्रराट् ॥ ५६५ ॥
ततः परेण भूपालो जातानामनुजेश्वरौ ।
सप्तमष्टशता त्रीणि श्रीकण्ठावासिनस्तदा ॥ ५६६ ॥
आदित्यनामा वैश्यास्तु स्थानमीश्वरवासिनः ।
भविष्यति न संदेहो अन्ते सर्वत्र भूपतिः ।
हकाराख्यो नामतः प्रोक्तो सार्वभूमिनराधिपः ॥ ५६७ ॥
तत्र देशे इमे मन्त्रा सिद्धिं गच्छेयु वै तदा ।
धर्मराजेन ये प्रोक्ता विद्या शान्तिकपौष्टिका ॥ ५६८ ॥
विविधां भोगविषयां संपदां विविधांस्तथा ।
नाना च रूपधारिण्यो यक्षिण्यश्च महर्द्धिकाः ॥ ५६९ ॥
भविष्यन्ति तत्र वै सिद्धा तस्मिं काले युगाधमे ।
दक्षिणां दिशिमाश्रित्य ससमुद्रां वसुंधराम् ॥ ५७० ॥
G 627 राजाश्वेतसुचन्द्रश्च सातवाहन एव तु ।
महेन्द्रं शंकरश्चैव वल्लभोऽथ महीपतिः ॥ ५७१ ॥
सुकेशिकेशिश्च विख्याताः....दक्षिणां दिशि ।
मङ्गलो वल्लभः प्रोक्तो गोविन्दः बृन्दरेवमुः ॥ ५७२ ॥
मुत्पातः पोतश्चैव महेन्द्रः चन्द्र एव तु ।
गोपेन्द्रो इन्द्रसेनश्च प्रद्युम्नो माधवस्तदा ॥ ५७३ ॥
गणशंकरश्चैव व्याघ्रं सिंहो तथा बुधः ।
बुधः शुद्धस्तथा कुम्भः निकुम्भश्चैव कीर्त्यते ॥ ५७४ ॥
मथितः सुमितश्चैव. .... ।
बलः पुलिनश्चैव सुकेशिः केशिनस्तथा ॥ ५७५ ॥
अनन्ता बहवो ख्याता भूपाला दक्षिणां दिशि ।
अतीतानागता चापि वर्तमाना निबोधिता ॥ ५७६ ॥
नानामृत्युभवे ह्येते नानाव्याधिसमाप्लुता ।
शस्त्रसंपातदुर्भिक्षैः मृताः केचिद् दिविं गताः ॥ ५७७ ॥
इत्येते नृपतयः सर्वे कथिता विपुरवस्तथा ।
महेन्द्रान्त नृपोताख्यातः तथासहतिस्तथा ॥ ५७८ ॥

................भविष्यन्ति तदा अभूत् ।
तस्मिं काले तदा देशे मन्त्राणां सिद्धिमिच्छताम् ॥ ५७९ ॥
साधनीया इमा मन्त्राः क्रोधाद्याः कुलिशोचिताः ।
आभिचारुककर्मेषु वश्यार्थे च तथा हितम् ॥ ५८० ॥
मञ्जुश्रियोऽथ माहात्मा वै कुमारो बालरूपिणः ।
सिध्यते च तदा देशे कलिप्राप्ते च तदा युगे ॥ ५८१ ॥
पर्वतविन्ध्यमाश्रितं सागरे लवणोदके ।
कार्तिकेयेति समाख्यातः सत्त्वानां वरदायकः ॥ ५८२ ॥
आज्ञां भो बोधिसत्त्वेन मञ्जुघोषेण धीमता ।
सत्त्वानां हितकाम्यर्थं निवसेद् दक्षिणां दिशि ॥ ५८३ ॥
कार्तिकेयस्य ये मन्त्राः कथिता मञ्जुभाणिना । G 628
तस्मिं देशे तदा सिद्धिः भविष्यति न संशयः ॥ ५८४ ॥
श्रीपर्वते तदा देशे विन्ध्यकुक्षिनितम्बयोः ।
द्वीपेष्वेव च सर्वत्र कलिङ्गोद्रेषु कीर्त्यते ॥ ५८५ ॥
त्रैगुण्या म्लेच्छदेशेषु........समन्ततः ।
अम्भोधेः कुक्षितीरान्ताः नृपा ख्याता अनन्तकाः ॥ ५८६ ॥
कामरूपकलाख्या हि हिमाद्रेः कुक्षिमाश्रिताः ।
बहवो नृपतयो प्रोक्ता उद्रसंधिषु सर्वदा ॥ ५८७ ॥
नानाम्लेच्छगणाध्यक्षा शास्तुपूजनतत्पराः ।
इन्द्रो सुचन्द्रमहेन्द्रश्च भूपालम्लेच्छवासिनः ॥ ५८८ ॥
क्ष्मापालौ उभौ तत्र षोडशाब्दौ शासने रता ।
पूजकाः शास्तुबिम्बानां लब्धप्रसादा........॥ ५८९ ॥
भविष्यन्ति न संदेहो प्रसन्ना शासने जिने ।
बहवो नृपवराः प्रोक्ताः पूर्वायां दिशिमाश्रिताः ।
अतीतानागता ये तु वर्तमानाश्च सर्वदा ॥ ५९० ॥
आद्यं नृपवरं वक्ष्ये गौडानां वंशजो भुवि ।
जातोऽसौ नगरे रम्ये वर्धमाने यशस्विनः ॥ ५९१ ॥
लोकाख्यो नाम सौ राजा भवति गौडवर्द्धनः ।
मामानुत्पन्नलोकेऽस्मिं भवितासौ धर्मचिन्तकः ॥ ५९२ ॥
बहवः क्षितिपाः क्रान्ता विविधा जीवकर्मिणः ।
मध्यकाले समास्वासा मध्यमा मध्यधर्मिणः ।
अनन्ते च युगे नृपेन्द्रा शृणु तत्त्वतः ॥ ५९३ ॥

समुद्राख्यो नृपश्चैव विक्रमश्चैव कीर्तितः ।
महेन्द्रनृपवरो मुख्य सकाराद्यो मतः परम् ॥ ५९४ ॥
देवराजाख्यनामासौ.......युगाधमे ।
निर्द्धाख्ये नृपः श्रेष्ठः बुद्धिमान् धर्मवत्सलः ॥ ५९५ ॥
G 629 तस्याप्यनुजो बलाध्यक्षः शासने च हिते रतः ।
प्राचीं समुद्रपर्यन्तां चैत्यालंकृतशोभनाम् ॥ ५९६ ॥
करिष्यति न संदेहः कृत्स्नां वसुमतीं तदा ।
विहारारामवापीश्च उद्याना मण्डवकां सदा ॥ ५९७ ॥
करिष्यति तदा श्रीमां संक्रमां सेतुकारकः ।
शास्तुर्बिम्बान् तदा पूजेत् तत्प्रसन्नांश्च पूजयेत् ॥ ५९८ ॥
कृत्वा राज्यं महीपालो निःसपत्नमकण्टकम् ।
जीवेद् वर्षां षट्त्रिंशत् त्रिंशाहं प्रव्रजे नृपः ॥ ५९९ ॥
ततोऽत्मानं घातयेद् राजा ध्यायन्तः संप्रमूर्च्छितः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः यतिवृत्तिसमाश्रितः ॥ ६०० ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु नरकेभ्योपपद्यत ।
त्रीणि एकं च दिवसानि उषित्वा नरकं गतिम् ॥ ६०१ ॥
देहमुत्सृज्य दिविं गच्छेत् सदा नृपः ।
देवानां सुकृतिनां लोकः शुद्धावास इति स्मृतः ।
देवराजा भवेत् तत्र शुद्धात्मा बोधिनिम्नगः ॥ ६०२ ॥
शतशः सहस्रशश्चैव अनुभूय दिविं सुखम् ।
पुनरेव मानुष्यं प्राप्य बुद्धो भूयो भवान्तरे ।
तेनैव कारितं कर्म अन्यजन्मेषु देहिनाम् ॥ ६०३ ॥
पुरीमुज्जयनीं ख्याता मालवानां जने तदा ।
तत्रायनीमुख्यः वणिजो यो महाधनः ॥ ६०४ ॥
बुद्धानामसंभवे काले शून्ये लोके निरारपदे ।
प्रत्येकबुद्धा लोकेऽस्मिं विहरन्ति महर्द्धिकाः ॥ ६०५ ॥
सत्त्वानां हितकामाय विचरन्ति महीतले ।
पुरी उज्जयिनी प्राप्य प्रविष्टा पिण्डचारिकाः ।
वर्गचारिणो महात्मानः रथ्यायामवतरे तदा ॥ ६०६ ॥
वाण्याजेयस्तुस्तदा सैव दृष्ट्वा तु संमुखं मुनिम् ।
G 630 निमन्त्रयामास तदा भक्तेन स्वगृहं चैव नयेत् तदा ।
नीत्वा मुनिवरां क्षिप्रमासनेन निमन्त्रयेत् ॥ ६०७ ॥

संघीभवध्व भवतः भक्तकालोऽयमुपस्थितः ।
तेऽपि तूष्णीं महात्मानो न वाचां भाषिरे तदा ॥ ६०८ ॥
पात्रं च नामयामास वाणिजे यस्य सर्वदा ।
वणिजा इङ्गितज्ञाश्च बुद्धिमन्तो भवेत् तदा ॥ ६०९ ॥
पात्रं च पूरयामास विविधाकारभोजनैः ।
तदासौ स्वहस्तेनैव तेषां प्रायच्छ यत्नतः ॥ ६१० ॥
गृहीत्वा तु ततः सर्वे प्रजग्मुः सर्वतो नभम् ।
दीपमालेव दृश्यन्ते व्योममूर्तिसमाश्रिताः ॥ ६११ ॥
ततोऽसौ हृष्टरोमस्तु संवेगबहुलस्तदा ।
भूम्यां च पतितस्तत्र ऋद्ध्यावर्जितमानसः ॥ ६१२ ॥
प्रणिधिं च तदा चक्रे प्रव्याहारवचं यथा ।
अनेन कुशलमूलेन यन्मया प्राप्तमद्यतः ॥ ६१३ ॥
एषा मुनिवरा मग्न भवेद् बुद्धो ह्यनुत्तरः ।
दशजन्मसहस्राणि चक्रवर्ती तदा भुवि ॥ ६१४ ॥
ततोऽसौ व्युक्तदेहस्तु कोटिषष्टिदिवौकसाम् ।
अनुभूय चिरं सौख्यं त्यक्त्वा जन्म दिवौकसाम् ॥ ६१५ ॥
मानुषाणां तदा जन्म प्राप्नुयात् परवशा इह ।
तस्य राजकुले जन्म भवतीह तु सर्वदा ॥ ६१६ ॥
बालाख्यो नाम सौ नृपतिर्भविता पूर्वदेशकः ।
आजन्मसहस्राणि चिरसौख्यमनावृतम् ।
प्राप्नुवन्ति या नृपतिः श्रीमां सर्वज्ञत्वं च पश्चिमम् ॥ ६१७ ॥
एवं बहुविधं मत्वा संपदो विपुलास्तथा ।
को नु कुर्यात् तदा शास्तुः पूजनाध्येषणांस्तथा ।
कारांश्च श्रेयसीं युक्तां बोधिमार्गवियोजनीम् ॥ ६१८ ॥
तस्यापरेण नृपतिः गौडानां प्रभविष्णवः । G 631
कुमाराख्यो नामतः प्रोक्तः सोऽपि रत्यन्तधर्मवां ॥ ६१९ ॥
तस्यापरेण श्रीमां उकाराख्येतिविश्रुतः ।
ततः परेण विश्लेष तेषामन्योन्यतेष्यते ॥ ६२० ॥
महाविश्लेषणा ह्येते गौडा रौद्रचेतसः ।
ततो देव इति ख्यातो राजा मागधकः स्मृतः ॥ ६२१ ॥
सोऽप्यतहतविध्वस्तरिपुभिः समतावृतः ।
यस्यापरेण चन्द्राख्यः नृपतित्वं कारयेत् तदा ॥ ६२२ ॥

सोऽपि शस्त्रविभिन्नस्तु पूर्वचोदितकर्मणा ।
तस्यापि सुतो द्वादश गणनां जीवेन्मासपरं परम् ॥ ६२३ ॥
सोऽपि विभिन्न शस्त्रेण बाल एव अभूत् तदा ।
तेषां परस्परोपविघ्नचित्तानां रौद्राणामहिते रताम् ॥ ६२४ ॥
भविष्यति तदा काले भकाराख्यो नृपपुंगवः ।
अग्रणीर्गौडलोकानां महाव्याधिसमाकुलः ॥ ६२५ ॥
तेनैव व्याधिना आर्तः कालं कृत्वा अधोगतः ।
तस्यापरेण दकाराख्यः कतिपायां दिवसां दश ॥ ६२६ ॥
भविता गौडदेशेऽस्मिं गङ्गातीरसमाश्रितः ।
तस्यापरेण भकाराख्यस्त्रीणि दिवसानि कारयेत् ॥ ६२७ ॥
ततो गोपालको राजा भविता सर्वदस्तदा ।
प्रियवादी च सो राजा घृणी चैव महाबलः ॥ ६२८ ॥
स्त्रीवशः कृपणो मूर्खः जितशत्रुर्भवेद् युवाम् ।
कल्याणमित्रमागम्य महात्यागी भवेत् तदा ॥ ६२९ ॥
विहारांश्चैत्यवरां रम्यामारामां विविधांस्तदा ।
वाप्योऽथ जलसंपन्ना सत्रागारां सुशोभनाम् ॥ ६३० ॥
सेवतो बहवस्तस्य यशः कीर्त्यर्थमुद्यतः ।
देवायतनरम्यां वै गुणावसथकारिणः ॥ ६३१ ॥
G 632 पाषण्डीभिः समाक्रान्तं नानातीर्थिकवासिभिः ।
आक्रान्तः सो दिशः सर्वा समुद्रातीरचर्यगाः ॥ ६३२ ॥
क्रिप्री भोगी प्रमादी च सं राजा धर्मवत्सलः ।
भविष्यति न संदेहः स प्राचीं दिशि मूर्जितः ॥ ६३३ ॥
सवातीसारसंयुक्तवार्द्धिक्ये समुपस्थितः ।
गङ्गातीरमुपाश्रित्य राज्यं कृत्वा तु वै तदा ।
विंशद् वर्षाणि सप्तं च जन्मनाशीतिको मृतः ॥ ६३४ ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु तिर्यगेभ्योऽपिपद्यते ।
नागराजा ततः श्रीमान् धर्मवत्सलः ।
येनास्य कारितं चैत्य शास्तुबिंबं मनोरमम् ॥ ६३५ ॥
विहारां कारितवांश्चात्र संवस्यार्थे तदा भुवि ।
तेन कर्मविपाकेन अन्तिमे च भवे श्रिते ॥ ६३६ ॥
बुद्धत्वं नियतं मार्गं प्राप्नुयादचलं पदम् ।
ततः परेण गौडानां तीर्थिकाक्रान्तपुरं भुवि ॥ ६३७ ॥

ता पूर्वदेशेऽस्मिन् नगरे तीर्थिकसमाह्वये ।
भगवाख्ये नृपे ख्यातः गौडानां प्रभविष्णवः ॥ ६३८ ॥
अभिषिक्तो दक्षिणात्येन प्रतिना प्रभविष्णुना ।
राज्यं कृत्वा तु वै तत्र पश्चिमां दिशिमागतः ॥ ६३९ ॥
प्रविश्य नगरीं रम्यां साकेतां तु यथेप्सितः ।
अरिणा....भूतस्तु पुनरेव निवर्तते ॥ ६४० ॥
प्राचीं समुद्रपर्यन्तां तस्करैश्च समावृतः ।
शस्त्रप्रहारविध्वस्तमृतोऽसौ प्रेततां गत· ॥ ६४१ ॥
त्रीणि वर्षाणि कृत्वासौ भूपालो राज्यमल्पकम् ।
ततो दस्युभिर्ग्रस्तः मृतः प्रेतमहर्द्धिकः ।
त्रीणि वर्षाणि तत्रैव प्रेतेभ्यो राज्यमकारयेत् ॥ ६४२ ॥
ततोऽपि सो त्यक्तदेहस्तु प्रेतलोकां सुदारुणाम् ।
तस्मान्मुक्तजन्मानः स्वर्लोकं च सदा व्रजेत् ॥ ६४३ ॥ G 633
तस्याधरेण नृपतिस्तु समुद्राख्यो नाम कीर्तितः ।
त्रीणि दिवसानि दुर्मेधः राज्यं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ ६४४ ॥
तस्याप्यनुजो विख्यातः भस्ममाख्यो नाम नामतः ।
प्रभुः प्राणातिपातसंयुक्तः महासावद्यकारिणः ।
निर्घृणी अप्रमत्तश्च स्वशरीरे तु यत्नतः ॥ ६४५ ॥
परलोकार्थिने नासौ बलिसत्त्वदिहैव तु ।
अकल्याणमित्रमागम्य पापं कर्म कृतं बहु ॥ ६४६ ॥
द्विजैराक्रान्त तद्राज्यं तार्किकैः कृपणैस्तथा ।
विविधाकारभोगांश्च मानुपा पितरास्तथा ॥ ६४७ ॥
विविधां संपदां सोऽपि प्राप्तवान् नृपतिस्तथा ।
सोऽनुपूर्वेण गत्वासौ पश्चिमां दिशि भूपतिः ।
कश्मीरद्वारपर्यन्तं उत्तरां दिशिमाश्रितः ॥ ६४८ ॥
तत्रापि जितसंग्रामी राज्यं कृत्वा तु वै तदा ।
द्वादशाब्दानि सर्वत्र मासां पञ्चदशास्तथा ॥ ६४९ ॥
पृथिव्यामार्तरोगोऽसौ मूर्छितश्च पुनः पुनः ।
महादुःखाभिभूतस्तु भिन्नदेह अधोगतः ॥ ६५० ॥
तेषां परस्परतो द्वेषे लुब्धानां राज्यहेतुनाम् ।
महाशस्त्रोपसंपातं कृत्वा ते तु परस्परम् ॥ ६५१ ॥

अभिषिच्य तदा राज्यं सकराख्यं बालदारकम् ।
चिह्नमात्रं तु तं कृत्वा पुनरेव निवर्तते ।
यैर्द्विजातिमुख्यानां भिन्नास्तेऽपि परस्परम् ॥ ६५२ ॥
मागधां जनपदां प्राप्य पुरे उदुम्बराह्वये ।
द्वौ बालौ द्विजातिमुख्यश्च अभिषेच्यं स्वयं भुवि ॥ ६५३ ॥
ततोऽनुपूर्वेण गत्वासौ प्राचीं दिशिमाश्रितः ।
गौडां जनपदां प्राप्य निःसपत्ना ह्य वै तदा ॥ ६५४ ॥
G 634 घातितौ बालमुख्यौ तौ कलिङ्गेषु दुरात्मना ।
अकल्याणमित्रमागम्य कृतं प्राणिवधो बहुम् ॥ ६५५ ॥
पूर्वसंमानिता ये तु नृपैर्विग्रहमानिभिः ।
घातयामास सर्वेषां गौडानां जनवासिनाम् ॥ ६५६ ॥
सोमाख्योऽपि ततो राजा एकवीरो भविष्यति ।
गङ्गातीरपर्यन्तं वाराणस्यामतः परम् ॥ ६५७ ॥
नाशयिष्यति दुर्मेधः शास्तुर्बिम्बां मनोरमाम् ।
जिनैस्तु कथितं पूर्वं धर्मसेतुमनल्पकम् ॥ ६५८ ॥
दाहापयति दुर्मेधः तीर्थिकस्य वचे रतः ।
ततोऽसौ क्रुद्धलुब्धस्तु मिथ्यामानी ह्यसंमतः ॥ ६५९ ॥
विहारारामचैत्यांश्च निर्ग्रन्थां वसथां भुवि ।
भेत्स्यते च तदा सर्वां वृत्तिरोधमकारकः ॥ ६६० ॥
भविष्यते च तदा काले मध्यदेशे नृपो वरः ।
रकाराद्योतयुक्तात्मा वैश्यवृत्तिमचञ्चलः ॥ ६६१ ॥
शासनेऽस्मिं तथा शक्त सोमाख्यससमो नृप ।
सोऽपि याति तत्रान्तेन नग्नजातिनृपेण तु ॥ ६६२ ॥
तस्याप्यनुजो हकाराख्य एकवीरो भविष्यति ।
महासैन्यसमायुक्तः शूरः क्रान्तविक्रमः ॥ ६६३ ॥
निर्धारये हकाराख्यो नृपतिं सोमविश्रुतम् ।
वैश्यवृत्तिस्ततो राजा महासैन्यो महाबलः ॥ ६६४ ॥
पूर्वदेशं तदा जग्मुः पुण्ड्राख्यं पुरमुत्तमम् ।
क्षत्रधर्मं समाश्रित्य मानरोषमशीलिनः ॥ ६६५ ॥
घृणी धर्मार्थको विद्वां कुर्यात् प्राणिवधं बहून् ।
सत्त्वानुपीडनपरो निग्रहायैव सो रतः ॥ ६६६ ॥

पराजयामास सोमाख्यं दुष्टकर्मानुचारिणम् ।
ततो निषिद्धः सोमाख्यो स्वदेशेनावतिष्ठतः ॥ ६६७ ॥
निवर्तयामास हकाराख्यः म्लेच्छराज्येमपूजितः । G 635
तुष्टकर्मा हकाराख्यो नृपः श्रेयसाचार्थधर्मिणः ॥ ६६८ ॥
स्वदेशेनैव प्रयातः यथेष्टगतिनापि वा ।
तैरेव कारितं कर्म राज्यहर्षीसमन्वितैः ॥ ६६९ ॥
अधुना प्राप्तवां भोगां राज्यवृत्तिमुपाश्रिताम् ।
पूर्वं प्रत्येकबुद्धाय भक्ताच्छादन दत्तवाम् ॥ ६७० ॥
पादुकौ च तदा दत्तौ च्छत्रचामरभूषितम् ।
तस्य धर्मप्रभावेतौ महाराज्यतृदेवतौ ॥ ६७१ ॥
भुक्तवां भोगसंपत्तीः देवमनुष्यसर्वदा ।
सोमाख्यो द्विजाह्वयो महाभोगी भवे ह्यसौ ॥ ६७२ ॥
भोगां द्विजातिषु दत्वा वै राज्यं कृत्वा वै तदा ।
............सार्धं सप्तमं तथा ॥ ६७३ ॥
वर्षा दश सप्तं च मासमेकं तथापरम् ।
दिवसां सप्तमष्टौ च मुखरोगसमाकुलः ॥ ६७४ ॥
कृमिभिर्भक्षमाणस्तु कालं कृत्वा अधोगति ।
अमानुषाक्रान्तविध्वस्तं तत् पुरं च अभूत् तदा ॥ ६७५ ॥
मानुषेणैव दोषेण ज्वरार्तो व्याधिमूर्च्छितः ।
मृतो मन्त्रप्रयोगेण राजासौ कालगतस्तदा ॥ ६७६ ॥
अवीचिर्नाम विख्यातं नरकं पापकारिणाम् ।
तत्रासौ उपपद्येत पापकर्मान्तचारिणः ॥ ६७७ ॥
महाकल्पं तदा नरके पच्यतेऽसौ दुष्टचेतसः ।
ततोऽटटं हहवं चैव संजीवं कालसूत्रं तु ॥ ६७८ ॥
असिपत्रवनं घोरं अनुभूय पुनः पुनः ।
तिर्यक् प्रेतलोकं च........पुनस्तथा ॥ ६८९ ॥
एवं जन्मसहस्राणि संसारे संसरतः पुनः ।
नासौ विन्दति सौख्यानि दुःखभाजी भवेत् सदा ॥ ६८० ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनेऽस्मिं तथागते । G 636
प्रसाद्यमखिलं चित्तं गच्छध्वं निर्जरसं पदम् ॥ ६८१ ॥
बुद्धे कारापकारां च अनन्ता भवति कर्मता ।
बुद्धे प्रसादः कर्तव्यः धर्मसंघे च वै तथा ॥ ६८२ ॥

भवन्ति लोके अग्ररतु चिरन्ते पूजका नृपा ।
महेशाख्यमहेराज्यं महाभोगा धनेश्वरा ॥ ६८३ ॥
प्राप्नुयाद् विविधां सौख्यां संपदां विपुलां नृपा ।
पूजयित्वा तु लोकाग्र्यां लोकईश्वरतां व्रजेत् ॥ ६८४ ॥
शक्रत्वमथ याम्यत्वं ब्रह्मत्वं च पुनः पुनः ।
प्रत्येकबुद्धा बुद्धत्वं श्रावकत्वं च वै भुवि ।
प्राप्नुवन्ति त्रियानमग्रत्वं द्वौ यानौ निःस्पृहतां गतः ॥ ६८५ ॥
एवं ह्यचिन्तिया बुद्धा बुद्धज्ञानोपचिन्तियः ।
अचिन्तियो हि फलं तेषां विपाको भवन्त्यचिन्तियः ॥ ६८६ ॥
अतःपरेण सोमाख्यो नृपतौ अप्यस्तमिते भुवि ।
अन्योन्यक्षोभशीलस्तु गौडतन्त्रो भविष्यति ।
सदा उद्यतशस्त्रास्तु अन्योन्यापि नपेक्षिणः ॥ ६८७ ॥
दिवसा सप्तमेवं तु मासमेकं तथापरम् ।
गणराज्यं तदा तन्त्रे भविष्यति सदा भुवि ॥ ६८८ ॥
गङ्गातीरे एतस्मिं विहाराध्युषितमालये ।
ततः परेण सुतस्तस्य सोमाख्यस्य च मानवे ॥ ६८९ ॥
मासान्यष्टौ दिवसां पञ्च सावाहे सुनिशात्यन्तु ।
................वैश्यवर्णशिशुस्तदा ॥ ६९० ॥
नागराजसमाह्वयो गौडराजा भविष्यति ।
अन्ते तस्य नृपे तिष्ठं जयाद्यावर्णतद्विशौ ॥ ६९१ ॥
वैश्यैः परिवृता वैश्यं नागाह्वयो समन्ततः ।
दुर्भिक्षोपद्रवास्तेऽपि परचक्रोपद्रुतास्तदा ॥ ६९२ ॥
G 637 तेषां राज्यमसंप्राप्तं महातस्करमाकुलाः ।
ते तं भ्रष्टमर्यादा................ ॥ ६९३ ॥
वर्षा पञ्चकमेकं वै भुङ्क्ते तत्र समाकुलाम् ।
प्राणात्ययं तदा चक्रुः कृत्वा प्राणिवधं बहून् ॥ ६९४ ॥
पूर्वकर्मापराधेन ते जना वैश्यवृत्तयः ।
अन्योन्यक्षोभशीलास्तु भविष्यन्ति तदा अभूत् ॥ ६९५ ॥
प्रभविष्णुस्तदा तेषां क्षत्रवृत्तिसमाश्रितः ।
भविष्यन्ति न संदेहः गौडतन्त्रे नराधिपः ॥ ६९६ ॥
शस्त्रभिन्ना तथा केचित् व्याधिभिश्च समाकुलाः ।
कालं कृत्वा ततो याता नरकेभ्यो नराधिपाः ॥ ६९७ ॥

स्त्रीप्रधानं शिशुस्तत्र पुनरेव नराधिपः ।
पक्षमेकं तथा वै शस्त्रभिन्नो हतस्तदा ॥ ६९८ ॥
महादुर्भिक्षसंपातं परचक्रसमाकुलम् ।
प्राच्या जनपदा व्यस्ता उत्त्रस्ता गतमानसा ।
भविष्यन्ति न संदेहः तस्मिं देशे नराधिपाः ॥ ६९९ ॥
मधुरायां जातवंशाढ्यः वणिक् सूर्वी नृपो वरः ।
सोऽपि पूजितमूर्त्तिस्तु मागधानां नृपो भवेत् ॥ ७०० ॥
तस्याप्यनुजो भकाराख्यः प्राचीं दिशि समाश्रितः ।
तस्यापि सुतः पकाराख्यः प्राग्देशेष्वेव जायत ।
क्षत्रियः अग्रणी प्रोक्तः बालबन्धानुचारिणः ॥ ७०१ ॥
दश वर्षाणि सप्तं च बन्धनस्थमधिष्ठितः ।
गोपाख्येन नृपतिना बद्धो मुक्तोऽसौ भगवाह्वये ॥ ७०२ ॥
पश्चाद्देशसमायातः अकाराख्यो महानृपः ।
प्राचिं दिशिपर्यन्तं गङ्गातीरमतिष्ठत ॥ ७०३ ॥
शूद्रवर्णो महाराजा महासैन्यो महाबलः ।
सो तं तीरं समाश्रित्य तिष्ठते च समन्ततः ॥ ७०४ ॥
पुरीं गौडजने ख्यातं तीर्थाह्वति विश्रुतः । G 638
समाक्रम्य राजासौ तिष्ठते च महाबलः ॥ ७०५ ॥
तत्रौ च क्षत्रियो बालः वणिना च तथागतः ।
रात्रौ प्रविष्टवांस्तत्र रात्र्यन्ते च प्रपूजितः ॥ ७०६ ॥
शूद्रवर्णौ नृपः ख्यातः पुनरेव निवर्तयम् ।
गङ्गातीरपर्यन्तं नगरे नन्दसमाह्वये ॥ ७०७ ॥
मागधानां तदा राज्ये स्थापयामास तं शिशुम् ।
काशिनं पद प्राप्य वाराणस्यमतः पुरे ॥ ७०८ ॥
प्रविशेच्छूद्रवर्णस्तु महीपालो महाबलः ।
महारोगेण दुःखार्तः अभिषेचे स तं तदा ॥ ७०९ ॥
अभिषिच्य तदा राज्यं ग्रहाख्यं बालदारकम् ।
महारोगाभिभूतस्तु भूमावावर्त वै तदा ॥ ७१० ॥
ततोर्ध्वं निःश्वस्य यत्नेन भिन्नदेहोऽपि तीर्यतः ।
तिर्येभ्ये वसं मासां अष्ट सप्तं च वै तदा ॥ ७११ ॥
ततोऽसौ मुक्तजन्मान देवेभ्यो मुपपद्यते ।
विविधां देवसंपत्तिं विंशजन्मानि वै तदा ॥ ७१२ ॥

ततोऽनुपूर्वेण धर्मात्मा प्रत्येकं बोधिमाप्नुयात्।
तेनैवोपार्जितं कर्म पूर्वकालेषु जन्मनि ॥ ७१३ ॥
प्रत्येकबुद्धो महात्मा वै वस्त्रैः समभिच्छादितः।
उपानहं नामयामास हस्त्यश्वरथहेतुना।
भोजनं च तदा तस्य तस्मा दद्युः प्रयत्नधीः ॥ ७१४ ॥
तेन कर्मविपाकेन देवराजा शतक्रतुः।
भविता देवलोकेऽस्मिं त्रिंशत् कोट्यास्तु जन्मतः।
भुविमायात राजासौ भविता इह जन्मनि ॥ ७१५ ॥
परैरुपार्जितं राज्यं अनुभोक्ता भविष्यति,।
तस्यापि च सुतो राजा वाराणस्यां प्रतिष्ठितः ॥ ७१६ ॥
G 639 समान्ताद्धतविध्वस्तविलुप्तराज्यो भविष्यति।
द्विजक्रान्तमभूयिष्ठं तद् राज्यं रिपुभिस्तदा ॥ ७१७ ॥
प्रमादी कामचारी च स राजा ग्रहचिह्नितः।
अपश्चिमे तु काले वै पश्चाच्छत्रुहतो मृतः ॥ ७१८ ॥
मागधो नृपतिस्तेषां अन्योन्यावरोधिनः।
सोमाख्ये नृपते वृत्ते प्राग्देशे समन्ततः ॥ ७१९ ॥
गङ्गातीरपर्यन्तं वाराणस्यामतःपरम्।
भविष्यति तदा राजा पकाराख्यः क्षत्रियस्तदा।
योऽसौ शूद्रवर्णेन अकाराख्येन पूजितः ॥ ७२० ॥
नगरे नन्दसमाख्याते गङ्गातीरें तु समाश्रिते।
भविता क्षत्रियो राजा पूर्वकर्मैस्तु चोदितः।
तेनैव कारितं कर्म कृतं चाप्यनुमोदितम् ॥ ७२१ ॥
अतिक्रान्ते तदा काले कनकाह्वे शास्तुसंभवे।
वाराणस्यां महानगर्यां श्रेष्ठिरासीन्महाधनः ॥ ७२२ ॥
वणिजः स सुतो बालः बालिशैस्तु समावृतः।
पांसुक्रीडनमर्थाय रथ्यायां प्रतिपद्यते ॥ ७२३ ॥
स्वगृहे स्तूपवरं दृष्ट्वा पितामात्राभिपूजितम्।
तदेव मनसा वर्ते स्तूपं कृत्वा तु पांसुना ॥ ७२४ ॥
पूजां च कारयामास निर्माल्यकुसुमैस्तदा।
संस्तवामास तं स्तूपं बुद्धत्वं श्राद्धगतिस्मृतिः ॥ ७२५ ॥
क्रीडते बालस्तत्र शिशुभिः परिवारितः।
जिने कनकशास्तुस्य श्रावकाग्रो तदैककः ॥ ७२६ ॥

वीतदोषस्तु युक्तात्मा त्रैधातुकमुक्तधीः ।
तदासौ वीतदोषस्तु पिण्डपातमहिण्डत ॥ ७२७ ॥
प्रविशते च तदा नगरीं वाराणस्यां सुशोभनाम् ।
वीतरागस्तदादेशं यत्र ते बालिशा भुवि ॥ ७२८ ॥
यत्र ते शैशवः सर्वे समन्तात् परिवारिताः । G 640
एहि भिक्षु इहागच्छ वन्दस्त्वं शास्तु चैत्यकम् ।
अस्माभिः कारितं यत्नात् न त्वं पश्यसि शोभनम् ॥ ७२९ ॥
ततः श्रेष्ठिसुतो बालः गृहीत्वा तृणवर्तितम् ।
क्रीडया बन्धयामास वीतरागं महर्द्धिकम् ॥ ७३० ॥
समन्वाहरति तत्रासौ वीतरागो महर्द्धिकः ।
पश्यते भुवि तत्रस्थं चैत्यं कारितकं हि तैः ।
बालिशं मूर्ध्नि मासृज्य एवं वोच महात्मधीः ॥ ७३१ ॥
मुञ्च दारक गच्छामो यत्र त्वं कारितं कृतिः ।
आगता च ततः सर्वे यत्र धातुधरं भुवि ॥ ७३२ ॥
वन्दित्वा वीतरागा महात्मासौ शिशुभिश्चैतदासमैः ।
पुनरेव प्रस्थितो वीरः पिण्डकार्थं यथेप्सतः ॥ ७३३ ॥
ततः श्रेष्ठिसुतो बालः गृहीत्वा चीवरान्तिकम् ।
स्वगृहं नीतवां ह्यासीद् भोजनार्थं च कारयेत् ॥ ७३४ ॥
ततः श्रेष्ठिमुख्योऽसौ दृष्ट्वा तं बालिशम्ः....।
गृहीत्वा चीवरान्ते तु वीतरागं महर्द्धिकम् ॥ ७३५ ॥
भीतो हृष्टरोमश्च गृहं मे आगतोऽग्रजः ।
पादयोर्निपतितं क्षिप्रं मुञ्चापयति बालकम् ॥ ७३६ ॥
गृहीत्वा तु सुतं तस्य क्षमापयामास यत्नतः ।
पात्रं तु गृहीत्वा वै जिने अग्रजिते हिते ॥ ७३७ ॥
पूरयामास तं पात्रं शालिव्यञ्जनभक्षकैः ।
सुतं चामन्त्रयामास गृह्य मन्त्र प्रयच्छ भोः ॥ ७३८ ॥
ततो बालोऽथ सप्रज्ञो हस्तौ प्रक्षाल्य यत्नतः ।
गृहीत्वा पात्रपूरं तु वीतरागाय नामयेत् ॥ ७३९ ॥
नामयित्वा तु तं क्षिप्रं पादयोर्निपतितो भुवि ।
वीतरागो गृहीत्वा तु... भुक्तवाम् ।
वीतरागो तदा ह्यासीत् सुखसंस्पर्शं च लब्धवाम् ॥ ७४० ॥ G 641

अपरस्तत्र बालो वै मात्सर्याविष्टमानसः।
केवलं रोषचित्तेन वीतरागो परेऽहनि।
प्रभूतं खाद्यभोज्यं च गृहीत्वा तं प्रयच्छत ॥ ७४१ ॥
यद्यस्ति कुशलं किंचित् त्वयि दत्त्वा तु पिण्डकम्।
अनेन श्रेष्ठिसुतस्याहं भविता आढ्यतमो भुवि ॥ ७४२ ॥
ततस्ते तीर्थिकाः सर्वे द्विजातिवनिता तदा।
संनिपत्य तदा सर्वे कलहं निन्दकं कृत्वा ॥ ७४३ ॥
बालिशस्त्वं न जानासि मुण्डकानां कुतो गतिः।
आत्मना अस्थिता ह्येते परेषां कुत्र निर्वृतिः ॥ ७४४ ॥
तस्य बालकसत्त्वस्य द्वेषमुत्पन्नतादृशम्।
नाशयामास एतेषां शास्तारेणोपवर्णिताम् ॥ ७४५ ॥
धर्मसेतुं सदा कीर्तिं विहारां चैत्यवरां भुवि।
श्रेष्ठिमुख्यसुतस्यैव आघातं चैव कारयेत् ॥ ७४६ ॥
एतेषां मुण्डकानां तु दत्त्वा दानं कुतो गतिः।
कुगतिग्रस्तचित्तानां विघातं कारयाम्यहम् ॥ ७४७ ॥
यो सौ वाबतमो बालो सोमाख्योऽपि नृपो ह्यसौ।
अनुभूय चिरं दुःखं विपाकः तस्य नैष्ठिकम् ॥ ७४८ ॥
श्रेष्ठिमुख्यस्य पुत्रोऽसौ भिन्नदेहो दिविं गतः।
अनुभूय चिरं सौख्यं दिवौकसानां तदा तदा ॥ ७४९ ॥
च्युतोऽसौ देवलोकेऽस्मिम्....।
....तदाजन्मे बन्धं सेत्स्यति सर्वदा ॥ ७५० ॥
तृजन्मोपगतो मर्त्यः क्ष्मापतिः भविता पुनः।
पुनश्च पतितः कर्मेण तत्र तत्र तदा तदा ॥ ७५१ ॥
भविता जन्मलोकेऽस्मिं नृपतित्वं कारयेद् भुवि।
निर्माल्यदानं यः स्तूपे निवेद्य सौ बालचापलात् ॥ ७५२ ॥
तेनास्य भोगा क्लिष्टा वै क्लिष्टदानस्य तत् फलम्।
दुःखेन भोगांस्तु प्राप्तस्तु नग्नसंधीव सौ नृपः ॥ ७५३ ॥
G 642 अस्थैर्या बालत्वाच्च चलचित्ततया च सदा।
कुर्वीत महतीं पूजां शास्तुर्धातुवरे भुवि ॥ ७५४ ॥
तेन कर्मविपाकेन राज्यैश्वर्यं चलतां व्रजेत्।
भूत्वा भवति राजा अभूत्वा प्रतिगच्छति ॥ ७५५ ॥

उदीच्यप्रतीच्यमध्यौ सो नृपतित्वं कारयेद् भुवि ।
यो सौ मुक्तधीबन्धः पुनर्मुक्तश्च वालकः ॥ ७५६ ॥
तेन कर्मविपाकेन बद्धो मुक्तश्च वालकः ।
पञ्चजन्मशतानैव बद्धो मुक्तश्च वालकः ॥ ७५७ ॥
अपश्चिमे तु तदा जन्मे वन्धं छेत्स्यति सर्वदा ।
पञ्चपञ्चाशवर्षस्तु सप्तसप्ततिकोऽपि वा ।
प्राचीं समुद्रपर्यन्तां राजासौ भविता भुवि ॥ ७५८ ॥
विन्ध्यकुक्षिनिविष्टास्तु प्रत्यन्तम्लेच्छतस्कराः ।
सर्वे ते वशिवर्ति स्यात् पकाराख्ये नृपतौ भुवि ॥ ७५९ ॥
हिमाद्रिकुक्षिसन्निविष्टा तु उत्तरां दिशिमाश्रिताम् ।
सर्वां जनपदां भुङ्क्ते राजासौ क्षत्रियस्तदा ॥ ७६० ॥
पांसुना कृत्वा स्तूपं अज्ञानाद् वालभावतः ।
मागधेषु भवेत् राजा निःसपत्नमकण्टकः ।
सैमामटवीपर्यन्तां प्राचीसमुद्रमाश्रितः ॥ ७६१ ॥
लौहित्यापरतो धीमां उत्तरे हिमवांस्तथा ।
पश्चात् काशिपुरी रम्यां शृङ्गाख्ये पुर एव वा ॥ ७६२ ॥
अत्रान्तरे महीपालः शास्तुशासनदायकः ।
पञ्चकेसरिनामानौ जित्वा नृपतिनौ सौ ॥ ७६३ ॥
................खं राज्यमकारयत् ।
सर्वांस्तां सिंहजास्तेऽपि ध्वस्तोन्मूलिता तदा ॥ ७६४ ॥
हिमाद्रिकुक्षिप्राच्यां भो दशानूपः तीरमाश्रयेत् ।
सत्वा जनपदां भुङ्क्ते राजासौ क्षत्रियस्तदा ॥ ७६५ ॥
अभिवर्धमानजन्मस्तु भोगास्तस्य च वर्द्धताम् । G 643
वार्धिक्ये च तदा प्रोक्ते भोगां निश्चलनां व्रजेत् ॥ ७६६ ॥
अशीतिवर्षाणि जीवेयुः सप्त सप्त तथा पराम् ।
ततोऽजीर्णाभिभूतस्तु कालं कृत्वा दिविं गतः ॥ ७६७ ॥
देवलोकेऽस्मिं चिरसौख्यमनुभूय तथा नृपः ।
पुनश्च्यति कर्मेण पूर्वसंक्लेशितेन तु ।
तिर्यक्षु न्वसे मासं नागराजमहर्द्धिकः ॥ ७६८ ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु मानुषेभ्योपपद्यते ।
क्षत्रियो धीमतो जातो वणिग्जीवी विशारदः ॥ ७६९ ॥

कल्याणमित्रमागम्य भोक्तासौ जिनशासने ।
साधयेद् विद्याराज्ञीं तारादेविं महर्द्धिकाम् ॥ ७७० ॥
सिद्धमन्त्रस्तु जिनो नासौ यथेष्टगतिचारिणः ।
विद्याधराणां तदा राजा भविता सुगतस्तदा ॥ ७७१ ॥
चक्रवर्तिस्तदा ख्यातो नाम्नासौ चित्रकेतवः ।
विद्याधराणां तदा कर्म ख्यातोऽसौ मतिमांस्तथा ॥ ७७२ ॥
अशीतिवर्षकोट्यानि नवसप्तानि चैतदा ।
दिव्यमानुष्यभावेन भविता चक्रवर्तिनः ।
परिवारस्तस्य कन्यानां षष्टिकोट्यो मजायत ॥ ७७३ ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु तारादेव्यानुचोदितः ।
देवानामधिपतिं गच्छेत् तत्र धर्मं च देशयेत् ॥ ७७४ ॥
सोऽनुपूर्वेण महीपाल क्षिप्रं बोधिपरायणः ।
पकाराख्ये च नृपतौ वृत्ते तदा काले युगाधमे ॥ ७७५ ॥
भिन्नं परस्परं तत्र महाविग्रहमाश्रिताः ।
भृत्यस्तस्य तु सप्ताहं राज्यैश्वर्यमकारयेत् ॥ ७७६ ॥
ततोऽनुपूर्वेण सप्ताहाद् वकाराख्यो नृपतिस्तथा ।
सोऽप्यहतविध्वस्तः प्रक्रमेत दिशास्ततः ॥ ७७७ ॥
G 644 पकाराख्ये नृपतौ तत्र भकाराद्यो मतः परः ।
सोऽपि त्रीणि वर्षाणि राज्यैश्वर्यमकारयेत् ॥ ७७८ ॥
तस्याप्यनुजो वकाराख्यो व्रतिना समधिष्ठितः ।
त्रीणि वर्षाणि एकं च भविता राज्यवर्धन ॥ ७७९ ॥
अजीर्णितौ उभावप्येतौ सद्यातीसारमूर्च्छितौ ।
........कालगतौ लोके यक्षेभ्योपपद्यते ।
तेऽनुपूर्वेण धर्मात्मानो प्रत्येकां बोधिमाप्नुयाम् ॥ ७८० ॥
तस्याप्यनुजो धकाराख्यः क्षत्रियो धर्मवत्सलः ।
भविता सोऽपि राजा वै त्रीणि वर्षाणि............।
भवितासौ नराधिपः........॥ ७८१ ॥
तस्यापि कन्यसो राजा वकाराख्योऽथ विश्रुतः ।
भविता तत्र देशेऽस्मिं सार्वभूमिकभूपतिः ॥ ७८२ ॥
हस्त्यश्वरथयानानि नौयानानि समन्ततः ।
जेता रिपूणां सर्वेषां समरे प्रत्युपस्थिताम् ॥ ७८३ ॥

स इमां जनपदां सर्वां कृत्स्नां चैव वसुंधराम् ।
शास्तु बिम्बैर्विहारैश्च जिनानां धातुधरैस्तथा ।
शोभापयति सर्वां वै कृत्स्नां चैव वसुंधराम् ॥ ७८४ ॥
नृपपूर्वी तथा तस्य द्विजातिः शाक्यजस्तथा ।
मानी तीक्ष्णोऽथ स प्राज्ञः बोधिनिम्नोऽथ मानधीः ॥ ७८५ ॥
सैवास्य सुखायतां याति तस्मिं काले युगाधमे ।
क्षत्रियः अग्रधीः प्रोक्तः राजा वै धर्मवत्सलः ।
जीवेद् वर्षशतं विंशात् सप्त चाष्टं च यत्नतः ॥ ७८६ ॥
स्त्रीकृतेनैव दोषेण कालं कृत्वा दिविं गतः ।
सोऽनुपूर्वेण मेधावी प्राप्नुयाद् बोधिमुत्तमाम् ॥ ७८७ ॥
ततः परेण विख्यातः श्रीनामाथ महीपतिः ।
गौडतन्त्रे महाराजा भविता धर्मवत्सलः ॥ ७८८ ॥
गौडानां च पुरे श्रेष्ठे वकाराद्ये च महाजने । G 645
कारयेत् तत्र राज्यं वै जितशत्रुः समन्ततः ॥ ७८९ ॥
विहारां कारयामास सप्त चाष्टौ च तत्र वै ।
द्विजमुख्या तथा युक्ते शाकजेति समाश्रिते ॥ ७९० ॥
तेन साहाय्यतां याते कुर्याद् राज्यं समन्ततः ।
अशीतिरेकं वर्षाणि जीवेत् तत्र नराधिपः ॥ ७९१ ॥
भृत्यदोषेण धर्मात्मा कालं कृत्वा दिविं गतः ।
अनुपूर्वेण तथा राज्यं देवानामपि कारयेत् ॥ ७९२ ॥
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु स्वर्गात् स्वर्गतमं व्रजेत् ।
परिपूर्य कुशलां धर्मां बोधि ये तस्य हेतवः ॥ ७९३ ॥
तस्यैव भृत्यो राजा वै कुर्याद् राज्यमकण्टकम् ।
नाम्ना यकाराद्यस्तु महीपालो भविष्यति ॥ ७९४ ॥
सप्त चैकं च वर्षाणि कुर्याद्राज्यं तदा युगे ।
सैव घात्यते स्त्रीभिः घातितश्च अधो गतः ॥ ७९५ ॥
पुनः पकारवंशस्तु राजा भवितार्थ क्षत्रियः ।
तेनासौ भृत्यवर्गस्तु घातितोऽसौ निरन्तरः ॥ ७९६ ॥
अकल्याणमित्रमागम्य कृतं प्राणिवधं बहून् ।
भविता सर्वलोकेऽस्मिं प्रतापोर्जितमूर्छितः ॥ ७९७ ॥
क्षिप्रकारी चपलस्तु मद्यपश्च शठप्रियः ।
मद्यप्रमादात् संमूढः तदासौ शयते भुवि ॥ ७९८ ॥

भिन्नोऽसौ शस्त्रघातैस्तु अरिभिश्च समुद्यतैः ।
ततोऽसौ भिन्नदेहस्तु कालं कृत्वा अधोगतः ॥ ७९९ ॥
तस्याप्यन्यतमो भ्राता रकाराद्यो नामतः स्मृतः ।
अष्टचत्वारिंशद्दिवसानि राज्यकर्ता सदा भुवि ॥ ८०० ॥
दत्त्वा द्रविणं द्विजातिभ्यः कालं कुर्यान्न संशयः ।
ततः परेण भूपालः खादाद्यो भविता तदा ॥ ८०१ ॥
G 646 स एव शूद्रवर्णस्तु व्यङ्गः कुत्सित एव तु ।
अधर्मभूयिष्ठो दुःशीलो विग्रहे च सदा रतः ॥ ८०२ ॥
द्विजातिगणसामन्तां संयतां प्रव्रजितांस्तथा ।
स हापयति सर्वां वै निग्रहे च सदा रतः ॥ ८०३ ॥
तीव्रशासनकर्ता च तस्करां घातकस्तथा ।
निषेद्धा सर्वदुष्टानां पाषण्डव्रतमाश्रिताम् ॥ ८०४ ॥
विनिर्मुक्ता च दाता च राज्यं कृत्वा तु वै तदा ।
दशवर्षाणि सप्तं च जीवेद् भूपतिस्तत्र वै ॥ ८०५ ॥
कुष्ठदुःखाभिभूतस्तु कालं कृत्वाथ निर्यत् ।
तिर्यग्भो नागराजस्तु महाभोगी विशारदः ॥ ८०६ ॥
मूर्तिमां परमबीभत्सी स्फुटाटोपी च वै तदा ।
अनुभूय चिरं दुःखं धर्मतस्तस्य नैष्ठिकम् ॥ ८०७ ॥
एवं प्रकाराः कथिता भूपाला लोकवर्धना ।
विदिता सर्वलोकेऽस्मिं प्राच्या च स्थितदेहिनी ॥ ८०८ ॥
पकाराख्यस्य नृपतौ वंशाद् वंशजोऽपरः ।
क्षत्रियः शूरविक्रान्तः त्रिसमुद्राधिपतिस्तदा ॥ ८०९ ॥
भविता प्राच्यदेशेऽस्मिं महाशौन्यो महाबलः ।
शास्तु धातुधरैर्दिव्यैर्विहारादसंघर्गादरैः ॥ ८१० ॥
उद्यानविविधैर्वाप्यैः कूपमण्डपसंक्रमैः ।
सत्रागारैः तथा नित्यं शोभापयति मेदिनीम् ॥ ८११ ॥
भक्तोऽसौ जिनवरां श्रेष्ठां उत्तमं यानमाश्रितः ।
शाक्यप्रव्रजितैनैव स तदा निष्ठितो ह्यसौ ॥ ८१२ ॥
वर्जयेद् दक्षिणां सर्वां दक्षिणां चैव प्रभावयेत् ।
नाम्ना ककारविख्यातः स्मृतिमांश्चैव विशारदः ॥ ८१३ ॥
राज्यं कृत्वा तु भूपालः वर्षाण्येकविंशति ।
ततोऽसौ विषूचिकाभिश्च कालं कृत्वा दिविं गतः ॥ ८१४ ॥

सोऽनुपूर्वेण मेधावी क्षिप्रं बोधिपरायणः ।
तस्यैव शेषवंशास्तु पराधीनायतनवृत्तिनः ॥ ८१५ ॥
ततः परेण भूपाला गोपाला दासजीविनः ।
भविष्यति न संदेहो द्विजातिकृपणा जना ॥ ८१६ ॥
अधर्मिष्ठे तदा काले निर्नष्टे शास्तु शासने ।
मन्त्रवादेन सत्त्वानां कुशलार्थां नियोजयेत् ॥ ८१७ ॥
कुमारेण तु ये प्रोक्ता मन्त्रा भोगवर्धना ।
साधनीया तदा काले राज्यैश्वर्येण हेतुना ॥ ८१८ ॥
न साध्या उत्तमा सिद्धिः तस्मिं देशे तु वै तदा ।
धर्मचक्रे तथा रम्ये महाबोधिवने तथा ॥ ८१९ ॥
यत्रासौ भगवां शान्तिं निरोपधिं च प्रविष्टवां ।
तत्र साध्यौ इमौ मन्त्रौ तारा भृकुटी च देवता ॥ ८२० ॥
समुद्रकूले तथा नित्यं विस्फूर्ज्यां सरितावरे ।
गङ्गातीरे तु सर्वत्र साधनीयाब्जसंभवा ॥ ८२१ ॥
योऽसौ बोधिसत्त्वस्तु चन्द्रनामाथ विश्रुतः ।
स वै तारामिति प्रोक्ता विद्याराज्ञी महर्द्धिका ॥ ८२२ ॥
स्त्रीरूपधारिणी भूत्वा देवी विचेरुः सर्वतो जगतः ।
सत्त्वानां हितकाम्यार्थं करुणार्द्रेण चेतसा ॥ ८२३ ॥
सहां च लोकधातुस्थां तैम्म्याख्यमिति वर्तते ।
महर्द्धिको बोधिसत्त्वस्तु दशभूम्यानन्तरप्रभुः ॥ ८२४ ॥
विनेयः सर्वसत्त्वानां तारा देवी तु कीर्त्यते ।
अयत्नसिद्धिमेवास्य रक्षावरणगुप्तये ॥ ८२५ ॥
यत्नेन साध्यते देवी भोगैश्वर्यविवर्धना ।
बोधिसंभारहेतुं च............॥ ८२६ ॥
अनुबद्धा तदा देवी करुणाविष्टा हि देहिनाम् ।
मन्त्ररूपेण सत्त्वानां बोधिसंभारकारणा ॥ ८२७ ॥
सर्वेषां तुष्टिपुष्ट्यर्थं पूर्वायां दिशिमाश्रितः ।
सहस्रार्धं पुनः कृत्वा आत्मनो बहुधा पुनः ॥ ८२८ ॥
भ्रमते वसुमतीं कृत्स्नां चत्वारोदधिपर्ययाम् ।
पूर्वेण ततः सिद्धिः वाराणस्यां परेण वा ॥ ८२९ ॥
सक्षेत्रस्तत्र देव्या तु पूर्वदेशः प्रकीर्तितः ।
सिध्यते यक्षराट् तत्र जम्भलस्तु महाद्युतिः ॥ ८३० ॥

भोगकामै तदा सत्त्वैः तस्मिं काले युगाधमे ।
यक्षराट् तारादेव्या तु साध्येतौ पुष्टिकामतः ॥ ८३१ ॥
क्रोधनास्तु तथा मन्त्राः साध्यतां दक्षिणापथे ।
म्लेच्छतस्करद्वीपेषु अम्भोधेर्मध्य एव वा ॥ ८३२ ॥
सिध्यते च तदा तारा यक्षराट् चैव महाबलः ।
हरिकेले कर्मरङ्गे च कामरूपे कलशाह्वये ॥ ८३३ ॥
विविधा दूतिगणाः सर्वे यक्षिण्यश्च महर्द्धिकाः ।
मञ्जुघोषेण ये गीता मन्त्रा भोगहेतवः ।
तत्र देशे यथा सिद्धिः नान्यस्थानेषु तथा भवेत् ॥ ८३४ ॥
पूर्वं दिशि विदिक्षुश्च मन्त्रा विविधहेतवः ।
कथितास्तु तदा काले साधनीयास्तु देहिभिः ॥ ८३५ ॥
मध्यदेशे तथा मन्त्री भूपाला विविधास्तथा ।
विस्तरां सत्त्वदौर्बल्यां अल्पबुद्धिं निबोधताम् ।
संक्षेपो नृपतिमुख्यानां संख्या तेषां निगद्यते ॥ ८३६ ॥
मकाराद्यो नकाराद्यः पकाराद्यश्च कीर्त्यते ।
दकाराद्यश्च इकाराद्यः सकाराद्यश्च अकाराद्य ॥ ८३७ ॥
ग्रहाख्यश्च कीर्त्याख्यः हकाराद्यश्च घुष्यते ।
............शकाराद्यश्च भवेत् तदा ॥ ८३८ ॥
जकाराद्यो बकाराद्यो लकाराद्यः सोमचिह्नितः ।
हकाराद्यश्चैव प्रख्यातः अकाराद्य पुनस्तथा ॥ ८३९ ॥
G 649 सकारो लकाराद्यश्च त्र्याख्यया लोकविद्विषः ।
सकाराद्यो मकाराख्यः लोकानां प्रभविष्णवः ॥ ८४० ॥
क्रमतः कृमिनः चिह्नः ब्राह्मणाश्च वैश्यवृत्तयः ।
अधर्मकर्मभूयिष्ठाः विद्विष्टाः स्त्रीषु लोलुपाः ॥ ८४१ ॥
प्रभूतपरिवारा महीपालास्तस्मिं काले युगाधमे ।
भविष्यन्ति न संदेहः मध्यदेशे नराधिपाः ॥ ८४२ ॥
विंशद् वर्षाणि शतं चैव आयुरेषा युगाधमे ।
मनुष्याणां तदा काले दीर्घमायुरिति कीर्त्यते ॥ ८४३ ॥
तेषां मध्योत्कृष्टानां अन्तरा उच्चनीचता ।
अल्पायुषो नृपतयः सर्वे कथिता तु तदा युगे ॥ ८४४ ॥
नदी गङ्गा तथा तीरे हिमाद्रेश्च नितम्बयोः ।
कामरूपे तथा देशे भविष्यन्ति तथा नृपाः ॥ ८४५ ॥

आद्ये मध्ये तयान्ते च अङ्गदेशेषु कथ्यते ।
आद्यं वृत्सुधानश्च कर्मराजा स कीर्तितः ॥ ८४६ ॥
अन्तेऽङ्गपतिः तदङ्गं च सुभूतिर्भूतिरेव च ।
सदहो भवदश्च कामरूपे अजातयः ॥ ८४७ ॥
सुभूमृगकुमारान्ता वैशाल्यां वकारयोः ।
तत्रासौ मुनिर्जातः कपिलाह्वे पुरोत्तमे ॥ ८४८ ॥
शुद्धान्ता शाक्यजाः प्रोक्ता नृपा आदित्येक्षसंभवा ।
शुद्धोदनान्तविख्याता शाक्यं शाक्यवर्धनाम् ॥ ८४९ ॥
अल्पवीर्यास्तु मन्त्रा वै कथिता लोकपुंगवैः ।
जिनप्रोक्तास्तु ये मन्त्राः सर्वचेटगणास्तथा ॥ ८५० ॥
तथा विविधा इति गणाः सर्वे वज्राब्जकुलयोरपि ।
साध्यमानास्तु सिध्यन्ते मन्त्रतन्त्रार्थकोविदैः ॥ ८५१ ॥
सर्वे ते लौकिका मन्त्राः सिध्यन्तेऽत्र मध्यतः ।
विशेषतो मध्यदेशस्थाः साधनीया जिनभाषिता ॥ ८५२ ॥
विविधाकारचिह्नैस्तु विविधाकारकारणैः । G 650
विविधप्रयोगप्रयुक्तास्तु विविधा सिद्धिर्देहिनाम् ॥ ८५३ ॥
मध्यदेशे तथा मन्त्राः साध्या वै भोगवर्धनाः ।
रक्षाहेतुपरित्राणं वश्याकर्षणदेहिनाम् ॥ ८५४ ॥
अनीतानागता प्रोक्ताः मध्यदेशे नराधिपाः ।
विविधाकारचिह्नैस्तु विविधायुष्यगोत्रतः ॥ ८५५ ॥
सर्वे नरपतयः प्रोक्ता उत्तमाधममध्यमाः ।
त्रिप्रकारा तथा सिद्धिः त्रिधा कालेषु योजयेत् ॥ ८५६ ॥
त्रिविधास्तु तथा मन्त्राः कथिता मुनिवरैस्तथा ।
अनन्ता नृपतयः प्रोक्ता मध्यदेशेऽथ पश्चिमे ॥ ८५७ ॥
उत्तरापरपूर्वैस्तु विदिक्षु सर्वतस्तथा ।
द्वीपेषु बहिः सर्वेषु चतुर्धा परिचिह्नितैः ॥ ८५८ ॥
अनन्ता महीपतयः प्रोक्ता अनन्ता मन्त्रसाधनाः ।
अनन्तां दिशमाश्रित्य अनन्ता मन्त्रसिद्धयः ॥ ८५९ ॥
निग्रहानुग्रहार्थाय शासनेऽन्तर्हिते मुनेः ।
मन्त्रा नृपतिषु काले वै मञ्जुघोषेण भाषिता ॥ ८६० ॥
क्रीडारक्षविकुर्वार्थं कालचर्या तु कथ्यते ।
मन्त्रमाहात्म्यसत्त्वानां गतियोनिनृपाह्वये ॥ ८६१ ॥

देशकालसमाख्यातः मन्त्रसाधनलिप्सुनाम् ।
प्रसङ्गा नृपतयः कथिताः शासनान्तर्धिते पथे ॥ ८६२ ॥
मन्त्राणां गुणमाहात्म्यं फलमन्ते च बोधितः ।
कथिता द्वे परे याने नृपा पूर्वनिबोधिताः ॥ ८६३ ॥
प्रतिष्ठितास्तु न संदेहः तस्मि काले युगाधमे ।
कथिता नृपतयः सर्वे ये तु दिशमाश्रिताः ॥ ८६४ ॥
प्रव्रज्यां ध्रुवमास्थाय शाक्यप्रवचने तदा ।
शासनार्थं करिष्यन्ति मन्त्रवादसदारताः ॥ ८६५ ॥
G 651 अस्तंगते मुनिवरे लोकैकाग्रसुचक्षुषे ।
तेषां कुमार वक्ष्यामि शृणुष्वैकमनास्तदा ॥ ८६६ ॥
युगान्ते चष्ट लोके शास्तु प्रवचने भुवि ।
भविष्यन्ति न संदेहो मतभो राज्यवृत्तिनः ॥ ८६७ ॥
तद्यथा मातृचीनाख्य कुसुमाराख्यश्च विश्रुतः ।
मकाराख्ये कुकाराख्यः अत्यन्तो धर्मवत्सलः ॥ ८६८ ॥
नागाह्वश्च समाख्यातो रत्नसंभवनामतः ।
गकाराख्यः कुमाराख्यः वकाराख्यो धर्मचिन्तकः ॥ ८६९ ॥
अकाराख्यो महात्मासौ शास्तुशासनदुर्धरः ।
गुणसंमतो मतिमां लकाराख्यः प्रकीर्तितः ॥ ८७० ॥
रकाराद्यो............नकाराद्यः प्रकीर्तितः ।
बुद्धपक्षस्य नृपतौ शास्तुशासनदीपकः ॥ ८७१ ॥
अकाराख्यो यतिः ख्यातो द्विजः प्रव्रजितस्तथा ।
साकेतपुरवास्तव्यः आयुषाशीतिकस्तथा ॥ ८७२ ॥
अकाराद्यस्तथा भिक्षुः रागी सौ दक्षिणां दिशि ।
षष्टिवर्षायुषो धीमान् काव्याख्यपुरवासिनः ॥ ८७३ ॥
थकाराद्यो यतिश्चैव विख्यातो दक्षिणां दिशि ।
परप्रवादिनिषेद्धा च मन्त्रसिद्धिस्तथा यतिः ॥ ८७४ ॥
अपरः प्रव्रजितः श्रेष्ठः सैंहिकापुरवास्तवी ।
अनार्या आर्यसंज्ञी च सिंहलद्वीपवासिनः ॥ ८७५ ॥
परप्रवादिनिषेद्धासौ तीर्थ्याना मतदूषकः ।
भविष्यन्ति युगान्ते वै तस्मि कालेऽथ भैरवे ॥ ८७६ ॥
वकाराद्यो यतिः प्रोक्तो लकाराद्यश्च कीर्तितः ।
रकाराद्यो विकाराद्यः भिक्षुः प्रव्रजितस्तथा ॥ ८७७ ॥

भविष्यति न संदेहः शास्तुशासनतत्परः ।
बालार्कौ नृपतौ ख्याते सकाराद्यो यतिस्तथा ॥ ८७८ ॥
विहारारामचैत्यांश्च वाप्यकूपांश्च सर्वदा । G 652
शास्तुबिंबां तथा चिह्नां सेतुं संक्रमाश्च वै ॥ ८७९ ॥
भविष्यति न संदेहः शास्तुभिन्नार्ध्वगः स्मृतः ।
ततः पेरण मकाराद्यः ककाराद्यश्च कीर्तितः ॥ ८८० ॥
नकाराद्यः सुदत्तश्च सुषेणः सेनकीर्तितः ।
दत्तको दिनकश्चैव परसिद्धान्तदूषकः ॥ ८८१ ॥
वणिक्पूर्वी वैद्यपूर्वी च उभौ दीनार्थचिन्तकौ ।
चकाराद्यो यतिः ख्यातः रकाराद्यमतः परे ॥ ८८२ ॥
भकाराद्यः प्रथितश्राद्धः शास्तुबिम्बार्थकारकः ।
मकाराद्यो मतिमान् जातो यतिः श्राद्धस्तथैव च ॥ ८८३ ॥
विविधा यतयः प्रोक्ता अनन्ताश्च भविता तदा ।
सर्वे ते यतयः ख्याता शास्तुशासनदीपकाः ॥ ८८४ ॥
निर्नष्टे च निरालोके शासनेऽस्मिं तदा भुवि ।
करिष्यति न संदेहः शास्तुबिम्बां मनोरमाम् ॥ ८८५ ॥
सर्वे वै व्याकृता बोधो अग्रप्राप्ताश्च मे सदा ।
दक्षिणीयास्तथा लोके त्रिभवान्तकरास्तथा ॥ ८८६ ॥
मन्त्रतन्त्राभियोगेन ख्याताः कीर्तिकराः स्मृताः ।
अधुना तु प्रवक्ष्यामि द्विजानां धर्मशीलिनाम् ॥ ८८७ ॥
मन्त्रतन्त्राभियोगेन राज्यवृत्तिमुपाश्रिता ।
भवति सर्वलोकेऽस्मिं तस्मिं काले सुदारुणे ॥ ८८८ ॥
वकाराख्यो द्विजः श्रेष्ठ आढ्यो वेदपारगः ।
सेमां वसुमतीं कृत्स्नां विचेरुर्वादकारणात् ॥ ८८९ ॥
त्रिसमुद्रमहापर्यन्तं परतीर्थानां विग्रहे रतः ।
षडक्षरमन्त्रजापी तु अभिमुख्यो हि वाक्यतः ॥ ८९० ॥
कुमारो गीतवां ह्यासीत् सत्त्वानां हितकाम्यया ।
एतस्यै कल्पविसरान्महितं बुद्धितन्द्रितः ॥ ८९१ ॥ G 653
जयः सुजयश्चैव कीर्तिमान् शुभमतः परः ।
कुलीनो धार्मिकश्चैव उद्यतः साधु माधवः ॥ ८९२ ॥
मधुः समधुश्चैव सिद्धः ....नमस्तदा ।
रघवः शूद्रवर्णस्तु शकजातास्तथापरे ॥ ८९३ ॥

तेऽपि जापिनः सर्वे कुमारस्येह वाक्यतः ।
ते चापि साधकाः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ ८९४ ॥
आमुखा मन्त्रिभिस्ते च राज्यवृत्तिसमाश्रिताः ।
तस्यापरेण विख्यातः विकाराख्यो द्विजस्तथा ॥ ८९५ ॥
परे पुष्पसमाख्याता भवितासौ क्रोधसिद्धकः ।
निग्रहं नृपतिषु चक्रे दरिद्रात् परिभवाच्च वै ॥ ८९६ ॥
मञ्जुघोष इह प्रोक्तः क्रोधराट् स यमान्तकः ।
सत्त्वानामथ दुष्टानां दुर्दान्तदमकोऽथ वै ॥ ८९७ ॥
अहितान्निवारणार्थाय हितार्थायोपबृंहने ।
अनुग्रहार्थैव सत्त्वानां तनुप्राणोपरोधिने ॥ ८९८ ॥
सो हि माणवको मूढः दरिद्रः क्रोधलोभितः ।
आवर्तयामास तं क्रोधं नृपतेः प्राणोपरोधिनः ॥ ८९९ ॥
तस्यापरेण विख्यातः सकाराद्यो द्विजस्तथा ।
मन्त्रार्थकुशलो युक्तात्मा................॥ ९०० ॥
प्रभुः बहुतरः ख्यातो मन्त्रजापी भवेत् तदा ।
साधयामास तं मन्त्रं वैवश्यार्थं नान्यकारणम् ॥ ९०१ ॥
वशीभूतेषु भूतेषु धनमन्तो भवति ततः ।
ततः परेण वै ख्यातो द्विजो धर्मार्थचिन्तकः ॥ ९०२ ॥
शकाराद्यो मत अन्ते भवितासौ मालवे जने ।
प्रसन्ने शासने ह्यग्रो मन्त्रजापी हि वै भुवि ॥ ९०३ ॥
वेतालग्रहदुष्टां च ब्रह्मराक्षसराक्षसाम् ।
सर्वपूतनभूतांश्च क्रव्यादां विविधांस्तथा ॥ ९०४ ॥
सर्वे ते वशिनस्तस्य विषाः स्थावरजङ्गमाः ।
G 654 सर्वे वै वशिनस्तस्य द्विजचिह्नस्य तथाहितैः ॥ ९०५ ॥
ततः परेण विख्यातः द्विजो दक्षिणापथे ।
वकाराद्यः समाख्यातः शास्तुशासनतत्परः ॥ ९०६ ॥
विहारारामचैत्यैस्तु शास्तुबिम्बे मनोरमे ।
अलंकरोति सर्वां वै मेदिनीं द्विसमुद्रगाम् ॥ ९०७ ॥
तस्यापरेण विख्यातः द्विजश्रेष्ठो महाधनः ।
भकाराद्यस्तथा ख्यातो दक्षिणां दिशिमाश्रितः ॥ ९०८ ॥
मन्त्ररूपी महात्मा वै नियतं बोधिपरायणः ।
मध्यदेशे तथा ख्यातं संपूर्णो नामतो द्विजः ॥ ९०९ ॥

विनयः सुविनयश्चैव पूर्णो मधुरवासिनः ।
भकाराद्यो धनाध्यक्षो नृपतीनां मन्त्रपूजकः ॥ ९१० ॥
इत्येते द्विजातयः कथिताः शास्तुशासनपूजकाः ।
मध्यान्त आदिमुख्याश्च विविधायतनगोत्रजाः ॥ ९११ ॥
नानादेशद्विजातीनां पूजका ते परिद्विजाः ।
नानातीर्थाश्च गोत्राश्च विविधाचारगोचराः ॥ ९१२ ॥
समन्ताद्यतयः प्रोक्ता मानवाश्च बहुश्रुताः ।
धर्मराजः स्वयं बुद्धः सर्वसत्त्वार्थसाधकः ॥ ९१३ ॥
सर्वेषां चैव भूतानां तृदेवानां च कीर्तिताः ।
चत्वारोऽपि महाराजाः सर्वलोकेषु कीर्तिताः ॥ ९१४ ॥
विरूढो विरूपाक्षश्च धृतराष्ट्रोऽथ यक्षराट् ।
शक्रश्च अथ देवानां नियतायुः प्रकीर्तितः ॥ ९१५ ॥
सुयामा देवपुत्रश्च सुनिर्मितो वशवर्तिनः ।
राजा संतुषितः प्रोक्तः कामधात्वीश्वरोऽपरः ॥ ९१६ ॥
शक्राद्य एकनाम्नास्तु कामधात्वीश्वरास्तथा ।
एकाश्रया सदा तेऽपि एकजापा महर्द्धिका ॥ ९१७ ॥
अनन्ताः कथितास्तेऽपि नानारूपधरा सुराः । G 655
अतः ऊर्ध्वं समाः सर्वे तेऽपि महर्द्धिकाः ॥ ९१८ ॥
एवं संज्ञा सुरश्रेष्ठाः आ संज्ञाताः प्रकीर्तिताः ।
न तेषां प्रभविष्णु स्यात् तुल्यवृत्तिसमाश्रया ॥ ९१९ ॥
अतः अवीचिपर्यन्तं न राजा तत्र विद्यते ।
नरकाष्टौ षोडशोत्सिद्धौ सपर्यन्ता तेऽपि कीर्तिता ॥ ९२० ॥
अनृपाः कर्मराजानः यमराजा प्रेतानां विभुः ।
सुवर्णः पक्षिणां राजा गरुत्मा स महर्द्धिकः ॥ ९२१ ॥
किन्नराणां द्रुमो ख्यातः भूतानां रुद्र उच्यते ।
विद्याधराणां नृपो विद्या चित्रकेतुर्महर्द्धिकः ॥ ९२२ ॥
असुराणां तथा हैतौ वेमचित्रियोत्तमः ।
ऋषीणां व्यास इत्युक्तः सिद्धानां च महारथः ॥ ९२३ ॥
नक्षत्राणां सोम निर्दिष्टः ग्रहाणां भास्करस्तथा ।
मातराणां तथा राजा ईशानमभिकीर्तितः ॥ ९२४ ॥
दिवसानां प्रतिमः प्रोक्तः राशीनां कन्य उच्यते ।
सरितां सागरः प्रोक्तः मेघानां तु सुपुष्करः ॥ ९२५ ॥

ऐरावतो हस्तीनामश्वानां हरिवरस्तथा ।
तिर्यराजाथ सर्वत्र प्रह्लादः परिकीर्तितः ॥ ९२६ ॥
अनन्ता गतयः प्रोक्ता राजानश्च अनन्तका ।
समन्तात् सर्वतस्तेषु बुद्धो लोके नरोत्तमः ॥ ९२७ ॥
उत्तमां कुरुमाद्यः प्रभविष्णुस्तेषु न विद्यते ।
दीपेष्वेव परे तेषु पूर्वापरयतस्तथा ॥ ९२८ ॥
जम्बूद्वीपनिवासिस्यां पूर्वायां स नराधिपाः ।
अनन्ता च क्रिया प्रोक्ता चतुर्द्वीपा सनराधिपा ॥ ९२९ ॥
संक्षेपात्कथिता ह्येते कथ्यमानातिविस्तरा ।
प्रभूता भूतपतयो मुर्व्यां त्रिदेवासुरजन्मिनाम् ॥ ९३० ॥
G 656 अनन्तलोकधातुस्था अनन्ता गुणविस्तरा ।
अनन्ता कथिता ह्यत्र कल्पेऽस्मिं भूनिवासिनः ॥ ९३१ ॥
कथिता मन्त्रसिद्ध्यर्थे देशकालसमाश्रयात् ।
सिध्यन्ते मन्त्रराजानो विविधा दूतगणास्तथा ॥ ९३२ ॥
एष धर्मः समासेन कथितो मुनिपुंगवैः ।
अधुना कथितं ह्येतत् शुद्धावासोपरिस्थितैः ॥ ९३३ ॥
मञ्जुश्रियो महावीरः पप्रच्छ लोकनायकम् ।
य एष कथितो कर्म कथं चैनं धारयाम्यहम् ॥ ९३४ ॥

पेयालं विस्तरेण कर्तव्यम् । सर्वेषां नृपतीनां कर्म स्वकं जातकं महापरिनिर्वाणसूत्रं मञ्जुश्रियस्य कुमारस्य मुनिश्रेष्ठ ।

अभाषत बोधिसत्त्वार्थे मन्त्राणां च सविस्तराम् ।
बोधिमार्गार्थबोध्यर्थं धर्मसूत्र इति स्मृतः ॥ ९३५ ॥
विसरं कल्पमन्त्राणां कर्म आयूंषि भूनृणाम् ।
नृपतीनां तथा कालमायुषे परिकीर्तनम् ॥ ९३६ ॥
धर्मसंग्रहणं नाम पिटकं बोधिपरायणम् ।
मन्त्रतन्त्राभियोगेन कथितं बोधिनिम्नगम् ।
धारयेस्त्वं सदा प्राज्ञः मन्त्रतन्त्रार्थपूरकम् ॥ ९३७ ॥ इति ॥

आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकान्महायानवैपुल्यसूत्रात्
पटलविसरात् एकपञ्चाशः राजव्याकरणपरिवर्तः
परिसमाप्त इति ॥



५४ अनुशंसाविगर्हणप्रभावपटलविसरः । G 657

अथ भगवां शाक्यमुनिः पुनरपि शुद्धावासभवनमवलोक्य मञ्जुश्रियं कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—अयं मञ्जुश्रीः धर्मपर्यायः अस्मिं स्थाने प्रचरिष्यति । तत्राहं स्वयमेवं वेदितव्यः । सर्वबोधिसत्त्वगणपरिवृतः श्रावकसंघपुरस्कृतः सर्वदेवनागयक्षगरुडगन्धर्वकिन्नरमहोरगसिद्धविद्याधरः मानुषामानुषैः परिवृतो विहरेऽहं वेदितव्यः । तथागतोऽत्र रक्षावरणगुप्तये तिष्ठतीति । दशानुशंसा मञ्जुश्रीः कुमार वेदितव्यः । यत्र स्थानोऽयं धर्मकोशस्तथागतानां पुस्तकगतो वा लिख्यति वाचयिष्यति धारयिष्यति सत्कृत्य मनसिकृत्य विविधैश्चाभरणपूर्णच्छत्रध्वजपताकाघण्टाभिर्वाद्यमाल्यविलेपनैर्धूपगन्धैश्च सुगन्धिभिः पूजयिष्यति मानयिष्यति सत्करिष्यति एकाग्रमनसो वा चित्तं धत्से । कतमे दश ? न चास्य परचक्रभयं दुर्भिक्षो वा । न चास्य तत्र महामार्योपद्रवं भवति, अमानुषभयो वा । न चास्याग्निभयं भवति सर्वप्रत्यर्थिकभयो वा । न चास्य तत्रानावृष्टिभयं भवति अतिवृष्टिभयो वा । न चास्य तत्र महावातमण्डलीभयं भवति सर्वक्रव्यादभयो वा । न चास्य शत्रुभयं भवति सर्वधूर्ततस्करभयो वा । न चास्य मृत्युभयं भवति यमराजोपनीतभयं वा । न चास्यासुरभयं वा भवति सर्वदेवनागयक्षगन्धर्वासुरभयो वा । न चास्य मन्त्रभयं भवति सर्वगरविषभयं वा । न चास्य रोगभयं भवति ज्वरातीसारजीर्णाङ्गप्रत्यङ्गभयो वा । इमे दशानुशंसा वेदितव्या, यत्रायं महाकल्पविसरे धर्मकोशस्तथागतानां पुस्तकगतो तिष्ठेत, लिखनवाचनपूजनधारणस्वाध्यायानां वा कुर्मः । गुह्यतमोऽयं धर्मकोशस्तथागतानां मन्त्रानुवर्तनतया पुनरेषां सर्वतः आचार्यसमयानुप्रविष्टानाम् । असमयज्ञानां न प्रकाशितव्यः । यत् कारणं रहस्यमेतत् । गुह्यवचनमेतत् । सर्वज्ञवचनमेतत् । मा हैव सत्त्वा प्रतिक्षेप्स्यन्ते, अवज्ञास्यन्ति, न पूजयिष्यन्ति, न सत्करिष्यन्ति, महदपुण्यं प्रसविष्यन्ते, गुह्यनिवरण—सत्त्वोपघातननृपतिसूचन—आयुःप्रमाणोपघातोपसर्गिकक्रियां करि- G 678 ष्यन्तीति न परेषामारोचयितव्यं च । समयरहस्यगुह्यमन्त्रचर्यानुप्रविष्टानां सत्त्वानां तथागतशासनशिक्षाया सुशिक्षितानां सुव्यवस्थितानां धर्मार्थकोविदानामायतनधातुसमयानुप्रवेशधर्मस्थितानां सत्यसन्धानां दृढव्रतमन्वागतानां सत्त्वचर्यामार्गानुप्रविष्टकारुणिकानामेतेषां सत्त्वानामारोचयितव्यम् न परेषामिति ॥

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्व उत्थायासनादेकांशमुत्तरासङ्गं कृत्वा, दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य, कृतकरतलाञ्जलिपुटो भगवन्तमेतदवोचत्—को नामायं भगवन् धर्मपर्यायः, कथं चैनं धारयाम्यहम् ? भगवानाह—सर्वबोधिसत्त्वविस्फूर्जनबोधिसत्त्वपिटक इत्यपि धारय । आश्चर्याद्भुतधर्मोपदेशपरिवर्त इत्यपि धारय । सर्वमन्त्रकोशचर्यानुप्रविष्टबोधिसत्त्वनिर्देश इत्यपि धारय । महायानवैपुल्यनिर्देशाद्भुत इत्यपि धारय । आर्यमञ्जुश्रियमूलकल्प इत्यपिं धारय । सर्वधर्मार्थपूरणनिर्देश इत्यपि धारय इति ॥

सर्वलोकां समग्रां वै धर्माधर्मविचारकम् ।
विचेरुः सर्वतो यस्त्वं बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः ॥ १ ॥

न पश्यसे परं गुह्यमेतं धर्मवरं वरम्।
मन्त्रतन्त्रार्थसूत्राणां गतिदेशनिरत्ययम्॥ २॥
न पश्यसे वरं वीर धर्मबोधिपरायणम्।
यादृशोऽयं गुह्यसूत्रं........नेयार्थभूषितम्॥ ३॥
विविधाकारसूत्रार्थाः मन्त्रतन्त्रानुवर्तनम्।
न भूतं विद्यते कश्चिद् यः कल्पविसरादिह॥ ४॥
महाराज्ञां महाभोगां संपदांश्च दिवौकसाम्।
प्राप्नुयात् पुष्कलां कीर्तिं दिव्यां मानुषिकां तथा॥ ५॥
अक्षणां वर्जयेदष्टां क्षणांश्चैव संभावयेत्।
बुद्धत्वं नियतं तस्य त्रिधा जनगतिस्तथा॥ ६॥
इदं सूत्रं धारणात् पुण्यं अनुशंसा स्यादिमे तथा।
न चास्य सर्वकाये वै न विषं न हुताशनम्॥ ७॥
G 609 न वेताडा ग्रहाश्चैव न पूतना मातरा हि ये।
तेन चोरराक्षसा................॥ ८॥
पिशाचा वास्य हिंस्येयुः यस्य सूत्रमिमं पठेत्।
धारयेद्वापि पूजयेद् वा न पुनः पुनः विविधा॥ ९॥
वाद्य पूज्य पूज इष्ठु पूजयेद् वा विशारदः।
स इमां लभते मर्त्यो मनुशंसामिहोदिता॥ १०॥
आतुरो मुच्यते रोगान् दुःखितो सुखितो भवेत्।
दरिद्रो लभते अर्थान् बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ ११॥
पतितः संसारदुःखेऽस्मिन् गतिं पञ्चकयोजितम्।
क्षेमं शिवं च निर्वाणं प्राप्नुयादचलं पदम्॥ १२॥
प्रत्येकबोधिबुद्धत्वं श्रावकत्वं च नैष्ठिकम्।
इदं सूत्रं वाचयित्वा लभते बुद्धवर्तिताम्॥ १३॥
गङ्गासिकताप्रख्यानामनन्तं जिनवरास्तथा।
पूजित्वा लभते पुण्यं तत्सर्वमिदं सूत्रपठनादिह॥ १४॥
यावन्ति केचिल्लोकेऽस्मिन् क्षेत्रकोटिमचिन्तकाः।
तावन्तु परमाण्वाख्यां बुद्धानां पूजयेत् सदा॥ १५॥
विविधा अन्नपानैश्च ग्लानप्रत्ययभेषजैः।
विविधासनशय्यासु दद्युः सर्वतः सदा॥ १६॥
चीवरैर्विविधैश्चापि चूर्णचीवरभूषणैः।
छत्रोपानहपटैः सुगन्धमाल्यविलेपनैः॥ १७॥

धूपनं विविधैर्वापि दीपैश्चापि समन्ततः ।
तत् पुण्यं प्राप्नुयाज्जन्तुर्धारणाद् वाचनादिदम् ॥ १८ ॥
प्रत्येकबुद्धजे लोके श्रावका सुमहर्द्धिकः ।
बोधिसत्त्वा महात्मानो दशभूमिस्थिता पराः ॥ १९ ॥
तत्प्रमाणाद् भवेत् सर्वे तेषां पूजां तथैव च ।
तत् पुण्यं प्राप्नुयान्मर्त्य यस्य पुस्तकगतं करे ॥ २० ॥
यावन्ति लोके कथिता लोकधातुसमाश्रिता । G 660
सर्वसत्त्वा समाख्यातास्ते सर्वे विगतज्वराः ॥ २१ ॥
तेषां च पूजा सत्कृत्य कश्चिज्जन्तु पुनः पुनः ।
तत् पुण्यं प्राप्नुयाद्धीमां पूजेत्वा धर्मपरमिमम् ॥ २२ ॥
न शक्यं कल्पकोट्यैस्ते रत्नै जिनवरैः सदा ।
पूजये लोकनाथानां धर्मकोश इमं वरम् ॥ २३ ॥
चिन्तामणि च रत्नार्थमिमं धर्मवरं भवेत् ।
पठनाद् धारणान्मन्त्रा कल्पेऽस्मिन् मञ्जुभाणिते ॥ २४ ॥
भवेत् कामदुहं तस्य महाभोगार्थ संपदः ।
अखिन्नमनसो भूत्वा यो इमां साधयेत् भुवि ॥ २५ ॥
मन्त्रान् तत्त्वार्थनेयार्थं सफला मुनिभाषिता ।
कृयाकालसमायोगात् साधयेद् विद्याधरां भुवि ॥ २६ ॥
तस्य सर्वदिशा ख्याता प्रपूर्णा रत्नसंपदः ।
सफला गतिमाहात्म्या वर्णिता साधुवर्णिता ॥ २७ ॥
योऽस्मात् कल्प वरादेकं मन्त्रं धारये नृप ।
सफला राजसंपत्ति दीर्घमायुष्यसंपदाम् ॥ २८ ॥
विविधा भोगचर्या वा प्राप्नुयां नृपवरो पराम् ।
न चास्य हन्यते शस्त्रैर्न विषैः स्थावरजङ्गमैः ॥ २९ ॥
परविद्यकृतैश्चापि मन्त्रं वेतालसाधनम् ।
दूषितैर्वसुधालोके परकृत्यपरायणे ॥ ३० ॥
न हुताशनभयं तस्य ना वैरग्रहापरैः ।
कायं न हन्यते तस्य नृपतेर्वा जन्तुनोऽपि वा ॥ ३१ ॥
य इमं सूत्रवराग्रं तु धारयेद् वाचयेत् तथा ।
राजा च कृतया मूर्ध्ना संग्रामे समुपस्थिते ॥ ३२ ॥
छत्रं शिरसि मावेद्य नमस्कुर्यात् पुनः पुनः ।
न तस्य दस्यवो हन्युर्नानाशस्त्रसमुद्यताम् ॥ ३३ ॥

G 661 हस्तिस्कन्धसमारूढं कुमाराकारसंभवम्।
मयूरासनसुस्तं संग्रामे अवतारयेत् ॥ ३४ ॥
दृष्ट्वा तं विद्विषः सर्वे निवर्तन्तेयुस्ते परे जनाः।
बालरूपं तथा दिव्यकुमारालङ्कारभूषितम् ॥ ३५ ॥
सौवर्णं राजतं वापि रागत्यध्वजपूजितम्।
आरोप्य ध्वजपताकेषु सुन्यस्तं सुसमाहितम् ॥ ३६ ॥
संग्रामं रिपुसंकीर्णं नानाशस्त्रसमुद्यतम्।
युधिप्राप्तं समस्तं वै तस्मिं कालेऽवतारयेत् ॥ ३७ ॥
नश्यन्ते दृष्टमात्रं वै मुह्यन्ते वा समन्ततः।
मानुषामानुषाश्चापि नृपाश्चापि सुरेश्वराः ॥ ३८ ॥
सिद्धविद्याधराश्चापि मन्त्रतन्त्रसमाश्रिताः।
राक्षसाः सत्त्ववन्तोऽपि कटपूतनामातरा ॥ ३९ ॥
क्रव्यादा विविधाश्चापि यक्षकूष्माण्डपूतना।
न शक्यन्ते दृष्टमात्रं वै ध्वजमुच्छ्रितसंस्थितम् ॥ ४० ॥
कुमारं विश्वकर्माणमनेकाकाररूपिणम्।
मञ्जुघोषं महात्मानं दशभूम्याधिपतिं पतिम् ॥ ४१ ॥
महाराजा क्षत्रियो लोके भूपालो भूनिवासिनः।
श्राद्धो विमतिसन्देहः विगतो धर्मवत्सलः ॥ ४२ ॥
उत्पाद्य सौगतीं शुद्धां करुणाविष्टमानसाम्।
प्रक्रमुः संधकामो वै क्रियामेतामिहोदिताम् ॥ ४३ ॥
निर्दिष्टं प्रवचने ह्येता धर्मधातुगतैर्जिनैः।
कल्पं प्रयोगं मन्त्राणां तन्त्रयुक्तिमभूतले ॥ ४४ ॥
असंख्यैर्जिनवरैः पूर्वं धर्मधातुसमाश्रितैः।
कथितं धर्मकोशं तु मानुषा तु भूतले ॥ ४५ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे वर्तमाने भयावहे।
तदा पुरो ह्यासीत् हतसैन्योऽथ विद्विषैः ॥ ४६ ॥
G 662 एकाकिनस्तदा सत्त्वा विरथश्चैव महीतले।
मुनिश्रेष्ठे तदा पृच्छेत् काश्यपं तं जिनोत्तमम् ॥ ४७ ॥
किं कर्तव्यमिति वाक्यमाजहार शचीपतिः।
निर्जितोऽसुरैर्घोरैरहमत्र समाश्रितः ॥ ४८ ॥
एवमुक्तः मघवां शतक्रतुर्दिवौकसः।
प्रणम्य शिरसा मूर्ध्नि पादयोर्मुनिवरे तदा ॥ ४९ ॥

निषसेदु पुरा ह्यासीत् कौशिकोऽथ सहस्रदृक् ।
एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः काश्यपो ब्राह्मण अभूत् ॥ ५० ॥
आजहार तदा वाणिं कलविङ्करुतस्वनाम् ।
पूर्वं जिनवरैर्गीतं कुमारो विश्वसंभवः ॥ ५१ ॥
मञ्जुश्री महात्मासौ दुर्लक्षो लक्ष्मूर्जितः ।
भूतकोटिसमाख्यातो गम्भीरार्थदेशिकः ॥ ५२ ॥
निष्प्रपञ्चं निराकारं निःस्वभावमनालयम् ।
धर्मादिदेश सत्त्वेभ्यस्तत् स्मरिष्व सुरेश्वर ॥ ५३ ॥
ततस्ते नु स्मर्तो से स्मृत तत्त्वगतो ततः ।
आगतस्तत्क्षणात् तत्र कुमारो विश्वरूपिणः ॥ ५४ ॥
यत्रासौ भगवां तस्थुः मघवांश्चैव सुरेश्वर ।
आगता भाषते मन्त्रां वन्दित्वा जिनवरं तदा ॥ ५५ ॥
प्रणम्य जिनवरां सर्वां काश्यपं च महाद्युतिम् ।
इमा मन्त्रामभाषेत लब्ध्वानुज्ञां मुनेस्तदा ॥ ५६ ॥

नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्योऽप्रतिहतशासनेभ्यः । ॐ हन हन सर्वभयान् सादयोत्सादय त्रासय मोटय छिन्द भिन्द ज्वल ज्वल हुँ हुँ फट् फट् स्वाहा ॥

समनन्तरभाषितेयं मन्त्रा कुमारभूतेन मञ्जुश्रियेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन इयं महापृथिवी षड्विकारं प्रकम्पिता सशैलसागरपर्यन्ता । सर्वांश्च बुद्धां भगवतां क्षेत्रानन्तापर्यन्ता सलोकधातुदिशापर्यन्ताम् । सर्वैश्च बुद्धैर्भगवद्भिरधिष्ठितानि च इमानि मन्त्रपदानि ॥

अथ शक्रो देवानामिन्द्रः विगतभयरोमहर्षः आश्चर्याद्भुतप्राप्तः उत्फुल्लनयनः उत्थाया- G 663
सनाद् भगवतः पादयोर्निपत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य च मञ्जुश्रियं कुमारभूतं संमुखं दृष्ट्वा तानि च मन्त्रपदां गृह्य मनसिकृत्य च पुनरेव स्यन्दनमधिरुह्य येन तेऽसुराः प्राद्रविताः सर्वेऽसुरा येन पातालं महासमुद्राश्रयाधरपुरं स्वकं तेनाभिमुखाः प्रययुः हतविध्वस्तमनसः सैन्यभयाकुलितविह्वलनिषण्णवदनदर्पः विगतशस्त्रा दृष्टा तं सुरेश्वरं ज्वलन्तमिव पावकं निर्वर्त्य स्वालयं गता अभूत् ॥

अथ शक्रो देवानामिन्द्रः देवां त्रायस्त्रिंशानामन्त्रयते स्म—मा भैष्टत मार्षा । मा भैष्टत । बुद्धानुभावेन वयमसुरां निर्जितवन्तः । गच्छामः स्वपुरम् । आगच्छन्तु भवन्तः । क्रीडथ रमथ परिचारयथ स्वं स्वं भवनवरं गत्वा स्वालयं च । इतस्ते देवा हृष्टमनसः पुनरेव निवर्त्य स्वालयं गताः ॥

अथ शक्रस्य देवानामिन्द्रस्यैतदभवत्—यन्न्वहं तं कुमाररूपिणं बिम्बाकारं कृत्वा ध्वजाग्रे स्थापयेयं, ततो मे नासुरभयं भवेत् इति । अथ शक्रो देवानामिन्द्रः महता मणिरत्नद्योतिगर्भप्रभोद्योतनं नाम गृहीत्वा कुमाराकारप्रतिबिम्बं कारयित्वा उपरि प्रासादस्य मूर्ध्नि

सुधर्मायां देवसभायां सुदर्शनस्य महानगरस्य मध्ये तं ध्वजोच्छ्रितसुविन्यस्तं कृत्वा स्थापयामास ॥

ततस्ते असुरा प्रह्लादवेमचित्रिप्रभृतयः पातालं नोर्ध्वं गच्छति, न च तां देवानभिद्रवन्ते, न च शेकुः ऋद्धिविकुर्वाणं रणाभिमुखं वा गन्तुम्। एवमनेकानि वर्षकोटिनयुतशतसहस्राणि मानुषिकया गणनया न चासुरभयं स्यादिति ॥

एवमिदमपरिमितगुणानुशंसं संकीर्तितमायुरारोग्यवर्धनं बुद्धैर्भगवद्भिर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः कथितं पुरा। एवमिदमपरिमितानुशंसगुणविस्तरमनन्तापर्यन्तं पुरादिति। अपरिमाणं या पुण्यप्रसवनं महानरकोपपत्तितिर्यक्प्रेतयमलोकजन्मकुत्सनतामुपैति यो इमं धर्मपर्यायमपवदेत
G 664 विकल्पेत वा क्रमति ग्रस्तचित्तो वा वदेयुः न बुद्धवचनेति वा वदेयुः न मन्त्रा न चौषधयो बोधिसत्त्वानां पि तेषां माहात्म्यविस्तरमृद्धिविकुर्वणं वा, नापि विकल्पविस्तरमनार्यैर्भाषितमिति कृत्वा उत्सृज्य त्यजन्ते अवगच्छन्ति न शक्नुवन्ति वा श्रोतुम्, तस्मात् स्थानादपक्रमन्ते। महान् तेषामपुण्यं भविष्यतीत्याह ॥

ये नरा मूढचित्ता वै प्रतिक्षेप्स्यन्ति वरमिमम्।
धर्मं मुनिवरैर्गीतं जिनपुत्रैश्च धीमतैः ॥ ५७ ॥
तेनैके नरकं यान्ति सोत्सेधं सतिर्यगम्।
कालसूत्रमथ संजीवं क्षुरधारां गूथमृत्तिकाम् ॥ ५८ ॥
कुणपं क्षारनदी ग्राह्य ज्वरधारा पुनस्ततः।
असिपत्रवनं घोरमववं हहवं तथा ॥ ५९ ॥
अटटं लोकविख्यातं नरकं पापकर्मिणाम्।
गच्छते जना तत्र ये नरा धर्मदूषकाः ॥ ६० ॥
अवीचिर्नाम तद् घोरं प्रख्यातं लोकविश्रुतम्।
कुत्सितमयःप्राकारविक्षिप्तमावासं पापकर्मिणाम् ॥ ६१ ॥
पच्यन्ते ते जनास्तस्मिन् यो धर्मं लोपयेदिदम्।
अवीचिपर्यन्तसर्वां तां सोत्सवां समूलजाम् ॥ ६२ ॥
अनन्तां नरकभूम्यन्तां गतेऽसौ विमतिः सदा।
प्रतिक्षेप्ता धर्मसर्वस्वं इदं सूत्रं सविस्तरम् ॥ ६३ ॥
लोके कुत्सतां यान्ति··············।
अवीच्यन्तां नरकान् यान्ति विवशैर्वशगतस्तदा ॥ ६४ ॥
यो हि संसूत्रकल्पाख्यं मन्त्रतन्त्रभूपितम्।
सिद्धिचित्रगतालम्ब्य भूतकोटिमनावृतम् ॥ ६५ ॥
शरीरं धर्मधात्वर्थमनालम्बनभावनम्।
विस्तरं पटलोत्कृष्टं सकल्पं कल्पविस्तरम् ॥ ६६ ॥

मञ्जुघोषसुविन्यस्तं संपच्छ्रीमतिपूजितम् ।
मूलकल्पमनल्पं वै कथितं बहुविस्तरम् ॥ ६७ ॥
शाश्वतोच्छेदमध्यान्तमुभयार्थान्तवर्जितम् । G 665
संक्रमं क्रमनिर्दिष्टं मन्त्रमूर्तिसमुच्छ्रितम् ॥ ६८ ॥
अनिलं निलमाकाशं शून्यत्वसुभावितम् ।
प्रतिक्षेप्ता सदा गच्छेदधो अधगतां तदा ॥ ६९ ॥
विसंख्येयार्जितं पुण्यं कल्पैर्बहुविधैस्तदा ।
समुदानीय तथा बोधिं मयाग्रवरे जिने ॥ ७० ॥
भाषितं मन्त्रतन्त्रार्थं गतिदेशानिरत्ययम् ।
मूलकल्पं पवित्रं वै मङ्गल्यमघनाशनम् ॥ ७१ ॥
पटलं सविसरं प्रोक्तं नीलसूत्रान्तशोभनम् ।
नृपतीनां गुणमाहात्म्यं कालदेशप्रयोगितम् ॥ ७२ ॥
सद्धर्मं जिनपुत्राणां भूतलेऽथ तृजन्मिनाम् ।
कथितं लोकमुख्यानां मुनिसत्तमतं जिने ॥ ७३ ॥
भाषितः कल्पविस्तारः श्रीसंपत्समभिवर्धनः ।
समूलो विसरपटलाख्यो मन्त्रतन्त्रसमर्चितो ॥ ७४ ॥
यो ह्यमं सूत्रवरं मुख्यं धर्मकोशं जिनोर्जितम् ।
प्रतिक्षेप्तारो भुवि मर्त्यौ वा अवीचौ नरकान्तकौ ।
महाकल्पाननेकां वै चोपवर्णिताम् ॥ ७५ ॥
यदा काले तु मर्त्याः कदाचित् कर्हिचिद् भवेत् ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खो जायते म्लेच्छजन्मिनः ।
लोके कुत्सतां याति कुष्ठव्याधी भवेत् ॥ ७६ ॥
दुर्गन्धोऽथ बीभत्स व्यङ्गो अन्ध एव सः ।
भीमरूपी सदारूपी सदारूक्षः प्रेत व दृश्यते भुवि ॥ ७७ ॥
कुशलो दीनचित्तश्च कुनखः कुत्सितस्तथा ।
कृमिभिर्भक्ष्यमाणस्तु दद्रुकण्डूसमाकुलः ॥ ७८ ॥
अवासी परमबीभत्सः असंभाषी चोपपद्यते ।
क्रमति ग्रस्तचित्तस्तु कुमतिर्याति पुनः पुनः ॥ ७९ ॥
प्रतिक्षेप्ता च धर्मकोशस्तु जिनानां धातुपूजितम् । G 666
बहुदुःखसमायासां बहुमित्रमनाथवाम् ॥ ८० ॥
जायते बहुधा मर्त्यः शोकदुःखसमाकुलः ।
यत्र तत्र गतिर्याति कुमतिस्तत्र जायते ।
प्रतिक्षेप्तादिदं सूत्रं तत्र तत्रोपपद्यते ॥ ८१ ॥ इति ।

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य कृताञ्जलिपुटः उत्फुल्लनयनः अनिमिषनयनः सर्वांस्तां शुद्धावासभवनस्तान् देवपुत्राननेकांश्च भूतसंघां संनिपतितां धर्मश्रवणाय विदित्वैवं शाक्यमुनिं भगवन्तमेतदाह—

आश्चर्यं भगवं यावत् परमं सुभाषितोऽयं धर्मपर्यायः । तद् भगवं भविष्यत्यनागतेऽध्वनि सत्त्वा विषमलोभाभिभूताः सत्त्वाः पञ्चकषायोद्रिक्तमनसोऽश्राद्धाः कुहकाः खटुकाः कुशीलाः । ते मन्त्राणां गतिमाहात्म्यपूजितकालदेशनियमं मन्त्रचर्याहोमजपनियमकल्पविसरां न श्रद्धास्यन्ति । अबुद्धवचनमिति कृत्वा प्रतिक्षेप्स्यन्ते । क्लिष्टमनसो भूत्वा कालं करिष्यन्ति । ते दुःखां तीव्रां खरां कटुकां वेदनां वेदयिष्यन्ति । महानरकोपपन्नाश्च ते भविष्यन्ति । तेषां भगवं दुःखितानां सत्त्वानां कथं प्रतिपत्तव्यम्? महाकारुणिकाश्च बुद्धा भगवन्तः । अथ भगवां शाक्यमुनिर्मञ्जुश्रियं कुमारभूतं मूर्ध्नि परामृश्यामन्त्रयते स्म—"साधु साधु खलु पुनस्त्वं मञ्जुश्रीः यस्त्वं सर्वसत्त्वानामर्थे हिताय प्रतिपन्नः । साधु पुनस्त्वं मञ्जुश्रीः यस्त्वं तथागतमेतमर्थं प्रश्नसि । तेन हि त्वं मञ्जुश्रीः शृणु । साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । भाषिष्येऽहं ते सर्वसत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय लोकानुकम्पायै देवमनुष्याणां च सर्वमन्त्रचर्यानुप्रविष्टबोधिमार्गनियुञ्जानधर्मधातुपरमूर्त्योपाश्रयलिलिप्सूनाम् । मरणकालसमये च स्मर्तव्योऽयं विद्याराजा परमरहस्यं कुमार त्वदीयमूलकल्पपटलविसरः । कतमं च तत्?

G 667 नमः सर्वतथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यः । ॐ कुमाररूपिणि विश्वसंभव आगच्छागच्छ लहु लहु भ्रूं भ्रूं हूँ हूँ जिनजित् मञ्जुश्रीय सुश्रिय तारय मां सर्वदुःखेभ्यः । फट् फट् शमय शमय । मृतोद्भवोद्भव पापं मे नाशय स्वाहा ॥

एष मञ्जुश्रीः त्वदीयं परमहृदयं सर्वशान्तिकरं सर्वपापक्षयं सर्वदुःखप्रमोचनमायुरारोग्यैश्वर्यपरमसौभाग्यवाक्यसंजननं सर्वविद्याराजसत्तेजनं च । समनन्तरभाषिते शाक्यमुनिना बुद्धेन भगवता, इयं महापृथिवीसशैलसागरसत्त्वभाजनसंनिचयपर्यन्ता षड्विकारं प्रकम्पति । मा भूत् सर्वाश्च गतयः । प्रेततिर्यग्यमलोकसर्वसत्त्वदुःखानि प्रतिप्रस्रब्धानि । अयं च विद्याराजा मञ्जुश्रीर्मनसि कर्तव्या । न च तस्मिन् समये सद्धर्मप्रतिक्षेपेण चित्तं भवेयुः । न च माराः पापीयांसः अवतारं लप्स्यन्ते । सर्वविघ्नविनायकाश्चापक्रमन्ते । एवं च चित्तमुत्पादयितव्यम्—किं मया शक्यं बुद्धानां भगवतां अचिन्त्यबुद्धा बोधिधर्मा चिन्तयितुं वा प्रतिक्षेप्तुं वा । बुद्धा भगवन्तो ज्ञास्यन्तीति ॥

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पाद् बोधिसत्त्वपिटकावतंसकात् महायानवैपुल्यसूत्रात् पञ्चाशतिमः अनुशंसाविगर्हणप्रभावपटलविसरः परिसमाप्त इति ॥

५५ हेमसाधनपटलविसरः । G 668

आर्यमञ्जुश्रियः पटस्याग्रतः यस्योद्दिश्य श्वेतसर्षपाणामष्टशतं जुहोति, स वशो भवति। स्त्रीवशीकरणे अष्टशतं जुहुयात्, सा वशा भवति । कृष्णचतुर्दश्यां श्वेतपुष्पाणामष्टसहस्रेणार्यमञ्जुश्रीः ललाटे हन्तव्यः, राजपत्नी वशा भवति। अपतितगोमयेन शिवलिङ्गं कृत्वा तस्याग्रतो गोमयेन त्रिशूलेन श्वेतसर्षपाणां दधिमधुघृताक्तानां सप्ताहुतिं जुहुयात् दिवसत्रयम् यस्योद्दिश्य स वशो भवति। कुमारीवश्यार्थं अरञ्जणपुष्पाणां अष्टसहस्रेणार्यमञ्जुश्रीर्हन्तव्यः। सा वशा भवति। मधूच्छिष्टमयीं पुत्तलिकां कृत्वा आत्मन उरू स्थाप्य अष्टसहस्रम् यस्योद्दिश्य स वशो भवति । पटस्याग्रतः शुक्लपुष्पाणां अष्टशतं निवेदयेत् । यमिच्छति स वशो भवति । शङ्खनाभिरोचनातगरुमेकीकृत्य पीषयेत् । अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा अन्नेन वा पानेन वा यस्य दीयते, स वशो भवति । ब्राह्मणीवशीकरणे पटस्याग्रतः बिल्वकुसुमानामष्टसहस्रं जुहुयात्, सा वशा भवति। भस्मानां सप्तजप्तेन यां स्त्रियं चूर्णयति, सा वशा भवति। स्त्रियाः पुरुषस्य वाग्रतः स्थित्वाष्टसहस्रं जुहुयात्, स वशो भवति। चतुरङ्गुलं काष्ठिकां अष्टसहस्राभिमन्त्रितां तया यमाकर्षति, स वशो भवति। श्वेतपुष्पाणां अष्टशतं अष्टसहस्रं निवेदयेत्। तत्रैकं पुष्पं गृह्य स्त्रियं दृष्ट्वा आवर्तयेत्। आगच्छति, स वशो भवति। क्षीरयावकाहारः पक्षमेकं वल्मीकमृत्तिकामयं वा प्रतिकृतिं कृत्वा ततोपविष्टस्ताव जपेद् यावद् वासुकिचलितः सिद्धो भवति। आत्मद्वादशमस्य भक्तं ददाति। अतीतमनागतं प्रत्युत्पन्नं कथयति। क्षीरयावकाहारः शतसहस्रं जपेत्। भोगान् लभति। मासेन भिक्षाहारः शुक्लचतुर्दश्यामेकरात्रोषितः पटस्याग्रतो महतीं पूजां कृत्वा प्रतिमायाः पादौ गृह्य तावज्जपेद् यावच्चलिताचलितेवादृश्यो भवति। सर्वसिद्धानां राजा भवति। मनसाहारमुत्पद्यते। पञ्चवर्षसहस्राणि जीवति। गङ्गानदीमवतीर्य लक्षमेकं जपेत्। पश्चात् तत्रैव पटे वालुकामयं चैत्यं कृत्वा मधु क्षीरं चैकतः कृत्वा जुहुयात्। सर्वनागा आगच्छन्ति। यद् ब्रवीति तत् सर्वं कुर्वन्ति। पर्वतशिखरमारुह्य पटं प्रतिष्ठाप्य तैलाक्तं चन्दशकल्किं जुहुयात्। यक्षा G 669 आगच्छन्ति। यद् ब्रवीति तत् सर्वं कुर्वन्ति। वने पटं प्रतिष्ठाप्य मधुपिप्पलीं चैकतः कृत्वा अष्टसहस्रं जुहुयात्। सर्वविद्याधरा आगच्छन्ति। आज्ञाकरा भवन्ति। एकवृक्षे प्रतीत्यसमुत्पादगर्भचैत्यं प्रतिष्ठाप्य लक्षमेकं जपेत्। लक्षपरिसमाप्तौ पोषधिकेन रूपकारेणाश्वत्थकाष्ठमयं तृशूलं लक्षणोपेतं कृत्वा सपाताभिहूतं कृत्वा पौर्णमास्यां सुगन्धगन्धैः समुपलिप्य यथाविभवतः पटस्याग्रतः पूजां कृत्वा दक्षिणहस्ते कृत्वा सकलं रात्रिं साधयेत् यावज्ज्वलतीति। ज्वलिते महादेवो भवति। भूताधिपतिर्भवति। दुर्दान्तदमकः अप्रतिहतः सर्वसत्त्वेषु। समुद्रमवतीर्य लक्षं जपेत्। सागरप्रभृति यमिच्छति नागराजनं तं पश्यति। मणिरत्नं वा ददाति। तेन गृहीतेन विद्याधरो भवति। सर्वनागविद्याधराणां राजा भवति। पोषधिकेन कर्मकारेण ताम्रघटकं कारयेत्। प्रातिहारकपक्षे पूर्णमास्यामुदारां पूजां कृत्वा पटस्याग्रतः प्रतिष्ठाप्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलितः। ततः तस्मिं हस्तं प्रक्षिप्य यमिच्छति तत् सर्वं प्रादुर्भवति।

भद्रघटसाधनम् । समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य लक्षं जपेत् । यस्यां मृण्मयं वालुकामयं वा पूर्णमास्यां चैत्यं कृत्वा, तत्रैव पटं प्रतिष्ठाप्य महतीं पूजां कृत्वा स्फटिकमणिमृण्मया वा दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा पर्यङ्कोपविष्टः तावज्जपेद् यावज्ज्वलतीति । चिन्तामणिधारी विद्याधरो भवति । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य लक्षं जपेत् । प्रातिहारकपक्षपूर्णमास्यां विधिवत् पूजां कृत्वा प्रदीपमालां च उदारां कृत्वा दक्षिणहस्तेन ध्वजं शुक्लनागावलम्बितं गृह्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलति । ध्वजविद्याधरो भवति सर्वत्राप्रतिहतः । प्रातिहारकपक्षे पूर्णमास्यां पटस्याग्रतः महतीं पूजां कृत्वा भगवत्या प्रज्ञापारमितापुस्तकं सुगन्धगन्धैः प्रलिप्य सुगन्धपुष्पमालाभिः वेष्टयित्वा वामहस्तेन गृह्य पर्यङ्कोपविष्टस्तावज्जपेद् यावज्ज्वलति । विद्याधरराजा भवति । यत्रेच्छति तत्र गच्छति । बोधिसत्त्वचर्याचारी भवति । कुमारीं प्रासादिकां सुस्नातालंकृतां कृत्वा पटस्याग्रतः यथाविभवतः पूजां कृत्वा वामहस्तेन गृह्य स्थितस्तावज्जपेद् यावत् तया सह G 670 ज्वलति । तथैव सार्धं विद्याधरो भवति । एकलिङ्गस्योपरि हस्तं दत्त्वा तावज्जपेद् यावत् सखाया न पश्यन्ति । अदृश्यः सर्वसिद्धानामगम्यः । अन्तर्धानिकं भवति । त्रयोदश्यां चन्द्रग्रहे सूर्यग्रहे वा हरितालं बोधिवृक्षपत्रान्तरितं कृत्वा महेश्वरायतने सधातुके चैत्ये तावज्जपेद् यावत् धूमायति । तिलकं कृत्वा अन्तर्हितो भवति । क्षीरयावकाहारः समुद्रतटे वृक्षमूले सहस्रं जपेद् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । समुद्रगानि रत्नानि पश्यति । यथेष्टं गृह्णीयात् । मुद्गाहारः पर्वतशिखरमारुह्य अष्टसहस्रं जपेद् विंशतिरात्रम् । पर्वतगतानि मणिरत्नानि दर्शनं भवति । ततो हस्तिशिरसि कृतं तस्योपरि उपविष्ट अष्टसहस्रं जपेद् । एवं दिवसानि सप्त । स वशो भवति ॥

राजानं राजमात्रं वा वशीकर्तुकामः तस्य मधूच्छिष्टकेन प्रतिकृतिं कृत्वा निर्धूमाङ्गारेषु क्षिपेत् सप्तरात्रम् । स वशो भवति । वस्त्रकामः श्वेतपुष्पाणां अपरिमर्दितानां सकृत् परिजप्य उदके क्षिपेत् सप्तरात्रम् । अष्टसहस्रं वस्त्रयुगं प्रतिलभते । गोघृतं अष्टसहस्रं जप्त्वा स्त्रियामादद्यात् । विशल्या भवति । नवनीताष्टशतजप्तेनाभ्यक्त अग्निं प्रविशति । न च दह्यते । तेनैव चाभ्यक्तो जलं प्रविशति, स्तम्भितो भवति । जपमानो यावदुत्साहं भिक्षं भक्षयति । आयसं प्रादेशमात्रं खड्गं कृत्वा सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य उदारां पूजां कृत्वा अश्वत्थपत्रैः प्रदक्षिणावर्तैः खड्गं प्रतिष्ठाप्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलित इति । तेन गृहीतः सपरिवारोत्पतति । विद्याधरसहस्रपरिवृतः अभेद्यः सर्वविद्याधराणाम् । वर्षकोटिं जीवति । कृतपुरश्चरणः कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा पटस्योदारां पूजां कृत्वा संघोद्दिष्टकां भिक्षां भोज्य मनःशिलायां भूमौ पद्मं शतपत्रं लेख्य पद्मकर्णिकायां उपविश्य तावज्जपेद् यावत् भूमिं भित्त्वा पद्ममुत्तिष्ठति । पद्मपत्रेषु चोपविष्टाः विंशति विद्याधराः प्रादुर्भवन्ति । तैः परिवृतः उत्पतति । यावन्तः सत्वां पश्यति यैश्च दृश्यते तैः सार्धं गच्छति । स च पद्मः अनेकरत्नालंकृतो भवति । विमातुरकल्पं जीवति । भिन्नदेहे स्वेच्छया उत्पतति गृह्णाति । पानीये अष्टसहस्राभिमन्त्रितेन शुष्कवृक्षं सिञ्चेत् । पुष्यति फलति च । शुष्कनदीमवतीर्य जपेद् उदकं भवति । नदीप्रतरणे जपेत् । G 671 श्रान्तस्य स्थलो भवति । राजानं राजमात्रं वा वशीकर्तुकामेन पटस्याग्रतः कृष्णाष्टम्यामारम्य

पुष्पाणामष्टसहस्रं निवेदयेत् । लवणाहुतिं चाष्टसहस्रं जुहुयात् । नियतं राजा वशी भवति । तामेवाष्टमीमारभ्य गोरोचना त्रिसंध्यं अष्टशतिकेन जपेद् यावदेकादशी । तेन तिलकं कृत्वा यं वीक्षति स वशो भवति । यदिच्छे दारकदारिकां वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः सिद्धार्थकानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । तासां पादपांसुं गृह्य पुत्तलिकां कृत्वा यस्य नामग्रहणं करोति, स वशो भवति । मेधार्थिना गव्यघृतं गृह्य चन्द्रग्रहे सूर्यग्रहे वा ताम्रभाजने प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः । ऊष्मायमाने श्रुतिधरोऽयं यं शृणोति तं गृह्णाति । धूमायमाने रसरसायनम् । ज्वलितेन जातिस्मरो भवति । अर्कपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । दीनारलक्षं ददाति । पटस्याग्रतः अर्कपुष्पाणामष्टसहस्रं निवेदयेत् । दीनारशतं लभते । पटस्याग्रतः शालितन्दुलानां घृताभ्यक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । पञ्च दीनारां लभते । कृतपुरश्चरणः पटस्याग्रतः दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । दीनारशतत्रयं लभते । कृष्णतिलानामष्टसहस्रं जुहुयात् । दीनारशताधिकं लभते ॥

कुलपतिं वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः अर्कसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । कुलपतिर्वशीभवति । लोकपत्यं वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः दूर्वाप्रवालानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रं त्रिसंध्यम् । कौलपत्यं करोति यावज्जीवम् । आर्यसंघं वशीकर्तुकामेन अर्कपुष्पाणां पटस्याग्रतः अष्टसहस्रं निवेदयेत् सप्तरात्रम् । यदर्थं कुर्यात् तमन्विच्छति । सततजपेनार्थं लभते । गुग्गुलुगुलिकानां पटस्याग्रतः अष्टसहस्रं जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं लभते । पटस्याग्रतः कुन्दुरुधूपं अष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । निधानं लभते । पटस्याग्रतः अर्ककाष्ठसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां त्रिसंध्यं सहस्रं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभते । शत्रुवशीकरणे पोषधिकः पटस्याग्रतः त्रिसंध्यं राजसर्षपाणां अष्टसहस्रं जुहुयात् सप्ताहम् । सर्वशत्रवो वशा भवन्ति । लाक्षाहुतीनां अष्टसहस्रं जुहुयात् सप्ताहम् । सर्वजनप्रियो भवति । शालितन्दुलानां अष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्ताहम् । कार्षापणशतं लभति । कृतपुरश्चरणः G 672 कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा मृतकपुरुषं अक्षताङ्गं गृह्य स्नानालंकृतं कृत्वा सुगन्धपुष्पधूपैरभ्यर्च्य वामपादेनोरसिमाक्रम्य मस्तके आहन्तव्यः । ततः उत्तिष्ठति । पुष्पलोहमये खड्गे आहन्तव्यः । जातरूपं सुवर्णं लभति । अथ नेच्छति वक्तव्यम्—'छर्दख' इति । ततश्चिन्तामणिर्निर्गच्छति । तं शिरसि कण्ठे वा कृत्वा अन्यत्र वा बद्ध्वा यं चिन्तयति तं प्रादुर्भवति । शुक्लप्रतिपदमारभ्य अहोरात्रोपितः समुद्रगामिनीं नदीं अंसमात्रमुदकमवतीर्य जातीपुष्पाणां दशसहस्राणि प्रवाहयेत् । दशमाषकं लभते, सुवर्णसहस्रं वा । शुक्लप्रतिपदमारभ्य समुद्रगामिन्या नद्या पद्मानां दशसहस्राणि निवेदयेत् सप्तरात्रम् । निधानसंवाटकं लभते । कृतपुरश्चरणः तामेव नदीमवतीर्य पुष्पाणां दशसहस्राणि प्रवाहयेत् सप्ताहम् । दशग्रामाण्या-लभते । अशोकपुष्पैः चणकमात्रां गुटिकां कृत्वा पटस्याग्रतः दधिमधुघृताक्तानां त्रिसंध्यं अष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । यं मृगयति तं लभते । अपामार्गसमिधानामेप विधिः । सुवर्णसहस्रं लभते । अशोकगुटिकाव्यतिमिश्रैः अपामार्गतन्दुलैः पटस्याग्रतः त्र्यक्तानां दशसहस्राणि

जुहुयात्। नामग्रहणेन राजकन्यं लभति मासमात्रेण। राजानं समन्त्रिणं वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः अशोकसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य अशोकपुष्पाणामेव दधिमधुघृताक्तानां दश सहस्राणि जुहुयात् । स मन्त्री वशमागच्छति। पटस्याग्रतः अग्निं प्रज्वाल्य अपामार्गसमिद्भिः शतपुष्पां दधिमधुघृताक्तां दशसहस्राणि जुहुयात्। स्वगृहे निधानं पश्यति। समुद्रगामिन्यां नद्यां कटीमात्रमुदकमवतीर्य दशसहस्राणि निवेदयेत्। ये तां जिघ्रन्ति। वामहस्तेन मुष्टिं बध्वा लक्षं जपेत्। ततः सिद्धो भवति। मुक्त्वा दृश्यति। सधातुके चैत्ये नदीतटे वा पर्वते वा पटं प्रतिष्ठाप्य पद्मानां लक्षं जुहुयात्। श्रियं पश्यति। एतेनैव विधिना नीलोत्पलानां लक्षं जुहुयात्। विधानां पश्यति। गुग्गुलुगुलिकानां लक्षं जुहुयात्। दीनारलक्षं लभते। सुगन्धपुष्पाणां लक्षं जुहुयात्। वस्त्राणां
G 673 कोटिं लभते। गुग्गुलुधूपेन अष्टशतिकेन मनोभिलषितां, च पूरयति। तिलसर्षपाणां पटस्याग्रतः प्रतिदिनमष्टसहस्रं जुहुयात् दिवसत्रयम्। पञ्चविंशतिदीनारां लभते। अनेनैव विधिना सप्तरात्रं जुहुयात्। दीनारशतं लभति। लवणमयीं प्रतिकृतिं छित्त्वा छित्त्वा जुहुयात् अष्टसहस्रम्। यमिच्छति स वशो भवति स्त्री वा पुरुषो वा। उभयार्द्रं हस्तसर्षपाणां घृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् दिवसत्रयम्। सर्वविघ्नोपशमनम्। उदके एकपादं प्रक्षिप्य स्थले एक एव तावज्जपेद् यावदुदकस्थं पादं लघुर्भवति। ततः पापान्मुक्तो भवति। अर्ककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य राजिकानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्ताहम्। कर्मावरणं क्षीयते। ब्राह्मी–गुडूची–पिप्पलीचूर्णं समभागानि कृत्वा मधुना सह आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः एकविंशतिवारान् परिजप्य लिहेत् सप्ताहम्। मेधावी भवति। द्विसप्तरात्रं परममेधावी भवति। द्विमासयोगेन श्रुतिधरो भवति। पटस्याग्रतः प्रतिमाया वा अष्टसहस्रं जपं कृत्वा पश्चात् पिबेत्। एवं दिने दिने मौनी जपेत्। मेधावी भवति। बद्धो रुद्धो वा जपेनैव मुच्यति। चौरां दृष्ट्वा जपेत्। चोरैर्न मुष्यति। तैलमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा शिरं म्रक्षयेत्। सर्वजनप्रियो भवति। भगवतो बुद्धस्याग्रतः ये स्पृशन्ति ते सर्वे वश्या भवन्ति। अनेनैव मन्त्रेण शस्त्राहतस्य पुरुषस्य तैलमष्टसहस्राभिमन्त्रितेन म्रक्षयेत् व्रणो वश्यति। न वेदना भवति। अनेन लोष्टं परिजप्य सप्तवारां जले प्रक्षिपेत्। मकरकच्छपादीनां तुण्डबन्धः कृतो भवति। पूर्णमास्यां त्रिरात्रोषितो नाभिमात्रमुदकमवतीर्य शुक्लपुष्पाणामष्टशतं निवेदयेत्। पञ्चदीनारमूल्यं वस्त्रयुगं लभते। चन्द्रग्रहे सधातुके चैत्ये गुञ्जानां श्लक्ष्णचूर्णीकृतानां घृतमधुमिश्रां गुडिकां कारयेत्। सप्ताश्वत्थपत्रान्तरितां हस्तेनाच्छाद्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलति। भक्षयेच्छ्रुतिधरो भवति। अनेन सर्वातुराणां कर्माणि कुर्यात्। शूलदाघवस्तस्त्रीमूत्रकृच्छ्राजरगृध्राभिदेयं तैलं परिजप्य निरोगो भवति। शुक्लप्रतिपदमारभ्य त्रिरात्रोषितः अश्वत्थपत्रवृक्षस्याधस्ताद् यूथिकाकलिकानां घृतदधिक्षीराभ्यक्तानां शतसहस्रं जुहुयात्। रूपकशतं लभते। अथ न सिध्यति कर्म कुर्यात् रूपकशतं लभते
G 674 पश्यति वा पिशाचज्वरभूतग्रहविनाशकं सूत्रेण मोक्षयति। नार्या अप्रसवमानाया तैलमष्टशतं परिजप्य नाभिं कटिप्रदेशं वा म्रक्षयेत्। विशल्या भवति। कुम्भीरधारणं लोष्टशताभिमन्त्रितेन अनन्ता-वेतसी-ब्राह्मी-वचा-बृहती-मधुसंयुक्ता सधातुके चैत्ये चन्द्रमपश्यता

तावज्जपेद् यावन्मुक्त इति । फरफरायते । भक्षयित्वा श्रुतिधरो भवति । संग्रामे प्रतिसराष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा ग्रन्थिं हस्ते बद्ध्वा अहतबलो भवति । अहोरात्रोषितेन भगवतोऽग्रतः साधयितव्यः । समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य गत्वा क्षीरयावकाहारेण पक्षमुपोष्य विकसितानां श्वेतपद्मानां उदके निवेदयेत् । निधानं पश्यति । पञ्चगव्येन कायशोधनं कृत्वा शुक्लप्रतिपदमारभ्य यावत् पूर्णिमासीति कृतपुरश्चरणः अन्ते त्रिरात्रोषितः कुमारीकर्तितसूत्रं गृह्य सधातुके चैत्ये प्रतिमायां वा गृहे दशसहस्राभिमन्त्रितेन हस्ते बद्ध्वा अदृश्यो भवति । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य पद्मानां त्रिंशत्सहस्राणि जुहुयात् । खदिराङ्गारैरग्निं प्रज्वाल्य स्वरूपेण पश्यति । यं मृगयति तं लभते । प्रतिपदमारभ्य यावत् पञ्चदशीति त्रिरात्रोषितः सधातुके चैत्ये उदारां पूजां कृत्वा उदुम्बरीभिः समिधाभिः अग्निं प्रज्वाल्य घृताहुतिं जुहुयात् । ग्रामं लभते । समुद्रगामिन्या नदीतीरे स्तूपसहस्रं कारयेत् । प्रतिदिनमेकैकस्य स्तूपस्य गन्धपुष्पधूपादीं दत्त्वा अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कारयेत् । यावत् पश्चिमं स्तूपं ज्वलति । ततो ज्ञातव्यम् भगवां महाबोधिसत्त्वमागच्छति । आगच्छमानस्य पृथिवीप्रकम्पः सुगन्धगन्धवायवो वान्ति । तावज्जपेद्, यावत् स्वरूपेण तिष्ठति । स यं वरं याचते तं लभते । भगवतोऽग्रतः खदिरपत्रखण्डिकानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । प्रतिदिनं दीनारमेकं लभते । अटवीं गत्वा भिक्षाहारः दधिमधुघृताक्तानां अरण्यगोमयानां विंशतिसहस्राणि जुहुयात् । यावद् वृक्षदेवता सिंहरूपं कृत्वा आगच्छति । स च निदानं ददाति । न गृहेतव्यम् । स्वयमेवमुपतिष्ठस्वेति । राज्यं धनं वान्यरत्नानि वा ददाति । नित्यं रत्नत्रयोपयोज्यं भोगं दातव्यम् । अरण्यं प्रतिविशित्वा दशसहस्रं जपेत् । शतसहस्रं जपेत् । पुनरपि शतसहस्रं जपेत् । अगरुकाष्ठप्रतिमाग्रतः भगवतः वत्सलण्डकानां मधुघृताक्तानां सप्तसहस्राणि जुहुयात् । कपिला कामधेनुरागच्छति । यदि नागच्छति, पुनरपि वत्सलण्डं विंशतिसहस्राणि जुहुयात् । आगता च सिद्धा भवति । G 675 पुरुषसहस्रस्य क्षीरं ददाति । पटस्याग्रतः घृतमध्वाक्तानां जातीपुष्पाणां अष्टसहस्रं जुहुयात् । षण्मासां दीनारसहस्रं लभते पणसहस्रं वा । विकसितपद्मानां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् । सधातुके चैत्ये बुद्धाभिप्रसन्ना देवता वरदा भवति । आर्यमञ्जुश्रियस्य पूजां कृत्वा गौरसर्षपाणां सप्ताभिमन्त्रितानां संग्रामे प्रकिरेत् शान्तिर्भवति । प्रातिहारकपक्षे शुक्लत्रयोदश्यां गन्धपुष्पैः पूजां कृत्वा विकसितानां पद्मानां घृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । भस्मं च गृहीत्वात्मनः ललाटे तिलकं कृत्वा ग्रामं नगरं प्रविशेत् । सर्वे वशा भवन्ति । कृष्णचतुर्दश्यां प्रभृति यावत् पञ्चदशीति एकरात्रोषितेन वृक्षस्याधस्ताच्चतुर्हस्तमात्रं मण्डलकमुपलिप्य, गन्धपुष्पधूपं दत्त्वा आर्यमञ्जुश्रियस्य पूजां कृत्वा यक्षाणां बलिं दत्त्वा मानुषास्थि गृहीत्वा त्रिशूलं कारयेत् । वामहस्तेन प्रक्षिप्य सप्तरात्रत्रिरात्रोषितेन वा जातीपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् । तेन शूलं ज्वलति । ततः सिद्धो भवति । इच्छया यं निर्मिणोति तं लभति । दिव्यं गृहं चन्द्रसूर्यग्रहे सधातुके चैत्ये प्रतिमायां वा गृहे कपिलायाः समानवत्सायाः गोघृतपलं गृह्य सौवर्णभाजने स्थाप्य भगवतः पूजां कृत्वा चन्द्रमपश्यता

दर्शनोपरिच्छाद्य तावज्जपेद् यावदूष्मायति । फेनायति । ज्वलति । ऊष्मायमानं पीत्वा सर्वसत्त्ववशीकरणम् । फेनायमानं पीत्वा अन्तर्धानं भवति । ज्वलमानं पीत्वा आकाशेन गच्छति । षण्मासकृतपुरश्चरणगोमूत्रयावकाहारिणा मौनव्रतिना नित्यजापेनायाचितं सुवर्णशतं लभते । प्रातिहारकपक्षमारभ्य संवत्सरं भगवतो आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः पूजां कृत्वा गन्धपुष्पादीनां ददता अष्टाङ्गपोषधसमन्वागतेन पूर्णे संवत्सरे सिद्धो भवति । भगवानस्य पट्टबन्धं करोति । आर्यमञ्जुश्रियस्य पूजां कृत्वा प्रतिपदमारभ्य यावत् पौर्णमासी दिने दिनेऽधिकपूजा कार्या । भिक्षवश्च भोजयितव्याः । सिद्धोऽस्मीति वाङ् निरसरति । घृताहुतीनां शतसहस्रं जुहुयात् । परस्य शान्तिर्भवति । प्रातिहारकपक्षे भगवतो बुद्धस्य पूजां कृत्वा उदारां आर्यमञ्जुश्रियस्य गन्धपुष्पदीपधूपादीन् दत्त्वा शङ्खपुष्पीपुष्पाणां G 676 इंगुदतैलाक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् । ग्रामनगरहस्त्यश्वरथगोमहिषाश्च भवन्ति । सप्तरात्रं क्षीरयावकाहारः पोषधिकेन आमलितघृतेन पात्रं पूरयित्वा शुक्लवर्तिना दीपं प्रज्वाल्य कुमारकुमारिकानां दर्शापयेत् । तत्रैवाल्पज्ञानं संपन्नं पश्यति । सर्वोपद्रवेभ्यः भयं न भवति । नित्यजापिना बोधिवृक्षसमिधानां नवनीताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् पटस्याग्रतः । तथैव कुशसंस्तरे स्वपेत् । स्वप्ने विंशतिसाहस्रिकं द्रव्यं पश्यति अर्धभागं रत्नत्रयोपयोज्यम् । पटस्याग्रतः शुक्लप्रतिपदमारभ्य यावत् पौर्णमासीति । अत्रान्तरे दिने दिनेऽष्टमसहस्रं जपेत् । गन्धपुष्पधूपादिभिः पूजां कृत्वा अन्ते त्रिरात्रोषितेन मौनव्रतं कुरुता मन्त्रं जपता प्रातिचारकेभ्यो बलिं हस्ते दत्त्वा महापथं गत्वा भूतं क्रूरं निवेदयेत् । प्रतीच्छेति वक्तव्यः । गौरसर्षपाणां द्रोणं गृहीत्वा दश दिशोऽधस्ताच्च क्षिपेत् एकविंशतिवारानभिमन्त्र्य । परं आत्मानं प्रकाशयेत् । तथैव कृष्णाष्टम्यां गन्धकुटिं प्रविश्य भगवतोऽग्रतः सहस्रं जपेत् । गन्धपुष्पादिभिर्बलिविधानं कृत्वा ततः स्वप्ने पश्यति भगवानार्यमञ्जुश्रीः । वैशाखमासे कृष्णपक्षे पोषधिकेन क्षीरयावकाहारः सधातुके चैत्ये गन्धपुष्पादिभिः पूजां कृत्वा भिक्षवश्च दिने दिने भोजयितव्याः । भिक्षवः अकालमूलकलशाश्चत्वारः सलिलपूर्णाः स्थापयितव्याः । सर्वौषधिबीजानि प्रक्षिप्य रात्रौ एकैकमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा अकाकोलीने पुत्रदारदारिकां स्थापयेत् । राज्यम् । पक्षाभ्यन्तरयोः कृष्णाष्टम्यां भगवतः आर्यमञ्जुश्रियस्य च पूजां कृत्वा श्मशानाग्निं प्रज्वाल्य शतपुष्पाणां अष्टसहस्रं जुहुयात् । अन्नपानं अक्षयं भवति । तमेव भस्मं ग्रहाय आत्मनः परस्य वा ललाटे पुण्ड्रकं कृत्वा संग्रामेऽवतरेत् सर्वे वशा भवन्ति । बन्धनाच्च निगडात् प्रमोचयेत् । अग्निगतां नाशयति । मालतीपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् षण्मासं गोमूत्राहारः । दीनारसहस्रं लभते । शुक्लप्रतिपदमारभ्य नीलोत्पलानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । यस्य नाम्ना जुहोति स वशो भवति । पञ्चकालकानां त्रिसंध्यं अष्टसहस्रं यस्य नाम्ना जुहोति स वशो भवति । प्रातिहारकपक्षे पटस्याग्रतः क्षीरयावकाहारः त्रिसंध्यं पञ्चदश्यां तावज्जG 677 पेद् यावद् भगवानागच्छति । दीपशिखा वर्धते । पृथिवी कम्पते । पटं वा प्रचलति । सिद्धेति वाङ्निश्चरति । दीनारसहस्रं लभति । विषयपतिर्भवति । षण्मासकृतपुरश्चरणो सधातुके

चैत्ये भगवतः आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः षण्मासाभ्यन्तरेण दीनाराणां पञ्चसहस्राणि लभति। सधातुके चैत्ये पूजां कृत्वा शतसहस्रं जपेत्। रूपकसहस्रं प्रतिलभति। सधातुके चैत्ये शतसहस्रं जपेत्। सर्वकामप्रदो भवति। सर्वव्याधिषु प्रशमनं कर्तुकामेनाष्टशतसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा कन्याकर्तितसूत्रकं बन्धितव्यम्। सौभाग्यं प्रतिलभते। व्याधिश्च प्रशमति। समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य कृष्णतिलानां अष्टसहस्रं निवेदयेत्। धनधान्यं प्रतिलभते। सधातुके चैत्ये शुक्लप्रतिपदमारभ्य पञ्चदश्यां त्रिरात्रोषितेन उदुम्बरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य राजसर्षपाणां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात्। पञ्च ग्रामाणि प्रतिलभते। राजवृक्षसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य श्वेततिलानां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् पञ्चदश्यां त्रिरात्रोषितः। यदि ते तिला दिशि विदिशं गच्छन्ति, ततः सिद्धो भवति। सर्वसत्त्वां वशीकरोति। आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः पूर्वं शतसहस्रं जपेत्। ततः चन्द्रग्रहे घृतमष्टपलानि दत्त्वा तावज्जपेद् यावत् फेनायति। पीत्वा श्रुतिधरो भवति। कुन्दुरुकं शतसहस्रं जुहुयात्। अयाचितं पुराणमेकं लभते। आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः प्रतिदिनमष्टशतं सुगन्धपुष्पाणां निवेदयेत्। श्रीमां भवति। अपामार्गसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां प्रतिदिनं अष्टसहस्रं जुहुयात्। ग्रामं लभते। बहुपुत्रिकासमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य वचाष्टसहस्रं जुहुयात्। तेन भस्मना तिलकं कुर्यात्। अन्तर्हितो भवति। यदि न भवति त्रिरपि साधयेत्। चन्द्रग्रहे नदीतीरं गत्वा बिल्वसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य बिल्वपुष्पाणां घृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात्। यक्षकुमारी आगच्छति। अर्धरात्रे पुनरपि अष्टसहस्रं जपित्वा तत एका आगच्छति। यां वाचां उच्यते तं करोति। निधिस्थाने मन्त्रमष्टसहस्रं जपेत् पुष्पधूपगन्धादिभिः पूजां कृत्वा। ततः कृष्णचतुर्दश्यां बलिविधानं कृत्वा जपेत्। पिशाचा आगच्छन्ति। ततः खनेत्। निधान उत्तिष्ठति। गृहीत्वात्मना त्रयाणां रत्नानां दातव्यम्। एवं पट्टबन्धमपि कर्म। भगवतोऽग्रतः बिभीतककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य तिलतण्डुलानां प्रतिदिवसं अष्टसहस्रं जुहुयात्। रण्डा वशा G 678
भवति। अमात्यवशीकरणा गौरसर्षपां जुहुयात्। वशो भवति। राजवशीकरणे सर्जरसं जुहुयात्। वशो भवति। पुरुषस्त्रीवशीकरणे एतमेव जुहुयात्। अगस्तिकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य दीपवर्तीनां पटस्याग्रतः। दीनारशतं लभति। क्षीराहारेण पलाशसमिधानां जुहुयात्। प्रतिदिनं त्रिःकालम्। सुवर्णशतं लभति। समुद्रगामिनीं नदीं गत्वा शतशतसहस्रं जुहुयात्। यावद् रत्नानि प्रतिलभते। ग्रहेतव्यम्। रत्नत्रयोपयोज्यं भागो देयः। वैशाखपूर्णमास्यां सकलां रात्रिं जपेत्। आनन्तर्यान्मुच्यति। बोधिवृक्षमूले भगवतः आर्यमञ्जुश्रियस्य पूजां कृत्वा अपामार्गसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां जुहुयात्। आत्मानमुद्दिश्य। सर्वपापैर्मुक्तो भवति। सप्त सप्त मरिचानि अभिमन्त्र्य अकाकोलीने भक्षयेत्। पञ्चाशच्छ्लोकशतानि गृह्णाति। तच्च यावज्जीवं धारयति भगवतो बुद्धस्याग्रतः शतसहस्रं जपं कृत्वा पन्नगबन्धं करोति। जले वैकङ्कतसमिधानां दधिमधुघृताक्तानामार्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः शतसहस्रं जुहुयात्। अर्धरात्रे पञ्च दीनारशतानि प्रतिलभते अर्धं रत्नत्रयोपयोज्यम्। कुमुदानि दिने दिनेऽष्टसहस्रं जुहुयात्। विनायकैर्मुक्तो

भवति । कार्त्तिकशुक्लपक्षे क्षीरयावकाहारः शाकाहारो वा पोषधिकः पञ्चदश्यां त्रिरात्रोषितो वैकङ्कतफलानां घृताक्तानां लक्षं जुहुयात् रूपकसहस्रं प्रतिलभते । ग्रामस्वामी भवति । अर्धं रत्नत्रयोपयोगम् । शुचौ भूप्रदेशे गोचर्ममात्रं मण्डलमुपलिप्य तन्मध्ये पद्माकारां वेदिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपविचित्रबलिं कृत्वा वैकङ्कतसमिधानां सुगतवितस्तिप्रमाणानां लक्षं जुहुयात् । अग्न्याकारा नीलवर्णा अर्चिषो निश्चरन्ति । साधकं प्रदक्षिणीकृत्य पुनरप्यग्निकुण्डे प्रविशन्ति । एवं सिद्धो भवति । सर्वसाधनेषु अग्निरावाहितव्यम् । एवं सिद्धो भवति । गङ्गायामंसमात्रमुदकमवतीर्य लक्षं जपेत् यावदाकाशादित्यमण्डलं दृश्यति । ततः भगवां सिद्धो भवति । यदि न पश्यति न सिध्यति एकवाराहिं गत्वा गन्धपुष्पधूपबलिविधानं कृत्वा सकलां रात्रिं जपेत् ।
G 679 यावदुश्वशातिं । ततः सिद्धो भवति । सर्वसाधनेषु सा च वक्तव्या । रूपकशतं दिने दिने ददाति । सर्वं व्ययीकर्तव्यम् । अन्यथा न ददाति । पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य अरण्यगोमयानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । गोशतं लभति । मातुलुङ्गफलानां अष्टसहस्रं जुहुयात् पलाशाग्नौ । यावद् गणपतिरागच्छति । स वक्तव्यः—मम दिने दिने दीनारमेकं देहि । ददाति । सर्वः व्ययीकर्तव्यः । भगवतः पादौ स्पृशेति वक्तव्यः । ततः सिद्धो भवति । अथवा न ददाति बिल्वफलानां दधिमधुघृताक्तानां सधातुके चैत्ये पटस्याग्रतः एकरात्रोषितः वैकङ्कतसमिधाग्निं प्रज्वाल्य अष्टसहस्रं जुहुयात् । अनेन कर्मणा श्रीमां भवति । विषयाधिपतिर्भवति । किंकिराटपुष्पाणि दिने दिने अष्टसहस्रं जुहुयात् । दिनानि सप्त । अष्टौ पणं प्रतिलभते । शान्तिकं कर्तुकामो लाजाहुतीनां अष्टसहस्रं जुहुयात् । शान्तिर्भवति । पुष्टिमिच्छता क्षीरवृक्षसमिधानामग्निं प्रज्वाल्य त्रिसंध्यं तिलतण्डुलानामष्टसहस्रं जुहुयात् । दिवसानि त्रीणि । पुष्टिर्भवति । आम्रकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य दूर्वाङ्कुराणां अष्टसहस्रं जुहुयात् । विवादे उत्तरवादी भवति । अस्तमिते व्रीहितुषाणां नामं गृहीत्वा वामहस्तेन जुहुयात् । सप्तरात्रं वशो भवति । राजसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य तिलतण्डुलानां अष्टसहस्रं त्रिसंध्यं जुहुयात् । दिवसानि त्रीणि अर्थं ददाति । गङ्गायामुसलशब्दरहिते शुचौ प्रदेशे उभयकूलमृत्तिकां गृह्य सचतुरस्रां सप्तहस्तां वेदिकां कृत्वा मध्ये सहस्रपत्रं पद्मं कृत्वा तस्योपरि सुगतवितस्तिप्रमाणं पञ्चलोहितकं चक्रं प्रतिष्ठाप्य मण्डलमध्ये पटस्याग्रतः साधयितव्यः । गन्धपुष्पैः श्वेतचन्दनैरर्चयित्वा मन्दारकरक्तपुष्पमालां दत्त्वा ततो गन्धादिभिः पूजां कृत्वा घृतप्रदीपमाला सप्त देया । चतुर्दिशं चत्वारो घृतकुम्भाः प्रज्वालयितव्याः । चतुर्दिशं चत्वारः कलशाः सर्वबीजपूर्णका रत्नानि च प्रक्षिप्य स्थापयितव्याः । कुन्दुरु-अगरुश्रीपिष्टक-गुग्गुलु-धूपो देयः । बलिविधानं कृत्वा चतुर्दिशं पूर्वोक्तेन दधिभक्तोऽपूपकं देयम् । दक्षिणभूतक्रूरं उदकमिश्रं देयम् । पश्चिमायां दिशि कुरङ्गुडक्षीरपूर्णकं देयम् । उत्तरायां दिशि पायसपूर्णकं बलिमुपहरेत् । ततः पलाशसमिद्भिरग्निं
G 680 प्रज्वाल्य अपामार्गसमिधानां सप्ताभिमन्त्रितानां घृतानामष्टसहस्रं जुहुयात् नामं ग्रहाय । वशो भवति । राजवृक्षसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य लवणमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा शिरादारभ्य एकैकामाहुतिं सप्ताभिमन्त्रितां यावच्चरणाविति नामं ग्रहाय अष्टसहस्रं जुहुयात् । राजा

वशो भवति। शुक्लपञ्चदश्यामष्टम्यां वा पोषधिकोऽहोरात्रोपितोऽपतितगोमयं गृह्य गोचर्ममात्रस्थण्डिलमुपलिप्य सधातुके चैत्ये आर्यमञ्जुश्रियस्य रजतमये वा भाजने कपिलायाः गोः समानवत्सायाः कुमारीमथितं नवनीतं गृह्य कुशपिण्डकोपविष्टः वामहस्तेन भाजनं गृह्य दक्षिणहस्तेनानामिकायामङ्गुल्या आलोडयं तावज्जपेद् यावदूष्मायति। तत् पातव्यम्। मेधावी भवति। सकृदुक्तं गृह्णाति। अथ धूमायति वशीकरणम्। अथ ज्वलति अन्तर्धानं भवति। बहुपुत्रिकां अष्टसहस्रं जुहुयात्। तेन भस्मना उदककुम्भांश्चत्वारः समिश्रीकृत्वा कारयितव्या। अष्टशताभिमन्त्रितां वाचां दक्षिणहस्ते बद्ध्वा यावत् सर्वत्रोत्तरवादी भवति। अपराजितपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात्। संग्रामेऽपराजितो भवति। कुमारीकर्तितसूत्रेण सप्ताभिमन्त्रितेन ग्रन्थयः कर्तव्याः बन्धितव्याः। स्थावरजङ्गमा विषा नात्र प्रभवन्ति। दारुणेन सर्पेण दष्टस्य नामं ग्रहाय सप्ताभिमन्त्रितमुदकचूर्णकं पानाय देयम्। मृतोऽप्युत्तिष्ठति। तथैव चतुर्दिशाभिमन्त्रितं कृत्वा पानाय देयम्। तक्षकेनापि दष्टो जीवति। स्तनगण्डिकायां सप्ताभिमन्त्रितया मृत्तिकया लेपयेत्। मुच्यति। वेदना न भवति। मार्युपद्रवे नगरमध्ये वा अर्धरात्रौ स्थण्डिलकमुपलिप्य शुक्लं बलिं कृत्वा क्षीरवृक्षसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य क्षीराहुतिसहस्रं जुहुयात्। मार्युपशमयति। अथ नोपशमयति, ततोऽन्यतमस्मिन् दिवसे मध्याह्नवेलायां श्लेष्मातकसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य सिद्धार्थानामष्टसहस्रं जुहुयात्। सद्यो मारिं प्रशमयति। अनेन विधिना कृतेन विषमबन्धः। यावन्तः सत्त्वा ते तस्य वशा भवन्ति। कूष्माण्डवशीकरणे कूष्माण्डसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात्। मा(रि)मुपशमयति। प्रेतवशीकरणे तिलपिष्टकानामष्टसहस्रं जुहुयात्। प्रेता वश्या भवन्ति। पिशाचवशीकरणे श्मशानचेलकानामष्टसहस्रं जुहुयात्। पिशाचा वशा भवन्ति। यक्षवशीकरणे वटवृक्षसमिधानां दधिमधु- G 681
घृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात्। यक्षा वशा भवन्ति। अपस्मारोजेहारवशीकरणे ऊर्णाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात्। वशा भवन्ति। घृताक्तानां गुग्गुलुगुलिकानामष्टसहस्रं जुहुयात्। महादेवानुचरा ग्रहा वशा भवन्ति। वीरक्रयक्रीतां मनःशिलां गृहीत्वा राजवृक्षसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य तावज्जपेद् यावदग्निवर्णा भवति। ततः समानवत्सायाः गोः कपिलायाः कन्यामथितेन नवनीतेन कृत्वा तस्मिं घृते निर्वापयेत्। एवं दधिपूर्णभाजने मधुपूर्णे च। ततः अनेनैव रक्षां कृत्वा समुद्गके स्थाप्य चन्द्रग्रहे त्रिरात्रोषितेन सधातुके चैत्ये आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः पूजां कृत्वा उत्तरामुखेनाश्वत्थपत्रचतुष्टये स्थाप्य तावज्जपेद् यावदूष्मायति। धूमायति। प्रज्वलति। वशीकरणान्तर्धानमाकाशगमनमिति। एवं अञ्जनहरितालरोचनां चेति। रोचनाया अयं विशेषः—शुक्लपञ्चदश्यां पद्मपत्रे स्थाप्य आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः करसंपुटेन गृहीत्वा तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः। एते च कर्मा मूलपटस्याग्रतः कर्तव्यानि। सप्तरात्रं पञ्चलोहेन पद्मं कृत्वा कुङ्कुमरोचनकर्पूरमुदके पिष्ट्वा पद्मं म्रक्षयित्वा ततः शुक्लाष्टम्यामुपोषधिकेन त्रिःकालस्नायिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन सधातुके चैत्ये आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः दक्षिणेन हस्तेन गृहीतेन तावज्जपेद् यावत् प्रज्वलति। ततस्तेन गृहीतेन विद्याधरो भवति। दशवर्षसहस्राणि जीवति।

एवं कटकमकुटशृङ्खला चेति । एवं शैलरक्तचन्दनं गुग्गुलं नन्द्यावर्तमूलं गिरिकार्णिका तुषं व्रीहिकुष्ठतगरं मधु पिप्पली तुरुष्कं चैकतः कृत्वा समभागानि कारयेत् । ततः कपिलायाः समानवत्सायाः गोः क्षीरं गृह्य कन्यामथितेन नवनीतेन मोदयित्वा गुलिकां कारयेत् । अक्षतैलेन दीपो दातव्यः । तत उपोषधिकेन शुक्लचतुर्दश्यामहोरात्रोषितः अश्वत्थपत्रान्तरितां गुलिकां कृत्वा आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतस्तावज्जपेद् यावद् धूमायति । सखायानां दत्त्वा आत्मना मुखे प्रक्षिपेत् । अन्तर्हितो भवति । अथ ज्वलति, आकाशगामी भवति । अपरो विधिः । सधातुके चैत्ये पटस्याग्रतः पोषधिकेनोदारां पूजां कृत्वा अर्कसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य दधिमधुघृताक्तानां
G 682 खदिरसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् शुक्लचतुर्दश्यामारभ्य यावत् पञ्चदशीति । सिद्धा एव सिद्धो भवति । एवं पोषधिकेन लक्षं जप्तव्यम् । परतः कर्माणि भवन्ति । अनया पूर्वसेवया सिद्धो भवति । अथ राजानं राजमात्रं वा वशीकर्तुकामो भगवतः पूजां कृत्वा राजवृक्षसमिधानां इङ्गुदतैलाक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् चतुर्दशीमारभ्य यावत् पञ्चदशीति । अनेन कर्मणा दुःशीलस्यापि सिद्धिर्भवति । चतुर्वर्णं वशीकर्तुकामः पायसं हविषान्नमानीय पेयकृसरा चेति जुहुयात् । वश्या भवन्ति । रात्रौ शुचिरष्टशतं जपेत् । सर्वबन्धनान्मोचयति । क्रोधमुपशमनं पिण्डकतुषहोमेन वा । कन्यावशीकरणे तिलां जुहुयात् । वस्त्रकामेन कर्पणं जुहुयात् अष्टसहस्रं सप्तरात्रं । वचां अष्टसहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा हस्ते बध्वा यं याचयति तं लभते । नित्यजापेन प्रत्यङ्गिरा पद्मसूत्रादिना अष्टसहस्राभिमन्त्रितेन यस्य हस्ते बध्नाति, तस्य रक्षा कृता भवति । धनमिच्छं गुग्गुलुगुलिकानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । कुलपतिकामः गन्धां जुहुयात् सप्तरात्रं घृताक्तां । ग्रामं लभति । पुष्पमष्टशताभिमन्त्रितं यस्य ददाति, स वशो भवति । कुङ्कुमतगरतालीसपत्रं समृणालशतपुष्पश्रीवेष्टसमायुक्तं विधिनाभिमन्त्रितं राजद्वारे वस्त्रसमालभं स्त्रीपुरुषप्रयुक्तवशीकरणं युद्धविजयकरणम् । ध्वजमष्टसहस्रवारां परिजप्य गन्धपुष्पधूपं चाभिमन्त्रयित्वा सप्तदधिकुण्डेषु अर्घ्यं विसर्जयेत् । परसैन्यं दर्शनादेव च नश्यति । कृष्णतिलां पटस्याग्रतः अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यस्य नामं ग्रहाय भक्षयति, स वशो भवति । अष्टसहस्रजप्ता सर्वबीजानि सर्वौषध्यः सर्वगन्धानि च सुरभिपुष्पाणि पद्मं वा सर्वाणि अकालमूलकलशे प्रक्षिप्य, बोधिवृक्षे अष्टसहस्रं जपेत् । स्वयं वा स्नापयेत् । अन्यं वा स्नापयेत् । सर्वोपद्रवेभ्यो मुक्तो भवति । पद्मं वा पद्मपत्रं वा निर्धूमेषु अङ्गारेषु यस्य नाम्ना जुहोति, स वश्यो भवति । बिल्वपत्रं मधुसंयुक्तं अष्टसहस्रं जुहुयात् । राजपत्नी वा राजमहिषी वा वशीकरोति । सर्वसत्त्ववशीकरणे प्रियङ्गुं जुहुयात् । यस्य नामं ग्रहाय रक्तशालयः जुहोति । स वशो भवति । कुमारीवशीकरणे केसरपुष्पां जुहुयात् । पटस्याग्रतः क्षीरपायसं अष्टसहस्रां
G 683 जुहुयात् । यस्य नाम्ना स वशो भवति । सधातुके चैत्ये पूर्वाभिमुखं पटं प्रतिष्ठाप्य, शुक्लप्रतिपदमारभ्य वेदिं पूर्वोत्तराग्रैर्दर्भैर्विस्तीर्य, बिल्वसमिधाभिरग्निं प्रज्वाल्य, विकसितानां पद्मानां दधिमधुघृताक्तानां त्रिसंध्यमष्टसहस्रं जुहुयात् । अगुरुतुरुष्क-कुन्दुरुक-श्रीपिष्टकेन च धूपो देयः । क्षीरदधिभक्तं बलिं दद्यात् । विघ्नानां सर्वभौतिकं बलिं देया । ततोऽष्टम्यां

प्रभृति विकसितानां श्वेतपद्मानां दधिमधुघृताक्तानां त्रिसंध्यमष्टसहस्रं जुहुयात् । महानिधानं विषयं वा लभते । दधिमधुघृताक्तानां पीतपुष्पाणां दिने दिनेऽष्टसहस्रं जुहुयात् । देशं लभति । त्रिरात्रोषितः सक्तवाहारेण वा होमः कर्तव्यः । एवं सततिः शतसहस्रैरानन्तर्य-कारिणस्यापि सिध्यति । तदेव समिधानां दधिमधुघृताक्तानां लक्षं जुहुयात् । सुवर्णकोटिं लभते । प्रातरुत्थाय प्रयतः स्नातो ब्रह्मचार्यग्निं प्रज्वाल्य, नागकेसरप्रियङ्गुं राजानं राजमात्रं वा वशीकर्तुकामोऽष्टसहस्रं जुहुयात् । त्रिसंध्यम् । त्रिमासाभ्यन्तरेण विशिष्टफलं प्राप्नोति । द्रव्यं प्रभूतं च । गोवत्सतुण्डानां शतसहस्रं जुहुयात् । गोशतं लभते । प्रियङ्गुनागकेसर-समिधानां यस्य नाम्ना जुहोति, स वश्यो भवति । खदिरसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां पटस्या-ग्रतोऽष्टसहस्रं त्रिसंध्यं जुहुयात् । महानिधानं लभति । तद् दीयमानमक्षयं भवति । समुद्र-गामिनीं नदीमवतीर्य पद्मानां रक्तचन्दनाक्तानां शतसहस्रं प्रवाहयेत् । पद्मराशितुल्यं निधानं पश्यति । पटस्याग्रतो बिल्वाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यम् । भोगानुत्पादयति । तिल-तण्डुलानेकीकृत्य पटस्याग्रतोऽष्टसहस्रं त्रिसंध्यं जुहुयात् सप्तरात्रम् । अक्षयमन्नमुत्पद्यते । नागानां नागपुष्पाणि जुहुयात् । वशा भवन्ति । यक्षाणां पटस्याग्रतो गुग्गुलुगुलिकानामष्ट-सहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रमशोकसमिद्भिः । यक्षिणी वशा भवति । श्रीवासकं पटस्याग्रतो जुहुयात् किन्नरा वशा भवन्ति । देवानां वशीकर्तुकामः मूलपटस्याग्रतो-ऽगरुसमिधानां घृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यमेकविंशतिरात्रम् । वशा भवन्ति । पटस्याग्रतः कुन्दुरुकं जुहुयात् । प्रेता वशा भवन्ति । सर्जरसं जुहुयात् । विनायका वशा भवन्ति । पिण्याकहोमेन सर्वां वशीकरोति । राजानं राजमात्रं वा वशीकर्तुकामः G 684 पटस्याग्रतो राजसर्षपां तैलाक्तामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । वशा भवन्ति । यदुच्यन्ति तत् करोति । राजकन्यावश्यार्थे पटस्याग्रतो राजिकां जुहुयात् । पुराहितं वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः घृतं जुहुयात् । क्षत्रियं वाहुतिभिः । वैश्यवशीकरणे क्षीरं जुहुयात् । शूद्रवशीकरणे कृसरां जुहुयात् । सर्वस्त्रियोवशीकरणे लवणहोमेन । रण्डां माषहोमेन । सर्वसत्त्वां तिलतैलाक्ते वशीकरोति । सर्वेषां अष्टसहस्रिको होमः सप्तरात्रम् । शुचिर्भूत्वा चतुर्भक्तोषितः बिल्वसमि-धाभिरग्निं प्रज्वाल्य बिल्वानां जुहुयात् । शतसहस्रं निधानं पश्यति । विंशतिरात्रं क्षीरयावका-हारेण श्वेतसर्षपाणां लक्षं जुहुयात् । अर्थं लभते । कृतपुरश्चरणः गौरसर्षपाणां घृताक्तानां पटस्याग्रतः रात्रौ दिवसं जुहुयात् । मासेनैव सुवृष्टिर्यत्रेच्छति । चतुर्भक्तोषितो दशसहस्राणि एतदेव जुहुयात् । अर्थं लभते । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य उत्पलानां लक्षं जुहुयात् ग्रामं लभति । पटस्याग्रतः गन्धपुष्पधूपं वा क्षीरयावकाहारः पद्मं जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं प्रतिलभते । कुमुदानां पटस्याग्रतो लक्षं जुहुयात् । यं मनसा चिन्तयति, तं लभते । पटस्याग्रतो बिल्वानां सहस्रं जुहुयात् । निधानं पश्यति । पटस्याग्रतो दधिमधुघृताक्तानां पद्मानां शतसहस्रं जुहुयात् क्षीरयावकाहारः । सुवर्णसहस्रं प्रतिलभते । त्रिरात्रोषितोऽगरुसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् । ततः सर्वरात्रिको जापो

देयः । पटः प्रकम्पते । स्रग्दामचलनं वा । ततः सिद्धो भवति । यं मनसा चिन्तयति, तं ददाति । महापुरुषवशीकरणे पटस्याग्रतः जातीपुष्पाणि जुहुयात् । विषमार्थं करवीरपुष्पाणां जुहुयात् । कर्णिकारपुष्पाणां जुहुयात् । दीनारशतं लभते । सेनापतिकामः कुन्दपुष्पाणि जुहुयात् । सैनापत्यं लभते । तारावर्तपुष्पं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभते । मुचुलिन्दलक्षं जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं लभति । श्वेतकरवीरपुष्पहोमेन त्रिपट्टे बद्धो भवति । विषयमपि लभते । पटस्याग्रत आधारकोऽग्निमुपसमाधाय प्रतिदिनं वर्धमाना पूजा कार्या । गन्धतैलाक्तानां कनकस्य
G 685 तुटिमात्रं सहस्रं जुहुयात् यावद् भगवां वरदः । ततः विद्याधरचक्रवर्ती भवति यं प्रार्थयति । रजतचूर्णं जुहुयात् । राज्यं ददाति । आयसं चूर्णं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभति । कुङ्कुमाहुतिं गन्धतैलाक्तां शतसहस्रं जुहुयात् । यावतः प्रार्थयति, तं लभति । सर्वगन्धाहुतीनां लक्षं जुहुयात् । यथाभिप्रेतं विषयं लभति । कर्पूराहुतीनां लक्षं जुहुयात् । दीनारलक्षं लभति । चन्दनसमिधानां गन्धतैलाक्तानां लक्षं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभति । सुवर्णचेलाहुतिलक्षं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभति । अगरुसमिधानां लक्षं जुहुयात् । श्रुतिधरो भवति । धासकसमिधानां गन्धतैलाक्तानां लक्षं जुहुयात् । महाव्याध्युपशमो भवति । निम्बफलानां गन्धतैलाक्तानां लक्षं जुहुयात् सर्वबन्धनान्मोचयति । समानवत्साया गोः घृतं गृह्य, लक्षाभिमन्त्रितं पिबेत् । मेधावी भवति । अर्कपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । सर्वसत्त्ववल्लभो भवति । पुष्पफलं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा यस्य दीयते, स वशो भवति । पोषधिकः शुक्लपञ्चदश्यां सधातुके चैत्येऽपतितगोमयेन मण्डलकमुपलिप्य, गन्धपुष्पघृतप्रदीपाभिः पूजां कृत्वा, उदुम्बरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य, ब्राह्मीसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् । हविष्याहारो मेधावी भवति । ब्राह्मणवशीकरणे क्षीरं जुहुयात् । स वशो भवति । क्षत्रियस्य हविष्यं जुहुयात् । वशो भवति । वैश्यवशीकरणे यवदधिमिश्रं हविष्यं चैकीकृत्य जुहुयात् । वशो भवति । शत्रुं दृष्ट्वा जपेत् । स्तम्भितो भवति । उदकेन सप्ताभिमन्त्रितेन सर्वाशां पूरयति । सर्वरोगेषु उन्मार्जनम् । लोध्रगुलिकाया सप्ताभिमन्त्रितयाक्षीण्यञ्जयेत् । अक्षिरोगमपनयति । ग्लानस्य सूत्रकं सप्ताभिमन्त्रितं बन्धितव्यम् । सर्वग्रहा न प्रभवन्ति । भस्मना सप्तजप्तेन मण्डलबन्धः शिखाबन्धेनात्मरक्षा भवति । सप्तजप्तेन लोष्टकेन दिशाबन्धः । दुःप्रसवाया तैलं परिजप्य दातव्यम् । सुखं प्रवसति । मूढगर्भाया ऋतुकालसमये क्रान्तस्नाताया गोक्षीरमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां प्रणामं कारयित्वा पानाय देयम् । परमान्नं च घृतमिश्रं भोजयितव्याः । ततः पुत्रं प्रवसति । प्रासादिकं शुक्लप्रतिपदमारभ्य पूर्वाभिमुखं पटं प्रतिष्ठाप्य, प्रतिदिनं गुग्गुलुगुडिकानामष्ट-
G 686 सहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यम् । यमिच्छति तं ददाति । कृतपुरश्चरणः सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य, गन्धपुष्पधूपबलिं दत्त्वा, पटस्याग्रतोऽगरुसमिधानामङ्गुष्ठपर्वमात्राणां तुरुष्कतैलाक्तानां जुहुयात् सप्तरात्रं त्रिसंध्यम् । राज्यं ददाति । विद्याधरमन्तर्धानं वा पादप्रचारिकं वा श्रुतिधरत्वं ददाति । अथ गुलिकां साधयितुकामेन कर्णिकारकेसरं नागकेसरं श्वेतचंदनं गजमदं चैकीकृत्य, छायाशुष्कां गुडिकां कृत्वा, शुचिवस्त्रायाः कन्यायाः पीषयेत् । पुष्यनक्षत्रे

करणीयम् । शुचिर्भूत्वा सप्तगुटिकां त्रिलोहवेष्टितां कृष्णागरुसमुद्गके प्रक्षिप्य, पटस्याग्रतो जपेद्, यावत् खटखटायति । तां गृह्य भगवतो एकं दत्वा मुखे प्रक्षिप्यान्तर्हितो भवति । पटस्याग्रतः लक्षानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । निधानं लभति । कदम्बपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । सर्वसत्त्वा वशाः । समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य उपवसितः केसरपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् । दशवस्त्रयुगानि लभति । पटस्याग्रतः जातीपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां त्रिसंध्यमष्टसहस्रं जुहुयात् दिवसानि सत । सर्वसत्त्वानां प्रियो भवति । विषयं ददाति लभति । कुमुदपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । दिवसानि सप्त । पञ्चविषयाणि लभन्ते । राजवशीकरणे राजसर्षपां जुहुयात् सप्तरात्रम् । ब्राह्मणवशीकरणे करण्टकपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । वैश्यवशीकरणे सौगन्धिकपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । शूद्रवशीकरणेऽष्टसहस्रेणाग्नौ जुहुयात् सप्तरात्रम् । रण्डा वैकङ्कतसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रम् । सधातुके चैत्ये रोचनामष्टसहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा राजकुले गच्छेत् । सर्वे वशा भवन्ति । दूर्वाङ्कुराणामष्टसहस्रं जुहुयात् । शान्तिर्भवति परस्य । आत्मनः शान्तिं कर्तुकामेन त्रिसंध्यं क्षीरं जुहुयात् । शान्तिर्भवति । महादेवस्य दक्षिणां मूर्ति ताम्रभाजने घृतं स्थाप्य, सहस्रं जपेत् । सर्वभूतिकं बलिं निवेद्य च । घृतं चलति । ततः सिद्धो भवति । ललाटे तिलकं कृत्वा सर्वजनप्रियो भवति । मेधावीकरणे भगवतश्चामिताभस्यार्यमञ्जुश्रियस्य च पूजां कृत्वा रजते वा ताम्रे वा घृतं स्थाप्य तावज्जपेद् । यावत् त्रिविधा सिद्धिः । तं पीत्वा मेधावी भवति । धूमायमानेऽन्तर्धानम् । ज्वलितेनाकाशगमनम् । मनःशिलां साधयितुकामेन क्षीरयावकाहारो लक्षं जपेत् । महादेवस्याग्रतः त्रिरात्रोपितः सप्तभिरश्वत्थपत्रैः प्रतिष्ठाप्य त्रिभिराच्छाद्य सर्वभूतिकां बलिं निवेद्यम् । अयन्त्रित आत्मनः सखायानां च रक्षां कृत्वा तावज्जपेद्, यावत् त्रिविधा सिद्धिः । ज्वलितेन दशवर्षसहस्राणि जीवति । अयोमयं चक्रं कृत्वा त्रिशूलं वा, उदारां पूजां कृत्वा दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा पटस्याग्रतः पर्यङ्कोपविष्टस्तावज्जपेद्, यावद् चिटचिटायति । ज्वलति । तं गृहीत्वा विद्याधरो भवति । सर्वदेवमनुष्या वशा भवन्ति । अङ्गुलिसाधनं कर्तुकामः नद्या उभयकूलमृत्तिकां गृह्य, तयाङ्गुलिं कारयेत् । तमङ्गुलिं पटस्याग्रतः स्थापयित्वा, तावदाकर्षयेत् । यावदागच्छेति । सिद्धा भवति । तया यमाकर्षयति, स आगच्छति । रोचनां साधयितुकामः कृतपुरश्चरणः पटस्याग्रतः प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पधूपं दत्त्वा तावज्जपेद्, यावज्ज्वलितमिति । तया च सिद्धया पञ्चवर्षसहस्राणि जीवति । पद्मं साधयितुकामेन रक्तचन्दनमयं पद्मं कृत्वा पटं सधातुके चैत्ये प्रतिष्ठाप्य तस्याग्रतो गृहीत्वा कृतपुरश्चरणस्तावज्जपेद्, यावज्ज्वलतीति । गृहीत्वा सर्वविद्याधरचक्रवर्ती भवति । कैलासानुचरा देवाः वशा भवन्ति । सर्वविद्याधराणामधृष्यः । उदकेन विषचिकित्सा । ज्वरादेशनं खस्थावेशिनं सकृज्जप्तेनात्मरक्षा । सूत्रकेनोदकेन· जप्तेन सखायरक्षा । त्रिजप्तेन दिशाबन्धः । चतुर्जप्तेन मण्डलबन्धः । कृष्णाष्टम्यामहारात्रोषितेन कपिलाया गोः समानवत्साया अपतितगोमयेनार्यमञ्जुश्रियं कृत्वा पूर्वाभिमुखं स्थाप्य महतीं पूजां कृत्वा, तस्याग्रतो लक्षं

G 687

जपेत् । ततो भगवां शिरः कम्पयति, अन्यं वा सिद्धिनिमित्तं दर्शयति । ततः सिद्धो भवति । यं चिन्तयति, तं सर्वं करोति । भगवां वरदो भवति । सर्वेच्छां संपादयति । स्वप्ने च शुभाशुभं कथयति । यथेष्टं प्रयुञ्जीत । पूर्वाह्णे सहस्रजप्तेन मृष्टमन्नमुत्पद्यते । पोषधिकः
G 688 क्षीरयावकाहारः पर्वतशिखरमारुह्य शतसहस्रं जपेत् । दर्शनं भवति । ईप्सां संपादयति । पटस्याग्रतः सप्तरात्रं कुन्दुरुकमष्टसहस्रं जुहुयात् कृतपुरश्चरणः । एकप्रदेशे राजा भवति । त्रिसंध्यं कणानामष्टसहस्रं जुहुयात् सर्वरात्रम् । दीनारशतं लभति । आटरुषककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य आटरुषकपुष्पाणां घृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । सुवर्णं लभति । कृष्णचतुर्दश्यामहोरात्रोषितेन घृताक्तानां राजिकामष्टसहस्रं जुहुयात् । रूपकसहस्रं लभति । अथवा ग्रामं भवति । पटस्याग्रतः श्लेष्मातककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य, त्रिरात्रं दूर्वाप्रवालानां लक्षं जुहुयात् । गोसहस्रं लभति । सुरसीपत्राणामष्टसहस्रं जुहुयात् । दिव्यं गृहं लभति । मनसा लक्षजप्तेन पुराणसहस्रं लभति । श्रीपिष्टकसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रं त्रिसंध्यम् । दीनारसहस्रं लभति । यथाभिप्रेतं सर्वं संपादयति । श्रीमांश्च भवति । सुभगश्च भवति । नद्यायां रक्तपुष्पाणि होमयेत् । रक्तानि वस्त्राणि लभते । शुक्लाष्टम्यां शुक्लपञ्चदश्यां वा विविक्तभूप्रदेशे श्वेतार्कस्याधस्तादार्यमञ्जुश्रियस्य गन्धपुष्पधूपं च दत्त्वा माल्यं चाष्टसहस्रं जपेत् । पश्चादङ्गुष्ठपर्वमात्रमार्यमञ्जुश्रियं कारयेत् । शुक्लाष्टम्यां विविक्ते प्रदेशे वल्मीके शुक्लगन्धबलिमाल्यधूपनिवेद्यमष्टसहस्रं जपेत् । ततो वल्मीकमृत्तिकां गृह्य गन्धोदकेन मर्दयेत् । तस्या मृत्तिकाया पूर्वकृतं प्रतिमामुद्रमर्कक्षीरेण प्रतिमुद्रां कृत्वा ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्य यावदष्टमीति त्रिःकालं भगवतः पूजां कृत्वा बलिं दद्यात् । ततो जातीपुष्पाणामष्टसहस्रेण हन्तव्यः । पोषधिकेन क्षीरयावकाहारेण दर्भसंस्तरशायिना साधयितव्यम् । दीनारसहस्रं लभति । सततजापेन यात्रासिद्धिमवाप्नोति । यदि दिवसानि सप्ताष्टसहस्रं जपेत् । ग्रामं लभते । श्रीमां भवति । अर्थमुत्पादयितुकामेन गोष्ठं गत्वा कृष्णाष्टम्यां परेभ्यः क्षीरयावकाहारो लक्षं जपेत् । अपरस्मिं कृष्णचतुर्दश्यां ततोऽहोरात्रोषितेन तत्रैव शतसहस्रं जप्तव्यम् । दीनाराणामष्टशतानि लभति । यमिच्छति सुवर्णं वा ग्रामं वा, लभति । कृष्णचतुर्दश्यामहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः बोधिवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य वचामष्टसहस्रं जपेत् । दीनारशतं लभति । कृष्णाष्टम्यां पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य, दधिमधु-
G 689 घृताक्तानां गुग्गुलुगुडिकानां पटस्याग्रतः शतसहस्रं जुहुयात् । दीनारशतं लभते । शतपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । दीनारशतं लभति बिल्वसमिधानां शतसहस्रं जुहुयात् । यमिच्छति तं संपादयति । गङ्गानदीतीरे, समुद्रपुलिने वा, अनुपहते मानुषवर्जिते वालुकायां सुगतवितस्तिप्रमाणं स्तूपं कृत्वा यथाविभवतो गन्धपुष्पधूपं दत्वा अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कुर्यात् । एवं दिने दिने गन्धादीन् दत्त्वा यावदष्टोत्तरं स्तूपसहस्रं पूर्णमिति । पट्टबन्धमवाप्नोति । तिलानामष्टसहस्रं जुहुयात् । यस्येच्छति स वशो भवति । सधातुके चैत्ये पूजां कृत्वाष्टसहस्रं जपेत् । शुभाशुभं कथयति । आप्यायनं कर्तुकामो भगवतोऽग्रतः क्षीरवृक्षसमिधानां घृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । ततः सा विद्या आप्यायिता भवति । सप्तमे

साधने प्रयोक्तव्यः । यत्र ब्रह्मराक्षसोऽन्यो वा सत्त्वः कृतपुरश्चरणः तत्र गत्वा दशसहस्राणि जपेत् । महानिधानं प्रयच्छति । क्षीरयावकाहारः सधातुके चैत्ये संवत्सरं जपेत् । तत्रैव पटं प्रतिष्ठाप्य कृष्णाष्टम्यां त्रिरात्रोषितः उदारां पूजां कृत्वा बलिं निवेद्य पटस्याग्रतः अग्निं प्रज्वाल्य वटवृक्षसमिधानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । कुबेराद्या यक्षाः आगच्छन्ति । न भेतव्यं....च स्थाप्य, तस्योपरि सुपिण्डं पर्यङ्कं बध्वा, हस्तेनावष्टभ्य, तावज्जपेत् तावज्ज्वलितमिति । अत्रान्तरे सर्वनरकतिर्यग्योनिकानां दुःखं व्युपशमयति । विद्याधरनिकायाश्च संनिपतन्ति । ततः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां नमस्कारं कृत्वा गृहीतव्यम् । विद्याधरैरनुगम्यमानो विद्यापुरीं गच्छति । विद्याधरराजा भवति । सर्वविद्याधराः पूजयन्ति । महाकल्पस्थायी भवति । अनेन विधिना चक्रखड्गमुद्गरादयः प्रहरणविशेषाः साध्याः । सा चेद् विद्या साध्यमाना न सिध्यति, तामनेन मन्त्रेण समेतं भगवतो बुद्धस्याग्रतः पटस्य च पूजां कृत्वा अष्टसहस्रं जपेत् । तत्र कुशसंस्तरे स्वप्तव्यम् । ऊनातिरिक्तं यं वा मृगयति, तत्र स्थाने यक्षयक्षिण्यौ सहिता पूर्वसेवः । तत्र मण्डलकमुपलिप्य गौरसर्षपाणामष्टसहस्रं जुहुयात् । आगच्छति । यथेष्टं वक्तव्या । अध्येष्यतां प्रयच्छति । तां भक्ष्य कल्पायुर्भवति । अथ नागच्छति, सप्तरात्रं कुर्यात् । आगच्छति । अथ शान्तिं कर्तुकामः भगवतोऽग्रतः क्षीराहुत्याष्टसहस्रं गन्धोदकेन वाभ्युक्षयेत् । शान्तिर्भवति । G 690

पल्लवेन मयूरचन्द्रकेन वा सर्पदष्टं उन्मार्जयेत् । निर्विषो भवति । वल्मीकशिखरमारुह्य निराहार एकपाद पूर्वाह्लाद् यावदपराह्णं जपेत् । नियतवेदनीयं क्षीयते । तत्र स्थाने यत्र तिष्ठति तत्र पूर्वसेवः । तत्र गत्वा मण्डलकमुपलिप्य गौरसर्षपाणामष्टसहस्रं जुहुयात् । यक्षा आगच्छन्ति । पूर्वस्थापितेन गन्धोदकेन कलशेनार्घ्यो देयः । यक्षा ब्रुवन्ति—'किं कर्तव्यम् ? आहूताः स्म' । वक्तव्यम्—'यक्षा वै आज्ञाकरा भवन्तु ।' तथास्त्वित्युक्त्वान्तर्धीयन्ते यक्षाः । सिद्धा भवन्ति । यं मृगयति तं ददाति । दिव्यानि रसरसायनान्योपधविधानानि प्रयच्छन्ति । ततः सहस्रपरिवृतस्यापि षड्रसमाहारं प्रयच्छति । यन्मृगयति तत् सर्वं प्रयच्छति । एवं वशीकरणे कृष्णयोरेकतरेण त्रिरात्रोषितः कृतरक्षः सुयन्त्रितः पटस्याग्रतो निर्धूमाङ्गारैर्गुग्गुलुगुलिकानामष्टसहस्रं जुहुयात् घृताक्तानाम् । अर्धरात्रौ देवतागच्छति । वक्तव्या-ओपधीं प्रयच्छन्ति, यं वा मृगयति । वस्त्रार्थी दूर्वकाण्डानां घृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात्, वस्त्राणि लभति । वचामष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा मुखे प्रक्षिप्य, सर्वव्यवहारेषूत्तरवादी भवति । सुगन्धतैलं परिजप्य, मुखं म्रक्षयेत् । राजकुलेषूत्तरवादी भवति । अञ्जनमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा अक्षीण्यञ्जयेत् । व्यवहार उत्तरवादी भवति । चन्द्रसूर्यग्रहे वा श्रोताञ्जने मुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद्, यावन्मुक्त इति । पीषयित्वा रक्षां कृत्वाञ्जनमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा, अक्षीण्यञ्जयेत् । अदृश्यो भवति । सर्वगन्धानां पटस्याग्रतो लक्षं जुहुयात् । श्रियं पश्यति । यं वरं मृगयति तं लभति । मौनी भिक्षाहारो लक्षं जपेत् । अन्तर्हितो भवति । पटस्याग्रतो मण्डलकमुपलिप्य पुष्पावकीर्णं कृत्वा उदकचूलकाः सप्ताभिमन्त्रिताः पातव्याः दिवसानि सप्त । मेधावी भवति । पूर्वाधीतं च न नश्यति । ब्राह्मीरसकर्षं क्षीरकर्ष-

मष्टशतं परिजप्य पातव्यम्। दिने दिने मेधा वर्धते। यावदेकविंशतिरात्रम्। पञ्चशतानि
धारयति गृह्णाति। रक्षा उदकेन सप्तजप्तेन शिरसि दातव्यम्। मण्डलबन्धः। खदिरकीलकैरेक-
G 691 विंशतिजप्तैर्गुग्गुलुधूपेनावेशयति। विषच्छुरिकया चिकित्सा पल्लवेन वा ग्रहनाशनम्। सप्तजप्तेन
श्वेतपुष्पेण गुग्गुलुधूपेन वा ग्रहगृहीतानां स्नापयेत्। सूत्रकं बन्धितव्यम्। श्वेतसर्षपां तिल-
मिश्रां घृताक्तां जुहुयात्। वरदो भवति। रात्रौ होमः। सधातुके चैत्ये पूर्णमास्यां सगौरवेण
मण्डलकमुपलिप्य अष्टौ पूर्णकलशा अष्टौ च पुष्पमालागरुतुरुष्कचन्दनकुन्दुरुधूपं दहता ताव-
ज्जपेत्। ततः शरीरसिद्धिं प्रयच्छति। सधातुके चैत्ये क्षीरयावकाहारः यथाविभवतः पूजां कृत्वा
शतसहस्रं जपेत्। जृम्भनमोहानादिषु कर्मसु समर्थो भवति। सक्तुभक्षः नद्यामंसमात्रमुदकमवतीर्य
लक्षं जपेत्। वशीकरणे अन्तर्धानः शिलादिषु प्रयोगेषु सुसमर्थो भवति। नागस्थाने
कर्पासास्थिं जुहुयात् नागा वश्या भवन्ति। यं मृगयति तं लभते। दक्षिणहस्ता-
दङ्गुलिमष्टाभिमन्त्रितं कृत्वा राजानं तर्जयेद् वश्यो भवति। अनेनैव विधिना गज-
व्याघ्रमहिषादींस्तम्भयति। तिलहोमेन नरनारीवशीकरणं विंशितविक्रयेन रक्षा आत्मरक्षा,
पररक्षा, सप्ताभिमन्त्रितेन शिखाबन्धः। युद्धे राजकुले विवादे जपमानस्य विजयो
भवति। आत्मना अभिषेकं कर्तुकामश्चत्वारः कलशा अकालनदीपल्वलप्रस्रवणोदके वा सर्व-
गन्धबीजानि प्रक्षिप्य अष्टसहस्राभिमन्त्रितानि कृत्वा, तेनोदकेनात्मानमभिषिञ्चेत्। सर्वविघ्न-
विनायकालक्ष्मीविनिर्मुक्तो भवति। पिशाचज्वरे गन्धोदकेनाष्टशताभिमन्त्रितेनाभ्युक्षयेत्।
स्वस्थो भवति। वेतालं पूर्वाभिमुखखदिरकीलकैः वालाशल्लकैः सुमन्त्रितं कृत्वा सुप्रयत्नतश्च-
तुर्दिक्षु दिशासु खड्गहस्तान् पुरुषां स्थाप्य, वेतालस्य हृदये उपविश्य, आयसेन स्रुवेण लोह-
चूर्णं जुहुयात्। तस्या मुखाज्जिह्वा निःसरति। तां तीक्ष्णेनं शस्त्रेण च्छित्वा, नीलोत्पलसंनि-
काशं खड्गं भवति। तेन गृहीतेन सपरिवार उत्पतति। विद्याधरराजा भवति। एकादश
वर्षकोटीं जीवति। कालं गतश्च देवेषूपपद्यते। पुष्पलोहमयीं मुण्डिं लक्षणोपेतां कृत्वा पट-
स्याग्रतः कृतपुरश्चरणः सप्तरात्राधिवासितां कृत्वा सहस्रसंपाताहुतिं भगवतोऽग्रतः कृष्णचतु-
र्दश्यां त्रिरात्रोषितः उदारां पूजां कृत्वा बलिविधानं रक्षामण्डलबन्धसीमाबन्धादिकं कृत्वा
G 692 आर्यसंघं यथाशक्तितः भोजयित्वा पादयोः प्रणिपत्य, आर्यसंघं अनुज्ञाप्य म्रियेत्।
पटस्याग्रतः सिद्धार्थपुञ्जकं स्थाप्य, पुञ्जस्योपरि जप्य दातव्यम्। सर्वग्रहावेशनम्।
गुग्गुलुधूपेन सर्वाकालमृत्युप्रशमनं सर्ववातमेघस्तम्भनम्। जापेन सर्षपान् क्षिपित्वा
सावष्टम्भेनाकाशे क्षिपितव्यम्। सर्वमेघस्तम्भनम्। खदिरकीलकं सप्तजप्तं दातव्यम्। निर्विषो
भवति। सर्वकलिकलहविग्रहविवादेषु पञ्चरङ्गिकं सूत्रमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा गुह्यस्थाने
धारयितव्यम्। सर्वकलिकलहविग्रहविवादाः स्तम्भिता भवन्ति। सर्वविषयं मन्त्रेषु पानीयं
सप्तजप्तं दातव्यम्। निर्विषो भवति। अर्थकामः शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेनाहोरात्रोषितः
पटस्याग्रतः कुन्दुरुकधूपो देयः। स्वप्ने कथयति शुभं वाशुभं वा। सप्तसहस्राणि रूपकं
लभति। सर्वमुद्रा भेदभस्मना भोगार्थी नदीसंगमे तडागानामेकतमेऽन्यत्र वा शुचिप्रदेशे पटं

प्रतिष्ठाप्य जापहोमं समारभेत् । पद्मानां दधिमधुघृताक्तानां लक्षं जुहुयात् द्विलक्षं वा । ततः सर्वकाममवाप्नोति । लक्षत्रयहोमेन राज्यं ददाति । एकविंशतिहोमेन महाधनपतिर्भवति । गुग्गुलुगुडिकानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् एकविंशतिरात्रम् । पुष्टिर्भवति । दीनारसहस्रं लभते । कुडचे प्रक्षेप्तव्यः । सर्वशत्रवः स्तम्भिता भवन्ति । गोमयमण्डलकं कृत्वा सूत्रकं गृह्य मण्डलमध्ये स्थाप्य गुग्गुलुधूपं दत्त्वा मन्त्रं जपेत् । यदि जीवति, सूत्रकं नर्तति । न जीवति, न नर्तति । गोमयेन मण्डलकमुपलिप्य, चतुर्हस्तप्रमाणं पुष्पधूपं दत्त्वा, तस्मिन्नेव स्थितो जपेत् । शत्रूणां स्तम्भनम् । शस्त्रं सप्तवारं परिजप्य, धरण्याः स्थाने निखनितव्यम् । सर्वकार्खोटारिछन्ना भवन्ति । परचक्रदण्डं सप्तवारां परिजप्य निक्षेप्तव्यम् । अवध्यो भवति । अपस्मारनाशनम् । अपामार्गसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य, कृष्णतिलां श्वेतकरवीरमिश्रां जुहुयात् । अपस्मारग्रहा नश्यन्ति । सर्वज्वरेषु कृष्णसूत्रकं बन्धितव्यम् । सर्वग्रहडाकिनीषु नीलसूत्रकं बन्धितव्यम् । उत्पातगन्धपिटकलूतलोहलिप्तच्छेदनं गौरमृत्तिकास्या भवति । सर्वसत्त्वानां चन्द्रसूर्योपरागे उपवासं कृत्वा तैलं जपेत् । तेन तैलेन मुखं म्रक्षयेत् । अरिकुलं प्रविशेत् । मैत्रचित्तमुत्पद्यते । अनेनैव विधानेन प्रतिसराष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा हस्ते बध्वा संग्रामेऽवतरेत् । अपराजितो भवति । काल्यमुत्थाय सधातुके चैत्ये गोमयमण्डलकं कृत्वा उदकचुलुकद्वयमेकैकं सप्तवारां परिजप्य, मितितव्यम् । अनालपतः पिबितव्यम् । प्रातर्वेलाकाले ततो भोजने प्रथममालापं त्रयोवारां परिजप्य भोक्तव्यम् । विकालेऽष्टशतं जप्य स्वप्तव्यम् । सर्वकर्माणि विशुध्यन्ति । वाक्यपरिशुद्धिर्भवति । दिने दिने श्लोकशतं गृह्णाति । एवं दिवसानि सप्त । उदक सप्तवारां परिजप्य, ततोऽङ्कुलिसिद्धा भवति । ततोऽङ्कुल्यामाकर्षति । यं स्पृशति स वश्यो भवति । मृत्तिकां परिजप्य बन्धो देयः । छिन्दिता भवति बद्धः । उदरशूले हस्तं सप्तवारां परिजप्य प्रमार्जयेत् । स्वस्थो भवति । त्रयो वारां चीवरकर्णिकं परिजप्य चीवरकर्णिकं बन्धितव्यम् । चोरा बद्धा भवन्ति । तैलं परिजप्य शरीरे देयम् । यं ददाति, तं लभते । गोमयमण्डलकं कृत्वा पुष्पावतीर्णं लोहभाजनं भस्मना परिपूरयित्वा मण्डलमध्ये स्थाप्य तूलिकाष्टशतवारां परिजप्य तस्योपरि स्थातव्यम् । गुग्गुलुधूपं दत्वा मन्त्रं जपता अच्छोटिका दातव्या । यत्र चोरस्तत्र गच्छति । भस्मना मण्डलकं कृत्वा स वश्यो भवति । सर्वसत्त्वा स्तम्भनं मनसीकरणे शुक्लपूर्णमास्यां पटस्याग्रतो बोधिवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य, तिलानामष्टसहस्रं जुहुयात् । वश्यो भवति । खदिरकीलकमष्टशतजप्तां कृत्वा, चतुर्षु दिशासु निखनेत् । सीमाबन्धः कृतो भवति । मण्डलबन्धः । उदकेनैकविंशतिजप्तेन सत्त्वानामुत्सारणम् । सर्षपैः क्रुद्धस्याग्रतो जपेत्, प्रसीदति । अथ राजानं वशीकर्तुकामः, पटस्याग्रतोऽर्ककाष्ठसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां दशसहस्राणि जुहुयात् । वशो भवति । अङ्कुलिसाधनम् । पटस्याग्रतो गन्धपुष्पधूपं दत्त्वा, दक्षिणप्रदेशिनीमङ्कुलीं सप्तभिरश्वत्थपत्रैः स्थाप्य दशसहस्राणि जपेत् । दीनारवस्त्राण्यात्मना तृतीयस्य प्रयच्छति । घृताहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । मेधावी भवति । नागकेसराणामष्टसहस्रं जुहुयात् । कन्या भवति ।

जातीपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् । वस्त्राणि लभते । लक्षजापेन जातिस्मरो भवति । सप्त
व्याधिशतानि भवन्ति । लक्षमेकं क्षीरयावकाहारः कृतपुरश्चरणो भवति । शुक्लाष्टम्यां त्रिरात्रो-
षितः पटस्योदारां पूजां कृत्वा तावज्जपेद् यावत् रश्मिर्निश्चरति । ततः सिद्धो भवति । राज्यं
G 694 विद्याधरत्वं यन्मनसा चिन्तयति तं लभते । पठितमात्रेण सर्वपापमित्राः स्तम्भिता भवन्ति ।
सर्वविघ्नविनायका हता । रक्तसूत्रेण परिवेष्ट्य शरावसंपुटं सधातुके चैत्ये प्रतिमाया अग्रतः
पूजां कृत्वा, तावज्जपेद्; यावत् त्रिविधा सिद्धिर्भवतीति । ऊष्मायमाने पादप्रचारिकं पञ्च-
योजनशतानि गच्छति । सर्वे चास्य पादप्रचारिका वश्या भवन्ति । धूमायमानेऽन्तर्धानम् ।
चतुरङ्गुलेन भूमिं न स्पृशेत् । वर्षसहस्रं जीवति । योजनसहस्रं गच्छति । दशपुरुषबलो
भवति । ज्वलिते कल्पत्रयं जीवति । विद्याधरो भवति । अधर्षणीयश्च भवति । पूर्णपूर्णपञ्च-
दश्यां पोषधिकः पटस्याग्रतः दधिमधुघृताक्तानां पद्मानां दशसहस्राणि जुहुयात् । ततोऽग्नि-
कुण्डाद् दिव्या स्त्री उत्तिष्ठति । वरं ददाति । माता वा भगिनी वा ग्रहेतव्या । ततःप्रभृति
क्षीरयावकाहारो लक्षद्वयं जपेत् । अन्ते त्रिरात्रोषितः पञ्चदश्यां सधातुके चैत्ये प्रतिमायाः
पूजां कृत्वा, भगवतोऽग्रतः अश्वत्थसंस्तरे तावज्जपेद् यावद् दिव्यरूपा स्त्री आगच्छति ।
तस्यार्घं दत्वा वरं याचितव्यम् । भक्तालंकारवस्त्रां प्रयच्छति । वर्षसहस्रं जीवति ।
चन्द्रग्रहे समानवत्साया गोर्नवनीतं गृह्य, षडङ्गुलिमात्रां पुत्तलिकां कृत्वा, चतुर्भक्तोषितः
अश्वत्थसंस्तरं कृत्वा अष्टसहस्रं परिजप्य ग्रसितव्यम् । सर्वराजानो वश्या भवन्ति ।
कनकवीचिकामनःशिलापलं गृह्य, पूर्णपञ्चदश्यां पोषधिकेनोदारां पूजां कृत्वा सुगन्धपुष्पा-
णामष्टसहस्रेण हृदये ताडयितव्या । शेषं कालं सर्वं जपेत् । पञ्च दीनारशतानि लभते ।
पोषधिकेन पूजां कृत्वा सहस्रं जप्तव्यम् । स्वप्ने शुभाशुभं कथयति । घृताक्तानां जुहुयात्
सप्ताहं त्रिसंध्यम् । अष्टसहस्रं जपेत् । राजानं वशमानयति । मदनपुत्तलिकां सर्वालंकारोपेतां
राजवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य शलाकया विद्ध्वा तापयेत् यथा न गलति । अष्टशतिकेन जापेन
त्रिसंध्यं पातालादप्याकर्षयति । अशोककाष्ठमयीं षडङ्गुलां सालभञ्जिकां कृत्वा तां गृह्य पर्वत-
शिखरमारुह्य शतसहस्रं जपेत् क्षीरयावकाहारः । लक्षजापेन ग्रामं लभते । द्विलक्षजापेन यथेष्टं
कर्माणि करोति । त्रिलक्षजापेन कर्मावरणं क्षपयति । चतुर्लक्षजापेनार्यमञ्जुश्रीर्दर्शनं ददाति ।
पञ्चलक्षजापेन बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिर्भवति । षड्लक्षजापेन यत्रेच्छति तत्र लोकधातावुपपद्यते ।
सप्तलक्षजापेन धारणीं प्रतिलभते । अग्निं स्तम्भयितुकामः पट्टिकां सप्तवारां परिजप्य मुखे
G 695 प्रक्षिपितव्यम् । उदके एषैव सिद्धिः । विवादे सूत्रकं अष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा त्रयो ग्रन्थयः
कार्याः । उत्तरवादी भवति । गव्यघृतपलं पञ्चदश्यां भाजने कृत्वा आर्यमञ्जुश्रियस्य पुरतो
गोमयमण्डलकमगरुधूपं दत्वा अष्टोत्तरवारां परिजप्य पिबेत् । पीत्वा च न स्वप्तव्यम् । मेधावी
भवति । दिवसानि सप्त । ज्वरप्रेषणं भूतप्रेषणं आत्मरक्षा वेताडोत्थापनं बिलप्रवेशं वनप्रवेशं
रक्षा सीमाबन्धः दिशाबन्धः चोरव्याघ्रडाकिनीनां जापेन स्तम्भिता भवतीति । अन्तर्धातु-
कामेन शतावरिमूलं सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा बध्नीयात् । अन्तर्हितो भवति । पटस्याग्रतो लक्षं

जपेत्। ततः शतपुष्पाया वीरक्रयेण क्रीत्वा दधिमधुघृताक्तानां जुहुयात्। यावन्तकेन मूल्येन क्रीतानि भवन्ति तच्छतगुणमूलं भवति। दिवसानि सप्त होमं कार्यम्। सुमनसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयाद् दिवसानि सप्त। अर्थं लभति। पटस्याग्रतो मासं जपेत्। दीनारचतुष्टयं लभते। मरीचफलं सप्तवारानभिमन्त्र्य मुखे प्रक्षिप्य यस्य आलापं ददाति स पुत्रवन्मन्यते। सधातुके चैत्ये बुद्धप्रतिमाया अग्रतः कृत्वा उदके क्षिपेत्। कैवर्तानां मत्स्या न भवन्ति। शेफालिकापुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात्। अश्वलण्डेन सप्तजप्तेन धूपो देयः। मत्कुणा न भवन्ति। पुष्पेण फलेन वा लक्षजप्तेन मशका न भवन्ति। वशीकरणम्। राजद्वारिकं दन्तकाष्ठभक्षणं फलदानं गन्धदानं भूमिबन्धं चोरबन्धं सर्वदंष्ट्रास्तम्भनं उपजम्भनं निगडस्फोटनं उदकस्तम्भनं अग्निस्तम्भनं विषोमार्जनं विषसंक्रमणं विषबन्धः भूतवशीकरणं डाकिनीग्रहमोक्षणम्। नष्टविद्याया गोरोचनया भूर्जपत्रे लिखित्वा भगवतोऽग्रतः सधातुके चैत्ये शतवारां जपेत्। प्रभाते पूर्णा भवति। सप्तजप्त्वा सिद्धार्थकां ग्रामे वा नगरे वा क्षिपेत्। ये तत्र वसन्ति ते मृता इव स्वपन्ते यावत् सूर्योदयम्। स्त्रियं पुरुषं वा वशीकर्तुकामो यस्य यतो भागो गृहम्, तां दिशाभिमुखं विकालेऽष्टसहस्रं जप्य स्वपेत्। दर्शनं देयम्। एवं दिवसानि सप्त। वशो भवति। उदके सप्तजप्तेन सर्वदंष्ट्राणां तुण्डबन्धः। ओषधबन्धं मनसा निधानबन्धं खदिरकीलकैरेकविंशतिसप्तनिधानस्थानेषु चतुर्षु कोणेषु निखनेत् कल्पस्थायी सर्व- G 696
सिद्धनमस्कृतः। पात्रखड्गकरकादयोऽनेनैव विधिना। चन्द्रग्रहे भिक्षुणा श्रावयितव्याः। सर्वैरेतैः कल्पस्थायी ब्रह्मचार्यप्रतिहतगतिर्यथेष्टं विचरति। गोमूत्रयावकाहारो लक्षद्वयं जपेद् ग्रामाष्टकं लभति। यमिच्छति तत्रैव तिष्ठति। समुद्रतटे पटं प्रतिष्ठाप्य लक्षं जपेत्। सागरनागराजा स्वभवनमनुप्रवेशयति। चिन्तामणिर्मृगयति। तया गृहीतया सर्वकर्मचारी भवति। तथागतक्षेत्रमपि गच्छति कल्पस्थायी अप्रतिहतः। कुमारीकर्तितसूत्रेणाष्टसहस्राभिमन्त्रितेन ग्रन्थयः कर्तव्याः। सर्वविघ्नविनायका हता भवन्ति। नद्याः पुलिने भिक्षाहारो लक्षत्रयं जपेत् हविष्याशी। नदीसंगमे लक्षं जपेत्। अन्तर्हितो भवति। सर्वान्तर्धानिकानां प्रभुर्भवति। विनये प्रमाणोपेतं पात्रं गृह्यं पटस्याग्रतः पर्यङ्कोपविष्टो दक्षिणहस्तेन पात्रं गृह्य, तावज्जपेद् यावज्ज्वलति। विद्याधरो भवति। एवं यत्र स्थास्यति तत्र वृद्धिर्भवति। एवमप्रमेयानि गुणानि भवन्ति। अथ शान्तिं कर्तुकामः दधिमधुघृताक्तानां सुगन्धिकुसुमानां वाष्टसहस्रं जपेत्। परमशान्तिर्भवति। पौष्टिकम्। तिलतण्डुलमुद्गमाषप्रभृतीनां स्त्रीणां दधिमधुघृताक्तानां क्षीरवृक्षसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य अष्टसहस्रं जुहुयात्। परमपुष्टिर्भवति। पटेन वा विना पटेन। पोषधिकस्त्रिशरणपरिगृहीतबोधिचित्तो दशसहस्राणि जपेत्। ततः पौर्णमास्यां चन्द्रग्रहे वा सर्वकामिकां बलिं दत्त्वा अहोरात्रोषितः सकलां रात्रिं जपेत्। ततः सर्वकर्मसमर्थो भवति। सर्वदिशेष्वप्रतिहतो भवति। आकारितमात्रेण जीवापयति। सप्तजप्तमुदकं प्रेषयेत्। आतुरः पीत्वा स्वस्थो भवति। ग्रहप्रपलायनम्। सर्षपहोमेन साहस्रिकेन। असुरविवरद्वारे पटं प्रतिष्ठाप्य नियमस्थो लक्षं जपेत्। असुरकन्या निर्गत्य प्रवेशयति। वचामुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावत्

त्रिविधा सिद्धिः । ऊष्मायमाने वशीकरणम् । धूमायमानेऽन्तर्धानम् । ज्वलमानेनाकाशगमनम् । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य शुक्लाष्टम्यामारभ्य, पद्मानां लक्षं जुहुयात् । राजा भवति । रक्तचन्दनमयं षोडशाङ्गुलं द्वादशाङ्गुलं वा पोषधिकेन कर्मकारेण दण्डकाष्ठं कारयेत् । ततः पटस्याग्रतो लक्षत्रयं जपेत् । अहोरात्रोषितः पूर्णमास्यामुदारां पूजां कृत्वा दण्डकाष्ठं दक्षिणेन हस्तेन गृह्य तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः । ऊष्मायमाने सर्ववादिपूत्तरवादी भवति । धूमायमानेनान्तर्धानम् । ज्वलितेनाकाशगमनम् । शुक्लपटं समन्तात् प्रावृतं कृत्वा तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति । सहस्रपरिवारं उत्पतति । पटस्याग्रतस्तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः । पटस्याग्रतोऽपामार्गसमिधानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् । राजा वा राजमात्रो वा वशी भवति । क्षीराहारः शाकाहारो वा पोषधिकः सधातुके चैत्ये लक्षत्रयं जपेत् । ततः कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णतिलानामष्टसहस्रं जुहुयात् । कार्षापणसहस्रं लभति । गुग्गुलुगुलिकानां पटस्याग्रतः अष्टसहस्रं जुहुयात् । स्त्रीपुरुषयोर्यमिच्छति तं वशमानयति । गुग्गुलुगुलिकानामष्टसहस्रं जुहुयात् । यमिच्छति सर्वजनस्य प्रियो भवति । राजकुले चोत्तरवादी भवति । अष्टसहस्राभिमन्त्रितेन समालभेत् । सुभगो भवति । पटस्याग्रतः शुक्लप्रतिपदमारभ्य क्षीरयावकाहारस्त्रिःकालस्नायी त्रिचेलपरिवर्ती, अगरुतुरुष्कचन्दनं दहता त्रिशुक्लं निवेद्यम् । बहिः सर्वभूतिकां बलिं निवेद्य सुरभिपुष्पां जलजानि वा स्थलजानि वा सुगन्धी निवेद्यं वा गाव्यघृतप्रदीपत्रयं च । अन्ते त्रिरात्रोषितः सर्वरात्रिको जपो देयः । यं प्रार्थयति तं लभते । संघभक्तश्च यथाशक्त्या कार्यः । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य त्रिरात्रोषितोऽरिष्टसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां त्रीणि अष्टसहस्राणि जुहुयात् । ततः पटादर्चिषो निःसरति, भूमिकम्पः, प्रदीपज्वाला च निश्चरति । पुष्पमाला चलति । एतैर्निमित्तैः सिद्धो भवति । श्रोताञ्जनमश्वत्थपत्रान्तरितं सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा सकृदुच्चारितेन पड्भिर्मासैर्महारोगान्मुच्यते । मासमेकं जपेत् । चीर्णव्रतो भवति । गुग्गुलुधूपेन दष्टमावेशयति । एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थकादिषु । स्त्रीवश्यार्थं पटस्याग्रतः ललाटां मध्वाक्तानामेकविंशति आहुती जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । वश्या भवन्ति । एवमेव रण्डायाः पुरुषस्य । पटस्याग्रतो राजार्कसमिधानां दधिमधुघृता(क्ता)नामष्टसहस्रं जुहुयात् । वश्या भवति । राजपत्न्यादीनां लवणमेकविंशतिरात्रं त्रिसंध्यं जुहुयात् । वशो भवति । राजद्वारे त्रीणि वाराणि सप्तवारां

G 698 शिरमभिमन्त्र्य प्रविशेत् । राजवल्लभो भवति । मयूरचन्द्रकं शताभिमन्त्र्य विषं प्रमार्जयेत् । नश्यति । मनःशिलामश्वत्थपत्रान्तरितां कृत्वा लक्षत्रयं जपेत् । गृध्रसी अपनयति । ज्वरितस्य कुशैरपमार्जनम् । कन्याकर्तितसूत्रं बध्नीयात् । सुभगो भवति । कर्णिकारपुष्पाणां शतसहस्रं जुहुयात् । द्वादशकोटी वस्त्राणि लभते । पुष्पलोहमयं चक्रं कृत्वा सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य अहोरात्रोषितः उदारां पूजां कृत्वा चक्रं ग्रहाय तावज्जपेद् यावन्निमित्तानि भवन्ति । चक्रस्फुलिङ्गा निःसरन्ति तावद् यावत् प्रज्वलितमिति । ततः सिद्धो भवति । सर्वविद्याधरगणाः संनिपतन्ति । सपरिवार उत्पतति विद्याधरराजा कल्पस्थायी, अप्रतिहतगतिः प्रात-

रुत्थाय संवत्सरं जपेत् । वरदो भवति । पटस्याग्रतः एकविंशति लक्षं जपेत् । विद्याधरो भवति । एकादशलक्षं जपेत् । आर्यमञ्जुश्रियं पश्यति । पटस्याग्रतः सतलक्षं जपेत् । अन्तर्हितो भवति । व्याधितः पटस्याग्रतः एकविंशतिलक्षं जपेत् । व्याधिर्नश्यति । कृतपुरश्चरणः द्वादशलक्षं जपेत् । रसरसायनं वा लभति । तं भक्षयित्वा वलीपलितवर्जितो भवति । लक्षद्वयं जप्त्वा राजसर्षपामष्टसहस्रं जुहुयात् । राजमहिषी वशा भवति । सप्तरात्रेणास्यार्थप्रदा भवति । वर्जयित्वा कामोपसंहितम् । पटस्याग्रतः अर्कसमिधानां लक्षं जुहुयात् । सुवर्णपलशतं लभते । लाजानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रन् । विघ्ना न भवन्ति । पिप्पाकाष्टसहस्रं जुहुयात् । सर्वजनप्रियो भवति । त्रयाणां वाराणां यमिच्छति तं लभति । विद्याधरत्वं राज्यमथवा यादृशो भगवान् तादृशो भवामि । एषा सिद्धिः कारुणिकेन सर्वसत्त्वानां निरामिषचित्तेन दानं ददता सिध्यति । अहोरात्रोषितैः पटस्योदारां पूजां कृत्वा, अर्कसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् । यं यमिच्छति तं तं क्षणादेवागच्छति । अगरुप्रियङ्गुनागकेसरं समभागानि चूर्णीकृत्य शरावसंपुटे कृत्वा महेश्वरस्य दक्षिणायां मूर्तौ अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा तेन समालब्धगात्रः संग्रामे द्यूते अष्टसहस्रं जुहुयात् । अपराजितो भवति । अपमृत्युर्न भवति । पटस्याग्रतः नागपुष्पाणामष्टसहस्रेण नरपतिर्वशो भवति । सर्वव्याधिभ्यो विचर्चिकदुष्टव्रणमृत्तिकां सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा दद्यात् । व्युपसमं गच्छति । कृतपुरश्चरणः पञ्चगव्येन कायशोधनं कृत्वा, त्रिःकालस्नायी पयोभक्षः । मूलपटस्याग्रतः अष्टशतिको जपो देयः । पश्चादष्टम्यां कृष्णायां यथाशक्त्य पूजां G 699
कृत्वा पटस्याग्रतः कुशपिण्डकोपविष्टः विल्वसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । आर्यमञ्जुश्रियस्य शिरसि रश्मि निश्चरति । सा साधकं प्रदक्षिणीकृत्य भगवत्प्रतिमाया अन्तर्धीयते । ततः आर्यमञ्जुश्रियं पश्यति । यदि चक्रवर्ती भवति । ततः साधककुटी प्रज्वलति । स्रग्दामचलितेन माण्डलिको राजा भवति । पटस्याग्रतः श्वेतचन्दनेन मण्डलकं कृत्वा गन्धधूपपुष्पबलिविलेपनं च दत्वा केशरपुष्पाणां शतत्रयं गृहीत्वा अष्टशताभिमन्त्रितं घृतप्रदीपत्रयं प्रज्वाल्य उदुम्बरसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य एकैकं पुष्पमष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा घृताभ्यक्तानां जुहुयात् । यमिच्छति स वशो भवति सप्तरात्रेण । यः त्रिकालं परिवर्तयति तस्य पञ्चानन्तर्याणि तन्वीभवन्ति । अष्टशतजापेन प्रतिदिवसं ब्रह्महत्या तन्वीभवति । सततजापेन यमिच्छति तं ग्रामं लभति । चक्षुषा यं पश्यति स वशो भवति । वादे जपेनोत्तरवादी भवति । तिलमाषां जुहुयादर्थमुत्पादयति । वटशृङ्गानामष्टसहस्रं जुहुयात् । कृत्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां नमस्कारं दशवारां परिवर्तयेत् । श्रौत्रं प्रतिलभते । आर्यमञ्जुश्रियं पूर्वोक्तेन विधानेन पटके फलके वा अश्लेषकैर्वर्णैश्चित्रापयितव्यः । तस्याग्रतो पूजां कृत्वा शतसहस्रं जपेत् कुशसंस्तरशायी क्षीरयावकाहारः त्रिःकालस्नायी । शुचिवस्त्रप्रावृतेनाष्टाङ्गपोषधिकेन प्रतिपदमारभ्य जपो देयः यावत् पञ्चदशीति । ततः व्याधिं प्रशमयति । कृतपुरश्चरणः क्षीरगोमूत्राहारः यावकाहारो वा त्रिःकालस्नायी पोषधिकः सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य प्रतिदिनं घृतप्रदीपो प्रज्वालयितव्यः । पद्मसहस्रेण च पूजा कर्तव्या । कृष्णपक्षे जपो देयः । शुक्लप्रतिपदे साधनारब्धव्या । पौर्णमास्यां त्रिरात्रोषितेन उदारां

पूजां कृत्वा सर्वरात्रिको जापो देयः। ज्वलितमात्रेण गगनमुत्पतति। विद्याधरो भवति विद्याधर-
सहस्रपरिवृतः। द्विरष्टवर्षाकृतिः आकुञ्चितकुण्डलकेशः अवध्यः सर्वविद्याधराणाम्। आवेशनं
धूपेन विषनाशनं पल्लवेन आत्मरक्षा जापेन शुक्लचतुर्दश्यामारभ्य यावत् पञ्चदशीति शुचिना
G 700 शुचिवस्त्रप्रावृतेन अष्टाङ्गपोषधिकेन पटस्याग्रतो यं मृगयति तं लभते। घृतमष्टशताभिमन्त्रितं
कृत्वा पिबेत् दिवसानि सप्त। मेधावी भवति। पटस्याग्रतः मल्लिकपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात्
सप्तरात्रम्। द्रव्यमुत्पद्यते। शुक्लचतुर्दश्यां त्रिरात्रोपितः उदुम्बरकाष्ठैः अग्निं प्रज्वाल्य उदुम्बर-
समिधानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। पञ्चदीनारशतानि लभते। अन्धः पोषधिको
कृष्णचतुर्दश्यां दीपानामष्टसहस्रं प्रज्वाल्य दीपवर्तीनामष्टशतं जुहुयात्। पश्चाज्जापो देयः।
ततः चक्षुः प्रतिलभति। बधिरः पुस्तकं गन्धकुटिं प्रवेशयित्वा अष्टसहस्राभिमन्त्रितानां
पद्मानामष्टसहस्रं जुहुयात्। शान्तिर्भवति। पटस्याग्रतः मालतीपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां
अष्टसहस्रं जुहुयात्। शान्तिर्भवति। कृतपुरश्चरणः कृष्णपञ्चम्यां सधातुके चैत्ये पटं प्रति-
ष्ठाप्य महतीं पूजां कृत्वा उदारां बलिं निवेद्य बाह्यां सर्वभौतिकां बलिं निवेद्य प्रियङ्गुचूर्णेन
पुत्तलिकां कृत्वा लिखेत्। मण्डलबन्धं दिशाबन्धं कृत्वा कुशपिण्डकोपविष्टः तावज्जपेद्
यावदुल्कापातं भवति। पुनरपि तावज्जपेद् यावत् पटः प्रकम्पते। अन्यानि च
सिद्धिनिमित्तानि भवन्ति। ततः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यो नमस्कारं कृत्वा उत्पतते। विद्या-
धरो भवति कामरूपी। योजनसहस्रात्तु शृणोति सर्वविद्याधरावध्यः। कृतपुरश्चरणः कृष्ण-
चतुर्दश्यामहोरात्रोषितः उदारां पूजां कृत्वा अक्षतं सर्वं गृह्य गन्धपुष्पैरलंकृत्य धूपेन च
दक्षिणहस्तेन गृह्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति। पटस्याग्रतः आर्यमञ्जुश्रियस्य रोचनां
स्थाप्य तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति। ततः ग्रहेतव्यम्। गृहीतमात्रेण च नागबलो भवति।
परप्रहरणा न प्रभवन्ति। यं मन्त्रो पयति (?) स वशो भवति। त्रीणि च वर्षशतानि
जीवति। कृष्णचतुर्दश्यामहोरात्रोषितः पटस्याग्रतो बिल्वकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य वैकङ्कत-
समिधानां कटुतैलाक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्ताहम्। कन्यां यामिच्छति सा वशा भवति।
कृष्णचतुर्दश्यां एकरात्रोषितः श्मशानं गत्वा अपतितगोमयेन मण्डलमुपलिप्य अक्षतकपालं
गृह्य रक्तचन्दनेन प्रक्षाल्य रक्तपुष्पधूपैश्चाभ्यर्च्य तत उपविश्य तं कपालं मन्त्रं जपता
कर्षयेत्। यावत् कपालश्चलति तदा सिद्धो भवति। यमङ्गुल्यामाकर्षति स आगच्छति। तत्
G 701 सर्वं करोति। शान्तिं कर्तुकामेन पटस्याग्रतः लक्षं जपेत्। ततो पटचलनं भवति तथागतप्रति-
माचलनं वा कल्पसिद्धिर्भवति। अष्टशताभिमन्त्रितं नीलशाटके ग्रन्थिं कुर्यात्। मल्लस्य जयो
भवति। एकविंशतिजप्तं भस्मं मल्लस्य शिरसि दापयेत्। युद्धे जयो भवति। शुक्लप्रतिपदमारभ्य
पटस्याग्रतः घृतक्षीरसहितां ताम्रभाजने स्थाप्य अष्टशतजप्तं कृत्वा पिबेद् दिवसानि सप्त।
श्रुतिधरो भवति। यद्यार्यमञ्जुश्रियस्य मुद्रारश्मिर्निश्चरति। सधातुकं प्रदक्षिणीकृत्य ऊर्ध्वं
गच्छति। विद्याधरो भवति। कामरूपी अप्रतिहतः त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवति। कृष्णाष्टम्या-
महोरात्रोषितः निर्भयेन भूत्वा ततो विद्याधरेण सप्ताभिमन्त्रितेन सिंहस्ताडयितव्यः। ततः सिंहः

सिंहनादं मुञ्चति । साधकश्च निश्चेष्टो भवति । नालिकान्तरं विज्ञो भवति । ततः साधकेन सप्तवारां मन्त्रमुच्चारयितव्यः । ततः सिंहमभिरुहितव्यम् । सर्वविद्याधराश्च संनिपतन्ति । सिंहवाहनः सपरिवार उत्पतति । मनपवनगतिरनेकविद्याधरपरिवृतः कल्पस्थायी । यदा म्रियति तदा यत्रेच्छति तत्र उत्पद्यति ॥

सिंहसाधनम् । पुनः सिंहसाधनं कर्तुकामेन शुक्लपूर्णमास्यां अत्यन्तमौनी क्षीरयावकाहारो यावदपरा पौर्णमासीति लक्षं जपेत् । मौनी पौषधिको वज्रहतं काष्ठं गृह्य क्षीरे सप्तदिवसां स्थापयेत् । ततोधृत्य श्वेतमृत्तिकया चन्दनोदकपरिवर्तितया वज्रहतं काष्ठं स्नापयेत् । ततः साधकः पोषधिकेन रूपकारेण सिंहः कारयितव्यः । ततः पुष्यनक्षत्रे रत्नत्रयस्योदारां पूजां कृत्वा संघोद्दिष्टकभिक्षवो भोजयितव्या । पटस्याग्रतः उदारां पूजां कृत्वा नानाबलिं निवेद्य ततः साधकेन शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन कुशपिण्डकोपविष्टः दक्षिणहस्तेन सिंहमवष्टभ्य तावज्जपेत् यावत् सिंहवच्चलति । चलिते विविधप्रकारा निमित्ता जायन्ते । ततः अर्घो देयः । पुनरप्यष्टशतं जप्तव्यम् । सर्षपा आगच्छन्ति । मन्त्रं जपता सिंहः स्प्रष्टव्यः । स्त्री भवति । सा ब्रवीति—किं करोमीति । सा वक्तव्या शरीरान्तर्गता भवस्वेति । ततः साधकस्य हस्ततलेऽन्तर्धीयते । तत्क्षणादेवाकुञ्चितकुण्डलकेशः द्विरष्टवर्षाकृतिः उदितादित्यसमप्रभः शक्तिहस्तः अप्रतिहतगतिः यां दृष्ट्वावलोकयति तैः सार्धमुत्पतति । सर्वे विद्याधराश्चास्य वश्या भवन्ति । कल्पस्थायी । यदा मृयति तदा देवेषूपपद्यते । कृतपुरश्चरणः सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य पश्चामाना मुखे प्रतिष्ठाप्य अदृश्यो G 702
भवति । वर्षसहस्रं जीवति कृतपुरश्चरणः क्षीरयावकाहारः । पर्वतशिखरे पटं प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पैर्धूपैरभ्यर्च्य लक्षत्रयं जपेत् । ततः भस्म वल्मीकमृत्तिकया च पोषधिको गृह्य क्षीरेणालोड्य मर्दयित्वा सुगतवितस्तिप्रमाणां मयूरः पोषधिकेन चित्रकरेण अश्लेषकैर्वर्णैश्चित्रापयितव्यः । विविक्ते प्रदेशे गत्वा पटं प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पधूपैरभ्यर्च्य सर्वभूतिकां बलिं दत्त्वा ततः शुचिना शुचिवस्त्रप्रावृतेन पटस्याग्रतः मयूरं स्थाप्य तावज्जपेद् यावन्मयूरश्चलति । ततो विद्याधरेण अपराजितपुष्पैः पूर्वपरिजप्तया मूर्ता शरावसंपुटां दक्षिणहस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेत् यावत् शिवारुतशब्दः श्रूयते । मन्त्रं जपता सखायेभ्यो सत्त्वा आत्मनो मुखे प्रक्षिप्य अदृश्यो भवति । सर्वसिद्धानां आगम्य वर्षसहस्रद्वयं जीवति । पद्मकेसरसौवीरमञ्जनमनःशिलां समां कृत्वा पोषधिककन्याहस्ते पीषयेत् । त्रिलोहपरिवेष्टितं कृत्वा कृतपुरश्चरणः पुष्ययोगेन महेश्वरस्य मूर्तौ सर्वभूतिकं बलिं गन्धपुष्पधूपैश्च पूजां कृत्वा शरावसंपुटे स्थाप्य दक्षिणहस्तेन अवष्टभ्य तावज्जपेद् यावत् खटखटायति । भगवत एका निवेद्य सखायेभ्यो विभज्य आत्मनश्च अपामार्गसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां दशसहस्राणि जुहुयात् । दशसुवर्णसहस्राणि लभति । वंशरोचनां गृह्य तृलोहपरिवेष्टितानां गुडिकानां कृत्वा ततः शुचिशुक्लवासो श्मशानं गत्वा गन्धपुष्पधूपैः पूजां कृत्वा सार्वभौतिकं बलिं कृत्वा गुलिका कपालसंपुटे प्रतिष्ठाप्य तावज्जपेद् यावत् किलकिलाशब्दः श्रूयते । न भेतव्यम् । सहायेभ्योऽपि विभज्य आत्मनो मुखे प्रक्षिप्य अदृश्यो भवति । दशवर्षसहस्राणि जीवति । उलूकनेत्रं गृह्य अञ्जनेन सह कुमारीहस्ते पीषयेत् ।

तृलोहपरिवेष्टितां कृत्वा गुटिकां शरावसंपुटे स्थाप्य महेश्वरस्य दक्षिणीयां मूर्तौ सप्तरात्रम् । यक्षिणीमाकर्षयति । काष्ठमौनी षण्मासां जपेत् । अभिलषितं द्रव्यं लभति । राजार्कमयीं प्रतिमां षडङ्गुलं कृत्वा अश्लेषकैर्वर्णकैश्चित्रापयित्वा सर्वालंकारविभूषिता तस्याग्रतः षण्मासां जपेत् । मण्डलिकं राज्यं लभते विद्याधरत्वं वा । पटस्याग्रतः मौनी षण्मासां वामकरतलमभिमन्त्र्य [G 703] अयुतं परिजप्य मुनिहितं निधानं लभति । राजार्कानां दधिमधुघृताक्तानां दशसहस्राणि समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य अर्कपुटे जुहुयात् । आदित्यो वरदो भवति । तामेव नदीं कटिमात्रमुदकमवतीर्य तिलपुष्पां प्रवाहयेत् । पितामहो वरदो भवति । मन्दारपुष्पां जुहुयात् । शक्रो वरदो भवति । तत्रैव जले मन्दारपुष्पैर्धनदो वरदो भवति । द्विलक्षजापेन राजानमाकर्षयति । त्रिलक्षजापेन सर्वसत्त्वानाकर्षयति । समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य अशोकपुष्पाणां दशसहस्राणि जुहुयात् । मूलपटस्याग्रतः उदारां पूजां कृत्वां चक्रं स्वस्तिकमश्वत्थपत्रे स्थाप्य पर्यङ्कोपविष्टः तावज्जपेद् यावज्ज्वलितमिति । तेन गृहीतमात्रेण आकुञ्चितकुण्डलकेशः उदितादित्यवर्णः विद्याधरचक्रवर्ती भवति । यैश्च दृश्यते यांश्च पश्यति तैः सहोत्पतति । सुदर्शनमूलिकां गृह्य हस्तेनावष्टभ्य ताव सहस्रजप्तां कृत्वा हस्ते बद्ध्वा यं स्पृशति स वशो भवति । कुशमयं चक्रं गृहीत्वा सहस्रं जप्त्वा जले प्रक्षिप्य नागमुत्तिष्ठति । किं करोमीति ब्रवीति । लक्षं मे देहीति वक्तव्यम् । भिक्षाहारः पर्वतशिखरमारुह्य शतसहस्रं जपेत् । तथागतविग्रहा आमुखीभवन्ति । तां दृष्ट्वा यत् साधयति तत् सिध्यति । सर्वालंकारविभूषिताः स्त्रियश्च भवन्ति । पुरुषाश्च बुद्धमाराधका हास्यलास्यादिभिः समानकालमुपतिष्ठन्ते । यच्चिन्तयति तत् सर्वं भवति । प्रभाते उद्धृत्य सर्वं नश्यति । शुक्लप्रतिपदमारभ्य अहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः ब्राह्मी सकर्षगाव्यघृतकर्षं क्षीरकर्षं अष्टशतं परिजप्य पिबेद् दिवसानि सप्त । श्रुतिधरो भवति । पटस्याग्रतः नानाप्रकारस्य भक्षभोज्यपिटकं स्थाप्य तावजपेद् यावद् भक्तमन्तर्हितं भवति । पश्चाद् भक्तं संक्रामति व्रीहिजातयश्च । कृतपुरश्चरणस्त्रिलोहमयं षोडशारं चक्रं कृत्वा कृष्णचतुर्दश्यां अहोरात्रोषितः त्रिपथे पूजां कृत्वा उपविष्टः कलापमात्रां मनःशिलां मुखे प्रक्षिप्य तावज्जपेद् यावन्मुखं स्फुटति । मनःशिला सिद्धा भवति । तिलकं कृत्वा अदृश्यः कामरूपी पञ्चवर्षशतानि जीवति । कृष्णाष्टम्यां खट्वां गणिकां त्रिशूलं कारयेत् । अवरे कृष्णाष्टम्यां अहोरात्रोषितः श्मशानं गत्वा त्रिशूलस्य महतीं पूजां कृत्वा पर्यङ्कोपविष्टः दक्षिणहस्तेन तृशूलं [G 704] गृह्य तावज्जपेद् यावत् तृशूलाद् रश्मिर्निश्चरति । ततः सिद्धो भवति । रात्रौ निखनेत् । दिव्यं गृहं भवति । शुचौ देशे पटं प्रतिष्ठाप्य अहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः पुत्तलिकां कृत्वा विधिवत् पूजयित्वा बिल्वसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । भगवतो मञ्जुश्रियस्य ललाटाद् रश्मिर्निश्चरति । ततः सिद्धो भवति । अपरिमितं सुवर्णं द्रव्यं लभति । अहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः करवीरपुष्पाणामेकं गृह्य नागस्थानं गत्वा पुष्पं नागह्रदे प्रक्षिप्य मन्त्रमावर्तयेत् । नागा नागिन्यश्च वश्या भवन्ति । यं प्रार्थयति तं लभते । कृतपुरश्चरणः अहोरात्रोषितः कृष्णचतुर्दश्यां ज्वरं नाशयितुकामो गिरिकर्णिकापुष्पाणामष्टसहस्रं जुहु-

यात्। पिशाचज्वरा नश्यन्ति। खदिरसमिधानामष्टशतहोमेन सर्वग्रहां मुञ्चापयति। भस्मना सप्तजप्तेन परमन्त्रां मन्त्रपतिर्बन्धयति। सक्तुजप्तेनोदकेन मोक्षः। वस्त्रे भूर्जपत्रे वा लिखित्वा ध्वजाग्रे बध्नीयात्। परसेना स्तम्भिता भवति। उदकसक्तवाहारः कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा त्रिरात्रोषित एकलिङ्गं गत्वा लिङ्गोपरि दक्षिणायां मूर्ति पादं स्थाप्य वालशोल्लकेन (?) बन्धयेत् मुष्टिं वध्वा तावज्जपेद् यावद् रात्रो निश्चरति मरामीति। तृतीये रात्रे मुष्टिः सिद्धा भवति। मुष्टिं बद्धा सप्तवर्षशतानि जीवति महेश्वरगणश्च। गोरोचनया सहस्राभिमन्त्रितया विशेषकं यं पश्यति, सर्वे वशा भवन्ति। प्रातरुत्थायोदकं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा मुखं प्रक्षाल्य यस्य दर्शनं ददाति स वशो भवति। एवं तैलेनाहारकाम उदकचूल्के सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा पिबेत्। अप्रार्थितमन्नं लभते। राजकुलं प्रविशता चीवरान्तं गृह्य एकविंशतिवारां परिजप्य वामहस्तेन ग्रन्थिं कृत्वा अप्रतिहतवाक्यो भवति। चोरमध्ये स्मर्तव्यम्। बद्धं च मोचयति। च्छिन्नभिन्नाधिकानां मन्त्राणां शालिव्रीहिश्वेतकरवीरसिद्धार्थकैः प्रतिकृतिं कृत्वा पटस्याग्रतः वामहस्तेनावष्टभ्य अष्टसहस्रं जपेत्। मन्त्राणामुत्थापनं कृतो भवति। गोसहस्रं लभति। अनेनैव विधानेन घृतसर्जरसं दहता शतसहस्रं जपेत्। द्वादशग्रामवरां लभते। अनेनैव विधानेन स्तूपं कृत्वा चन्दनाभ्यक्तानां पद्मानां शतसहस्रं निवेदयेत्। देशाधिपत्यं लभते। सुगतवितस्तिप्रमाणं स्तूपं कृत्वा धूपं च दहता चम्पकपुष्पाणां शतसहस्रं G 705
निवेदयेत्। सुवर्णसहस्रं लभति। सुगतवितस्तिप्रमाणं स्तूपं कृत्वा प्रतिकृतिमालिख्य वामपादेनावष्टभ्य अष्टसहस्रं जपेत्। गोत्रेण वशमागच्छति। सुगतवितस्तिप्रमाणं स्तूपं कृत्वा विवाहलाजानां दधिमधुघृताक्तानामग्नावष्टसहस्रं जुहुयात् भस्मना च मण्डलबन्धः। प्रभाते स्नात्वा अनेनैव मन्त्रेण निर्मथ्य नवनीतं ग्रहाय उदारां पूजां कृत्वा धूपं दहता अष्टसहस्राभिमन्त्रितं दन्तैरस्पृश्य ग्रसेत् यस्य नाम्ना, स वशो भवति। मुक्त्वा कामोपसंहितम्। सर्वगन्धानां वीरविक्रयक्रीतानां त्रिरात्रोषितः पटस्योदारां पूजां कृत्वा घृतप्रदीपं प्रज्वाल्य स्वयमेव मन्त्रं जपेत्। तेन पुत्तलिकां कृत्वा सप्तानामुपर्यश्वत्थपत्राणामुपरि स्थाप्य तावज्जपेद् यावत् प्रसंधिता इति। तं चूर्णं कृत्वा यं स्पृश्यति स वशो भवति। अनेनैव विधिना नागकेसरचूर्णस्य प्रतिकृतिं कृत्वा धूपशरावेषु अष्टशतं जुहुयात्। यमनुचिन्त्य स वशः। अनेनैव विधिना अपामार्गसमिधानां जुहुयात् अर्थकामः। गोष्ठं गत्वा पटस्याग्रतः अपतितगोमयेन हस्तोच्छ्रितं स्तूपं कृत्वा विधिवत् पूजयित्वा गुग्गुलुं दहता शतसहस्रं जप्तव्यम्। सर्वविद्याधरापरिभूतः सप्तवायुपथविचारी। असंवत्सरजातस्य प्रदेशिनीमङ्गुलीं गृह्य हस्तप्रमाणं चैत्यं कृत्वा श्मशाने विधिवत् पूजां कृत्वा प्राङ्मुखोपविष्टः कुशसंस्तरे तामङ्गुलिं निवेद्य प्रदेशिन्याङ्गुल्यावष्टभ्य तावज्जपेद् यावद् रश्मिर्निश्चरति। दीपशिखा वर्धते। कृतरक्षास्ता राज्यं गृह्य प्रभाते तयाङ्गुल्या यमाकर्षयति स वशः। त्रिरात्रोषितः समानवत्साया गोः पयस्विन्याः क्षीरं गृह्य पटस्याग्रतः मण्डलकं कृत्वा घृतप्रदीपं प्रज्वाल्य कुशसंस्तरस्थमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा मृद्भाजने क्षीरं कुर्यात्। दधिमधुघृतैर्विनायकहोमः। ततो मण्डलकं कृत्वा चतुर्षु दिशापालान्

स्थाप्य द्वितीयमण्डले प्रबोधको सर्षपहस्तः तृतीमण्डले सुसहायो वा महतीं पूजां कृत्वा कृतरक्षः प्राङ्मुखोपविष्टः हस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेद् यावदूष्मायति धूमायति प्रज्वलति । प्रथमेनाञ्जिताक्षः यं पश्यति ये च पश्यन्ति सर्वे ते वशा भवन्ति । द्वितीयेन सिद्धेन नवनागसहस्रबलोऽनिलजवः पञ्चवर्षसहस्राणि जीवति अपरिभूतः सर्वविद्याधरो भवति । अन्तर्धा-

G 706 निकानां अष्टसहस्राभिमन्त्रिता ज्वलित उदितादित्यवर्णः रत्नालंकृतशरीरः कल्पान्तरस्थायी । अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा शत्रुमध्ये प्रविशेद् भयं न भवति अवध्यः सर्वशत्रूम् । आवेशनं श्वेतपुष्पेण नृत्यापनमुदकेन त्रिजप्तेन करवीरपुष्पेण त्रिजप्तेनाहरेत् । अतीतानागतं कथयति । बन्धनं छोटिकया च्छेदनम् । अञ्जनं साधयितुकामः वीरक्रयक्रीतं सौवीराञ्जनं गृह्य प्राणकान्यपनीय पञ्चगव्येनोत्तरमुखया पीषयेत् अनामिकयाङ्गुल्या । चतस्रो गुलिका कृत्वा पद्मपत्रेणाच्छाद्य शोषयेत् । पटस्याग्रतः विधिवदग्निं प्रज्वाल्य सहस्रसंपाताहुतिं कृत्वा सधातुके चैत्ये उदारां पूजां कृत्वा अष्टभिर्दिग्भिः पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य शिक्ककटिप्रदेशे स्थापयेत् । शुक्रबन्धः कृतो भवति । चीवरकर्णकेन सप्तजप्तेन ग्रन्थिं कृत्वा विषबन्धः । विषचिकित्सा । पल्लवेन मुद्राभेदत उदकेनावेशनम् । गुग्गुलुधूपेन उदकेन वा ग्रहबन्धः । अङ्गुलिं परिजप्य यं तर्जयति, स वशो भवति । पटस्याग्रतः अष्टशतं जपेत् । स्वप्ने यथाभूतं दर्शयति । सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य तस्याग्रत उदारां पूजां कृत्वा श्वेतपद्मानां दधिमधुघृताक्तानां बिल्वकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य लक्षं जुहुयात् । राज्यं लभति । असिद्धे सहस्रपिण्डं ग्रामं लभति । गोरोचनमनःशिलां वा पटस्याग्रतः सहस्रं जपेत् । तेन तिलकं कृत्वा यं मृगयति तं लभति । कृष्णचतुर्दश्यामेकरात्रोषित रात्रौ पटकमूलकांसकाराग्नौ अष्टसहस्रं जुहुयात् । रूपकसहस्रं लभते । शुक्लाष्टम्यां अहोरात्रोषितः समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य पद्मानां दशसहस्राणि निवेदयेत् । राज्यं लभति । पुरुषवशीकरणे कृष्णाष्टम्यां एकरात्रोषितः बोधिवृक्षकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य कुमुदानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । वशो भवति । स्त्रीवशीकरणे कृष्णद्वादश्यां सौगन्धिकपुष्पैः आर्यमञ्जुश्रियं हनेत् । ओषधीबन्धमनसा द्विपदचतुःपदानामुत्सारणी । दिने दिने पञ्च दीनाराणां प्रयच्छति । निरवशेषा व्ययीकर्तव्या । अर्धं रत्नत्रयोपयोगाय । पटस्याग्रतः मासमेकं जपेत् । द्वादश दीनारसहस्राणि लभते । शुक्लाष्टम्यामारभ्य सधातुके चैत्ये षण्मासां जपेत् । राज्यं ददाति । कृष्णाष्टम्यां अहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः श्लेष्मातककलिकं

G 707 गृह्य रक्तसूत्रकेन वेष्टयेत् । ततः पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य कीलकं अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा एकैकं खण्डमेकविंशतिवारां परिजप्य अग्नौ प्रक्षिप्य प्रभाते दीनारशतानि लभति । शुक्लाष्टम्यामेकरात्रोषितेनातिमुक्तकपुष्पाणां अष्टसहस्रं निवेदयेत् सप्ताहम् । दीनारशतं लभति । सप्ताभिमन्त्रितेनाक्षीण्यञ्जयेत् । सर्वज(न)प्रियो भवति । सामान्यमञ्जनमभिमन्त्र्य यं प्रथमं पश्यति स वशो भवति । पटस्याग्रतः यमुद्दिश्य दशसहस्राणि जपति । विवरद्वारे लक्षं जपेत् । यथानियतं पर्वतशिखरे वा गोष्ठे प्रतीत्य समुत्पादगर्भचैत्यं प्रतिष्ठाप्य लक्षं जपेत् । दीनारलक्षं लभति । नागस्थाने पटं प्रतिष्ठाप्य सुकृतरक्षाविधानः जम्बुकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य त्रिमधुरां

बलिं दत्वा नागपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात्। ततः ब्राह्मणरूपी नागराजा आगच्छति। स च ब्रवीति। वक्तव्यं च दिने दिने सप्तदीनारां प्रयच्छ। तथास्त्विति कृत्वादृश्यो भवति। सेनापतिवशीकरणे बृहन्मण्डलकं प्रलिप्य तस्य पदपांसुमानीय वामहस्तेनाहुतिसहस्रं जुहुयात्। वश्यो भवति। सामान्यस्त्रीवशीकरणे लवणेन प्रतिकृतिं कृत्वा छित्त्वा छित्त्वा वामहस्तेन जुहुयात्। वश्यो भवति। दासीवशीकरणे पुन्नागकेसरयवगोधूमानेकीकृत्य अष्टसहस्रं जुहुयात्। वश्यो भवति। शालिपिष्टमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा छित्त्वा छित्त्वा जुहुयात्। वशो भवति। रण्डावशीकरणे माषजम्बूलिकां जुहुयात्। वशो भवति। श्रोताञ्जनं एकचैत्ये अश्वत्थपत्रान्तरितां कृत्वा अष्टसहस्राभिमन्त्रितं यदि पुनरपि साधयति द्विगुणायुर्भवति। धान्यागारं प्रविश्य शुचौ प्रदेशे पटं प्रतिष्ठाप्य मौनी क्षीरयावकाहारः पक्षमेकं जपेत्। ततः पटस्योदारां पूजां कृत्वा उदारतरीं च बलिं निवेद्य पर्यङ्कं बध्वा तावज्जपेत् यावद् रश्मिर्निश्चरन्ति। तां दृष्ट्वा पञ्चानन्तर्याण्यपि क्षयमुपैति। ततः सिद्धो भवति। महाराज्यं लभति। अप्रत्यर्थिको भवति। रोचनामष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा धूपेन धूपयित्वा दन्तान्तरे स्थापयेत्। उत्तरवादी भवति। सर्वे चास्य वश्या भवन्ति। शुक्लाष्टम्यां त्रिरात्रोषितः पटस्याग्रतः अकाकोलीनाष्टसहस्रं जपेत्। दीनारमेकं लभति। पटस्याग्रतः त्रिरात्रोषितः शुक्लचतुर्दश्यां गुग्गुलुधूपं दहता बलाग्निं प्रज्वाल्य दधिमधुघृताक्तानां करवीरपुष्पाणां अष्टसहस्रं जुहुयात्। ततोऽग्निकुण्डं यत् G 7(पद्मप्रमाणं करवीरसदृशो मनःशिलां दृश्यति। मन्त्रं जपता ग्रहेतव्यम्। तया गृहीतया उदितादित्यवर्णो द्विरष्टवर्षाकृतिः विद्याधरो भवति। वायुसमभावेन ईप्सिततमानि चाहाराणि उत्पद्यन्ते। अशीतिवर्षसहस्राणि जीवति। सर्वसत्त्वानामगम्यश्च मृत्युं जनयति। पटस्याग्रतः साधयेत्। मुखे प्रक्षिप्यान्तर्हितो भवति। प्रथमं बन्धनमोक्षः कर्तव्यः। मधुसिक्थमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा स्त्रिया वा पुरुषो वा विविक्ते प्रदेशे अग्निं प्रज्वाल्य अभिमन्त्र्य दापयेत् अष्टशतम्। मदनकण्टकेन विध्वा दापयेत्। वश्या भवन्ति। यं प्रार्थयति तं लभते। शुक्लपौर्णमास्यां अहोरात्रोषितः सुरभिपुष्पाणां अष्टशतं निवेदयेत्। पञ्च कार्षापणानि लभति। कृष्णचतुर्दश्यां अहोरात्रोषितः पटस्याग्रतः प्रियङ्गुकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य वैकङ्कतसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात्। शताभिमन्त्रितेन सर्वशूलं प्रशमयति। दुःखप्रसवायाः स्त्रिया उदकं अष्टशताभिमन्त्रितं कृत्वा देयम्। सुखेन प्रसवयति। शुक्लप्रतिपदमारभ्य दिने दिने सहस्रवृद्ध्या जपेत्। यावत् पञ्चदशीति। अवसाने त्रिरात्रोषितः गुडिकायोगेन गुलिकां कृत्वा साधयित्वा मुखे प्रक्षिप्य अन्तर्हितो भवति। नीलाशोककुसुमं कृष्णसारपित्तं चक्रवाकहृदयं श्रोत्रियारसहितं समभागानि पुष्पलोहेन वेष्टयेत्। पुनः त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा साधयितुकामः सधातुप्रतिमाया अग्रतः तत्रैव पटं प्रतिष्ठाप्य शुक्लाष्टम्यां पूजां कृत्वा सप्ताश्वत्थपत्रेषु स्थाप्य मण्डलकं कृत्वा तस्य मध्ये अक्षताङ्गं पुरुषं स्थाप्य वामपादेन उरसि माक्रम्य कृतरक्षः मन्त्रमावर्तयेत्। यावदुत्तिष्ठति। पूर्ववत्। ततः मधुपायसं भोजयेत्। सप्ताभिमन्त्रितं मुष्टिं बद्ध्वा शिरसि ताडयितव्यः। ततः छर्दयति। तं पीत्वान्तर्हितो भवति। त्रिरात्रोषितः सोमग्रहे नाभिमात्रमुदकमवतीर्य तावज्जपेद् यावन्मुक्त इति। दीनारशतं

लभति। आवर्तयेच्छोभनं लभति। लवणमिश्रेणोदकेनाष्टशतं स्नात्वोद्वर्तितं कृत्वा गन्धमाल्यैश्च पूजयित्वा पूर्वसाधितं पायसं भोजयितव्यम्। सप्तजप्तेन मुष्टिं कृत्वा शिरसि हन्तव्यः। ततः छर्दयति। तं भुक्त्वा महाकल्पस्थायी विद्याधरो भवति। शस्त्रमष्टशतजप्तं कृत्वा छिन्दितः कीलापयित्वा हनेत्। सहस्रवेधं सुवर्णं भवति। कायशोधनं कृत्वा चैत्यं स्वहस्तेन कुर्यात्। पञ्चानन्तर्य-

G 709 कारिणोऽपि सिध्यति। चैत्यलक्षेण विद्याधरचक्रवर्ती भवति सर्वशास्त्राभिज्ञः सर्वविज्ञानोपेतः कल्पस्थायी। च्युतश्च पञ्चजातिशतान्यपायगामी न भवति। उदितोदितमध्यदेशः सर्वेन्द्रियसमन्वागतः श्रुतिधरो जातिस्मरः। अयाचितो लब्धमनःशिलां गृह्य सप्तभिरश्वत्थपत्रेषु स्थाप्य साधयेत्। संध्यायां ये शृणोति जिघ्रति सर्वे वशा भवन्ति। तिरःशैलं तिरःकुड्यं तिरःसमुद्रं भित्त्वाभ्युद्गच्छति। श्मशाने षोडशहस्तं अष्टहस्तं वा मण्डलकमुपलिप्य मृतकमुत्तराशिरं स्थाप्य मुखे वामाङ्गुलिकां प्रक्षिप्य दक्षिणेन पादेनोरसि माक्रम्य तावज्जपेद् यावन्मृतकश्चलितः। तं चाङ्गुलिं हस्तेन गृहीत्वा ददाति। तमनामिकायामङ्गुल्यां प्रक्षिप्य यमाकारयति स आगच्छति। प्रतिनिवर्तस्वेति प्रतिनिवर्तयति। मृतकमक्षताङ्गमानीय मृतकस्योपरि पादं दत्त्वा तावज्जपेद् यावदुत्तिष्ठति। कृत्वा तत्र मन्त्रं कुङ्कुमेनालिख्य कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा पोषधिकः नियमस्थः न केनचित् सार्धमेकाकी पर्वतशिखरमारुह्य वर्जयित्वा दिशापालाम्। अष्टहस्तं वा मण्डलकमुपलिप्य वालुकामयं चैत्यं कृत्वा यथाशक्तितः पूजां कृत्वा प्राङ्मुखो दक्षिणकहस्तेन खड्गं गृहीत्वा ऊर्ध्वबाहुः चैत्यस्याग्रतो मन्त्रमावर्तयेत्। यावदक्षराण्यन्तर्हितानि। तत् पत्रं खड्गभूतं प्रज्वलितं गृहीत्वा यथेष्टगामी विद्याधरो भवति। सर्वविद्याधराणां अवध्यः सर्वसत्त्वानां अधृष्यः कामरूपी कल्पस्थायी। योजनसहस्रान् पश्यति। वेतसपत्रैः कटुकतैलाक्तैः मासुपशमः शालितन्दुलेन पर्वतसंपत्तिः। लक्षजप्तैः सर्षपैः आसुराणि मन्त्राणि घातयति। अशनिवज्रोपलादीनि अष्टशतजप्तेन शरेण यत्रेच्छति तत्र पातयति। सप्तजप्तेन भस्मना यस्यां क्षिपति दिशां तत्र काण्डवारणकृतं भवति। अष्टशतजप्तेन सर्वशल्याहरणम्। कृतपुरश्चरणस्य पटस्याग्रतः पञ्चविंशति लक्षं जपेत्। ततः नखच्छेद्यं तालपत्रं खड्गं सर्वसस्यसंरक्षणं द्विपदचतुष्पदकीटमूषिकादीनां लेख्यं अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा उदकं क्षिपेत्। सर्वनागानां अवध्यो भवति। लक्षजापेन यमिच्छति, तं बन्धनान्मोचयति। आदित्यग्रहे समानवत्सायाः गोर्घृतं ताम्रभाजने स्थाप्य तावज्जपेत् यावन्मुक्तः। तं पीत्वा सर्वव्याधिभ्यो

G 710 मुच्यते। पूर्वोक्तेन विधिना सधातुके चैत्ये पोषधिकः श्रीपिष्टसर्जरससंमिश्राणां शतसहस्रं जुहुयात्। दीनारसहस्रं लभति। श्वेतसर्षपाणां घृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। ततः सा निधिदर्शनं ददाति। ग्रहेतव्यम्। सधातुके चैत्ये समुद्रगामिन्यां नद्यां वालुकया वा प्रतीत्यसमुत्पादगर्भं सुगतवितस्तिप्रमाणं चैत्यं कृत्वा पोषधिकः शुचिः यथाशक्तितः पूजां कृत्वा भिक्षाहारः हविष्याहारो वा शतसहस्रं जपेत्। सर्वकर्मसमर्थो भवति। महाश्मशानप्रचेनेन (?) मण्डलादिदिशि विदिशाबन्धः सर्वविषचिकित्सा उमार्जनग्रहज्वरनाशनः। महानदीप्रतरणे जपेत्। सुखेन तरति। जपेनैव तरिकशौल्किकगौल्मिकादीनां पूज्यो भवति। विवादे चोत्तर-

वादी भवति। निद्राशुक्रबन्धमूत्रकेन सहस्रजप्तेन खदिरकीलकैः अष्टसहस्रजप्तैः मन्त्रवशीकरणे यवानां दधिमधुघृताक्तानां नवनीतमयीं अङ्गुष्ठपर्वमात्रां पुत्तलिकां कृत्वा अश्वत्थपत्रे स्थाप्य हस्तेनावष्टभ्य तावज्जपेत् यावत् स्फुरति। तां दन्तैरस्पृश्य ग्रहेत्। तत्क्षणादेव अभिरूपा आगच्छति। सर्वकामप्रदा भवति। बिल्वकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य बिल्वसमिधानां दशसहस्राणि जुहुयात्। भोगान् लभति। सर्वसाधनेषु रक्षाचोरव्याघ्रनक्रमकरकुम्भीरेषु मण्डलबन्धः सीमाबन्धः तुण्डबन्धः निधानग्रहणम्। यत्र स्थाने विधानः तत्र गत्वा उपवसितः मण्डलकमुपलिप्य बिल्वकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य राजसर्षपां जुहुयात्। निधानमवाप्नोति। राजमहिषीं सपरिवारां वशीकर्तुकामः कुशमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा वामहस्तेनावष्टभ्य सहस्रं जपेत्। सपरिवारा वशा भवति। ब्राह्मणवशीकरणे तिलानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् वशो भवति सपरिवारः। क्षत्रियवशीकरणे यवां दधिमधुघृतानामष्टसहस्रं जुहुयात्। वशो भवति सपरिवारः। वैश्यवशीकरणे कृष्णसर्षपाणां अष्टसहस्रं जुहुयात्। वशो भवति सपरिवारः। शूद्रवशीकरणे कृष्णव्रीहितुषाणामष्टसहस्रं जुहुयात्। वशो भवति। दिवसत्रयं एकाकिना होमः। तस्यैव कपिलाया घृतं मालतीकुसुमं एकीकृत्य सप्ताहुतिं जुहुयात्। श्वेतसर्षपां सप्ताभिमन्त्रितं यस्य शिरसि ददाति स वशो भवति। राजवशीकरणे प्रतिकृतिं कृत्वा वामहस्तेनावक्रम्याष्टसहस्रं जपेत्। सपरिवारो वशो भवति। सुगालितं पानीयमभिमन्त्र्य सप्ताहं धारयेत्। ततो गोपालके कृतरक्षेण गो दोहयेत्। ततस्तं क्षीरं च विविक्ते प्रदेशे कलशे जपेत्। ततो विरोलयित्वा ब्राह्मणकन्यया पद्मबीजं तगरं पद्मकेसरं चन्दनं मधुना सह पीषयेत्। गुटिकां कृत्वा ताम्बूलेन सार्धं अभिमन्त्र्य यस्य ददाति स वशो भवति। पुष्पमालां परिजप्य यस्य शिरसा ददाति स वशो भवति। रक्तचन्दनं चम्पककुसुमं पद्मकेसरं रक्तशालितुषागिरिकर्णिकाकोरण्डकबीजं व्रीहिमाषां कुष्ठतगरं तुरुष्कतैलं चैकतः कृत्वा समभागानि कारयेत्। जातिकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य जातीपुष्पाणां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। पञ्च दीनारशतानि लभते। आम्रकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य नदीतटे दधिमधुघृताक्तानां अर्कसमिधानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। पञ्चमे दिवसे पञ्च दीनारां लभते। अशोकसमिधानां शुक्लचतुर्दश्यां आरभ्य यावत् पञ्चदशीति दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात्। दीनारशतं लभति। करवीरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य करवीरलतिकानामष्टसहस्रं जुहुयात्। शुक्लाष्टम्यां आरभ्य यावच्छुक्लचतुर्दशीति। दीनाराणां सहस्रं लभते। दिने दिने अष्टसहस्रं जुहुयात् यावच्चतुर्दशीति। अनेककर्मणा कुपितं राजकुलं कुपितं मित्रवत् प्रसादयति। कृतपुरश्चरणः विद्युहतवृक्षस्य षडङ्गुलप्रमाणं काष्ठं गृह्य तावज्जपेत् त्रिरात्रोषितः। सधातुके चैत्ये पटं प्रतिष्ठाप्य तं कीलकं तृलोहबन्धनं कृत्वा सर्वौषधिपरिपूर्णं चत्वारो कलशां पद्मसंस्तरे संस्थापयेत्। तत् कीलकं वामपादेनाक्रम्य वामहस्तेन गृह्य च तावज्जपेद् यावन्नश्यति। हस्तेति नच हस्तं मुञ्चति। ततो दद्यान्महाबलिम्। प्रभाते दाडिमं भक्षयेत्। तत् कीलं सिद्धं भवति। अरण्यं निखनेद् गृहं भवति कामदम्। सर्वोपकरणानि चोपतिष्ठन्ति। उद्धृतेन सर्वे तं पीत्वा स्नात्वा च। पुनरपि स एषोपचारः यावत् सकला रात्रिः।

G 711

प्रभाते संघोद्दिष्टका भिक्षवो भोजयितव्याः । भोजयित्वा च पुष्पाणि दन्तकाष्ठानि भक्षयितव्यानि । प्रागच्छति । चतुर्दशनिवासस्थानानां मुखं प्रविशन्ति । श्रीकारः । समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य दक्षिणहस्तेन मुष्टिं कृत्वा त्रयोदशाञ्जलयः क्षिपेत् । सर्वोपद्रवकाणि चोत्थापयति । मुष्टिना सर्वग्रहां नाशयति । इच्छया भुज्यमानः । अतिमानुषं ज्ञानं लभते । त्रिरात्रोषितः मरी-

G 712 चानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । मरिचमेकं मुखे प्रक्षिप्य ... राजवशो भवति । अनुस्मरणमात्रेण सर्वोपद्रवान् नाशयति । या स्त्री न रोचते तस्या नामं गृहीत्वा घृतं परिजप्य दापयेत् । सुभगो भवति । वश्यसाधनम् । पुष्पलोहमयं वज्रं कृत्वा पञ्चाङ्गुलिकं त्रिसूचिकं समुद्रगामिनीं नदीमवतीर्य सुगन्धपुष्पाणां लक्षं निवेदयेत् । पातालगृहं प्रतिस्रोतं भित्त्वा आगच्छति । दन्तैरस्पृश्य ग्रसेत् । दिने दिने पञ्चशतानि गृह्णाति । कृतपुरश्चरणः पटस्याग्रतः लक्षं जपेत् । ततो यत्र निधानं तिष्ठति तत्र गत्वा नालकल्कं । कलशं सर्वगन्धैर्लिप्य च श्वेतचन्दनोदकेन पूरयेत् । अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा निधानस्थाने स्थापयेत् । सर्वभूमिः स्फुटति । निधानं पुरुषमात्रे तिष्ठति । ग्रहीतव्यम् । पलाशसमिधानां लक्षं जुहुयात् । गोसहस्रं लभति । शेफालिकाकुसुमानां लक्षं जुहुयात् । ग्रामं लभति । गन्धसमिधानां लक्षं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभते । नवनीताहुतीनां जुहुयात् । पञ्चग्रामं लभते । किङ्किरातपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । फट्टकानां चतस्रं कोटिं परिलभते । क्षीराहुतीनां लक्षं जुहुयात् । चित्रवस्त्राणां शतं लभते । कुमुदानां लक्षं जुहुयात् । पत्नीं राजकन्यां लभते । किङ्किरातपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । पर्वतशिखरमारुह्य लक्षं जपेत् । यस्मिन् देशे जपति, तस्मिन् देशे यो राजा स पुत्रत्वेनोपतिष्ठति । श्रीकारपद्मं जुहुयात् । पद्मश्रिय आगच्छति । जयकामो नित्यं दधि जुहुयात् । नित्यं जयो भवति । पुष्टिकामो घृतं जुहुयात् । अर्थानभिगच्छति । शुन्निना नित्यकालं पञ्चरात्रेण राजानं सप्तरात्रेण पिशाचां नवरात्रेण यक्षराक्षसां द्वादशरात्रेण नागराजानं अर्धमासेन गन्धर्वां अप्सरसां एकविंशतिदिवसेन देवदानवासुरगरुडकिन्नरादिकां चतुर्विंशतिरात्रेण सर्वगणां मासेन राजपत्नीवशीकरणम्सुरसमञ्जरीदधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । वशा भवति । रक्तकरवीरकलिकानां लक्षं जुहुयात् । राजकन्यां लभते । बिल्वानां बिल्वाक्तानां लक्षं जुहुयात् । गृहे श्री उत्पद्यते । शतपुष्पाणां दध्याक्तानां लक्षं जुहुयात् । दीनारशतं लभते । सौवर्चलिकाष्ट-

G 713 सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा अञ्जिताक्षः सर्वसत्त्वां वशीकरोति । गन्धां जप्य गालभेत् ।

सर्वसत्त्ववशीकरणम् । रूपं जप्यात्मानं धूपयेत् सर्वसत्त्वस्तम्भनवशीकरणम् । शिखां जप्य बन्धयेत् । सर्वत्र रक्षा । सर्वसत्त्वस्तम्भनम् । रण्डां वशीकर्तुकामः माषां जुहुयात् । सर्वे वशीभवन्ति । यक्षिणीं वशीकर्तुकामः पद्मानामष्टसहस्रं जुहुयात् । त्रिरात्रेणागच्छति । अथ नागच्छति सप्तरात्रेणागच्छति । सा च वरदा भवति । यथेप्सितं मृगयेत् । कन्याकामः लक्षं जुहुयात् । ईप्सितां कन्यां लभते । अथ वेतालं साधयितुकामः अक्षताङ्गं मृतकं गृह्य श्मशाने एकवृक्षे वा चतुःपथे वा एकलिङ्गे वा सर्वभूतिकां बलिमुपहृत्य महादेवस्य दक्षिणमूर्तौ मण्डलकमुपलिप्य बलिं दत्त्वा स्नानाभ्यलंकृतं कृत्वा भस्मना मण्डलकं लिख्य तस्य मध्ये

पूर्वशिरं स्थाप्य शुक्लपटप्रच्छादितसाधकः शुक्लवाससखायः दिशापालां स्थापयेत् । कृतरक्षस्योपरि उपविश्य तस्य मुखे तिलसर्षपां जुहुयात् । तावद् यावत् तस्य मुखा मणिर्निर्गच्छति । तां गृह्यात्मनो मुखे प्रक्षिप्य सर्वभूतिकबलिमुपाहृत्य दक्षिणमूर्तौ स्थितः हरितालमनःशिलाञ्जनमञ्जिष्ठारोचनामेकत्रयं गृह्य अश्वत्थपत्रान्तरितां कृत्वा तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिरिति । ऊष्मायति धूमायति ज्वलति । ऊष्मायमाने पादप्रचारिकां पञ्चवर्षसहस्रायुर्भवति । सर्वसत्त्ववशीकरणम् । धूमायमानेऽन्तर्धानं दशवर्षसहस्रायुर्भवति । ज्वलितेन सर्वविद्याधरो भवति सर्वविद्याधराणां प्रभुः कल्पस्थायी । उपमुपरि लक्षं जपमानः पञ्चाभिज्ञो भवति । बन्ध ऊर्ध्वमधश्च दिशापालानां च । राजकुले परमवल्लभो भवति । गृहीतवाक्यश्च भवति । कन्याकामः जातीकुसुमानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । कन्यां लभते । तैरेव विकसितैः स्त्रीलाभः । सर्वग्रहमुद्रया वाचया संदेशेन रोचनया अग्निं स्तम्भयति । नावां स्तम्भयति आकर्षयति च । दष्टमदष्टं वावेशयति । मृतकमुत्थापयति । वाचया ज्वरं प्रेषयति । क्षीरयावकाहारः लक्षं जपेत् । त्रिरात्रोषितेन शुचिवाससा साधकगर्भलिङ्गे स्थाप्य महतीं पूजां कृत्वा अपरिमितं जपेत् । सर्वबालवृद्धाश्च वश्या भवन्ति । भस्मना सप्ताभिमन्त्रितेन कटकं च कुर्यात् । सर्वसत्त्वाममेध पानीयमष्टशतसहस्रं गोषु दापयेत् । व्याधिमुपशमयति । अहोरात्रोषितः खड्गं खादिरं कृत्वा कृष्णचतुर्दश्यां श्मशाने तावज्जपेद् यावत् प्रज्वलितम् । तेन गृहीतेन अप्रतिहतगतिः G 714
खड्गविद्याधरो भवति आकुञ्चितकुण्डलकेशः कल्पस्थायी सर्वविद्याधराणां बहुमतः । अथवा चन्द्रसूर्योपरागे कृतपुरश्चरणः प्रभाते उत्थाय पटस्य पूजां कृत्वा भिक्षवो भोजयितव्याः । सदक्षिणं सिद्धिं मृगयेत् । ततो वाधिकेषु कर्मसु सिद्धो भवति । दूर्वाप्रवालानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । बन्धनान्मोचयति । परमात्मानं च खड्गमष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा विवरदेवकुलनगरद्वारेण वा स्थापयेत् । कपाटं भञ्जयित्वा द्वारमुत्पाटयति । सकृज्जप्तेनात्मरक्षा । क्षीराहुतिभिः स्त्रियो वशा भवन्ति । मनसा द्विमन्त्रां स्थापयति । सर्वमुद्रां स्तम्भयति । सर्वमन्त्रां चूर्णयति । असुरकन्यां वशीकरोति । सर्वगन्धाभिहुताभिशतेन कुलस्त्रियो वश्या भवन्ति । देवनिर्माल्यहोमेन देवतटिकप्रव्रजिता च वश्या भवन्ति । हृदये हस्तं दत्त्वा जपेत् । सर्वपापप्रणाशनं सर्वसत्त्वाकर्षणं च । शिरसि हस्तं दत्त्वा जपेत् अष्टशतम् । सर्वसत्त्वस्तम्भनं पापप्रणाशनं च । बिल्वं परिजप्य सर्वसत्त्वाकर्षणः । शिखासाधने शुक्लप्रतिपदमारभ्य तावज्जपेद् यावत् संध्या । ततः शिखां अष्टसहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा भिक्षामटेत् ब्राह्मणगृहेषु । यदा भिक्षादायिकां न पश्यति तदा सिद्धो भवति । प्रथमदिवसे एकभिक्षा । यावदेवं सप्ताहम् । एकविंशतिमे दिवसेऽपुण्यवतस्यापि सिध्यति । चन्द्रग्रहे क्षीरं परिजप्य पिबेन्महारसायनं भवति । उदकचुलुकमेकविंशतिवारां परिजप्य यस्य गृहस्याभिमुखं क्षिपति दिवसानि सप्त स वशो भवति । उदकचुलुकं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा यस्य नाम्ना पिबति स वशो भवति । दृष्ट्या परिजप्तया एकविंशतिवारां यं पश्यति स वशो भवति । गुग्गुलुहोमेन लक्षेण राज्यं लभति । उत्पलकुमुदपुण्डरीकादिभिः निवेद्यमानैर्हूयमानैर्वा

यमिच्छति तं वशमानयति । भग्नेनाग्निप्राकारः उदके शर्कराभिर्वा शिखाबन्धः । स्वाभाविकमञ्जनं गृहीत्वा एकविंशतिजप्तेनाञ्जयेत् । सर्वजनप्रियो भवति । अञ्जनं तगरं कुष्ठं वचा पद्मकेसरं रोचना गजमदश्च अष्टसहस्राभिमन्त्रितेन समालभेत् । सर्वेषां प्रियो भवति । लवणमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा पूर्वकेन विधिना किंकुर्वाणा भवन्ति । नवनीतमयं च मणिं कृत्वा चतुर्भि-
G 715 रश्वत्थपत्रैः प्रतिष्ठाप्य तावज्जपेद् यावदूष्मायति । दन्तैरस्पृश्य ग्रसेत् । ग्रसितमात्रे यं चिन्तयति तत् सर्वमुत्पद्यति । कामरूपी दशपुरुषबलो भवति अशीतिवर्षसहस्राणि । कृतपुरश्चरणः पौर्णमास्यां पटस्याग्रतः त्रिरात्रोषितः सधातुके चैत्ये गन्धपुष्पादिभिः पूजां कृत्वा कुशमयं खड्गं अश्वत्थपत्रे स्थाप्य मुष्टिप्रदेशे गृह्णीयात् । जपेद् यावत् स्फुरितम् । गृहीत्वा विद्याधरो भवति । पटस्याग्रतः प्रतिहारकपक्षे त्रिःकालस्नायी त्रिचैलपरिवर्ती त्रिसंध्यं अष्टसहस्रिको जापः यावत् पौर्णमासीति । अन्ते त्रिरात्रोषितः संघाटिकां साधयेत् । सर्वगन्धैः प्रलिप्य अष्टसहस्रघृतप्रदीपां प्रज्वाल्य पर्यङ्कोपविष्टः गन्धैर्मण्डलकमुपलिप्य तस्योपरि संघाटिं प्रतिष्ठाप्य वामहस्तेनाक्रम्य तावज्जपेद् यावदुत्पतति । सप्ततालमात्रे तिष्ठति । अनेनैव मन्त्रेण सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यो नमस्कृत्वा ग्रहीतव्यः । गृहीतमात्रेण विद्याधरो भवति । सर्वदेवनागयक्षगरुडकिन्नरमहोरगादयः प्रणामं कुर्वन्ति । पटस्याग्रतः विविधां बलिं निवेद्य उदारां पूजां कृत्वा पद्मपत्रे रोचनां स्थाप्य पर्यङ्कोपविष्टस्तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः । ऊष्मायमाने सर्वसत्त्ववशीकरणम् । वर्षसहस्रं जीवति । धूमायमाने वर्षकोटीसहस्राणि जीवति । योजनसहस्रं गच्छति । तामेवागच्छति अश्रान्तः । सर्वसिद्धानां मनसान्तर्धीयते । मनसाहारमुत्पादयति । अथ ज्वलति उदितादित्यवर्णतः द्विरष्टवर्षः आकुञ्चितकुञ्चितकुण्डकेशः कल्पस्थायी अनेकविद्याधरशतसहस्रपरिवारः यत्रेच्छति तत्र गच्छति । कृतपुरश्चरणः स्रग्दामचलनं दीपशिखावर्धनं रश्मिनिश्चरणं पटप्रकम्पश्च । एतां दृष्ट्वा यं साधयति तं सिध्यति । पापक्षयं च भवति । देवनागयक्षगंधर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगां वशीकर्तुकामः पटस्याग्रतः खदिराङ्गारैरग्निं प्रज्वाल्य लवणतिलसिद्धार्थकां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । वश्या भवन्ति । उदकभस्मसर्षपान्यतमं अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा चतुर्दिशं क्षिपेत् । मण्डलबन्धः कृतो भवति । क्षीराहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् व्याधिना प्रमुच्यते । अन्नार्थी अन्नं जुहुयात् । पर्वतशिखरमारुह्य भिक्षाहारः लक्षत्रयं जपेत् । अन्ते त्रिरात्रोषितः अश्वत्थकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य तिलानां दधिमधुघृताक्तानां कृत्स्नां
G 716 रात्रिं जुहुयात् । राजा भवति । तिलघृतहोमेन सर्वार्थाः सिध्यन्ति । मधुं जुहुयात् । सर्वजनप्रियो भवति । घृतं जुहुयात् । तेजस्वी भवति । क्षीरं जुहुयात् । शान्तिर्भवति । दधिं जुहुयात् । पुष्टिर्भवति । सिन्दुवारकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य सर्वपाकस्याग्रं जुहुयात् । यथासिद्धमन्नमक्षयं यमिच्छति पट्टबन्धं लभति । निम्बपुष्पाणां लक्षं जुहुयात् । सर्वजनप्रियो भवति । अक्षतशालितन्दुलानां लक्षं जुहुयात् । ग्रामं लभति । अशोककाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य शतसहस्रं जुहुयात् । एकप्रदेशे राज्यं लभते । पटस्याग्रतः अगरुधूपं दहता लक्षमेकं जपेत् । ततस्तस्य राजगृहं स्वाधीनं भवति । भिक्षाहारो हविष्याहारो वा एकूनपञ्चाश-

लक्षाणि जपेत् । पृथिवीराज्यं लभते । क्षीरयावकाहारो भूत्वा अष्टलक्षं जपेत् । श्वेतसर्षपाणां लक्षं निवेदयेत् । सामन्तराज्यं लभति । दूर्वाप्रवालानां शतसहस्रं जुहुयात् । दीर्घायुर्भवति । आम्रपत्राणां क्षीराक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् । सर्वव्याधिभ्यो मुच्यते । सर्वव्रीहिमेकस्थं कृत्वा शतसहस्रं जुहुयात् । सर्वव्रीहयः अक्षया भवन्ति । मधूककाष्ठानां शतसहस्रं जुहुयात् । अर्थमुत्पद्य(ते) । मनःशिला हरितालं वंशरोचना समीकृत्य पटस्याग्रतः अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा बोधिवृक्षकाष्ठपत्रे स्थाप्य जपेत् । सिद्धो भवति । यस्य स्त्रिया पुरुषस्य वा दीयते, स वश्यो भवति । घृताहुतीनां शतसहस्रं जुहुयात् । ग्रामत्रयं लभते । कोटिं जपेत् । शतपरिवारः विद्याधरो भवति । लक्षमेकं जपेत् । मृष्टान्नपानमयाचितं लभते । सप्तद्वीपाधिपो वशमागच्छति । अर्कसमिधानां लक्षं जुहुयात् । पट्टबन्धो भवति । अपामार्जनेनाक्षिरोगमपनयति । ज्वरितस्य कुशैरपामार्जनम् । कन्याकर्तितसूत्रकं शतजप्तं बध्नीयात् । सुभगो भवति । अञ्जनं साधयितुकामः सौवीराञ्जनं पलं गृह्य अग्निना सगन्धं कृत्वा अञ्जनापरिकर्म शोधयित्वा चन्द्रग्रहे उदकं प्रविश्य तावज्जपेद् यावत् कूष्माण्डो भवति । तत्क्षणात् स्फुटति । स्फुटितमात्रेणास्य वर्णस्य तेजस्वी भवति । कुण्डलमकुटधरः सर्वविद्याधराणां अवध्यः अप्रतिहतगतिः सपरिवारः उत्पतति । पञ्चवर्षसहस्राणि जीवति । पद्मानामुत्पलानां वा लक्षं जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं लभति । पलाशसमिधानां शतसहस्रं जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं लभते । त्रिरात्रोषितः क्षीरयावकाहारः साधयेत् । मनःशिलां पलमेकं गृह्य सप्ताश्वत्थपत्राणां उपरि स्थाप्य G 717 तावज्जपेत् यावत् प्रज्व(ल)ति । कायं विदारयित्वा प्रक्षिपेत् । तत्क्षणादेव स उद्गच्छति । स विद्याधरो भवति । सर्वदेवनागयक्षाप्रतिहतदिव्यविमलश्रोत्रमनोजवः उदितादित्यवर्णः सर्वविद्याधरबहुमतः दिव्यगतिः विद्याधरः शतपरिवारः । पटस्याग्रतः गन्धपुष्पैः उदारां पूजां कृत्वा क्षीरयावकाहारः शुचिवस्त्रनिवसनः यं यं प्रार्थयते तं लभते । चन्द्रग्रहे बोधिवृक्षस्याधस्तात् गन्धपुष्पधूपैश्च पूजां कृत्वा मनःशिलां रोचनां एकविंशतिवारां परिजप्य शिरस्योपरि मार्जयेत् । ललाटे तिलकं कुर्यात् । राजकुलं प्रविशेत् । राजवल्लभो भवति । पद्मबीजानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । यस्य नामं ग्रहाय स वशो भवति । ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः अगुरुतुरुष्कहोमं कुर्यात् । पूर्णमास्यां चतुर्भिः कलशैरुदकपरिपूर्णैरष्टसहस्राभिमन्त्रितै राजानं राजमात्रं वा स्नापयेत् । श्रीमां भवति । असाध्यमानायाः क्षीरसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य विद्यानां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् । रक्तोत्पलनीलोत्पलानां वा जातीपुष्पैर्वा होमः । पटस्याग्रतः । क्षीरयावकाहारः वर्धमाना पूजा कार्या । भिक्षवो भोजयितव्याः । अनेन कर्मणा असाध्यमानापि सिध्यति । अर्थकामः अपामार्गसमिधाभिर्होमं धनं लभते । घृतहोमेन शान्तिकपौष्टिकम् । दधिमधुघृताक्तैः पद्मैः घृतगुग्गुलुहोमो वा अ(ष्ट)सहस्रम् । एवं सर्वार्थाः सिध्यन्ति । कृष्णव्रीहिर्यस्योद्दिश्य परिजप्य हूयते स वश्यो भवति । अपामार्गसमिधाभिर्वशीकरणम् । पटस्याग्रतः बिल्वकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य अगरुसमिधानां शतसहस्रं जुहुयात् । सर्वार्थां ददाति । सधातुके चैत्ये दशसहस्राणि जुहुयात् । राज्यं लभति । पद्मलक्षहोमेन महाभोगो भवति । सर्वेषां होमानां

गन्धपुष्पधूपनैः पूजां कृत्वा होममारभेत् । बिल्वसमिधानामष्टशतेनाग्निं प्रज्वाल्य दधिमधुघृताक्तानां बिल्वसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् । यमिच्छति स वशो भवति । क्षीरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य अगरुसमिधानां शतसहस्रं जुहुयात् । सर्वार्थां ददाति । सधातुके चैत्ये गन्धपुष्पधूपैः पूजां कृत्वा प्रागुत्थितः शुचिर्भूत्वा अग्निं प्रज्वाल्य नागकेसरप्रियङ्गुं अष्टसहस्रं जुहुयात् । मासाभ्य-
G 718 न्तरेण द्रव्यं लभति । वैकङ्कतसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां पलाशकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य जुहुयात् । सुवर्णसहस्रं लभति । उदुम्बरकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य वार्षिकसमिधानां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रं जुहुयात् । शतसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा हस्ते बद्ध्वा युद्धेऽपराजितो भवति । शिरसि बद्धेनादृश्यो भवति । कृष्णपञ्चम्यां नदीं गत्वा श्वेतपुष्पाणां अष्टसहस्रं प्रवाहयेत् । यावदष्टाशीतिदीनारसहस्रं लभते । कुन्दुरुकस्याप्येष कर्मः । बिल्वस्याप्येष कर्म । भोगांश्च ददाति । कृष्णपञ्चम्यां पटस्याग्रतः अहोरात्रोषितेन शुक्लनन्तके गोरोचनां स्थाप्य तावज्जपेद् यावत् त्रिविधा सिद्धिः । पादप्रचारिके सप्तवर्षसहस्राणि जीवति । ज्वलिते कल्पस्थायी भवति । सर्वरोगचिकित्सनम् । मृत्तिकया बन्धनमोक्षणं मण्डलबन्धः । पद्मानां पटस्याग्रतः अष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं दिवसानि सप्त । निधानं पश्यति । पटस्याग्रतः दधिमधुघृताक्तानां शतपुष्पाणां शतसहस्रं जुहुयात् । विषयं लभति । घृताहुतीनां शतसहस्रं जुहुयात् । पञ्चग्रामां लभति । अर्कपुष्पाणां अष्टसहस्रं जुहुयात् । रूपकसहस्रं लभति । जप्यमानस्य सर्वं प्रयच्छति वर्जयित्वा कामोपसंहितम् । कृष्णचतुर्दश्यां रात्रोषितः रात्रौ आर्यमञ्जुश्रियस्याग्रतः निर्माल्यदधिमधुघृताक्तानां दशसहस्राणि जुहुयात् । महतीं श्रियं लभते । बोधिवृक्षस्याधस्ताद् बोधिवृक्षसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात् । रूपकसहस्रं लभते । जातीपुष्पाणामष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । सुवर्णसहस्रं लभते । एते कर्म त्रिरात्रोषितेन बोधिवृक्षस्याधस्तात् क्षीरसमिद्भि अग्निं प्रज्वाल्य गुग्गुलुगुलिकानां कर्पासास्थिप्रमाणानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । दीनारसहस्रं लभति । अक्षिरोगज्वरगुल्मशिरोगृध्रसीनां परिजप्य दातव्यम् । वृकव्याघ्रमहिषद्वीपहस्तिरिक्षचोरसर्पपिशाचभूतब्रह्मराक्षसानां जलचराणां सर्वभयोपद्रवेभ्यः अनेनैव रक्षा कर्तव्या । पद्मसरं गत्वा पद्मानां लक्षं निवेदयेत् । सामान्यराज्यं लभति । कृतपुरश्चरणः मनःशिलां गृह्य मानुषक्षीरेण पीषयित्वा सहस्रसंपाताहुतिं कृत्वा पोषधिकः पञ्चगुलिकां कृत्वा अगरुमये समुद्गके प्रक्षिप्य श्वेतसिद्धार्थकसहितानां चन्द्रग्रहे
G 719 सूर्यग्रहे वा बलिविधानं कृत्वा पटस्याग्रतः समुद्गके स्थाप्य तावज्जपेत्, यावत् सर्षपा चिटिचिटायन्ति । तदा सर्वसत्त्ववशीकरणं करोति । यदि धूमायति सर्वान्तर्धानिकानां राजा भवति । अनन्तकल्पं जीवति । अथ प्रज्वलति, तदा देवकुमारः उदितादित्यसमप्रभः महाकल्पस्थायी विद्याधरराजा भवति । रोचनहरितालादीनि एतेनैव विधानेन साधयितव्यानि । सर्वेषां त्रिविधा सिद्धिः । शान्तिं कर्तुकामेन याज्ञिकैः समिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य परमान्नमष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिरात्रम् । शान्तिर्भवति । आत्मनः परस्य वा सप्तरात्रेण ग्रामस्य नगरस्यानावृष्टौ त्रिमधुरं जुहुयात् । शङ्खध्वजादीनि अभिमन्त्र्य कर्मं क्षपयति । सप्ताहेन पञ्चानन्तर्याणि क्षपयति । सर्वकर्मसमर्थश्च भवति । विद्याबन्धः सूत्रकेणैकविंशतिजप्तेन ग्रन्थिः कर्तव्यः । सर्षपैर्मण्डलबन्धः । चन्द्रग्रहे सूर्य-

ग्रहे वा चन्दनेन मण्डलकमुपलिप्य घृतमधुआमलकीरसं समभागानि ताम्रभाजने स्थाप्य पर्यङ्कं बद्ध्वा तावज्जपेद् यावदूष्मायति । तं पीत्वा श्रुतिधरो भवति । पोपधिको विकाले उदकचुलकं सप्तवारां परिजप्य पातव्यम् । यं चिन्तयित्वा करोति, स्वप्नान्तरे कथयति । श्वेतवचां सप्तवारां परिजप्य मुखे दन्तान्तरे प्रक्षिप्य यं याचति तं लभते । उत्तरवादी भवति । यं यमेव भावं मनसि कृत्वा जपति तं तथागतस्य पुरतः पुष्पगन्धादीन् दत्त्वा दिशाबलिं च चतुर्दिशं क्षिपेत् । ततः कुशपिण्डकोपविष्टः अष्टसहस्रं जपेत् । सर्वाशां परिपूरयति । वल्मीकमृत्तिकया सिंहं कृत्वा गोरोचनया समालभ्य पटस्याग्रतः कृतपुरश्चरणः पिण्डकां कृत्वा स्थाप्य लक्षत्रयं जपेत् । ततश्चलति । चलितमात्रे च सिद्धो भवति । तत्क्षणादेव मन्त्रं जपता सिंहमभिरुह्यतव्यम् । आकुञ्चितकुण्डलकेशः द्विरष्टवर्षाकृतिं आत्मषोडशमः उत्पतति । सर्वविद्याधराणां आगम्य ब्रह्मायुष्यः । मृतश्च देवेषूपपद्यते । दृष्ट्वा श्रुत्वा परसैन्यं स्तंभयति । सर्वव्रीहिगन्धोदककलशं परिपूर्णं कलशं आम्रपल्लवमुखप्रच्छादितं कृत्वा अष्टसहस्राभिमन्त्रितेन विनायकं स्नापयेत् । क्षिप्रं मुञ्चति । गुर्विणीं स्नापयेत् । सुखेन प्रसूयति । बालकं स्नापयेत् । सर्वग्रहैर्विमुक्तो भवति । अनेनाभिषेकेण वा परिमुक्तो भवति । साधनसमश्च भवति । महासामन्तवशीकरणे पटस्याग्रतः अर्कसमिधानां दधिमधुघृताक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् सप्तरात्रं त्रिसंध्यम् । सपरिवारो वशीभवति । राजकन्यायै प्रियङ्गुकुसुमानां अष्टसहस्रं जुहुयात् सप्ताहा यस्य G 720 दीयते । पिण्याकाष्टसहस्रं जुहुयात् त्रिसंध्यं सप्तरात्रम् । पुरस्थं वशमानयति । कृतपुरश्चरणः सधातुके चैत्ये लक्षं जपेत् भिक्षाहारः । ततः कृष्णचतुर्दश्यां एकरात्रोषितः पटस्य यथाविभवतः पूजां कृत्वा कृष्णतिलानां दधिमधुघृताक्तानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । ततः प्रभाते ग्रामं लभते । द्वादश । असिद्धे कर्मणि सहस्रपिण्डं ग्रामं लभते । कृतपुरश्चरणः नदीतटे पश्चाभिमुखं पटं प्रतिष्ठाप्य उदकसक्तवाहारः यथाविभवतः पूजां कृत्वा घृतप्रदीपां एकविंशतिप्रदीपां प्रज्वाल्य बहिः सार्वभूतिकां बलिं निवेद्य पर्यंकोपविष्टः तावज्जपेद् यावदरुणो देवपुत्र आगच्छति । तं वरं ददाति । वटवृक्षस्याधस्ताद् भिक्षाहारो मासत्रयं जपेत् । ततः कृष्णचतुर्दश्यां गोचर्ममात्रं स्थण्डिलकमुपलिप्य सर्वरसिकं बलिं निवेद्यम् । बहिः सर्वभूतिकं बलिं दत्त्वा ततः कुशपिण्डकोपविष्टः निर्धूमाङ्गारेषु गुग्गुलुगुलिकानां बदरास्थिप्रमाणानां अष्टसहस्रं जुहुयात् । ततः पटवासिनी यक्षिणी आगच्छति । तस्या गन्धोदकेनार्घो देयः । सा ब्रवीति-- किं करोमीति । माता भगिनी सखी एषामेकतमं ग्राह्यम् । रसरसायनं ददाति । तं भक्षयित्वा कल्पायुर्भवति । यक्षबलो भवति । कृतपुरश्चरणः सधातुके चैत्ये यथाविभवतः पूजां कृत्वा त्रिःकालस्नायी तृसंध्यं षण्मासां अपरिमितो जापः । भिक्षाहारः क्षीरयावकाहारो वा । ततः साधनं समारभे । कृष्णपक्षे पुष्यनक्षत्रे करवीरिकां मनःशिलां वीरक्रयक्रीतां गृह्य पञ्चगव्येन संशोध्य ब्राह्मणकन्यां वामोषधं दत्त्वा स्नानालंकृतां कृत्वा पूर्वाभिमुखे प्रविश्य तिथिकरणमुहूर्तेन पीषयेत् । अनामिकाङ्गुल्या विषमां बदरास्थिप्रमाणां गुलिकां कृत्वा अश्वत्थसमुद्गके प्रक्षिप्य पटस्याग्रतः सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा सप्तरात्रोषितं च अन्ते शुक्लपक्षे उदारां पूजां कृत्वा उदारतरीं बलिं

निवेद्य गन्धपुष्पधूपार्चितं समुद्गकं कृत्वा चतुर्भिरश्वत्थपत्रैः स्थाप्य त्रिभिराच्छाद्य हस्तेनावष्टभ्य सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां नमस्कारं कृत्वा कुशपिण्डकोपविष्टः तावज्जपेद् यावद् रसरसायनादीनि द्रव्याणि ददन्ति। पुनरपि निर्गच्छति। अर्धं रत्नत्रयोपयोगाय कार्यम्। अथ तत्रैव तिष्ठति। न
G 721 वैष्णवचक्रभयं भवति। भगवन्तं मैत्रेयं पश्यति। प्रणिधिं कृत्वा प्रवेष्टव्यम्। सर्ववारणम्। शुचिस्थाने पांसुगृहं सर्षपस्योपरि क्षिपेत्। सर्ववारणं कृतं भवति। अतियातिगिच्छति। वक्तव्यम्—गच्छस्वेति वस्त्रकर्णके मृण्मयीं मुद्रां कृत्वा अष्टसहस्राभिमन्त्र्य दष्टकोपरि स्थापयित्वा आकर्षयेत्। मृतकोऽप्युत्तिष्ठति। द्रव्याणां च मनःशिलादीनां खड्गचक्रमुसुण्ड्यादीनां पञ्चगव्येन शोधयित्वा सहस्रसंपाताहुतिं कृत्वा अन्यतमं द्रव्यं गृह्य पूर्णमास्यां साधनमण्डलं लिख्य वस्त्रोपरि द्रव्यं स्थाप्य पर्यङ्कोपविष्टः तावज्जपेद् यावत् सिद्धिर्भवति। फलके यमिच्छति द्रव्यं तस्य तस्य नामं लिख्य अष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यत्र नागस्तिष्ठति तत्र ह्रदे क्षेप्तव्या। तस्य नागः सर्वं संपादयति। सप्ताहेन नियतं वस्तुं संपादयति। कूपे ह्रदे वाभिलषितव्यं नामं लिख्य द्रव्यादीनां फलके तथैव ह्रदे क्षेप्तव्यम्। ततः पुरुष उदके निमज्जयितव्यम्। स तस्मिन् महान्तं शब्दं शृणोति अमुकस्मिन् प्रदेशे द्रव्यादिकं तिष्ठति। ततो ग्रहेतव्यम्। नदीसंतारकादौ दस्युषु वा सभायां राजकुले वा विवादे वा स्मर्तव्यम्। सर्वत्रापराजितो भवति। यमिच्छति वशं कर्तुम्, तस्य मुखे आर्यमञ्जुश्रियं ध्यात्वा किंचित्संभाषणं कुर्यात्। अचिराद् वशो भवति। उदकं भाजने कृत्वा आर्यमञ्जुश्रियं ध्यायीत। तेन पानीयेनाष्टसहस्राभिमन्त्रितेन दष्टं संसिञ्चेत्। निर्विषो भवति। तत्रोक्तेन विधानेन मण्डलं प्रविष्टः संपूर्णस्य वृषस्य अपतितगोमयं गृह्य हविष्याहारः समौनी मण्डलं कृत्वा तावज्जपेत् पौर्णमास्यां आरभ्य यावत् तृतीयमपि लक्षं जपेत्। ब्रह्मचारी षण्मासां व्रतमेतच्चरेत्। मासेनात्र सिद्धिः। षड्भिर्मासैः कृत्स्नं जगत् प्रत्यक्षं भवति। शरीरेणापि परां सिद्धिमवाप्नोति। समासेन सर्वमन्त्रं साधयति॥

महावैपुल्यराजात् आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पात् पञ्चपञ्चाशत्तमो
हेमशालनगरकल्पविधिः परिसरः परिसमाप्तः॥

॥ परिसमाप्तं च महाकल्पमार्यमञ्जुश्रियस्य कल्पमिति॥

G 722 स्वस्ति श्रीराजमङ्गलकावस्थितेन मार्गशीर्षशुक्ला + + + पदानक्षत्रे सिंहस्थेऽपि गुरौ
मञ्जुश्रीकल्पं समाप्तमिति। श्रीमूलश्रीविहाराधिपतिना श्रीबो + + +
मध्यदेशाद् विनिर्गतेन पण्डितरविचन्द्रेण लिखितमिति। + +

॥ शुभं भूयात्॥

श्लोकसूची

[संख्या पृष्ठसूचिका]

